वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

DHEN-02
जन स्वास्थ्य और स्वच्छता

प्रथम खण्ड
स्वास्थ्य सूचक

ग्निदरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

DHEN-02
जन स्वास्थ्य और स्वच्छता

खंड

1

स्वास्थ्य सूचक

इकाई 1

जनसंख्या गतिकी और जानपदिक रोगविज्ञान 5

इकाई 2

परिवार नियोजन कार्यक्रम 20

इकाई 3

स्वास्थ्य और जीवन–स्तर संबंधी एशियाई परिप्रेक्ष्य 33

खंड परिचय

पाठ्यक्रम 2 के पहले खंड में जनसंख्या और स्वास्थ्य सूचकों पर मुख्य रूप से ध्यान केंद्रित किया गया हैं। इस खंड में तीन इकाइयां हैं। इकाई 1: जनसंख्या गतिकी और जानपदिक रोगविज्ञान, इकाई 2: परिवार नियोजन कार्यक्रम और इकाई 3 : स्वास्थ्य और जीवन स्तर संबंधी एशियाई परिप्रेक्ष्य।

यह तो आप जानते होंगे जनसंख्या वृद्धि और परिवार नियोजन आम लोगों के स्वास्थ्य और पोषण स्तर को प्रभावित करते हैं।

इकाई 1 में आपको विभिन्न जन्म–मृत्यु आंकड़ों, उनके स्रोतों और निर्धारकों से परिचित कराया गया है। तथापि जननक्षमता व मृत्युदर व इनसे संबद्ध पहलुओं पर परिप्रेक्ष्यों को ज्यादा महत्व दिया गया है, जो लोगों के स्वास्थ्य और पोषण स्तर से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है।

इकाई 2 में जनसंख्या वृद्धि, विशेष रूप से जननक्षमता और मृत्यु दर को परिवार नियोजन और परिवार–नियोजनेतर उपायों के माध्यम से निपटने संबंधी विभिन्न उपायों की चर्चा की गई है। स्वास्थ्य और पोषण स्तर पर परिवार नियोजन के प्रभाव से अतिरिक्त परिवार नियोजन कार्यक्रमों की नीतियों, कार्यनीतियों और निर्धारकों पर भी चर्चा की गई है।

इकाई 3 में इस विषय को व्यापक रूप से प्रस्तुत किया गया हैं और स्वास्थ्य व जीवन स्तर पर एशियाई परिप्रेक्ष्य की विवेचना की गई है। अन्य एशियाई देशों की तुलना में भारत की क्या स्थिति है, इसे देखते हुए, हमें आगे क्या करना है, और जनसंख्या नियंत्रण के संदर्भ में कहां ध्यान केंद्रित करना है, इससे संबंधी व्यापक विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

अध्ययन गाइड

निम्नलिखित निर्देश आपको खंड की संरचना की जानकारी देने में सहायक होंगे:

1) पहली इकाई में क्रमबद्ध रूप में निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान केंद्रित है: जनस्वास्थ्य में जन्म–मृत्यु आंकडों की भूमिका अर्थात् भारत के साथ भौगोलिक, सांस्कृतिक और विकासात्मक समानताओं के कारण भारत सहित चुने गए एशियाई देशों जैसे चीन, दक्षिण कोरिया, थाईलैंड, मलेशिया और श्रीलंका में प्रजनन शक्ति और मृत्युदर। इस भाग में जन्म–मृत्यु आंकड़ों के प्रमुख निर्धारकों और उनसे सबंद्ध अवधारणाओं पर भी चर्चा की गई है।

2) दूसरी इकाई का प्रारंभ भारत में अनुसरित जनसंख्या नीतियों और कार्यनीतियों तथा परिवार नियोजन कार्यक्रम की उत्पत्ति व विकास से होता है। इसके पश्चात् परिवार नियोजनेतर उपायों के दो पहलुओं के साथ–साथ मुख्य स्थायी व अस्थायी परिवार नियोजन विधियों से परिचित कराया गया है। परिवार नियोजन कार्यक्रमों के प्रमुख निर्धारक और स्वास्थ्य व पोषण पर उनका प्रभाव अंत में दिया गया है।

3) इकाई 3 में एशियाई अनुभवों का सारांश हैं। हमारी जनसंख्या के बेहतर जीवन स्तर के संवर्धन हेतु हमें क्या करना चाहिए इससे संबंधित उपयोगी संकेत व विचार इसी इकाई में दिए गए हैं।

पाठ्यक्रम परिचय

पाठ्यक्रम—1 में आपको समुदाय के लिए पोषण से संबंद्ध अनिवार्य संकल्पनाओं, सिद्धांतों व अनुप्रयोगों से परिचित कराया गया।

इस पाठक्रम में हम जन स्वास्थ्य और स्वच्छता से संबंद्ध विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेंगे। वह प्रमुख क्षेत्र जो इस पाठ्यक्रम की चर्चा का विषय हैं वे निम्नलिखित हैं :

खंड 1 : स्वास्थ्य सूचक

खंड 2 : पर्यावरणीय स्वच्छता और सुरक्षा

खंड 3 : रोग की आहार व्यवस्था

खंड 4 : भोजन द्वारा उत्पन्न रोग, खाद्य संक्रमण तथा मादकता

खंड 5 : सामान्य संक्रामक रोग

खंड 6 : जनस्वास्थ्य और इससे संबंधित मुद्दे

पाठ्यक्रम 1 और 2 का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् आप अर्जित ज्ञान और कौशलों को पाठ्यक्रम 3 और पाठ्यक्रम 4 (परियोजना कार्य) को प्रारंभ करते समय लागू करने योग्य हो जाएंगे।

प्रयोगात्मक कार्यो की नियमावली भाग—2 में दिए गए अभ्यासात्मक क्रियाकलापों को ध्यानपूर्वक पढ़ना न भूलें। ये क्रियाकलाप आपको अपने समुदाय में स्वास्थ्य मुद्दों के पहचानने में आपके कौशलों को सुस्पष्ट व प्रखर करेंगे। वे सरकारी और गैरसरकारी दोनों सेक्टरों द्वारा अपनाई जा रहे उपागमों का अवलोकन व विश्लेषण करने में भी सहायक होंगे।

पाठ्यक्रम का प्रारंभ स्वास्थ्य सूचकों पर चर्चा से होता है जो आपको जनसंख्या समूहों के स्वास्थ्य स्तर का मूल्यांकन करने में सहायक होंगे। जनसंख्या अपने आप में ही स्वास्थ्य का और जीवन स्तर का एक प्रमुख निर्धारक हैं। इनका *खंड 1* में विश्लेषण किया गया हैं। *खंड 2* में जनस्वास्थ्य महत्ता के रोगों के फैलने में पर्यावरणीय सफाई की महत्वपूर्ण भूमिका पर चर्चा की है। संबद्ध सुरक्षा पहलुओं जैसे वैयक्तिक स्वास्थ्य और घरेलू सुरक्षा पर विशेष रूप से बल दिया गया हैं।

इसके पश्चात् *खंड 3* में की गई चर्चा समुदाय में होने वाले सामान्य रोगों में आहार व्यवस्था पर केंद्रित है। आप में से जो आयुर्विज्ञान—पराचिकित्सा व्यवसाय से संबद्ध हैं — विशेष रूप से यदि आप अस्पताल या क्लिनिक में काम कर रहें हैं, तो इस खंड की अंतिम इकाई बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

खंड 4 और 5 में विभिन्न संक्रामक और संचरणीय रोगों के पूरे विस्तृत ब्यौरे दिए गए हैं। *खंड 6* प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल तथा स्वास्थ्य व आय—सृजन से संबंधित कार्यक्रमों पर आधारित हैं। मूलभूत सिद्धांतों और अनुप्रयोगों के रूप में पर्यावरणीय सुरक्षा पर भी चर्चा की गई है।

इकाई 1 जनसंख्या गतिकी और जानपदिक रोगविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 जन स्वास्थ्य में जन्म–मृत्यु आंकड़ों (Vital Statistics) की भूमिका

1.3 एशियाई देशों में जन्म–मृत्यु आंकड़े

1.4 जन्म–मृत्यु आंकड़ों संबंधी डाटा के स्रोत

1.5 प्रजननशक्ति संबंधी माप (Fertility Measures) और निर्धारक

1.6 जानपदिक रोग विज्ञानीय (Epidemiological) तरीके : रूग्णता, मर्त्यता और उनके निर्धारक

1.7 जनसंख्या संबंधी अन्य पैरामीटर

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.1 प्रस्तावना

जनसंख्या पैरामीटर (Population parameters) के क्षेत्र में अब तक हुए अनुसंधान हमें सामान्यतः जनसंख्या के पोषण स्तर के प्रभाव के बारे में वैज्ञानिक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त, कार्यक्रमों को विकसित करने के दौरान हुए अनुभवों से जनसंख्या पैरामीटर और लोगों के पोषण स्तर के बीच परस्पर संबंधों के बारे में विचार उत्पन्न हुए। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर आपको इनके कुछ आशयों के बारे में जानकारी अवश्य होगी। इस इकाई में इन्हीं पर विस्तार चर्चा की गई है। इस संदर्भ में आपको विवाह (विवाह दर), जन्म (प्रजननशक्ति), बीमारियां (रूग्णता), मृत्यु (मर्त्यता) जैसी महत्वपूर्ण जन्म–मृत्यु घटनाओं, उनके स्तरों, प्रवृत्तियों और निर्धारकों से परिचित कराने के प्रयास प्रमुख रूप से किए जा रहे हैं। जैसे–जैसे आप इस इकाई को पढ़ेंगे, आपको ज्ञात होगा कि ये जन्म–मृत्यु आंकड़ें जनस्वास्थ्य के लिए योजना बनाने और लोगों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने में कितने महत्वपूर्ण और निर्णायक हैं।

जनस्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण विभिन्न प्रजननशक्ति और मृत्यु दर, जिनकी चर्चा इस इकाई में की गई है, ये जानकारी जन्म–मृत्यु दरों के साथ–साथ उपलब्ध आंकडों की गणना (परिकलन) के तरीकों और उनकी महत्ता से अवगत होने में आपकी सहायक होगी।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप:

- भारत तथा अन्य एशियाई देशों में और क्षेत्रीय स्तरों पर विभिन्न जनसंख्या परिमापी (पैरामीटरो) के स्तरों और प्रवृत्तियों का वर्णन कर सकेंगे
- विवाह, जन्म, मृत्यु, वृद्धि और अन्य जन्म–मृत्यु संबंधी घटनाओं की दरों और अनुपातों की गणना कर सकेंगें
- जन्म–मृत्यु घटनाओं के प्रमुख निर्धारकों और स्वरूपों की पहचान कर सकेंगे, और
- प्रमुख बीमारियों के प्रचलन और उनको नियंत्रित करने के तरीकों का वर्णन कर सकेंगे।

1.2 जनस्वास्थ्य में जन्म—मृत्यु आंकड़ों (Vital Statistics) की भूमिका

आपके विचार में जन्म मृत्यु आंकड़े किस तरह से उपयोगी हो सकते हैं ? हां, वस्तुतः जन्म—मृत्यु आंकड़े कई तरह से उपयोगी हो सकते हैं। जन्म—मृत्यु दरें समुदाय/देश के सम्पूर्ण सामाजिक—आर्थिक विकास की जांच करने में सहायक हो सकते हैं। समुदाय में प्रजननशक्ति (fertility) और मर्त्यता (mortality) समुदाय के सम्पूर्ण स्वास्थ्य और पोषण (अर्थात् जीवन स्तर) के सूचक होते हैं और इस प्रकार ये सामाजिक—आर्थिक विकास की आवश्यकता को दर्शाते हैं।

जन्म मृत्यु आंकड़े सरकार (नीति और कार्यक्रम योजनाकार) को स्वास्थ्य सेवाओं के लिए योजना बनाने में सहायक होते हैं ताकि ये सेवाएं सामान्य जन तक आसानी से पहुंच सकें और स्वास्थ्य से संबंधित सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों को बेहतर बनाया जा सके। बच्चों में मृत्यु दर को कम करना, बच्चे के जन्म (प्रसव) के दौरान होने वाली मातृक मृत्यु आदि घटनाओं को कम करना जैसे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं और जन्म मृत्यु दरें/आंकड़े ये पता लगाने में सहायक हो सकते हैं कि लक्ष्यों को प्राप्त किया गया या नहीं।

जन्म—मृत्यु आंकड़ों को एकत्रित करने का अन्य लाभ है कि यह दो समुदायों/देशों और/या एक ही समुदाय/देश के लोगों के स्वास्थ्य और पोषण स्तर की परस्पर तुलना करने में भी सहायक होते हैं। इस प्रकार विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं और जनगणना दशकों के दौरान घटित विभिन्न जन्म—मृत्यु की जानकारी कार्यक्रम प्रबंधकों, योजनाकारों और प्रशासनिकों को विकासात्मक कार्यक्रमों, विशेष रूप से एक निश्चित समय में उनकी सफलताओं का प्रभाव जानने में, सहायक होती है।

1.3 एशियाई देशों में जन्म—मृत्यु आंकड़े

अधिकांश जन्म मृत्यु आंकड़े जन्म मृत्यु दरों के रूप में व्यक्त किए जाते हैं। आइए जन्म—मृत्यु दर को परिभाषित करें और उसे समझें। *जब प्रजनन शक्ति/रूग्णता/मर्त्यता के जन्म—मृत्यु आंकड़ों को कुल जोखिम ग्रस्त जनसंख्या (समान विशिष्टता—जैसे आयु, क्षेत्र, लिंग के आधार पर संगृहित लोगों के समूह) में से बीमार (अस्वस्थ) लोगों या घटित घटनाओं(जैसे जन्म मृत्यु) की संख्या के रूप में व्यक्त किया जाता है तब इसे जन्म—मृत्यु दर का नाम दिया जाता है।* जब आप इस परिभाषा को पहली बार पढ़ेंगे तो आपको जन्म—मृत्यु दर की उपर्युक्त परिभाषा थोड़ी कठिन या जटिल अवश्य लगेगी। लेकिन यदि इसे दुबारा ध्यानपूर्वक और गौर से पढ़ेंगे तो निश्चित रूप से आपको यह समझ में आ जाएगी।

भारत कई एशियाई देशों से विकासात्मक पहलुओं में थोड़ा बहुत उनके समकक्ष था, लेकिन इन एशियाई देशों में जन्म—मृत्यु आंकडों में परस्परता भिन्नता पाई गई। इसका क्या कारण है? इसका कारण संभवतः एशियाई देशों द्वारा प्राप्त विभेदक (differential) प्रगति थी,जो उन्होंने विकास के एक या अन्य प्राथमिकता क्षेत्रों में दिए गए विभेदक बल से प्राप्त की। उदाहरणतः कुछ देशों या क्षेत्रों ने शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन और अवसंरचनात्मक विकास को सबसे ज्यादा अग्रता दी। लेकिन कुछ अन्य देशों ने सामाजिक विकास को नज़रअंदाज करके औद्योगिकरण और/या कृषि संबंधी विकास को सबसे अधिक महत्व दिया। इस संदर्भ में चीन, थाईलैंड, दक्षिण कोरिया, मलेशिया और श्रीलंका ने योजना बनाने और अवसंरचनात्मक संबंधी अच्छीं प्रगति की। फलस्वरूप वहां आधुनिकीकरण और लोगों के जीवन स्तर (Quality of life) में सुधार बहुत तीव्र गति से हुआ। दूसरी ओर, भारत सरकार ने सामाजिक विकास की उपेक्षा करके औद्योगिकरण और कृषि को सर्वोच्च अग्रता प्रदान की। हमने विकास के जिन विभेदक निर्देशों का ऊपर उल्लेख किया है इनके कारण कई जन्म—मृत्यु घटनाओं में मतभेद देखनें को मिलता है। जहां कई प्रगतिशील एशियाई देश अपने देश के रूग्णता और मृर्त्यता दरों की द्रुतगति को कम करने में सफल रहे, वहां भारत उनसे इस मामले में काफी पीछे रह गया है।

आप नीचे दी गई तालिका 1.1 के आधार पर कुछ एशियाई देशों के जन्म—मृत्यु घटनाओं की तुलना कर सकते हैं।

तालिका 1.1 : एशियाई देशों में जन्म–मृत्यु घटनाएँ

	सी.बी. आर. अशोधित जन्म दर (1992)	आई. एम. आर. शिशु मृत्यु दर (1992)	सी. डी. आर. अशोधित मृत्यु दर (1992)	महिला जीवन प्रत्याशा (1992)	विवाह के समय महिला की माध्य आयु (1992)
चीन	20.3	28	6.5	72.4	23.0
दक्षिण कोरिया	16.4	12	5.8	73.6	24.7
मलेशिया	27.4	15	4.7	72.8	23.5
थाईलैंड	20.3	28	6.1	70.4	22.7
श्रीलंका	20.9	25	5.9	73.6	24.4
भारत	29.9	92	11.0	58.0	18.7

स्रोत : पॉपुलेशन रेफरेन्स ब्यूरो 1993 वर्ल्ड पॉपुलेशन डेटाशीट, पी आर बी, वाशिंगटन।

आइए अब जाने कि जन्म मृत्यु दरों संबंधी जानकारी एकत्रित और तैयार कैसे की जाती है।

1.4 जन्म–मृत्यु आंकड़ों संबंधी डाटा के स्रोत

जन्म–मृत्यु आंकडों संबंधी डाटा के स्रोत हैं:

1) जनगणना (Census)

2) जनसंख्या रजिस्टर (Population Registers)

3) प्रतिदर्श पंजीकरण योजना (Sample Registration Scheme)

4) राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (National Sample Surveys)

5) स्वास्थ्य सेवाएं रिकॉर्ड (Health Services Record)

6) विशेष सर्वेक्षण (Special Surveys)

7) रोग संबंधी रजिस्टर (Disease Registers)

उपर्युक्त प्रत्येक स्रोतों के बारे में अधिक विस्तार में जानने से पहले आपको याद रखना चाहिए कि इन प्रत्येक स्रोतों की अपनी–अपनी सीमाएं हैं और कोई भी देश मात्र एक ही स्रोत पर निर्भर नही रह सकता। आमतौर पर जन्म मृत्यु आंकड़े की प्राप्ति विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को एक साथ एकत्रित करके की जाती है।

जनगणना

आइए पहले "जनगणना शब्द को परिभाषित करें। जनगणना शब्द से अभिप्राय है अधिमान्य रूप से, 10 वर्ष में एक बार नियत समय पर एक देश में सभी व्यक्तियों/घरों (व्यक्ति–जनसंख्या–जनगणना, घर–आवास–जनगणना) की पूरी गिनती। जनगणना व्यक्ति की आयु, लिंग, धर्म, व्यवसाय, साक्षरता, आय इत्यादि की सूचना प्रदान करती है। हमारे देश में पहली जनगणना 1872 में कराई गयी और तब से हर दस वर्ष में एक बार जनगणना कराई जाती हैं। भारत में अंतिम बार जनगणना 1 मार्च 1991 को हुई थी।

आपके विचार में जनसंख्या की गणना जन्म–मृत्यु दरों/आंकड़ों को परिकलन करने में देश के लिए किस प्रकार सहायक हो सकती है? आगे जब आप इस इकाई को पढ़ेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि जनसंख्या की गणना जन्म–मृत्यु दरों की गणना के लिए उपयोगी व आधारभूत सूचना प्रदान करती है। इसी प्रकार, आवास–जनगणना पर्यावरण संबंधी सुविधाओं (जैसे जल आपूर्ति, प्रसाधन सुविधाओं,

प्रति व्यक्ति स्थान की उपलब्धता आदि) का विश्लेषण करने में सहायक होती है।

जनसंख्या रजिस्टर

स्वीडन, फिनलैंड, बैल्जियम, इसराइल, ताइवान और कोरिया जैसे कुछ देशों में जनसंख्या संबंधी डाटा नियमित रूप से बनाएं जाने वाले जनसंख्या रजिस्टरों से प्राप्त किए जा सकते हैं जिसमें देश के प्रत्येक व्यक्ति का नाम दर्ज किया जाता है। जनसमुदाय की महत्वपूर्ण प्रवासी गतिविधियां (migratory movements) भी इसमें पंजीकृत की जाती हे। जनसंख्या रजिस्टरों की इस पद्धति को प्रारंभ करने का प्राथमिक उद्देश्य व्यक्तियों की पहचान को सुस्थापित और नियंत्रित करना है। हालांकि, रजिस्टरों का प्रयोग वर्तमान जनसंख्या आकार, आंतरिक प्रवास, जन्म–मृत्यु घटनाओं के डाटा जैसी जनसांख्यिकीय सूचना को प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है।

प्रतिदर्श पंजीकरण योजना

जैसा कि आप जानते हैं कि प्रत्येक समुदाय में जन्म–मृत्यु और विवाह के रिकार्ड स्थानीय प्राधिकारियों या धार्मिक नेताओं द्वारा रखे जाते हैं। यदि ये रिकार्ड पूरे और सुव्यवस्थित ढ़ंग से रखे जाएं तो प्रजननक्षमता, मृत्यु दर और विवाह दर का प्राक्कलन करने में इनका उपयोग किया जा सकता है।

तथापि, इसके प्रयोग की भी एक सीमा है। हमारे देश में आमतौर पर इन रिकार्डों को पूरा नहीं किया जाता। अक्सर वे अधूरे ही रहते हैं। इसका कारण है अज्ञानता, निरक्षरता, भेद–भाव और व्यवस्थित प्रबंध का अभाव। इसके अतिरिक्त मृत्यु, जन्म और विवाह आदि को दर्ज कराने के लिए कुछ प्रोत्साहन भी नहीं दिया जाता। अतः आमतौर पर लोग इन जन्म–मृत्यु घटनाओं की रिर्पार्ट/सूचना तत्काल नहीं देते। इसके बावजूद, इन रिकार्डों का सुव्यवस्थित विश्लेषण हमें जन–स्वास्थ्य से संबंधित महत्वपूर्ण जन्म–मृत्यु आंकड़े प्रदान करता है।

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण का मुख्य उद्देश्य प्रतिदर्श सर्वेक्षण की तकनीकों का प्रयोग करके व्यापक आधार पर विभिन्न दौरों में देश भर के लिए कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक व आर्थिक पहलुओं पर आंकड़े एकत्रित करना है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (एन. एस. एस.) के प्रथम दौरे का संचालन 1950 में हुआ। तब से विभिन्न मुद्दों पर सूचना एन.एस.एस. के विभिन्न दौरों के माध्यमों से एकत्रित की गई है। अब तक इसमें शामिल मुद्दे निम्नलिखित हैं: प्रजननशक्ति, रूग्णता, जनसंख्या वृद्धि, आर्थिक रूप से सक्रिय जनसंख्या, परिवार नियोजन, रोज़गार और बेरोज़गारी, उपभोक्ता, व्यय पद्धतियां, आवासीय स्थितियां, विनिर्माणी उद्योग (manufacturing industries), शारीरिक रूप से विकलांग लोग।

स्वास्थ्य सेवा रिकार्ड

प्रशासनिक उद्देश्यों (जैसी अस्पतालों में मातृक मर्त्यता, रोग–विशिष्ट रुग्णता, जन्मभार संबंधी जानकारी, शैशवावस्था ओर बाल्यावस्था के दौरान ऊंचाई, बच्चों के बांह की परिधि, टीकाकरण संबंधी सूचना और कुछ स्थानिक रोगों की रोकथाम और उनके नियंत्रण) के लिए स्वास्थ्य सेक्टर द्वारा बनाए गए स्वास्थ्य सेवा रिकार्डों से विभिन्न जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

यद्यपि स्वास्थ्य सेवा रिकार्ड जन्म–मृत्यु आंकड़ों संबंधी उपयोगी आधार सामग्री प्रदान करते हैं परन्तु यदि इन्हें व्यवस्थित ढ़ंग से रखा न जाए तो इनमें भी कुछ कमियां देखी जा सकती हैं। इनकी कमी यह है कि ये रिकार्ड अनुरवीक्षण लक्ष्यों की बजाए प्रशासनिक उद्देश्य के लिए रखे जाते हैं और वह भी केवल उन स्थानों पर जहां स्वास्थ्य सेवाएं प्रयोग में लाई जाती हैं।

विशेष सर्वेक्षण

समुदाय के सदस्यों, गाँव के एजेंटों, स्थानीय कर्मचारियों या अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा घर–घर जाकर किए जाने वाले सर्वेक्षण आयु–विशिष्ट और रोग–विशिष्ट मृत्यता संबंधी जानकारी प्रदान करने के लिए बहुत उपयेगी होते हैं। इन सर्वेक्षणों (जब राष्ट्रीय स्तर पर किए जाते हैं) का प्रयोग जन्म–मृत्यु आंकड़ों/दरों के लिए सूचना प्रदान करने के लिए अक्सर किया जाता है।

रोग संबंधी रजिस्टर

विभिन्न अस्पतालों द्वारा कुछ बनाए गए रोग संबंधी रजिस्टर कुछ विशिष्ट रोगों की मृत्यता और रुग्णता दर और इन रोगों के लिए दिए गए उपचार संबंधी डाटा प्रदान करते हैं।

बोध प्रश्न–1

1) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए :

क) जन्म–मृत्यु दर

....

....

....

ख) जनगणना

....

....

ग) प्रतिदर्श सर्वेक्षण

....

....

....

....

2) आपके विचार में जन्म–मृत्यु आंकड़े स्वास्थ्य कार्यक्रम योजनाकारों और नीति निर्माताओं के लिए किस प्रकार सहायक हो सकते हैं ?

....

....

....

....

....

1.5 प्रजननशक्ति संबंधी माप (Fertility Measures) और निर्धारक

जैसा कि आप जानते हैं समुदाय में रुग्णता दरें कम होना बेहतर पोषण स्तर को सूचित करता है। आप समुदाय में कम प्रजनन दरों की व्यावस्था किस प्रकार करेंगे? क्या ये पोषण के अच्छे या बुरे स्तर की सूचक हो सकती हैं? हमारे देश में जहां एक ओर भोजन की कमी है वहीं दूसरी ओर प्रजनन की दरें ज्यादा हैं। दूसरे शब्दों में, ऐसा प्रतीत नहीं होता कि पोषण स्तर से प्रजनन दर प्रभावित होती है। आइए, अब उन विभिन्न प्रजनन दरों के बारे में जाने जिनकी गणना जनस्वास्थ्य महत्ता की दृष्टि से की गई है।

अशोधित जन्म दर – सी. बी. आर. (Crude Birth Rate—CBR)

निर्धारित कैलेंडर वर्ष में एक समुदाय की प्रति 1000 अनुमानित मध्य वर्ष जनसंख्या में से जीवित जन्मों की संख्या। इसे निम्नलिखित फार्मूले द्वारा परिगणित किया जा सकता हैं :

$$\text{अशोधित जन्म दर} = \frac{\text{निर्धारित क्षेत्र में एक वर्ष में जीवित जन्मों की संख्या}}{\text{अनुमानित मध्य वर्ष जनसंख्या}} \times 1000$$

किसी भी देश में उपर्युक्त फार्मूला जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख निर्धारक है।

विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में जन्म दर उच्च (high) देखी गई है। उदाहरण के लिए, स्वीडन में 13, यू. के. में 14 और अमरीका में 16 के मुकाबले भारत में जन्म दर 29.9 हैं। हालाँकि विकासशील देशों में जन्म दरों में धीरे–धीरे गिरावट आ रही हैं, भारत में यह दर 1960 में 43 के मुकाबले गिरकर अब 29.9 रह गई है।

हमारे देश में उच्च जन्म दर के क्या कारण है, आइए जाने। हमारे देश में उच्च जन्म दर के कारण निम्नलिखित हैं:

- समयपूर्व यौवनारंभ (early puberty) : भारतीय लड़कियों में यौवन का आरंभ जल्दी ही अर्थात् 12 से 14 वर्षों की आयु में हो जाता है
- कम उम्र में विवाह
- विवाह का व्यापक रूप से प्रचलन : आर्थिक रूप से आत्म –निर्भरता और मानसिक परिपक्वता को अनदेखा करते हुए लोगों का विवाह कर दिया जाता है
- निर्धनता और रहन–सहन के निम्न स्तर जिसका प्रभाव बच्चों की उत्तरजीविता पर पड़ता है, इनका उच्च मृत्यु दर से संबंध है, और इसके विपरीत रहन–सहन के उच्च स्तर के कारण मृत्यु दर में कमी आ जाती है
- निम्न साक्षरता दरें विशेष रूप से महिलाओं में। निम्न साक्षरता दर का संबंध उच्च जन्म दर से है
- बच्चों का महत्व उच्च प्रजननशक्ति के रूप में कार्य करता है
- परिवार नियोजन और उसके अपनाने का कम प्रचलन। छोटे परिवार के आर्दश को सामने रखकर परिवार नियोजन उपायों को अपनाने संबंधी विचार अभी तक जनसंख्या विस्फोट (population explosion) पर प्रभाव नहीं बना पाया है।

सामान्य प्रजनन दर – जी. एफ. आर. (General Fertility Rate—GFR)

यह प्रजननशक्ति को मापने का एक उपाय है। आइए इसे परिभाषित करें। एक निर्धारित वर्ष में प्रति 1000 जनन योग्य आयु वर्ग (Reproductive age group) वाली महिलाओं (15—49 वर्ष) में जीवित जन्मों की संख्या।

$$\text{जी. एफ. आर.} = \frac{\text{एक वर्ष के दौरान एक विशिष्ट क्षेत्रों में जीवित जन्मों की संख्या}}{\text{उसी वर्ष में उस क्षेत्र में 15–49 वर्ष की आयु वर्ग वाली महिलाओं की मध्य वर्ष जनसंख्या}} \times 1000$$

जी. एफ. आर. को अशोधित जन्म दर के मुकाबले प्रजननशक्ति का बेहतर सूचक माना जाता है, क्यों कि परिभाषा में हर (denominator) में केवल जनन योग्य आयु वाली महिलाओं को शामिल किया जाता है। तथापि, आप देख सकते हैं कि यह जरूरी नहीं हर में शामिल सभी महिलाएं बच्चों को जन्म दें।

प्रजननशक्ति का एक ज्यादा स्पष्ट व सरल माप भी है जो *आयु–विशिष्ट प्रजनन* दर के नाम से जाना जाता है। इसके अंतर्गत एक विशिष्ट आयु वर्ग में प्रति 1000 महिलाओं में जीवित जन्म की संख्या अभिकलित की जाती है। इससे प्रजननशक्ति पद्धति का सही स्पष्ट रूप सामने आता है और वह परिवार नियोजन कार्यक्रम की उपलब्धियों के प्रभावशाली सूचक के रूप में कार्य करता है।

1987 में भारत में सामान्य प्रजनन दर 134 थी। शहरी क्षेत्रों (109) की तुलना में वह ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा (142) थी। संभवतः आपको यह जानना रूचिकर लगे कि जी. एफ. आर. सबसे कम केरल (77) में है। यह दर राजस्थान (157), उत्तर प्रदेश (170) में अपेक्षाकृत बहुत ज्यादा है।

आयु–विशिष्ट प्रजनन दर के आंकड़े दर्शाते हैं कि महिलाएं 20–24 वर्ष की आयु में प्रजननशक्ति की चरम अवस्था में होती हैं। 25–29 वर्ष की आयु वर्ग में भी प्रजननशक्ति लगभग समान चरम पर होती है। प्रजननशक्ति की दरों में शहरी–ग्रामीण भिन्नताएं पाई जाती हैं और ग्रामीण भारत में, प्रजननशक्ति ज्यादा देखी गई है।

कुल प्रजनन दर – टी. एफ. आर. (Total Fertility Rate — TFR)

कुल प्रजनन दर महिला द्वारा पैदा किए जा सकने वाले बच्चों की औसत संख्या बताती है (यदि महिला अपने प्रजननीय काल को पूरा कर लेती है)। टी.एफ.आर. प्रति महिला आयु–विशिष्ट प्रजनन दरों को एकत्रित करके अभिकलित की जाती है। यह प्रजननशक्ति सूचक जनसंख्या के आयु और लिंग संघटन पर आश्रित नहीं होती। यह पूरे पारिवारिक आकार के स्थूल आकार का सूचक है।

1987 में भारत का टी.एफ.आर. 4.1 था। यह शहरी क्षेत्रों (3.2) की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों (4.4) में ज्यादा था। यह फिर से केरल (2.2) के मुकाबले राजस्थान (4.8) और उत्तर प्रदेश (5.5) में ज्यादा था। राष्ट्रीय स्तर पर टी. एफ. आर. में गिरावट देखी गई है।

निवल जनन दर – एन. आर. आर. (Net Reproduction Rate – NRR)

15 से 49 वर्ष के आयु समूह में वर्तमान प्रजननशक्ति और मर्त्यता पद्धति के अंतर्गत किसी भी महिला के जीवित मादा बच्चे पैदा होने की औसत संख्या एन.आर.आर. कहलाती है।

एन.आर.आर. उन जीवित मादा बच्चों की संख्या को दर्शाता है, जो माँ की जनन योग्य अवधि में ही माँ को प्रतिस्थापित कर देती हैं।

भारत में 1980–85 के दौरान एन.आर. आर. 1.61 आंकलित किया गया और अब उसमें धीरे–धीरे गिरावट आ रही है।

1.6 जानपदिक रोग विज्ञानीय (Epidemiological) तरीके : रुग्णता, मर्त्यता और उनके निर्धारक

जैसा कि आप जानते हैं समुदाय के कुछ वर्गों, विशेषकर बच्चों और गर्भवती महिलाओं, में कुपोषण ज्यादा पाया जाता है। सामान्यतः मर्त्यता दरें और आयु–विशिष्ट मर्त्यता दरें किसी एक समुदाय विशेष में कुपोषण के प्रभाव को दर्शाती हैं। आइए, उन विभिन्न मर्त्यता दरों के बारे में जाने जिनकी गणना समुदाय में कुपोषण के प्रभाव के बारे में जानने के लिए की जाती है।

अशोधित मृत्यु दर – सी.डी.आर (Crude Death Rate – CDR)

अशोधित मृत्यु दर (सी.डी. आर.) को किसी निर्धारित समुदाय में प्रतिवर्ष प्रति 1000 लोगों में होने वाली मृत्यु के रूप में परिभाषित किया गया है।

$$\text{सी. डी. आर.} = \frac{\text{एक वर्ष में होने वाली मृत्यु की संख्या}}{\text{मध्य वर्ष जनसंख्या}} \times 1000$$

सी. डी. आर. लोगों के स्वास्थ्य स्तर का भी सूचक है। हालांकि इसे स्वास्थ्य स्तर का बिल्कुल सही सूचक नहीं माना जाता, तथापि मृत्यु दर में गिरावट जनसंख्या के स्वास्थ्य स्तर में सुधार को दर्शाती है। हमारे देश में बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं द्वारा कई संचरणीय रोगों (communicable diseases) पर नियंत्रण के कारण मृत्यु संख्या में तो तेजी से गिरावट आई तथा दूसरी ओर जन्म दर में गिरावट न आने के कारण हमारे देश की वृद्धि दर बढ़ती जा रही है।

भारत में वर्तमान मृत्यु दर 11.0 है। इसकी तुलना में स्वीडन में यह दर 11, इग्लैंड में 11 और अमेरिका में 9 है (यू.एन. 1992) । भारत में मृत्यु दर जो 1960 में 21 थी अब गिर कर 11.0 रह गई है।

शिशु मृत्यु दर – आई. एम. आर. (Infant Morality Rate – IMR)

शिशु मृत्यु दर को स्वास्थ्य स्तर और लोगों के रहन–सहन के स्तर का अभिसूचक माना जाता है।

मर्त्यता (mortality) आंकड़ों की तुलना करने पर आप पाएंगे कि किसी भी अन्य आयु वर्ग की तुलना में एक वर्ष से कम आयु में मरने वाले व्यक्तियों की संख्या सबसे ज्यादा होती है। आप यह भी पाएंगे कि शिशुओं के मरने के तात्कालिक कारण वयस्कों के मरने के कारणों से भिन्न होते हैं। मर्त्यता के कई अन्य निर्धारक हैं जो विभिन्न आयु वर्गों, प्रांतो/क्षेत्रों और समुदायों में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। गरीबी, अपर्याप्त पोषण, निरक्षरता, सफाई का खराब प्रंबध, जीवन शैली के कारक, प्रदूषक और मिलावट, विवाह की आयु, बड़े परिवार और जन्म के बीच कम अंतर ये सभी शिशु मर्त्यता के प्रमुख निर्धारकों के अंतर्गत आते हैं।

अतिसारी रोग, श्वास संबंधी रोग और अल्पपोषण उच्च शिशु मृत्यु दर के प्रमुख कारण माने जाते हैं शिशु को ध्यान में रखते हुए विशेष रूप से बनाए गए स्वास्थ्य कार्यक्रम शिशु मृत्यु दर में प्रत्यक्ष रूप से व शीघ्र ही गिरावट लाते हैं।

जैसे कि विकसित देशों में देखा गया है, निम्नलिखित का अनुसरण करने से शिशु मृत्यु दर को कम किया जा सकता है:

- रहन – सहन के स्तर को सुधारना
- संक्रामक रोगों पर नियंत्रण
- बेहतर दवाइयां–जैसे प्रतिजैविक औषधियों (एन्टीबायोटिक) को उपलब्ध कराना और उनका उपयोग
- सुरक्षित प्रसव व बेहतर स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएँ उपलब्ध कराना, और
- संतुलित आहार और पीने योग्य सुरक्षित जल प्रदान करना।

उपरोक्त शिशु और बाल मृत्यु दर को नियंत्रित करने संबंधी कुछ ऐसी उच्च प्राथमिकता प्राप्त अंतःक्षेप (high priority intervention) है जो विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य है। इसके अतिरिक्त कई और अंतःक्षेपों की भी आवश्यकता है।

1991 में भारत में प्रति 1000 जीवित जन्मों में शिशु मृत्यु दर 92 थी। यह शहरी क्षेत्रों (58) की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों (98) में ज्यादा है। ये आकंड़े विकसित देशों की शिशु मृत्यु दर (लगभग 15 प्रति 1000 जीवित जन्म) की तुलना में काफी ज्यादा हैं। लेकिन शिशु मृत्यु दर से संबंध उत्साहवर्धक एक कारक है इसमें उत्तरोत्तर गिरावट की प्रवृत्ति जो 1911 में 204 से अब गिर कर 1991 में 92 रह गई है। यह गिरावट शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में देखी गई है।

नवजात मृत्यु दर (Neonatal Mortality Rate)

शिशु जन्म के चार सप्ताह या 28 दिनों के बीच होने वाली मृत्यु नवजात मृत्यु दर कहलाती है। निर्धारित जनसंख्या में प्रति 1000 जीवित जन्मों में नवजात मृत्यु को नवजात मृत्यु दर के रूप में परिभाषित किया जाता है।

$$\text{नवजात मृत्यु दर} = \frac{\text{जन्म के 28 दिन के भीतर मरने वालों की संख्या}}{\text{कुल जीवित जन्म}} \times 1000$$

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कुल शिशु मृत्यु में से लगभग आधे शिशुओं की मृत्यु जीवन के पहले 28 दिनों में हो जाती है। इनमें से अधिकांश मौतों का कारण प्रसव के दौरान लगने वाली चोटें मानी जाती हैं। इसके अतिरिक्त प्रसव के दौरान अपनाए जाने वाले अवैज्ञानिक तरीके भी शि मृत्यु का कारण होते हैं।

नवजात मृत्यु के अन्य कारण हैं : जन्मजात विसंगतियाँ, समय–पूर्व जन्म, कुछ रक्त संबंधी विकार, प्लैसेंटा और नाभि–नाल की स्थिति, अतिसारी रोग और गंभीर श्वसन संबंधी संक्रमण। भारत में नवजात मृत्यु दर (1987 में) 57.7 थी, जोकि बहुत ज्यादा है।

प्रसवकालीन मृत्यु दर (Perinatal Mortality Rate)

भ्रूण काल के बाद की अवधि अर्थात् गर्भावधि के अठ्ठाइसवें हफ्ते या उससे कुछ उपर हफ्तों में ह वाली मृत्यु (मृत जन्म) और जन्म के बाद एक सप्ताह के भीतर 1000 ग्राम से अधिक वजन वाले

शिशुओं में होने वाली मृत्यु प्रसवकालीन मृत्यु दर के रूप में परिभाषित की जाती है।

प्रसवकालीन मृत्यु दर = (भ्रूण काल की अंतिम अवस्था में होने वाली मृत्यु (मृत जन्म) +जन्म के समय 1000 ग्राम वजन वाले शिशुओं की एक सप्ताह के अंदर होने वाली मृत्यु) / (कुल जीवित + मृत जन्म, जो जन्म के समय 1000 ग्राम से ज्यादा वजन वाले हों)

प्रसवकालीन मर्त्यता निम्नलिखित कारण से हो सकती है :

i) माताओं में गर्भावस्था या प्रसव के दौरान समस्याएं

ii) प्लैसेंटा संबधी समस्याएं

iii) शिशु में विसंगतियाँ

आपको निम्नलिखित मुख्य कारण भी याद ही होंगे :

- जन्म के समय कम वजन
- जन्म के दौरान लगने वाली चोटें
- जन्मजात विकृतियाँ
- जन्म के पश्चात संक्रमण

इन मुख्य कारणों को प्रभावित करने वाले कई कारकों का पता लगाया गया है जो निम्नलिखित हैं :

- माँ की आयु (समय पूर्व गर्भधारण अर्थात् 19 वर्ष से कम आयु मे या बड़ी उम्र में गर्भ धारण (late pregnancy) अर्थात् 35 वर्ष से अधिक उम्र)
- बच्चों के जन्म में अंतराल (कम अतंराल)
- गर्भावस्था के दौरान असंतोषजनक प्रगति
- माँ का खराब पोषण स्तर
- माँ का निम्न सामाजिक — आर्थिक स्तर
- स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव और उनका उपयोग न करना
- अयोग्य/अप्रशिक्षित दाइयों द्वारा प्रसव के दौरान अस्वास्थ्यकर तरीके अपनाना

प्रसवकालीन मृत्यु को प्रसव पूर्व देखभाल (antenatal care - गर्भावस्था के दौरान देखभाल), प्रसव कालीन देखभाल (natal care - प्रसव काल के दौरान देखभाल) और प्रसवोत्तर देखभाल (post natal care - प्रसव के बाद की देखभाल) का सुग्राही सूचक माना जाता है।

यहाँ तक कि विकसित देशों में भी प्रसवकालीन मृत्यु दर काफी ज्यादा है और इस दर को नियंत्रित करने संबंधी प्रयास जारी हैं। भारत जैसे विकासशील देशों में शिशु मृत्यु दर (जन्म के पहले वर्ष में मृत्यु दर) काफी ज्यादा है और यह दर प्रसवकालीन मृत्यु दर को भी पीछे छोड़ देती है। स्वीडन और इंग्लैंड जैसे विकसित देशों में प्रसवकालीन मर्त्यता आंकड़ें 10 से 20 हैं जबकि भारत में इसकी दर 56 है।

नवजातोत्तर मृत्यु दर (Post Neonatal Mortality Rate)

नवजातोत्तर मृत्यु दर से अभिप्राय है प्रति 1000 जीवित जन्मों में से 1 से लेकर 12 महीने से कम आयु के शिशुओं की मृत्यु।

$$\text{नवजातोत्तर मृत्यु दर} = \frac{\text{28 दिनों के शिशुओं से एक वर्ष के अंदर मरने वाले बच्चे}}{\text{कुल जीवित जन्म}} \times 1000$$

एक माह से लेकर एक साल की आयु के बीच लगभग 60 प्रतिशत शिशुओं की मौत हो जाती है। लेकिन प्रश्न है कि क्या इन मौतों को रोका जा सकता है? हाँ, इन मौतों को रोका जा सकता है। यह बात तब स्पष्ट होगी जब आप इस अवधि में होने वाली मौतों के कारण जानेंगे। इनके कारण हैं। अतिसारी रोग, अतिपाती श्वास संबंधी संक्रमण, काली खांसी, गलघोंटू, क्षय रोग जैसे संक्रामक रोग जिनके प्रतिरोधक टीके उपलब्ध हैं, कुपोषण और दुर्घटनाएं।

अब आपको ज्ञात हो गया होगा कि इस अवधि में होने वाली मृत्यु का मुख्य कारण कुपोषण और संक्रमण का दुश्चक्र है। कुपोषण से संक्रमण के बढ़ने का खतरा हो सकता है, दूसरी ओर संक्रमण कुपोषण की ओर ले जा सकता है। इस प्रकार दोनों का पारस्परिक प्रभाव खतरा बन सकता है।

स्वीडन में 20 और यू. के. में 33 की तुलना में भारत में प्रति 1000 जीवित जन्मों में प्रसवोत्तर मृत्यु दर 60 है।

बाल मृत्यु दर — टी. एम. आर (Toddler Mortality Rate – TMR)

आइए 1 से 4 वर्ष के बच्चे या स्कूल पूर्व आयु के बच्चों में मृत्यु दर यानि की टी.एम.आर. के बारे में जानकारी हासिल करें।

1 से 4 वर्ष की आयु वर्ग के प्रति 1000 बच्चों में होने वाली मृत्यु की संख्या टी.एम.आर. कहलाती है। शिशु मृत्यु दर को काफी समय से जनसंख्या के स्वास्थ्य स्तर के सूचक के रूप में प्रयोग किया जाता रहा। तथापि अब ऐसा मालूम पड़ रहा है कि 1—4 वर्ष की आयु यानि स्कूल पूर्व आयु के बच्चों में मृत्यु की दर कहीं अधिक संवेदनशील है। जैसा कि आप जानते हैं स्कूल पूर्व आयु (1—4 वर्ष) संयुक्त रूप से पोषण और भावात्मक तनाव का समय होता है। स्कूल पूर्व आयु के बच्चे में शिशुओं की अपेक्षा कुपोषण और संक्रमण जल्दी होने की संभावना होती हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि (वर्तमान प्रेक्षपणों के अनुसार) भारत में शिशु मृत्यु दर (आई. एम. आर.) विकसित देशों कि तुलना में 10 गुना अधिक थी जबकि 1—4 वर्ष की आयु में मृत्यु दर विकासशील देशों की तुलना में 30 से 50 गुणा अधिक है।

जीवन के दूसरे वर्ष में (यानि कि दूसरे साल की उम्र में) मरने का खतरा सबसे ज्यादा होता है। बाल मृत्यु दर समुदाय के आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक और पोषण स्तर को दर्शाती है। इसलिए टी. एम. आर. को पोषण कार्यक्रमों सहित कई विकासात्मक कार्यक्रमों के सूचक के रूप में लिया जाता है। अब इसे जनसंख्या के स्वास्थ्य स्तर का सबसे सुग्राही सूचक माना जाता है।

भारत में टी. एम. आर. 1—4 वर्ष की आयु वर्ग के प्रति 1000 बच्चों में 24 है और यह देखा गया है कि बाल मृत्यु दर में गिरावट काफी धीमी है और साथ ही साथ यह भी दर्शाती है कि जनसंख्या में विकासात्मक और पोषण कार्यक्रमों को मजबूत व प्रबल करने की आवश्यकता है।

मातृक मृत्यु दर (Maternal Mortality Rate)

प्रत्येक 100,000 गर्भवती महिलाओं में गर्भावस्था के दौरान या गर्भ के समापन के 42 दिनों के अंदर (दुर्घटना के कारणों को छोड़कर) मरने वाली महिलाओं की संख्या को मातृक मृत्यु दर के रूप में परिभाषित किया जाता है।

$$\text{मातृक मृत्यु दर} = \frac{\text{प्रसवोत्तर (puerperal) कारणों से होने वाली मौतें की संख्या}}{\text{क्षेत्र में गर्भवती महिलाओं की संख्या}} \times 100000$$

मातृक मृत्यु दर जनसंख्या को उपलब्ध कराई गई मातृक सेवाओं के स्तर को दर्शाती है। इससे यह भी पता चलता है कि प्रायः गर्भवती महिलाओं में रुग्णता के अनुपात की दर 1:20 है अर्थात् एक गर्भवती महिला के मृत्यु के पीछे 20 गर्भवती महिलाएं ऐसी हैं जो रूग्ण है।

मातृक मृत्यु के प्रमुख कारण हैं : विषाक्तता, रक्तस्त्राव, रोगाणुता। इसके अतिरिक्त एनीमिया, हृदय और फेफड़े से संबंधित रोग, अवैध गर्भपात मातृक मृत्यु के अन्य कारण हैं।

मातृक मृत्यु को प्रभावित करने वाले अन्य प्रमुख कारक हैं:

i) माँ की आयु : शिशु जन्म के लिए माँ की सही आयु 20 से 30 वर्ष के बीच मानी जाती है। 20 वर्ष से कम की आयु में या 30 वर्ष के पश्चात गर्भधारण होने से माँ के साथ—साथ

नवजात के लिए भी खतरा हो सकता है

ii) **जन्म में अंतराल :** बच्चों के जन्म के बीच में कम अंतराल माँ और बच्चे दोनों के लिए खतरा बन सकता है

iii) अधिक संख्या में बच्चों को जन्म देना माँ के जीवन के लिए गंभीर समस्या बन सकता है।

iv) **अल्पोषण :** माँ का प्रसव पूर्व पोषण स्तर और गर्भावस्था के दौरान कम मात्रा में आहार का अंतर्ग्रहण माँ के लिए गंभीर खतरा बन सकता है। अल्पपोषण उच्च मातृक मृत्यु का कारण हो सकता है।

उपर्युक्त चारों कारक एक दूसरे से परस्पर संबंध हैं और भारत तथा अन्य विकासशील देशों में उच्च मातृक मृत्यु दर में चिकित्सा कारणों की अपेक्षा वह ज्यादा बड़ी भूमिका निभाते हैं।

1988 में भारत में मातृक मृत्यु दर प्रति 1,00,000 गर्भवती महिलाओं में 340 के लगभग थी। विकसित देशों में यह आंकड़े नाममात्र हैं अर्थात् यू. के. में यह 0.13 ही है।

बोध प्रश्न 2

1) रिक्त स्थानों कि पूर्ति कीजिए:

क) आई. एम. अर. से अभिप्राय है प्रति 1000 जीवित जन्म में .... वर्ष से कम की आयु वालों के मरने की संख्या।

ख) प्रति 1000 जीवित जन्मों में से .... दिनों के अंदर होने वाली मृत्यु की संख्या नवजात मृत्यु दर कहलाती है।

ग) प्रति 1000 जीवित जन्मों में से ....वर्ष की आयु वाले बच्चों की मरने की संख्या बाल मृत्यु दर कहलाती है।

घ) भारत में शिशु मृत्यु दर प्रति 1000 जीवित जन्म .... है।

ड़) - .... विशेष समुदाय के बच्चों के स्वास्थ्य स्तर का सबसे सुग्राही सूचक है।

2) आपके विचार में निम्नलिखित प्राक्कलन जन स्वास्थ्य के लिए योजना बनाने में किस प्रकार सहायक होता है?

क) मातृक मृत्यु दर

....

....

....

ख) बाल मृत्यु दर

....

....

....

मृत्यु दरों के बारे में पढ़ने के बाद, आइए अब प्रजनन दरों संबंधी कुछ जानकारी हासिल करें।

1.7 जनसंख्या संबंधी अन्य पैरामीटर

जन्म — मृत्यु आंकड़ों संबंधी अन्य कारक जो जन स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकते हैं वे हैं जीवन प्रत्याशा, लिंग अनुपात, साक्षरता दरें इत्यादि। आइए, इन सबके बारे में विस्तार से जानें।

वृद्धि दर

नए जन्म, जनसंख्या में कुल प्रवास और मृत्यु के कारण हुई संख्या में परिवर्तन का माप वृद्धि दर है।

$$\text{वृद्धि दर} = \frac{\text{जीवित जन्म + कुल प्रवास − वर्ष के दौरान होने वाली मौतें}}{\text{मध्य वर्ष जनसंख्या}} \times 1000$$

जनसंख्या में हुई स्वाभाविक वृद्धि और जनसंख्या का निवल प्रवास दोनों वृद्धि दर के अंतर्गत आते हैं। विश्व भर में वृद्धि दर सब जगह एक समान नहीं होती। विकसित देशों की दर (0.5–1.0 की तुलना में विकासशील देशों में यह दर (2.5 प्रतिशत से अधिक) अपेक्षाकृत ज्यादा है।

स्वाभाविक वृद्धि दर – एन. आई. आर. (Natural Increase Rate - NIR)

एन. आई. आर. जन्म और मृत्यु (जो जनसंख्या में परिवर्तन को सुनिश्चित करने वाली दो निर्णायक व्यापक घटनाएं हैं) के कारण जनसंख्या में हुए कुल परिवर्तन को सूचित करती हैं।

एन. आई. आर. = अशोधित जन्म दर – अशोधित मृत्यु दर

लिंग अनुपात

प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाओं की संख्या को लिंग अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है। जन सांख्यिकीविदों द्वारा महिलाओं के पक्ष में लिंग अनुपात का समर्थन किया जाता है और यह प्रायःउच्चतर साक्षरता दरों और बेहतर सामाजिक–आर्थिक स्थिति से संबंध होता है।

1991 में हुई जनगणना के अनुसार भारत में लिंग अनुपात 929 था। यह अनुपात 1901 में 972 से गिरकर 1991 में 929 पहुंच गया। भारत में ही केरल राज्य में लिंग अनुपात (1040) सबसे ज्यादा है।

जीवन प्रत्याशा

मर्त्यता की वर्तमान सूची के अनुसार व्यक्ति की औसतन वर्ष जीवित रहने की संभावना जीवन प्रत्याशा है।

जन्म के समय जीवन प्रत्याशा

मर्त्यता की वर्तमान सूची के अनुसार नवजात बच्चे के औसतन जीवित रहने की प्रत्याशा।

दी गई आयु में जीवन प्रत्याशा

मर्त्यता पद्धति को ध्यान में रखते हुए एक व्यक्ति के लिए दिए गए समय से अतिरिक्त वर्ष जीवित रहने (के वर्षो) की औसतन संख्या। जीवन प्रत्याशा स्वास्थ्य स्तर का सुग्राही, सूक्ष्म मापदंड है, जो सामाजिक–आर्थिक विकास का सूचक माना जाता है। जीवन प्रत्याशा में होने वाली वृद्धि का कारण जनसंख्या के स्वास्थ्य स्तर में सुधार है। जन्म के समय जीवन प्रत्याशा अंशतः शिशु मृत्यु दर पर निर्भर करती है। इस प्रकार, पहले के उच्च शिशु मृत्यु दरों के कारण विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में जीवन प्रत्याशा कम है।

जीवन प्रत्याशा की गणना वर्तमान आयु विशिष्ट मृत्यु दरों से निकाले गए सांख्यिकीय आंकड़ों पर आधारित होती है। भारत में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा धीरे–धीरे बढ़ रही है और आजकल पुरूषों की यह दर 58 है और महिलाओं की यह दर 59 है।

जन्म के समय कम वजन (Low Birth Weight)

2500 ग्रा. से कम वजन वाला नवजात (जन्म के समय) कम वजन वाला शिशु माना जाता हैं।

कम वजन वाले नवजात खतरे वाली स्थिति में माने जाते हैं और ऐसे शिशुओं में मृत्यु दर भी बहुत अधिक होती है। जो शिशु जीवित होते है, उनमें विभिन्न संक्रमण जल्दी–जल्दी होने की संभावना ज्यादा रहती है और उनकी वृद्धि भी मंद गति से होती है।

हमारे देश में उन बच्चों की संख्या जिनका वजन जन्म के समय 2500 ग्रा. से कम होता है, 25–30 प्रतिशत आकलित की गई है।

बोध प्रश्न 3

रिक्त स्थान भरिए:

क) जन्म दर = ____________________ X 1000
आकलित मध्य वर्ष जनसंख्या

ख) वृद्धि दर = ____________________ X 1000
मध्य वर्ष जनसंख्या

ग) सामान्य प्रजनन दर = ____________________ X 1000
सामान्य वर्ष और समान क्षेत्र में 15–49 वर्षों के आयु समूह में मध्य वर्ष महिला जनसंख्या

अब तक, आपने हमारे देश के वास्तविक जन्म – मृत्यु आंकड़ों के बारे में पढ़ा। आइए, अब उन लक्ष्यों के बारे में पढ़े जिन्हें सन् 2000 तक प्राप्त किया जाना है।

उल्लेखनीय –1

सन् 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य (Health for all by 2000 A.D.)

क्या आप विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) द्वारा अपनाए गए कार्यक्रम "2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य" के बारे में जानते हैं? इस कार्यक्रम का लक्ष्य स्वास्थ्य के उस स्तर को प्राप्त करना है जो विश्वभर के प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक और आर्थिक रूप से उत्पादनकारी जीवन जीने योग्य बना देगा। भारत, विश्व स्वास्थ्य संगठन की "सन् 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य" वाली सार्वभौमिक नीति का एक हिस्सा है।

निम्नलिखित तालिका में भारत में वर्तमान महत्वपूर्ण जन्म–मृत्यु दरें और सन् 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य प्राप्त करने हेतु निर्धारित लक्ष्य दिए गए हैं।

तालिका 1.2 : सन् 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य के लक्ष्य को प्राप्त करने वाले स्वास्थ्य सूचक

जन्म मृत्यु दरें (1991)	वर्तमान	2000 तक लक्ष्य
1) शिशु मृत्यु दर	92	60 से नीचे
2) अशोधित जन्म दर	29.9	21
3) अशोधित मृत्यु दर	11	9
4) बाल-मर्त्यता दर (1–5 वर्ष)	24	10
5) जन्म के समय जीवन प्रत्याशा		
पुरूष	58	64
महिलाएं	59	64
6) जन्म के समय कम वजन	25–30	10

1.8 सारांश

इस इकाई में आपने विभिन्न जन्म–मृत्यु दरें (प्रजनन एवं मृत्यु दरें), उन्हें कैसे अभिकलित किया जाता है, उनकी महत्ता और प्रभावी स्वास्थ्य सेवाओं की योजना बनाने में उनके उपयोग के बारे में पढा।

आपने पढ़ा कि शाला पूर्व मर्त्यता दर (1–4 वर्ष की आयु की मृत्यु दर) जनसंख्या के स्वास्थ्य स्तर का सबसे सुग्राही सूचक है। विकसित देशों की तुलना में यह हमारे देश में अपेक्षाकृत ज्यादा है। सन् 2000 तक स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए बनाए लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विविध योजनाएं बनाई गई हैं जो अपना अपना काम कर रही है।

हमारे देश में प्रजनन दर, जन्म दर, वृद्धि दर और सामान्य प्रजनन दरें भी काफी ज्यादा है। इस इकाई में आपने प्रजनन दरों को अभिकलित करने के तरीकों, उनके वर्तमान आंकड़े और सन् 2000 तक प्राप्त किए जाने वाले आंकड़े के बारे में पढ़ा।

1.9 शब्दावली

प्रसव पूर्व : जन्म से पहले

जनगणना : एक नियत दिनांक को सभी व्यक्तियों की पूरी गिनती

जन्मजात : जन्म से या उससे पहले अनुभावित

नवजात : 4 सप्ताह या 28 दिन का शिशु

प्रसवोत्तर : बच्चे के जन्म से संबंधित

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) जन्म मृत्यु दरें : जब प्रजनन शक्ति / रूग्णता/ मर्त्यता के जन्म–मृत्यु आंकड़ों को कुल खतरे वाली जनसंख्या (समान विशिष्टता जैसे आयु, क्षेत्र, लिंग के आधार पर, संगृहित लोगों के समूह) में से बीमार (अस्वस्थ) लोगों या घटित घटनाओं (जैसे जन्म–मरण की संख्या) के रूप में व्यक्त किया जाता है तब इसे जन्म–मृत्यु दर का नाम दिया जाता है।

   ख) जनसंख्या जनगणना : नियत दिनांक को देश में सभी व्यक्तियों की पूरी गिनती। सामान्यतः यह दस वर्ष में एक बार होती है।

   ग) प्रतिवर्ष सर्वेक्षण : जन्म/मृत्यु/विवाह/ तलाक इत्यादि जैसी उपयोगी जानकारी का पता लगाने के लिए जनसंख्या के प्रतिवर्ष का सर्वेक्षण। उदाहरणतः जन्म मृत्यु आंकड़े समुदाय के सम्पूर्ण स्वास्थ्य / पोषण स्तर के बारे में उपयोगी जानकारी प्रदान करते हैं। यह नीति निर्माताओं को बताते हैं कि जनसंख्या/ क्षेत्र के किस आयु वर्ग को स्वास्थ्य सेवाओं की ज्यादा जरूरत है। ये उन्हें कुछ विशेष स्वास्थ्य से संबंधित निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु उद्देश्य बनाने और उनका मूल्यांकन करने में भी सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य कार्यक्रमों के लिए अपेक्षित वित्त का अंदाजा लगाने में सहायक होते हैं।

2)
- स्वास्थ्य को सुधारने के लिए लक्ष्य निर्धारित करना
- स्वास्थ्य सेवाओं की योजना बनाना
- स्वास्थ्य सेवाओं के प्रभाव का मूल्यांकन
- दो या दो से अधिक भिन्न–भिन्न लोगों के समूह में स्वास्थ्य स्तर का तुलनात्मक मूल्यांकन

बोध प्रश्न 2

1) क) एक

ख) 28

ग) 1–4

घ) 92

ड.) बाल मर्त्यता दर (1–4 वर्ष की आयु में मृत्यु दर)

2) क) मातृक मृत्यु दर समुदाय में उपलब्ध मातृक सेवाओं की कोटि को दर्शाती है। दूसरे शब्दों में जनन आयु वर्ग में विवाहित महिलाओं के सम्पूर्ण स्वास्थ्य/पोषण स्तर के बारे में बताती है।

ख) बाल मर्त्यता दर समुदाय के स्वास्थ्य स्तर का सुग्राही सूचक है, क्योंकि प्रथम 1–4 वर्ष बच्चे के लिए संयुक्त रूप से पोषण और भावात्मक दबावों का समय होता है। यह कार्यक्रम आयोजकों को जनस्वास्थ्य के लिए बच्चों के स्वास्थ्य की स्थिति और मृत्यु के कम करने के आवश्यक स्वास्थ्य सेवाओं की सीमा जानने में सहायक होती है।

बोध प्रश्न 3

1) क) वर्ष के दौरान जीवित जन्मों की संख्या

ख) वर्ष के दौरान हुई मौतें

ग) वर्ष के दौरान एक क्षेत्र में जीवित जन्मों की संख्या

इकाई 2 परिवार नियोजन कार्यक्रम

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 जनसंख्या नीति

2.3 परिवार नियोजन कार्यक्रम का विकास

2.4 परिवार नियोजन के तरीके

2.5 परिवार नियोजनेतर उपाय

2.6 परिवार नियोजन कार्यक्रम के निर्धारक

2.7 स्वास्थ्य और पोषण पर परिवार नियोजन का प्रभाव

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.1 प्रस्तावना

20 वीं शताब्दी के मध्य में कई कारकों के कारण परिवार नियोजन के महत्व को महसूस किया गया। इन कारकों मे विकासशील देशों और विकसित देशों में मर्त्यता में तेजी से गिरावट प्रमुख है। इसके लिए वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय अन्वेषणों और तीव्र सामाजिक–आर्थिक विकास का शुक्रिया अदा करना होगा। दूसरी ओर, मर्त्यता में गिरावट के साथ प्रजनन शक्ति में तो गिरावट नहीं आई चूंकि मर्त्यता की भाँति, प्रजनन शक्ति को नियंत्रित करने के लिए किसी भी अंतःक्षेप को संगठित करने की पहल नहीं की गई। परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि बहुत अधिक अनुपात में हुई जिससे कि विकासशील देश द्वारा अपने देश की जनसंख्या को कल्याण संबंधी सहायता प्रदान करना भी उनकी हद से बाहर हो गया।

इन हालातों में संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) और यू. एन. एफ. पी. ए. (UNFPA) के माध्यम से विकासशील देशों में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को नियंत्रित करने वाले कार्यक्रमों को विकसित किया । 1974 में बुकारेस्ट (Bucharest) में हुए प्रथम प्रमुख जनसंख्या सम्मेलन के पश्चात् इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र एजेन्सियों के प्रयास प्रतिपादित किए गए। संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्य योजना ने सदस्य देशों को समष्टि के जीवन स्तर को सुधारने के लिए परिवार नियोजन को प्रोन्नत करने हेतु मार्गदर्शन प्रदान किया। अब आप राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, कार्यक्रमों, परिवार नियोजन के विविध उपायों, परिवार नियोजनेतर उपायों, गर्भधारण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक, जनसंख्या के जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए स्वास्थ्य व पोषण पर परिवार नियोजन के प्रभाव सहित भारतीय परिवार नियोजन कार्यक्रमों के बारे में और ज्यादा पता लगाने के इच्छुक होंगे। इस इकाई में इन्हीं प्रमुख मुद्दों पर चर्चा की गई है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- जनसंख्या नीति के परिप्रेक्ष्यों का वर्णन कर सकेंगे
- परिवार नियोजन कार्यक्रम के विकास और उत्पत्ति की विवेचना कर सकेंगे
- परिवार नियोजन के विभिन्न उपायों की सूची बना सकेंगे

- परिवार नियोजनेतर उपायों के परिप्रेक्ष्यों को पहचान सकेंगे
- परिवार नियोजन कार्यक्रम के प्रमुख निर्धारकों का वर्णन कर सकेंगे, और
- स्वास्थ्य, पोषण और जीवन स्तर पर परिवार नियोजन के प्रभाव की विवेचना कर सकेंगे।

2.2 जनसंख्या नीति

जनसंख्या नीति का विकास किसी भी देश में परिवार नियोजन कार्यक्रम की वैज्ञानिक और तीव्र उन्नति को बढ़ावा देता है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के नियमन की महत्ता लोगों को तभी से मालूम है, जब 1797 में जनसंख्या विज्ञान के जनक रॉबर्ट माल्थस ने परिवार नियोजन और परिवार नियोजनेतर उपायों को स्वीकार करने की आवश्यकता पर केन्द्रित जनसंख्या संबंधी प्रसिद्ध लेख लिखे। हालांकि जनसंख्या नीति 20 वीं शताब्दी के मध्य के बाद स्वतः विकसित हुई, जनसंख्या की तीव्र वृद्धि पर नियंत्रण के लिए निश्चित नीति नियमन जाकर 1974 में ही संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अपनाए गए। फिर भी, आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि 1952 में ही विकासात्मक कार्यक्रमों के एक हिस्से के रूप में जनसंख्या नीति को अपनाने वाला अग्रगामी देश भारत था। लेकिन हमारी नीति की व्यापक कार्य योजना विकसित 1976 से ही हो पाई।

जनसंख्या नीति में प्रजननशक्ति को नियंत्रित करने के विशिष्ट उपायों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। इसके अन्तर्गत तात्कालिक और दीर्घकालीन लक्ष्य; सूचना, शिक्षा और संचार जैसी कई नीतियों; बच्चे और माँ के स्वास्थ्य कार्यक्रमों जैसे अंतःक्षेप; कार्यक्रमों के अनुवीक्षण और प्रशासनिक ढाँचे की व्याख्या हेतु प्रयास; गर्भनिरोधक प्रौद्योगिकी; सुलमता और स्वीकार्यता के संदर्भ में पूरे कार्यक्रम की प्रोन्नति, अनुसंधान और विकास आते हैं। पिछले चार दशकों में विधि सम्मत सुधारों के माध्यम से इस कार्यक्रम को प्रोन्नत करने के लिए कई नीति उपाय बनाए गए। उदाहरण के लिए, गर्भपात को 1972 में कानूनी घोषित किया गया और लड़के और लड़कियों के विवाह की उम्र भारत में 1978 में बढ़ा कर क्रमशः 21 और 18 कर दी गई। अब आप पूछेंगे कि क्या भारत के लिए यह करना पर्याप्त है, क्योंकि विवाह के लिए भारत में 1981 में लड़कों की माध्य आयु 23 और लड़कियों की 18 वर्ष पहले ही थी।

हालांकि अभी भी विवाह की इस आयु को और बढ़ाने की आवश्यकता है। चीन में तो यह सफलतापूर्वक लागू भी है जहाँ विवाह की कानूनी न्यूनतम आयु लड़कियों के लिए 23 वर्ष और लड़कों के लिए 25 वर्ष नियत है।

2.3 परिवार नियोजन कार्यक्रम का विकास

हालांकि भारत सरकार ने प्रथम योजना से ही परिवार नियोजन को पंचवर्षीय योजनाओं के एक हिस्से के रूप में अपनाया, लेकिन पिछले चार दशकों के दौरान इस कार्यक्रम में कई उतार — चढ़ाव आए। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजना की अवधि में इसे न्यूनतम वित्तीय सहायता मिली। सापेक्षिक रूप से और अधिक राजनीतिक वचनबद्धता के साथ वित्त का अभिवृद्ध आवंटन और इस कार्यक्रम का गंभीरता से कार्यान्वयन 1970 के मध्य तक देखा गया। फिर भी, इस अवधि में भी इस कार्यक्रम के लिए निधारित वित्तीय राशि केन्द्र सरकार के कुल बजट की 3% से भी कम थी। हालांकि परिवार नियोजन कार्यक्रम के संवर्धन के लिए एकाएक तेजी आपात स्थिति लागू होने के समय (1976 — 77) में देखने को मिली। इसके पश्चात् 1978 — 80 के दौरान इस कार्यक्रम में सामान्य रवैये देखे गए। परिणामस्वरूप 1980 के बाद इस कार्यक्रम को काफी प्रोत्साहन मिला। तथापि चीन, ताईवान, दक्षिण कोरिया, थाईलैंड, श्रीलंका, मलेशिया जैसे एशियाई क्षेत्रों के अन्य विकासशील देशों के मुकाबले भारत में इस कार्यक्रम में उन्नति बहुत धीमी गति से हो रही है।

भारत में प्रारम्भ में परिवार नियोजन कार्यक्रम एक–उद्देश्य अनुलम्ब कार्यक्रम (Unipurpose Vertical Programme) के रूप में सामने आया। इस कार्यक्रम को वित्त केन्द्रीय सरकार प्रदान करती थी लेकिन इसको कार्यान्वित करने की समस्यों से अवगत होने के पश्चात् इसे मातृक और बाल स्वास्थ्य कार्यक्रमों के साथ और बाद में कुल स्वास्थ्य कार्यक्रमों के साथ संघटित कर दिया गया। इसका राष्ट्रीय स्तर (परिवार नियोजन विभाग), राज्य स्तर (स्वास्थ्य और परिवार नियोजन विभाग), जिला और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्तरों पर प्रशासनिक ढाँचा हैं। सातवी पंचवर्षीय योजना से प्रति 30

हजार जनसंख्या के लिए स्वास्थ्य और परिवार नियोजन को बढ़ावा देने हेतु प्रान्तीय स्तर पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र खोलने पर विचार किया गया । प्रत्येक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में डॉक्टर, महिला व पुरूष स्वास्थ्य पर्यवेक्षक (supervisors), बहु –उद्देशीय महिला व पुरूष स्वास्थ्य कार्यकर्ता (multipurpose male and female health workers); दाइयाँ / समुदाय स्वास्थ्य स्वयंसेवक (Community health volunteers) इस कार्यक्रम को आगे बढ़ने में कार्यरत है। हालांकि इस कार्यक्रम का प्रशासनिय ढ़ाँचा समरूप है फिर भी यह केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और पंजाब जैसे कुछ राज्यों में सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहा है और मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार और राजस्थान जैसे राज्यों में इसका कार्यान्वियन सही रूप से नहीं हो पा रहा है। देश के अन्य राज्यों में इस को विकसित करने संबंधी सफलता की दर अलग–अलग है। भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम के विभेदक संवर्धन के बारे में विस्तृत ब्यौरे अगले भागों में देखे जा सकते हैं।

2.4 परिवार नियोजन के तरीके

पिछले कुछ वर्षो में गर्भ निरोधक के क्षेत्र में एक क्रान्ति आई है, दूसरे शब्दों में, मानव द्वारा जनन चक्र को नियंत्रित करने का प्रयास।

अब व्यापक रूप से इस तथ्य को मान्यता मिल चुकी है कि कोई भी ऐसा आदर्श गर्भ निरोधक नहीं हो सकता, जो कि प्रभावशाली, स्वीकार्य, सस्ता, परिवर्तनीय, प्रयोग में आसान, मुफ्त, ज्यादा देर तक चलने वाला हो और जिसके लिए थोड़ी बहुत या बिल्कुल भी मेडिकल पर्यवेक्षण की आवश्यकता न हो। इसके अतिरिक्त, एक उपाय जो भिन्न–भिन्न सांस्कृतिक पद्धतियों, धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक आर्थिक परिवेश के कारण एक वर्ग के लिए तो बिल्कुल उपयुक्त है वही दूसरे वर्ग के लिए अनुपयुक्त हो सकता है।

चूँकि अब तक कोई भी ऐसा उपाय नहीं है जो सभी व्यक्तियों और समुदायों की सामाजिक, सांस्कृतिक, सौन्दर्यात्मक और सेवा संबंधी सभी जरूरतो को पूर्ण करता हो। इसी कारण "आदर्श गर्भ निरोधक" की खोज का प्रयास छोड़ दिया गया है। परिवार नियोजन कार्यक्रम में वर्तमान दृष्टिकोण जो अपनाया गया है, वह "कैफ़ेटेरियल चौइस" (Cafeterial Choice) (इच्छानुरूप चयन) है। कैफ़ेटेरियल चौइस से अभिप्राय है व्यक्ति को सभी गर्भ निरोधक उपायों से अवगत कराना जिसमें से वह अपनी इच्छा/आवश्यकताओं के अनुसार एक उपाय का चयन कर आपने ढंग से परिवार नियोजन को बढ़ावा दे सकता है।

परम्परागत गर्भ निरोधक शब्द का प्रयोग उन उपायों को निरूपित करने के लिए किया गया है जो संभोग के समय प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ कंडोम, शुक्राणुनाशी इत्यादि। प्रत्येक गर्भ निरोधक उपाय के अपने कुछ लाभ और हानियाँ है। किसी भी गर्भनिरोधक उपाय की सफलता मात्र गर्भ को रोकने में उसके प्रभाव पर निर्भर नहीं करती प्रत्युत् उसके निरन्तर रूप से सही उपयोग की दर पर निर्भर करती है।

बोध प्रश्न 1

1) आपके विचार में भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम क्यों अनिवार्य हैं?

....

....

....

....

....

2) निर्धन ग्रामीण परिवारों में बच्चों की संख्या ज्यादा होने के किन्ही चार कारणों को बताइए।

....

....

....

....

....

गर्भ निरोधक उपायों को मोटे रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है — अंतराल उपाय (spacing methods) और टर्मिनल उपाय जैसा कि नीचे वर्णित है।

I) अन्तराल उपाय :

1) रोध उपाय (Barrier Method)

क). भौतिक उपाय (Physical Method)
(कंडोम और डायफ्राम)
ख) रासायनिक उपाय (शुक्राणुनाशी कारक)
ग) संयुक्त उपाय (Combined Methods)

2) अंतः गर्भाशयी साधन (इन्टरा यूटराइन डिवाइस–आई. यू. डी.)

3) हारमोन संबंधी उपाय (Harmonal Methods)
(गोलियाँ)

4) गर्भधारणोत्तर उपाय (गर्भपात)

5) विविध (Miscellaneous)

II) टर्मिनल उपाय :

1) पुरूष बंध्यकरण (नसबंदी)

2) महिला बंध्यकरण

आइए, अब प्रत्येक वर्ग के बारे में विस्तार से चर्चा करें। अन्तराल उपाय जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि वे उपाय हैं जो बच्चों में अंतराल रखने में सहायक होते है अर्थात् जो उत्क्रमणीय (reversible) है। दूसरी ओर टर्मिनल उपाय अनुत्क्रमणीय (Irreversible) होते हैं।

रोध उपाय (Barrier Methods)

महिलाओं और पुरूषों दोनों के लिए उपयुक्त विविध प्रकार के अवरोधन या "रोधनशील" उपाय उपलब्ध हैं। इन उपायों का लक्ष्य जीवित शुक्राणुओं को अण्डाणुओं से मिलने से रोकना है। हाल ही में रोध उपायों की लोकप्रियता में काफी वृद्धि हुई और इस का कारण है उनके कुछ गर्भनिरोधक और गैर गर्भनिरोधक लाभ। इसका प्रमुख गर्भ निरोधक लाभ है कि इसके इस्तेमाल से कोई प्रतिकूल प्रभाव नही पड़ता जैसा कि गोलियों और आई. यू. डी. में देखने को मिलता है। इसके गैर–गर्भनिरोधक लाभ है यौन संबंधी रोगों से सुरक्षा, श्रोणीय शोघ (Pelvic inflammatory disease) के आपतन में कमी और ग्रीवा (cervica) कैंसर के खतरे से संभवतः काफी हद तक सुरक्षा। रोध उपाय में उपभोक्ता की तरफ से काफी हद तक प्रेरणा की आवश्यकता होती है। सामान्तया ये उपाय गोलियों या लूप से कम प्रभावशाली होते हैं। ये केवल तभी प्रभावशाली हो सकते हैं यदि इनका प्रयोग नियमित रूप से और सावधानी पूर्वक किया जाए।

भौतिक उपाय

1) कंडोम : कंडोम पुरूषों द्वारा न केवल भारत में बल्कि विश्व भर में सर्वाधिक व्यापक रूप से प्रयोग किया जाने वाला अवरोधन साधन है। यह अपने ट्रेंड नाम– निरोध– से बेहतर रूप में जाना जाता है। निरोध संस्कृत का शब्द है, जिसका अर्थ है, रोकथाम। बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के गर्भधारण में अंतराल के सरल ओर प्रभावशाली उपाय के रूप में आज इसका नूतन नजरिए से प्रयोग किया जा रहा है। गर्भ की रोकथाम के अतिरिक्त कंडोम महिलाओं और पुरुषों दोनो की यौन संबंधी रोगों से सुरक्षा करता है।

मूल रूप से कंडोम दो प्रकार के होते हैं : लैटेक्स (Latex) और स्किन (Skin)। लेटेक्स कंडोम

सर्वाधिक व्यापक रूप से प्रयुक्त होते हैं। इसके प्रयोग के लिए इसे संभोग से पहले शिश्न (penis) पर चढ़ाया जाता है। कंडोम को उतारते समय सावधानी बरतनी चाहिए ताकि उसके अन्दर के शुक्राणु संभोग के पश्चात योनि में प्रवेश न कर सकें। प्रत्येक संभोग के लिए नए कंडोम का प्रयोग करना चाहिए।

कंडोम शुक्राणु को योनि में निपेक्षित नहीं होने देता। कंडोम की प्रभावशीलता को और भी बढ़ाया जा सकता है यदि पुरूष संभोग से पूर्व योनि में शुक्राणु नाशी जैली लगाकर और साथ ही कंडोम का प्रयोग करें। कंडोम के फटने या उतरने के स्थिति में शुक्राणुनाशी (Spermicide) अतिरिक्त सुरक्षात्मक साधन है। यू. के. में आजकल ऐसे कंडोम मिलने लगे है जिसमें शुक्राणु नाशी स्नेहन पहले से ही लगा होता है। ये रोध प्रौद्योगिकी में एक महत्वपूर्ण अगला कदम है।

कंडोम के लाभ : (क) ये आसानी से मिल जाते हैं, (ख) सुरक्षित और सस्ते मिलते हैं, (ग) इनको प्रयोग करना आसान होता है और इनके लिए किसी भी प्रकार के चिकित्सीय पर्यवेक्षण की आवश्यकता नहीं होती, (घ) इसके प्रयोग से प्रतिकुल प्रभाव नहीं पड़ता, (च) यह हल्का, ठोस व प्रयोज्य है, (ड) ये न केवल गर्भ ठहरने बल्कि यौन संबंधी रोगो से भी सुरक्षा प्रदान करते हैं । इसकी कुछ हानियाँ भी है जो इस प्रकार है : (क) संभोग के दौरान सही ढंग से उपयोग न करने के कारण इसके फटने की संभावना बनी रहती है, (ख) यौन सुख में यह बाधक है, कुछ की यह शिकायत है । कुछ लोग इसके उपयोग के आदी हो जाते हैं ।

कंडोम की प्रमुख सीमा है कि पुरूष इसका नियमित रूप या सावधानी पूर्वक प्रयोग नही करते जबकि इसके प्रयोग न करने से अवांछित गर्भधारण या यौन संबंधी रोग होने के खतरे ज्यादा रहते हैं।

भारत में कंडोम त्रिवेन्द्रम स्थित हिन्दुस्तान लैटेक्स और मद्रास स्थित लंदन रबर इन्डस्ट्रीज द्वारा बनाए जाते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि एक दम्पति (couple) की सुरक्षा के लिए वर्ष में 72 कंडोम की खपत है।

2) डायफ्राम : संभोग से पहले निर्धारित डायफ्राम जगह पर डाला जाता है और यह संभोग के उपरांत कम से कम छ : घंटे तक अपनी जगह पर ही रहता है। डायफ्राम के साथ शुक्राणुनाशी जैली का हमेशा इस्तेमाल किया जाता है। थोड़ी सी जैली डायफ्राम के किनारों और दोनों सतहों पर लगायी जाती है और फिर एक चाय का चम्मच जितनी वह जैली रूप के अन्दर रखी जाती है। डायफ्राम शुक्राणु को ग्रीवा पर रोके रखता है व्यावहारिक रूप से इसके प्रतिकूल प्रभाव नहीं होते। शुक्राणुनाशी के साथ इस्तेमाल किये गये डाफ्राम की असफलता की दर बहुत कम है।

लाभ : डायफ्राम का प्रमुख लाभ है कि इनमें खतरा लगभग न के बराबर होता है और इसके प्रयोग को ले कर चिकित्सा संबंधी विरोधभास नहीं हैं

हानियाँ : प्रारम्भ में डायफ्राम को योनी में डालने की तकनीक और यह सही स्थान पर है या नहीं यह सुनिश्चित करने के लिए चिकित्सक या किसी प्रशिक्षित व्यक्ति की आवश्यकता होती हैं। प्रसव के बाद इसका प्रयोग गर्भाशय के प्रत्यावर्तन के पूरा होने के बाद ही किया जा सकता है। निवेशन का अभ्यास, इसके निवेशन के लिए एकांत स्थान और इसके साफ करना/धोना और रखने की सुविधा आदि कुछ ऐसे कारण है जो अधिकांश भारतीय परिवारों, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में इसके प्रयोग में बाधा हैं। अतः इसका प्रयोग कभी भी ज्यादा नहीं हुआ।

रासायनिक उपाय

1960 में अंतः गर्भाशयी साधन यानि कि आई.यू.डी. और मौखिक गर्भनिरोधक के आगमन से पहले शुक्राणुनाशी (योनि रासायनिक गर्भनिरोधक) का प्रयोग व्यापक रूप से होता था। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित आते हैं :

क) फेन (foam) की गोलियां/फेन वायु विलय (foam aerosols)

ख) क्रीम, जैलियां, पेस्ट–एक ट्यूब से दबा कर निकाली जाती है

ग) वर्तिकाएं (Suppositories)–हाथ से डाली जाती है

घ) घुलनशील परत (Soluble films)–हाथ से डाली जाती है।

शुक्राणुनाशी में एक आधार होता है, जिससे शुक्राणुनाशी मिलाया जाता है। आमतौर पर प्रयुक्त होने वाली आधुनिक शुक्राणुनाशी "पृष्ठ–सक्रीय कारक" (Surface active agent) होती हैं, जो स्वयं को शुक्राणुओं के साथ जोड़कर उनके द्वारा ग्रहण की जाने वाले ऑक्सीजन में बाधा डाल कर शुक्राणुओं को नष्ट कर देते हैं।

शुक्राणुनाशी की मुख्य कमियाँ इस प्रकार हैं :–

क) इनकी असफलता की दर बहुत ज्यादा है
ख) संभोग से तत्काल पहले इसका इस्तेमाल करना चाहिए
ग) इन्हें योनि के उन हिस्सों में अवश्य लगाना चाहिए जहाँ शुक्राणुओं के जमा होने की संभावना होती हैं
घ) असुविधाजनक होने के साथ–साथ इसके इस्तेमाल से हल्की जलन और बेचैनी हो सकती है।

शुक्राणुनाशी विषाक्त नहीं होनी चाहिए। योनि की त्वचा या गर्भाशय की ग्रीवा पर इसका प्रज्वलनकारी कैंसरजन्य प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। वस्तुतः अभी तक कोई ऐसा एक शुक्राणुनाशी नहीं बन पाया जो प्रयोग में सुरक्षित हो, व गर्भ की रोकथाम में प्रभावशाली हो। अतः व्यावसायिक सलाहकार शुक्राणुनाशी के प्रयोग की सलाह नहीं देते। रोध उपयों के साथ मिलाकर इनका प्रयोग करना सर्वोत्तम है। हाल ही में इसके अति प्रयोग के कारण गर्भ पर संभावित विरूपात्मक प्रभावो पर विचार किया जा रहा है, हालांकि इस खतरे की अभी पुष्टि नहीं हो पाई।

अन्तः गर्भाशयी साधन (आई.यू.डी.)

गर्भाशय में विजातीय वस्तु के माध्यम से गर्भधारण पर नियंत्रण नवीन उपाय नहीं है। मध्य–पूर्व अरब निवासी इस सिद्धांत से पूर्व परिचित थे जो ऊटों में गर्भधारण को इसी सिद्धांत से नियंत्रित करते थे। इसके अन्तर्गत वे ऊंटो के गर्भाशय के प्रत्येक श्रृंग में एक छोटा गोल पत्थर डालकर ऊंटों में गर्भधारंण को नियंत्रित करते थे। जापान आई.यू.डी. के निर्माण में प्लास्टिक सामग्री का प्रयोग करने वाला पहला देश था, इसी से आधुनिक आई.यू.डी. का विकास हुआ। विश्व में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या से अंतः गर्भाशयी गर्भनिरोधक (आई.यू.डी.) में फिर रूचि जागृत हुई है।

विश्व भर में लगभग 6.5 करोड़ महिलाएं गर्भ निरोघ के लिए किसी न किसी प्रकार के आई.यू. डी. प्रयोग करती हैं, इनमें से केवल चीन में ही 5 करोड महिलाएँ इनका प्रयोग करती हैं। 1990 में भारत मे 90 लाख महिलाएँ इसका प्रयोग कर रही थी।

लिपीस लूप (Lippes Loop)

लिपीस लूप अंग्रेजी अक्षर "S" के आकार का यंत्र है जो पॉलिइथिलीन – एक प्लास्टिक धातु का बना होता हैं। यह अविषाक्त, ऊतकों पर प्रभावहीन और बहुत ही स्थायी होता हैं। इसमें थोडी सी मात्रा में बेरियम सल्फेट होता है जो एक्स–रे प्रेक्षणों में लाभदायक सिद्ध होता हैं। लूप में एक ध ागा या पूँछ (हल्की बारीक नायलोन से बनी) रहती है, जो निवेशन के बाद योनि के बाहर लटकती रहती है। पूँछ की उपस्थिति, छू कर आसानी से महसूस की जा सकती है और इससे प्रयोक्ता आश्वस्त रहता है कि लूप अपनी जगह पर स्थिर हैं। इच्छानुसार लूप को निकालने में भी यह सहायक होती है।

लिपीस लूप चार आकारों – ए,बी,सी और डी में होते हैं। डी लूप आकार में सबसे बड़ा होता हैं। बडे आकार वाले यंत्र का आमतौर पर अधिक अनुर्वरक (anti fertility) प्रभाव होता है और इसकी निष्कासन (cxpulsion) दर कम हैं लेकिन दर्द और रक्त स्त्राव जैसे प्रतिकूल प्रभावों के कारण इसके निराकरण की दर ज्यादा है। सी और डी आकार के बड़े लूप बहू प्रसू (Multiparous) महिलाओं के लिए ज्यादा उपयुक्त है। भारत में दो आकारों 227.5 मि. मी. और 30 मि. मी. के लूपों का निर्माण होता है। आकारों की पहचान के लिए छोटे लूप की पूँछ काली और उससे बड़े लूप की पूँछ पीली होती है। वेधन के खतरे को कम करने के लिए यंत्र के अग्र भाग को मामूली सा फूला दिया गया है। यदि लूप के इस्तेमाल से कोई बडी समस्या नहीं होती तो उसे जब तक चाहे गर्भाशय में ही रहने दिया जा सकता हैं। भारत सरकार ने 1965 में राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत लूप को प्रस्तुत किया था।

क) *कॉपर– 7 :* यह यू.के. और अमरीका में सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता हैं। यह 7 अंक के आकार का होता है। प्लास्टिक की डंडी के चारों ओर 200 वर्ग मि. मी. पृष्ठीय क्षेत्रफल की

कॉपर तार लिपटी होती हैं। निर्माता सलाह देते हैं कि इसे प्रत्येक तीन वर्ष बाद बदल लेना चाहिए।

ख) *मल्टी लोड यंत्र (Multiload devices)* : मल्टी लोड यंत्र का प्रयोग यूरोप और इंडोनेशिया में व्यापक रूप से होता है। इसकी दो भुजाएँ होती है जो लचीले प्लास्टिक की बनी होती है। ये पहले बाहर को मुड़ती हुई डण्डी के ऊपर से होती हुई डण्डी के मध्यबिन्दु की ओर मुड़ जाती है। प्रत्येक भुजा की बाहरी पृष्ठ पर पाँच पंख (fins) होते हैं। ये दो आकारों में आता है एम. एल. सी. यू. – 250 और एम. एल. सी. यू. – 375। इनका जीवन काल क्रमशः तीन और पाँच वर्ष होता है।

कापर यंत्र के लाभ निम्नलिखित हैं

- कम निराकरण दर
- प्रतिकूल प्रभावो जैसे दर्द और रक्त स्त्राव का कम आपतन
- अप्रसवा (संतानहीन) महिलाओं में भी लगाना आसान है
- अप्रसवा के लिए भी सहनीय है
- गर्भ निरोधक के रूप में भी काफी प्रभावशाली है
- यदि असुरक्षित संभोग (intercourse) के 3–5 दिनो में लगाया जाए तो संभोगमोत्तर (Post Coital) गर्भ निरोधकों के रूप में भी प्रभावी है।

हॉरमोन संबंधी गर्भ निरोधक

हारमोन संबंधी गर्भ निरोधकों को यदि सही तरीके से इस्तेमाल किया जाए तो अन्तराल गर्भ निरोधक का यह सबसे अधिक प्रभावी उपाय है। संयुक्त प्रकार के मौखिक गर्भनिरोधक गर्भ की रोकथाम में शत प्रतिशत प्रभावशाली है। यह दो बच्चों के जन्म में अन्तराल का एक सर्वोत्तम साधन है। विश्व में अनुमानतः 6.5 करोड़ लोग गर्भ निरोधक गोलियाँ खाते हैं, इनमें से लगभग 1 करोड़ भारतीय हैं।

मौखिक गोलियाँ

मासिक चक्र के पाँचवे दिन से शुरू करके 21 दिन तक लगातार (कुछ के लिए 20 या 22 दिनों की सलाह दी जाती है) गोली खाने को दी जाती है और फिर मासिक धर्म के दौरान 7 दिनों को छोड़कर फिर से इसे खाना प्रारम्भ कर दिया जाता है। जिस दिन रक्त स्त्राव होता है वह चक्र का पहला दिन माना जाता है।

जो रक्तस्राव होता है वह सामान्य मासिक धर्म के समान नहीं होता अपितु बहिर्जात (exogeneous) हारमोन के प्रत्याहार के कारण अपूर्व निर्मित गर्भाशय अंतःस्तर में से गर्भाशयी रक्तस्राव की एक घटना मात्र है। अतः इसे मासिक धर्म न मानकर प्रत्याहार रक्तस्राव (withdrawl bleeding) कहा जाता है। इसके अतिरिक्त, इस दौरान होने वाले रक्त की क्षति सामान्य महिला में अण्डोत्सर्ग चक्र के दौरान होने वाले रक्त क्षति की मात्र आधे से भी कम होती है। यदि रक्तस्रव नहीं हो तो उस स्थिति में महिला को पिछले चक्र के एक सप्ताह पश्चात् दूसरा चक्र प्रारंभ करने के निर्देश दिए जाते हैं। साधारणतया गोलियों के अन्तग्रहण के दूसरे क्रम में महिलाओं में मासिक धर्म होना प्रारंभ हो जाता है।

गोली प्रतिदिन नियमित रूप से, नियत समय पर (यदि रात को सोने से पहले लें तो ज्यादा अच्छा है) लेनी चाहिए। गोली का पहला क्रम मासिक धर्म प्रारंभ होने के बिल्कुल पाँचवें दिन से प्रारंभ कर देना चाहिए क्योंकि इस संबंध में किसी प्रकार के विचलन के कारण गर्भधारण की रोकथाम नहीं हो पाएगी। यदि गलती से या किसी कारण महिला रोगी गोली खाना भूल जाती है तो उसे अविलम्ब जैसे ही गोली की याद आती है, खा लेनी चाहिए और तत्पश्चात् अगले दिन उसे नियमित समय के अनुसार गोली खा लेनी चाहिए।

मासिक प्रेरण (Menstrual Induction)

यह सामान्य प्रोजेस्टरोन, प्रोस्टाग्लैंडिन संतुलन को अस्त–व्यस्त करने पर आधारित है। इसमें प्रोस्टाग्लैंडिन एफ–2 की 2.5 मि. ग्रा. गोली (Pellet) का 1.5 मि. ग्रा. घोल बनाकर के अन्तः

गर्भाशयी के अनुप्रयोग द्वारा इस संतुलन को अस्त व्यस्त किया जाता है।

प्रोस्टाग्लैंडिन के प्रभाव के कारण कुछ ही मिनटों में (शासक (Sedation) के अधीन किए गए) गर्भाशय में लगातार संकुचन होने लगता है, जो लगभग 7 मिनट तक जारी रहता है जिसके पश्चात् चक्रीय संकुचन प्रारंभ हो जाता है जिसकी अवधि 3–4 घंटे की होती है। इसके परिणामस्वरूप रक्तस्राव प्रारंभ हो जाता है जो 7–8 दिन तक जारी रहता है।

सुरक्षित अवधि

इस उपाय का प्रयोग करने हेतु दम्पति को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि महिला के शरीर में अण्डाणु कब बनता है? यदि वे गर्भधारण से बचना चाहते हैं तो इसी अवधि के आसपास उन्हें शारीरिक संपर्क स्थापित नहीं करना चाहिए। अण्डोत्सर्ग (ovulation) (महिला के शरीर के अण्डाणु का निर्मुक्त होना) मासिक धर्न के प्रारंभ होने के 12 से 16दिन पहले होता है। रक्तस्राव प्रारंभ होने का प्रथम दिन मासिक धर्म का पहला दिन माना जाता है। इस प्रकार संभोग का सुरक्षित समय मासिक धर्म (प्रारंभ होने से लेकर) के प्रथम 7 दिन और 21 वें दिन से अगला मासिक चक्र प्रारंभ होने तक का समय है। इस विधि को अपनाने की असुविधा ये है कि महिला का मासिक–चक्र सदैव नियमित नहीं रह पाता। इस उपाय के लिए बहुत अधिक प्रेरणा और अनुशासन की आवश्यकता होती है। इसकी असफलता दर भी बहुत ज्यादा है।

टर्मिनल उपाय

बच्चे न चाहने वाले दम्पतियों के लिए स्वैच्छिक रूप से नसंबदी करवाना एक सुस्थापित गर्भनिरोधक विधि है। महिला बंध्यकरण की अपेक्षा पुरूष बंध्यकरण ज्यादा सरल, सुरक्षित और सस्ता होता है। इसके बावजूद भारत में हाल में हुई कुल बंध्यकरण में 85 प्रतिशत बंध्यकरण महिलाओ ने कराया जबकि मात्र 10–15 प्रतिशत बंध्यकरण पुरूषों ने कराया।

अन्य गर्भ निरोधक उपायों की तुलना में बंध्यकरण के कई लाभ हैं। यह एक बार कराए जाने वाला उपाय है। इसके लिए प्रयोक्ता को निरंतर प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होती चूंकि यह गर्भधारण के प्रति सर्वाधिक सुरक्षा प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त स्वीकृत चिकित्सा मापदंडो के अनुरूप प्रक्रिया किए जाने पर इसमें समस्याएं उत्पन्न होने का खतरा कम ही रहता है और यह सर्वाधिक लागत प्रभावशाली प्रक्रिया है। ऐसा अनुमान है कि प्रत्येक विधि प्रति महिला में 1.5 से 2.5 जन्मों को रोकती है।

पुरूष बंध्यकरण (नसबंदी)

पुरूष नसबंदी या शुक्रवाहिकोच्छेदन (Vasectomy) अपेक्षाकृत सरल ऑपरेशन है। प्रशिक्षित डॉक्टरों द्वारा अंग विशेष को निश्चेतन करके प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में भी किया जा सकता है। यदि यथानियम आपूतित तकनीक (Aseptic technique) से आपरेशन किया जाए तो नसबंदी में मृत्यु का कोई खतरा नहीं होना चाहिए। बंधन (Clamping) के बाद वाहिनी (Vas) का कम से कम 1 से. मी. का टुकड़ा निकाल दिया जाता है। इसके बाद सिरों को बाँधकर फिर उन्हे वापिस (पीछे) मोड दिया जाता है और फिर इसी स्थिति में टाँक (सील) दिया जाता है ताकि कटे हुए सिरे एक दूसरे से दूर रहें। इससे बाद में पुनः नलिकाकरण (पुनः जुडने) का खतरा कम हो जाता है। यहाँ यह बताना महत्वपूर्ण है कि आपरेशन के बाद ग्राही एकदम बंध्य (अनुर्वरक) नही हो जाता जब कि प्रायः लगभग 30 स्खलन (ejaculation) न हो जाएँ। इस बीच की अवधि के लिए गर्भ निरोध के अन्य तरीके का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। यदि आपरेशन सही ढ़ग से किया जाए तो शुक्रावाहिकोच्छेदन शत प्रतिशत प्रभावशाली व सफल रहता है।

बंध्यकरण के बाद शुक्राणु का उत्पादन और हारमोन के उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उत्पादित शुक्राणु भक्षकाणुक्रिया (phagocytosis) द्वारा अन्तः ल्यूमिनेल में ही नष्ट हो जाते है। यह पुरूष जनन नली (genital tract) की सामान्य प्रक्रिया है लेकिन बंध्यकरण के बाद शुक्राणु विनाश की दर काफी बढ़ जाती है। उपकरणों, हस्पताल में भर्ती होना, डाक्टर–प्रशिक्षिण लागतवर के संदर्भ में शुक्रवाहिकोच्छेदन महिला नसबंदी (tubectomy) की अपेक्षा सरल, तीव्र और कम खर्चीली आपरेशन है। नलीय आवेष्टन (tubal ligator) और शुक्रावाहिकोच्दन का अनुपात 1:5 है।

महिला बंध्यकरण

महिला बंध्यकरण एक अन्तराल (interval) प्रक्रिया है जो प्रसवोत्तर (Postpartum) या गर्भपात के समय की जा सकती है। इसकी दो क्रिया विधियाँ — लेपरोस्कोपी (Laparoscopy) और लघु—उदरच्छेदन (Minilaparotomy) बहुत ज्यादा प्रचलित हो चुकी हैं।

लेपरोस्कोपी

यह महिला बंध्यकरण करने की एक तकनीक है, जिसमें लेपरोस्कोप नामक विशेष उपकरण को महिला के उदर के रास्ते शरीर में प्रवेश कराया जाता है। उदर वाले हिस्से को गैस (कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रस आक्साइड और हवा) द्वारा फुला दिया जाता है और उदर के भाग में उपकरण प्रवेश कर नलियों का भली भांति निरीक्षण किया जा सकता है। नलियों तक पहुँचने के बाद नलियों का रास्ता बंद करने के लिए उन पर क्लिप लगा दिए जाते हैं। यह आपरेशन केवल उन्हीं केन्द्रों में कराना चाहिए जहाँ महिला रोग विशेषज्ञ या प्रसूति रोग विशेषज्ञ हों। इस आपरेशन के कुछ विशिष्ट व आकर्षक पहलू हैं — कम समय में ऑपरेशन हो जाना, अस्पताल में थोड़ी देर के लिए ठहरना और छोटा सा घाव।

लघु उदरच्छेदन (Minilap Operation)

लघुउदरच्छेदन (abdominal tubertomy) उदर नसबंदी का ही रूपांतरण है। यह बहुत ही आसान क्रिया विधि है जिसमें उदर के बहुत छोटे से (मात्र 2.5 से 3 से.मी.) भाग में घाव करने की आवश्यकता होती है। यह क्रिया अंग — विशेष को निश्चेतन करके की जा सकती है। उदरच्छेद तकनीक महिला बंध्यकरण के लिए एक आमूल परिवर्तनकारी क्रिया विधि मानी जाती है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्तर और जन—प्रचार अभियान में भी यह क्रिया विधि समुचित पाई जाती है। सुरक्षा, सक्षमता और जटिलताओ से आसानी से निपट पाने के कारण अन्य उपायों की तुलना में यह लाभकारी है। लघुउदरच्छेदन प्रसवोत्तर नलीय बंध्यकरण के लिए अनुकूल है।

2.5 परिवार नियोजनेतर उपाय

परिवार नियोजनेतर (beyond family planning) शब्द बर्नड बेरेलसन और फिलिप एम. हाउसर के कारण लोकप्रिय हुआ। इन लेखकों के अनुसार कुछ गैर—परिवार नियोजन उपाय भी जनसंख्या की वृद्धि को नियंत्रित कर सकते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने लड़के व लड़कियों के विवाह की आयु को बढ़ाने की महत्ता पर बल दिया। चिकित्सीय गर्भपात यानी एम. टी. पी.; स्वैच्छिक और अनैच्छिक विच्छेद परिवार नियोजनेतर उपायों के उदाहरण हैं। आप भी हैरान होंगे कि यह जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश कैसे लगा सकते हैं। आइए इसे जानें।

विवाह की आयु बढ़ाना

परम्परानुसार भारत में यौवनारम्भ के तुरंत बाद ही लड़कियों का विवाह कर दिया जाता है। ऐसी महिलाओं की गर्भधारण / प्रजनन अवधि 30—35 वर्ष होती है चूँकी भारत में यौवनारंभ की माध्य आयु 12 से 14 वर्ष की आयु होती है। 1981 में भारत में महिलाओं के विवाह की माध्य आयु 18.3 वर्ष थी जिसके परिणामस्वरूप प्रति महिला की प्रजनन शक्ति लगभग 5 बच्चे थी—जो कि बहुत ज्यादा थी। कानूनी तौर पर, अगर महिलाओं के विवाह की आयु बढ़ाकर 20 या उससे अधिक कर दी जाए तो भविष्य में जन्मों में रोकथाम, अब भी की जा सकती हैं। तथापि, भारत में लड़कियों के विवाह की कानूनी आयु आजकल 18 वर्ष है जो समुचित नहीं हैं। इसके अलावा, यदि विवाह की आयु बढ़ाकर 20 वर्ष या उससे अधिक कर दी जाए तो इसके कई लाभ होंगे। उदाहरणार्थ, लड़कियों को जीवन में पढ़ने, शारीरिक विकास और मानसिक रूप से परिपक्व होने के अवसर मिलेंगें और शिशु और मातृक मृत्यु दर के खतरे कम हो जाएंगे। जब लड़कियों की विवाह की आयु बढ़ा दी जायगी तो मातृक और बाल स्वास्थ्य को सुनिश्चित किया जा सकेगा और उनकी दीर्घायु यर्थाथ में परिवर्तित हो जाएगी। अतः लड़कियो के विवाह की आयु को बढ़ाने की सलाह/शिक्षा जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाने के अलावा प्रबल परिवार नियोजनेतर उपाय भी है।

चिकित्सीय गर्भपात (Medical Termination of Pregnancy)

गर्भपात को सैद्धांतिक रूप से इस प्रकार परिभाषित किया जाता है— भ्रूण के जीवनक्षम (viable) होने

से पहले गर्भ का समापन। प्रशासनिक रूप से 28 हफ्तों के अंदर, जबकि भ्रूण का वजन लगभग 1000 ग्रा. होता है, गर्भपात कराया जा सकता है। जन्म नियंत्रण के अतिरिक्त महिलाओं द्वारा गर्भपात कराने के भिन्न भिन्न कारण हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि 1972 में भारत में चिकित्सीय गर्भपात (एम. टी. पी.) को कानूनी रूप से मान्यता दी गई है। तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को नियंत्रित करने हेतु कई देशों में स्वैच्छिक गर्भपात द्वारा अवांछित बच्चों के जन्म को रोका जा रहा है। वस्तुतः जापान के परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता का 75% श्रेय प्रेरित गर्भपात को जाता है। लैटिन अमरीका, विशेष रूप से चिली में जनसंख्या नियंत्रण का 30% श्रेय प्रेरित गर्भपात को जाता है। इसके अतिरिक्त यूरोप में अधिकांश स्कैन्डिनेवियन (Scandinavian) देशों में प्रेरित गर्भपात के माध्यम से जनसंख्या वृद्धि पर काफी हद तक नियंत्रण किया गया है। भारत में भी दक्षिण भारत तमिलनाडु के कौन्गू वैल्लाल्स (Kongu Vellalas) में जन्म दर न्यूनतम है जो प्रेरित गर्भपात के फलस्वरूप ही है। तथापि, भारत में गर्भपात निषिद्ध (taboo) ही माना जाता है और जो गर्भपात का आश्रय लेते हैं, अधिकाशंतः देशी और अवैज्ञानिक तरीके अपनाते हैं, जिससे महिलाओ का स्वास्थ्य व दीर्घायु प्रभावित होते हैं। फिर भी, 1972 तक भारत में प्रेरित गर्भपात (50,000) बहुत उपेक्षणीय था लेकिन 1990 तक यह बढ़कर 6,00,000 हो गया। निस्संदेह, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों व विभिन्न समुदायो और राज्यों में यह संख्या एक दूसरे से भिन्न है। लेकिन भारत में गर्भपात का, जन्म दर कम करने में ज्यादा योगदान नहीं हैं क्योकि गर्भपात कराने वाली महिलाओं के पहले ही कई बच्चे होते हैं।

2.6 परिवार नियोजन कार्यक्रम के निर्धारक

विकासशील देशों में परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता बहु–आयामी कारकों पर निर्भर करती है। जब एक देश विकसित हो जाता है, तब परिवार नियोजन के नकारात्मक कारकों की संख्या कम हो जाती है। दूसरी ओर, विकासशील देशों में पिछड़ापन और कई सांस्कृतिक अवरोधक परिवार नियोजन कार्यक्रम की उन्नति के निर्धारक हैं। विकासशील देशों में परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता निम्नलिखित पर निर्भर करती हैं :

1) परिवर्तन–कर्ता (Change agents), प्रशिक्षण, प्रेरणा, सक्षमता और उपलब्धता सहित व्यवस्था का स्तर/प्रकार
2) गर्भ निरोधकों और दवाइयों के लिए उपलब्ध संसाधन
3) नियमित और सामयिक आधार पर वाहनों और परिवहन सुविधाओं की उपलब्धता
4) सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओ सहित बहु–चैनलों के माध्यम से कार्यक्रम की पहुँच
5) कार्यक्रम (आई. ई. सी. कार्यक्रमों सहित), की उन्नति के लिए प्रयुक्त की जाने वाली कार्यनीतियाँ, प्रोत्साहन, इत्यादि
6) महिलाओं की शिक्षा के लिए दी जाने वाली विकासात्मक वरीयताएँ
7) स्वास्थ्य कार्यक्रम और व्यावहारिक पोषण कार्यक्रम
8) समुदाय को सम्मिलित करना और सामाजिक सहायता में उनकी सहभागिता इत्यादि

ये परिवार नियोजन के मात्र कुछ निर्धारक हैं लेकिन सूक्ष्म स्तर पर कई और कारक भी परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

2.7 स्वास्थ्य और पोषण पर परिवार नियोजन का प्रभाव

परिवार नियोजन कार्यक्रम महत्वपूर्ण स्वास्थ्य समस्याओं से संबंधित है। विकासशील देशों में मातृक और शिशु मृत्यु अत्यधिक है। उदाहरण के लिए, सूचित मातृक दर मैक्सिको में प्रति 1,00,000 जन्मों में 100 और कीनिया में 200 है और विकासशील देशों में कुल मिलाकर यह दर संभवतः 400 के आसपास है। इसकी तुलना में यू. एस. और यू. के में यह 10 के लगभग है। एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमरीका के भागों में जनन आयु की महिलाओ में 10 से 30 प्रतिशत महिलाओं की मृत्यु गर्भावस्था की समस्याओं के कारण होती है जबकि यू. एस. और यूरोप में यह 2% से भी कम है।

बच्चों में होने वाली मौतों की आवृत्ति भी स्तब्ध करने वाली है। कुछ एशियाई और अफ्रीकी देशों में मृत्यु दर एक वर्ष की आयु में प्रति 1,000 शिशु में 200 और एक से चार वर्ष की आयु में प्रति 1,000 में 35 है जो कि बहुत उच्च है। इसकी तुलना में यू.एस. और युरोप में मृत्यु दर प्रति 1,000 में 10 है और सौभाग्यवश एक से चार वर्ष के बच्चों में शून्य है। विकासशील देशों में पाँच वर्ष तक की आयु के बच्चों की संख्याँ कुल जनसंख्या का 14% है लेकिन प्रति वर्ष होने वाली मृत्यु में 80% बच्चे होते हैं। इसके विपरीत, विकसित देशों में पाँच वर्ष से कम आयु वाले बच्चों की संख्या कुल जनसंख्या का 8% है लेकिन यह प्रति वर्ष होने वाली मृत्यु का 3% से भी कम भाग है। विकसित देशों की तुलना में अफ्रीकी देशों में प्रत्येक चार बच्चों में से एक बच्चा किशोरावस्था में पहुँचने से पहले ही मृत्यु की गोद में सो जाता है। इसकी तुलना में विकसित देशों में 40 में से एक बच्चा किशोरवस्था से पूर्व मृत्यु को प्राप्त होता है।

अत्यधिक जोखिम ग्रस्त गर्भो (High Risk Pregnancies) को रोकना

यह परिवार नियोजन, मातृक और शिशु मृत्यु दर की रोकथाम का प्रभावी तरीका है क्योंकि यह दम्पत्तियों को अत्यधिक खतरे वाले गर्भो से बचाव करता है। विश्व से प्राप्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि मातृक या शिशु रूग्णता और मृत्यु चार विशिष्ट प्रकार की गर्भावस्थाओ में उच्चतम है।

ये गर्भावस्थाएँ इस प्रकार है :–

1) 18 वर्ष की उम्र से पहले गर्भवती होना

2) 35 वर्ष की उम्र के बाद गर्भवती होना

3) चार जन्मों के बाद गर्भवती होना, या

4) दो वर्ष से कम के अन्तराल में गर्भवती होना।

दूसरे शब्दो में, गर्भावस्था को जोखिम ग्रस्त वाली तभी माना जा सकता है यदि महिलाएँ " बहुत ही युवा हो" , " बहुत ही बड़ी उम्र की हो" या "बच्चे बहुत ज्यादा हो" और उनमें परस्पर अंतर बहुत कम हो। यूरोप और उत्तरी अमरीका के भागों में, हाल ही के दशकों में शिशु मृत्यु दर में एक चौथाई गिरावट आई है क्योंकि ज्यादा बच्चो वाली बडी उम्र की महिलाओ में बहुत ही कम बच्चे पैदा हुए हैं।

आज विकासशील देशों में होने वाली लगभग 56 लाख शिशु मृत्यु और 2,00,000 मातृक मृत्यु को रोका जा सकता है, यदि महिलाएं सुरक्षित वर्षो में पर्याप्त अंतराल पर बच्चों को जन्म देने व सीमित आकार के परिवार के लिए दृढ़ संकल्प हो जाएँ। उपरोक्त वर्णित संख्या आज होने वाली अनुमानित 1.0 करोड शिशु मृत्यु और 4,50,000 मातृक मृत्यु की लगभग आधी है और यह कम जन्मों और मृत्यु दर में गिरावट के संयुक्त प्रभाव को निरूपित करती है।

परिवार नियोजन : प्रभावी और सुरक्षित रोकथाम

आजकल परिवार नियोजन के तरीकों में व्यापक विकल्प उपलब्ध होने के कारण स्वास्थ्य कार्यक्रमों को समुचित उपाय चुनने का अवसर प्रदान करते हैं, जिससे जोखिम ग्रस्त गर्भावस्था को रोका जा सकता है। उदाहरण के लिए मौखिक गर्भ निरोधक, कंडोम और शुक्राणुनाशी विशेष रूप से प्रथम गर्भावस्था को रोकने के लिए और बच्चों में अंतर रखने के लिए बिल्कुल सही है। जबकि स्वैच्छिक बंध्यकरण ज्यादा उम्र वाले दम्पत्तियों के लिए, जो और बच्चों की इच्छा नहीं रखते, बहुत प्रभावी है।

आधुनिक परिवार नियोजन के उपाय सुरक्षित है। गर्भ निरोधक उत्पाद विषैल नहीं होते, गलत रूप से प्रयोग करने पर भी, विशेष रूप से समुदाय आधारित और अविकसित वितरण के संदर्भ में यह बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ उपायों जैसे कंडोम और शुक्राणुनाशी और प्राकृतिक परिवार नियोजन में दुर्घटनावश गर्भ ठहरने का एकमात्र महत्वपूर्ण खतरा बना रहता है। अन्य तरीकों से केवल कम खतरे हो सकते है। सरल मार्ग दर्शन का अनुसरण करके इनके खतरों को भी कम किया जा सकता है। सभी तरीको को अपनाते हुए, विकासशील देशो में बच्चों को जन्म देने की अपेक्षा परिवार नियोजन ज्यादा सुरक्षित है।

इसके अतिरिक्त, कुछ उपाय प्रजनन शक्ति के नियंत्रण के अलावा भी लाभपद्र हैं। कंडोम और शुक्राणुनाशी, रतिरोगों (vinereal disease) को फैलने से रोकते हैं। मौखिक गर्भ निरोधकों से कुछ मासिक धर्म संबंधी समस्याएँ कम हो जाती हैं और ये श्रोणि शोथ के रोगों, गर्भाशय की भित्ति के

कैंसर, अंडाशयों के कैंसर, रक्तहीनता (एनीमिया), गठिया संबंधी शोथ (rheumatoid arthritis) के प्रति सुरक्षा प्रदान करने में सहायक होते हैं।

मातृक और बाल स्वास्थ्य

विकसित देशों से काफी पहले से यह प्रमाण मिले हैं कि बहुत छोटी उम्र, बहुत बड़ी उम्र, बहुत ज्यादा और कम अन्तराल में गर्भावस्थाएँ मातृक और शिशु स्वास्थ्य के लिए संकट हो सकती हैं। अब इसके नए प्रमाण मिले हैं — वे प्रमाण जो आधुनिक जानपदिक रोग विज्ञान के अधिक सख्त मानकों को पूर्ण करते हैं — कि ये प्रतिकूल प्रभाव विकासशील देशों में काफी प्रखर हैं। सभी स्थितियों में किशोरावस्था में गर्भ धारण, 35 वर्ष की आयु के पश्चात् गर्भवती होना और वे महिलाएं जिनके कई प्रसव हो चुके हैं, उनमें जीवन घातक जटिलताएं जैसे रक्तस्त्राव, उच्च रक्तचाप होने की ज्यादा संभावनाएं बनी रहती हैं। कम अन्तराल में बच्चों का जन्म भी कुपोषण व अन्य मातृक स्वास्थ्य समस्याओं का एक कारण हैं। जोखिम ग्रस्त गर्भावस्थाओं में पैदा होने वाले शिशु ज्यादा संवेदनशील होते हैं। बच्चों के जन्म में दो वर्ष से कम का अतंर विशेष रूप से घातक होता है चूँकि इससे जन्म के समय बच्चे का वजन कम होता है और पोषण भी सही नही हो पाता, संभवतः स्तनपान की अवधि भी कम होती है और परिवार के संसाधनों और देखभाल के लिए ज्यादा प्रतिस्पर्धा होती है। शैशवावस्था से किशोरावस्था तक जो बड़े परिवारों या कम अन्तराल में पैदा हुए बच्चे होते है वे ज्यादातर बीमार रहते हैं, उनकी वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है और शैक्षिक उपलब्धता भी निम्न स्तर की होती है। निम्न सामाजिक — आर्थिक स्तर का भी समान प्रभाव पड़ता है, लेकिन जन्म — पद्धतियां भी महत्वपूर्ण हैं।

परिवार नियोजन कार्यक्रम मातृक और शिशु स्वास्थ्य की गारंटी नहीं दे सकते लेकिन परिवारों को ज्यादा खतरे वाली गर्भावस्था से सुरक्षित करते हुए जीवन को सुरक्षित और रूग्णता को कम कर सकते हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के अनिवार्य तत्व के रूप में परिवार नियोजन वर्ष 2000 तक "सभी के लिए स्वास्थ्य " के लक्ष्य को प्राप्त कर उसे यथार्थ रूप देने में सहायक हो सकता है।

बोध प्रश्न —2

1) रिक्त स्थान भरिए ।

1) भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम को ....से पहले सफलता मिली और......................अवधि में समस्याएँ आयी।

2) अस्थायी परिवार नियोजन उपाय ....के लिए होते हैं।

3) विश्व में.......................................परिवार नियोजन को अपनाने वाला पहला देश है।

4) ....और ....परिवार नियोजन के टर्मिनल उपाय है।

5) .... और ....कारकों से होने वाली समस्याओं के फलस्वरूप परिवार नियोजन असफल रहा।

6) एम. टी. पी. से अभिप्राय है..।

7) .... सप्ताह के अंत तक गर्भपात किया / कराया जा सकता है।

2.8 सारांश

आइए अब तक जो हमने पढ़ा उसे पुनः स्मरण करें। इस इकाई में परिप्रेक्ष्य नीति का सारांश प्रस्तुत किया गया और महिलाओं की विवाह की उम्र को बढ़ाने और प्रेरित गर्भपात के उदारीकरण की महत्ता पर बल दिया गया। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न सरकारों के अधीन परिवार नियोजन के ऐतिहासिक विकास पर चर्चा की।

परिवार नियोजन उपायों — अंतराल और टर्मिनल — की चर्चा की गई। इसके पश्चात् परिवार नियोजन कार्यक्रम के प्रमुख निर्धारकों पर चर्चा की गई। अंत में, संक्षेप में स्वास्थ्य और पोषण पर परिवार नियोजन के कुछ विशिष्ट आशयों पर प्रकाश डाला गया।

2.9 शब्दावली

गर्भपात : गर्भधारण के उत्पाद को उसके जीवनक्षम होने से पहले गर्भाशय से निष्कासन अर्थात् 28 वां सप्ताह के समाप्त होने से पहले।

परिवार नियोजनेत्तर उपाय : जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रण करने के लिए परिवार नियोजन के अतिरिक्त अन्य उपायो का प्रयोग–जैसे विवाह की उम्र।

मासिक प्रेरण : प्रोस्टागलेन्डिन द्वारा गर्भाशय से निषेधित अण्डाणु को निकालना।

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

उत्तर देने से पहले दोनो प्रश्नो के बारे में ध्यान से सोचिए। उत्तरों के संकेत इकाई में ही हैं लेकिन उनकी विस्तृत रुपरेखा नहीं दी गई।

बोध प्रश्न 2

i) 1976, 1976–80

ii) बच्चों में अंतराल

iii) भारत

iv) महिला नसबंदी, शुक्रवाहिकोच्छेदन,

v) कार्यक्रम, व्यक्ति की पृष्ठभूमि

vi) चिकित्सीय गर्भपात

vii) 28

इकाई 3 स्वास्थ्य और जीवन–स्तर संबंधी एशियाई परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 एशिया में स्वास्थ्य नीति और परिप्रेक्ष्य

3.3 स्वास्थ्य की अवसरचना और आगतें

3.4 स्वच्छता और जल आपूर्ति

3.5 कार्यनीतियां और शिक्षा

3.6 एशिया में जीवन स्तर

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.1 प्रस्तावना

एशियाई देशों चीन, थाईलैंड, इंडोनेशिया, श्रीलंका, दक्षिण कोरिया, मलेशिया और ताइवान ने जनसमुदाय के स्वास्थ्य की प्रोन्नति और उनके जीवन स्तर (quality of life) के सुधार में सार्थक उन्नति की है। इस संदर्भ में सिंगापुर और हाँगकाँग निस्संदेह समान रूप से महत्वपूर्ण हैं लेकिन तुलना की दृष्टि से ये दोनों बहुत ही छोटे देश हैं। भारत जैसे अन्य सह एशियाई देशों में स्वास्थ्य कार्यक्रमों को बढ़ावा देने के लिए इन कुछ देशों के अनुभव अति मूल्यवान होंगे। तथापि आंकड़ों की उपलब्धता एक बाधा है और इसीलिए इस इकाई में कुछ एक एशियाई देशों के स्वास्थ्य संबंधी तुलनात्मक परिप्रेक्ष्यों को देने का प्रयास किया गया है। ये देश हैं चीन, इंडोनेशिया, थाईलैंड, श्रीलंका दक्षिण कोरिया, बंगलादेश और भारत। इनमें भारत और बंगलादेश को छोड़कर शेष पाँचों देशों ने स्वास्थ्य प्रोत्साहन के कई पहलुओं में पर्याप्त उन्नति की है। जब आप इकाई को पढ़ेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि भारत और बंगलादेश स्वास्थ्य संबंधी उन्नति में काफी पीछे रह गए हैं। अतः एशिया के इन सात देशों में स्वास्थ्य परिप्रेक्ष्यों के बीच तुलना, सामान्य रूप से, एशिया संबंधी सार्थक और आदर्श जानकारी प्रदान करती है।

यह चर्चा इन देशों में स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों पर उपलब्ध आंकड़ों पर आधारित है जिसमे स्वास्थ्य चिकित्सा देखभाल पर व्यय कुल राष्ट्रीय उत्पाद, कुल घरेलू खपत के प्रतिशत के रूप में सुरक्षित पेय जल की उपलब्धता, डॉक्टर–जनसंख्या अनुपात, स्वास्थ्य–सेवाओं की उपलब्धता, स्वच्छता की उपलब्धता, टीकाकरण की सुविधा, प्रशिक्षित कार्मिको द्वारा गर्भवती महिलाओं और बच्चों की देखभाल, जन्म के समय कम वजन, प्रति व्यक्ति दैनिक कैलोरी अंर्तग्रहण, शिशु और शैशवावस्था में मृत्यु, मातृक मृत्यु, दीर्घायु, संचार प्रौद्योगिकी, पुरूषों की प्रतिशत के रूप में वयस्क महिला साक्षरता दर और गर्भ निरोधकों का प्रचलन – उपरोक्त सभी स्वास्थ्य आयाम सम्मिलित हैं। ये सभी पहलू मिलाकर विकसित और कम विकसित एशियाई देशों में जनसंख्या के स्वास्थ्य का चित्र और उनके जीवन के स्तर को प्रस्तुत करते हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप:

- चुने हुए एशियाई देशो मे स्वास्थ्य प्रोत्साहन से संवद्ध पहलुओं की नीतियों और कार्यक्रम की सूची बना सकेंगे
- सात प्रमुख एशियाई देशों के बीच स्वास्थ्य स्तर,जानपदिक रोग विज्ञानीय परिवर्तन

(epidemiological transition) और मृत्यु दरों के स्तरों की तुलना कर सकेंगें

- स्वास्थ्य प्रोत्साहन कार्यक्रमों में आगतों के स्वरूप की चर्चा कर सकेगें, और
- निम्नलिखित के संदर्भ में जीवन के स्तर का मूल्यांकन कर सकेंगे :

  क) संचार प्रौद्योगिकी, ख) महिला शिक्षा, ग) कैलोरी अंतर्ग्रहण
  घ) गर्भनिरोधक प्रचलन दर और च) जीवन प्रत्याशा

3.2 एशिया में स्वास्थ्य नीति और परिप्रेक्ष्य

एशिया के सात देशों चीन, इंडोनेशिया, थाईलैंड, दक्षिण कोरिया, श्रीलंका, बंगलादेश और भारत, ने 1950 के पूर्वार्द्ध में स्वतंत्र रूप से कार्य करना प्रारंभ किया। इसके अतिरिक्त इन देशों ने अपने–अपने राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रोत्साहन कार्यक्रमों को भी उसी दशक में आगे बढ़ाया। तथापि इन देशों ने विभेदात्मक स्वास्थ्य नीतियों का अनुसरण किया, विशेष रूप से स्वास्थ्य सेक्टर में निवेश के संदर्भ में, जो सामाजिक विकास के सेक्टर में उनकी विभेदात्मक सफलता का प्रमुख निर्धारक हो सकता है। इन देशों में जिनकी जानकारी उपलब्ध है, श्रीलंका और थाईलैंड ने स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 1 से 2 प्रतिशत हिस्सा खर्च किया जबकि शेष पांच एशियाई देशों ने इस पर एक प्रतिशत से भी कम खर्च किया। इन देशों में परिवारों की चिकित्सा देखभाल पर किए गए लघु–स्तर निवेशों में महत्वपूर्ण भिन्नता दृष्टिगत होती हैं। इस संदर्भ में थाईलैंड और दक्षिण कोरिया का नाम सूची में सर्वोपरि है। इन देशों ने अपनी परिवार आय का 5% हिस्सा स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर आंबटित किया।

इसमें यह आश्चर्यजनक है कि भारत का नाम इस सूची में तीसरे स्थान पर है जिसने स्वास्थ्य प्रोत्साहन कार्यक्रमों पर परिवार आय का केवल 3 प्रतिशत हिस्सा खर्च किया। इसके मुकाबले सिवाय चीन के,शेष प्रत्येक एशियाई देश ने इसके लिए 2 प्रतिशत खर्च किया। चीन में वहां की सरकार द्वारा अधिकांश स्वास्थ्य सुविधाएं निशुल्क प्रदान की जाती हैं। निशुल्क चिकित्सा देखभाल के बावजूद चीन के निवासी अपनी परिवार आय का एक प्रतिशत हिस्सा चिकित्सा देखभाल पर व्यय करते हैं। इस प्रकार, इन एशियाई देशों की राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीतियों में सरकार के साथ–साथ लोगों द्वारा भी अंतरात्मक निवेश पर बल दिया गया है। जैसाकि आप अगले भाग में पढ़ेगे किस प्रभावी स्वास्थ्य नीतियों के माध्यम से जनसंख्या के जीवन स्तर को सुधारने में चीन ने एक उपलब्धि हासिल की हैं। इसका कारण है, अन्य एशियाई देशों की तुलना में, चीन ने अपने सर्वागीण विकास कार्यक्रम में से स्वास्थ्य प्रोत्साहन कार्यक्रमों को उच्च वरीयता दी है।

3.3 स्वास्थ्य की अवसंरचना और आगतें

जैसा कि आप जानते हैं कि स्वास्थ्य की अवसंरचना में कई पैरामीटर शामिल हैं जिन का लोगों के स्वास्थ्य स्तर पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य कार्मिक अर्थात् डॉक्टर–जनसंख्या अनुपात, नर्स–जनसंख्या अनुपात, परिधीय कार्यकर्त्ता–जनसंख्या अनुपात, बिस्तर–जनसंख्या अनुपात, अस्पताल की दूरी, परिवहन सुविधाएं, विशेषज्ञों की उपलब्धता, अति विशेषता वाले (Super Specialities hospital) अस्पताल की सुविधाएं आदि जैसे पहलू इन कारकों में शामिल हैं। इन कारकों में से आप देखेंगे कि कुछ उच्चवरीयता प्राप्त कारकों की यहाँ चर्चा की गई है।

स्वास्थ्य वितरण कार्मिक (Health Delivery Personnel)

(क) डॉक्टर : अधिकांश एशियाई देशों में कर्मचारियों के पदानुक्रम, अस्पतालों के प्रकार और मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों में न्यूनाधिक रूप से समानता पाई जाती हैं। तथापि, भारत और चीन में स्वास्थ्य देखभाल के क्षेत्र में मानव संसाधन विकास के लिए अधिक सुविधाएं उपलब्ध हैं, लेकिन सुविधाएं शेष एशियाई देशों में बहुत अपर्याप्त हैं। अतः ये छोटे एशियाई देश अपने अभ्यर्थियों को आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में प्रशिक्षण दिलाने के लिए भारत, इग्लैंड और अन्य विकसित देशों में प्रतिनियुक्त करते हैं। हालांकि उनके अपने देश में स्वास्थ्य के क्षेत्र में परिधीय कार्यकर्त्ताओं (Peripheral workers) को प्रशिक्षण देने के लिए सुविधाएं उपलब्ध हैं। अधिकांश छोटे एशियाई देशों में मानव संसाधन विकास में देखी गई इन कमियों के बावजूद वे भारत और चीन जैसे बड़े देशों की स्वास्थ्य वितरण प्रणाली से पीछे नहीं है।

तालिका 3.1 : डॉक्टर और नर्स जनसंख्या अनुपात

देश	डॉक्टर प्रति जनसंख्या	नर्स
चीन	1000	1710
भारत	2520	1700
इंडोनेशिया	9460	1260
थाईलैंड	6290	710
दक्षिण कोरिया	1160	580
बंगलादेश	6730	8980
श्रीलंका	5520	1290

स्रोत : जॉन रौस और साथी, 1988 इन फैमिली प्लानिंग एंड चाइल्ड सर्वाइवल, कोलंबिया यूनिवर्सिटी (सेन्टर फार पापुलेशन एंड फैमिली हैल्थ)

जैसा कि आप ऊपर तालिका में देख सकते हैं चीन और दक्षिण कोरिया में क्रमशः 1000 और 1160 की संख्यों के लिए एक डॉक्टर जबकि इंडोनेशिया, बंगलादेश, थाईलैंड, श्रीलंका और भारत में क्रमशः 9460, 6730, 6290,5520, 2520 की आबादी के लिए भी एक ही डाक्टर उपलब्ध है। दूसरे शब्दों में, भारत में डॉक्टरों की संख्या चीन और दक्षिण कोरिया के डॉक्टरों की संख्या की आधी भी नहीं है। यह किसी भी देश में बेहतर स्वास्थ्य वितरण प्रणाली के लिए सर्वाधिक महत्वपूण बुनियादी सुविधा हैं। अतः ग्रामीण जनसंख्या में सेवा हेतु डॉक्टरों की अपर्याप्त संख्या अधिकांश एशियाई देशों में सामान्य निम्न स्वास्थ्य पद्धति के लिए प्रमुख कारक हैं। हालाँकि इस संदर्भ में भारत भाग्यशाली है चूंकि उसका स्थान चीन और दक्षिण कोरिया के बाद आता हैं लेकिन हमारे देश में डॉक्टरों का वितरण सही नहीं है क्योंकि अधिकांश (दो–तिहाई) डॉक्टर शहरी इलाके में केंद्रित हैं जहॉ वे कुल जनसंख्या के मात्र 1/5 भाग को ही सेवा प्रदान कर पाते हैं।

ख) **नर्स** : एशियाई देशों में नर्स जनसंख्या की उपलब्धता के संबंध में दक्षिण कोरिया छह देशों में सर्वोपरि है जहाँ प्रत्येक 580 व्यक्तियों पर एक नर्स है जब कि बंगलादेश में नर्स–जन संख्या का अनुपात 1:8980 है। आश्चर्यजनक बात यह है कि भारत और चीन में नर्स–जनसंख्या अनुपात मध्यम (moderate) (1:1700) है। रोचक बात यह है कि छोटे एशियाई देशों में जैसे चीन, इंडोनेशिया (1:1260) और श्रीलंका (1:1290) में नर्स–जनसंख्या अनुपात तो अनुकूल है। स्वास्थ्य वितरण प्रणाली के क्षेत्र में प्रस्तुत सेवा असंतोषजनक है। क्या हमें इस समस्या के कारकों की पहचान कर युद्धस्तर पर उसका समाधान नहीं करना चाहिए?

ग) **परिधीय कार्यकर्त्ता (Peripheral Worker)** : परिधीय स्तर पर कार्यक्रम की सुलभता देश में नियुक्त परिधीय कार्यकर्त्ताओं की संख्या और प्रकार पर काफी हद तक निर्भर करती है। चीन में ऐसी सेवाएं सुगठित हैं और परिधीय कार्यकत्ताओं, जिन्हें बेअर–फुट (bare-foot) डॉक्टरों (पैदल चलने वाले डॉक्टर) के नाम से जाना जाता है – के माध्यम से कार्यान्वित किया जाता है। ऐसी ही स्थिति दक्षिण कोरिया में भी दृष्टिगत होती है जो कि अन्य एशियाई देशों में नहीं है। हालांकि भारत में देशी 'दाइयां' और इंडोनेशिया में "दुकुन" (Dukuns) बहुत संख्या में है, परन्तु अप्रशिक्षित होने से प्रभावशाली रूप से इनकी सेवाएं नहीं ली जाती हैं। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य कार्यक्रमों में ये लोग सुव्यवस्थित ढंग से शामिल नहीं हैं। साथ ही एशिया में भारत एक देश है जहाँ प्रशिक्षित नर्सो और डाक्टरों की संख्या बहुत ज्यादा है किन्तु उनमें से अधिकांश भारत से अन्य देशों में सेवारत हैं। ऐसी विशिष्ट स्थिति अधिकांश एशियाई देशों में नहीं है। अतः क्या हमें ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में आवश्यकता आधारित न्यायसंगत ढंग से प्रशिक्षित श्रम शक्ति की सफलतापूर्वक उपयोगिता, श्रम शक्ति नियोजन और स्वास्थ्य के क्षेत्र में मानव संसाधन विकास जैसे तथ्य पर पुनः विचार नहीं करना चाहिए, जैसा कि चीन में सफलतापूर्वक किया गया है?

संबद्ध व्यक्तियों द्वारा वर्तमान स्वास्थ्य सुविधाओं की उपयोगिता में एक अन्य समस्या है जो एशियाई देशों में देखी गई है। प्रत्येक देश में यह भिन्न भिन्न है। तथापि अधिकांश एशियाई देशों में,

चीन के अतिरिक्त, 50 प्रतिशत या उससे ज्यादा स्वास्थ्य सुविधाएं लोगों को नहीं मिल पाती। इससे स्वास्थ्य के क्षेत्र में किए गए विभिन्न निवेश और आगतें व्यर्थ हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, जहाँ चीन में तीन–चौथाई स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रयोग लोगों द्वारा किया जाता है, वहाँ भारत में मुश्किल से सुविधाओं का एक तिहाई भाग ही प्रयुक्त होता है। निस्संदेह, भारत के ही राज्य में इसमें काफी भिन्नता पाई जाती है। केरल में कुल जनसंख्या के 80 प्रतिशत से भी अधिक लोग इन सुविधाओं से लाभान्वित हो रहें हैं, जबकि उत्तर प्रदेश में यही सुविधा कुल जनसंख्या का पाँचवा हिस्सा भी प्रयोग में नहीं ला पा रहा है। इसके अलावा शहरी क्षेत्रों में अत्यधिक संख्या में स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाएं बहुत ही अपर्याप्त हैं। क्या इस संबंध में हमें कुछ करना नहीं चाहिए?

कुछ एशियाई देशों, विशेषकर भारत में, स्वास्थ्य आगतों में, कमियाँ पाई जाती हैं। जहाँ एक ओर चीन ग्रामीण परिधीय स्वास्थ्य वितरण प्रणाली को सर्वोच्च वरीयता देता है, वहां भारत में अधिकतर आगतें शहरी अस्पतालों और अति विशेषता वाले अस्पतालों के सृजन में प्रदान की जाती हैं। संभवतः अधिकांश रोगियों को इस अति विशेषता सुविधाओं की आवश्यकता ना हो। अतः ग्रामीण क्षेत्रो में रहने वाली अधिकांश जनसंख्या को नजर अंदाज करके अल्पसंख्यक शहरी जनसंख्या पर ज्यादा पूंजी निवेश करना कहाँ तक उचित है? एशिया के दो सबसे बड़े देशों, चीन और भारत में, देश के कुछ ही हिस्सों में स्वास्थ्य वितरण की अच्छी देखभाल की जाती हैं, जबकि अन्य किसी में ऐसा नहीं है। इसके साथ ही साथ, कुछ क्षेत्रों में जहां जातीय अल्पसंख्यक (उदाहरणार्थ चीन में) और जनजातीय (उदाहरणार्थ भारत में) लोग रहते हैं, वहां स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रम सही रूप से कार्यान्वित नहीं होते। ऐसी ही कमियाँ अन्य एशियाई देशों में भी देखी जा सकती है।

स्वास्थ्य कार्यक्रमों के आगतों में टीकाकरण, मौखिक पुनः जलीकरण उपचार (ORT), स्वास्थ्य सेवाओं की सुलभता और संचार प्रौद्योगिकी शामिल हैं। ये सभी आगतें प्रत्येक एशियाई देशों में भिन्न–भिन्न है। निम्नलिखिकत तालिका एशियाई देशों में स्वास्थ्य वितरण प्रणाली के माध्यम से प्रस्तुत आगतों को दर्शाती है।

तालिका 3.2 : विभिन्न सेवा आगतें–टीकाकरण, मौखिक पुनः जलीकरण उपचार (ORT), प्रयोग की दर और स्वास्थ्य सेवाओं की सुलभता

	टीके लगे लोगों का प्रतिशत (1990-91)						
	1 वर्ष के बच्चे				गर्भवती	ORT के प्रयोग की दर (1987-91)	स्वास्थ्य देखभाल सेवाओ की उपलब्धता वाली जनसंख्या का % (1988-90)
	टी. बी.	डी.पी.टी.	पोलियो	खसरा	टिटेनस		
चीन	96	95	96	95	—	54	90
भारत	92	89	89	86	80	14	—
इंडोनेशिया	87	83	82	78	52	45	80
थाईलैंड	99	90	91	79	76	43	70
दक्षिण कोरिया	76	80	79	96	—	—	45
बंगलादेश	86	60	60	53	78	26	40
श्रीलंका	85	83	83	76	50	76	93

[स्रोत : द स्टेट ऑफ वर्ल्डस चिल्ड्रन; यूनीसेफ, 1993]

सातों एशियाई देशों में स्वास्थ्य प्रोत्साहन कार्यक्रमों की विविध आगतों की तुलना इन देशों में निरोधक और अनिवार्य सेवाओं और सेवा सुविधाओं का चित्र प्रस्तुत करती है। निरोधक देखभाल (जैसे टीकाकरण कार्यक्रमों) के विषय में, जो कार्यक्रम बी.सी.जी. के टीके से तपेदिक की रोकथाम से संबंधित हैं, वे इन अधिकांश देशों में सर्वव्यापक हैं। इसी प्रकार बंगलादेश को छोड़कर अन्य अधिकांश देशों में डी.पी.टी., पोलियो और खसरे के लिए टीकाकरण व्यापक रूप से व्याप्त है। इन सभी निरोधक उपायों में भारत ने अधिकांश प्रगतिशील एशियाई देशों के समकक्ष उन्नति की है, चीन

को छोड़कर, जहाँ इन सभी कार्यक्रमों में सफलता दर लगभग शत प्रतिशत है।

इसके अलावा माँ और बच्चे के जीवन को खतरे से बचाने के लिए गर्भवती महिलाओं को टिटेनस के टीके का प्रावधान और अतिसार के कारण होने वाले निर्जलीकरण से बच्चों की मृत्यु को रोकने के लिए मौखिक पुनः जलीकरण उपचार का संवर्धन अभी तक कई देशों में सर्वव्यापक नहीं हुए हैं। वस्तुतः कई देशों में टीककरण की सुविधा सिर्फ 25–75 प्रतिशत लोगों तक ही सीमित हैं। साथ ही सामान्यतः बंगलादेश, दक्षिण कोरिया और भारत में स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की संपूर्ण उपलब्धता वास्तविक अनिवार्यताओं से भी कम पाई गई है। इसके विपरीत चीन, श्रीलंका, इंडोनेशिया और थाईलैंड इन कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने में सर्वाधिक सफल रहे। इस प्रकार एशिया के जिन देशों को स्वास्थ्य देखभाल में काफी सफलता मिली, वे हैं चीन, श्रीलंका, इंडोनेशिया और थाईलैंड। तथापि भारत, दक्षिण कोरिया, बंगलादेश और अन्य ऐसे एशियाई देशों को स्वास्थ्य प्रोत्साहन कार्यक्रमों विशेष रूप में संचरणीय रोगों की रोकथाम, की सफलता के लिए काफी लम्बा सफर तय करना है।

3.4 स्वच्छता और जलआपूर्ति

स्वच्छता और जलआपूर्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जो ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य के स्तर को प्रभावित करते हैं। जनसंख्या दबाव (सघनता) के परिणामस्वरूप इनके स्तर और उपलब्धता का पतन होता है। इसके अतिरिक्त, ये एक देश के विकास के स्तर को भी दर्शाते हैं। वस्तुतः स्वच्छता का स्तर और जलआपूर्ति की उपलब्धता अधिकांश विकासशील देशों में बहुत ही असंतोषजनक है जबकि विकसित देशों में ऐसा नहीं हैं। बल्कि, अधिकांश महानगरों यहाँ तक कि विकसित देशों में तीव्र शहरीकरण और उद्योगीकरण के कारण स्वच्छता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हैं। शिक्षा और आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप, विकसित देशों में स्वच्छता में सुधार हुआ लेकिन विकासशील देशों में उनकी जनसंख्या के निम्न सामाजिक विकास के कारण यह बहुत ही निम्न रही। इसी प्रकार, जनसंख्या की तीव्र वृद्धि और पारिस्थितिकी परिवर्तनों के कारण जलापूर्ति (सुरक्षित पीने योग्य जल) एक दुलर्भ वस्तु बनता जा रहा है। जब जनसंख्या तेजी से बढ़ी और वनोन्मूलन के कारण पारिस्थितिकी में बाधा आई, तब सुरक्षित पीने योग्य जल दुलर्भ बन गया। यूनेस्को के अनुसार, 1850 में प्रति व्यक्ति ताजे जल की उपलब्धता प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति 33,000 क्यूबिक मीटर थी, जो घटकर प्रति व्यक्ति 8500 क्यूबिक मीटर के बहुत अल्प स्तर तक पहुंच गई है (यूनेस्को, 1991 : 43)। यह तथ्य अधिकांश एशियाई देशों के मामले में सही है। उदाहरण के लिए भारत के दक्षिणी हिस्से में कावेरी नदी का सूखना पारिस्थितिदी निम्नीकरण का एक सजीव उदारहण है जिससे कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यों में स्वच्छता की स्थिति पर प्रभाव पड़ा।

तालिका 3.3 : सुरक्षित जल और स्वच्छता की सुलभता वाले जनसंख्या का प्रतिशत

देश	जनसंख्या प्रतिशत जिन पर निम्नलिखित सुलभता है	
	सुरक्षित जल (1988–89)	स्वच्छता (1986–87)
चीन	74	96.4
भारत	46	12.6
इंडोनेशिया	60	43.6
थाईलैंड	74	62.4
दक्षिण कोरिया	75	100.00
बंगलादेश	आँकड़े उपलब्ध नहीं	आँकड़े उपलब्ध नहीं
श्रीलंका	60	46.9

स्रोत : इन्टरनेशनल हयूमेन सफरिंग इन्डेक्स 1992 पर जनसंख्या संकट समिति द्वारा तैयार भित्ति चार्ट से ।

तालिका 3.3 में सातों एशियाई देशों में सुरक्षित जल की उपलब्धता की तुलना को देखें तो इसमें आप महत्वपूर्ण भिन्नता पाएंगे। सुरक्षित पीने योग्य जल के प्रावधान के संबंध में दक्षिण कोरिया, चीन और थाईलैंड जैसे देश सबसे ऊपर हैं, जहां 75 प्रतिशत जनसंख्या को सुरक्षित पीने योग्य जल मिलता है। जबकि भारत में आधी से भी कम जनसंख्या (46 प्रतिशत) को पीने योग्य जल उपलब्ध हो पाता है। बंगलादेश को छोड़ अन्य सभी एशियाई देश अपनी जनसंख्या के लिए जीवन की इन मूलभूत आवश्यकताओं को प्रदान करने में भारत से भी आगे हैं। दूसरे शब्दों में, भारत और बंगलादेश पीने योग्य सुरक्षित जल प्रदान कराने में अन्य एशियाई देशों की तुलना में बहुत ही कम विकसित हैं। आप भी सोच रहे होंगे कि स्वास्थ्य प्रोत्साहन में पीने योग्य जल किस प्रकार महत्वपूर्ण हैं ? जैसा कि आप जानते हैं अतिसार और पेचिश (जो कि जल से होने वाली बीमारियाँ हैं), विकासशील देशों में शिशुओं की मृत्यु का प्रमुख कारण है। इसके अतिरिक्त हैजा महामारी भी जल या भोजन के कारण होती है। इसी प्रकार पोलियो, टाइफाइड आदि जल और भोजन के माध्यम से फैलते हैं। संभवतः अब आप यह समझ गए होंगे कि जल से होने वाली बीमारियाँ अन्य एशियाई देशों की तुलना में भारत और बंगलादेश में ही ज्यादा क्यों होती हैं?

स्वच्छता के स्तर से किसी भी देश का विकास प्रतिबिंबित होता है। विकासशील देशों की अपेक्षा विकसित देशों में स्वच्छता का स्तर बेहतर है। निस्संदेह इससे जनसंख्या की सांस्कृतिक विविधता भी झलकती है, क्योंकि विकास के अतिरिक्त, स्वच्छता भी जनसंख्या की संस्कृति द्वारा प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए केरल इससे विशेष रूप से मालाबार क्षेत्र के कुरिचिया जातियों में और कुछ ब्राह्मण सम्प्रदायों (जो प्रायः पढ़े–लिखे होते हैं), में स्वच्छता उच्च कोटि की होती है। ऐसी ही स्थिति कई एशियाई देशों, विशेष रूपसे थाईलैंड, चीन और दक्षिण कोरिया में भी पाई जाती है।

स्वच्छता से लोगों के स्वास्थ्य स्तर को बढ़ावा मिलता है। स्वास्थ्य और स्वच्छता के संबंध में कैसे जागरूकता विकसित की जाए, यह हमारी आज का प्रमुख विचारणीन विषय होना चाहिए, क्योंकि स्वच्छता जनसंख्या की स्वास्थ्य स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं जिसके कारण कई स्थानीय रोग (endemic diseases) हो जाते हैं। हैजा और कई अन्य संक्रमणीय बीमारियों को केवल स्वच्छता में सुधार लाकर नियंत्रित किया जा सकता है। आइए अब देखें कि एशियाई देशों में स्वच्छता की दशा कैसी है?

एशियाई देशों में, जापान को छोड़कर दक्षिण कोरिया और चीन अन्य एशियाई देशों की तुलना में स्वच्छता में सर्वोपरि है। इनके बाद थाईलैंड का नम्बर आता है, जिसने बेहतर पर्यावरणीय स्वच्छता को बढ़ावा देने में उल्लेखनीय उन्नति की हैं। भारत (13.0%) और बंगलादेश इस मामले में सबसे नीचे हैं। अन्य एशियाई देशों की तुलना में यहाँ स्वच्छता सुविधाएं बहुत ही निम्न स्तर की हैं। अब आपको एशिया के विकासशील देशों के संदर्भ में स्वच्छता संबंधी स्थिति स्पष्ट हो गई होगी और विश्व के विकसित देशों की तो बात ही क्या है? इसीलिए भारत में स्वास्थ्य के प्रोत्साहन हेतु स्वच्छता में सुधार को सर्वाधिक वरीयता दी जाती है।

3.5 कार्यनीतियां और शिक्षा

विभिन्न एशियाई देशों द्वारा स्वास्थ्य वितरण प्रणाली के लिए भिन्न–भिन्न कार्यनीतियां अपनाई गई हैं। इस संदर्भ में चीन का अनुभव अद्वितीय है। चीन द्वारा अपनाई गई दो महत्वपूर्ण कार्यनीतियां भारत सहित शेष एशिया देशों द्वारा अपनाने योग्य है। उनके पास कामयाब "बेअर–फुट" डॉक्टर हैं जो चीन की अधिकांश जनसंख्या तक पहुँच सकते हैं। ये "बेअर–फुट" डॉक्टर आयुर्विज्ञान में डिप्लोमा प्राप्त डाक्टर होते हैं। वस्तुतः इन्हें जीवन के सभी व्यवसायों में से चुनकर आयुर्विज्ञान में तीन वर्षों का समेकित प्रशिक्षण दिया जाता है जिसमें आयुर्विज्ञान की ऐलोपैथिक पद्धति के साथ–साथ चीन की स्वदेशी आयुर्विज्ञान पद्धति भी शामिल हैं। चीन में जनसंख्या की जरूरतों की पूर्ति हेतु "बेअर–फुट" डॉक्टरों की सेना है, (2) चीन की वितरण पद्धति की दूसरी नवीनता है – परिवार शैय्या पद्धति (family bed system)। चीन में अस्पतालों में आने वाले रोगियों की जाँच की जाती है और निदान के पश्चात् अधिकांश रोगियों को उनके घर वापिस भेज दिया जाता है और उन्हें घर पर "बेअर–फुट" डॉक्टरों द्वारा सेवाएं मुहैया कराई जाती हैं। ऐसी सेवा से अधिक अस्पतालों को खोलने की आवश्यकता नहीं रहती। इसके अतिरिक्त ऐसी सेवा रोगियों को मनोवैज्ञानिक रूप से एक विश्वास प्रदान करती है जो रोगी के इलाज के लिए प्रमुख रूप से पूर्वापेक्षित है। चीन में अनुसरण की जाने वाली इन सेवा पद्धतियों, का अनुकरण हमारे देश में भी होना चाहिए। आयुर्विज्ञान

की भिन्न–भिन्न पद्धतियों के प्रयोग की नीति विभिन्न एशियाई देशों में भिन्न–भिन्न पाई जाती है। इस संदर्भ में चीन एक बार फिर अग्रणी है। उदाहरण के लिए, ऐक्यूपंचर न केवल चीन में लोकप्रिय है प्रत्युत्तर विभिन्न एशियाई देशों में भी इसका अभ्यास किया जा रहा हैं। इसी प्रकार स्वदेशी जड़ी बूटियों और बायोमेडिसिन–जैसे जिनसेंग (ginseng) जो दीर्घायु के लिए अत्यधिक प्रभावी मानी जाती है और बहुत ही प्रसिद्ध है–का प्रयोग चीन और कोरिया में बहुत प्रचलित है। वस्तुतः चीन का आहार अपने आप में अच्छे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त है, क्योंकि वे दोपहर और रात्रि के भोजन में मात्र एक प्याला चावल खाते हैं और शेष मछली, मांस और सब्जियों उनकी अनुपूरक है। दक्षिण कोरिया और इंडोनेशिया में भी स्वास्थ्य वितरण प्रणाली में परिधीय स्वदेशी कार्यकर्त्ता बहुत लोकप्रिय और उपयोगी हैं। वे भी आयुर्विज्ञान की स्वदेशी पद्धति और सेवा का प्रयोग करते हैं। भारत में ऐलोपैथिक पद्धति के अतिरिक्त आयुर्वेद, होम्योपैथिक और यूनानी पद्धतियां भी प्रचलित हैं। केरल और गुंजरात को छोडकर भारत के अधिकांश राज्यों में इन विभिन्न आयुर्विज्ञान पद्धतियों का सही रूप से उपयोग नहीं होता। वस्तुतः इन पद्धतियों की कई दवाएं स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए काफी प्रभावशाली होने के साथ–साथ लागत प्रभावी भी हैं। इसलिए क्या हमें आयुर्विज्ञान की इन स्वदेशी पद्धतियों की अनदेखी करनी चाहिए और इनके प्रति हमारा प्रतिकूल रवैया होना चाहिए? जब हम पूरे भारतवर्ष में आयुर्विज्ञान की इन पद्धतियों की उपयोगिता को सुधार लेंगे तो हम भी चीन और दक्षिण कोरिया की भांति कुछ रोगों और महामारियों पर नियंत्रण पा लेंगे।

स्वास्थ्य शिक्षा : स्वास्थ्य शिक्षा को, लोगों की स्वास्थ्य जीवन शैलियों और व्यवहार के विकास को बढ़ावा देने हेतु सामाजिक और स्वास्थ्य विज्ञान को लागू करने की कला के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। सूचना, संप्रेषण, उत्प्रेरण और संचार माध्यम स्वास्थ्य शिक्षा के अनिवार्य और अभिन्न घटक हैं। ये लोगों को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होने और अच्छे स्वास्थ्य की मान्यता की भावना को विकसित करने में सहायक होते हैं। इसमें–शैक्षिक "कार्य नीतियों" की योजना बनाने में, बहुमाध्यम प्रचारों का रूपांकन करने में, जन–संचार और इलैक्ट्रानिक का प्रभावशाली प्रयोग और लोक संचार क्रियाओं में–बहुअनुशासनिक टीम कार्य शामिल है। यह विभिन्न पृष्ठभूमियों के लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए उनके साथ काम करने की कला है। अपने कार्यों और संसाधनों तथा अन्य सेक्टरों से प्राप्त संसाधनों को गतिशील करके इसका प्रमुख कार्य लोगों के लिए भिन्न–भिन्न पर्यावरणों में समुचित शैक्षिक अवसरों का सृजन करना है, ताकि वे अपने निर्णय स्वयं ले सके और उन्हें कार्यान्वित कर सकें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, वह घर, बाजार, और मीटिंग स्थल (समुदाय स्वास्थ्य शिक्षा), स्कूल (स्कूल/विद्यार्थी स्वास्थ्य शिक्षा), कार्य स्थल (औद्योगिक स्वास्थ्य शिक्षा), अस्पताल (रोगी शिक्षा) का प्रयोग करते हैं और लक्ष्य समूहों और समस्याओं के अनुरूप सही तरीके और माध्यम नियुक्त करते हैं (रामकृष्ण, 1992 : 18)।

स्वास्थ्य प्रोत्साहन को काफी हद तक स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता हैं। यह स्वास्थ्य के प्रोत्साहन के लिए लागत प्रभावी, परेशानी रहित और उपयुक्त सेवा है। तथापि, कई एशियाई देशों में यह भिन्न–भिन्न तरीकों से प्रोत्साहित की जाती है और इसकी सफलता दरें भी भिन्न–भिन्न हैं।

यद्यपि अधिकांश एशियाई देशों की स्वास्थ्य नीतियों से संबंधित दस्तावेजों में स्वास्थ्य शिक्षा को वरीयता दी गई हैं, किन्तु कार्यान्वयन अवस्था में स्वास्थ्य शिक्षा को अनदेखा कर वरीयता निवार्य (curative) सेवाओं को दी जाती है। इसका सबसे बड़ा कारण है त्रुटिपूर्ण मानव संसाधनों का विकास। यदि स्वास्थ्य शिक्षा को गंभीरता पूर्वक बढ़ावा दिया जाए, तो रूग्णता और मर्त्यता को प्रभावशाली ढंग से रोका जा सकता है। वास्तव में मृत्यु दर की बदलती हुई पद्धतियों के संदर्भ में स्वास्थ्य शिक्षा और उसकी महत्ता न केवल अभिवृद्ध हो रही है बल्कि एड्स और कैंसर जैसी घातक बीमारियों की रोकथाम के लिए आवश्यक भी बन गई है।

समाज में सांस्कृतिक प्रथाएं लाभप्रद अथवा हानिकारक हो सकती हैं। स्वास्थ्यकर परिस्थितियों में जीवन यापन के लिए समुचित शिक्षा प्रदान करने हेतु स्वास्थ्य शिक्षा को ऐसी लाभप्रद प्रथाओं की पहचान करनी चाहिए। इस संदर्भ में, जीवन शैली संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। वस्तुतः आज के समय जीवन शेली कैंसर, एड्स, हृदय धमनी बीमारियां और मधुमेह के प्रमुख निर्धारक तय करती हैं। यह तो सर्वविदित है कि धूम्रपान और तम्बाकू खाने से मुंह का कैंसर हो जाता है। यौन स्वच्छता, ग्रीवा कैंसर से संबद्ध है। इसी तरह मुख की स्वच्छता मुख के कैंसर से संबंधित हैं और रेशेदार आहार के अंतर्ग्रहण से कोलन कैंसर पर काबू पाया जा सकता है। ये सभी सांस्कृतिक रूप से निर्धारित हैं।

इसी तरह मूल्ययौन प्रचलन, स्वच्छता तथा कंडोम का प्रयोग एड्स के होने या न होने को सुनिश्चित करते हैं। शुचिता (chasity) से जुड़े मूल्य कई एशियाई देशों में सुविदित हैं। हालांकि इसकी डिग्री प्रत्येक समुदाय में अलग–अलग है। ऐसी मूल्य पद्धति सकारात्मक सांस्कृतिक लक्षण हैं जो एड्स की रोकथाम करता है।

अन्य प्रमुख रोग, जैसे हृद्धमनी समस्या अधिकांशतः जीवन–शैली कारकों के कारण ही होते है। उदाहरण के लिए, अत्यधिक मात्रा में वसा का अंतर्ग्रहण, प्रतिष्ठा व वैभव का प्रतीक मोटापा, खान–पान की आदतें, ज्यादा आरामदायक और अल्पश्रम जीवनयापन, ये सभी सांस्कृतिक पहलू हैं जो हृद्धमनी बीमारियों को बढ़ावा देते हैं। दूसरी ओर शाकाहरी आहार (विशेष रूप से भारत के कुछ समुदायों और एशियाई देशों में भारतीय मूल की जनसंख्या में), से संबंधित मान, हृद्धमनी बीमारियों को कम करने के लिए परोपकारी सांस्कृतिक कारक के रूप में काम करता हैं

इसी तरह, मधुमेह और संचरणीय रोग (communicable disease) प्रतिकूल या अनुकूल रूप से कुछ सांस्कृतिक परम्पराओं द्वारा भी प्रभावित हो सकते हैं। इसीलिए मानव व्यवहार में संस्कृति की जानकारी स्वास्थ्य शिक्षा की सफलता के लिए पूर्वापेक्षित है।

व्यक्तिगत स्वच्छता और पर्यावरण की स्वच्छता को बढ़ावा देना स्वास्थ्य शिक्षा के अनिवार्य घटक हैं। इस इकाई में जिन सात एशियाई देशों की चर्चा की गई है उनमें से बंगलादेश और भारत व्यक्तिगत स्वच्छता और पर्यावरण की स्वच्छता के मामले में सर्वाधिक पिछड़े देश है। चीन, कोरिया, इंडोनेशिया और थाईलैंड का स्वच्छता व सफाई का स्तर ऊंचा है। यह स्थिति श्रीलंका में भी काफी बेहतर है। अन्य एशियाई देशों में ऐसी स्वच्छता और सफाई में सुधार आंशिक रूप से उनकी सांस्कृतिक प्रथाओं के कारण है और शिक्षा और आधुनिकीकरण के माध्यम से उन्हें बढ़ावा मिलता है। अतः भारत और बंगलादेश में कई संचरणीय रोगों की रोकथाम के लिए स्वच्छता और सफाई को उच्च वरीयता दी जानी चाहिए चूंकि, व्यक्तिगत स्वच्छता के कारण होने वाले प्रमुख रोगों पर चीन, इंडोनेशिया, दक्षिण कोरिया और थाईलैंड मे काफी हद तक काबू पा लिया गया है। इस संदर्भ में महत्वपूर्ण रूग्णता स्थितियां वे रोग हैं जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है और अन्य सभी संचरणीय रोग विशेष रूप से जल से होने वाली बीमारियां–जैसे अतिसार, हैजा, टाइफाइड और पीलिया तथा वायु से फैलने वाले रोग–जैसे तपेदीक, पोलियो, छोटी माता, फ्लू, काली खाँसी।

3.6 एशिया में जीवन स्तर

विकास के सभी पक्ष और विशेष रूप से स्वास्थ्य प्रोत्साहन कार्यक्रमों का लक्ष्य है बेहतर जीवन स्तर (quality of life) प्राप्त करना। हालांकि विकास के विविध कार्यक्रमों में विकास योजनाओं के एक या अन्य घटकों पर बल दिया जाता है। फिर भी, सभी कार्यक्रमों के लक्ष्य विकास के भिन्न –भिन्न मार्गों के माध्यम से अंतिम लक्ष्य जीवन स्तर को सुधारना ही है। इस संदर्भ में, सामाजिक विकास के कुछ पहलुओं, जिन में परस्पर घनिष्ट संबंद्ध है उनकी अंतः क्रियाओं व पूरक स्वरूप को खोजकर उनकी जॉच करना, सर्वागीण जीवन–स्तर के मूलयांकन के लिए सहायक होंगे।

वे सूचक जो जीवन स्तर, विशेष रूप से स्वास्थ्योन्मुख और उससे संबद्ध पहलुओं, की समीक्षा करने के लिए ज्यादा प्रासांगिक है उन्ही की चर्चा यहां की गई है। तथापि कुछ आंकड़ों के उपलब्ध न होने के कारण ऐसे सभी कारकों पर यहां चर्चा नहीं की गई हैं फिर भी, इसमें हमने जीवन स्तर के अधिकांश प्रमुख सूचकों को शामिल किया है। वे हैं पोषण, स्वास्थ्य, तंदुरूस्ती, मर्त्यता, दीर्घायु, सामाजिक और प्रौद्योगिकीय पहलू।

जीवन का स्तर सापेक्षिक रूप से बहुआयामी एवं बहुविषयक संकल्पना है, जिसक लक्ष्य मानव जीवन में सर्वागीण उन्नति व सुधार प्राप्त करना है। जीवन स्तर में ऐसी उन्नति के परिणामस्वरूप मानव अपने शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक तौर पर जीवन को सुधार सकता है। इससे लोग सुरक्षित पारिस्थितिकी, सापेक्षिक रूप से तनाव मुक्त और शांत पर्यावरण के माध्यम से बेहतर स्वास्थ्य वर्धक जीवन प्राप्त कर सकते हैं ताकि भविष्य में सतत विकास होता रहे (तालिका 3.4)।

निर्धारित देश की जनसंख्या में लोगों का एक निश्चित समूह केवल इसी कारण अत्यधिक असुविधायुक्त स्थिति में नहीं होगा कि उनका जीवन स्तर बहुत निम्न है प्रत्युत इसका अन्य कारण है कि उनका अस्तित्व खतरे में होगा। उनकी कमाई इतनी कम होगी कि वे न्यूनतम पोषणयुक्त

तालिका 3.4: एशियाई देशों में जीवन–स्तर के चुने गए आयाम

देश	पूर्ण निर्धनता स्तर से निचे रह रही ग्रामीण जनसंख्या का % (1980–89)	प्रतिव्यक्ति कैलोरी अंतर्ग्रहण आवश्यकता के प्रतिशत के रूप में (1988–90)	जन्म के समय कम वजन वाले शिशुओं का % (1990)	बाल (5 वर्ष से कम) मृत्यु दर (1991)	शिशु (एक वर्ष से कम) मृत्यु दर (1991)	मातृक मृत्यु दर (प्रति लाख) (1980–90)	जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (उदाहरण :) (1991)	पुरूषों की % की तुलना मे प्रौट महिला साक्षरता दर (1990)	गर्भ निरोधक की व्याप्ति दर (%) (1980–92)	संचार प्रौद्योगिकी प्रति 1000 जनसंख्या में सैटों की संख्या (1989)	
										रेडियो	टी. वी.
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
चीन	13	126	9	27	22	95	72	74	72	184	27
भारत	33	109	33	126	84	460	60	55	43	78	27
इंडोनेशिया	16	136	14	86	61	450	62	74	48	144	55
थाईलैंड	25	115	13	33	28	71	69	94	–	182	109
दक्षिणकोरिया	11	120	9	10	9	26	70	95	77	1003	207
बंगला देश	86	103	50	133	101	600	52	47	31	41	4
श्रीलंका	–	119	25	21	16	80	71	90	62	194	32

स्रोत : 1) द स्टेट ऑफ वर्ल्डस चिल्ड्रन, यूनिसेफ, 1993
2) द इन्टरनेशनल हयूमेन सफरिंग इन्डेक्स (चार्ट, जनसंख्या क्राइसिस समिति, 1992, वाशिंगटन।

होंगे। ऐसी अवस्था में जीवन यापन कर रही जनसख्या के लोगों को पूर्ण जीवन स्तर से नीचे के लोग कहा जाता है। इस संकल्पना के अनुसार आइए देखें कि कैसे ये एशियाई देश जीवन स्तर के इन निम्न स्तर को पार कर पाए। जैसी कि आशा है, बंगलादेश की अधिकांश जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे (86%) आती है। बंगलादेश के बाद भारत का नाम आता है जहां कुल जनसंख्या का 33% भाग गरीबी रेखा से नीचे है। हालांकि ये बंगलादेश की अत्यधिक निर्धनता ग्रस्त जनसंख्या की तुलना में काफी कम है। तथापि, यह भी आश्चर्यजनक है कि थाईलैंड की जनसंख्या का 25% भाग अब भी गरीबी स्तर के नीचे जीवन यापन कर रहा है। यद्यपि भारत की तुलना में थाईलैंड काफी विकसित है। अपनी जनसंख्या को गरीबी रेखा से उपर लाने में, एशिया देशों की इस सूची में, दक्षिण कोरिया का नाम सबसे उपर (11.0%) हैं। इसके पश्चात चीन (13.0%) और इंडोनेशिया (16.0%) आते हैं। इन तीनों देशों में नाममात्र जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे आती है। क्या भारत के लिए यह सबक नहीं है कि वह अपनी तिहाई जनसंख्या को तीव्रता से गरीबी रेखा से उपर उठाए और उनके जीवनस्तर को भी सुधारे ?

जीवन स्तर को दर्शाने वाला अन्य सूचक है — प्रतिदिन प्रति व्यक्ति कैलोरी अंतर्ग्रहण, आवश्यकता के प्रतिशत के रूप में। एक बार फिर सभी एशिया देशों में से बंगलादेश (103) और उसके पश्चात भारत (109) दो सबसे गरीब देश है जहां प्रति व्यक्ति कैलोरी अंतर्ग्रहण अत्यधिक कम है। आश्चर्यजनक बात है बेहतर पोषण स्तर के मामले में इंडोनेशिया का नाम सर्वोपरि (136) है, इसके पश्चात चीन (126), दक्षिण कोरिया (120), श्रीलंका (119) और थाईलैडं (115) आते हैं। वस्तुतः अन्य कारकों में कैलोरी अंतर्ग्रहण भी बच्चे के जन्म के समय कम वजन होने का एक कारण है। इस पहलू में चीन (9.0%), दक्षिण कोरिया (9.0%) में जन्म के समय कम वजन वाले बच्चों की समस्या न के बराबर है, जिससे पता चलता है कि उनके अधिकांश बच्चों का जीवन स्तर बेहतर है। लगभग यही स्थिति इंडोनेशिया (14.0%) और थाईलैंड (13.0%) में है। अतः जहां तक शिशुओ के जीवन स्तर का संबंध है बंगलादेश (50.0%), भारत (33.0%) और श्रीलंका (25.0%) असुविधाजनक देश है। जैसा कि आप जानते हैं, उपरोक्त तीनों कारक शिशु, शैशवावस्था और मातृक मर्त्यता को काफी हद तक प्रभावित करते हैं। इन तीनों मर्त्यता दरों का स्तर इन देशों में जनसंख्या के स्तर को दर्शाता है। जहां तक इन मर्त्यता दरों का संबध है, इस सूची में बंगलादेश सर्वोपरि है जहां मर्त्यता सबसे ज्यादा है। इसके पश्चात क्रमशः भारत, इंडोनेशिया और थाईलैंड का नाम आता है। तथापि, क्रमशः दक्षिण कोरिया और चीन में शिशु, शैशवास्था और मातृक मृत्यु दरें नाम मात्र हैं। इस संबंध में भारत और बंगलादेश की तुलना में श्रीलंका की स्थिति बेहतर है। इससे भारत को क्या सीख मिलती है? कोरिया, चीन, थाईलैंड और श्रीलंका अपने—अपने देशों की मर्त्यता पद्धति को इतना कम कैसे कर पाए ? इन प्रश्नो के उत्तर निम्नलिखित कारकों के संदर्भ में प्राप्त किए जा सकते हैं — बेहतर स्वच्छता, सुरक्षित पेय जल की उपलब्धता, डॉक्टरों, नर्सो और पराचिकित्सक कर्मिकों का अनुकूल संतुलित, संतोषजनक अनुपात, स्वास्थ्य संर्वधन के लिए अपनाई गई प्रभावी कार्यनीतियां, स्वास्थ्य शिक्षा और रोगों की रोकथाम पर बल देते हुए स्वास्थ्य कार्यक्रमों को वरीयता देना।

दीर्घआयु जीवन—स्तर का निर्णायक सूचक है और यह भी उपर्युक्त वर्णित कारको और अन्य कारकों — महिला साक्षरता और शिक्षा के लिए संचार सुविधाओ — से प्रभावित होता है। इस संदर्भ में जीवन—प्रत्याशा के सर्वोच्च स्तर पर पहुंचने वाले देशों में चीन (72) के बाद क्रमशः श्रीलंका (71) और दक्षिण कोरिया, एशिया देशों की सूची में सर्वोपरि है। हालांकि इस संबंध में थाईलैंड (69) ने भी समान सफलता प्राप्त की है और यहां भी बंगलादेश (52) की विडंबना है क्योंकि उसकी जीवन प्रत्याशा एशिया देशों में न्यूनतम है। हालांकि भारत (60) और इंडोनेशिया (62) उपरोक्त वर्णित चार देशों से पीछे है। यह दयनीय है कि विश्व में वृहत्तम वैज्ञानिक श्रम शक्ति रखने वाला भारत देश, अन्य एशियाई देशों की तुलना में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा में बहुत ही पीछे है।

जीवन स्तर के दो अन्य सामाजिक और प्रौद्यागिकीय सूचकों को महिला साक्षरता और संचार प्रौद्योगिकी (रेडियो और टेलीविजन) की उपलब्धता के आधार पर मापा जा सकता है। आश्चर्यजनक रूप से महिला साक्षरता दक्षिण कोरिया (95.0%), थाईलैंड (94.0%) और श्रीलंका (90.0%) में सर्वव्यापी है। चीन (74.0%) और इंडोनेशिया (74%) में भी महिला साक्षरता की सफल उपलब्धि समान रूप से आकृष्ट करती है। एक बार फिर यहां बंगलादेश (47%) सर्वाधिक पिछड़ा राष्ट्र है और इसके बाद भारत (55%) का नाम इस क्रम में आता है। यह महिला निरक्षरता ही है, जो निम्न जीवन स्तर का मुख्य कारक है क्योंकि इसका संबद्ध पहले वर्णित अधिकांश कारकों से है। जीवन स्तर का एक दूसरा महत्वपूर्ण रूप जन संचार माध्यमों जैसे टेलीविजन और रेडियो का प्रभावी प्रयोग है। रेडियो के संबंध में दक्षिण कोरिया ...

तथापि श्रीलंका, चीन, थाईलैंड और इंडोनेशिया ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय उन्नति की है। इस उन्नति के उपरांत भी ये देश अभी भी पिछड़े है क्योंकि वहां के अधिकाशं लोगों के पास रेडियो नहीं है। बंगलादेश और भारत में तो स्थिति अभी भी बदतर है। जीवन स्तर को सुधारने और ज्ञान के अनिवार्य विकास के लिए आवश्यक जीवन स्तर के इस पहलू को सुधारने के लिए अभी उन्हें काफी लंबा सफर तय करना है। दक्षिण कोरिया और थाईलैंड को छोड़कर अधिकांश एशियाई देशों में टेलीविजन अत्यधिक नगण्य है–वैसे तो वहाँ भी यह अपर्याप्त है। विकासशील देशों के लिए आज टेलिविजन सम्पन्नता व विलासिता की वस्तु है लेकिन रेडियो के बारे में ऐसा नहीं है।

माँ, बच्चों और पूरे परिवार का जीवन स्तर अपनाए गए गर्भ निरोधक व छोटे परिवार के मूल्यों के आधार पर प्रतिबिंबित होता है। इस संबंध में दक्षिण कोरिया और चीन ने शानदार सफलता हासिल की है। इसके बाद थाईलैंड और श्रीलंका का नाम आता है, लेकिन जीवन स्तर को विशेष रूप से महिलाओ में, सुधारने के लिए इस कार्यक्रम में सफलता उपलब्ध करने हेतु बंगलादेश, भारत और इंडोनेशिया को काफी लंबा रास्ता तय करना होगा।

किसी देश में होने वाले जानपदिकरोगविज्ञान संक्रांति (Epidemiological transition) सर्वागीण विकास के स्तर पर आधारित होती है। जब एक देश आर्थिक और सामाजिक तौर पर पिछड़ा होता है तो वहाँ के लोगों का जीवनस्तर भी निम्न स्तर का होता है। ऐसे देशों के अधिकांश लोग हीनताजन्य रोगों, संचरणीय रोगों और अन्य रोगों से ग्रस्त होते हैं। इन सबका कारण होता है निम्न स्वच्छता, सफाई इत्यादि। ये सभी जानपदिकरोगविज्ञान परिवर्तनों की पूर्व–संक्रांति अवस्थाएं हैं। दूसरी ओर, जब एक देश प्रगति करता है तो वहां की साफ–सफाई व स्वच्छता और पोषण संबधी स्तर में भी सुधार आता है। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक रवैया व व्यवहार विकसित होता है। तथापि जल, मृदा, वायु और शोर का प्रदूषण भी विकास के साथ–साथ बढ़ता है। परिणामस्वरूप, इससे अलग तरह के रोग उत्पन्न होते हैं जैसे हृदधमनी रोग, कैंसर, मधुमेह इत्यादि। परन्तु संरचरणीय रोग गरीब देशों में न्यूनतम हो जाएंगे। देश के विकास के स्तर पर आधारित रोग पद्धति में परिवर्तन जानपदिकरोगविज्ञान संक्रांति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वस्तुतः ये सभी परिवर्तन विकासशील और विकसित देश दोनों की जनसंख्या के जीवन स्तर को प्रभावित करते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) स्वास्थ्य नीति और स्वास्थ्य शिक्षा को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

....

....

2) रिक्त स्थान भरिए :

क) इकाई में जिन सात एशियाई देशों की चर्चा की गई हैं, स्वास्थ्य परिप्रेक्ष्य के अधिकांश पहलुओ में उसमें से .... अग्रणी और .... पिछड़ा है।

ख) इंडोनेशिया की .... प्रतिशत की तुलना में भारत स्वास्थ्य पर अपनी परिवार आय का .... प्रतिशत भाग खर्च करता है।

ग) स्वास्थ्य संवर्धन के लिए चीन .... और .... कार्यनीतियों का पालन करता है।

घ) जानपादिकरोगविज्ञान संक्रांति में संचरणीय रोगों में गिरावट आती है और .... रोगों के आपतन में वृद्धि होती है।

च) जीवन स्तर का लक्ष्य .... है।

छ) जीवन स्तर के सूचकों में सम्मिलित किया जा सकता है ....

3.7 सारांश

आइए अब तक जो हमने पढ़ा उसे एक बार दोहराएं। इस इकाई में सात प्रमुख और विविध देशों में स्वास्थ्य पर नीति परिप्रेक्ष्यों पर चर्चा की गई। बाद की चर्चा स्वास्थ्य कार्यक्रमों के संवर्धन के लिए प्रदत्त विविध आधारित संरचनाओ और आगतों पर केंद्रित थी। इसके पश्चात् स्वच्छता और जलापूर्ति जैसे प्रश्नों को रखा गया। अन्य प्रमुख आयाम जिस पर यहां चर्चा की गई वह है स्वास्थ्य कर्मिकों के विभिन्न वर्गीकरण जैसे डॉक्टर, नर्स और परा–चिकित्सा कर्मचारी आदि। स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करने के लिए किन कार्यनीतियों का पालन किया जाता है और स्वास्थ्य शिक्षा को वरीयता दी जाती है, यह अगले भाग की चर्चा हैं। वस्तुतः रोगों की रोकथाम और स्वास्थ्य संवर्धन के लिए प्रदान विभिन्न आगतों पर भी प्रकाश डाला गया है। इन सभी विकासों के परिणामस्वरूप लोगों के जीवन स्तर में सुधार आता है अथवा नहीं, इस पर चर्चा इस इकाई के अंतिम भाग में की गई है।

3.8 शब्दावली

जीवन स्तर : इस शब्द से अभिप्राय है सभी मनुष्यों में सर्वागीण विकास की उपलब्धि।

स्वास्थ्य नीति : स्वास्थ्य नीति से अभिप्राय है, आधारिक संरचना के सृजन में लक्ष्य, नीतियों को अपनाना, आंगतों के प्रावधान, शिक्षा, समुचित अंतः क्षेपों के माध्यम से रोगों की रोकथाम, सुरक्षित पर्यावरण का सृजन, पीने योग्य जल का प्रावधान आदि।

स्वास्थ्य शिक्षा : स्वास्थ्य शिक्षा को स्वास्थ्य प्रद जीवन स्तरों और लोगों में व्यवहार के विकास को प्रोत्साहित करने हेतु सामाजिक और स्वास्थ्य विज्ञान को लागू कराने की कला के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) स्वास्थ्य नीति : स्वास्थ्य नीति से अभिप्राय है. आधारित संरचना के सृजन में लक्ष्य, नीतियों को अपनाना, आगतों के प्रावधान, शिक्षा, समुचित अंतः क्षेपों के माध्यम से रोगों की रोकथाम, सुरक्षित पर्यावरण का सृजन, पीने योग्य जल का प्रावाधान आदि।

   स्वास्थ्य शिक्षा : स्वास्थ्य शिक्षा को स्वास्थ्य प्रद जीवन स्तरों और लोगों में व्यवहार के विकास को प्रोत्साहित करने हेतु सामाजिक और स्वास्थ्य विज्ञान को लागू करने की कला के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

2) क) दक्षिण कोरिया, चीन, बंगलादेश

   ख) 3, 2 प्रतिशत

   ग) बेअर फुट डॉक्टर, परिवार शैयया देखभाल

   घ) हृदधमनी रोग, कैंसर

   ङ) मानव जीवन में सर्वागीण सुधार प्राप्त करना।

   च) निर्धनता स्तर की मूल स्थिति से नीचे ग्रामीण जनसंख्या, प्रतिदिन, प्रति व्यक्ति कैलोरी अंतर्ग्रहण, जन्म के समय कम वजन वाले शिशुओं का प्रतिशत, बाल मर्त्यता, शिशु मर्त्यता, मातृक मर्त्यता, जन्म के समय जीवन प्रत्यांशा, महिला साक्षरता, गर्भ निरोधक की प्रचलन दर और संचार प्रौद्योगिकी।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

DHEN-02
जन स्वास्थ्य और स्वच्छता

खंड

2

पर्यावरणीय स्वच्छता और सुरक्षा

इकाई 4
संदूषण के कारक 5

इकाई 5
जल आपूर्ति एवं कूड़े का निपटान 27

इकाई 6
व्यक्तिगत स्वच्छता 48

इकाई 7
गृह एवं सार्वजनिक सुरक्षा 73

खंड परिचय

इस खंड में पर्यावरण के उन तथ्यों के बारे में बताया जायेगा जिनका स्वास्थ्य से सीधा संबंध हैं। संक्रमण और रोग किन कारणों से होते हैं; रोग कारक कैसे जीवित व बहुगुणित होते है और वे हमें रोग से कैसे संक्रमित करते हैं, के बारे में आप इस खंड में पढ़ेंगे। स्वच्छ जल के स्रोतों, अस्वच्छ जल का निपटान व उपचार कैसे किया जाए और स्वच्छता व रोग में जल की भूमिका के बारे में भी आप जान सकेंगे। व्यक्तिगत स्वच्छता और पर्यावरण संबंधी स्वच्छता का क्या अर्थ है और संक्रमण व रोग को रोकने में ये कैसे सहायता कर सकते हैं, यह भी आप पढ़ेंगे।

रोग के अतिरिक्त अन्य उन कारकों के बारे में भी आप जान सकेंगे, जो हमारे स्वास्थ्य व जीवन पर हानिकारक या घातक प्रभाव भी डालते हैं और जो काफी हद तक हमारे नियंत्रण के भीतर हैं और इसलिए हम उनसे बच सकते हैं।

रोग व पर्यावरण के आपसी संबंध की संकल्पना को बहुत पहले हिप्पोक्रेटिस ने जान लिया था। अब हम सभी लोग यह महसूस करते हैं कि स्वास्थ्यपूर्ण जीवन के लिए प्राकृतिक पर्यावरण बहुत आवश्यक है क्योंकि पर्यावरण का लोगों के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक हित से सीधा संबंध है। हमारे देश में व साथ ही अन्य किसी विकासशील देश में स्वास्थ्य की बुरी स्थिति वर्तमान दूषित पर्यावरण के कारण ही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू. एच. ओ.) ने अपनी एक घोषणा में कहा है कि अच्छा स्वास्थ्य तभी संभव है जब किसी भी व्यक्ति और उसके परिवार के हित के लिए पर्यावरण सकारात्मक योगदान देने योग्य हो। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू.एन.ई.पी.) का लक्ष्य है लोगों की दूषित पर्यावरण से सुरक्षा करके उनके जीवन स्तर को सुधारना।

आइए, अब हम देखें कि पर्यावरण का क्या अर्थ है। सामान्यत: पर्यावरण की परिभाषा इस रूप में दी जाती है कि किसी व्यक्ति व समाज के जीवन और उनके विकास को प्रभावित करने वाली सभी बाह्य स्थितियों और प्रभावों का पूर्ण योग ही पर्यावरण है। इसको सरल रूप से समझने के लिए पर्यावरण का वर्णन करते हुए उसके तीन घनिष्ट घटक बताए गए हैं — (i) भौतिक (ii) जैविक (iii) मनोवैज्ञानिक।

इस खंड में आप, अपने स्वास्थ्य पर भौतिक पर्यावरण के प्रभाव और अपने स्वास्थ्य उन्नति के लिए भौतिक पर्यावरण में सुधार लाने के लिए क्या किया जा सकता है, इस बारे में भी पढ़ेंगे।

इकाई 4 संदूषण के कारक

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 संदूषण के कारक

4.3 संक्रमण के स्रोत एवं संचिति (reservoir)

4.4 संक्रमण के फैलने के तरीके

4.5 संवेदनशील परपोषी में प्रवेश के तरीके

4.6 संक्रमण एवं रोगों की रोकथाम व नियंत्रण

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.1 प्रस्तावना

संक्रमण वह अवस्था है जिसमें सूक्ष्मजीव सरलता से परपोषी के शरीर में प्रवेश करने में सफल हो जाते हैं तथा अपने ही समान अन्य सूक्ष्मजीवों का पुनरुत्पादन करना प्रारंभ कर देते हैं। रोग इस संक्रमण का स्पष्ट नैदानिक लक्षण है। हम सभी कभी न कभी इस संक्रमण और रोग के शिकार होते है, संभवत: कुछ लोग बहुत जल्दी-जल्दी और कुछ उतनी जल्दी नहीं। बहुधा हममें से ज्यादातर लोग अपने आप या अपने किसी नज़दीकी के संक्रमित होने के लिए स्वयं ही दोषी होते हैं। फिर भी, कुछ ऐसे संक्रमण एवं रोग होते हैं जो कि हमारी किसी गलती के बिना भी हमें लग जाते हैं और इसे आप केवल दुर्भाग्य ही कह सकते हैं। इस प्रकार के रोगों से अपने आपको बचाने के लिए हम बहुत कुछ नहीं कर सकते परन्तु अन्य अधिकतर संक्रमणों से अपने आपको व अन्य लोगों को बचाने के लिए निश्चय ही बहुत कुछ किया जा सकता है। इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य आपको पर्याप्त जानकारी व सूचनाएँ देकर इस योग्य बनाना है कि आप अपने आपको व अपने आसपास के लोगों को संक्रमण व रोगों से बचा सकें।

इसके लिए आपको यह जानना आवश्यक है कि संक्रमण का कारण क्या है, संक्रमण किस प्रकार बना रहता है एवं बहुगुणित होता है तथा यह अन्य लोगों में किस तरह फैलता है। यदि हम संक्रमण और रोग के इस पहलू को समझ लेंगे तो हम उससे अपने आप को बचाने के उपाय व तरीके भी स्वयं ढूँढ पाएंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवियों की, जिनसे संक्रमण एवं रोग होते हैं, सूची बना सकेंगे
- संक्रमण किस प्रकार फैलता है इसका वर्णन कर सकेंगे
- संक्रमण को फैलने से रोकने व नियंत्रित करने के संबंध में बता सकेंगे; और
- संक्रमण के फैलने में पर्यावरण की भूमिका की विवेचना कर सकेंगे।

4.2 संदूषण के कारक

हमारे चारों ओर सूक्ष्म जीव पाए जाते हैं जो कि किसी जीवित चीज़ या निर्जीव पदार्थ को दूषित कर देते हैं। वे निम्नलिखित में से किसी भी श्रेणी के हो सकते हैं — विषाणु (Virus), रिकेट्सिआ, जीवाणु (बैक्टीरिया), कवक (फंगस), प्रोटोजोआ, मैटाजोआल, परजीवी और बाह्यपरजीवी (एक्टोपैरासाइट)। यह सभी प्रकृति से परजीवी होते हैं, क्योंकि यह परपोषी (host) पर आक्रमण कर जीवित रहते हैं। जिस परपोषी पर यह आक्रमण करते हैं उसी के उत्तकों में यह अपनी पुनरावृत्ति अर्थात संख्या में वृद्धि करते रहते हैं जिसके

फलस्वरूप संक्रमण का कारण बनते हैं। इस संक्रमण का लक्षण रोग होता है। उदाहरणत: इन्फलुएंजा विषाणु परपोषी (मनुष्य) के शरीर में प्रवेश कर अपनी पुनरावृत्ति करके बहुगुणित होते रहते हैं और अन्ततः उस परपोषी (व्यक्ति) में इन्फलुएंजा के संक्रमण का कारण बनते हैं। संक्रमण ज्वर (शरीर के तापमान की बढ़ोत्तरी), सिर व शरीर में दर्द होना, नाक बहना व छींक आदि के रूप में अपने आपको प्रदर्शित करता है। इसको लक्षणों के आधार पर इंफ्लुएंज़ा रोग के रूप में पहचाना जाता है।

किसी संक्रमण या रोग के होने के लिए मुख्य रूप से तीन कारकों से अनु:क्रिया का होना आवश्यक है, वे हैं :

1) संक्रमण के कारक

2) संक्रमण के फैलने के साधन

3) परपोषी

कारक (agent) ही संक्रमण या रोग का मुख्य कारण है। संक्रमण की शृंखला में दूसरी कड़ी संक्रमण के फैलने अर्थात् वह प्रक्रिया है जिससे संक्रमण कारक परपोषी तक पहुँचता है। संक्रमण की शृंखला की अंतिम कड़ी परपोषी है। यहीं पर सूक्ष्म जीव शरीर में प्रवेश करके अपने आपको स्थापित एवं बहुगुणित करते हैं व रोग का कारण बनते हैं। किसी शरीर अथवा निर्जीव वस्तु या पदार्थ पर या उसमें संक्रमण कारक की उपस्थिति को ही संदूषण (contamination) कहा जाता है। आपको इंफ्लुएंज़ा के विषाणु से संदूषण हो सकता है, भोजन हैज़ा फैलाने वाले सूक्ष्मजीवों से संदूषित हो सकता है, किसी बीमार व्यक्ति के घाव को साफ करने की प्रक्रिया में आपके हाथ या आपके द्वारा प्रयुक्त तौलिया संदूषित हो सकता है।

लेकिन यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि मानव शरीर पर या उसमें संक्रमण कारक की उपस्थिति रोग होने की पुष्टि नहीं करती है। उसका अर्थ केवल इतना होता है कि वहाँ पर रोग होने की संभावना है। हम इस संबंध में अधिक विस्तार से चर्चा थोड़ा आगे करेंगे।

आर. सी.

इस खण्ड में हम उन कारकों पर चर्चा करेंगे जो संक्रमण को फैलाते हैं या किसी शरीर या वस्तु को संदूषित करके रोग फैलाने का कारण बनते हैं। हम संक्रमण के फैलने के विभिन्न तरीकों पर भी चर्चा करेंगे और देखेंगे कि उनकी रोकथाम के लिए क्या किया जा सकता है। कोई भी चीज़ जोकि संक्रमण कारक को परपोषी तक पहुँचाने की शृंखला की किसी भी कड़ी को तोड़ सके वह रोग को फैलने से रोकने में सफल होगी।

आइये, अब हम इन प्रत्येक संक्रमण कारकों (जिन्हें पैथोजैन्स भी कहा जाता है) को एक-एक करके देखें :

विषाणु (Virus) : सभी रोगाणुओं (pathogens) में से विषाणु आकार में सबसे छोटे होते हैं। वह केवल जीवित कोशिका के भीतर ही अपना पुनरुत्पादन व बहुगुणन कर सकते हैं तथा इसके लिये वह पूरी तरह से परपोषी की कोशिका पर निर्भर होते हैं — वह कोशिकाओं से पुनरुत्पादन के लिये आवश्यक एन्ज़ाइम व पोषक तत्व उधार लेते हैं। इस प्रक्रिया में वह दो महत्वपूर्ण काम करते हैं — वे इन कोशिकाओं को रिक्त या/और खाली कर देते हैं, जिसके फलस्वरूप शरीर के अंग अपना काम ठीक से नहीं कर पाते या दूसरे शब्दों में कहें तो ये विषाणु पुनरुत्पादन के लिए कोशिका की यंत्रावली के पीछे अपने आपको छिपा लेते हैं, इससे वे अपने आपको प्रतिजैविक पदार्थों एन्टिबायोटिकों के आक्रमण से भी बचा लेते हैं। प्रतिजैविक पदार्थ सूक्ष्म रोगाणुओं जीवों पर आक्रमण करने के लिए हैं न कि परपोषी कोशिकाओं पर आक्रमण हेतु तैयार किये जाते हैं। ये कई परिस्थितियों में रोगाणुओं के पनुरुत्पादन चक्र में आक्रमण करके उसे नष्ट करते हैं। प्रतिजैविक परपोषी, या जानवरों की कोशिकाओं को नुकसान पहुँचाने के लिये नहीं होते हैं। यदि ऐसा होता तो निदान से ही रोगी की मृत्यु हो जाती। विषाणु पुनरुत्पादन के लिये परपोषी कोशिकाओं की यंत्रावली का ही प्रयोग करके प्रतिजैविकों के आक्रमण से अपने आपको बचा लेते हैं। यही कारण है कि विषाणु से होने वाला संक्रमण (रोगों के किसी भी अन्य प्रकार के सूक्ष्म जीवों से होने वाले संक्रमण की अपेक्षा) अधिक गंभीर होता है। विषाणुओं पर प्रतिजैविकों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। विषाणु संक्रमण के जो प्रतिजैविक दिए जाते हैं वे विषाणु को नष्ट नहीं करते बल्कि शरीर को अन्य जीवाण्विक संक्रमणों से बचाते हैं जिनसे विषाणु के संक्रमण के दौरान शरीर अधिक संवेदनशील होता है। विषाणु के कारण होने वाले कुछ रोग हैं — इन्फ्लुएंज़ा फ्लू, पोलियो, चेचक, छोटी चेचक, खसरा, कनपेड़ (mumps), जर्मन खसरा, यकृत शोथ, हैप्टाइटिस, हरपीस, एड्स तथा रैबीज़।

रिकेट्सिया : विषाणु की तरह यह भी परजीवी होते हैं, जोकि केवल एक जीवित कोशिका के अंदर ही बहुगुणित होते हैं, परन्तु विषाणुओं से विपरीत ये प्रतिजैविकों से प्रभावित होते हैं और साथ ही साथ अभिरंजन (staining) तकनीक द्वारा परम्परागत माइक्रोस्कोपों से यह देखे जा सकते हैं। ये मानव शरीर में संक्रमित टिकों (चीचड़ों), जुओं तथा पिस्सुओं के काटने से प्रवेश करते हैं। रिकेट्सिया के कारण होने वाली बीमारियाँ हैं — ज्वर, खाई ज्वर (Trench fever), रकेट्सी चेचक, रॉकी मॉउनटेन ज्वर, जिसे टिक फीवर भी कहते हैं तथा टाइफस।

जीवाणु (Bacteria) : जीवाणु जीवित कोशिकाओं के बाहर भी बहुगुणित हो सकते हैं। इसलिये इनको कृत्रिम साधनों से भी तैयार किया जा सकता है। इनको भी परम्परागत माइक्रोस्कोप से देखा जा सकता है। इसीलिए जीवाणु के कारण होने वाले रोगों को सरलता से पहचाना जा सकता है व उनका निदान (cure) किया जा सकता है। डिफ्थीरिया, काली खाँसी, तपेदिक, हैज़ा तथा तीव्र अतिसार संबंधी बीमारियाँ जैसे पेचिश, टाइफाइड, टिटेनस, ट्रेकोमा, कुकरे तथा आँख, कान व गले के अन्य संक्रमण तथा कोढ़ आदि, जीवाणु के संक्रमण से होने वाले रोगों के कुछ उदाहरण हैं। जब एक बार जीवाणु की पहचान हो जाती और रोग के लक्षण पता लगा लिए जाते है तो अधिकांश मामलों में इसका निदान हो सकता है।

कवक (Fungi) : यह स्वतंत्र रूप से रहने वाले तथा परपोषी आश्रित परजीवियों के बीच में आते हैं। दूसरे शब्दों में, यह एक सजीव जीव के बाहर उससे बिल्कुल स्वतंत्र होकर तथा एक परजीवी की तरह किसी सजीव जीव के ऊपर या उसके अंदर भी रह सकते हैं। उदाहरण के लिए, मशरुम एक कवक है जोकि एक सजीव परपोषी से बिल्कूल स्वतंत्र रहकर विकसित होता है जबकि अन्य प्रकार के ऐसे कवक भी हैं जो मनुष्य की त्वचा के ऊपर परजीवी की तरह अभिवृद्ध होते हैं जिससे त्वचा के संक्रमण हो जाते हैं, या ऐसे व्यक्तियों जिनके हाथ, पैर हमेशा नमी में रहते हैं (जैसे धोबी, खेतिहर मज़दूर आदि) उनके पैर व हाथ की उंगलियों में परजीवी के रूप में बढ़ते हैं। मुख-विवट (oral cavity) के अंदर भी विकसित होकर संक्रमण फैलते हैं। कवक को पहचाना जा सकता है तथा रसोचिकित्सीय साधनों (chemotherapeutics) से नष्ट किया जा सकता है।

प्रोटोज़ोआ (Protozoa) : यह एक ही कोशिका से बने जीव होते हैं तथा माइक्रोस्कोप से देखकर आसानी से पहचाने जा सकते हैं। इन्हें उपयुक्त रसोचिकित्सा से नष्ट किया जा सकता है। प्रोटोज़ोआ के कारण होने वाली कुछ बीमारियाँ हैं - मलेरिया, अमीबी पेचिश तथा काला अज़ार (Kala azar)।

मैटाज़ोअल पैरासाइट्स (Metazoal parasites) : प्रोटोजोअल परजीवियों से भिन्न ये कई कोशिकाओं से बने जीव होते हैं तथा यह अपने जीवनक्रम को पर्यावरण के अनुकूल बना सकते हैं। इसलिये ये नाना प्रकार की आकृतियों में होते हैं। कुछ मैटाज़ोअल पैरासाइट जोकि मनुष्य को संक्रमित कर सकते है उनके उदाहरण हैं सभी प्रकार के कृमि जोकि हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं जैसे, अंकुश कृमि (hook-worm), फीता-कृमि (tape-worm), गोलकृमि (round-worm), नहरुआ या गिनि-कृमि आदि। फाइलेरिया भी मैटाज़ोअल पैरासाइटस के कारण होता है।

बाह्यपरजीवी (Ectoparasite) : ये परजीवी पशुओं व मनुष्यों की त्वचा के ऊपर रहते हैं। इनमें से कुछ परपोषी की त्वचा के बाहरी भाग को ही प्रभावित करते हैं, जैसे जूँ तथा पामा (स्कैबीस) चिंचड़ी। कुछ अन्य त्वचा के अंदर घुसने में सफल हो जाते हैं जैसे कुछ कीड़ों के लारवे (larvae)।

आप इनमें से कुछ संक्रमणों और रोगों के बारे में अन्य बातें खण्ड IV में जान सकेंगे। किस प्रकार ये संक्रमण के कारक पर्यावरण को संदूषित करके संक्रमण एवं रोग फैलाते हैं इससे संबंधित अपनी चर्चा को अभी हम जारी रखेंगे परन्तु उससे पहले कुछ पुनरावलोकन करें।

बोध प्रश्न 1

क) विषाणुओं के कारण होने वाली चार बीमारियों के नाम बताइये।

....

....

....

....

ख) जीवाणुओं से होने वाले तीन संक्रमणों के उदाहरण दीजिए।

....

....

....

ग) प्रोटोजोआ के कारण होने वाली दो बीमारियों के उदाहरण दीजिये।

....

....

घ) मैटाज़ोअल परजीवी के कारण होने वाले दो संक्रमणों के उदाहरण दीजिए।

....

....

किसी भी संक्रमण या रोग के फैलने के लिए यह आवश्यक होता है कि उसके रोगजनक किसी स्थान पर जिन्दा रहें और बहुगुणित हो सकें। दूसरे शब्दों में रोगजनक को ऐसा अनुकूल स्थान मिलना चाहिये जहाँ वह जीवित रह सकें व अपनी संख्या में वृद्धि कर सकें। ऐसे स्थान संचिति (reservoir) कहलाते हैं। यह संक्रमण का स्रोत भी बन सकते हैं हालांकि संचिति व स्रोत सदैव एक ही नहीं होते हैं। आइए ,संक्रमण के संचिति एवं स्रोत के संबंध में थोड़े विस्तार से चर्चा करें।

4.3 संक्रमण के स्रोत एवं संचिति (reservoir)

संक्रमण का स्रोत वह होता है जहाँ से संक्रमण कारक (रोगजनक) नए परपोषी में प्रवेश करता है। यह स्रोत एक व्यक्ति, पशु, वस्तु या पदार्थ कुछ भी हो सकता है। संचिति वह है जहाँ रोगजनक पनपता एवं बहुगुणित होता है तथा अपने जीवित रहने के लिए उसपर निर्भर रहता है। यह संचिति कोई व्यक्ति, पशु, पौधा, मिट्टी, पदार्थ या इनका मिलाजुला रूप हो सकता है। यह संचिति रोगजनक के जीवित रहने एवं बहुगुणित होने के लिए एक प्राकृतिक आवास होता है। फिर भी यह नहीं कह सकते कि संचिति ही सदैव संक्रमण का स्रोत नहीं होता है। स्रोत को सामान्यत: संक्रमण का तात्कालिक स्रोत माना जाता है तथा यह **संचिति का भाग हो भी सकता है और नहीं भी। उदाहरणस्वरूप, अंकुश कृमि संक्रमण में संचिति मनुष्य है, परन्तु उसके संक्रमण का स्रोत संक्रमित डिम्भक (लारवे) से संदूषित 'मिट्टी' होती है, जबकि टिटेनस में स्रोत व संचिति एक ही होता है अर्थात 'मिट्टी' । टाइफाइड ज्वर में संचिति कोई रोगी या वाहक (carrier) हो सकता है परन्तु संक्रमण का स्रोत रोगी का मलमूत्र या संदूषित भोजन, पानी या दूध हो सकता है।**

संचिति तीन प्रकार के होते हैं – मनुष्य, पशु तथा निर्जीव वस्तुयें। आइए, इन तीनों पर अब थोड़े विस्तार से विचार करें ।

मानव संचिति (Human reservoir)

मनुष्यों के लिए यह संक्रमण का सामान्य संचिति है। ऐसे बहुत से रोग हैं जिनमें मनुष्य संचिति होता है। जैसे इंफ्लुएंज़ा, खसरा, छोटी चेचक, कनपेड़े, कृमि, एड्स, पोलियो आदि। मानव संचिति दो प्रकार के होते हैं :

क) **व्यक्ति जो रोगग्रस्त है :** व्यक्तियों में रोग की मौजूदगी को दो वर्गों में रखा जा सकता है — एक नैदानिक (Clinical) जिसका अर्थ है व्यक्ति रोगग्रस्त है और रोग के लक्षण बिल्कुल स्पष्ट रूप से पहचाने जा सकते हैं, तथा दूसरा लक्षणहीन रूप या उप-नैदानिक (Sub-clinical) जिसमें व्यक्ति में रोगजनक तो मौजूद है परन्तु रोग अपने आप को लक्षणों के साथ स्पष्ट रूप से प्रदर्शित नहीं कर रहा है, अर्थात् रोग लक्षणहीन है।

हालांकि नैदानिक मामले बिल्कुल स्पष्ट होते हैं तथा रोग के हानिकर संचिति एवं स्रोत होते हैं (इनसे अपने आप को दूर ही रखना चाहिए) परन्तु वास्तव में लक्षणहीन मामले ही समस्याएं पैदा करते हैं। उन्हें स्पष्ट रूप से मालूम नहीं होता कि वह रोगजनक वाहक है और जब वह लोगों से मिलते व उनके साथ उठते-बैठते हैं तो वह संक्रमण फैलाते हैं। रोग के नैदानिक लक्षणों वाले रोगियों की तुलना में ऐसे लोग अधिक नुकसान पहुँचाते हैं। लक्षणहीन मामलों में रोग की जाँच केवल प्रयोगशाला में किये परीक्षणों से ही की जा सकती है।

कुछ अपवादस्वरूप संक्रमणों जैसे खसरा को छोड़कर अधिकांश संक्रामक रोगों में लक्षणहीन संक्रमण अधिक पाया जाता है। कुछ रोगों के विषय में, जैसे कनपेड़े, पोलियो, हैप्टाइटिस "ए" व "बी", इंफ्लुएंज़ा तथा डिप्थीरिया आदि में बहुत सारे लक्षणहीन संक्रमण होते रहते हैं। वास्तव में मनुष्य के जीवनकाल में लक्षणहीन संक्रमणों के ही जल्दी-जल्दी होने के कारण मनुष्य विभिन्न प्रकार के रोगों के प्रति रोधक्षमता (immunity) विकसित कर लेता है। रोगक्षमता के विषय में इसी इकाई में आगे चर्चा की जायेगी।

व्यक्ति में संक्रमण होने का एक तीसरा वर्ग — गुप्त संक्रमण (Latent infection) कहलाता है। यह लक्षणहीन संक्रमण से भिन्न होता है। गुप्त संक्रमणों में व्यक्ति के एक बार संक्रमण ग्रहण कर लेने के बाद वह उससे पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाता है। मान लिया जाए कि तथाकथित रूप में संक्रमण से

मुक्त हो भी गया हो परंतु फिर भी संक्रमण कारक व्यक्ति के अंदर रहते है परन्तु लक्षणहीन निष्क्रिय (dormant) अवस्था में। बहुधा रक्त, ऊतकों, या शारीरिक स्रावों में इनकी उपस्थिति का पता नहीं लगाया जा सकता। हर्पीस सिम्पलैक्स (Herpes Simplex) गुप्त संक्रमण का एक उदाहरण है। जब तक शरीर में इसके पनपने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न नहीं हो जातीं तब तक ये शरीर में निष्क्रिय रूप से रहता है।

ख) **व्यक्ति जिनके शरीर में संक्रमण फैलाने वाले कारक तो मौजूद है परन्तु उनमें प्रत्यक्ष रूप से रोग प्रदर्शित नहीं है** : ऐसे व्यक्ति अपने में रोग के प्रति प्रतिरोध क्षमता तो रखते हैं परन्तु वे दूसरों को रोग प्रदान करने का स्रोत होते हैं, इसलिये इनको किसी रोग विशेष या संक्रमण का वाहक (carrier) कहा जाता है। सामान्यत: वाहक ऊपर 'क' में वर्णित मामलों की अपेक्षा कम संक्रामक होते हैं परन्तु ये अधिक खतरनाक होते हैं क्योंकि इनका पता नहीं लग पाता और सामान्य व्यक्तियों के बीच में सामान्य रूप से रहते हुये यह सुग्राही व्यक्तियों को संक्रमित करते रहते हैं।

पशु संचिति (Animal Reservoir)

पक्षी व पशु भी संक्रमण के स्रोत होते हैं। ऐसे संक्रमण व रोग जो मनुष्य को पशुओं व पक्षियों के माध्यम से होते हैं प्राणिरुजा (Zoonoses) कहलाते हैं। सौ से भी अधिक ऐसे प्राणिरुजीय संक्रमण हैं जोकि मनुष्य, पशु एवं पक्षियों से ग्रहण कर सकता है। इनके कुछ उदाहरण हैं — प्लेग, रैबीज़, पीत ज्वर, Q — ज्वर तथा काला आज़र। मच्छरों से होने वाले एनसिफिलाइटिस तथा मच्छरों से होने वाले कई अन्य ज्वरजन्य रोगों को फैलाने में जंगली पक्षी, विशेष रुप से महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। एक जगह से दूसरी जगह में स्थानांतरण के दौरान ये रिकेटसिया व विषाणु-ग्रस्त संक्रमित ट्रिक्स ले जा सकती है, जिससे मनुष्यों में रोग हो सकता है।

निर्जीव संचिति (Non-living Reservoir)

मिट्टी तथा अन्य निर्जीव पदार्थ भी संक्रमणों के संचिति के रूप में कार्य कर सकते हैं। मिट्टी ऐसे संक्रमण कारकों का आश्रय स्थल बन सकती है जिनके कारण टिटेनस, गिलटी-रोग (Anthrax) तथा माइसिटोमा होता है तथा ये कारक मनुष्यों या पशुओं में प्रवेश कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित को मिलाइए :

1)	किसी रोग का नैदानिक मामला	क)	रोग का अधूरा अभिसाधित (cured) मामला
2)	उप-नैदानिक रोग का मामला	ख)	रोग के लक्षणों और चिन्हों का स्पष्ट प्रदर्शन
3)	गुप्त संक्रमण	ग)	रोग का कोई लक्षण या चिन्ह प्रदर्शित नहीं यद्यपि रोगजनक विद्यमान है।

2) निम्नलिखित रोग कारकों के संचिति कौन-से है; बताइए।

क) प्लेग ....

ख) रैबीज़ ....

ग) कनपेड़े, ...

घ) डिप्थीरिया ....

च) टिटेनस ....

छ) एड्स ....

ज) पोलियो ....

झ) इंफ्लुएंज़ा ....

ट) मलेरिया ....

ठ) हुक कृमि ....

जब एक बार संक्रमण के कारक रहने व बहुगुणित होने के लिए जगह ढूँढ लेते हैं तब वह संक्रमण या रोग आगे फैलाने के लिए नये परपोषी की तलाश शुरू कर देते हैं। इस चरण को रोग फैलाना या रोग का संचारण (transmission) कहा जाता है। रोग, संचिति या संक्रमण के स्रोत से किसी दूसरे संवेदनशील परपोषी तक विभिन्न तरीकों से संचरित हो सकता है। हमारे लिए इन विभिन्न तरीकों को जानना बहुत आवश्यक है ताकि हम समुचित बचाव करके रोग को फैलने से रोक सकें। अत: अब हम उन तरीकों की चर्चा करेंगे जिनसे संक्रमण फैलते हैं।

4.4 संक्रमण के फैलने के तरीके

सामान्यत: हर संक्रमित रोग के फैलने का एक विशिष्ट तरीका होता है। उदाहरणस्वरूप प्लेग कृतंक (rodents) प्राणी से फैलता है और मलेरिया मच्छरों से। तथापि इनके अतिरिक्त कुछ अन्य बीमारियाँ हैं जोकि एक से अधिक तरीकों से फैल सकती हैं। उदाहरणार्थ, एड्स शारीरिक संबंधों से, रक्त आधान से एवं माता से गर्भ में पल रहे शिशु को भी हो सकता है। ऐसे संक्रमण जो एक से अधिक तरीकों से फैल सकते हैं उनकी उतनी ही अधिक उत्तरजीवित और संचरित होने की संभावना रहती है। आइए, संक्षेप में संक्रामक रोगों के फैलने के विभिन्न तरीकों पर विचार करें।

प्रत्यक्ष संचरण

इससे अभिप्राय है कि संक्रमण कारक सीधे ही संचिति या स्रोत से परपोषी के शरीर में प्रवेश कर जाता है। प्रत्यक्ष संचरण पाँच भिन्न-भिन्न तरीकों से हो सकता है, जो निम्नलिखित हैं:

क) **प्रत्यक्ष संपर्क (Direct contact)** : इससे तात्पर्य स्रोत या संचिति से दूसरे व्यक्ति में संक्रमित कारक का प्रत्यक्ष व तात्कालिक स्थानांतरण। यह त्वचा से त्वचा के संपर्क में आने से जैसे स्पर्श, चुम्बन या यौन संबंधों से हो सकता है। एड्स, कुष्ठ (leprosy) तथा त्वचा एवं आँखों के विभिन्न संक्रमण प्रत्यक्ष संबंध या सीधे संबंध से संचरित होने वाले कुछ ऐसे रोगों के उदाहरण हैं।

ख) **बिन्दुक संक्रमण (Droplet infections)** : इसमें छींकने, खाँसने, बोलने, थूकने या बात करने के दौरान थूक या नासिका स्राव की बिन्दुक (छोटी-छोटी बूँदों के रूप में) आस-पास के वातावरण में फैल जाती हैं। ये बिन्दुक (छोटी-छोटी बूँद) सीधे ही आँख, मुँह या नाक की श्लेष्मल झिल्ली (mucous membrane) या पास में खड़े किसी व्यक्ति की त्वचा पर गिर सकती है और चूँकि इनमें लाखों करोड़ों जीवाणु व विषाणु हो सकते हैं इसलिये वह औरों के लिए संक्रमण का स्रोत बन जाती है। बिन्दुक से फैलने वाले कुछ रोगों के उदाहरण है जुकाम, डिप्थीरिया, काली खाँसी, टी.बी. सभी प्रकार के विस्फोटक ज्वर जैसे छोटी चेचक आदि। बिन्दुक से फैलने वाले इस प्रकार के संक्रमण की संभावना भीड, भाड़ वाली जगहों में (जहाँ लोग एक दूसरे के निकट होते है) तथा ऐसी जगहों में जहाँ हवा के आने जाने का प्रबंध ठीक न हो, अधिक रहती है।

ग) **मिट्टी के संपर्क से** : इस मामले में संवेदनशील ऊतकों का प्रत्यक्ष रूप से संक्रमण कारकों या मिट्टी, कूड़े-खाद, सड़ी वनस्पति वस्तुओं में उपस्थित संक्रमण के संपर्क में आने से संक्रमण दूसरे परपोषी तक सम्प्रेषित हो जाता है। इनके कुछ उदाहरण है अंकुश कृमि, टिटेनस तथा कवक संक्रमण।

घ) **श्लेषमल झिल्ली या त्वचा में टीका लगाना** : इसमें रोग के कारक श्लेषमल झिल्ली या त्वचा में सीधे ही प्रवेश कर लेते हैं। रेबीज विषाणु से होने वाला संक्रमण जो कि कुत्ते के काटने से होता है इसका एक उदाहरण है तथा हैप्टाइटिस बी व एड्स के विषाणु से होने वाला संक्रमण जोकि संदूषित सुई या सिरिंज से होता है इसके कुछ अन्य उदाहरण हैं। सिक्ता मक्खी (sand fly) के काटने से होने वाला काला आज़ार भी इसी तरह से संचरित होता है।

च) **गर्भ नालीय पार संचरण** (Transplacental Transmission) : इसमें रोगनजक माता के शरीर में से गर्भ नाल में जा सकते हैं। यह प्रत्यक्ष संचरण का ही एक प्रकार है। रुबैला (खसरा) तथा हर्पीज़ विषाणु, हैप्टाइटिस बी, सिफलिस तथा एड्स आदि ऐसे संक्रमणों के उदाहरण है जो कि माता के शरीर से गर्भ नाल में संचरित हो सकते हैं।

अप्रत्यक्ष संचरण (Indirect Transmission)

इस मामले में पहले रोग कारक किसी चीज़ के साथ बाहर आ जाते हैं और फिर वही कोई चीज़ उन्हें परपोषी में ले जाती है। सामान्यत: मक्खियाँ (flies), उंगलियाँ (fingers), संक्रमणी पदार्थ (fomites), भोजन (food) तथा मल (faeces) संचिति से मनुष्य तक अप्रत्यक्ष रूप से संक्रमण पहुँचाने के परम्परागत साधन हैं; यद्यपि, यह भिन्न-भिन्न तरीकों से हो सकता है।

क) **वाहक-संवाहित** (Vehicle-borne) : इसका अर्थ है कि संक्रमण कारक का संचरण कोई ऐसी चीज़ जो उसका वाहक है उसके द्वारा होता है जैसे — पानी व बर्फ, विभिन्न प्रकार के भोजन विशेष रूप से कच्ची सब्ज़ियाँ, फल, दूध व दूध से बने पदार्थ, रक्त सीरम (blood-serum) व प्लाज़्मा, जैविक उत्पाद जैसे ऊतक तथा अंग आदि। इन सबमें से पानी तथा भोजन व्यापक रूप से प्रयुक्त होने के कारण सबसे बड़े दोषी हैं। पानी व भोजन से फैलने वाले रोगों में अधिकतर जठरांत्र नली मार्ग के संक्रमण जैसे अतिसार, टाइफाइड ज्वर, हैज़ा, हैप्टाइटिस 'ए', खाद्य विषाक्तता तथा आंत्र परजीवी आदि आते हैं। रक्त से संचरित होने वाले रोगों में सामान्यत: हैप्टाइटिस 'बी', मलेरिया, सिफलिस तथा एड्स आते हैं। अंग प्रत्यारोपण (organ transplant) से भी अंग प्रापक के शरीर में रोग कारक प्रवेश कर सकते हैं।

ख) **रोग वाहक-संवाहित** (Vector-borne) : रोग वाहक (vector) एक जीवित वाहक होता है जोकि संक्रमण कारक को संवेदनशील व्यक्ति तक ले जाता है। यह संचरण यांत्रिक या जैविक कोई भी हो सकता है। यांत्रिक (mechnical) संचरण में रोग वाहक केवल रोगजनक को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने अर्थात वाहक का कार्य करता है। उदाहरणतया, संक्रामक पदार्थ का मक्खी के पैरों या नासिका पर चिपकना या उसके जठरांत्र मार्ग में जाकर और फिर उसके मल के साथ खाद्य सामग्री को दूषित करना। इसमें रोग वाहक के ऊपर या उसके अंदर रोगजनक या रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं का विकास या बहुगुणन नहीं होता है। जैविक (biological) संचरण में रोगनजक रोग वाहक के अंदर ही एक विकासशील क्रम या बहुगुणन की प्रक्रिया से गुज़रता है। इसके लिए उसे संक्रमण कारक को परपोषी तक पहुँचाने के पूर्व उद्भवन अवधि (incubation period) की आवश्यकता होती है। मलेरिया परजीवी एक ऐसे रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु का उदाहरण है जो जैविक रूप में एक रोगवाहक अर्थात् मच्छर से संचरित होता है। हमारे यहाँ अकशेरुकी रोगवाहक (invertebrate vectors) है जैसे - मक्खी, मच्छर, पिस्सू, जूँ, खटमल, टिक्स और चिंचड़ी तथा कशेरुकी रोग वाहक भी हैं जैसे चूहे तथा चमगादड़।

ग) **वायु-संवाहित** (Air-borne) : वायु से होने वाले संक्रमण दो प्रकार के होते हैं। इनमें से एक है बिन्दुक केन्द्रक (droplet-nuclei) द्वारा होने वाला संक्रमण जोकि बिन्दुक के अवशेष सूखे छोटे-छोटे कण होते हैं जो या तो हवा में खाँसने या छींकने के कारण बने बिन्दुकों के वाष्पीकरण के कारण बनते हैं या वायु-विलय (aerosol) द्वारा सोद्देश्य उत्पन्न किए जाते हैं। ये आकस्मिक रूप से सूक्ष्म जैविकी प्रयोगशालाओं, कसाईखानो या शव परीक्षा कक्षों में भी बन सकते हैं। बिन्दुक केंद्रक लम्बे समय के लिए हवा में रह सकते हैं। इस अवधि में कुछ तो सुरक्षित रहते हैं और कुछ की संक्रमण क्षमता या उग्रता समाप्त हो जाती है, व कुछ की बची रह जाती है। ये हवा में तैरते रहते हैं तथा वायु के प्रवाह के साथ दूरदूर तक जा सकते हैं। इन बिन्दुक केंद्रक द्वारा फैलने वाले कुछ रोगों के नाम हैं — टी.बी. छोटी चेचक, खसरा, Q ज्वर, इंफ्लुएंजा तथा अन्य श्वसन संक्रमण।

वायु से होने वाले संक्रमणों का दूसरा रूप है — धूल। बातचीत करते समय, खाँसते या छींकते समय बड़ी बिन्दुक अपने वजन के कारण नीचे फर्श, कालीन, फर्नीचर, कपड़ों, बिस्तरों तथा आसपास की अन्य वस्तुओं पर गिर जाती है और धूल का एक हिस्सा बन जाती है। बहुत से रोगजनक जीवाणु, विषाणु तथा कवक के बीजाणु और त्वचा की शल्की कोशिकाएँ अस्पतालों के वार्डों तथा रहने के कमरों की धूल में पायी जाती हैं। कुछ रोगजनक तो अनुकूल तापमान तथा नमी मिलने पर धूल में काफी समय तक जीवित रह सकते हैं। झाडू लगाते, धूल पोंछते व बिस्तर झाड़ते समय धूल फिर से हवा में आ जाती है। धूल के कण तो हवा द्वारा मिट्टी में भी उड़कर हवा में आ सकते हैं जिनमें कवक जीवाणु भी शामिल हो सकते हैं। संक्रमित धूल से होने वाले रोगों में स्ट्रेप्टोकॉकस संक्रमण (निमोनिया, स्कारलेट ज्वर, रुमैटी ज्वर व गले के संक्रमण) तथा स्टैफीलोकॉकल संक्रमण (जैवीय खाद्य विषाक्तता), Q—ज्वर (टिक्स द्वारा संचरित) तथा शुक्रोग (Psittacosis) (पक्षियों द्वारा व विशेष रुप से तोतों द्वारा मनुष्यों में फैलता है तथा इसके लक्षण इंफ्लुएंजा जैसे होते हैं) आदि सम्मिलित हैं। वायुवाहित धूल मुख्य रुप से श्वास में जाती है। यह बिना ढके खाद्य पदार्थों, दूध, पानी पर भी जमकर उनको संदूषित कर सकती है। अत: खाद्य पदार्थों, दूध व पानी को ढककर रखना बहुत आवश्यक है।

घ) **संक्रमणी पदार्थ जन्य** (Fomite-borne) : पानी व भोजन को छोड़कर अन्य निर्जीव वस्तुए या पदार्थ जो कि रोगी के संक्रामक विसर्जन से संक्रमित हो जाती है तथा संक्रमण कारकों को अपने में शरण देती है तथा बाद में उन्हें आगे किसी स्वस्थ मनुष्य को दे देती है, संक्रमणी पदार्थ कहलाती है। इनमें गंदे कपड़े, तौलिये, चादरें, रुमाल, कप, चम्मच, पैंसिल, किताबें, खिलौने, पानी के गिलास, दरवाजे के हैंडिल, नल, शौचालय की जंजीरें, सिरिंज, शल्य मरहम पट्टी तथा यंत्र — या यूँ कहें कि लगभग वे सभी चीजें जो आपके हाथ या शरीर के रंध्रों के संपर्क में आती हैं, सम्मिलित हैं। संक्रमणी पदार्थों से संचरित होने वाले रोगों में डिप्थीरिया, टाइफाइड ज्वर, बैसिलरी पेचिश, हैप्टाइटिस ए, आँख तथा त्वचा के संक्रमण आदि आते हैं।

च) **अस्वच्छ हाथ व उँगलियाँ :** ये संक्रमण फैलाने के सबसे साधारण साधन हैं। संक्रमित कारकों का संचरण या तो प्रत्यक्ष रूप से हो सकता है जैसे कि संक्रमित उँगली मुँह में डालने से या घाव को संक्रमित उंगली से साफ करने से होता है या फिर अप्रत्यक्ष रूप से — संक्रमित हाथों से भोजन, पानी, बर्तन या चादर संदूषित करके होता है। इस प्रकार से फैलने वाली कुछ आम बीमारियाँ हैं—टाइफाइड, अतिसार, हैप्टाइटिस ए, तथा आंत्रीय परजीवी। मात्र गंदे हाथों तथा उंगलियों से ही पूरी महामारी फैल सकती है।

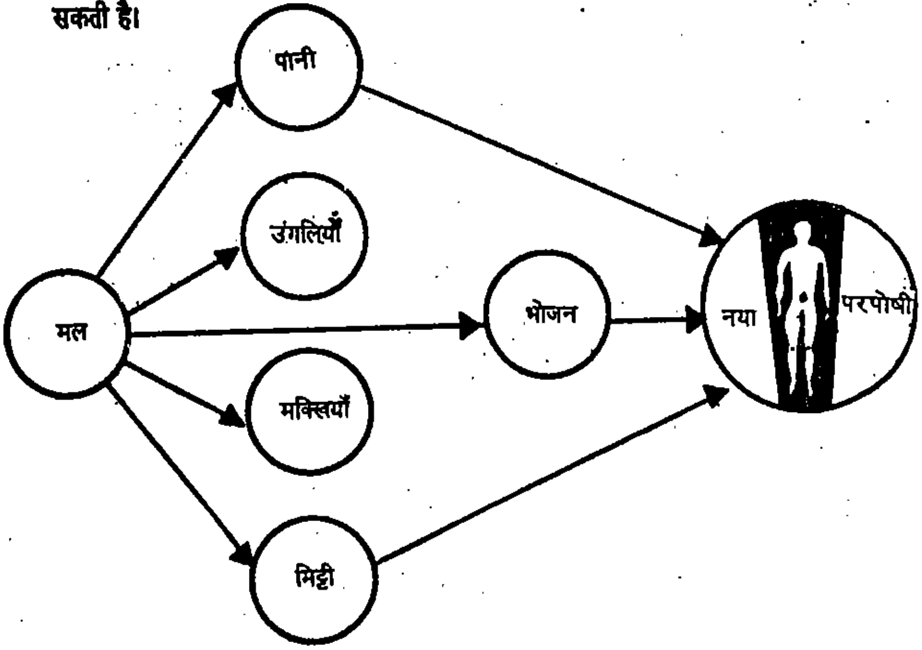

संचरण के साधन

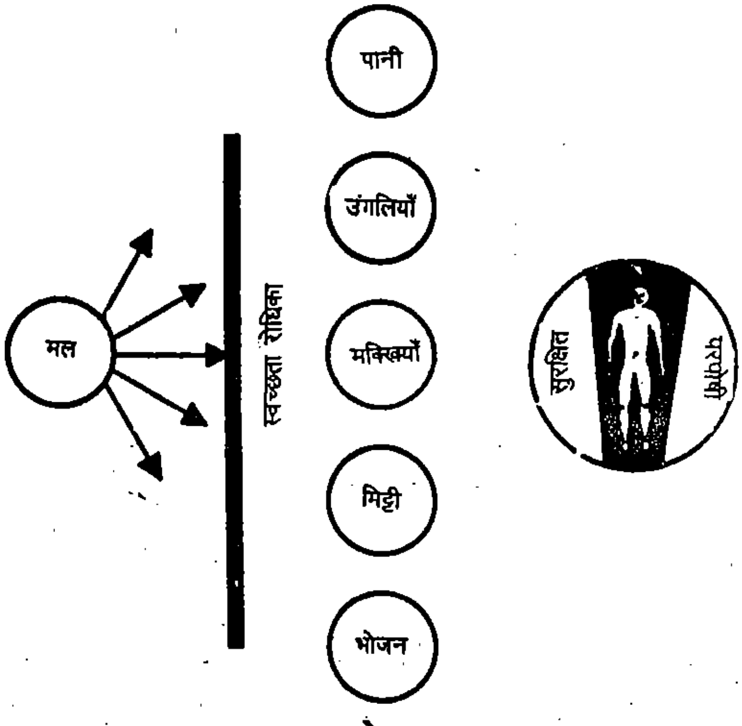

रोकथाम

अब हमने जब देख लिया है कि किस प्रकार संक्रमण संचिति या स्रोत से परपोषी तक जाते हैं, अब आगे देखें कि वह उस परपोषी में प्रवेश कैसे करते हैं परन्तु उससे पहले आइए कुछ अभ्यास करें।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित के नाम लिखिये :

क) चार प्रकार के संक्रमण जो व्यक्तियों में प्रत्यक्ष व निकट संपर्क से फैलते हैं।

....

....

....

....

ख) दो प्रकार के संक्रमण जोकि संक्रमित धूल के संपर्क में आने से हो सकते हैं।

....

....

....

....

ग) चार रोग जोकि बीमार व्यक्ति के पास बैठकर बातचीत करने से फैल सकते हैं।

....

....

....

घ) दो बीमारियाँ जो संक्रमित सिरिंजों या रक्त से फैल सकती हैं।

....

....

....

च) चार बीमारियाँ जो भोजन या पानी से संचरित होती हैं।

....

....

....

....

संवेदनशील परपोषी में प्रवेश के तरीके

शरीर में रोगजनक प्रवेश करने के मुख्य तरीके अथवा रास्ते निम्नलिखित हैं :

श्वसन नली जिसमें नाक, मुँह, गला तथा फेफड़े सम्मिलित हैं। वायु वाहित सारे संक्रमण इसी रास्ते से प्रवेश करते हैं। जठरांत्र नली वह रास्ता है जिससे भोजन व पानी या परपोषी के मुँह में प्रवेश कर पाने वाले सारे रोगजनक मानव शरीर में प्रवेश करते हैं। परपोषी में रोगजनक के प्रवेश करने का यह सर्वाधिक सामान्य तरीका है।

जननमूत्र नली (genitourinary tract), जिसमें कि पुरुष, स्त्री के लैंगिक अंग आते हैं। एड्स एवं सिफलिस जैसे रोगों के रोगजनक इसी रास्ते से प्रवेश करते हैं।

त्वचा–कोढ़ तथा खुजली जैसे रोगों (जोकि प्रत्यक्ष संपर्क से फैलते है) या रैबीज़ (जोकि वाहित रोग है) के संक्रमित कारकों को प्रवेश उपलब्ध कराती है।

आँखों, मुँह व नाक की श्लेष्मल झिल्ली। जुकाम, डिप्थीरिया, काली खाँसी तथा विस्फोटक ज्वर जैसे संक्रमणों के रोगजनक इस रास्ते से परपोषी के शरीर में प्रवेश करते हैं।

संक्रमण एवं रोगों की रोकथाम व नियंत्रण

रोग विशेष की रोकथाम एवं नियंत्रण का अंतिम उद्देश्य एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र से उस रोग को समाप्त कर देना है। इसको उन्मूलन (eradication) कहते हैं। किसी रोग का पूर्ण रूप से उन्मूलन

करने के लिए उसका पृथ्वी पर से नामोनिशान खत्म हो जाना आवश्यक है अर्थात विश्वव्यापी उन्मूलन। अब तक केवल चेचक एक ऐसा रोग है जिसका विश्वव्यापी उन्मूलन किया जा चुका है। इस उद्देश्य के लिए पूरे विश्व का इसमें सम्मिलित होना ही इस बात का संकेत है कि इसमें आने वाली समस्याओं की कितनी जटिलता होती है। 50 वर्षों से अधिक तपेदिक को नियंत्रित करने के प्रयत्न के बाद भी विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अभी इसे विश्वव्यापी आपात्स्थिति घोषित किया है 1 मई 1993 के इंडियन एक्सप्रेस की रिपोर्ट —ने चेतावनी दी है कि यदि इसके फैलने को रोकने के लिए तत्काल कदम नहीं उठाये गये तो अगले दशक में टी.बी. से 3 करोड़ जानें इसी रोग के कारण जा सकती है। फिर भी किसी रोग को फैलने से रोकना, नियंत्रित करना तथा किसी क्षेत्र विशेष, शहर, क्षेत्र या देश से उन्मूलित करना संभव है परन्तु नियंत्रित करने के उपाय उस रोग विशेष की आवश्यकताओं के अनुरूप होने आवश्यक है। इस पाठ्यक्रम के सीमित लक्ष्य को देखते हुए हम सामान्य रूप से इस विषय में चर्चा करेंगे कि किसी रोग या संक्रमण को फैलने से रोकने या नियंत्रित करने के लिए हम क्या कर सकते हैं। उसके लिए मारे प्रयत्न निम्नलिखित होने चाहिए :

क) संक्रमण कारक को उसके संचिति या स्रोत स्थल पर ही तब तक नष्ट करना या वही सीमित रखना तब तक जब तक कि नया परपोषी न मिल पाने के कारण वह वही मर न जाए।

ख) रोग या संक्रमण को नए परपोषी तक न पहुँचने देना अर्थात् उसके संचरण को हर संभव उपाय से रोकना।

ग) परपोषी को संक्रमण या रोग से बचाने के लिए उसे स्वस्थ व हृष्ट-पुष्ट बनाना जिससे कि वह संक्रमण या रोग से प्रभावित न हो।

कारक, स्रोत या संचिति को नियंत्रित करना

नियंत्रण का सबसे अनुकूल व वांछनीय उपाय होगा कि रोग के कारक को उसके स्रोत या संचिति पर ही नष्ट करना। यह पशुओं, निर्जीव स्रोतों या संचिति के संबंध में तो आसान है परन्तु मानव संचिति के मामले में बहुत कठिन है। इस अवस्था में रोकथाम एवं नियंत्रण के दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू हैं — जल्दी से जल्दी रोग के लक्षणों की पहचान तथा स्वास्थ्य अधिकारियों को इसकी सूचना देना कि विशेष रोग के मामले का पता लगाया गया है। रोग के मामले का जल्दी से जल्दी पता लगाना तथा उसका उपयुक्त उपचार करना प्राथमिक रूप से सबसे महत्वपूर्ण है। जहाँ तक स्वास्थ्य अधिकारियों को सूचित करने का प्रश्न है कुछ विशेष रोगों के विषय में कानून में उनकी सूचना देना अनिवार्य कर दिया है। ऐसे अधिसूचित रोगों की सूची प्रत्येक देश में अलग-अलग है। अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य नियमनों (आई. एच. आर.) के अंतर्गत हैज़ा, प्लेग तथा पीत ज्वर के किसी भी मामले को विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू. एच. ओ.) को सूचित करना आवश्यक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन जूँ से होने वाले टाइफस, बार-बार होने वाले ज्वर, पक्षाघात, पीलिया, मलेरिया तथा विषाणु संक्रमणों आदि पर भी निगरानी रखता है। एक बार जब रोग की पहचान हो जाती है और उसका पता लग जाता है तब आवश्यक होने पर संबंधित अधिकारियों को सूचित करके हमें उसके फैलने को नियंत्रित करने तथा रोग की रोकथाम के लिए कदम उठाने चाहिए। संभवत: यह रोग की प्रकृति पर निर्भर होगा। सामान्य रूप से निम्नलिखित उपाय करने चाहिए।

रोगी या संक्रमण को दूसरों से अलग करना : यह संक्रामक रोगों को फैलने से रोकने की सबसे प्राचीन पद्धति है। आप लोगों में से जिन्होंने 'रोमियो और जूलियट' की कथा पढ़ी है उन्हें याद होगा कि किस प्रकार उन लोगों को, जिन्हें प्लेग हो गया था, उन्हीं के घरों के अंदर बंद करके मरने के लिए छोड़ दिया गया था। उन दिनों में वे लोग भयानक रोग को फैलने से बचाने के लिए केवल यही कर सकते थे। वियोजन (isolation) करने में संक्रमित व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से उस अवधि के लिए अलग कर दिया जाता है जिसमें कि रोग संक्रामक होता है या उस रेस्टोरैन्ट को बंद कर दिया जाता है जहाँ कि खाद्य विषाक्तता पाई गई हो। वियोजन किस प्रकार का होगा, यह रोग की गंभीरता तथा उसके फैलने के तरीके पर निर्भर करता है। किसी रोगी को औरों से अलग करने का सबसे अच्छा तरीका है उसे अस्पताल में भर्ती कराना। संक्रामक रोगों के लिए अलग अस्पताल बनाये गये हैं। साथ ही साधारण अस्पतालों में इस प्रकार के संक्रामक रोगों के लिए अलग वार्ड की व्यवस्था भी होती है। वियोजन का एकरूप यह भी हो सकता है कि त्वचा के संक्रमण से पीड़ित बच्चे को ठीक न होने तक स्कूल आने की अनुमति न दी जाए या अतिसार से पीड़ित रोगी को रसोई में काम न करने दिया जाए। घरों में जहाँ सामान्यत: छोटी चेचक, कनपेड़े, टाइफाइड, हैप्टाइटिस आदि से पीड़ित रोगी रहते हैं तथा उनका इलाज व देखभाल की जाती है वहाँ भी हम वियोजन की पद्धति को अपना सकते हैं व परिवार के अन्य व्यक्तियों, विशेष रूप से छोटे बच्चों को, संक्रमण से बचा सकते हैं। इस संबंध में कुछ सावधानियाँ निम्नलिखित हैं :

क) जहाँ तक संभव हो रोगी को अलग कमरे मे रखें जिसमें कि हवा के आवागमन की अच्छी व्यवस्था हो।

ख) यदि आवश्यक हो तो परिचारक को अपने आपको रोग से प्रतिरक्षित (immunize) करवा लेना चाहिए तथा परिवार के अन्य सदस्यों, (विशेष रूप से छोटे बच्चों) के साथ स्नान किए बिना व कपड़े बदले बिना उठना बैठना नहीं चाहिए।

ग) रोगी का साबुन, तौलिया तथा धोने वाली चीजें अलग होनी चाहिए।

घ) रोगी द्वारा प्रयुक्त सभी कपड़े तथा चादरें आदि बिल्कुल अलग रखी जानी चाहिए तथा उन्हें अलग ही धोया जाना चाहिए तथा यदि संभव हो तो परिचारक को ही उन्हें धो देना चाहिए।

च) रोगी द्वारा प्रयुक्त सभी बर्तन अलग रखे जाने चाहिए व अलग ही धोए जाने चाहिए, संभव होने पर इन्हें भी परिचारक को ही धोना चाहिए ।

छ) सभी कपड़ों, कागज़ तथा रुई, ऊन आदि जिनका प्रयोग रोगी की सफाई के लिये किया गया हो तथा जोकि फेंके जाने के लिए हों उनको सामान्य कूड़ेदान में न फेंककर जला दिया जाना चाहिए।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वियोजन व्यवस्था कितने कड़े रूप में अपनाई जाए, यह संक्रमण की गंभीरता पर निर्भर करता है। साधारण गले के संक्रमण के लिए यह पर्याप्त होगा कि रोगी के पानी का गिलास, चाय का कप, चम्मच तथा प्लेट व तौलिया, साबुन अलग कर दिया जाए व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि वह बच्चों व अन्य संवेदनशील वाले व्यक्तियों के पास अधिक न आए।

कितनी अवधि के लिए वियोजन किया जाए, यह इस पर निर्भर करता है कि कितने समय तक रोग संचरित हो सकता है यानी कि रोग संचरण की अवधि क्या है (देखें तालिका 4.1)। डिप्थीरिया, हैज़ा, स्ट्रैपटोकॉकल श्वसन संबंधी रोगों, निमोनिया, प्लेग आदि रोगों में रोग के नियंत्रण के लिए वियोजन महत्वपूर्ण है। फिर भी रोग के ऐसे मामलों में जहाँ अधिकतर लक्षणहीन संक्रमण होता है तथा वाहक अवस्था लम्बी होती है जैसे पोलियो, टायफाइड तथा हैप्टाइटिस वहाँ पर कड़े से कड़े वियोजन भी रोग को फैलने से नहीं रोक सकता है। ऐसे रोगों के मामले में जहाँ रोग की सबसे संक्रामक स्थिति रोग के लक्षण दिखाई देने से पहले ही आ जाती है वहाँ वियोजन लागू करना बिल्कुल बेकार होगा क्योंकि जब तक आप बीमारी का पता लगा पाएंगे तब तक तो रोगी कई और व्यक्तियों को संक्रमित कर चुका होगा। कनपेड़े इसी प्रकार के रोग का उदाहरण है।

संगरोध (Quarantine) एक तरह की वियोजन प्रक्रिया है जिसमें आप संक्रामक कारकों, संक्रमित व्यक्तियों या ऐसे व्यक्तियों को जो किसी विशेष संक्रमण से अरक्षित (exposed) रहे हों या अन्य संक्रमण में आलिप्त व्यक्तियों या रोग वाहकों को संवेदनशील क्षेत्र या जन सामान्य में प्रवेश से रोक देते हैं। संगरोध की अवधि रोग के उद्‌भवन की सबसे लम्बी संभावित अवधि के बराबर होती है। संगरोध उपाय, रोग को फैलने से रोकने के लिए, किसी व्यक्ति, पानी के जहाज़, हवाई जहाज़, रेलगाड़ी, सड़क पर चलने वाले वाहनों, यातायात के अन्य साधनों या डिब्बों, पौधों, बीजों और साथ ही साथ पशुओं में भी लागू किए जा सकते हैं। संगरोध भौगोलिक स्थानों, सामान्यत: संवेदनशील क्षेत्रों, जोकि संबंधित कारकों से मुक्त हों, के प्रवेश स्थलों पर लागू किया जाता है। यह छूत की बीमारियों को विश्व के विभिन्न भागों में फैलने से रोकने का सबसे प्रभावी उपाय है। इसका प्रयोग किसी भौगोलिक क्षेत्र में पौधों तथा पशुओं के रोगों के प्रवेश को रोकने के लिए किया जाता है।

तालिका 4.1 : वियोजन की प्रस्तावित अवधियाँ

रोग		वियोजन की अवधि
छोटी चेचक	:	जब तक सभी घावों पर पपड़ी न आ जाए। सामान्यत: दाने निकलने के छह दिन बाद
खसरा	:	नज़ले-जुकाम संबंधी अवस्था से लेकर दाने निकलने के तीसरे दिन तक
जर्मन खसरा	:	कोई नहीं। केवल गर्भावस्था के पहले त्रिमास में स्त्रियों तथा यौन संबंधों में सक्रिय, अप्रतिरक्षित स्त्री जो गर्भ धारण के वर्षों में हैं और गर्भ-निरोध उपाय नहीं अपना रही हैं, इन सबको इससे बचकर रहना चाहिए
हैज़ा	:	टैटरासाइक्लीन प्रारंभ करने के तीन दिन बाद तक
डिप्थीरिया		एन्टीबायोटिक लेने के 48 घंटे बाद तक या उपचार के बाद नकारात्मक संवर्ध (cultures) तक
शिगैलोसिस	:	लगातार तीन नकारात्मक मल संवर्ध तक
हैप्टाइटिस	:	तीन सप्ताह
इन्फ्लुएंज़ा ए	:	शुरू होने के तीन दिन बाद तक
पोलियो	:	2 सप्ताह (वयस्क) 6 सप्ताह (बच्चे)
टी बी (स्प्यूटॅम+)	:	प्रभावी रसायन-चिकित्सा (chemotherapy) के तीन सप्ताह बाद तक

हर्पीसज़ौस्टर (Herpes Zoster)	:	दाने निकलने के 6 दिन बाद तक
कनपेड़ (Mumps)	:	जब तक सूजन न ठीक हो जाए
काली खाँसी	:	4 सप्ताह या जब तक दौरे (paroxysms) बंद न हो जाए।
मैनिनगोकॉकल तामिका-शोथ (meningitis) प्रसनी-शोथ (pharyngities)		जब तक कि प्रभावी एन्टीबायोटिक के पहले 6 घंटे पूरे न हो जाएं।

रोग के कारकों को स्रोत या संचिति में ही नष्ट करना

इससे फैलने वाले उपलब्ध रोगजनक कारकों की मात्रा के उन्मूलन में सहायता मिलेगी। मानव स्रोत के मामले में, व्यक्ति विशेष को उपयुक्त दवाइयाँ देकर व आवश्यक समझे जाने पर अन्य संवेदनशील व्यक्तियों के साथ उठने-बैठने से रोक कर इस उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है। पशु स्रोत के मामले में, यदि रोग गंभीर है तो पशु विनाश करना ही होगा जैसे रैबीज़ वाले कुत्ते को तथा प्लेग की शंका होने पर चूहों को। उपचार तथा वियोजन का उपयोग, संभवत: कम खतरे वाले मामलों में किया जा सकता है। निर्जीव स्रोतों या संचिति की देखभाल करना अपेक्षाकृत अधिक सरल है। ऐसे में वस्तु या सामग्री विशेष को ही ऊष्मा या रासायनिक कारकों से नष्ट किया जा सकता है या उसे रोगाणुरहित या संक्रमण हीन बनाया जा सकता है। इन सभी प्रक्रियों का अंतिम लक्ष्य रोगजनक कारकों का नष्ट करना ही है।

ऊष्मा से नष्ट करना : उच्च तापमान पर ऊष्मा जीवाणु को बहुत जल्दी मार देती है। परन्तु बीजाणुओं (स्पोरों) को मारने के लिए अधिक समय तक ताप में रखने की आवश्यकता होती है। आर्द्र ऊष्मा (moist heat), शुष्क ऊष्मा (dry heat) से अधिक कार्यकुशल होती है क्योंकि गर्म पानी या भाप जीवाणु व बीजाणु को अधिक कार्यकुशलता से भेद (penetrate) सकती है। आर्द्र ऊष्मा निम्नलिखित विभिन्न तरीकों से प्रयोग में लाई जा सकती है:

पानी को उबाल कर : 5 मिनट तक उबलता हुआ पानी बैक्टीरिया को मारने के लिए पर्याप्त है। 20 मिनट में लगभग सभी ऐसे बीजाणु मर जाते हैं जोकि मनुष्य के लिए खतरनाक/हानिकारक होते हैं।

पास्च्युरीकरण : यह कुछ विशेष रोगजनक जीवाणुओं को मारने की विधि है। इसमें पास्च्युरीकृत की जाने वाली वस्तु को तीव्रता से ऐसे तापमान तक ले जाया जाता है जिस पर जीवाणु तो मर जायें परन्तु वस्तु खराब न हो। यह पद्धति दूध तथा दूध के उत्पादों को कीटाणु-रहित करने के लिए प्रयोग में लाई जाती है। आप पास्च्युरीकृत दूध, पास्च्युरीकृत आस्वादित (flavoured) दूध तथा पास्च्युरीकृत चीज़ से तो परिचित हैं ही।

भाप : सामान्य दाब पर जीवाणु नाशक यंत्र (sterilser) में पानी को 100 डिग्री सैंटीग्रेड तक उबालने से जो भाप उत्पन्न होती है वह बीजाणु को 20 मिनट में तथा अधिकांश बीजाणुओं को 90 मिनट में नष्ट कर सकती है। जब भाप दाब में उत्पन्न की जाती है जैसा कि आटोक्लेव में होता है तो यह बीजाणुओं को 15 मिनट में नष्ट कर सकती है। ऐसी वस्तुओं को, जोकि प्रयोग की प्रक्रिया में गीली हो जाती है, तथा उन्हें गर्म व सूखी हवा में सुखाने की आवश्यकता होती है, यह कीटाणु-रहित करने के लिए इस विधि की आवश्यकता होती है। इस प्रकार से रोगाणु-रहित करने की विधि घर पर प्रयुक्त नहीं हो सकती।

शुष्क ऊष्मा : इसका प्रयोग निर्जीव स्रोत या संचिति को नष्ट करने या रोगाणु-रहित करने के लिए सरलता से किया जा सकता है। यह निम्न विधियों से किया जा सकता है :

- जलाकर — जोकि संक्रमित सामग्री को नष्ट करने का सबसे अच्छा व सबसे आसान तरीका है।
- गर्म हवा का प्रयोग करके — जोकि जीवाणु को मार देती है परन्तु यह विधि बहुत प्रभावी नहीं है क्योंकि गर्म हवा आसानी से वस्तु के अंदर नहीं प्रवेश कर पाती है। यह शीशे के बर्तनों व धातु के बर्तनों को रोगाणु-रहित करने के लिए अधिक उपयुक्त है।

सूखा कर (Drying) नष्ट करना : कुछ सूक्ष्मजीव जैसे मैनिनजाइटिस फैलाने वाले सूक्ष्मजीव सुखाये जाने पर शीघ्र ही मर जाते हैं। फिर भी बहुत से जीवाणु जैसे टी.बी. का बैसिलस धूल में बहुत समय तक जीवित रह सकता है तथा इसके बीजाणु सुखाये जाने पर भी लगभग अनिश्चित काल तक जीवित रह सकते हैं।

सूर्य की रोशनी से नष्ट करना : सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणें बहुत से जीवाणुओं को नष्ट करने की शक्ति रखती हैं। हमारे देश में (जब संबंधित संक्रमण बहुत गंभीर न हो तो) वस्तुओं को रोगाणु-रहित बनाने का यह एक बहुत ही सामान्य तरीका है। संक्रमण के गंभीर होने पर अन्य सख्त तकनीकों को अपनाना पड़ेगा।

रासायनिक रोगाणुनाशियों एवं एन्टीसेप्टिकों (antiseptics) से नष्ट करना : रोगाणुनाशी जीवों को मारते हैं जबकि ऐन्टीसेप्टिक उनको मारे बिना केवल उनकी वृद्धि में बाधा (अंकुश) डालते हैं। अधिकतर रोगाणुनाशी मानव शरीर के लिए विषाक्त होते हैं अत: मानव संचिति के मामलों में उनका प्रयोग बहुत सीमित है तथापि उनको कई अन्य तरीकों से प्रयोग में लाया जा सकता है। अम्ल (acids) तथा क्षारों (alkalies) का हल्का घोल अच्छा ऐन्टीसेप्टिक होता है परन्तु यह अच्छा रोगाणुनाशी नहीं है। मर्क्यूरिक लवण सबसे पहले रोगाणुनाशी व ऐन्टीसेप्टिक थे जिनका प्रयोग शल्य-चिकित्सा में किया जाता था। हैलोजेन यौगिक (halogen compounds) जैसे आयोडीन और क्लोरीन का प्रयोग अभी भी किया जाता है — आयोडीन का त्वचा को रोगाणुमुक्त करने के लिए तथा क्लोरीन का पानी को रोगाणु-रहित करने के लिए। ऑक्सीकारक (oxidizing agent) जैसें ओज़ोन तथा हाइड्रोजन पैराक्सासइड रोगाणु-रहित करने हेतु आक्सीजन को मुक्त करने के लिएअपनी शक्ति का प्रयोग करते हैं। त्वचा व अन्य बहुत सी वस्तुओं पर से अधिकांश रोगाणुओं को हटाने का सबसे अच्छा उपाय साबुन है। अस्पतालों में प्रयुक्त यंत्रों को रोगाणुरहित बनाने के लिए मैथिलेटिड स्प्रिट या सर्जिकल स्प्रिट के रूप में अल्कोहल का प्रयोग किया जाता है। कोलतार से निकाले गये कच्चे कार्बोलिक के साथ-साथ फिनायल तथा क्रीसॉल भी रोगाणुनाशक के रूप में कार्य करते हैं। शुद्ध फिनायल या कार्बोलिक एसिड जब 100 भाग घोल में 1 भाग में प्रयोग किया जाए तो यह जीवों को लगभग बीस मिनट में मार देता है। क्रीसॉल से बने सबसे अच्छे रोगाणुनाशक का उदाहरण लाइसोल है जिसका प्रयोग सामान्य रूप से संदूषित वस्तुओं को रोगाणुरहित बनाने के लिए किया जाता है। एनिलाइन वर्णों (dyes) जैसे कि ''फ्लैवाइन'' तथा ''जैनटियन वायलेट'' उपयोगी रोगाणुनाशक है जिनका चिकित्सीय पेशे में बहुत प्रयोग किया जाता है।

फिल्टरन (Filteration) द्वारा संक्रमण कारकों को अलग करना : बहुत छोटे-छोटे व सूक्ष्म छिद्रों वाले फिल्टरों पर जब तरल पदार्थ डाला जाता है तब वह जीवाणु को तो रोक सकते हैं परन्तु समस्त विषाणुओं को रोक पाने का सामर्थ्य नहीं रखते। यह फिल्टर विभिन्न पदार्थों के बनाये जाते हैं जैसे डायटमी मृत्तिका (diatomaceous earth), अकाचित पॉर्सिलेन (unglazed porcelain) तथा एसबैसटॉस। सबसे महीन अकाचित पॉर्सिलेन विषाणुओं को भी रोक सकती है। फिल्टरों का प्रयोग सामान्यत: संदेहात्मक शुद्धता वाले पानी को फिल्टर करने के लिए किया जाता है। विभिन्न प्रकार के फिल्टर भारतीय शहरी घरों में एक आम चीज़ बनते जा रहे हैं। फिल्टरों की आवधिक सफाई करना आवश्यक है क्योंकि अगर इसमें लापरवाही बरती जाए तो जीवाणु इन पर या इनमें ही उत्पन्न हो सकते हैं और फिर वह फिल्टर के ही संदूषण का एक स्रोत बना सकते हैं।

संक्रमण को फैलने से रोकना

रोग को फैलने से रोकने के हमारे प्रयासों का अर्थ है कि हमें उन तकनीकों को अपनाना पड़ेगा जोकि रोग के कारकों को स्रोत से संवेदनशील परपोषी तक पहुँचने में बाधा उत्पन्न करें। ये तकनीकें कौन-सी होंगी यह रोग के कारकों द्वारा स्वयं को संचरित करने के लिए अपनाए गये रास्तों व तरीकों पर निर्भर करेगा।

प्रत्यक्ष सम्पर्क से फैलने वाले रोगों में हमें हाथ व पैरों को उपयुक्त रूप से धोने व रोगी को अन्य व्यक्तियों से अलग करने की और अपने प्रयासों को निर्देशित करना होगा।

अप्रत्यक्ष संपर्क संचरण को रोग के फैलने से सम्बद्ध वस्तुओं को रोगाणु-रहित या विसंदूषित करके रोका जा सकता है। रोगी द्वारा प्रयुक्त वस्तुओं जैसे बर्तनों, चादरों या सिरिजों आदि को अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रयोग में लाई जा रही वस्तुओं से अलग करके संचरण को रोका जा सकता है।

ऐसे रोगों में जोकि बिन्दुक संक्रमण से फैलते हैं रोगी की परिचर्या करते समय मुखौटा पहनना लाभदायक होगा।

वायु-वाहित संचरण को स्रोत के नियंत्रण या अस्पतालों में हवा के स्रोतों में वायु फिल्टर लगा कर रोका जा सकता है। समुचित धूल नियंत्रण तथा सफाई-पुछाई धूल से होने वाले संक्रमणों को रोकेगी।

रोगवाहक-संवाहित संक्रमणो को रोग वाहकों जैसे टिक्स, पिस्सू व मच्छर आदि को समाप्त करके नियंत्रित किया जा सकता है।

परपोषी को संक्रमण व रोग से बचाना

संक्रमण या रोग के संचरण में तीसरी कड़ी संवेदनशील परपोषी या व्यक्तियों का समूह है, जिन्हें कि रोग होने का खतरा है। इसके लिए हमारे प्रयास परपोषी की रक्षात्मक प्रतिक्रिया (defence mechanism) को सुदृढ़ बनाने व व्यक्ति या समूह की संक्रमण का मुकाबला करने हेतु क्षमताओं को बढ़ाने की ओर निर्देशित होनी चाहिए।

इस संबंध में प्रकृति हमारी बहुत सहायता करती है। प्रकृति ने हमें बहुत-सी रक्षात्मक प्रतिक्रियाएँ प्रदान की हैं जोकि हमारे बिना जाने ही अपना काम प्रारंभ कर देती हैं। हमारी त्वचा संक्रमण के विरुद्ध एक यांत्रिक अवरोध का काम करती है। त्वचा तथा शरीर की अन्य एपीथीलियमी सतहें (epithelial surface) जीवाणुनाशी पदार्थ उत्पन्न करती है। आंखों से निकलने वाले आंसू ऑखों में से सूक्ष्म जीवों को धो निकालते हैं। नाक व नासीय मार्गों में सिलीया (celia) होता है जोकि साँस लेते समय अंदर जाने वाली हवा को फिल्टर करता है तथा श्लेष्म की पर्त किसी भी अंदर जाने वाले बाहरी जीव से बचाव करती है। स्थानीय सूजन भी एक रक्षात्मक प्रतिक्रिया है जिसमें रक्तधारा कोशिकाओं तथा प्रतिरक्षियों को संक्रमण स्थल तक संक्रमण से मुकाबला करने के लिए लेकर जाती है। कुछ आनुवांशिक विशेषतायें (genetic traits) भी विशेष प्रकार के संक्रमणों के खतरे को कम कर देती है। एक सुपोषित, व स्वस्थ शरीर भी संक्रमण, विशेष रूप से प्राय: हो जाने वाले सामान्य संक्रमणों जैसे जुकाम, गला खराब होना आदि के लिए रक्षात्मक युक्ति है। व्यक्ति की आदतें तथा निजी साफ-सफाई भी संक्रमण ग्रहण करने से सीधे संबंध रखती है। गंदी जगहों में पानी या भोजन न लेना, अनिश्चित कोटि का पानी या भोजन न लेना, अपने आपको साफ रखने, विशेष रूप से अपने शरीर को, हाथों को व पाँवों को, साफ रखने से संक्रमण के विरुद्ध बहुत बचाव होता है।

सभी रक्षात्मक प्रतिक्रियाएँ जोकि प्रकृति ने हमें प्रदान की हैं, वह कोई संक्रमण या रोग विशिष्ट के विरुद्ध नहीं है। परन्तु इनके साथ ही कुछ ऐसी रक्षात्मक प्रतिक्रियाएँ भी हैं जोकि किसी विशेष संक्रमण के विरुद्ध निर्देशित होती हैं। जरूरतों के अनुसार प्रकृति द्वारा प्रदत्त कुछ प्रतिक्रियाएँ या तो अल्पकालीन हैं या शायद जीवन पर्यन्त तक के लिए हैं, कुछ को हम अपने शरीर द्वारा उत्पन्न या अर्जित कर सकते हैं। इन रक्षात्मक प्रतिक्रियाओं को प्रतिरक्षा (immunity) कहा जाता है। जो प्रकृति प्रदान करती है वह प्राकृतिक प्रतिरक्षा (natural immunity) होती है तथा जो हम अपने आप उत्पन्न या अर्जित करते हैं वह कृत्रिम प्रतिरक्षी (artificial immunity) होती है। वह प्रक्रिया जिससे हम प्रतिरक्षा अर्जित करते हैं, प्रतिरक्षीकरण (immunization) कहलाती है।

जीवन पर्यन्त के लिए प्राकृतिक प्रतिरक्षा सामान्यत: व्यक्ति को एक बार रोग हो जाने के बाद ही विकसित होती है। कुछ मामलों में रोग के कारक परपोषी के शरीर में काफी समय तक निष्क्रिय रहते हैं तथा मौका पाते ही सक्रिय हो जाते हैं। हर्पीस सिम्पलेक्स विषाणु इसका एक अच्छा उदाहरण है। प्राकृतिक प्रतिरक्षा लक्षणहीन संक्रमण के बाद भी विकसित हो सकती है।

कृत्रिम प्रतिरक्षा, प्रतिरक्षीकरणा के परिणामस्वरुप विकसित होती है, चाहे वह सक्रिय (active) प्रतिरक्षीकरण हो अथवा निष्क्रिय (passive)।

सक्रिय प्रतिरक्षीकरण आधुनिक आयुर्विज्ञान का एक सबसे सशक्त व लागत-प्रभावी शस्त्र है। पोलियो, टिटेनस, डिप्थीरिया तथा खसरे जैसे रोगों के संक्रमण का नियंत्रण पूरी तरह इसी पद्धति पर आधारित है। इसमें एक विशेष प्रतिजनी पदार्थ - प्रतिजन (antigen) - को शरीर में डाल, संक्रमण विशेष के विरुद्ध प्रतिरक्षी प्रतिक्रिया (रोगप्रतिकारक (antibody) के उत्पादन के रुप में) उत्पन्न की जाती है। यह रोगप्रतिकारक उस विशिष्ट संक्रमण कारकों के विरुद्ध क्रिया कर, परपोषी के ऊतकों में उनका आक्रमण तथा उनके बहुगुणन को रुकते हैं या जीव-विष (toxin) के प्रभावों का निराकरण करते हैं (व्यर्थ कर देते है)। यह प्रतिजन अनिष्टकारी या विषाक्त कारकों के जीवितक्षीण स्वरूप हो सकते हैं जैसा कि पीत-ज्वर के टीके में होता है या वह ऐसे पदार्थ हो सकते हैं जोकि संक्रमण फैलाने में समर्थ तो नहीं रहते परन्तु रोगप्रतिकारक उत्पादन को उद्दीप्त कर सकते हैं। टाइफाइड व हैज़े के टीके इसके उदाहरण है, जिसमें अनिष्टकारी/विषाक्त जीवों को मार दिया जाता है (देखें तालिका 4.2 तथा 4.6)। कुछ अत्याधिक सामान्य रोग जोकि मनुष्य पर आक्रमण करते हैं उनके टीके, प्रतिरक्षा का उपयुक्त स्तर बनाये रखने के लिए, शैशवावस्था एवं प्रारंभिक बाल्यावस्था में नियतकालिक बूस्टर खुराक सहित दे दिये जाते हैं (देखें तालिका 4.3)।

तालिका 4.2 : क्षीण (attenuated) और नष्ट टीकों की तुलना

	क्षीण टीके	नष्ट किए गये टीके
टीके की खुराक	निम्न (प्रतिकृति)	उच्च
रोगप्रतिकारक की दृढ़ता (प्रतिरक्षा)	दीर्घकालीन	अल्पकालीन
बूस्टर की आवश्यकता	कभी-कभी	जल्दी-जल्दी
पुन: टीकाकरण	संभव	कोई नहीं

तालिका 4.3 : राष्ट्रीय प्रतिरक्षीकरण (टीकाकरण) अनुसूची (संशोधित)

लाभार्थी	आयु	टीका	खुराकों की संख्या	देने का मार्ग
शिशु	6 सप्ताह से 9 माह	डी. पी. टी.	3	अंत:मांसपेशी (intra-muscular)
		पोलियो	3	मुख से
		बी. सी. जी.	1	अंत:त्वचीय (intra-dermal)
	9 माह से 12 माह	खसरा		अधस्त्वचीय (subcutaneous)
बच्चे	16 से 24 माह	डी. पी. टी.	1**	अंत:पेशी
		पोलियो	1**	मुख से
	5 से 6 वर्ष	डी. टी.	1***	अंत:मांसपेशी
		टाइफाइड	2	अधस्त्वचीय
	10 वर्ष	टिटेनस टॉक्साइड	1***	अंत:मांसपेशी
		टाइफाइड	1***	अधस्त्वचीय
	16 वर्ष	टिटेनस टॉक्साइड	1***	अधस्त्वचीय
गर्भवती महिलाएँ	16 से 36 वर्ष	टाइफाइड	1***	अधस्त्वचीय
		टिटेनस टॉक्साइड	1***	अंत:मांसपेशी

* संस्थाओं द्वारा देने के लिए, बी.सी.जी. जन्म के समय ही दे दिया जाना चाहिए।

** बूस्टर खुराक

*** दो खुराक यदि पहले टीके नहीं लगाये गये हैं

टिप्पणी :

1. दो खुराकों के बीच का अन्तराल एक माह से कम नहीं होना चाहिए।
2. छोटी-मोटी खाँसी, जुकाम तथा हल्के बुखार आदि में टीके लगाने की मनाही नहीं है।

ऐसे रोग जोकि किसी भौगोलिक क्षेत्र विशेष में सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या बन जाते हैं जैसे अफ्रीका में पीत ज्वर, उनके लिए उपलब्ध टीके उसी क्षेत्र के व्यक्तियों को दिये जाते हैं या ऐसे समूह के व्यक्तियों को दिये जाते हैं जिन्हें रोग होने की बहुत अधिक संभावना रहती है। दुर्भाग्य से अभी तक हमारे पास प्रत्येक संक्रामक रोग के टीके उपलब्ध नहीं है परन्तु बहुत-सी बीमारियों के टीके हमारे पास हैं, जो नीचे तालिका में दिए गए हैं (देखें तालिका 4.4)।

तालिका 4.4 : टीकाकरण (Vacciuation)के कीर्तिमान

1798	—	छोटी चेचक की वैक्सीन
1885	—	रैबीज़ की वैक्सीन
1892	—	हैज़े की वैक्सीन
1913	—	डिप्थीरिया के विरुद्ध जीव-विष/प्रति-जीवविष टीकाकरण
*1921	—	बी.सी.जी.

*1923	—	डिफ्थीरिया टॉक्सॉयड
*1923	—	काली खाँसी की वैक्सीन
*1927	—	टिटेनस टॉक्साइड
1937	—	इन्फलुएंजा वैक्सीन
**1937	—	पीत-ज्वर की वैक्सीन (17 डी)
1949	—	कनपेड़े की वैक्सीन
1954	—	साल्क का पोलियो वैक्सीन
*1957	—	मुख द्वारा ली जाने वाली सबीन जीवित पोलियो वैक्सीन
*1960	—	खसरे की वैक्सीन
1962	—	रुबैला वैक्सीन
1968	—	टाइप सी मैनिंगोकॉक्स वैक्सीन
1971	—	टाइप ए मैनिंगोकॉकस वैक्सीन
1976	—	हैप्टाइटिस बी वैक्सीन

* ई.पी.आई. में सम्मिलित करने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा संस्तुत बाल्यावस्था के छह टीके

** रोग जोकि आई.एच.आर. के अधीन आते हैं तथा जिनके लिए टीकों की आवश्यकता होती है

स्रोत : विश्व स्वास्थ्य जरनल, फरवरी-मार्च, 1977

टीकाकरण/प्रतिरक्षीकरण बड़ी संख्या में व्यक्तियों को किसी रोग विशेष के प्रति सुरक्षित करने का साधन है। यह ऐसे व्यक्तियों, जोकि रोग के संभावित शिकार हो सकते हैं, की संख्या कम करके प्रतिरक्षा के झुण्ड प्रभाव (herd effect) को सुदृढ़ करता है। इसका अर्थ केवल इतना है कि किसी क्षेत्र विशेष से या जनसमूह विशेष से रोग को समाप्त करने के लिए वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति को टीका लगाना आवश्यक नहीं होता है। यदि आप जनसमूह के एक बड़े भाग को टीका लगा देते हैं तो पूरे समूह में रोग के प्रति संवेदनशीलता कम हो जाती है तथा संक्रमण यदि पूर्ण रूप से समाप्त नहीं होता तो फिर उसके आपतन बहुत कम हो जाता है। फिर भी टीकाकरण शत-प्रतिशत प्रभावी नहीं है, विशेष रूप से ऐसे व्यक्तियों में जो कि बड़ी मात्रा में रोगाणुओं से प्रभावित हैं।

टीकाकरण/प्रतिरक्षीकरण की योजना, स्थिति की आवश्यकतानुसार बनाई जानी चाहिए। बचपन से लेकर प्रौढ़ावस्था तक विभिन्न बीमारियों से बचाने के लिए बड़ी संख्या में आवश्यक टीके तथा उनकी बूस्टर खुराकों को देखते हुए वर्तमान विचारधारा यह है कि कई सारे टीकों को आपस में मिलाकर देना चाहिए जिससे कि व्यक्ति को टीका लगाए जाने हेतु इस्तेमाल की गई सुइयों की संख्या कम कर दी जाए जैसे ट्रिपल एन्टिजेन जिसे डी.पी.टी. भी कहते हैं क्योंकि इसमें तीनों रोगों — डिफ्थीरिया, काली खाँसी तथा टिटेनस — के विरुद्ध प्रतिजन होते हैं, या एम.एम.आर. जोकि मीजिल्स, कनपेड़े व रुबैला (जरमन मीजिल्स) की संयुक्त वैक्सीन है। यह महत्वपूर्ण है कि बच्चों को ऐसी आयु में टीके लगाये जाएं जबकि उनको इनका लाभ मिल सके अर्थात् जब वह उनके विरुद्ध रक्षाकवच बनाने की क्षमता रखते हों व माता से रोगप्रतिकारक प्राप्त न कर रहे हों। उनको संक्रमण से अरक्षित (exposes) होने से पहले ही टीके लगवा दिये जाने चाहिए (तालिका 4.5 देखें)।

तालिका 4.5 : डब्ल्यू. एच. ओ. ई. पी. आई. टीकाकरण अनुसूची
(जब प्रारंभ में ही सुरक्षा आवश्यक है)

आयु	वैक्सीन/टीका
जन्म के समय	बी.सी.जी., पोलियो (मुँह से)
6 सप्ताह	डी.पी.टी., पोलियो (मुँह से)
10 सप्ताह	डी.पी.टी., पोलियो (मुँह से)
14 सप्ताह	डी.पी.टी., पोलियो (मुँह से)
9 माह	खसरा

निष्क्रिय प्रतिरक्षीकरण (Passive immunization) : यह विशेष प्रतिरक्षी पदार्थों का शरीर में प्रवेश करा कर किया जा सकता है जोकि सीधे ही एक समयावधि के अंदर संक्रमण कारक के विरुद्ध काम करता है। यह किस प्रकार काम करता है, आइये इन्फेक्शस हैप्टाइटिस (जिसे कई बार पीलिया कहा जाता है जबकि पीलिया इसका केवल एक लक्षण है) के मामले को लेते हुए समझें। हैप्टाइटिस, जनसंख्या में काफी आम रोग होने के कारण, इसके विशेष रोगप्रतिकारक जन-समूह में उत्पादित है। जब आप बहुत से व्यक्तियों से एकत्रित किये गये रक्त प्लाज्मा में से प्रतिरक्षा ग्लोब्युलिन निकालेंगे तो उसमें संक्रामक हैप्टाइटिस के विरुद्ध संकेंद्रित रोगप्रतिकारक पाएंगे। इस प्रतिरक्षा ग्लोब्युलिन की एक खुराक एक व्यक्ति (जोकि निकट भविष्य में संक्रामक हैप्टाइटिस से अरक्षित होने वाला है), को दे तो उसे एक निश्चित अवधि के लिए हैप्टाइटिस से बचाया जा सकता है। लम्बी अवधि तक अरक्षित रहने से उसे फिर से आवधिक टीके लगवाने होंगे। यह केवल अल्प-कालिक सुरक्षा होती है तथा जन-साधारण में रोग के नियंत्रण में इसकी उपयोगिता बहुत सीमित है (देखें, तालिका 4.6)।

तालिका 4.6 : प्रतिरक्षी कारक

जीवित परन्तु क्षीण जीवाणुओं से बनी वैक्सीन/टीका	बी.सी.जी. टायफाइड (मुख से) प्लेग मौखिक पोलियो पीत-ज्वर	जीवाण्विक (Bacterial)
	खसरा रुबैला कनपेड़े इंफ्लुएंज़ा	विषाणुक (Viral)
	एपी टाइफस	रिकैटसियल
	टायफॉयड हैज़ा काली खाँसी प्रमस्तिष्कमेरु मैनिंनजाइटिस (Cerebrospinal meningities) प्लेग	जीवाण्विक
निष्क्रिय या नष्ट जीवाणु से बना वैक्सीन/टीका	रैबीज़, पोलियो इंफ्लुएंज़ा, हैप्टाइटिस बी, जापानी एंसि-प्लाइटिस (Japanese encephalities)	विषाणुक
टॉक्सॉयड्स	डिफ्थीरिया टिटेनस	जीवाण्विक
मानव प्रतिरक्षा ग्लोब्युलिन	हैप्टाइटिस ए खसरा	मानव विशेष प्रतिरक्षा-ग्लोब्युलिन
	रैबीज़ टिटेनस कनपेड़े हैप्टाइटिस बी छोटी चेचक डिफ्थीरिया	मानव विशेष प्रतिरक्षा-ग्लोब्युलिन
मानवेतर (एन्टी सेरा)	डिफ्थीरिया टिटेनस गैस गैंगरीन बोटूलिज्म	जीवाण्विक
	रैबीज़	विषाणुक

परपोषी की अपने आपको संक्रमण से बचाने की क्षमता को भी रसायन चिकित्सा कीमोथेरैपी से बढ़ाया जा सकता है। ऐसा, मनुष्य को संक्रमण होने से पहले ही रोगनिरोधन के रूप में दवा देकर भी किया जा सकता है, जिससे कि आक्रमण करने वाले आकस्मिक कारक जैसे ही व्यक्ति के अंदर प्रवेश करने का प्रयत्न करे वैसे ही उन्हें नष्ट कर दिया जाये। इसका उदाहरण टेटरासाइक्लीन है जोकि किसी को हैज़ा हो जाने पर सम्पर्क में आने वाले घर के अन्य व्यक्तियों को दिया जाता है। इसे रसायनिक रोगनिरोधन (chemoprophylaxis) कहते हैं (दिखें तालिका 4.7)।

तालिका 4.7 : रसायनिक रोगनिरोधन के लिए संकेत

रोग	रसायनिक रोगनिरोधन
हैज़ा	टैटरासाइक्लीन या फयूराजोलिडौन रोगी के संपर्क में आने वाले घर के व्यक्तियों के लिए
नेत्रश्लेष्मला शोथ, जीवाण्विक	एरिथ्रोमाइसिन आँख का मरहम (वायरल नेत्रश्लेष्मला शोथ) के लिए प्रभाव हीन
डिप्थीरिया	एरिथ्रोमाइसिन (तथा वैक्सीन/टीके की पहली खुराक)
इंफ्लुएंज़ा	एमान्टाडीन (केवल टाइप "ए" के लिए ही प्रभावी) रोगी के संपर्क में आने वाले के लिए जो चिरकालिक रोग से ग्रस्त है।
मैनिंनजाइटिस मैनिंगोकॉकल	सल्फाडायज़ीन केवल चार दिनों के लिए यदि प्रभेद (स्ट्रेन) घरवालों या निकट सामुदायिक संपर्कों के प्रति अप्रतिरोधी है।
	प्रतिरक्षीकरण सभी मामलों में प्रारंभ कर दिया जाना चाहिए (सीरों समूह ए और बी के प्रति)
प्लेग	प्लेग के सम्पर्क में आने वालों के लिए टैटरासाइक्लीन

यह अनावश्यक नहीं है कि रोग होने पर ही दवाई दी जाए। रोग के नैदानिक लक्षणों को रोकने के लिये भी दवाई दी जा सकती है। उदाहरण के लिए जुकाम और फ्लू के मामले में जब तक विषाणु अपना रोगचक्र पूरा कर स्थिर/शांत हो जाए तब तक जुकाम और फ्लू के लक्षणों को दूर करने के लिए डिस्प्रिन और प्रति-हिस्टामिन औषधियाँ दी जा सकती है।

निष्क्रिय कृत्रिम प्रतिरक्षा : माँ के रोगप्रतिकारक प्लैसेन्टा में संचरित होने के कारण निष्क्रिय कृत्रिम प्रतिरक्षा नवजात शिशुओं में भी विकसित करते हैं। वह सामान्यत: अल्पकालीन होती है (3 से 6 महीने) और नवजात्त शिशु को उसी अवधि के लिए ही रोगों से सुरक्षा उपलब्ध कराती है।

संक्रमण और रोग को फैलने से रोकने में ज्ञान, सामान्य जागरुकता तथा दिलचस्पी रखना बहुत ही महत्वपूर्ण है। संक्रमण कैसे फैलता है, आप अपने आपको तथा अपने आसपास के लोगों को उससे कैसे बचा सकते हैं, कैसे आपके अपने काम एवं व्यवहार आपको व औरों को संक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं या आपके व औरों के जीवन और स्वास्थ्य को खतरे में डाल सकते हैं, इन सब बातों की जानकारी होना बहुत आवश्यक है। आपका यह जानने, कि सभी के लिए स्वस्थ व सुरक्षित वातावरण उपलब्ध कराने के लिए आप व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से क्या कर सकते हैं, यह ही वह विश्वास व आशा है जिसने कि इस पाठ्यक्रम को प्रेरित किया है। यद्यपि, यह सत्य है कि शहर, ज़िले, राज्य व राष्ट्र के स्तर पर कार्य कर रहे अधिकारी वर्ग संक्रमण को फैलने से रोकने के विषय में उपरोक्त चर्चित अधिकांश बातों के लिए उत्तरदायी हैं परन्तु फिर भी हम सब पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। स्वयं को व अपने बच्चों को साफ रखना, अपने घर व अपने आसपास को स्वच्छ व साफ रखना, कूड़े को घर के बाहर सड़क या गली में न डाल कर ढक्कनदार कूड़ेदान में डालना, खाने की चीज़ों, कपड़ों व बर्तनों को अच्छी तरह से धोना हमारी सुरक्षा में बहुत सहायक होता है। हममें से कितने लोग यह समझते हैं कि गंदे झूठे बर्तनों को बर्तन साफ करने वाली के आने तक, बिना धोये बिना खँगाले (rinse) से उन पर मक्खियाँ आती हैं जो कि संक्रमण फैलाती हैं, साथ ही वह सूक्ष्म जीवाणुओं के लिए प्रजनन स्थल भी बन जाते हैं, जोकि सामान्य धुलाई से बर्तनों से नहीं हट पाते हैं। कप व गिलासों के ऊपर के किनारों, जहाँ होंठ छूते हैं, अच्छी तरह से धोने चाहिए, जिससे वह संक्रमण-मुक्त हो जाए। धोने के बाद गिलास या कप के ऊपर के किनारों को जाँचकर देखिये कि क्या उस पर होंठों के निशान तो नहीं हैं। यही तरीका है जिससे कि अधिकांश सीधे संपर्क वाले संक्रमण फैलते हैं। हममें से कितने लोग, जोकि काँटों (forks) से खाना खाते हैं, यह देखने का प्रयत्न करते हैं कि उसके दाँतों की बीच की जगह साफ है या नहीं?

संक्रमण एवं रोग से बचाव में पर्यावरण की भूमिका

पर्यावरणीय कारकों का संक्रमण की शृंखला की प्रत्येक कड़ी पर निश्चित प्रभाव पड़ता है — स्रोत या संचिति पर, संचरण या परपोषी की संक्रमण ग्रहण करने की संभाव्यता पर। अचेतन पर्यावरण (inanimate environment) में तापमान व आर्द्रता, सूक्ष्म जीवों की वृद्धि व उत्तरजीविता को प्रभावित करते हैं। वह परपोषी की त्वचा की व श्लेष्मय झिल्ली की अखण्डता को प्रभावित करते है - शुष्क व ठण्डे मौसम में होठों की श्लेष्मल झिल्ली के साथ-साथ पैर की त्वचा व तलवे भी फट जाते हैं जिससे कि संक्रमण को प्रवेश करने का रास्ता मिल जाता है। वायु वेग, वायु-वाहित संक्रमण कारकों को गति प्रदान करता है। सूक्ष्मजीवियों की उत्तरजीविता पराबैंगिनी विकिरण (Ultraviolet radiation) के स्तर से प्रभावित होती है। जनसंख्या का घनत्व संक्रमण के आसानी से फैलने को प्रभावित करता है। जितनी सघन जनसंख्या होगी उतना ही संक्रमण आसानी से फैलेगा। प्रदूषण जैसे सिगरेट का धुआँ जोकि श्वसन नली के लिए असुविधा उत्पन्न करता है व्यक्ति की श्वसन नली संबंधी रोगों के विषय में प्रतिरोधन क्षमता को कम कर सकता है।

बोध प्रश्न 4

1) निम्नलिखित को मिलाइए :

क)	चेचक	1)	प्रतिरक्षा ग्लोब्युलिन
ख)	निष्क्रिय प्रतिरक्षीकरण	2)	उन्मूलित
ग)	संगरोध	3)	निष्क्रिय संनिति
घ)	प्रत्यक्ष संपर्क	4)	मानव संनिति
ङ)	रोगाणुनाशन	5)	जीवाणु को मारता है
च)	रसायन चिकित्सा	6)	नेत्र संक्रमण
छ)	विसंक्रमण	7)	जीवाणु की वृद्धि में बाधक है
ज	प्रतिरोधी एंटीसेप्टिक	8)	भौगोलिक स्थितियाँ

2) तीन ऐसे रोगों के नाम बताइए जिनके लिए अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य नियमों के अधीन डब्ल्यू.एच.ओ. को सूचित करना आवश्यक है।

....

....

....

....

3) रोगजनित जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए कौन से तरीके सबसे प्रभावी है?

....

....

....

....

4) ऐसे रोगों के नाम बताइए जिनके लिए सक्रिय टीकाकरण/ प्रतिरक्षीकरण तकनीकें उपलब्ध हैं।

....

....

....

....

5) ऐसे रोगों के नाम बताइए जिनके लिए नवजात शिशु को पहले वर्ष के अंदर ही प्रतिरक्षी टीके लगा दिए जाने चाहिए।

....

....

....

....

6) डी.पी.टी. का अर्थ है..

तथा..

7) एम.एम.आर. का अर्थ है...व...

8) नवजात शिशुओं में माता की रोगप्रतिकारक से प्राप्त की गई निष्क्रिय कृत्रिम प्रतिरक्षा केवल ....माह तक रहती है।

9) ऐसे छह रोगों के नाम बताइए जिनकी रोकथाम के लिए रसायनिक - रोगनिरोधन प्रभावी हो सकते हैं।

....

....

....

10) छह पर्यावरण संबंधी कारकों के नाम लिखिए जिनका संक्रमण एवं रोग के फैलने में योगदान होता है।

....

....

....

....

4.7 सारांश

इस इकाई में हमने निम्नलिखित के बारे में जाना :

क) कारक — जोकि विभिन्न प्रकार के संक्रमणों एवं रोगों के कारण होते हैं।

ख) इन कारकों के स्रोत तथा इनके संचिति

ग) किस प्रकार संदूषण के ये कारक एक से दूसरे में फैलते हैं।

घ) किस प्रकार से कारक नये परपोषी तक पहुँचते हैं।

ङ) इन कारकों को नियंत्रित करने के लिए तथा इनके द्वारा फैलाए गए संक्रमण एवं रोग का नियंत्रित करने के लिए क्या किया जा सकता है?

4.8 शब्दावली

प्रतिजन : एक पदार्थ जोकि शरीर में प्रवेश कराए जाने पर रोगप्रतिकारक के उत्पादन को उत्तेजित करता है।

प्रतिरोधी एंटीसेप्टिक : ऐसा पदार्थ जोकि सूक्ष्म जीवों की वृद्धि को रोकता है।

क्षीण	:	जिसकी शक्ति कम कर दी गई हो।
जीवाणुनाशक	:	जोकि जीवाणु को नष्ट करता है ।
रसोचिकित्सा	:	रासायनिक अभिकारकों द्वारा, जोकि सूक्ष्म जीवों को नष्ट कर देते हैं ।
संचरणीय	:	वह जोकि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को होती है ।
संक्रामक	:	जोकि दूसरों को संक्रमित कर सके ।
संदूषण	:	किसी पदार्थ या व्यक्ति में संक्रमण की शुरुआत ।
डायटमीमृत्तिका	:	मिट्टी जो शैवाल (algae) के फॉसिल से बनी हो।
गुप्त	:	अपनी उपस्थिति महसूस कराये बिना करना।
स्थानीय मारी	:	किन्हीं विशेष व्यक्तियों या देश विशेष में असाधारण ।
महामारी	:	बहुत सारे लोगों को एक साथ प्रभावित करने वाली बीमारी ।
प्राकृतिकवास	:	एक पादप या पशु का प्राकृतिक निवास स्थान ।
संक्रमण	:	ग्राही व्यक्ति में विषाक्त सूक्ष्म जीवि का प्रवेश तथा उसका बहुगुणन ।
देशव्यापी महामारी	:	एक देश के अथवा कई देशों के अधिकांश नागरिकों को प्रभावित करने वाली महामारी ।
प्रतिकृति	:	अपने ही प्रकार के और सृजित करना ।
विषाक्त	:	घातृक, बहुत जहरीला या टॉक्सिक ।

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) निम्नलिखित में से कोई भी चार — इन्फ्लुएंजा, पोलियो, चेचक, छोटी चेचक, खसरा, कनपेड़े, जर्मन खसरा, हैप्टाइटिस, हर्पीस, एड्स, रैबीज़

ख) निम्नलिखित में से कोई भी तीन — डिफ्थीरिया, काली खाँसी, टी.बी., हैज़ा, अतिसार की बीमारियाँ, टायफायड, कोढ़, टिटेनस, ट्रैकोमा तथा आंख कान तथा गले के अन्य संक्रमण

ग) निम्नलिखित में से कोई भी दो — मलेरिया, अमीबिक पेचिश, काला आज़र।

घ) निम्नलिखित में से कोई भी दो — अंकुश कृमि, फीता कृमि, गोल कृमि, नहरुआ व फाइलेरिया।

बोध प्रश्न 2

1) 1 - ख, 2 - ग, 3 - क

2)

क)	प्लेग	—	चूहे
ख)	रैबीज़	—	कुत्ते
ग)	कनपेड़े	—	मनुष्य
घ)	डिफ्थीरिया	—	मनुष्य
च)	टिटेनस	—	मिट्टी
छ)	एड्स	—	मनुष्य
ज)	पोलियो	—	मनुष्य
झ)	इन्फ्लुएंजा	—	मनुष्य
ट)	मलेरिया	—	मच्छर
ठ)	अंकुश कृमि	—	मनुष्य

बोध प्रश्न 3

1) क) निम्नलिखित में से कोई भी — एड्स, कोढ़, त्वचा संक्रमण, नेत्र संक्रमण, सिफलिस।

ख) निम्नलिखित में से कोई भी —टिटेनस, कवक संक्रमण, कृमि संक्रमण।

ग) निम्नलिखित में से कोई भी — टी.बी., इंफ्लुएंजा, कनपेड़े, छोटी चेचक, खसरा, डिफ्थीरिया।

घ) एड्स तथा हैप्टाइटिस बी।

न) निम्नलिखित में से कोई भी — टायफाइड, अतिसार हैज़ा, हैप्टाइटिस ए, आंत्र परजीवी।

बोध प्रश्न 4

1) क - 2, ख - 1, ग - 8, घ - 6, ङ - 3,
च- 4, छ - 5, ज - 7

2) हैज़ा, प्लेग और पीत ज्वर

3) क) पानी में उबाल कर

ख) पाश्च्युरीकरण

ग) भाप से रोगाणु-रहित

घ) रासायनिक रोगाणु-रहित

4) पोलियो, टिटेनस, डिफ्थीरिया, खसरा, पीत ज्वर, टायफाइड, रैबीज़, टी.बी., कनपेड़े, रुबैला, छोटी चेचक, हैप्टाइटिस बी, फ्लू।

5) डिफ्थीरिया, काली खाँसी, टिटेनस, पोलियो, टी.बी. तथा खसरा

6) डिफ्थीरिया, काली खाँसी, टिटेनस

7) कनपेड़े, खसरा तथा रुबैला जर्मन खसरा

8) 3 से 6 माह

9) हैज़ा, नेत्रश्लेष्मला, डिफ्थीरिया, इंफ्जुएंजा, मैनिनजाइटिस, प्लेग

10) क) तापमान

ख) आद्रता

ग) वायु वेग

घ) पराबैंगनी विकिरण

न) जनसंख्या घनत्व

च) प्रदूषण

इकाई 5 जल आपूर्ति एवं कूड़े का निपटान

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 जल के स्रोत

5.3 शहरी पेय जल आपूर्ति प्रणालियाँ (Urban Drinking Water Supply System)

5.3.1 बड़े स्तर पर जल का शुद्धिकरण

5.3.2 जल गुणवत्ता के मानक

5.4 शहरी कूड़ा निपटान पद्धतियाँ (Urban Waste Disposal Methods)

5.5 ग्रामीण क्षेत्रों में जल आपूर्ति एवं स्वच्छता कार्यक्रम

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.1 प्रस्तावना

इकाई 4 में हमने संदूषण के विभिन्न कारकों के विषय में विस्तार से चर्चा की है। अब तक आपने यह समझ लिया होगा कि संदूषण अधिकतर जिन दो मुख्य बातों से जुड़ा है वे जल आपूर्ति एवं कूड़ा निपटान हैं। पिछले कुछ दशकों में औद्योगीकरण एवं विकास बहुत तीव्र गति से हुआ है, जिसके कारण शहरी आबादियाँ बढ़ गई है। परिणाम स्वरूप, शहर के साधनों (विशेष रुप से जल) तथा कूड़े के निपटान की प्रणालियों पर दबाव पड़ा है। इस इकाई में हम विशेष रूप से जल आपूर्ति एवं कूड़ा निपटान प्रणालियों तथा इनका पर्यावरण स्वच्छता से संबंध के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- प्रमुख जल स्रोतों की सूची बना सकेंगे
- विभिन्न जलआपूर्ति प्रणालियों एवं कूड़ा निपटान प्रणालियों की प्रमुख विशेषताएँ बता सकेंग
- जल के शुद्धीकरण व कूड़े के पुन: चक्रण (recycling) की पद्धतियों को बता सकेंगे
- राष्ट्रीय जल आपूर्ति एवं स्वच्छता कार्यक्रम की प्राथमिकताओं एवं उपलब्धियों की मोटे तौर पर जाँच कर सकेंगे
- जल एवं स्वच्छता सुविधाओं के उपयुक्त प्रयोग का विश्लेषण कर सकेंगे, और
- जल आपूर्ति एवं स्वच्छता कार्यक्रमों के लिए अच्छी सामुदायिक सहभागिता प्राप्त करने के लिए सुझाव दे सकेंगे।

5.2 जल के स्रोत

सदियों से मनुष्य ने नदियों, झीलों, व झरनों में उपलब्ध जल का प्रयोग किया है। इसका प्रयोग पेय व ,खाद्य पदार्थ के रूप में तो होता ही है साथ ही साथ मनोरंजन, यातायात, ऊर्जा, ठण्डक पहुचाने व कूड़ा निपटान के लिए भी किया जाता है। प्राकृतिक नदियों, झीलों तथा झरनों के अतिरिक्त मनुष्य ने कत्रिम झीले व जलाशय बनाये हैं, जल प्रवाह का रुख बदला है तथा नहरें व जल सेतुओं का निर्माण भी किया है। वास्तव में पृथ्वी का अधिकतर भाग जल से ही भरा हुआ है। जल के संबंध में कुछ और रोचक तथ्यों को जानने के लिए उल्लेखनीय - 1 पढ़ें।

उल्लेखनीय 1

जल के विषय में रोचक तथ्य

आपको यह तो मालूम ही होगा कि पृथ्वी पर जीवन बनाये रखने के लिए जल एक प्राथमिक आवश्यकता है। क्या आपको मालूम है कि यह प्राकृतिक साधन केवल पृथ्वी ग्रह (जहाँ तक हमें जानकारी है) पर ही पाया जाता है । हमारी पृथ्वी का लगभग दो-तिहाई भाग जल से बना है। अत: जब पृथ्वी को चन्द्रमा से देखा जाता है तो यह नीली दिखाई देती है तथा इसी लिए इसे प्राय: जल ग्रह कहा जाता है ।

पृथ्वी की सतह पर पानी अत्यधिक बहुतायत में पाया जाता है । हम तो वास्तव में पानी की दुनिया में ही रहते हैं क्योंकि सारे तरल पदार्थों में से ये सबसे महत्वपूर्ण पदार्थ हमारी पृथ्वी की लगभग 72 प्रतिशत सतह को ढके हुये है । पृथ्वी का लगभग 97 प्रतिशत जल महासागरों या समुद्रों में है । इसके अतिरिक्त 2 प्रतिशत जल, ध्रुवीय हिमशिखरों में और हिमनदियों या बर्फ के रूप में है । केवल एक प्रतिशत जल ही ताज़ा तथा प्रयोग में लाये जाने योग्य है परन्तु यह भी पृथ्वी पर समान रूप से वितरित नहीं है । कुछ स्थानों पर जल आवश्यकता से अधिक है, तो कुछ स्थानों में जल की कमी है । परन्तु मनुष्य तथा सभी पौधे और पशु जो कि समुद्री जीवन के अभ्यस्त नहीं है वह जीवित रहने के लिए ताजे जल की इस छोटी सी मात्रा पर निर्भर रहते हैं ।

पृथ्वी पर कुल मिलाकर 1,400 मिलियन क्यूबिक किलोमीटर (कि. मि.. 3) जल है । इसमें से लगभग 97 प्रतिशत समुद्री जल है तथा यह लगभग पूरा ही, महासागरों में है । शेष ताज़ा जल है तथा किसी भी दिए हुए समय पर इसका 77 प्रतिशत भाग हिम श्रृंगों तथा हिम नदियों में रहता है, केवल 22 प्रतिशत से कुछ अधिक जल पृथ्वी पर उसकी सतह के नीचे तथा 0.035 प्रतिशत वातावरण में रहता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि दिखाई देने वाला सतही जल (जैसे नदियों का, झीलों का) पृथ्वी के पूरे ताज़े पानी का केवल 0.35 प्रतिशत भाग है ।

आइये, अब हम जल व उसके उपयोग तथा गुणवत्ता से संबंधित कुछ मूल प्रश्नों को देखें ।

- *जल के विभिन्न प्राकृतिक स्रोत क्या हैं ?*

महासागर, समुद्र, नदियाँ, झीलें, झरने, जल प्रताप (water falls), हिमनद या हिमाच्छादित पर्वत शृंखला, वर्षा, तालाब तथा भौम जल (ground water) इत्यादि । इन मे नदियों, झीलों, झरनों व तालाबों का जल तथा भौम जल ताज़ा जल कहलाता है तथा प्रकृति में जल के मुख्य स्रोत यही हैं ।

पृथ्वी पर मिलने वाला ताज़ा पानी मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता है :

1) सतही पानी जिसमें नदियाँ, झीलें तथा तालाब आते है, तथा
2) भौम जल जिसमे कुँये तथा झरने आते हैं,

पानी का कुछ भाग ज़मीन पर गिरने के समय जमीन द्वारा सोख लिया जाता है । यह भूमिगत सुरंगो में भौम जल के रूप में एकत्रित हो जाता है । भौम जल शुद्ध होता है क्योंकि वह पहले से ही मिट्टी से स्रावित होता है अत: प्राकृतिक रूप से ही वह छन जाता है । मनुष्यों द्वारा यही पानी प्रयोग में लाया जाता है परन्तु बहुत बड़ी संख्या वाली शहरी आबादी के लिए भौम जल की पर्याप्त आपूर्ति कर पाना बहुत कठिन है । ऐसे शहरों में जहाँ भौम जल प्रचुर मात्रा में होता है, वहाँ के नागरिको के लिए यह लाभप्रद है क्योंकि जल के शुद्धिकरण में खर्चा कम आता है । पानी को साफ बनाने के लिए मुख्य रूपसे उसमें मिलें हुए अतिशय खनिज पदार्थों को अलग कर दिया जाता है । प्राय: पानी वैसे ही साफ होता है इसलिए उसे पीने व अन्य कामों में लाने योग्य बनाने के लिए उसमें क्लोरीन या अन्य रसायनों की भी आवश्यकता नहीं होती है ।

- *इनमें से कितने स्रोत पेय जल स्रोत हैं?*

पृथ्वी पर उपलब्ध समस्त जल में से पेय जल या मनुष्यों के प्रयोग के लिए उपयुक्त जल केवल वर्षा का जल, भूमि पर उपलब्ध सतही जल भण्डारों जैसे नदियों, झीलों, तालाबों तथा कुओं का जल तथा हैंडपम्पों से प्राप्त भौम जल ही होता है । अधिकांश जल, जोकि महासागरों तथा समुद्रों में है, नमकीन है तथा प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है ।

- *जलीय या जल चक्र क्या है ?*

पृथ्वी ग्रह पर उपलब्ध पानी निरन्तर गतिशील रहता है जिसके परिणामस्वरूप जलीय चक्र (hydrological cycle) बनता है । जलीय चक्र का प्रारम्भ वाष्पीकरण से होता है । भूमि से समुद्री पानी तथा सतही पानी का हर कतरा सूर्य की गर्मी से वाष्पित होता है । जब यह अन्ततः फिर से वर्षा या बर्फ के रूप में नीचे

गिरता है तो यह ज़मीन पर या समुद्र में विभिन्न अनुपातों में गिरता है। पृथ्वी पर गिरने वाले जल का एक बड़ा भाग महासागरों में वापिस चला जाता है। जो भाग भूमि पर गिरता है वह भी अन्ततः समुद्र में ही चला जाता है परन्तु इस बीच उस भूमि पर रहने वाले लोग उससे लाभ उठाते हैं। ज़मीन पर गिरने वाला कुछ पानी झरनों में बह जाता है अथवा झीलों या तालाबों में एकत्रित हो जाता है। यह तथा महासागरों का जल गिरकर पृथ्वी का सतही जल बनता है। इन जल आगारों या स्थिर जल भण्डारों से पानी वाष्पित हो कर पुनः आकाश में जाकर नमी से भरे बादल बनाता है जो कि अन्ततः फिर अपनी नमी वर्षा के रूप में गिरा देते हैं।

परन्तु सारा पानी इतने तीव्र जल चक्र में से नहीं गुज़रता। कुछ पानी जो कि एन्टार्क्टिक के मध्य में बर्फ के रूप में है वह वहाँ 2,00,000 वर्षों से भी अधिक से जमा हुआ हो सकता है। परन्तु फिर भी पृथ्वी का अधिकाँश पानी विषद एवं अन्तहीन जलीय चक्र में भाग लेता है जिससे कि पृथ्वी का समस्त ताज़ा पानी उपलब्ध होता है। यह एक विशाल शुद्धीकरण प्रणाली के रूप में भी कार्य करता है। यह प्रणाली एक सामान्य से तथ्य पर निर्भर है कि जब पानी वाष्पित होता है उस समय उसमें मिले हुये प्रदूषक (pollutants) उसके साथ ऊपर नहीं जाते हैं, क्योंकि लगभग सभी प्रदूषक पानी के वाष्पीकरण के लिए आवश्यक तापमान से बहुत अधिक तापमान पर वाष्पित होते हैं। अतः जब वाष्पित जल संघनित होकर वर्षा या बर्फ के रूप में नीचे वापिस आता है तो वह शुद्ध होता है।

ज़मीन पर गिरने वाले पानी में से कुछ पानी धरती सोख लेती है। धरती का यह पानी भी अन्ततः वातावरण में ही वापस जाता है परन्तु इसका चक्र बहुत धीमा चलता है। धरती का कुछ पानी पौधों द्वारा अपने विकास और भोजन उत्पादन के लिये प्रयोग में लाया जाता है। पौधों में यह पानी उनकी जड़ों द्वारा खींच कर ऊपर तनों और पत्तियों में पहुँचाया जाता है। वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) नामक प्रक्रिया से पत्तियों में से बहुत सा पानी निकल जाता है। उदाहरण के लिए, एक एकड़ मक्का के खेत में से,प्रत्येक फसल में, लगभग 3,00,000 गैलन पानी वाष्पोत्सर्जन से वातावरण में चला जाता है। इस प्रकार पृथ्वी की सतह पर उगे हरे पौधे निरन्तर पानी को वातावरण में पहुँचाते रहते हैं। हमने पहले बताया था कि पौधे पानी का प्रयोग भोजन उत्पादन के लिये भी करते हैं। वास्तव में पानी और कार्बनडाइऑक्साइड का प्रयोग करके पौधे स्टार्च बनाते हैं।

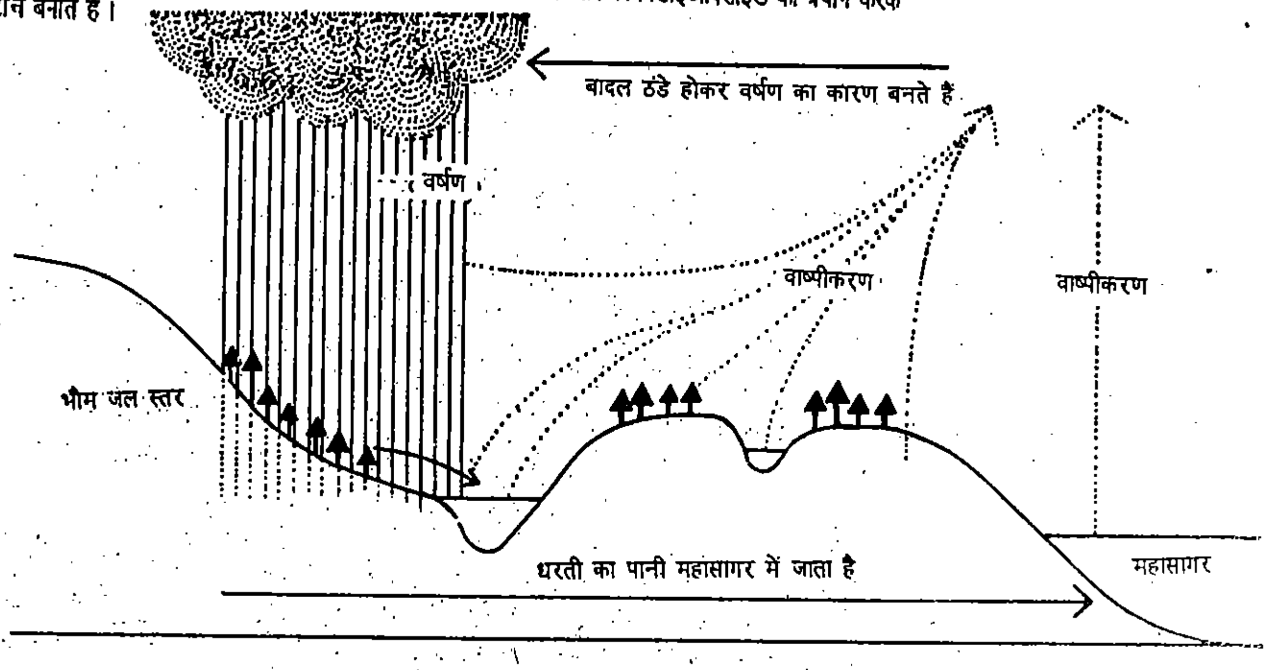

बोध प्रश्न 1

1) रेखा चित्र की सहायता से जलीय चक्र (जल चक्र) का वर्णन करें।

2) अपने नगर, शहर, गाँव के लिए जल के विभिन्न घरेलू एवं वाणिज्यिक उपयोगों की सूची बनाएं।

....

....

....

....

- *हमारे भौम जल प्रदायकों की रक्षा करने की आवश्यकता क्यों हैं ?*

भौम जलस्तर (water table) पृथ्वी की सतह के नीचे भौम जल क्षेत्र के ऊपर के स्तर पर होता है । जहाँ पर झीले व नदियाँ होती हैं, वहाँ भौम जलस्तर सतह के पास ही होता है । यद्यपि भूमि में उपलब्ध जल सामान्यत: स्वच्छ व शुद्ध होता है परन्तु यह मनुष्य के कार्यकलापों से न तो पूर्णरूपेण बचा हुआ है और न ही यह स्थिर है । भौम जल व सतही जल बहुत सारी निरंतर पारस्परिक क्रियाओं से जुड़े रहते हैं पारस्परिक क्रियायें जो भौम जल को पुन:पूरित करके भरा रखने का काम करती हैं परन्तु यही क्रियायें प्रदूषण का स्रोत भी होती हैं ।

भौम जल के नवीकरण (renewal) की दर बहुत सारी बातो पर निर्भर करती है — परन्तु यह जितना भूमि की सतह के पास होता है, उतना ही यह जल्दी नवीकृत हो जाता है । भौम जल, स्तर के पास होने पर भी इसके नवीकरण में एक वर्ष से अधिक का समय लग सकता है । गहरे भूमिगत जलभृतों में जल के नवीकरण में हजारों वर्ष भी लग जाते हैं । यदि यह गहरे जल भंडार — जोकि वास्तव में फॉसिल जल की भूमिगत झीले ही होते हैं — कभी प्रदूषित हो जायें तो इनका संदूषण लगभग स्थाई तथा अपरिवर्तनीय ही होता है ।

जब भौम जल का (बहुत से कुए बनाकर) बहुत अधिक प्रयोग किया जाए तो उसके परिणामस्वरूप भौम जल स्तर नीचे गिर सकता है । ऐसा होने पर गहरे जल भृतों के नवीकरण के लिए पर्याप्त जल उपस्थित होने पर भी यदि वह चिकनी मिट्टी या परिवर्तनशील संरध्रता वाली मिट्टी के बने होंगे तो आंशिक रूप में ही उनका जल वापस भर सकेगा । ऐसे में एक बार यदि वह सूख जाए तो उनका आकार छोटा हो जाएगा और जितना जल वह पहले ग्रहण कर पाते थे अब उतना नहीं कर पाएंगे ।

ऐसा होने पर केवल जल ही एक ऐसी मूल्यवान वस्तु नहीं होगी जिसका नुकसान होगा, क्योंकि यदि भूमिगत मिट्टी व अन्य सामग्री काफी नीचे चली जायेगी तो संभव है कि ऊपरी सतह भी अन्दर धसक जाये, जिसके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं । इस प्रकार की दुर्घटनाओं से बचने के लिए बेहतर योजना तथा सतही एवं भौम जल के बीच की कड़ियों की अच्छी समझ की आवश्यकता है ।

- *लवणता (salinity) कारक क्या है ?*

अत्यधिक लवणता की समस्या अप्रभावी सिंचाई के कारण होती है। होता यह है कि जब वर्षा का जल गीली रेत, मिट्टी चिकनी मिट्टी की परतों से होकर भूमिगत जलभृतों को भरने के लिये नीचे जाता है तो रास्ते में कई प्रकार के लवण उसमें घुल कर एकत्रित हो जाते हैं । इसलिए अधिकतर भौम जलों में कुछ लवण होते हैं । ऐसी धरती पर सिंचाई करने में जहाँ कि पानी की निकासी का ठीक प्रबंध नहीं है ये लवण पृथ्वी की सतह पर आ जाते हैं । तथा भौम जल स्तर ऊपर उठ जाता है और अन्तत: ज़मीन में पानी भरा रहने लगता है । जब भौम जल में से लवण सतह तक आ जाते हैं तो वाष्पीकरण उन्हें संकेन्द्रित करता है । अन्त में मिट्टी लवणित या खारी बन जाती है और उस पर बहुत कम पैदावार होती है और वह भी धीरे - धीरे तब तक कम होती जाती है जब तक कि या तो धरती को खेती के लिए अनुपयोगी मान कर छोड़ न दिया जाए या प्रभावी ढंग से उसके लिए जल निकासी की व्यवस्था न की जाए ।

इसी प्रकार की स्थिति तब भी उत्पन्न हो सकती हैं जब बड़ी मात्रा में ज़मीन पर से वनों को साफ कर दिया जाता है । इससे पतली मिटटी की परत सीधे ही बारिश के सम्पर्क में आ जाती है, जिसके फलस्वरूप वर्षा का पानी भूमि में व्याप्त हो जाता है । अन्तत: भूमि जलाक्रांत (waterlogged) व लवणित बन सकती है, जिसके कारण वह खेती योग्य नहीं रह जाती ।

यदि तटवर्ती क्षेत्र में भौम जल को बहुत अधिक मात्रा में निकाला जाए (over exploitation) तो अत्यधिक दोहन से भौम जल का स्तर नीचा हो सकता है जिससे जल, समुद्र के जल से संदूषित हो सकता है । शुष्क क्षेत्रों में तो यह एक गम्भीर समस्या है परन्तु लवणित जल संदूषण केवल शुष्क क्षेत्र में ही नहीं होता है । यह तो भौम जल को अधिक निकालने पर किसी भी क्षेत्र में हो सकता है ।

- *पानी की कमी क्यों होती जा रही है ?*

अभी कुछ समय पहले तक अधिकांश लोग पानी को लगभग निशुल्क व कभी समाप्त न हो सकने वाली वस्तु मानते थे, परन्तु तीव्र गति से जनसंख्या के बढ़ने के कारण पानी की बेहद कमी होने लगी है। पहले समय में मनुष्य अपने घर ऐसे स्थानों पर बनाते थे जहाँ पानी सरलता से उपलब्ध होता था और यदि पानी का वह स्रोत घट कर कम या सूख जाता था तो वह कहीं अन्यत्र जाकर रहने लगते थे। अब वास्तव में ऐसे कोई स्थान नहीं रह गए है, जहाँ व्यक्ति अच्छे व शुद्ध जल को सरलता से प्राप्त करने के लिए जाकर रह सके। चूँकि व्यक्ति विश्व में इधर उधर बहुतायत में फैलें हुए है इसलिए उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पानी को काफी दूर दूर तक ले जाना पड़ता है।

जैसे जैसे हम विकसित हो रहे हैं हमारी जल संसाधनों की माँग बढ़ती आ रही है। खेती के लिए, खाने के लिए, ऊर्जा उत्पादन तथा शहरों, नगरों, गाँवों में रह रहे करोड़ो व्यक्तियों के लिए पानी की आवश्कता को पूरा किया जाना हैं। चूँकि पानी के स्रोत सीमित हैं अत: पानी के बढ़ते प्रयोग, कम होती जल आपूर्ति पर, बहुत दबाव डालते हैं। इसके साथ ही जल की गुणवत्ता में भी प्रदूषण व लवणता बढ़ने के कारण गिरावट आती जा रही है।

बोध प्रश्न 2

1) बताएँ कि निम्नलिखित कथन सही है अथवा गलत। सारों ही जलीय या जल चक्र से संबंधित हैं। गलत कथनों को सही कीजिए।

   क) पृथ्वी का सम्पूर्ण जल जलीय चक्र में भाग लेता है।

   ....

   ख) पृथ्वी का सारा जल एक ही समय में जलीय चक्र में भाग लेता है।

   ....

   ग) जलीय चक्र में सूर्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

   ....

   घ) हरे पौधे जलीय चक्र में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

   ....

2) भौम जल के अत्यधिक दोहन से आप क्या समझते हैं ?

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

- *कुओं के विभिन्न प्रकार क्या हैं ?*

कुएँ मनुष्य द्वारा भौम जल प्राप्त करने के लिए धरती पर कृत्रिम रूप से बनाये गए गड्ढे होते हैं। कुएँ कई प्रकार के होते हैं। आइए इनके बारे में कुछ विस्तार से चर्चा करें।

उथले कुएँ (Shallow Wells) : उथले कुएँ वह होते हैं जिनमें पानी भूमि की पहली अप्रवेश्य परत (Impervious layer) के ऊपर ही मिल जाता है। हमारे देश के अधिकांश कुएँ इसी प्रकार के हैं। यह बहुत ही आसानी से अपने आसपास बनी चीजों जैसे मूत्रालय, मलकुंड, नमी या खाद के गड्ढों आदि से प्रदूषित हो सकते हैं। अत: यह बहुत आवश्यक है कि इन कुओं को सुरक्षित रखने के लिए उपयुक्त रक्षात्मक उपाय किये जाये अन्यथा ये स्थानीय समुदाय के स्वास्थ्य के लिए एक बहुत बड़ा खतरा बन सकते हैं।

उल्लेखनीय [illegible]

हम कुओं को संदूषित होने से कैसे बचा सकते हैं?

- [illegible] जैसे खेत या कूड़े के ढेर आदि से कम से कम [illegible]
- [illegible] भूमि की पहली अप्रवेश्य परत के नीचे [illegible]
- [illegible] जाना चाहिए जिससे कि [illegible]
- [illegible] होनी चाहिए।
- [illegible] जिससे बेकार पानी बह कर निकल जाए और कुएँ में गंदे पानी को रिसने से रोका जा सके।
- [illegible] (Pucca [illegible]) द्वारा सार्वजनिक नाली में या सिक्तन गर्त (Soaking pit) (पानी सुखाने के लिए बनाए गए गड्ढे) में बहा देना चाहिए।
- कुएँ के ऊपर छत बनाई जानी चाहिए, जिससे कि वायु-संवाहित तत्वों से वह सुरक्षित रह सके।
- पानी निकालने के लिए हैंडपम्प या उसी के समान कोई सरल साधन कुएँ पर लगाया जा सकता है।
- कुएँ पर [illegible] की सख्त मनाही होनी चाहिए और जहाँ कहीं भी सम्भव हो वहाँ एक [illegible] चाहिए।
- कुएँ का [illegible] उत्तरदायित्व लेना चाहिए। इसके लिए वह एक समिति गठित कर सकते हैं और समिति के सदस्यों को अलग-अलग काम दिया जा सकता है। यदि सम्भव हो तो समुदाय के किसी [illegible] जिम्मेदार व्यक्ति को इस काम के लिए नियुक्त भी किया जा सकता है [illegible] उत्तरदायित्व अच्छी तरह से सुनिश्चित किया जा सके।

गहरे कुएँ (Deep wells) : गहरा कुआँ वह होता है जिसमें पानी की पहली अप्रवेश्य परत के नीचे से पानी प्राप्त किया जाता है। यद्यपि ये कुएँ उथले कुओं की तुलना में संदूषण से सुरक्षित होते हैं परन्तु यह भी यदि ठीक से न बनाये जाएं या खुले या असुरक्षित छोड़ दिये जाएं तो संदूषित हो सकते हैं। उल्लेखनीय 3 में आपको कुओं को रोगाणुरहित बनाने के विषय में जानकारी मिलेगी। इस सामान्य वर्गीकरण के अतिरिक्त कुओं को प्रादेशिक विभिन्नताओं के आधार पर भी विभिन्न प्रकार के कुओं में वर्गीकृत किया जा सकता है: जैसे राजस्थान के सोपान कुएँ (step well) या बावड़ी, कर्षण कुएँ या खोदे हुए कुएँ।

कुएँ विभिन्न स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं तो उत्पन्न करते हैं परन्तु सोपान कुओं से गिनी कृमि संक्रमण का अतिरिक्त खतरा भी रहता है।

उल्लेखनीय 3

जल आपूर्तियों को रोगाणु रहित करना (Disinfection of water supply)

कुओं का रोगाणुनाशन

ग्रामीण क्षेत्र में कुएँ जल-संभरण का एक सामान्य साधन हैं। अतः इनको नियमित रूप से रोगाणुरहित करना आवश्यक है। कुओं को रोगाणुरहित बनाने का सबसे प्रभावी और सस्ता उपाय कुओं का क्लोरीनीकरण करना है। इसके लिए निम्नलिखित चरणों का पालन करना होगा।

1) **कुएँ में पानी की मात्रा का पता लगाना.**
   1) कुएँ में पानी की गहराई को नापना — (एच) **(h) मीटरस।**
   2) कुएँ के व्यास (diameter) को नापना — (डी) **(d) मीटरस।**

नोट : नाप कई जगहों पर और कई बार लीजिये और अन्तिम आँकड़े पर पहुँचने के लिए, उसका औसत निकाल लीजिए। नाप के अनुसार पानी की मात्रा होगी:

$$\frac{3.14 \times d^2 \times h \times 1000}{4}$$

d व h के स्थान पर वास्तविक नाप लिख कर गणना कीजिए।

2) अपेक्षित ब्लीचिंग पाउडर की मात्रा का पता लगाइए

कुएँ में उपलब्ध पानी की मात्रा के लिए ब्लीचिंग पाउडर की मात्रा का अनुपात साधारण रूप में प्रति 1000 लिटर पानी को रोगाणुरहित बनाने के लिए 2.5 ग्राम होगा ।

3) ब्लीचिंग पाउडर को पानी में घोलिए

कुएँ को रोगाणुरहित बनाने के लिए ब्लीचिंग पाउडर की अपेक्षित मात्रा (एक बाल्टी में 100 ग्राम से अधिक नहीं) को एक साफ बाल्टी में डाल कर उसका पतला घोल बनाने के लिए उसमें थोड़ा पानी डालिए । फिर बाल्टी में और पानी डाल कर बाल्टी को तीन चौथाई भर दीजिए । उसको अच्छी तरह से हिलाइए और उसके बाद 5 - 10 मिनट तक रख दीजिए जिससे कि चूने के कण नीचे बैठ जाएं । क्लोरीन घोल के अधिप्लवी घोल को दूसरी बाल्टी में स्थानान्तरित करें तथा नीचे जमें हुए चूने को फेंक दें ।

4) क्लोरीन घोल कुएँ में डालना

क्लोरीन घोल की बाल्टी कुएँ में पानी की सतह से और थोड़ा नीचे तक ले जाइए फिर उसे ऊपर-नीचे इधर-उधर हिला कर कुएँ के पानी को उससे हिलाइये जिससे कि क्लोरीन घोल कुए के पानी में भली भाँति मिल जाए ।

5) संपर्क अवधि (Contact period)

कुएँ के पानी को क्लोरीनीकरण करने के पश्चात् पहले एक घंटे इस्तेमाल न करें । यह एक घंटे की अवधि संपर्क अवधि (contact period) कहलाती है । अर्थात प्रयोग के लिए क्लोरीन डालने के एक घंटे बाद पानी निकालिए ।

(कुछ ऐसे विशिष्ट परीक्षण है जिनसे आप यह पता लगा सकते हैं कि क्लोरीनीकरण पर्याप्त रूप से हुआ या नहीं । आप इन परीक्षणों के संबंध में विस्तृत जानकारी निवारक औषधि preventive medicine) की किसी भी पाठ्यपुस्तक से प्राप्त कर सकते हैं । पानी की क्लोरीन की आवश्यकता का पता हौरॉक उपकरण (Horrock apparatus) की सहायता से भी पता लगाया जा सकता है। ऑरथोटॉलिडीन आरसैनाइट परीक्षण का प्रयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि क्लोरीन की प्रयुक्त मात्रा पानी के रोगाणुनाशन के लिए पर्याप्त है या नहीं) ।

अब आप ये सोच रहे होंगे कि किसी कुएँ का क्लोरीनीकरण कब किया जाना चाहिए ?

कुएँ का क्लोरीनीकरण यदि रात्रि में जबकि सब लोग अपने दिन भर के प्रयोग के लिए पानी निकाल चुके हों किया जाए तो वह सबसे अच्छा रहेगा । जठरान्त्र शोथ (gastroenteritis) या हैज़े की महामारी के समय कुओं का ऊपर बताई गई विधि से प्रतिदिन क्लोरीनीकरण किया जाना चाहिए।

पेयजल को ब्लीचिंग पाउडर से रोगाणुरहित करें

आवश्यक सामग्री :

1) भूरे या हरे रंग की एक लिटर की साफ बोतल, कसकर लगने वाले ढक्कन के साथ
2) ताज़ा ब्लीचिंग पाउडर
3) एक छोटा चम्मच (टी-स्पून)
4) एक लिटर साफ पानी

संग्रहविलयन (Stock solution) तैयार करना

- बोतल में तीन छोटे चम्मच (टी स्पून) ब्लीचिंग पाउडर डालिए ।
- बोतल में साफ पानी डालिए जब तक कि वह आधी या पौनी न भर जाए ।
- बोतल का ढक्कन बन्द करके उसे अच्छी तरह तब तक हिलाइए जब तक कि सारा पाउडर घुल न जाए ।
- फिर बोतल को पानी से ऊपर तक भर दीजिए और फिर से हिला दीजिए जिससे कि घोल अच्छी तरह से मिल जाए ।

आप देखेंगें कि यह संग्रह विलयन शुरू में धुंधला-धुंधला सा दिखाई देगा परन्तु थोड़ी देर बाद सफेद रंग का पाउडर बोतल के तले में बैठ जायेगा। इससे आपको परेशान होने की आवश्यकता नही है क्योंकि सफेद पाउडर में अब कोई क्लोरीन नही है क्योंकि वह तो पानी में घुल चुकी है। संग्रहविलयन को किसी अंधेरी जगह में, सूरज की रोशनी से दूर रखे।

यदि रोगाणु रहित किया जाने वाला पानी स्वच्छ व रंगरहित है तो प्रत्येक 10 लिटर पानी के लिए एक चाय का चम्मच संग्रह विलयन मिलाइए। संग्रह विलयन मिलाने के पश्चात पानी को साफ डन्डी से हिलाइएं। संग्रह विलयन मिलाने के बाद 30 मिनट तक पानी को ऐसे ही रखा रहने दीजिए जिससे कि मिलाई गई क्लोरीन पानी को रोगाणु रहित बना सके। बाज़ार में तत्काल प्रयोग के लिए क्लोरीन के बने बनाए घोल भी उपलब्ध हैं। बड़े पैमाने पर प्रयोग के लिए क्लोरीन घोल, ब्लीचिंग पाउडर से भी तैयार किए जा सकते हैं। यदि 20 लिटर पानी में चार किलो ब्लीचिंग पाउडर मिलाया जाए तो उससे क्लोरीन का 5 प्रतिशत का घोल तैयार होगा। इन घोलों को अंधेरे, ठंडे व शुष्क स्थानों में ढक्कन बन्द शीशी या डिब्बो में रखा जाना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाना चाहिए।

यदि जल आपूर्ति के लिए सामुदायिक जलाशय के अतिरिक्त और कोई साधन नही तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन जलाशयों का समय समय पर स्वच्छीकरण किया जाए। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित और उपाय भी अपनाए जा सकते हैं :

- *समुदाय जलाशयों (community tanker) को स्वच्छ बनाना*
  - जलाशय के किनारों को थोडा ऊँचा कर दिया जाय, जिससे कि सतह पर की गई धुलाई का पानी जलाशय में न जाएं।
  - जलाशय के चारो तरफ एक बाड़ा बना दिया जाए, जिससे कि पशु जलाशय तक न पहुँच सकें।
  - किसी व्यक्ति को जलाशय के अन्दर जाने की अनुमति न दी जाए।
  - व्यक्तियों को पानी ऊँचे चबूतरे से ही लेने के लिए कहा जाए।
  - निर्धारित समय पर उसमें उगी खरपतवार (weeds) घास को निकालने की व्यवस्था करवाई जाए।
  - टंकी अवशेष (tank bed /bottom) को साफ करने का कार्य शुष्क मौसम में, जबकि उसमें पानी कम हो, किया जाए।

ऊपर बताये गये बचावों के अतिरिक्त रेत फिलटरन (sand filteration) व क्लोरीन से पानी साफ करने पर, जल मनुष्यों द्वारा प्रयोग में लाये जाने योग्य बनाया जा सकता है। यदि किसी कारणवश इन चरणों को सामुदायिक स्तर पर लागू नहीं किया जा सकता हो, तो कम से कम समुदाय के व्यक्तियों को संदूषण से होने वाले नुकसान एवं खतरों के बारे में जानकारी देकर, उनको पानी उबाल कर, फिलटर करके या क्लोरीनीकरण से शुद्ध करके पीने के प्रयोग में लाने के लिए, प्रेरित किया जा सकता है। पानी को उपयुक्त रूप से संग्रह कर रखने पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

क्लोरीन की गोलियाँ यद्यपि कुछ मँहगी जरूर हैं परन्तु वे कम मात्रा में उपस्थित पानी के रोगाणुनाशन के लिये अच्छी रहती हैं। नागपुर के राष्ट्रीय पर्यावरण इंजीनियरिंग अनुसंधान संस्थान (एन.ई.ई.आर.आई.) ने एक नई प्रकार की क्लोरीन की गोली बनाई है जो कि बाज़ार में सस्ते मूल्य पर उपलब्ध है। एक 0.5 ग्राम की गोली 20 लिटर पानी के रोगाणुरहित करने के लिए पर्याप्त है।

ट्यूबवैल : ज़मीन और पानी की बढती हुई माँग के परिणामस्वरुप एक नये प्रकार के कुएँ, जो कि ट्यूब-वैल कहलाते हैं, बहुत लोकप्रिय होते ज़ा रहे हैं। यह अन्य स्रोतो की तुलना में सुरक्षित व सस्ते भी होते हैं। इनमें केवल एक ही कमी है और वह है हैंडपम्प का रखरखाव। अन्य सभी मशीनो के समान इनकी भी जल्दी जल्दी सर्विसिंग करवानी पड़ती है। एक ट्यूब-वैल का औसत जीवनकाल लगभग 10 वर्ष होता है परन्तु यदि इसकी ठीक से देखभाल की जाये तो ये 30 वर्ष तक भी चल सकते हैं।

5.3 शहरी पेय जल आपूर्ति प्रणालियाँ (Urban Drinking Water Supply Systems)

हमारे जैसे विकासशील देश में सुरक्षित जल व सफाई की ओर प्राथमिकता के आधार पर ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि यहाँ सामान्यत: विरुपमान अधिकांश स्वास्थ्य समस्याओं जैसे अतिसार, पेचिश, हैज़ा आदि का कारण असुरक्षित जल व सफाई का अभाव ही होता है। तीव्र गति से बढ़ते औद्योगीकरण एवं

शहरीकरण के कारण केन्द्रीकृत रूप से व्यवस्थित जल आपूर्ति प्रणालियाँ, शुद्ध जल संभरण सुनिश्चित करने के लिए, आवश्यक हो गए हैं।

समस्त ताज़े पानी में प्रलंबित विविक्त पदार्थ (suspended particulate material) जैसे गाद (silt) व सूक्ष्म जीवों के साथ - साथ विलीन पदार्थ जैसे फॉसफेट, गैसें (ऑक्सीजन तथा जैवयौगिक (organic compounds) मिले रहते हैं। इन पदार्थों की मात्रा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न है, परन्तु उनके बीच एक नाज़ुक संतुलन बना रहता है। अगर इसमें से किसी की भी मात्रा कहीं पर बहुत बढ जाय तो उससे गम्भीर जलीय अव्यवस्था (aquatic chaos) फैल सकती है जिससे किसी भी जल भंडार की परिस्थिति (ecology) भंग हो सकती है। ऐसा होने पर पानी मानव प्रयोग के लिये अनुपयुक्त हो जाता है और उससे कुछ या समस्त जलीय जीवन नष्ट हो जाता है। ये दोनो प्रभाव धीरे- धीरे बढ़ कर सामान्य होते जा रहे हैं।

पीने योग्य पानी सुरक्षित भी होना चाहिए। पानी को शुद्ध करने व एकत्रित करके रखने के प्रकृति के अपने तरीके हैं। वर्षा का जल, जोकि तुलनात्मक रूप में शुद्ध ही होता है, ठोस व गैसीय तत्वों को अपने में मिलाकर अशुद्ध बन सकता है। यह पानी गाद, चिकनी मिट्टी छोटे-छोटे कंकडों, बड़े-बड़े पत्थरों से छन कर नीचे बड़ी बड़ी भूमिगत सुरंगो में भौम जल के रूप में एकत्रित हो जाता है। इस प्रकार से प्रकृति द्वारा शुद्ध, सुरक्षित भौम जल का भंडारण किया जाता है।

परन्तु क्योंकि भौम जल बड़े नगरों और शहरी बस्तियों में पानी की आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकता इसलिए सतही ताज़े जलाशयो (जैसे नदी) के जल को शुद्ध करने के तरीकों को खोजा गया है। अधिकतर बड़े शहर सतही जल स्रोतों का ही प्रयोग करते हैं।

5.3.1 बड़े स्तर पर जल का शुद्धीकरण

शहरी जल आपूर्ति कार्यक्रमों में बड़े पैमाने पर पानी के शुद्धीकरण की आवश्यकता होती है। इसके लिए अपनाई गई पद्धतियों में सामान्यत: निम्नलिखित शामिल होते हैं :-

1) **संचयन द्वारा अवसादन** (Sedimentation) : पानी को स्रोत से प्राकृतिक अथवा कृत्रिम जलाशय में एकत्रित कर लिया जाता हैं। संचयन प्रक्रिया द्वारा पानी की पर्याप्त शुद्धीकरण हो जाती है।

   1) पानी में व्याप्त 90 प्रतिशत अशुद्धता 24 घंटे में अपने आप ही नीचे बैठ जाती है।

   2) अवायवीय जीव (anaerobic organisms) पानी के जैव पदार्थो का आक्सीकरण कर देते हैं।

   3) पानी के संचयन (5 से 7 दिन तक रखने पर) से रोगजनक जीव धीरे - धीरे संख्या में कम होते जाते हैं। ये लगभग 90 प्रतिशत तक कम हो सकते हैं। किन्तु अधिक अवधि तक पानी रखने पर उसमें शैवाल (algae) जैसे पौधे उगने प्रारम्भ हो सकते हैं।

2) **फिल्टरन (Filteration)**

पानी के शुद्धीकरण का यह दूसरा चरण है जिसमें 98 से 99 प्रतिशत रोग - उत्पन्न करने वाले जीवाणु अन्य अशुद्धताओं के साथ दूर हो जाते है। इसके लिए दो प्रकार के फिल्टर प्रयोग में लाये जाते हैं : 1) जैविक या मंद बलुका फिल्टर (slow sand filter), तथा 2) यांत्रिक या क्षिप्र बालुका फिल्टर (rapid sand filter)।

3) **क्लोरीकरण** : क्लोरीनीकरण द्वारा :

   1) रोगजनक जीवाणु तो मर जाते हैं परन्तु सामान्य मात्रा में इस्तेमाल किए गए क्लोरीन से बीजाणु और विषाणु (पोलिओ, हैपैटाइटिस वायरस आदि) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता

   2) लौहतत्व, मैंगनीज़ और हाइड्रोजन सल्फाइड का आक्सीनीकरण हो जाता है

   3) सब्जियों की बढ़त नियंत्रित हो जाती है, और

   4) स्वाद और महक पैदा करने वाले तत्व नष्ट हो जाते हैं।

इन चरणों को नीचे दर्शाया गया है :

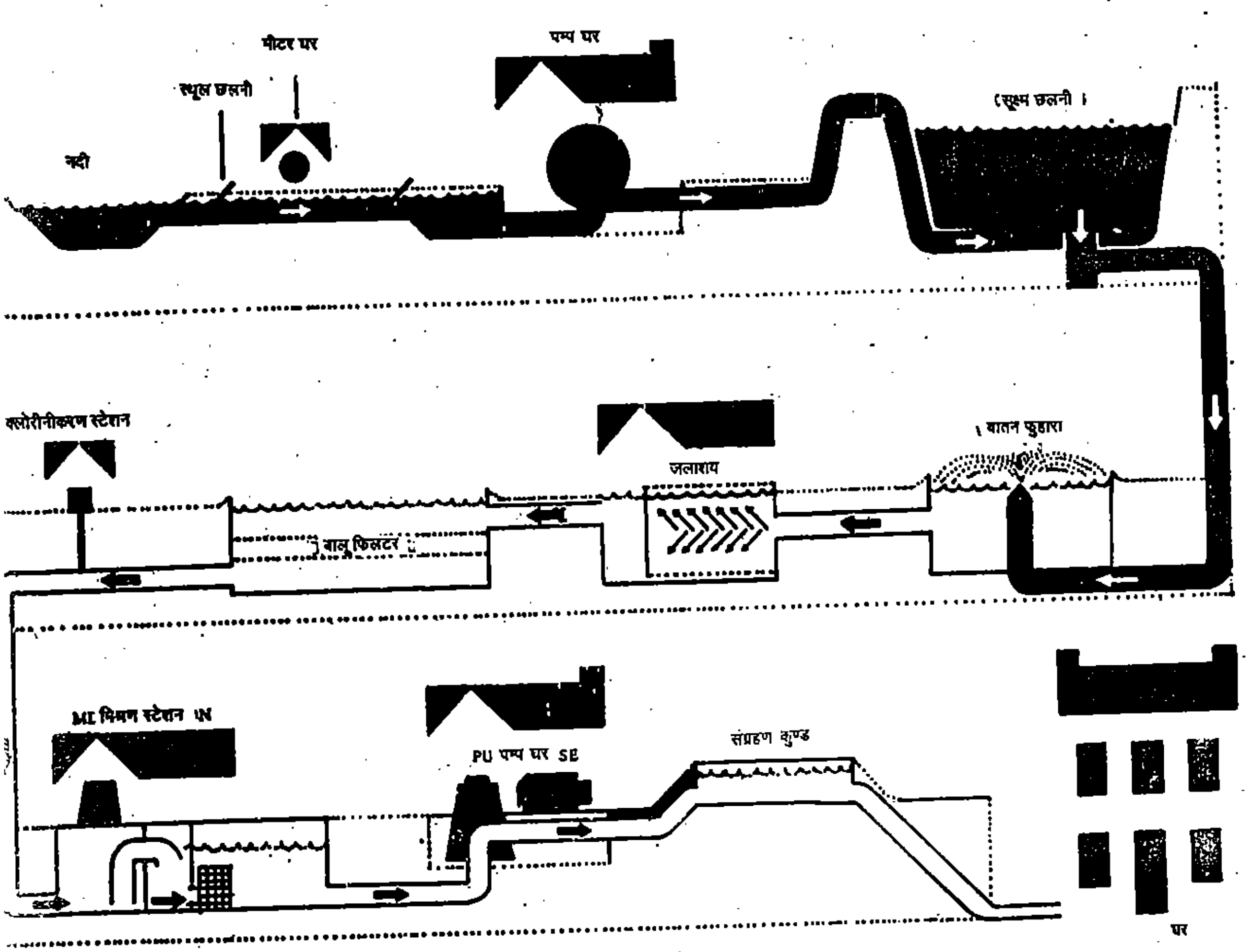

4) शुद्धीकरण के अन्य तरीके

ओज़ोनीकरण (Ozonization): ओज़ोन एक प्रभावी ऑक्सीकरण कारक हैं। क्लोरीनीकरण से यह इसलिए बेहतर है क्योंकि ओज़ोन विषाणुओं को भी नष्ट कर सकता है। यह पेय जल की स्वादिष्ठता व स्वीकृति को बड़ा देता है। परन्तु ओज़ोन के प्रयोग की एक बड़ी कमी यह है, कि इसका जीवाणुनाशी प्रभाव अवशिष्ट (residual) नहीं है। इसलिए अवशिष्ट जीवाणु नाशी क्रिया के लिए न्यूनतम मात्रा में क्लोरीन मिलाना ओज़ोनीकरण क्रिया का पूरक हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि पानी के शुद्धीकरण के लिए एक लिटर पानी में 0.2 से 1.5 मि.ग्रा. ओज़ोन की आवश्यकता होती है।

पराबैंगनी किरणन (Ultraviolet Irradiation) : यह प्रक्रिया भी क्लोरोनीकरण की पूरक है। यह भी रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को नष्ट करने में प्रभावी होती है, परन्तु इसकी भी कुछ सीमाएं हैं जो कि निम्नलिखित हैं :

1) यह बहुत महँगी है
2) इसका अवशिष्ट जीवाणुनाशी प्रभाव नहीं है।

प्राय: नदियों में बहने वाले पानी में, भौम जल की तुलना में, खनिज़ तत्व कम होते हैं तथा इसमें प्रदूषण अधिक होने की भी संभावना रहती है। अत: इनको पीने या अन्य कामों के लिए प्रयोग में लाने से पहले इसका उपचार करने की आवश्यकता होती है। पानी तथा उसको सर्वोत्तम विधि से व्यवस्थित किये जाने वाले उपायों पर किये गये अध्ययनों के परिणामस्वरूप प्रदूषित जल का उपचार करने तथा संदूषित जल को शुद्ध बनाने की कुछ अधिक प्रभावी तकनीकों का जन्म हुआ है। इसके अतिरिक्त नये अनुसंधानों ने नदी के जल में मिले कई ऐसे नये प्रदूषण कारकों के विषय में भी जानकारी दी है जिनके विषय में पहले संदेह भी नहीं होता था। इसका एक परिणाम तो यह निकला है कि अब राष्ट्रों ने अपने ताज़े जल के विषय में अधिक गंभीरता से ध्यान देना प्रारंभ कर दिया है।

5.3.2 जल गुणवत्ता के मानक

शहरी जल-आपूर्ति संगठनों के लिए जल गुणवत्ता मानक निश्चित कर दिये गए हैं क्योंकि इससे सभी ज्ञात स्वास्थ्य संकटों को कम करने में सहायता मिलेगी।

पेय जल के लिए निर्धारित मानक पानी की गुणवत्ता निर्धारित करने में निम्नलिखित को ध्यान में रखते हैं :-

- सूक्ष्मजैविकी प्रदूषण कारक : जीवाणु, विषाणु आदि।
- विषैले तत्व : संखिया (arsenic), कैडमियम, साइनाइड, लैड, पारा, सैलेनियम आदि।
- विशेष तत्व जो स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं : फ्लोराइड, नाइट्रेट, पॉलीन्यूक्लीयर एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन।
- पानी के रंग, महक, दुष्फेनकता (hardness) तथा स्वाद की स्वीकृति।
- रेडियो-सक्रिय (radio-active) तत्व।

पानी के शुद्धीकरण के क्षेत्र में चाहे कितनी भी दक्षता प्राप्त कर ली गई हो परन्तु इसको प्रयोग के लिए स्वच्छ बनाये रखना एक महँगा काम हो गया है। निश्चय ही भविष्य में कर दाताओं के पैसे का एक बड़ा भाग शुद्ध जल के लिए खर्च होगा तथा उद्योगों के उत्पादों की लागत को भी बढ़ायेगा परन्तु फिर भी स्वच्छ पानी उपलब्ध कराने के लिए किया गया व्यय जन स्वास्थ्य को ठीक बनाए रखने में योगदान देगा। स्वच्छ जल जनता का मुद्दा है। जनता को यह अवश्य सुनिश्चित करना होगा कि जो लोग राजनीतिक पदों के लिए चुने जाएं वे पानी की समस्या के महत्व को भली-भाँति समझे और उसपर निरन्तर निगरानी रखें जिससे कि इस विषय में उपयुक्त कदम उठाए जा सकें।

बोध प्रश्न 3

1) क) "जल आपूर्ति की संरक्षा" से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

....

....

....

ख) ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में (घर में प्रयोग के लिए) आप पानी का क्लोरीकरण कैसे करेंगे ?

....

....

....

....

....

....

5.4 शहरी कूड़ा निपटान पद्धतियाँ (Urban Waste Disposal Methods)

"कूड़े" शब्द से तात्पर्य उस सामग्री (वस्तु) से हैं जिसकी कोई आवश्यकता नहीं है और जो घरों से, सड़कों पर, वाणिज्यिक, औद्योगिक तथा खेती परिचालनो से निकाल दिया गया है। इसे कई बार बेकार सामान या कूड़ा-करकट, कचरा (refuse) के नाम से भी पुकारा जाता है। कूड़े में सामान्यत: निम्नलिखित मिले होते हैं : मिट्टी, राख, वनस्पतिक तथा अन्य जैवनिम्नीकरणीय (biodegradable) वस्तुओं, कागज, पैकिंग सामग्री, चिथड़े, कपड़े, शीशा तथा प्लास्टिक आदि। इनमें से कुछ अजैवनिम्नीकरणीय हो सकते हैं। लम्बी अवधि में इनके बड़ी मात्रा में एकत्रित हो जाने की स्थिति में समुदाय में स्वास्थ्य संकट उत्पन्न हो सकता है।

कूड़े के निपटान के चरण

क) *संचयन :* कूड़े के निपटान में सबसे पहला कार्य है कूड़े को उदगम् स्थल (जैसे घर, दफ्तर, सार्वजनिक स्थानों आदि) पर रखने की ठीक एवं पर्याप्त व्यवस्था सुनिश्चित की जाए। कूड़ा रखने का डिब्बा जहाँ तक हो ज़स्तेदार धातु या प्लास्टिक का बना होना चाहिए तथा उसपर कसकर बंद होने वाला ढक्कन होना चाहिए। कुछ समय से डिब्बे के स्थान पर कागज़ या पौलिथीन के थैलों या बोरों का (जिन्हें कूड़े के साथ फैंक दिया जाता है और समय समय पर दूसरा रख दिया जाता है) प्रयोग शुरू किया गया है।

शहरों व कस्बों में सार्वजनिक स्थानों पर कूड़े के डिब्बे अत्यावश्यक हैं। इन्हें जमीन से ऊँचा करके बनाए गये कंक्रीट के चबूतरों पर रखा जाना चाहिये, जिसमें की बाढ़ या नालों के पानी का उनमें जाना रोका जा सके। इनको समय समय पर नगर निगम द्वारा व्यक्तियों की सहायता से या यन्त्रवत सज्जित ट्रकों का प्रयोग करके खाली कराया जाना चाहिए।

ख) *संग्रहित करना (Collection) :* यद्यपि घर-घर जाकर कूड़ा एकत्रित करना सबसे अच्छा तरीका है परन्तु विभिन्न कारणों से यह व्यावहारिक नहीं होता। अत: इसके लिए सार्वजनिक कूड़े के डिब्बे या कूड़ाघर की पद्धति को अपनाया गया है परन्तु लोग उसका ठीक से प्रयोग नहीं करते हैं तथा अधिकतर मामलों में उनका ठीक प्रकार से रखरखाव भी नहीं किया जाता और उन्हें देखकर कष्ट ही होता है। इसके लिए आवश्यक है कि इस संबंध में जनसमुदाय में जागरुकता लाई जाए और उन्हें इस विषय में शिक्षित किया जाये। साथ ही सार्वजनिक स्थलों से कूड़ा हटाने के लिए विशेष रूप से बनाये गए व बन्द किए जा सकने वाले निर्वात चूषण (वैक्यूम सक्शन) वाहनों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

ग) *निपटान (Disposal) :* कूड़े को उसके उदगम स्थल से एकत्रित करने के बाद कूड़े की व्यवस्था करने में सबसे महत्वपूर्ण कार्य उसका निपटान है। इसके लिए उपलब्ध आबंटित बजटीय संसाधनों, जनशक्ति तथा मशीनों इत्यादि तथा भूमि की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए कई तरीकों को अपनाया जा सकता है। इनमे से सामान्य रुप से अपनाये जाने वाले कुछ तरीके नीचे दिये गए हैं :

सन्निक्षेपण (Dumping) : यह कूड़े के निपटान का सबसे आसान तथा अस्वाथ्यकर तरीका है क्योंकि यह स्वास्थ्य संबंधी सबसे गंभीर संकट उत्पन्न कर देता है। यह मक्खियों व चूहों आदि को आकर्षित करता है। यह एक आपत्तिजनक तरीका भी हैं क्योंकि इससे दुर्गंध फैलती है तथा यह देखने में बुरा लगता है। इससे ज़ल तथा वायु प्रदूषित हो सकती है। अत: कूड़े के ढेर लगाने को जहाँ तक संभव हो निरुत्साहित किया जाना चाहिए तथा ऐसे अन्य सुरक्षित उपायों को अपनाना चाहिए जो कि लम्बी अवधि तक लाभ पहुँचा सकें। दिल्ली, कलकत्ता तथा बम्बई जैसे महानगरों में कूड़े को किसी नीची सतह के क्षेत्र में भूमि उद्धार प्रक्रिया (land reclamation process) के रूप मे भर दिया जाता है तथा बाद में उस भूमि को कृषि सहित कई अन्य कार्यों के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

खाद गर्त (Manure Pits) : यह ग्रामीण क्षेत्रों के लिए बहुत ही आसान तथा प्रभावी तरीका है। चूँकि गाँवों में कूड़े को एकत्रित करने एवं निपटान करने की कोई प्रणाली नहीं है अत: वहाँ के निवासी अपने-अपने घरों के लिए खाद गर्त (गड्ढे) बना लेते हैं। कूड़ा कचरा पशुओं का मल, घास - फूस, पत्ते आदि को इन गर्तो में एकत्रित करके इन्हें ऊपर से मिट्टी से ढ़क दिया जाता है। खाद गर्त संख्या में, भूमि की उपलब्धता तथा कचरे के आचतन के आधार पर अन्तर हो सकता है। कुछ समय के उपरान्त यह कूड़ा करकट प्राकृतिक रुप में ही खाद में परिवर्तित हो जाता है तथा भूमि की उर्वरता बढ़ाने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। इधर कुछ समय से नये नये तरीकों से जैसे गोबर गैस तथा बायोगैस से ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए कूड़े- कचरे का कच्ची सामग्री के रुप में भी प्रयोग किया जाने लगा है।

जमीन में दबाना (Burial) : कैम्प में या कहीं अस्थाई रूप से रहने पर कूड़े कचरे के व्ययन का सबसे उपयुक्त तरीका इसको जमीन में दबाना है। इसमें कूड़े की मात्रा को देखते हुए खाइयाँ खोदी जा सकती हैं। इनमें प्रतिदिन कूड़ा डाल दिया जाता है और उसे मिट्टी की एक परत से ढ़क दिया जाता है। जब कूड़ा खाई की ऊपरी सतह के 40 सैं.मीटर नीचे तक भर ज़ाता है तब उसमें ऊपर से अच्छी तरह मिट्टी भर कर उसे दबा दबाकर भूमि की सतह के बराबर कर दिया जाता है।

स्वच्छता भू-भरण **(Sanitary Landfill) :** यह कूड़े के निपटान का सबसे संतोषजनक तरीका समझा जाता है। इस तरीके में कूड़े करकट को खोदी गई खाइयों में या कूड़ा डालने के लिए तैयार की ज़गह पर प्रतिदिन भरा या फैला दिया जाता है तथा ऊपर से मिट्टी की परतें लगा दी जाती हैं। जब डाले गए कूड़े को सप्ताह में एक या दो बार मिट्टी डाल कर ढ़का जाता है तो इस तरीके को ''परिवर्तित स्वच्छता भू-भरण" (Modified sanitary landfill) कहते हैं।

जमीन में गाढ़े गए कूड़े में कुछ समय के बाद कुछ भौतिक, रसायनिक, जैविक परिवर्तन आते हैं। लगभग एक सप्ताह में, अन्दर का तापमान 60° सैन्टीग्रेड तक बढ़ जाता है तथा सभी रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को मार देता है। अपघटन (decomposition) की प्रक्रिया तेज़ हो जाती है। दो से तीन सप्ताह की अवधि में यह ठण्डा हो जाता है। अपघटन की प्रक्रिया में कुल मिला कर चार से छ: माह का समय लग सकता है।

भस्मीकरण (Incineration): कूड़े-करकट के निपटान की एक स्वास्थ्यकर पद्धति उसे जलाने या भस्म करने की है। इसका प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ कूड़े के निपटान के लिए भूमि उपलब्ध नहीं होती। अस्पतालों से निकले हुए कूड़े व अनुपयोगी सामग्रियों, जो कि बहुत संक्रामक व खतरनाक होती है, को भस्म करने की पद्धति भारत जैसे देश में बहुत उपयोगी नहीं है क्योंकि यह महँगी है तथा भस्म करने से प्राप्त राख का खाद के रूप में प्रयोग भी नहीं किया जा सकता।

सम्मिश्रण (composting): यह कूड़े व मल (night soil) को साथ -साथ व्ययित करने की एक पद्धति हैं। इस प्रक्रिया में जैव -पदार्थ, विद्यमान जीवाणु की क्रिया से विभंग हो कर कूड़े व मल को एक सम्मिश्रण में बदल देते हैं। इस प्रकार से बना मिश्रण बहुत अच्छी खाद के रुप में परिवर्तित हो जाता है तथा पौधों व सब्जियों को उगाने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। मिश्रण तैयार होने की प्रक्रिया में, कई दिनों की अवधि में तापमान 60° सैन्टीग्रेड तक पहुँच जाता है, जो कि मक्खियों के अण्डों व डिभंको तथा कई अन्य रोगजनक जीवाणुओं को मार देता है। इस मिश्रण से जंगली घासफूस के बीज भी नष्ट हो जाते हैं।

वायु जीवी व अवायवीय मिश्रण तैयार करने के लिए दो तरीके अपनाये जाते हैं।

वायुजीवी पद्धति (Aerobic method): इसे उष्ण किण्वन प्रक्रिया (Hot Fermentation process) या बैंगलोर पद्धति भी कहते हैं। इस पद्धति का प्रयोग ऐसे शहरों के कूड़े करकट व मल के निपटान के लिए उपयोगी बताया जाता हैं जहाँ कि जनसंख्या एक लाख से कम हो।

इस पद्धति में कूड़े - करकट की अनुमानित मात्रा के अनुसार 90 सै.मीटर गहराई, 5 मीटर चौड़ाई व 10 मीटर लम्बी खाइयाँ खोद ली जाती हैं। इनकी गहराई 90 सै.मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए क्योंकि इससे अधिक होने पर अपघटन की प्रक्रिया धीमी हो जाएगी। इन खाइयों को नगर की सीमा से लगभग 800 मीटर की दूरी पर बनाया जाना चाहिए।

सम्मिश्रण प्रक्रिया: पहले खाई की तली में कूड़े करकट की 15 सैं.मीटर की परत बिछाइए। उसके ऊपर 5 सैं.मीटर की मल की परत बिछाइए। उसके बाद एक परत कूड़े करकट की व एक मल की क्रमश: 15 सैं.मीटर व 5 सैं.मीटर के क्रम में लगाते जाइए। यह भराई क्रमश: 30 सैं.मीटर तथा 5 सैं.मीटर तक की जाएगी। ऊपर की 25 सैं.मीटर की परत कूड़े करकट की होगी। उसके बाद इस भराई को खोदी गई मिट्टी से ढ़क दिया जाये। 4 से 6 महीनों के अन्त में अपघटन की प्रक्रिया पूरी हो जाएगी। इस समय तक सम्मिश्रण गंधरहित व अहानिकर हो जायेगा, उसकी उर्वरक क्षमता बहुत बढ़ जाएगी और यह खेतों में प्रयोग के लिए तैयार होगा।

अवायवीय पद्धति (Anaerobic method): इसको यांत्रिक सम्मिश्रण पद्धति भी कहते हैं। इस पद्धति के अनुसार सम्मिश्रण बड़ी मात्रा में यांत्रिक रूप से बनाया जाता है। इस पद्धति में फटे चिथड़ों, हड्डियों, धातु के टुकड़ों, शीशा तथा अन्य ऐसी चीजों को जो पीसने की क्रिया में बाधा डालती हैं, को अलग कर लिया जाता है। उसके बाद सब कुछ एक विशेष संयंत्र में डाल दिया जाता है जिसके फलस्वरूप हर चीज़ चूर - चूर हो जाती है और 2 इंच आकार की हो जाती हैं। इसके बाद इस चूर-चूर की गई सामग्री को मल के साथ एक गोल घूमने वाले यंत्र में डालकर मिला दिया जाता है तथा उसके बाद उसे ऊष्मित करा जाता है। इस पद्धति में मिश्रण की पूरी प्रक्रिया 4 से 6 सप्ताह के अंदर पूरी हो जाती है। यह पद्धति बड़े शहरों के लिए, जहाँ जनसंख्या बहुत अधिक होती हैं, उपयोगी रहती है।

बीमारी फैलाने की दृष्टि से पानी में बहाए गए बिना अभिक्रियित मानव मल सबसे खतरनाक प्रदूषक हैं। बीमारी के कीटाणु मल के साथ बाहर निकलते हैं जो कि फिर पानी में प्रफलित होते हैं विशेषत: तब जबकि उसमें अन्य जैविक प्रदूषक विद्यमान हों। ये कीटाणु मनुष्य द्वारा संदूषित पानी में तैरने या ऐसे पानी के पीने पर ग्रहण कर लिए जाते हैं।

भारत की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है और उनमें से अधिकांश लोग विभिन्न कारणों से आसपास के क्षेत्रो का ही मल त्याग के लिए प्रयोग करते हैं। इसके परिणामस्वरूप प्रदूषण होता है। टाइफाइड ज्वर, अतिसार (कुछ एक शैल जीव या प्रोटोज़ोअम के कारण व अन्य जीवाणु के कारण) तथा हैज़ा ऐसे प्रमुख रोग हैं जो कि इस प्रकार के संदूषण के कारण होते हैं। अन्य रोग हैं: जठरांत्र शोथ, पोलियो तथा संक्रामक हैप्टाइटिस।

मलेरिया तथा पीत ज्वर कुछ ऐसी बीमारियाँ हैं जो मच्छरों से फैलती हैं। परन्तु इनसे वह जल, जिसमे मच्छर अपने जीवनक्रम में कुछ समय रहते है, संदूषित नहीं होता। जल निकास की पूरी सुविधा न होना तथा बंधा जल, पानी के तालाब (stagnant pool of water) मच्छरों की वृद्धि में सहायक होते हैं और परिणामस्वरूप रोग फैलातें हैं।

यह देखा गया है कि हमारे देश में शहरी जनसंख्या के केवल 15 प्रतिशत भाग को उपयुक्त जल निकास की सुविधा उपलब्ध है। विकसित देशों में जलोद रोगों (water-borne diseases) को, स्वच्छता व जल आपूर्ति के रासायनिक उपचार से, नियंत्रण में ले आया गया हैं। परन्तु कुछ मामलों में रासायनिक उपचार से भी समस्यायें सामने आई हैं।

आइए, अब वहित मल के निपटान (Sewage disposal) के प्रश्न पर विस्तार से विचार करें।

बोध प्रश्न 4

i) बड़े शहरों में कूड़े कचरे के निपटान के लिए अपनाई जाने वाली [illegible] को उदाहरण के साथ बताए (केवल सर्वोत्तम पद्धति के विषय में ही बताए, अन्य पद्धतियों के विषय में नहीं)।

....

....

....

....

सामान्यत: उत्सर्ग (मलमूत्र) के निपटान की पद्धतियों का एक उद्देश्य स्वच्छता रोधिका (Sanitary barrier) बनाने का होता हैं। इन पद्धतियों में सबसे महत्वपूर्ण चरण मल का अलग करके उसको ठीक प्रकार से निपटाने का है जिससे कि रोग फैलाने वाले कारक खाने व पानी तक न पहुँच सकें।

वाहित मल निपटान की प्रमुख अभिक्रिया में उसमे से ठोस पदार्थ निकाल लिए जाते हैं जिन्हें या तो जला दिया जाता हैं या खाद के रूप में प्रयोग में लाया जाता हैं। कुछ प्रणालियों में निपटान का कार्य यहीं पर पूरा हो जाता है, परन्तु अधिकतर प्रणालियों में इसके आगे भी कई अभिक्रियाए की जाती हैं। द्वितीयक अभिक्रिया मे, प्राथमिक अवस्था से बचे हुए मल को बड़ी छलनी से छान लिया जाता हैं या सक्रियित आपक बातन तंत्र (activated sludge aeration system) से शोधित किया जाता हैं। इससे ठोस पदार्थों की मात्रा और कम हो जाती हैं परन्तु बचे हुए मल में अभी भी बड़ी मात्रा में जैवीय पदार्थ शेष रहते हैं। यदि वाहित मल बहि:स्राव को द्वितीयक अभिक्रिया शोधन के बाद ही झीलों या तालाबों आदि में डाल दिया जाए तो इससे शैवाल तथा अन्य पौधों की संख्या में बहुत वृद्धि होती हैं और पुष्पपुंज (blooms) उत्पन्न हो जाते है जो पानी में विद्यमान अधिकांश ऑक्सीजन का प्रयोग कर लेते हैं। परिणामस्वरूप ऑक्सीजन की कमी के कारण मछलियाँ व अन्य जल जन्तु मर जाते हैं।

मलशोधन के अंतिम चरण में बचे हुए बहि: स्राव को रसायनों आदि से और कम कर दिया जाता हैं जिससे कि उसमें विद्यमान नाइट्रोजन तथा फॉसफोरस को निकाला जा सके क्योंकि मुख्य रूप से यही शैवाल आदि की वृद्धि में सहायक होते हैं। जब बचे हुए जल को क्लोरीन संशोधित करके कार्बन फिल्टरों से निकाल दिया जाता हैं या इसी प्रकार की किसी अन्य विधि से परिशोधित कर दिया जाता है तो बचे हुए पानी को वाणिज्यिक कामों में प्रयोग में लाया जा सकता हैं। इतना करने से शोधन प्रक्रिया पूर्ण हो जाती हैं।

निम्नलिखित चित्र में वाहित मल को अभिक्रियित करने के एक तरीके को दर्शाया गया है। यह उपर्युक्त प्रक्रिया से भिन्न है।

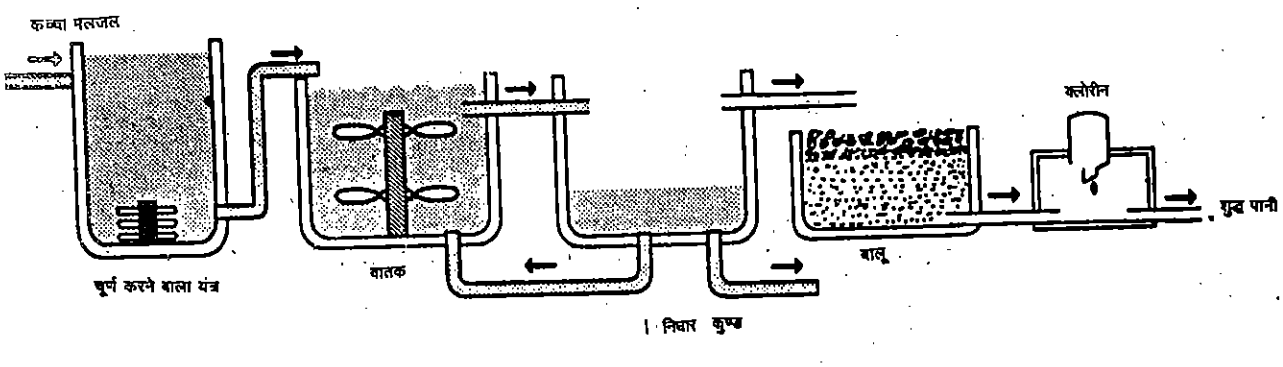

मल व्यवस्था तंत्र (Sewerage System) : वाहित मल हम उस गंदे पानी को कहते हैं जो घरों, सड़कों, वाणिज्यिक तथा औद्योगिक क्षेत्रों से निकलता है तथा जिसमें ठोस व तरल मलमूत्र व कचरा आदि सम्मिलित होता हैं। मलिन - जल (sullage) मानवीय मलमूत्र से रहित गंदा जल है। मल व्यवस्था का अर्थ हैं वाहित मल को एकत्रित करके निपटान हेतु उपयुक्त स्थल तक पहुँचाना। एक संकलित तंत्र (compiled system) में वाहित मल तथा बरसात आदि का पानी साथ साथ एकत्रित करके ले जाया जाता है जबकि विभक्त तंत्र (separate system) में सतही पानी वाहित मल के साथ नहीं मिलने दिया जाता हैं। विभक्त तंत्र सर्वोत्तम मानी जाती हैं।

शहरी क्षेत्रों में, घरों से वाहित मल, कीचड़, गंदा पानी आदि एकत्रित करने के लिए उपर्युक्त चर्चित तरीकों से निपटाने हेतु निर्धारित स्थल तक पहुँचाने की एक व्यापक मल व्यवस्था तंत्र विद्यमान है।

एक मल व्यवस्था तंत्र में निम्नलिखित होते हैं :

1) *घरों व वाणिज्यिक संस्थान में लगाये गये स्वच्छता आसंजन (sanitary fittings):* जल क्लोजेट (water closet) घर मे लगे इन उपकरणों water closet) में वाश बेसिन, सिंक तथा मूत्रालय आदि आते हैं।

2) *घरेलू नालियाँ :* उपर्युक्त स्वच्छता आसंजन से एकत्रित वाहित मल तथा बेकार पानी पाइपों की मदद से घर की नालियों में जाता हैं।

   घरेलू नाली 10 सें.मी. या 4 इंच की गोलाई की होती है तथा ये ज़मीन के 6 इंच नीचे कंकरीट या सीमेंट के ऊपर बिछाई जाती है तथा इनका बहाव मुख्य सार्वजनिक निकास नाली की ओर होता है। सामान्यतया इन नालियों में गंदी गैसों के निकलने के लिए एक निकास पाइप (vent pipe) जोड़ा जाता है।

3) *सार्वजनिक निकास नाली या सीवर :* इनमें विभिन्न स्थानों पर बने बहुत से घरों का वाहितमल एकत्रित होकर अन्तिम निपटान स्थल के लिए जाता है। ये 9 इंच से लेकर 10 फीट की गोलाई के पाइप से बनती हैं जिन्हें कि भूस्तर (ground level) से लगभग 10 इंच नीचे सीमेंट या कंकरीट के चबूतरे पर बिछाया जाता है तथा इनमें इतना ढलान रखा जाता हैं कि ये स्वयं साफ होते रहें।

4) *प्रवेश द्वार (Man hole) व ट्रैप :* प्रवेश द्वार सार्वजनिक निकास नाली पर निरीक्षण, रखरखाव व सफाई के उद्देश्य से थोड़ी-थोड़ी दूरी (सामान्यत: 100 फीट की दूरी) पर तथा मोड़ों व जंक्शनों पर बनाए गए प्रवेश द्वार होते हैं। ट्रैप वाहित मल मे से गंदी गैसों को घरों में घुसने से रोकने तथा रेता, मिट्टी, कंकड़ आदि को बाहर निकालने के लिए अपनाई गई विभिन्न युक्तियाँ होती हैं। इन्हें विभिन्न स्थानों पर लगाया जाता है।

वाहित मल निपटान : वाहित मल निपटान के अन्तर्गत वाहित मल के शोधन का कार्य आता है। यह शोधन कार्य स्थिरीकरण (stabilisation) प्रक्रिया से जैवीय पदार्थों को साधारण तत्वों में परिवर्तित करके तथा उसका और अपघटन रोक करके किया जाता है। वायुजीवी व अवायवीय पद्धति के जीवाणविक क्रिया से वाहित मल तंत्र की शुद्धिकरण हो जाती है। इस तंत्र से एक वहि: स्राव निकलता है जिसमें कोई रोगजनक नहीं होते तथा जिसे आवश्यकता पड़ने पर स्वास्थ्य पर कोई हानिकारक प्रभाव डालें बिना प्रयोग में लाया जा सकता है।

कई बार वाहित मल निपटान के कई अन्य तरीके भी अपनाए जाते हैं जैसे :

1) नदी में दहाना (River outfall)

2) समुद्र में दहाना (Sea outfall)

3) वाहित मल से खेती करना (Sewage farming)

4) ऑक्सीकरण तालाब (Oxidation ponds)

अब आप समझ सकते हैं कि वाहित मल निपटान की व्यवस्था करना कितना बड़ा सार्वजनिक स्वास्थ्य का काम है तथा इसमें कितनी लागत, योजना, अभिकल्पना, निर्माण कार्य, प्रचालन व रखरखाव कार्य सम्मिलित हैं। आप इस बात से सहमत होंगें कि इस प्रकार के तंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए बड़ी मात्रा में पानी की भी आवश्यकता होती है। वाहित मल तंत्र का और विस्तृत विवरण सार्वजनिक स्वास्थ्य इंजीनियरिंग की किसी भी पुस्तक में या सामाजिक एवं निरोधक चिकित्सा की किसी मानक पुस्तक में मिल जाएगा।

5.5 ग्रामीण क्षेत्र में जल आपूर्ति तथा स्वच्छता कार्यक्रम

सत्तरवें दशक के अंत (के वर्षों) में सुरक्षित जल आपूर्ति तथा स्वच्छता का अन्तर्राष्ट्रीय दशक घोषित किया गया था। इसका उद्देश्य वर्ष 2000 तक सभी के लिए स्वच्छ पेयजल तथा स्वच्छता की सुविधायें उपलब्ध कराना था। भारत सरकार द्वारा 1954 में स्वास्थ्य योजना के भाग के रूप में राष्ट्रीय जल आपूर्ति एवं स्वच्छता कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। आगामी पंच वर्षीय कार्यक्रमों में इसे प्राथमिकता देने के प्रावधानों की व्यवस्था भी उसके साथ ही कर दी गई थी। आगे के वर्षों में भारत सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में पेय जल की आपूर्ति के कई कार्यक्रमों की शुरुआत की गई। इनमें से मुख्य कार्यक्रम है :

- ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम (Village water supply programme)
- त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम (Accelerated Rural water supply programme)
- न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अवयव (Component of Minimum Need Programme)

सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान यह लक्ष्य था कि पूरी जनसंख्या के लिए पर्याप्त जल की सुविधा उपलब्ध कराई जाए। यह अन्तर्राष्ट्रीय पेय जल आपूर्ति तथा स्वच्छता दशक में निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने के लिए किया गया था। वर्ष 1986 में गाँवों में पेय जल तथा संबंधित जल प्रबंध के लिए प्रौद्योगिकी मिशन (Technology mission) प्रारंभ किया गया था।

प्रौद्योगिकी मिशन का मुख्य उद्देश्य था, ग्रामीण पेय जल आपूर्ति के क्षेत्र में चालू कार्यक्रमों को लागत प्रभावी बनाना तथा उनके निष्पादन में सुधार लाना जिससे कि पर्याप्त मात्रा में उपयुक्त गुणवत्ता का पेय जल उपलब्ध कराना सुनिश्चित किया जा सके तथा उसकी आपूर्ति को लम्बी अवधि के लिए बनाये रखा जा सके। ग्रामीण क्षेत्रों में सुरक्षित पेय जल आपूर्ति से संबंधित समस्याओं के व्यावहारिक तथा प्रभावी समाधान ढूढ़ने के ऊपर मुख्य रुप से बल दिया गया। यह स्पष्ट ही है कि इन समाधानों को सस्ता होना भी आवश्यक था।

यद्यपि इन कार्यक्रमों के संबंध में हमारे अनुभव ने यह दिखाया है कि वित्तीय साधन, कुशलता तथा सारे विश्व की सद्भावना उपलब्ध होने पर भी किसी गाँव में केवल पानी के नल लगाना तथा शौचालयों की व्यवस्था करना ही पर्याप्त नहीं है। यदि गरीबी इतनी हैं कि मनुष्य को जीवित रहने के लिए ही संघर्ष करना पड़ रहा है तो कृत्रिम जल आपूर्ति प्रणाली को चालू रखने के लिए अपेक्षित सामाजिक संगठनों का वहाँ उपस्थित होना असंभव है।

जल आपूर्ति योजनायें केवल इसीलिए रुक सकती हैं क्योंकि उनके रख-रखाव के लिए आवश्यक धन राशि का कोई प्रावधान नहीं किया गया। जब एक पम्प टूट जाता है तो उसे ठीक कराने के लिए आवश्यक धनराशि वहाँ उपलब्ध नहीं होती। गाँव में इस विषय पर ही बहस समाप्त नहीं होती कि जलआपूर्ति के लिए किसको ज्यादा भुगतान करना चाहिए --- उनको जिनके परिवार बड़े हैं या उनको जिनकी आग अधिक है। इस बीच जल व्यवस्था बेकार पड़ी रहेगी। इसका परिणाम यह निकलेगा कि ऐसे लोग जो पानी खरीद सकते हैं वे पानी लाने वालों से पानी खरीद लेंगे या वे शहरों के पास के इलाके में पानी के टैंक लाने ले जाने का काम करने वाली कम्पनियों को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए आदेश देकर पानी मँगवा लेंगे तथा गरीब परिवार फिर से अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए संदूषित नदी, तालाबों या कुओं से पानी लेना शुरु कर देंगे।

बहुत से विकासात्मक विशेषज्ञों का मानना है कि ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छ पेय जल की आपूर्ति केवल इस पर निर्भर करती है कि वहाँ पर भौम जल को ऊपर लाने के लिए अच्छे डिजाइन के आसानी से चलने वाले, सस्ते तथा विश्वसनीय हैंड-पम्प हैं या नहीं। बहुत से गाँवों में पानी इसलिये उपलब्ध नहीं हो पाता क्योंकि हैंडपम्पों की मरम्मत ही नहीं हो पाती। इसलिए लक्ष्य यह होना चाहिए कि ऐसे पम्प विकसित किए व लगाएं जाए जिन्हें गाँव में उस पम्प की देखभाल करने वाले व्यक्ति द्वारा ही कम से कम औज़ारों का प्रयोग करके अपने आप ही ठीक किया जा सकें। नये ड़िजाइनों के तथा अधिक कड़े परीक्षण से गुजरे पम्प जिनमें नये प्लास्टिक के पुर्जो का प्रयोग किया गया हो संभवत: अधिक सफल सिद्ध हों।

परन्तु, यदि ग्रामीण क्षेत्रों को पम्प करके सतह पर लाए भौम जल पर ही निर्भर रहना है तो इस बात की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है कि भौम जल स्रोत प्रदूषण से सुरक्षित रहें। सतही जल की अपेक्षा भौम जल के प्रयोग का एक प्रमुख आकर्षण यह है कि पेय जल के रूप में इस्तेमाल करने से पूर्व इसकी शोधन की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है।

हमने अब तक केवल उन कार्यक्रमों के गुणदोषों को देखने का प्रयास किया है जो कि मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों

में जल आपूर्ति उपलब्ध कराने और सुधारने की ओर विशेष ध्यान देते हैं। आइए अब स्वच्छता कार्यक्रमों की ओर ध्यान देते हैं।

केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम (सी.आर.एस.पी.) (Central Rural Sanitation Programme) वर्ष 1986-87 में प्रारम्भ किया गया। यह केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम है। स्वच्छता सुविधायें उपलब्ध कराने के लिए इसका क्रियान्वयन राज्य स्तर पर एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के स्तर पर किया जा रहा है।

इस कार्यक्रम का पूरा जोर व्यक्तिगत घरों में स्वच्छ शौचालयों का निर्माण करने पर है। आशा की गई थी कि इसमें महिलाओं के लिए अधिक एकांत स्थान, सामान्य रहन-सहन में सुधार तथा समग्र रूप से स्वास्थ्य में सुधार लाना सुनिश्चित किया जा सकेगा। (आपको पहले से ही पता है कि पर्याप्त स्वच्छता तथा स्वास्थ्य किस प्रकार आपस में एक दूसरे से संबंधित हैं)। इधर कुछ वर्षों से यह भी प्रस्ताव दिए गए हैं कि गाँवों में स्वच्छता स्थलों (कॉम्प्लैक्स) का निर्माण किया जाय, जिसमे स्वच्छ शौचालय, हैंडपम्प तथा कूड़े करकट व वाहित मल के उपयोग के लिए बायोगैस प्लांट लगाये जाँये। महिलाओं के लिए अलग नहाने, कपड़े धोने व शौच सुविधाएं उपलब्ध कराने की परिकल्पना भी की गई है। इसके अतिरिक्त, घरों के एक समूह (अर्थात् वे घर जो एक दूसरे के पास हों पर ऐसे दूसरे समूहों से अलग हों) के लिए अलग शौचालय सुविधायें प्रदान की जाएं। कुछ सामुदायिक-स्तर के शौचालयों के संबंध में विस्तृत विवरण परिशिष्ट 1 में दिया गया है।

स्वच्छता सुविधाओं एवं जलआपूर्ति के क्षेत्र में स्वैच्छिक संस्थायें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। निम्नलिखित केस अध्ययनों में कुछ नई-नई योजनाओं के बारे में बताया गया है जो कि हमारे देश में स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा प्रारम्भ की गई हैं। जैसा कि आप देखेंगे इनकी सफलता में अपनी सहायता स्वयं करना एवं समुदाय सहभागिता ही सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है।

हैंडपम्प पर आधारित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम : एक केस अध्ययन

किसी विकासशील समाज में, महिलाओं और उनके द्वारा किये गए काम को स्वत: उपलब्ध मान लिया जाता हैं। उनको शायद ही कभी मूल रूप से आय अर्जित करने वाले सदस्य के रूप में माना जाता हो। विवाह के उपरान्त भी उनको पारिवारिक बजट पर निर्भर एक अनुपूरक सदस्य के रूप में लिया जाता हैं, न कि उसमें योगदान करने वाले सदस्य के रुप में। क्योंकि अधिकतर विकास, शिक्षा तथा प्रशिक्षण उनके हिस्से में नहीं आ पाता, उन्हें तो घर में काम करने तथा बच्चे पैदा करने व पालने योग्य से अधिक कुछ समझा ही नहीं जाता। नीचे के उदाहरण में हम देखेंगें कि कैसे प्रबुद्ध महिलाओं ने जल आपूर्ति योजना को सफल बनाने के लिए कार्य किया।

भारतीय व डच सहभागिता में काम कर रहे एक गैर-सरकारी समुह ने सबसे पहले महिलाओं को मिर्ज़ापुर, (उ.प्र.) में गंगा कार्य योजना के अन्तर्गत ''हैंडपम्प मिस्त्री'' के रुप में प्रशिक्षित करने का कार्य प्रायोगिक तौर पर प्रारंभ किया। कार्यशाला चलाने वालों ने महसूस किया कि जब तक, समुदाय महिला वर्ग जल व्यवस्था संबंधी निर्णय लेने में सक्षम नहीं होंगी तब तक अपेक्षित परिवर्तन लाने में बहुत समय लगेगा।

मिर्ज़ापुर के प्रयोग में इस नये प्रकार के कार्य के लिए पुरुष वर्ग की ओर से आने वाले विरोध को भी सफलतापूर्वक शांत कर लिया गया। इस प्रयोग ने यह भी दिखाया कि महिलाओं को नए कौशल सिखाने से उनमें बहुत आत्मविश्वास तथा उद्देश्यपूर्ण जीवन का अहसास आया। धीरे-धीरे उनमें दृढ़ता आई और उन्होने हैंडपम्प लगाने के लिए उपयुक्त स्थान चुनने का अधिकार माँगना शुरू कर दिया।

इसके साथ ही साथ धीरे-धीरे समुदाय का पुरुष वर्ग भी उस ओर सहायक या आलोचक के रूप में (प्रारम्भ में आलोचक के रूप में अधिक) ध्यान देने लगा। धीरे-धीरे गाँव का सारा सामाजिक परिवेश व जीवन हैंडपम्प के इर्द गिर्द चलने लगा और वास्तव में यह एक सामुदायिक भागीदारी का सफल कार्य बन गया। समुदाय में महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह रखने वाले तथा स्वयं को शक्तिशाली समझने वाले लोगों को अन्तत: इस नवीन विकास के अनुरूप अपना मेल बिठाना पड़ा।

इसका एक लाभ यह भी हुआ कि वहाँ पर साक्षरता की माँग बढ़ी। वैसे भी अपने लाखों लोगों के दिन प्रतिदिन के जीवन को प्रभावित करने से संबंधित मामलों को समेकित करने तथा लोगों में यह चेतनता जगाने की, कि इनका समाधान उनके अपने पास ही है, बहुत आवश्यकता है। सुरक्षित पेय जल के साथ, कौशलों को सीखना व साक्षरता भी जोड़ दिया गया है। बाद में उसी में स्वास्थ्य देखभाल व स्वच्छता कार्यक्रम भी जोड़े जा सकते हैं। इन प्रयोगों से कुछ बातें स्पष्ट रूप से सामने आई हैं जिनका प्रयोग सामाजिक/विकास कार्यों को प्रभावी तथा अधिकाधिक उपयोगी बनाने के लिए किया जा सकता है। जैसे यदि पारम्परिक व कम लागत के माध्यमों का प्रयोग करते हुए चेतना लाने तथा प्रशिक्षित करने का उत्तरदायित्व गैरसरकारी

संगठनों द्वारा ले लिया जाए व सरकार की भूमिका संरक्षण, आधारभूत संरचना व कुछ प्रारम्भिक सहायता उपलब्ध कराने की हो जाए, तो परियोजनाओं को सफलतापूर्वक निष्पादित किया जा सकता है । परन्तु इसके लिए समुदाय को भरोसे में लेना आवश्यक है ।

सन् 1970 मे प्रारम्भ की गई भारत की हैंडपम्प पर आधारित ग्रामीण जल आपूर्ति योजना तब से लेकर अब तक काफी प्रगति कर चुकी है। इसके अन्तर्गत अब तक लगभग 50 करोड़ लोगों के लिए पानी उपलब्ध कराने के लिए, देश भर के विभिन्न भागों में, भूमि को गहरा खोदकर लगाये जाने वाले इंडिया मार्क - II हैंडपम्प, 22 लाख की शानदार संख्या में लगाये जा चुके हैं । यद्यपि इस योजना के अन्तर्गत पानी की सुविधा प्राप्त गाँवों की संख्या काफी अधिक है परन्तु देखा गया है कि किसी भी दिए गए समय पर इन 22 लाख हैंडपम्पों में से 10-15 प्रतिशत अवश्य ही खराब रहते हैं । इसके कारण काफी जनसंख्या (लगभग 5. 5 करोड) को इस सुविधा का लाभ नहीं मिल पाता । राज्य सरकारों ने कई प्रकार से अपने साधनों व सुविधाओं व अन्य माध्यमों से इनके रखरखाव की स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया है परन्तु इन हैंडपम्पों के रख - रखाव पर सालाना काफी पैसा खर्च करना पड़ता है । इस खर्च का एक कच्चा अनुमान लगाने के लिए यदि हम प्रति हैंडपम्प के लिए 350 रु. की राशि लें तो वर्ष में 7.5 से 8.5 करोड रु. तक का व्यय आएगा ।

इस कठिनाई को देखते हुए केन्द्र व राज्य सरकारें इसका समाधान ढूँढनें के लिए विभिन्न तरीकें अपना रही हैं । इनमें कुछ प्रमुख तरीके हैं:

क) रखरखाव के उत्तरदायित्व को स्थानीय निकायों एवं प्रयोक्ता समूहों को दे दिया जाय ।

ख) उपयुक्त रखरखाव के लिए अपेक्षित कौशलों का विकास किया जाए ।

हैंडपम्पों का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों को हैंडपम्पों की व्यवस्था एवं रखरखाव की प्रणाली विकसित करने में भागीदार बनाकर इनके रखरखाव को अच्छा बनाने की दिशा में प्रयास किये गए हैं । हैंडपम्प की प्रौद्योगिकी को भी सरल बनाया गया है जिससे कि उनके रखरखाव के लिए तकनीकी कौशल की आवश्यकता कम हो । इसी प्रयास में महिलाओं की ओर, जो कि पारम्परिक रूप से पानी की व्यवस्था करने वाली रहीं हैं, विशेष रूप से ध्यान दिया गया हैं ।

मिर्जापुर के प्रयोग से सीख लेते हुए महिलाओं को हैंडपम्प के रखरखाव के कार्यक्रम में सम्मिलित करने की अवधारणा को जिला स्तर पर सबसे पहले राजस्थान में आजमाया गया । राजस्थान के कुछ जिलों में स्थानिक गिनी कृमि (guinea worm) की समस्या है । इस बीमारी को समूल नष्ट करने के प्रयास के रूप में यहाँ 1986 में सुरक्षित जल तथा सामुदायिक स्वास्थ्य (स्वच्छ) (Safe water and Community Health Programme) कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था । गाँव में इंडिया मार्क -II हैंडपम्प का प्रयोग करके जल उपलब्ध कराने के कार्य का प्रारम्भिक प्रभाव दृष्टि गोचर होने के बाद ही यह महसूस किया गया कि प्राप्त विकास व सफलता को बनाये रखने के लिए हैंडपम्पों के रख रखाव की समस्या का समाधान आवश्यक है । अत: बाँसवाड़ा जिलें में 1988 में महिलाओं को प्रशिक्षित करने का प्रयोग आजमाया गया । यह प्रयोग बहुत सफल सिद्ध हुआ ।

सरकारी विभाग मुख्य मशीनरी लगाने व अतिरिक्त पुर्जे उपलब्ध कराने के लिए उत्तरदायी था और रखरखाव के लिए पंचायत समिति ने प्रशिक्षित महिलाओं को ठेके के आधार पर काम के लिए रखा तथा उनके काम के लिए उन्हें वेतन दिया गया । आस्था (Aastha) तथा सेवा मंदिर जैसे गैर सरकारी संगठनों का सहयोग मैकेनिकों व सामाजिक संचेतकों (Animators) (जो कि गाँव का मैकेनिक भी हो सकता है) को प्रशिक्षित करने के लिए सम्मिलित किया गया । महिला मैकेनिकों ने हैंडपम्पों के रखरखाव का काम किया और सामाजिक संचेतनकर्ता का काम गाँव गाँव जाकर लोगों को गिनी कृमि, खुले कुओं, तालाबों का पानी न पीने तथा कुओं में दवा आदि डालने के विषय में बताया ।

उत्तर प्रदेश में बाँदा जिले का एक अन्य रोचक उदाहरण है । यहाँ पर एक क्षेत्र विशेष में बहुत से सदैव लड़ने -भिड़ने वाले डाकू बहुतायत में रहते थे तथा यदि इस क्षेत्र में प्रगति लाने का कोई उपाय किया जाता था तो वह उसका जमकर विरोध करते थे । यह इलाका प्राकृतिक रूप से पथरीला है तथा यहाँ हमेशा पानी की कमी रहती है । यहाँ पर हमेशा स्थानीय शासन के जल निगम विभाग तथा स्थानीय लोगों के बीच सुरक्षित जल की माँग को लेकर प्रतिरोध चलता रहता था । 1991 में एक दिन 250 महिलायें जल निगम कार्यालय के सामने सुरक्षित जल की माँग को लेकर धरने के लिए एकत्रित हुई । उन्होने मटके तोड़ें और "पानी दो भई पानी दो वरना गागर फोड़ दो" के नारे लगाये । 1992 तक स्थिति सुधर गई । महिला दिवस के दिन नारा बदल कर "एक हाथ में चकला बेलन, एक हाथ में टूल किट लिफ्टर" (एक हाथ में खाना बनाने के औज़ार, दूसरे हाथ में हैंडपम्प ठीक करने के औज़ार) हो गया ।

महिला समाख्य (Mahila Samakhya), मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना, जो कि जिले के 120 गाँवों में चल रही है, ने इस प्रकार का अविश्वसनीय परन्तु नाटकीय अन्तर लाने के लिए आधार स्तर से ही एक गैरसरकारी संस्था के रूप में काम किया है। उनका मुख्य आधार था महिलाओं को सशक्त बनाना। लेकिन इसने दिन प्रतिदिन के जीवन से जुड़े निर्णायात्मक मामलों जैसे जल प्रबन्ध आदि, से गुजर कर अपनी गति तेज़ की है। साक्षरता इसकी एक महत्वपूर्ण उप-शाखा है। इनके, समुदाय को प्रेरित करने के लिए आयोजित सामूहिक चर्चायें तथा मनोरंजन के माध्यम से संदेश देने के नये नये तरीके वास्तव में देखते ही बनते हैं तथा बहुत ही सफल सिद्ध हुए हैं।

एक अन्य उदाहरण पश्चिमी बंगाल के मिदनापुर जिले का है। यह भारत का सबसे बड़ा जिला है जहाँ सतही जल की कोई कमी नहीं है परन्तु यहाँ पर सुरक्षित जल के लिए जागरुकता लाने के लिए सामुदायिक स्तर पर संगठित होने एवं परिवर्तन लाने की आवश्यकता थी। यहाँ पर लगभग 15 लाख मौतें अतिसार से हो चुकी थी तथा सरकार 1989 में इस क्षेत्र में प्राथमिकता के आधार पर "अतिसार नियंत्रण परियोजनाएं" (सी.डी.डी.डब्ल्यू.ए.टी.एस.ए.एन. — कन्ट्रोल ऑफ डायरहीयल डिज़ीज़ेस थ्रू वाटर एण्ड सेनिटेशन -जल और स्वच्छता द्वारा अतिसार संबंधी रोगो का नियंत्रण) लागू करने के लिए बाध्य थी। इस योजना के अन्तर्गत लक्ष्य था निम्नलिखित के संबंध में सूचना उपलब्ध करना:

क) व्यक्तिगत स्वच्छता

ख) सुरक्षित जल, तथा

ग) जीवन रक्षक घोल (ओ.आर.एस.)।

अत: इस जिले में रामकृष्ण मिशन लोक शिक्षा परिषद् के माध्यम से (जिसे जनता का विश्वास प्राप्त है) एक गहन स्वच्छता परियोजना (Intensive Sanitation Project) (आई.एस.पी.) प्रारम्भ की गई। परिषद ने अपने गाँवों में पहले से चल रहे युवा क्लबों (Youth clubs) को झुंड समूहों (Cluster groups) के रूप में संगठित किया। देश के इस भाग में युवा क्लब हमेशा से ही सक्रिय रहे है तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों जैसे दुर्गा पूजा, जात्रा आदि को आयोजित करवाने में भाग लेते रहे हैं। किसी ब्लॉक या गाँव के लिए बनाई गई विकासशील योजनाओं में सक्रिय रूप से सम्मिलित करके रामकृष्ण मिशन ने इनको एक नया उद्देश्य दिया।

चूँकि इन क्लबों के पास आधारभूत संरचनायें थी तथा इनको समुदाय के ही स्थानीय नेताओं तथा दूरदर्शी बुद्धिजीवी के मार्गदर्शन में काम करने का अवसर मिला, अत: इनको सफलता और भी जल्दी मिली तथा परियोजना के जो परिणाम सामने आये उन्हें थोड़े ही प्रयासों से प्राप्त सामूहिक भागीदारी से लाये गये ग्रामीण विकास का आदर्श रूप कहा जा सकता है। ग्रामीण विकास के लिए एक नये प्रकार की योजना बनाई गई। योजना के अन्तर्गत प्रत्येक 40 स्वच्छ शौचालयों के निर्माण पर गाँव में पुरस्कार स्वरूप एक तारा (TARA) हैंडपम्प दिया जाना था। बदले में ग्रामवासियों से यह अपेक्षा की गई थी कि वे :-

- प्रत्येक 40 परिवारों के लिए एक डब्ल्यू. ए.टी.एस.ए.एन. (WATSAN) (जल एवं स्वच्छता) समिति बनाएंगे
- दो महिलाओं को इनकी सुरक्षा के लिए निर्धारित करेंगे।
- हैंडपम्प चबूतरा बनाने के लिए संयुक्त रूप से 500 रु. व हैंडपम्प के रख रखाव के लिए 50 पैसे प्रति परिवार से दिये जाएंगे।

5.6 सारांश

इस इकाई की मुख्य बातें ये हैं :

- हम अपनी पेय जल की अधिकांश आवश्यकता की पूर्ति के लिए सतही जल तथा भौम जल पर निर्भर रहते हैं।
- इधर कुछ वर्षों में प्रदूषण, भौम जल के अधिक उपयोग से बढ़ी लवणता तथा अन्य कारणों से जल की गुणवत्ता का ह्रास हुआ है।
- अपनी उपलब्ध जल आपूर्तियों को सम्भाल कर व सुरक्षित रखने की बहुत आवश्यकता है।
- जल गुणवत्ता के लिए मानक निर्धारित कर दिये गये हैं; सक्षम स्थानीय अधिकारियों को जल गुणवत्ता की जाँच के लिए अधिकृत कर दिया गया है।
- बड़े पैमाने पर जल शोधन प्रणालियाँ प्रारम्भ की गई हैं जो कि सामान्यत: जल संचयन, फिल्टर तथा क्लोरीनीकरण द्वारा अवसादन की विधियों को अपनाती हैं। क्लोरीनीकरण के

अतिरिक्त अन्य पद्धतियाँ जैसे ओजोनीकरण, पराबैंगनी विकरण आदि को भी अपनाया जा सकता है।

- कूड़े में जैव निम्नीकरणीय व अजैव निम्नीकरणीय दोनो प्रकार के पदार्थ सम्मिलित होते हैं। इनके बड़ी मात्रा में तथा लम्बी अवधि के लिए एकत्रित हो जाने से वहाँ रहने वालों के लिए गंभीर स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं।
- कूड़े के निपटान के उपायों में संचयन, एकत्रीकरण व निपटान सम्मिलित हैं। कूड़े को निम्नलिखित में से कोई भी तरीका प्रयोग में लाकर निपटाया जा सकता है - सन्निक्षेपण, खाद गर्त, जमीन में गाढ़ कर, स्वच्छता भूभरण, भस्मीकरण अथवा सम्मिश्रण से।
- वाहित मल निपटान का लक्ष्य स्वच्छता शोधिका निर्मित करने से हैं। वाहित मल का प्राथमिक एवं द्वितीयक उपचार करके उसमे से जैव तत्वों को अलग किया जाता है। अन्तिम चरण में उसमें से नाइट्रोजन व फॉस्फोरस भी अलग कर दिये जाते हैं।
- सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों द्वारा चलाए जा रहे जल आपूर्ति एवं स्वच्छता कार्यक्रमों का लक्ष्य पूरे देश में स्वच्छ जल की आपूर्ति करना हैं। इसमें ग्रामीण जनसंख्या का विशेष ध्यान रखा जाता है। अब अपनी सहायता अपने आप करने व सामुदायिक भागीदारी से काम करने पर अधिक बल दिया जा रहा है।

5.7 शब्दावली

जैव निम्नीकरणीय : ऐसी चीजें जिन्हें कणों में विभक्त किया जा सके और जो अन्तत: प्राकृतिक प्रक्रियाओं से ही विघटित हो जाए।

बहि स्राव : तरल गन्दगी जो फैक्ट्रियों आदि द्वारा जल स्रोत में या ज़मीन पर निकाली जाती हैं।

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1)

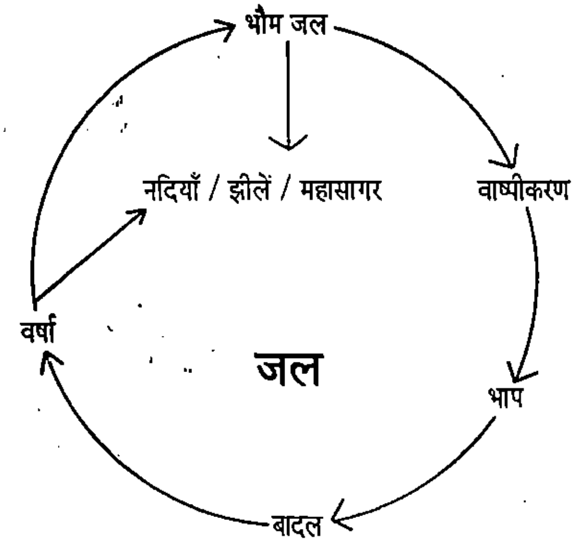

2) आप जिस क्षेत्र में रहते हैं वहाँ की जानकारी के आधार पर उत्तर दें।

बोध प्रश्न 2

1) क) गलत — धरती का कुछ पानी जलचक्र में भाग नहीं लेता हैं जैसे ध्रुवीय टोपियों पर जमी बर्फ का पानी या हिमनद का पानी।

ख) गलत — भौम जल नदी, झील के पानी की अपेक्षा जलीयचक्र में धीमी गति से भाग लेता है ।

ग) सही

घ) सही

2) भौम जल के बहुत अधिक प्रयोग का अर्थ है विभिन्न प्रकार के कुओं तथा ट्यूबवैलों द्वारा भौम जल का अत्यधिक प्रयोग करना । इससे भौम जलस्तर नीचे जा सकता है । ऐसा होने पर हमें पानी के लिए कुओं को और गहरा खोदना पड़ेगा ।

बोध प्रश्न 3

क) जल आपूर्ति के संरक्षण से अर्थ हैं जल को सामान्य रूप से औद्योगिक या जैविक गन्दगी से संदूषित होने तथा विशेष रूप से जीवाणु (जैविक संदूषण) या मरकरी (औद्योगिक रासायनिक संदूषण) से संदूषित होने से बचाना । समग्रतात्मक रूप से जल संरक्षण का अर्थ यह भी है कि उसकी गुणवत्ता की दृष्टि से भी उसे किसी प्रकार के बुरे परिवर्तन से बचाया जाए । इस दृष्टि से भी यह एक सकारात्मक संकल्पना है ।

ख) कुओं या सामुदायिक तालाबों के संदर्भ में चर्चा करें ।

बोध प्रश्न 4

1)

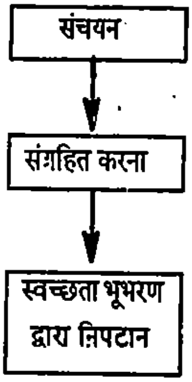

इकाई 6 व्यक्तिगत स्वच्छता

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 व्यक्तिगत स्वच्छता

6.3 विश्राम एवं निंद्रा

6.4 व्यायाम, थकान एवं मुद्रा (Posture)

6.5 आदतें

6.6 पदार्थ का दुरुपयोग (Substance Abuse)

6.6.1 शराब या अल्कोहॉल

6.6.2 नशीले पदार्थ (ड्रग) का दुरुपयोग

6.7 पहनावा एवं जूते

6.7.1 पहनावा

6.7.2 जूते

6.8 सुरक्षित एवं दायित्वपूर्ण यौन संबंध

6.9 सारांश

6.10 शब्दावली

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.1 प्रस्तावना

इकाई 4 में हमने देखा कि संक्रमण के कारक कितने व्यापक हैं। हम इनसे जितना भी बचे रह पाते हैं वह अपने आप में एक आश्चर्य ही है। हमने यह भी देखा कि कैसे प्रकृति हमें इन संक्रमणों से बचने की क्षमता देती हैं तथा कैसे रोग के कारकों की क्रिया विधि व मानव शरीर के संबंध में मनुष्य के ज्ञान एवं समझ से मनुष्य जन्मजात प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने में अथवा संक्रमण व बीमारियों के प्रति इस प्रतिरोधक शक्ति का विकास करने में सफल हो पाया।

व्यक्तिगत स्वच्छता (Personal Hygiene) बिल्कुल आधारभूत बातों से संबद्ध हैं जिनका पालन करके हम संक्रमण व रोगों से यथासंभव दूर रह सकते हैं। वास्तव में यह रोगों से बचाव तक ही सीमित नहीं हैं। यह उस देखरेख व व्यवहार से भी संबंधित हैं, जो हमे अधिकतम कुशलता एवं सामर्थ्य के साथ एक स्वस्थ्य, सक्रिय एवं सम्पूर्ण जीवन जीने की शक्ति प्रदान करता है। व्यक्तिगत स्वच्छता (अर्थात परसनल हाइजीन) हमारी शारीरिक देखरेख व स्वच्छता के साथ - साथ हमारे मानसिक स्वास्थ्य से भी सम्बद्ध है। अंग्रेजी का शब्द हाइजीन ग्रीक शब्द हाइजिया से लिया गया है जो कि वहाँ की स्वास्थ्य की देवी का नाम है, जिनके विषय में माना जाता है कि वे लोगों के स्वास्थ्य की देखभाल करती थी। स्वास्थ्य विज्ञान व्यक्ति विशेष व समाज दोनो से ही संबद्ध है। जो कुछ एक व्यक्ति अपने शरीर व मन के विकास व स्वास्थ्य के लिए करता है वह व्यक्तिगत/स्वास्थ्य स्वच्छता के अन्तर्गत आता है तथा जो एक संगठित समाज को सभी व्यक्तियों के स्वास्थ्य को बनाये रखने, उसकी रक्षा करने व उसके विकास के लिए करना होता है, वह जन स्वास्थ्य (public health) के अन्तर्गत आता है। जनस्वास्थ्य का जो पक्ष बाह्य वातावरण को स्वच्छ व स्वास्थ्यानुकूल रखने से संबंधित है, उसे स्वच्छता कहते हैं। पर्यावरणीय स्वच्छता मनुष्य के आसपास के वातावरण की उन सभी वस्तुओं से संबंधित हैं जो कि उसके शारीरिक एवं मानसिक विकास को, उसके

स्वास्थ्य व जीवन को प्रभावित करती हैं। यह सुरक्षित पेय जल, प्रदूषण रहित वायु व वातावरण, मलमूत्र, कूड़े आदि के निपटान की उपयुक्त व्यवस्था तथा स्वास्थ्यप्रद परिस्थितियों व आहार-आपूर्ति, भवन-निर्माण के लिए विनियमों, नाशक जीव नियंत्रण आदि से संबंधित हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- अनुकूलतम स्वास्थ्य व कुशलता के लिए अनिवार्य शरीर व पोशाक की स्वच्छता, के मानदंडों का वर्णन कर सकेंगें
- अनुकूलतम कार्य करने की क्षमता की पुन: पूर्ति करने में आराम, निद्रा, व्यायाम तथा मनोरंजन की भूमिका की विवेचना कर सकेंगें
- स्वास्थ्य एवं कार्यकलापों के उच्चतम मानदंड को प्राप्त करने में आदतों की भूमिका और आदतों के प्रति सावधानी के विषय में संक्षेप में बता सकेंगें, और
- व्यक्ति के स्वास्थ्य व कुशलता के प्रति विद्यमान खतरों को कम करने के उपायों की सूची बना सकेंगें।

6.2 व्यक्तिगत स्वच्छता

अपना स्वास्थ्य अच्छा रखने तथा अपने आपको संक्रमण तथा रोगो से बचाए रखने के लिए स्वच्छ शरीर तथा स्वच्छ पोशाक बहुत आवश्यक हैं। इसका एक महत्वपूर्ण पहलू, यह समझना है कि हमें इसके लिए क्या करना चाहिए व क्यों करना चाहिए ? यदि कोई यह समझ लेता है कि उसे कोई कार्य किस लिए करने को कहा जा रहा है तो उसके लिए उसे मानना आसान हो जाता है। यह तरीका जो कि तर्क तथा कारण-प्रभाव पर आधारित है, बच्चों पर विशेष रूप से असर करता है।

1) **शरीर को स्वच्छ रखना** : स्वच्छ जल से स्नान करना। शरीर को स्वच्छ रखने का सर्वोत्तम तरीका इसे पानी से साफ करने का है। यदि आपके पास सुविधाएँ है और पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध है तो आपको स्नान करना चाहिए अन्यथा कपड़े को पानी में भिगोकर उससे शरीर को पोछना चाहिए — जो कि स्पंज स्नान कहलाता है। इस विधि का प्रयोग प्राय: बीमार लोगों के लिए किया जाता है। त्वचा पर लगी चिकनाई, पसीने व मिट्टी को साफ करने के लिए, स्वास्थ्य एवं सामान्य त्वचा को नियमित रूप से मृदु साबुन तथा पानी से धोना चाहिए। पश्चिमी देशों में शरीर की सफाई के दो तरीकें हैं — एक स्नान (bath) दूसरा फुहार-स्नान। स्नान से अभिप्राय पानी से भरे बड़े टब में बैठ कर अपने शरीर को साफ करना। यद्यपि यह अपने शरीर को साफ करने का बहुत आरामदायक तरीका है परन्तु इसमें स्नान के फलस्वरूप शरीर से निकली गन्दगी बहने की अपेक्षा स्नान के पानी में ही मिलती जाती हैं। इसके अतिरिक्त टब को साफ करने की भी एक परेशानी रहती है। दूसरा तरीका हैं फुहार-स्नान (Shower)। इसमें पानी एक फुहार (धारा) के रूप में या तो दीवार में लगे या आपके द्वारा हाथ में पकड़े जा सकने वाले फुहारे से आपके ऊपर गिरता है। यह हमारे स्नान करने के सामान्य तरीके से काफी मिलता जुलता है, जिसमें हम या तो शरीर पर मग की सहायता से पानी डालते हैं या नल के नीचे खड़े या बैठकर स्नान करते है। इसमें पानी आपके ऊपर गिरता है और गन्दगी को साफ कर देता है। आपकी इच्छानुसार पानी ठंडा या गरम हो सकता है। चाहे किसी भी प्रकार से स्नान किया जाए, पानी गरम हो या ठण्डा परन्तु एक बात का ध्यान रखें कि साबुन त्वचा पर लगा न रह जाए। डाक्टर की सलाह के बिना औषधियुक्त या कीटनाशी साबुन का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के कई साबुन त्वचा पर प्रतिकूल प्रभाव डालकर जलन या खुजली कर देते हैं। स्नान के पश्चात् शरीर को रोयेंदार तौलियें से सुखा लेना चाहिए। संक्रमण से बचने के लिए एक दूसरे के तौलिए का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

सबेरे स्नान करना हम लोगों के लिए नित्य-क्रिया एवं संस्कारों का एक हिस्सा है, परन्तु रात में सोने से पहले स्नान इतना लोकप्रिय नहीं हैं। मौसम तथा सुविधा को देखते हुए यदि किसी को सबेरे स्नान करने अथवा रात को स्नान करने में से एक को चुनना हो तो दिन समाप्त होने पर स्नान करना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है क्योंकि रात को स्नान करने से दिन भर की गन्दगी, पसीना इत्यादि साफ हो जाती है और आप आराम से साफसुथरे होकर स्वच्छ कपड़े पहन आराम से अगले 8 - 9 घंटों के लिए सो सकते हैं। यह बच्चों के लिए और अधिक महत्वपूर्ण है। प्रात:कालीन स्नान संभवत त्वचा के लिए व आपको पूरी तरह से जगाने के लिए अच्छा है। यदि आप सबेरे व रात को दोनो समय पर स्नान कर सकें तो वह सबसे अच्छा है।

2) **हाथों, पैरों व नाखूनों की स्वच्छता :** रोगों के कीटाणु कुछ सीमित तरीकों से ही शरीर में प्रवेश कर सकते हैं। इनमें से एक है त्वचा के माध्यम से। त्वचा हमारे शरीर की सुरक्षात्मक कवच (covering) है। फटी हुई त्वचा हानिकारक जीवाणु व विषाणुओं को शरीर में प्रवेश करने का सरल मार्ग प्रदान कर सकती है। सामान्य सावधानियाँ बरत कर इस खतरे को कम किया जा सकता है। शरीर के किसी भी अंग की अपेक्षा, हाथ व पाँव, संदूषण कारको के संपर्क में अधिक आते हैं। इसलिए जब भी कभी खाने या पीने की सामग्री को बनाने, छूने या खाने से पहले तथा शौच के बाद मिट्टी व गन्दगी के सम्पर्क में आएं तब हाथ, पाँव को अवश्य (साबुन व पानी से) धो लेना चाहिए। चूँकि हाथ दिन में कई बार गंदे होते हैं और उन्हें बार बार धोना पड़ता है, अत: अच्छा यह रहेगा कि हाथों को धोने के बाद उन पर नर्म करने वाली क्रीम या लोशन लगा दी जाय, जिससे कि त्वचा शुष्क न हो।

हम पाँवों की देखभाल पर विशेष रूप से बल देना चाहेंगे। हमारे देश में लोग या तो जूता, चप्पल पहनते ही नहीं है या अधिकतर किसी न किसी प्रकार के पाँव को खुले रखने वाले जूते-चप्पल पहनते हैं। इसका एक कारण तो मौसम (जो देश के बड़े भाग में उष्णकटिबन्धी (tropical) है) है जिसके कारण पूरे वर्ष खुले जूतेचप्पल आदि अधिक आराम व सुविधाजनक लगते हैं। साथ ही वह आर्थिक दृष्टि से भी सस्ते होने के कारण अधिक व्यावहारिक रहते हैं। खुले जूते पहनने के फलस्वरूप अधिकाँश लोगों की ऐड़ियों में त्वचा शुष्क व कठोर होकर फटने लगती हैं और उसमें दरारें पड़ जाती हैं। यह न केवल देखने में गन्दी व अशोभनीय लगती हैं बल्कि दर्द व संक्रमण का कारण भी बन सकती हैं। सबसे अच्छा तो यह हैं कि इस प्रकार की दरारों को पड़ने ही न दिया जाए। यदि पैरों के तलुओं, विशेष रूप से ऐड़ियों को, स्नान करते समय किसी ब्रुश या झामे से घिस कर साफ कर लिया जाए तो इन दरारों को बनने से रोका जा सकता है। प्यूमिक (Pumice) पत्थर इस काम के लिए अच्छा रहता है। आप अपने गुसलखाने में एक छोटा स्टूल भी रख सकते हैं, जिस पर बैठकर आप अपनी ऐड़ियाँ साफ कर सकें। नियमित रूप से अपनी ऐड़ियों की सफाई करेंगे तो यह आपकी आदत बन जायेगी और आप जब भी पैर साफ नहीं कर पायेंगे तो आपको स्वयं कुछ अच्छा नहीं लगेगा। बाज़ार में कठोर व फटी ऐड़ियों पर लगाने के लिए क्रीम व मरहम भी उपलब्ध हैं।

नाखून बाह्य त्वचा या त्वचा की सबसे ऊपर की परत का ही विस्तार है। हमें जो नाखून दिखाई देते है वह वास्तव में एक मृत ऊतक (टिशू) है जो कि केराटिन कहलाता है तथा उसकी उत्पत्ति कोशिका में होती है जो कि जीवित होती है। यदि नाखून जड़ के पास से टूट जाये तो आप नाखून के इस जीवित भाग में दर्द महसूस कर सकते हैं। नाखूनों को छोटा रखना चाहिए जिससे इनके अन्दर कुछ मल इत्यादि एकत्रित न हो सके। हाथ धोते समय विशेष ध्यान देते हुए नाखूनों के अन्दर सफाई करनी चाहिए। किसी पुराने दाँत साफ करने वाले ब्रुश की सहायता से यह काम किया जा सकता है। नाखूनों से संबंधित कुछ समस्याए अत्याधिक नख-प्रसाधन (manicuring) के परिणामस्वरूप होती है। पाँवों के नाखूनों का स्वस्थ व स्वच्छ रहना सुनिश्चित करने के लिए पैरों को दिन में एक बार गर्म पानी में भिगो कर नाखूनों को ब्रुश व साबुन से धोना चाहिए। उँगली के नाखून के उदगम स्थल पर संक्रमण होने या टिशू पर चोट लगने से नाखून की सतह कठोर या विभक्त हो सकती है। गठिया के कारण उँगली के जोड़ों में सूजन आ जाने से भी नाखून में विकार आ सकती है। नाखूनों का सरलता से चटक कर टूटना नाखूनों की पॉलिश उतारने वाले रसायनों से, साबुनों तथा कपड़े आदि साफ करने वाले द्रव्यों (detergents) के प्रयोग के परिणामस्वरूप हो सकता है। यह बढ़ती आयु के परिणामस्वरूप भी हो सकता है। नाखूनों की जड़ तक लगाई गई पॉलिश से, नाखूनों के जीवित टिशुओं को श्वास लेने में बाधा पहुँचती है, जो नाखून को स्वस्थ्य रखने के लिए उपयुक्त नहीं है। इसलिये नाखूनों पर लगाई जाने वाली पॉलिश को सदैव लगाकर नहीं रखना चाहिए।

3) **मुँह एवं दाँतों की सफाई :** मुँह के विभिन्न भाग जैसे जिह्वा, दाँत, मसूडे आदि की स्थिति किसी व्यक्ति की स्वास्थ्य संबंधी आदतों के संबंध में जानकारी देती है - पान व तम्बाकू के निशान अपने आप सब कुछ बता देते हैं। हैलिटोसिस या मुँह से दुर्गंध आना मुख की पर्याप्त सफाई न करने की ओर इंगित करता है। मुँह से आने वाली दुर्गंध मुख्य रूप से कोशिका क्षय से उत्पन्न होती है तथा दुर्गंध सूक्ष्म जीवों की वृद्धि के परिणामस्वरूप आती है। हैलिटोसिस, संक्रमित या रोगी मसूडो, दंत क्षय या मुँह के अर्बुद फोड़े (tumour) के कारण भी हो सकती है।

एक आकर्षक मुस्कान ही अधिकतर वह पहली चीज़ है जो कि एक व्यक्ति का किसी दूसरे व्यक्ति की तरफ ध्यान आकर्षित करती है। एक आकर्षक रूप प्रस्तुत करने के साथ ही स्वस्थ दाँत तथा मसूडे अच्छे स्वास्थ्य की एक मूलभूत अपेक्षा भी है। मुँह की अच्छी तरह से सफाई रखने के लिए व्यक्ति

को सबेरे व रात को सोने से पहले अपने दांतो को (ब्रुश से) अवश्य साफ करना चाहिए। हममे से अधिकांश लोग नियम से सबेरे अपने दाँत अवश्य साफ करते हैं परन्तु सोने से पहले नहीं। लेकिन सोने से पहले दाँत साफ करना भी बहुत आवश्यक है क्योंकि सोने के कारण हमारा मुँह संभवत: लगभग 7 - 8 घंटे बंद रहता है। इस दौरान मुँह या मसूडो में जो कुछ भी लगा रह जाता है उसका क्षय होने लगता है और उससे जीवाणु उत्पन्न होते हैं परिणामस्वरूप मुँह में दुर्गंध आ जाती है। आप इन सब से बच सकते हैं अगर आप नियमित रूप से रात को सोने से ठीक पहले (जब आपको और कुछ नहीं खाना होता) दाँत साफ करें। इसका मतलब यह नहीं है कि केवल रात में ही दाँतों की सफाई करें। प्रात: तो दाँत साफ करना आवश्यक ही है परन्तु रात को सोने से पूर्व भी दाँतों को साफ करना न भूलें। हर बार खाने के बाद और विशेष रूप से मीठा खाने के बाद अच्छी तरह से कुल्ला करके मुँह साफ करना भी आवश्यक है।

पाचन प्रक्रिया मुँह से प्रारम्भ होती है जहाँ लार कुछ भोजन को साधारण अवयवों में परिवर्तित करती है तथा दाँत और जीभ उनको यांत्रिक रूप से छोटे-छोटे भागो में विभक्त करते हैं। अत: दाँतों में किसी भी प्रकार की व्याधि होने पर भोजन के ठीक प्रकार से चबाने में बाधा हो सकती हैं। अत: इनकी ओर डाक्टर का ध्यान तुरन्त आकर्षित किया जाना चाहिये। खाने की खराब आदतें भी दाँतों की स्थिति देख कर पता लगाई जा सकती है। दाँतों की विसंगतियों को एक दन्तचिकित्सक ही देख सकता है। आजकल आगे निकले हुए दाँत (Buck Teeth) व ऊबड-खाबड दाँतों (जो कि व्यक्ति के रूप-रंग को बिगाड़ देते हैं) के ठीक करने की तकनीके उपलब्ध हैं। इन उपायों को बच्चों तथा युवाओं में जल्द से जल्द दंतचिकित्सक के परामर्श अनुसार अपनाया जा सकता है।

!) **बालों की देखभाल** : बालों का उदगम छोटी छोटी थैलियों या त्वचा के ऊतक के नीचे की चर्म परत में पुटकों से होता है। रोम पुटक (hair follicle), तेल ग्रंथियों (sebaceous glands) (जोकि सिर की खाल को चिकनाई व बालों को प्राकृतिक चमक प्रदान करते है) से बहुत नजदीकी रूप से सम्बद्ध है। सभी व्यक्तियों व विभिन्न जातियों के व्यक्तियों में बालो की बुनावट (texture) अलग-अलग होती है। न केवल जातियों व व्यक्तियों में अपितु अलग-अलग भागों में बालों की बुनावट भिन्न-भिन्न होती है। शरीर के किसी हिस्से में यह मुलायम व रोएंदार (नरम) होते हैं तो दूसरे में ये कड़े व चुभने वाले हो सकते हैं। बालो की बुनावट लिंग के आधार पर भी भिन्न- भिन्न होती है।

यदि बालों की ठीक प्रकार से देखभाल की जाए तो वे स्वच्छ व चमकदार लगते हैं। बालों को सप्ताह में एक बार अवश्य धोना चाहिए। तैलयुक्त (चिकने) बालों को थोड़ा जल्दी-जल्दी धोने की आवश्यकता पड़ सकती हैं। अधिकतर शैम्पुओं में साबुन या डिटरजैन्ट तथा खुशबू देने वाली कारक ही विद्यमान होती है तथा कोई भी शैम्पू बालों को साफ करते समय उनकी प्राकृतिक चिकनाई प्रदान नहीं कर सकता। इसलिए शैम्पू निर्माताओं के दावों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। चाहें आप किसी प्रकार का भी शैम्पू या साबुन इस्तेमाल करें परन्तु उसके इस्तेमाल के बाद बालों को अच्छी तरह पानी से अवश्य धोयें जिससे कि बालों व त्वचा पर जमा साबुन धुल जाए। यदि आपके द्वारा प्रयुक्त पानी खारा हैं तो साबुन युक्त शैम्पू की अपेक्षा डिटरजैन्टयुक्त शैम्पू इस्तेमाल करें। बालो को तौलिये से रगड़कर पौछने की अपेक्षा धूप में सुखाना या अपने आप सूखने के लिए खुला छोड़ देना अधिक बेहतर हैं। सूखने के दौरान धीरे - धीरे ब्रुश या कंघा करने से प्राकृतिक चिकनाई पुन: सक्रिय हो जाती है और बालों को चमक प्रदान करती हैं। ब्रुश करना वैसे भी बालों को सुन्दर बनाने के लिए अत्युत्तम है परन्तु कंघा व ब्रुश दोनो को ही नियमित रूप से साफ करना अनिवार्य है।

सामान्य रूप से सिर धोते व कंघी करते समय प्रतिदिन कुछ (25 से 100 तक) एक बाल टूट जाते हैं, परन्तु नये बालों के उगने के कारण टूटे बाल व नये निकले बाल एक दूसरे का संतुलन बनाये रखते हैं। जब बालों के गिरने की दर, नए बाल उगने की दर से ज्यादा हो जाए तो बाल पतले हो सकते हैं और गंजापन भी आ सकता है। यद्यपि गंजापन का संबंध मुख्यत: लिंग, आयु तथा अनुवांशिकता से होता है परन्तु जीवाणु या फफूंद संक्रमण, किसी दवा विशेष से एलर्जी, विकिरण (radiation) तथा लगातार रगड़ के परिणामस्वरूप भी गंजापन आ सकता हैं। बालों को खींच कर (कस कर) बनाई गई केश सज्जा या बालों को घुंघराले बनाने के लिए करलरों (curlers) के नियमित प्रयोग से भी बाल झड़ सकते हैं। परन्तु इस प्रकार के गंजापन के कारणों का पता लगाकर, उनका निदान करने से बालों के झड़ने को रोका जा सकता है। पर्याप्त पोषण न मिलने के कारण भी बाल रूखे, निष्प्रभ (dull) तथा भंगुर (brittle) हो जाते हैं। किसी गम्भीर बीमारी के परिणामस्वरूप भी सारे बाल झड़ सकते हैं।

सामान्यत: गर्भावस्था के अन्त में तथा शिशु जन्म व रजोनिवृत्ति के उपरान्त महिलाओं में कुछ बाल अवश्य टूटते हैं परन्तु अधिकतर उनके स्थान पर नए बाल उग आते हैं ।

रूसी / फ्यास (dandruff) उस स्थिति को कहते हैं जिसमें सिर धोने के कुछ समय बाद ही सिर की खाल पर खुजली होने लगती है तथा उस पर से सफेद बुरादा -सा उतरने लगता है । अभी तक इस तरह का कोई प्रमाण नहीं मिला हैं कि यह समस्या कीटाणु संक्रमण से संबंधित है । आजकल ऐसी दवायें उपलब्ध हैं जिनके प्रयोग से फ्यास को नियंत्रण में रखा जा सकता है परन्तु यह पूर्णतया समाप्त नहीं होती हैं ।

औसत पुरूष सामान्य रुप से दिन में एक बार अपनी दाढ़ी अवश्य बनाते हैं । महिलाओं द्वारा अपने शरीर के बालो का शेव करना एक अभी हाल ही में प्रचलित हुई चीज़ हैं । हजामत करना शरीर की सफाई का एक भाग है । स्त्री व पुरुष दोनो को बगल (armpits) के बाल (सप्ताह में दो बार) साफ करना चाहिए । चूँकि गीले बाल अधिक सरलता से कटते हैं अत: बगल के बाल नहाते समय या नहाने के तुरन्त बाद काटने चाहिए । मुँह पर की खारिश (sycosis) या दाढ़ी की खुज़ली (Barber's itch) दाढ़ी के रोग पुटक का एक जीवाणिक संक्रमण है । इसमें सूजन, खुजली तथा मवाद भरी छोटी-छोटी पुन्सियाँ हो जाती हैं । इसके उपचार के लिए डाक्टर प्रतिजैविकी (antibiotics) देते हैं । इस प्रकार के संक्रमणों से बचने के लिए अपने हजामत उपकरणों को किसी दूसरे व्यक्ति के प्रयोग के लिए नहीं देना चाहिए और न किसी दूसरे व्यक्ति के उपकरणों का प्रयोग करना चाहिए ।

5) **आँखों व कानों की देखभाल** : आँखें दो मुख्य काम करती हैं — यह प्रकाश ऊर्जा (light energy) को दृष्टि में परिवर्तित करती हैं, तथा दृष्टि को फोकस (एक स्थान पर संकेन्द्रित) करती है अर्थात् आँख की संरचना अंदर जाने वाली प्रकाश किरणों को फोकस करके दृष्टि में परिवर्तित करती हैं। इसी के परिणामस्वरूप हम देख पाते हैं । आँख की बाहरी परतें तथा उनमें रहने वाला तरल पदार्थ अन्दर के अधिक नाज़ुक भागों के बचाव का काम करते हैं । आँसू पुतलियों को इधर-उधर चलाने के लिए अपेक्षित नमी व चिकनाई प्रदान करते है तथा ये आँख के लिए रोगाणुनाशी के रूप में भी काम करते हैं । आँसुओं में बहुत हल्का सा कीटाणुनाशी पदार्थ, जिसे लाइसोज़ाइम (lysozyme) कहते हैं, मिला होता है जो कि जीवाणु व अन्य हानिकारक सूक्ष्मजीवों को नष्ट करता है । आँख के सभी संक्रमणों व चोटों का तत्काल उपचार किया जाना चाहिए। छोटे बच्चों के मामलों में आँखों की कीट पतंगों व मक्खियों से भी रक्षा की जानी चाहिए । यदि संक्रमण के कारण आँखें चिपक जाएं तो उन्हें बोरिक एसिड के घोल (एक चाय का चम्मच दो कप उबले हुए पानी में मिलाकर) से धोना चाहिए । रोगी को अन्य लोगों से अलग रखें तथा उसके द्वारा प्रयोग में लाया गया तौलिया व चादर आदि को भी अलग कर दें । यदि किसी बच्चे को इस प्रकार का संक्रमण हो जाए तो उसे स्कूल भी नहीं भेजना चाहिए । आँखों के लाल होने तथा उनमें खुजली होने पर उन्हें किसी नेत्र विशेषज्ञ को दिखाएँ।

आँखों, विशेष रूप से स्कूल जाने वाली आयु के बच्चों की आँखों, की नियमित रूप से जाँच होनी चाहिए जिससे कि किसी भी प्रकार के दोष का समय से पता लग सके व उसका उपचार किया जा सके। पढ़ने, लिखने, सिलाई, कढ़ाई व पास से देखकर करने वाले अन्य किसी काम के लिए पर्याप्त रोशनी का होना अत्यावश्यक है । रोशनी पीछे की ओर से आनी चाहिए तथा जो काम कर रहे है उस पर रोशनी बिना परछाई के पड़नी चाहिए । उदाहरणत: लिखते समय हाथ, कलम की परछाई बाधा न डाले। रोशनी इतनी तेज़ होनी चाहिए कि आँखों को अच्छी लगे न कि चकाचौंध या चौंधियाने वाली तेज़ रोशनी हो । टेलीविजन (टी.वी.) इत्यादि देखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि तस्वीर स्पष्ट हो। टी.वी. कम से कम 6 फीट की दूरी से देखना चाहिए । सामान्य रुप से अनुपयुक्त प्रकाश तथा बहुत ज्यादा टी. वी. देखने के कारण आँखे थक जाती हैं विशेष रूप से छोटे बच्चों की ।

कान सुनने व संतुलन बनाए रखने का काम करते हैं । यह कान के कक्ष तथा प्रकोष्ठों (tunnel and chambers) में पाए जाने वाले दो विशेष प्रकार के संवेदी ग्राही (sensory receptors) के कारण संभव होता है । कान में मुख्य रूप से श्रवण नलिका (auditory canal), मध्य कर्ण (middle ear) तथा आन्तर कर्ण (inner ear) होता हैं । मस्तिष्क के लिये तंत्रिका आवेग (Nerve impulses) ध्वनि तरंगों (sound waves) द्वारा उद्दीपित होते हैं जिससे मस्तिष्क अर्थपूर्ण ध्वनियाँ अर्थात् हमारी बोली बनाता हैं। वे संरचनायें जो हमें संतुलन प्रदान करती हैं वह कान के बिल्कुल अंदर होती हैं । कान हमारे गले

से भी, मध्य कर्ण तथा गले के बीच बनी प्रकोष्ठ (tunnel) द्वारा जुड़े होते हैं । इसी के कारण गले का कोई भी संक्रमण, यदि उसके प्रति लापरवाही बरती जाय तो, अन्तत: कान को भी प्रभावित करता है । यदि गले में कोई संक्रमण होता है तो प्राय: कान के अन्दर खुजली सी प्रतीत होती हैं । कान के किसी भी संक्रमण तथा कान से होने वाली किसी भी स्राव को उपचार करवाना चाहिए । बाल्यावस्था में कान में दर्द बच्चों की आम शिकायत होती हैं । अधिकतर मध्य कान में जीवाण्विक संक्रमण इसका कारण होता है तथा इसका तत्काल ही डाक्टरी इलाज होना चाहिए। डाक्टर के पास पहुँचने तक की अवधि में एस्प्रीन (asprin) तथा कान की सिकाई कर के दर्द में आराम दिया जा सकता है। छोटे बच्चे कान में परेशानी होने पर ज्यादातर कान के नीचे के हिस्से को पकड़ते या हाथ से रगड़ते हैं ।

श्रवणशक्ति या सुनना, ध्वनि तरंगों की अनुभूति के परिणामस्वरूप होता है, ध्वनि तरंगों की उच्चता डैसिबल्स (decibles) में नापी जा सकती हैं । उसके तारत्व (pitch) की उच्चता या न्यूनता भी प्रति सैकेंड में चक्रीय आवर्ति के आधार पर नापी जा सकती हैं। सामान्य रूप से सुनने का अर्थ हैं एक शान्त कमरे में लगभग 18 फुट की दूरी पर बोलो गई या उत्पन्न आवाज़ को सुनने की क्षमता । कोई व्यक्ति कितनी अच्छी तरह सुनता हैं इसकी जाँच श्रव्यतामिति (audiometer) यंत्र से की जा सकती है जो की डैंसिबलों तथा ध्वनि की आवृत्तियो को मापता हैं । सुनने में कमी का एक साधारण कारण श्रवण नलिका में (जहाँ कि मैल (कर्णमल) निकलता है), बहुत अधिक मैल (wax) एकत्रित हो जाना होता हैं। इस मैल को निकलवा देने पर पहले की भाँति सुनाई देना शुरू हो जाता है। कान के अन्दर मैल साफ करने के लिए सख्त व नुकीली चीजें नहीं डालनी चाहिए । कान साफ करने के लिए कान में एक बूँद गुनगुना तेल या एक बूँद ग्लिसरीन डाली जा सकती हैं । इससे कान के अन्दर की गन्दगी मुलायम होकर ऊपर भी आती हैं फिर उसको रुई की फुरैरी (जैसे जॉनसन बड) से या सिरिंज द्वारा बाहर निकाला जा सकता है ।

जन्म के समय से या बहुत छोटे बच्चों में बहरेपन की शिकायत एक बहुत कठिन स्थिति है जिसका पता लगाना आसान नहीं है । बहुत ध्यान रखने व हर समय विभिन्न प्रतिक्रियाओं पर नज़र रखने से ही इसका पता लगाया जा सकता हैं । चूँकि भाषा विकसित करने के लिए सुनना आवश्यक है इसलिए इस प्रकार के बहरेपन का शीघ्र ही पता न लगने पर बोलने में असमर्थता भी हो सकती हैं । अत: शिशु के सुनने की क्षमता के संबंध में किसी प्रकार का शक होने पर तुरन्त डाक्टर का ध्यान उसकी ओर आकर्षित किया जाना चाहिए । बहुत तेज़ ध्वनियाँ न केवल कान में दर्द का कारण हो सकती अपितु कान के पर्दे को भी नुकसान पहुँचा सकती हैं । हमें अपने आपको व विशेष रूप से बच्चों को बहुत तेज़ ध्वनियों से बचाना चाहिए । बहुत तेज़ डिस्को संगीत कानों के लिए खतरनाक होता है । इसी प्रकार कुछ मशीनों से उत्पन्न होने वाली तेज़ ध्वनियाँ वहाँ काम करने वाले मज़दूरों के लिए हानिकारक होती हैं ।

6) **बाह्य जननेन्द्रियों की देखभाल** : लैंगिक अंगों की स्वच्छता शरीर के अन्य भागों की स्वच्छता से भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मलद्वार व मूत्रद्वार (urethra) जहाँ कि जीवाण्विक संदूषण की संभावना अधिक होती है, के बहुत निकट होते हैं । अत: व्यक्ति को शौच के उपरांत शरीर के इन भागों को पानी से अच्छी तरह धोना चाहिए । बिना खतना सुन्नत वाले एवं पुरुष लैंगिक अंग (uncircumcised male organ) के मामलों में यह बहुत आवशक है कि नहाते समय शिश्नाग्रच्छद्र (foreskin) को पीछे कर उसके अंदर एकत्रित होने वाले स्रवणों को धोकर साफ किया जाय । यदि ऐसा नहीं किया जाता तो एकत्रित स्रवण जीवाणुओं को आकर्षित करते हैं व परिणामस्वरूप वहाँ खुजली व जलन होती हैं । महिलाओं को भी हमेशा शौच के बाद भग या यौनि द्वार (vulva) को अच्छी तरह धोना चाहिए । मासिक धर्म के समय उन्हे नियमित रूप से जल्दी जल्दी नहाना चाहिए । शौच जाने के बाद अपने आप को साफ करते समय यौनि द्वार को मल से बचाने का विशेष ध्यान रखना चाहिए ।

बोध प्रश्न 1

1) बताइए कि निम्नलिखित कथन सहीं है या गलत । गलत कथन को सहीं करें ।

क) मासिक धर्म के दौरान नहाना आवश्यक है ।

....

ख) स्वच्छता व अच्छी देखभाल के लिए यह महत्वपूर्ण है कि बगल के बाल काटे जाय ।

....

ग) हैलिटोसिस शरीर के जोड़ों की बीमारी है।

....

घ) नेल पॉलिश का नियमित प्रयोग स्वस्थ नाखूनों के लिए अच्छा नहीं होता।

....

ङ) जन्म के समय का बहरापन बोलने में भी असमर्थ बना सकता है।

....

च) ऐसे शैम्पू उपलब्ध है जो कि धोने के साथ साथ प्राकृतिक चिकनाई पुनः उत्पन्न कर सकते हैं।

....

छ) लाइसोज़ाइम एक पाचक एनज़ाइम है।

....

2) गंजापन होने के कोई चार कारण बताइए।

....

....

....

....

3) निम्नलिखित को मिलाइए।

क)	हाथ पाँव की देखभाल	1)	आँख का संक्रमण
ख)	बोरिक एसिड	2)	नाखून
ग)	मुँह पर की खारिश	3)	बाल
घ)	प्यास	4)	दाढ़ी की खुजली
ङ)	गले का संक्रमण	5)	कान में खुजली
च)	कोलाहलपूर्ण संगीत	6)	कान के पर्दों को नुकसान

6.3 विश्राम एवं निद्रा

अच्छे स्वास्थ्य तथा अच्छे रूप-रंग के लिए समुचित मात्रा में आराम तथा नींद आवश्यक हैं। यह मानसिक सर्तकता, शारीरिक निष्पादन तथा मानवीय संबंधों को भी प्रभावित करते हैं। यह माना जाता है कि जागते समय की अपेक्षा सोते समय, शरीर ऊतको (सैलों) को बदलने तथा थकान द्वारा उत्पन्न व्यर्थ पदार्थों का निष्कासन अधिक तेज़ी से करता हैं। सोते समय रक्त चाप कम रहता है तथा हृदय की मासपेशियों का संकुचन धीरे धीरे होता है जिससे हृदय तथा रक्त तंत्र को भी आराम मिलता है। कम सोने से थकान बढ़ती है तथा सामान्य जुकाम सहित कई अन्य रोगों की ग्राह्यता की संभावना बढ़ जाती है।

सात से आठ घंटें की अच्छी नींद आपको आने वाले दिन की चुनौतियों का सामना करने के लिए फिर से ताज़गी व स्फूर्ति प्रदान करती है। यदि आप ठीक से पूरी नींद न कर पाए तो आपकी स्मरण-शक्ति तेज़ नहीं रहती जितनी कि होनी चाहिए न ही आपकी मानसिक अवस्था उतनी सामान्य रहती हैं जितनी कि होनी चाहिए - आप चिड़चिड़ें से रहते हैं। एक अन्धकारमय, शांत, हवादार कमरा, सुदृढ़ गद्दे तथा दिन में कुछ शारीरिक कार्य अथवा व्यायाम अच्छी नींद के लिए पूर्वपेक्षित हैं।

चिन्ता, नैराश्य तथा व्यग्रता नींद में बांधा डालते हैं । अत्याधिक उत्तेजना भी नींद में बाधा डालती है, विशेष रूप से बच्चों के साथ । बच्चो तथा बड़ो के लिए सोने का समय अधिक से अधिक आरामदायक होना चाहिए। छोटे बच्चों को लोरी सुनना, धीरे धीरे प्यार से उनसे बाते करना या अपने पालने में धीरे धीरे झुलाना अच्छा लगता है। यह बहुत आवश्यक है कि सोने से ठीक पहले मन शांत हो तथा उत्तेजना कम से कम हों।

किसी एक व्यक्ति के लिए आवश्यक नींद की मात्रा दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता से भिन्न होती है । इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यक्तियों को अलग-अलग समय पर अलग-अलग मात्रा में नींद की आवश्यकता होती है। बच्चों को लम्बी अवधि की व्यवधान रहित नींद की आवश्यकता होती है जबकि वृद्ध बहुत कम नींद से काम चला सकते हैं । सामान्य नियम के आधार पर जो जितना छोटा होगा उसे उतनी ही ज्यादा नींद की जरूरत होगी । ठीक से नींद न आना स्वास्थ्य ठीक न होने की निशानी होती है। एक वर्ष से कम आयु के शिशुओं को 20 घंटे की नींद की आवश्यकता होती है । 1 वर्ष से 2 वर्ष की आयु के बच्चे को दिन में लगभग 15 घंटे की नींद की आवश्यकता होती है । आठ वर्ष की आयु तक यह कम होकर 12 घंटे तथा 12 वर्ष की आयु तक 11 घंटे तक रह जाती है व और कम होते होते वयस्क होने तक यह 7 - 8 घंटे रह जाती है । 60 वर्ष की आयु के बाद पुन: मध्यम आयु की अपेक्षा अधिक नींद की आवश्यकता होने लगती है । ऐसी स्थिति में वयस्क चाहें आठ घंटे न सोएं परन्तु अपने हृदय को आराम देने के लिए उनको इतना समय बिस्तर में लेट कर अवश्य बिताना चाहिए । कमज़ोर व अस्वस्थ व्यक्तियों को और अधिक नींद की आवश्यकता होती है ।

नींद शरीर की थकान का सामना करने की प्राकृतिक प्रक्रिया है — इससे तनाव कम या समाप्त हो जाता है। यह मानसिक काम करने वालों के लिए भी उतनी आवश्यक है जितनी कि शारीरिक काम करने वाले मज़दूर के लिए । बहुत अधिक थकान व तनाव होने पर मनुष्य अच्छी तरह से नहीं सो पाता । इसके विपरीत सामान्य व्यायाम या काम से हुई हल्की सी थकावट में शरीर को सोने में बड़ा आराम मिलता है परन्तु सोने के समय से थोड़ा पहले किया गया थकाने वाला व्यायाम नींद में बाधा डालता हैं ।

मधसार, नींद की गोलियाँ तथा प्रशान्तक (tranquilizers) कभी भी थकान दूर करने के लिए लाभदायक नहीं हो सकते हैं । कैफीन (कॉफी में) भी व्यक्तियो की नींद में बाधक हो सकता है । आपके थके हुए होने और सोना चाहने पर भी नींद का न आना अनिद्रा (Insomnia) रोग कहलाता है । यह एक बहुत ही सामान्य समस्या है, विशेष रूप से दिमागी काम करने वाले व्यक्तियों में । इसके विभिन्न कारण है - सोते समय भावात्मक उत्तेजना, अनुपयुक्त भोजन, दिन के दौरान अपर्याप्त शारीरिक व्यायाम, देर रात तक पढ़ना या काम करना, चिन्ताएं या मानसिक तनाव ।

6.4 व्यायाम, थकान एवं मुद्रा (posture)

शरीर की अच्छी शारीरिक दशा बहुत महत्वपूर्ण है । हम सब विजेता खिलाड़ी तो नहीं हो सकते हैं परन्तु हाँ अपने हृदय, फेफड़ों तथा माँसपेशियों के काम करने को अच्छा जरूर बना सकते हैं । शारीरिक दशा व्यायाम उपकरणों या उसके बिना भी ठीक से बनाइ रखी जा सकती है । इसके लिए हमें प्रतिदिन के व्यस्त समय मे से केवल थोड़ा सा समय, दृढ़ निश्चय व धैर्य की आवश्यकता है । नियमित व्यायाम से हृदय की धड़कन मजबूत तथा स्थिर बनती है, तथा श्वास भी गहरा होता हैं । जैसे जैसे ऊतकों के बीच रक्त प्रवाह में सुधार आता है वैसे वैसे कोशिकाओं में उत्पन्न उच्छिष्ट पदार्थ अधिक प्रभावी रुप से निकाल दिए जाते हैं । शरीर द्वारा शारीरिक व मानसिक कार्यों के लिए ऊर्जा अधिक कुशलता से प्रयोग में लाई जाती है तथा उनका समन्वयन भी बेहतर हो जाता है । यही एरोबिक्स का मूलाधार है — ऐरोबिक्स का अर्थ है: "ऑक्सीजन के साथ" । एरोबिक्स प्रशिक्षण का लक्ष्य व्यायाम का एक सुस्थिर स्तर प्राप्त करना है जहाँ कि श्वास सामान्य से गहरा व लम्बा हो। स्थिर स्थिति में हृदय फेफड़े तथा माँसपेशियाँ एक साथ मिलकर एक अच्छी मशीन के रूप में क्रिया के उस स्तर पर काम करती हैं जो कि शरीर की विश्राम की अवस्था की अपेक्षा अधिक आवश्यक है । जोगिंग (Jogging), दौड़ना तथा तेज़ गति से चलना एरोबिक्स व्यायामों के कुछ प्रकार हैं । इनके लिए किसी विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती है परन्तु ये व्यायाम करने के लिए आरामदेय जूते आवश्यक होने चाहिए । हाँ, व्यायाम पद्धति को उपयुक्त सीमाओं में रहकर करना

अति आवश्यक है ताकि इससे स्वास्थ्य को क्षति न पहुँचे । यह कभी भी उस सीमा तक नहीं पहुँचना चाहिए जहाँ कि फेफड़ों की मांसपेशियों को ऑक्सीजन पहुँचाने की सामान्य क्षमता पीछे छूट जाय । यदि आप व्यायाम करते करते हाँफने लगें तो समझ लेना चाहिये आप उस स्थिति में पहुँच गए कि व्यायाम के आगे जारी नहीं रखना चाहिए । अत: व्यायाम करना वहीं बंद कर देना चाहिए ।

बढ़ती आयु के साथ, व्यायाम द्वारा आप भावात्मक अनुभूति और कार्य को बेहतर बना सकते हैं । शरीर के विभिन्न अंग एवं तंत्र विशेष रूप से पाचन प्रक्रियाएँ, व्यायाम से उद्दीप्त होती हैं और अधिक कुशलता से काम करती हैं । माँसपेशियाँ और स्वास्थ हो जाती है तथा मुद्रा में सुधार आता है । पृष्ठशूल (back pain) की संभावना भी कम होती है, आराम कर पाने और थकान को सहने की क्षमता में भी वृद्धि होती है । इससे शरीर में जमी चर्बी भी कम होती है तथा जिगर और गुर्दे बेहतर रूप से कार्य करते हैं । रक्त में हीमोग्लोबीन तथा लाल रुधिर की मात्रा बढ़ती है जिससे ऑक्सीजन व लौह तत्व का प्रयोग और अच्छी तरह से हो पाता है । शारीरिक रूप से सक्रिय व्यक्तियों को निष्क्रिय बैठने वाले व्यक्ति की अपेक्षा हृदयपात व हृदय संबंधी अन्य रोग होने की संभावना कम रहती है ।

व्यायाम ऐसा होना चाहिए जिसे करना अच्छा लगे ---- एक सबसे आवहारिक व अच्छा लगने वाला व्यायाम पैदल सैर करना है । पैदल चलना उतना ही स्वाभाविक है जितना श्वास लेना । इसमें सारे पाँव, टाँगे तथा कूल्हे और पीठ की काफी माँसपेशियाँ सक्रिय होती हैं । पेट की माँसपेशियाँ भी संकुचित होकर अपने हिस्से के भार को वहन करती हैं तथा डायफ्राम (diaphragm) तथा पसलियों की माँसपेशियो की सक्रियता में वृद्धि होती है । बाँह व कन्धे की माँसपेशियाँ अपने आप ही चलती हैं । कन्धे व गर्दन की पेशियाँ भी सिर सीधा रखने के कारण हरकत में आ जाती है तथा इधर उधर देख कर चलने से आँख की पेशियों का भी व्यायाम हो जाता है ।

बागवानी भी एक अच्छा व्यायाम है । तैराकी व साइकिल चलाने से भी शरीर के अधिकाँश भागों का व्यायाम हो जाता है । झुकने, बैठने तथा शरीर की कई अन्य प्रकार की गतिविधियों से भी शरीर के विभिन्न भागों का व्यायाम होता है । इसके साथ ही बाहर खुले में व ताज़ी हवा में समय बिताना स्वास्थ्य के लिये लाभदायक रहता है ।

औपचारिक व्यायाम के लिए व्यायामशाला का सदस्य बना जा सकता है - इसके लिए आपको नियमित रूप से व्यायामशाला में जाने के लिए अपना उत्साह बनाये रखना पड़ेगा । आप घर पर भी व्यायाम कर सकते हैं। आजकल घर पर ही व्यायाम कार्यक्रमों पर अमल करने के लिए पुस्तकें उपलब्ध हैं ।

कोई भी व्यक्ति अपना दिन प्रतिदिन का काम करते हुये भी शरीर का व्यायाम कर सकता है । किसी भी परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए सक्रिय रूप से काम करने की पद्धति चुनिये जैसे लिफ्ट से ऊपर चढ़ने की अपेक्षा सीढ़ियों से ऊपर चढ़िये, यदि संभव हो व दूरी कम हो तो स्कूल या कार्यालय बस से जाने की अपेक्षा पैदल जाइये, गौल्फ खेलते समय गाड़ी का प्रयोग करने की अपेक्षा पैदल जाइए । दूर लुढ़क गई बाल के पास चल कर पहुँचने की अपेक्षा दौड़ कर जाइए आदि ।

पेशियों को आराम देने वाले व्यायाम भी व्यक्ति की भावनात्मक स्थिति पर चिकित्सीय प्रभाव डालते हैं क्योंकि यह तो भलीभाँति ज्ञात तथ्य है कि मनोवैज्ञानिक तनाव से माँसपेशियों में भी तनाव आ जाता है । व्यायाम द्वारा तनाव कम करने के पीछे मूल धारणा यही है कि शारीरिक क्रिया कम करके शरीर के तनाव को धीरे-धीरे कम करके विश्राम की स्थिति को उत्पन्न किया जाए ।

यदि व्यायाम के बीच में कभी भी किसी भी प्रकार की शारीरिक समस्या उत्पन्न हो जाए तो व्यायाम तत्काल बंद करके डाक्टर से परामर्श लेना चाहिए । हृदय की असामान्य क्रिया जैसे नब्ज का अनियमित रूप से चलना / फड़फड़ाना, गले में कुछ स्पंदन-सा महसूस होना, एक दम से दिल का धड़कन बढ़ जाना या उसमे गिरावट आना, छाती, बाँह या गले में दर्द या दबाव महसूस होना, व्यायाम के दौरान या फौरन बाद चक्कर आना, सिर हल्का-हल्का लगना या एकदम से तथ्यों को जोड़ न पाना, भ्रमित होना, ठंडा पसीना आना, स्थिर दृष्टि से देखना, पीला पड़ना, नीलापन आना, मूर्छा आना आदि कुछ अस्वाभाविक होने के सूचक है तथा ऐसा होने पर व्यायाम तुरन्त बन्द करके डाक्टर से सलाह लेनी चाहिए ।

थकान

माँसपेशियों को ईंधन तथा ऑक्सीजन पहुँचाने का कार्य रक्त करता है इसके साथ ही साथ माँसपेशियों की क्रिया के कारण उत्पन्न उच्छिष्ट पदार्थों को अपने साथ ले जाता है। बहुत लम्बी तथा बहुत थकाने वाली क्रिया के बाद रक्त व्यर्थ पदार्थों को उतनी तेज़ी से अपने साथ ले जाने में असमर्थ रहता है जिसके परिणामस्वरूप वे माँसपेशी में ही एकत्र हो जाते हैं और थकान सी महसूस होने लगती है। इस स्थिति को थकावट कहा जाता है। थकावट शरीर पर विपरीत असर डालती है। इसके कारण किये जा सकने वाले कार्य की मात्रा व गुणवत्ता कम हो जाती है।

माँसपेशियों की थकावट को किसी माँसपेशी या माँसपेशियों के समूह के उद्धीपन को उनकी अपने आप सामान्य हो जाने की क्षमता से अधिक उद्धीप्त करने के रूप में परिभाषित किया जाता है। दूसरी प्रकार की थकावट शारीरिक थकावट है जो कि सारे शरीर को प्रभावित करती है तथा शारीरिक व्यायाम के बाद होनी स्वाभाविक है।

थकावट तब आती है जब हम अपनी शारीरिक व तांत्रिक ऊर्जा को पुन: प्राप्त हो पाने की गति से अधिक तेजी से प्रयोग करते हैं। कार्य में अथवा खेल में की गई अतिक्रिया के साथ रात देर तक जागना तथा उत्तेजित होना थकावट का एक सामान्य कारण है। यह साधारण आराम तथा नींद में व्यवधान डालता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति सबेरे ताज़ा व स्फूर्ति अनुभव करने की अपेक्षा थका हुआ महसूस करता है। चेहरे पर थकान दिखाई देती है तथा आँखों के नीचे काले काले गड्ढे नज़र आते हैं।

व्यक्ति का सामान्य क्रिया चक्र है — क्रिया — थकान — विश्राम। क्रिया द्वारा उत्पन्न तथा एकत्रित व्यर्थ पदार्थ आराम करते तथा सोते समय रक्त द्वारा ले जाए जाते है; टूटे-फूटे ऊतकों की मरम्मत कर शरीर फिर से सामान्य हो जाता है।

मुद्रा

शरीर की विभिन्न क्रियाओं में शरीर के विभिन्न अंगों का कुल तुलनात्मक विन्यास का योगफल मुद्रा कहलाता है। हम खड़े होने के तरीके, बैठने के तरीके, चलने के तरीके या पढ़ने आदि के तरीके के विषय में बात करते हैं परन्तु मुद्रा केवल शरीर के विभिन्न भागों की विन्यास संस्थिति एवं उनकी शारीरिक चेष्टाओं को ही नहीं दर्शाती हैं बल्कि इससे व्यक्ति की मानसिक एवं भावनात्मक स्थिति का भी पता लगता है। पीठ व कंधे तने हुए, सर उठाकर चलना व दूसरे व्यक्ति को सीधे आँख से देखना एक सफल मनुष्य की पहचान है, परन्तु असफलता झुके कन्धों, नीचे सिर तथा झुकी आँखों और प्रयत्नपूर्वक चलने से अपने आप ही स्पष्ट हो जाती है। पूरा शरीर, व्यक्ति की मानसिक स्थिति को दर्शाता है। आकुलता के कारण बच्चा एक कन्धा ऊँचा करके चल सकता है — जैसे उस से वह किसी संभावित प्रहार से अपनी रक्षा कर रहा हो। नीचे झुक झुक कर चलना शर्मीलेपन या असुरक्षा की भावना का द्योतक हो सकता है। तरुणाई में प्रवेश कर रही लड़कियाँ स्तन के विकास के कारण कन्धे झुका व गोल करके चलना प्रारम्भ कर सकती है। कई बार मुद्रा किसी की विकृति के कारण भी हो सकती है। इसको समय पर ही ठीक किया जाना चाहिये — जैसे चपटा पैर, निकटदर्शी होना (nearsightedness), अबिन्दुकता (astigmatism), सुन न पाना, सिर आगे को झुकाकर चलने वाले या एक कन्धा ऊँचा करके चलने वाले व्यक्ति की रीढ़ की हड्डी में असामान्य घुमाव हो सकता है आदि। अत: बढ़ते बच्चों की मुद्रा पर ध्यान देने व निगरानी रखने की आवश्यकता है।

हममें से बहुत से लोग परेड में चल रहे सैनिकों को देख बहुत प्रभावित होते हैं। परेड देखने में तो ज़ोरदार लगती हैं लेकिन परेड में चल रहे सैनिक की मुद्रा स्वाभाविक नहीं है परेड को छोड़कर बाकी समय में सैनिकों के लिए भी नही। क्या आप दिन भर उसी तरह से चलते रहने की कल्पना कर सकते हैं? मुद्रा के एक आदर्श स्वरूप को परिभाषित करना बहुत कठिन है। अच्छी मुद्रा की कोई एक सुनिश्चित परिभाषा नहीं है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि अच्छी मुद्रा के लिए आपको क्या करना चाहिए? इससे आपको चुस्त सौन्दर्यपरक व आकर्षक बनाना तथा यह सभी अंग प्रत्यंगों को एक दूसरे के कार्य में बाधा डालें बिना प्रयोग में ला सकने योग्य होनी चाहिए। दूसरी तरफ गलत मुद्रा से शरीर के सामान्य कार्यों में बाधा पड़ती है। बाहर खुले में खेलें जाने वाले खेल खेलना, व्यायाम करना, तेज़ गति से चलना, तैरना आदि अच्छी मुद्रा बनाने में बहुत सहायक हैं क्योंकि इन क्रियाओं को करने से शरीर के विभिन्न अंग आपस में उपयुक्त तालमेल बना कर रखने में समर्थ होगें।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित को मिलाइए :

क)	मानसिक जागरूकता	1)	नींद न आना
ख)	अनिद्रा	2)	ऑक्सीजन
ग)	नियमित व्यायाम	3)	दृढ़ दिल की धड़कन
घ)	एरोबिक्स	4)	अच्छी नींद आना
ङ)	मुद्रा	5)	अबिंदुकता (नेत्र रोग)

2) बताएं कि नीचे दिये गए कथन सही है या गलत । गलत कथनों को ठीक कीजिए ।

क) मानसिक दबाव के कारण माँसपेशियों में तनाव आता है ।

....

ख) मुद्रा से व्यक्ति की दिमागी हालत का पता लगता है।

....

ग) जहाँ व्यायाम के बाद शारीरिक थकान सामान्य बात है वहीं माँसपेशियों की थकान ठीक नहीं है ।

....

घ) एक बहुत थका हुआ बच्चा बहुत अच्छी नींद सोएगा ।

....

6.5 आदतें

स्वास्थ्य को ठीक रखने में आदतें एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं । ये सही जानकारियों और सूचनाओं पर आधारित होनी चाहिए और इन्हें नियमित अभ्यास से विकसित किया जाना चाहिए । जब एक आदत पड़ जाती है तो वह हमारे स्वभाव का एक अंग बन जाती है और हम उस काम को सरलतापूर्वक कर लेते हैं । उपयुक्त अच्छी आदतें स्वस्थ एवं उपयोगी जीवन की नींव होती हैं । कुछ क्रियायें जो कि आदतों के अन्तर्गत आती है तथा जो सीधे एवं बहुत महत्वपूर्ण रूप से स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं, नीचे दी गई है :

क) **खान-पान की आदतें** : हम किस प्रकार का खाना खाते हैं ? कौन-सा पेय हमें अच्छा लगता है ? इस सब की आदतें बहुत पहले बाल्यावस्था में ही पड़ जाती हैं। माता पिता का इनके प्रति रवैय्या तथा घर का वातावरण इस मामले में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । अनुकूलतम विकास, स्वास्थ्य तथा शारीरिक व मानसिक कार्य के अनुकूलतम उत्पादन में सहायक पौष्टिक भोजन का चयन करने के लिए प्रारम्भ में ध्यान दे कर प्रयास करना पड़ता है, परन्तु बाद में वह स्वाभाविक बन जाता है व अन्ततः उसकी आदत पड़ जाती है । कच्ची व पकी सब्जियों, अन्य पौष्टिक आहारों तथा पेय पदार्थों के अच्छे लगने की आदत बहुत कम आयु में ही डाली जाती हैं । आहार की केवल गुणवत्ता ही महत्वपूर्ण नहीं है उसकी मात्रा भी बहुत महत्वपूर्ण है । आवश्यकता से अधिक खाना या अतिभोजित (पेटूपन) एक आदत बन सकता है । बिना किसी शारीरिक या मानसिक कारण के अधिक भोजन करना भूखे रहने की अपेक्षा सरल है। प्रतिदिन की आहार पद्धति भी महत्वपूर्ण है — दिन में कितनी बार आप भोजन करते हैं तथा हर बार किस प्रकार का भोजन खाते हैं । आप किस प्रकार अपना भोजन तैयार कराना पसन्द करेंगे यह भी महत्वपूर्ण है परन्तु यह बहुत हद तक आपकी आदत पर निर्भर करता है जो कि आपके परिवार में भोजन तैयार करने के तरीके पर आधारित होती है । भोजन में विद्यमान पौष्टिक तत्वों की शरीर के लिये उपलब्धता बहुत हद तक अन्य बातों के साथ-साथ, भोजन पकाने या तैयार करने के तरीके पर निर्भर करती है । कुछ लोग चावल को खूब सारे पानी में पकाना पसंद करते हैं परन्तु चावल पकने के बाद अतिरिक्त पानी फेंक देते हैं जिसके साथ उसमें विद्यमान सारा थायेमीन (एक विटामिन) भी बह जाता है; कुछ लोग सब्ज़ी को इतना पकाते हैं कि उसका गूदा बन जाता है जिससे कि न

केवल उसकी शक्ल, रंग तथा बनावट ही बिगड़ जाती है बल्कि उनमें विद्यमान विटामिन 'सी'. भी नष्ट हो जाता है; कुछ लोग रोटी बनाते समय आटे को इनती महीन छलनी से छानते हैं कि उसमें विद्यमान व शरीर के लिए अत्यावश्यक लगभग सारी चोकर (रेशा) ही छन कर निकल जाती है। हममे से बहुत से लोग इस बात के प्रति सजग भी नहीं है कि बच्चे को भोजन से कुछ समय पहले दी गई चॉकलेट या मिठाई बच्चे की भूख को समाप्त कर देती है। पेय जल शरीर के लिये आवश्यक है विशेष रूप से गर्मी के मौसम में तथा व्यक्ति को पेय जल पीने की आदत होनी चाहिए। उसे हर समय केवल मधुरित (sweetened) या कार्बेनिटीकृत पेय आदि ही नहीं पीते रहना चाहिए जो कि भूख मारते हैं तथा आमाशय में अम्ल की मात्रा को भी बढ़ाते है। अल्कोहॉल युक्त पेय सीमित मात्रा में और कभी - कभी लेने से नुकसान नहीं होता है परन्तु उनका नियमित रूप से तथा अधिक मात्रा में आदतानुसार सेवन अवांछनीय है। आहार पद्धति तथा आहार किस प्रकार से ग्रहण किया जाए यह मनुष्य की आदत बन जाती है। चूँकि भोजन करना दैनिक गतिविधियो का केवल एक भाग है अत: दैनिक भोजन की आवश्यकता को परिवार के सभी सदस्यों की सुविधानुसार विभिन्न आहारों में विभक्त कर दिया जाना चाहिए। उसके बाद इस आहार पद्धति के अनुसार चलना उपयुक्त रहेगा।

ख) **धूम्रपान** : धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है तथा एक ऐसा सम्मान है जो शीघ्र ही आदत बन जाता है। एक बार इसकी आदत पड़ गई तो इसे छोड़ना असम्भव न होने पर भी बहुत कठिन हो जाता है। धूम्रपान न करने का सबसे सरल तरीका है उसे शुरू ही न करना। धूम्रपान से पाचन क्रिया को क्षति पहुँचती है, गले में खराश तथा खाँसी व घरघराहट होती है। तम्बाकू सेवन व कैंसर, हृदय रोग और श्वसनी शोथ का परस्पर संबंध अब भली-भाँति विदित हो चुका है। धूम्रपान न करने वालो की तुलना में धूम्रपान करने वालो की फेफड़ों के कैन्सर से मरने की संभावना दस से सोलह गुना अधिक रहती है। इसी प्रकार का संबंध धूम्रपान करने व न करने वालो के बीच, हृदय रोगों व फेफडों की बीमारियों के लिए भी रहता है। धूम्रपान का एक संभव, परन्तु बहुत कम होने वाला प्रभाव—जो कि बरजरस (Buerjer's) के नाम से जाने वाले विशेष प्रकार के घातक परिसचारी रोग के लक्षणों में वृद्धि है। रोग निकोटीन के विभिन्न प्रतिकूल प्रभावों में से एक प्रभाव त्वचा के तापमान को कम करने का है। केवल एक सिगरेट पीने से, उँगलियों तथा पंजो का तापमान 15 फैरनहाइट तक गिर सकता है परन्तु औसतन तापमान में 5 डिग्री गिरावट आती है। तापभान में परिवर्तन अग्रांग (extremities) पर रुधिर वाहिकाओं के संकीर्ण हो जाने के कारण आता है। इसके परिणामस्वरूप संकीर्ण हो गई रुधिर वाहिकाओं में रक्त के थक्के बन कर उस क्षेत्र के ऊतकों में रक्त का प्रवाह रोक सकते हैं और इससे शरीर के अंग में सुन्नता या दर्द हो सकता है। यदि इसका तुरन्त उपचार न किया जाय तो इसके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। धूम्रपान का एक अन्य प्रभाव रक्त में कार्बन मोनॉक्साइड एकत्रित होने का होता है। कार्बन मोनॉक्साइड एक घातक गैस है। यह लाल रुधिर कोशिकाओं (red blood cells) के रसायन में स्थाई रूप से मिल जाती है और परिणामस्वरूप वह शरीर के ऊतको को ऑक्सीजन पहुँचाने के अपने सामान्य कार्य को करने में असमर्थ रहते हैं। इस प्रकार से रुधिर के कुछ लाल कोशिकाओं की ऑक्सीजन पहुँचा पाने की क्षमता समाप्त हो जाने से मस्तिष्क की कोशिकाओं व अन्य ऊतकों को ऑक्सीजन की कमी महसूस होने लगती है। कुछ समय तक धूम्रपान बन्द करने से रुधिर की ऑक्सीजन पहुँचाने की क्षमता सामान्य हो सकती है।

ऐसे परिवारों में जहाँ माता पिता में से दोनों या एक धूम्रपान करता है, वहाँ बच्चे वयस्क होने पर धूम्रपान करने में संकोच नहीं करते। माता या पिता जो स्वयं धूम्रपान करता है वह निश्चित रूप से इसके लिये अपने बच्चे को मना नहीं कर पाएगा, शायद कुछ मामलों में उनको समझा कर वे यह दिखा कर कि इसे छोड़ पाना कितना कठिन है, तथा स्वास्थ्य पर इसका कितना खराब असर पड़ता है, उन्हें इससे दूर रख सकें अन्यथा यह बहुत कठिन है। माता-पिता तथा समाज द्वारा बच्चे को यह समझाने का हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए कि धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए कितना हानिकारक है तथा उन्हें इसे शुरू ही नहीं करने देना चाहिए।

मल त्याग की आदतें : शरीर में भोजन के पाचन व अवशोषण के बाद, शेष ठोस पदार्थ जो बड़ी आँतों के रास्ते शरीर से बाहर आता है उस ठोस पदार्थ में अधिकांश भोजन के अनपचे अवयव जैसे सैलुलोस तथा वह पदार्थ होते है जो कि शरीर में कोशिका के नष्ट होने तथा नवीकरण की सामान्य प्रक्रिया में टूट जाते हैं जैसे पित के अवयव आदि सम्मिलित होते हैं। फिर भी बड़ी आँत में जाने वाली सामग्री का मुख्य हिस्सा जल होता है। सभी चीजें जब बड़ी आँत में प्रवेश करती हैं तो वह पतले सूप की तरह होती हैं। बड़ी आँतो का मुख्य काम शरीर द्वारा निकाली गई अनुपयोगी सामग्री को अलग करने के अतिरिक्त इस जल को पुन: अवशोषित करके परिसंचरण तंत्र में वापस भेजने का

है । बड़ी आँत में रसांकुर (villi) न होने के कारण बेकार पदार्थों का आगे की ओर बढ़ना धीमा हो जाता है और पानी को पुन: अवशोषित होने का मौका मिल जाता है । जब पानी पुन: अवशोषित हो जाता है तो ये अनुपयोगी सामग्री पतले से अर्धठोस मल में बदल जाती है । जीवाणु, जोकि आँतो में बड़ी मात्रा में होते हैं, शेष ठोस सामग्री का अपघटन (decompose) करना प्रारम्भ कर देते हैं । ये जीवाणु बाकी के शरीर को हानि नहीं पहुँचाते हैं क्योंकि ये बड़ी आँत में ही रहते हैं तथा मल के साथ ही अलग हो जाते हैं । शरीर के इस भाग में विद्यमान नसों के सिरे मस्तिष्क को संदेश दे देती हैं कि मल को निकालने की आवश्यकता है । यदि आप इस संदेश के अनुसरण में थोड़े समय तक कार्यवाही नहीं करते और इसको रोकने का प्रयास करते हैं तो मल में से और जल अवशोषित हो जाता है और मल और ठोस बन जाता है जिससे निष्कासन अथवा उत्सर्जन में कठिनाई होती है । सामान्यत: इसी कारण कब्ज हो जाता है।

सभी लोगों को प्रतिदिन मल त्याग करने की आवश्यकता नहीं होती और दूसरी ओर कुछ व्यक्तियों को एक दिन में एक से अधिक बार भी इसके त्याग की आवश्यकता हो सकती है । अत: इस संबंध में एक व्यक्ति से दूसरे में अन्तर पाया जाता है परन्तु व्यक्ति की सामान्य आदत में बहुत अन्तर आने पर उस ओर ध्यान दिया जाना चाहिए ।

कब्ज का अर्थ है मल त्याग में कठिनाई या सामान्य अन्तराल पर मल त्याग न होना । मल त्यागने की इच्छा सामान्यत: मल के मलाशय में उपस्थित होने पर महसूस होती है जो कि भोजन के उदर में पहुँचने से संबद्ध है । यदि मल त्याग की इच्छा को जान बूझ कर दबाया जाए तो आँतो की क्रिया कम हो जाती है और परिणामस्वरूप कब्ज हो जाती है। मलाशय के कैन्सर में अधिकतर, मल त्याग की सामान्य आदत में अन्तर आ जाता है, जो कि सामान्य से अधिक अवधि तक चलता है — कब्ज या अतिसार या बारी बारी से दोनों । इसलिए यदि काफी समय तक इस प्रकार की समस्या हो तो उसकी जाँच कराई जानी चाहिए । यदि प्रतिदिन ठीक समय पर मलत्याग किया जाए तो उसकी आदत पड़ जाती है और शरीर उसी के अनुसार कार्य करने लगता है । इसकी आदत भी बाल्यावस्था में ही डाली जाती है ।

मलत्याग के बाद अंगों को अच्छी तरह से साफ करना भी बहुत आवश्यक है । इसके लिए पानी सबसे अच्छा माध्यम है । लड़कियों को शुरू से ही मलद्वार पीछे से साफ करना सिखाना चाहिए जिसमें कि हाथ योनिमार्ग से दूसरी ओर को चलाया जाए । इससे योनि मार्ग में जीवाण्विक संक्रमण रुकता है ।

बोध प्रश्न 3

1) धूम्रपान के कोई चार हानिकारक प्रभाव बताइए ।

....

....

....

....

2) निम्नलिखित को मिलाइए :

क)	अच्छी आदत	1)	कब्ज
ख)	आवश्यकता से अधिक खाना	2)	उपयुक्त ज्ञान एवं अभ्यास
ग)	रक्त में आक्सीजन की कमी	3)	आदत डालने वाला
घ)	निकोटीन	4)	[illegible]
ङ)	मल त्याग में परेशानी	5)	धूम्रपान

6.6 पदार्थ का दुरुपयोग (Substance Abuse)

किसी भी चीज का गलत उपयोग दुरुपयोग कहलाता है । पदार्थ के दुरुपयोग का अर्थ है किसी भी पदार्थ का गलत व हानिकारक उद्देश्यों के लिए उपयोग या दुरुपयोग । अल्कोहॉल एक ऐसा पदार्थ है, जिसका

दुरुपयोग होता है। ऐसे और भी पदार्थ हैं जोकि औषधि के रूप में वर्गीकृत किये जाते हैं तथा जो या तो औषधि ही होते हैं अथवा जिनका ऐसी औषधि बनाने के लिए, जोकि चिकित्सकीय अथवा शल्य-चिकित्सा के लिए अत्यावश्यक हैं, प्रयोग किया जाता है। ये चिकित्सकों द्वारा निर्दिष्ट की जाती हैं तथा चिकित्सक की सलाह से ही प्रयोग करने से बहुत लाभदायक होती हैं। जानबूझ कर या अनजाने में किया गया इन औषधियों का दुरुपयोग बहुत हानिकारक प्रभाव डालता है तथा कई मामलों में लत डालने वाला बन जाता है जिससे कि उबर पाना मुश्किल होता है। इस प्रकार के दुरुपयोग अधिकतर अनजाने में ही असावधानी अथवा अज्ञानता के कारण शुरू होते हैं। दुरुपयोग की आदत आमतौर पर आसपास के व्यक्तियों द्वारा या ऐसे लोगों द्वारा की जाती हैं जो कि इन पदार्थों की बिक्री से मुनाफा कमाकर बिक्री स्थल बनाना चाहते हैं। क्योंकि, एक बार अगर आप इस तरह के पदार्थ के आदी हो जाने पर आप इसके असहाय व पक्के खरीददार बन जाते हैं। कई मामलों में औषधि के सरल रूप से उपलब्ध होने के कारण रोगी डाक्टर द्वारा निर्दिष्ट मात्रा से अधिक दवा प्राप्त करने में सफल हो जाता है। ऐसे में वह स्वयं ही अपने लिये औषधि की मात्रा निर्दिष्ट करने लगता है। इस प्रकार की कई औषधियों की लत पड़ने का सबसे साधारण कारण है। इस प्रकार के पदार्थों की बिक्री के संबंध में कड़े नियमों का बनाया जाना व उनका क्रियान्वयन करना अत्यावश्यक हैं तथा अधिकतर देशों में ऐसा किया जा रहा हैं।

6.6.1 शराब या अलकोहॉल

अलकोहॉल एक अवसादक तथा निश्चेतक करने वाला पदार्थ है। यह मस्तिष्क तथा तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है। अलकोहॉल का शरीर तथा व्यवहार पर पड़ने वाला समग्र प्रभाव कई कारणों से भिन्न भिन्न होता है। इनमें से प्रमुख कारण है, लिये गये अलकोहॉल की मात्रा तथा मस्तिष्क तक पहुँचते समय रक्त में विद्यमान अलकोहॉल का प्रतिशत। जैसे जैसे यह प्रतिशत बढ़ता जाता है, मस्तिष्क तथा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र का कार्य अधिकाधिक प्रभावित होता जाता हैं। चूँकि अलकोहॉल का रक्त में क्रमश: चयापचय व निष्कासन होता है अत: यह प्रक्रिया अपने आप ही प्रतिवर्तित होती है। रक्त में 0.03 प्रतिशत के अलकोहॉल संकेन्द्रीकरण पर कोई भी प्रभाव दिखाई नहीं देगा। यह वह मात्रा है जो कि 1.5 ऑउंस व्हिस्की या दो छोटे ग्लास टेबल वाइन या दो बोतल बीयर पीने पर रक्त में पाई जायेगी और इसका रक्त में चयापचय होने में व शरीर को छोड़ने में 2 घंटे का समय लगेगा। यदि आप इससे दुगनी मात्रा में अलकोहॉल लेंगे तो आप के रक्त प्रवाह में इसकी दुगनी मात्रा अर्थात् 0.06 प्रतिशत अलकोहॉल का संकेन्द्रण होगा, इससे आपको गरमी तथा विश्रांति की अनुभूति होगी। रक्त प्रवाह में 0.1 प्रतिशत अलकोहॉल के संकेन्द्रण पर (जिसका अर्थ है रक्त के प्रत्येक एक हजार भाग में से एक भाग खालिस अलकोहॉल है) व्यक्ति कानूनी रूप से नशे में माना जाता है। इस स्तर पर मस्तिष्क के प्रेरक क्षेत्र प्रभावित होते हैं तथा मनुष्य के खड़े होने या चलने में प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली संतुलन की कमी आ जाती है। यदि यह प्रतिशत बढ़ कर 0.15 तक चला जाता है तो मानसिक क्षमतायें भी कम हो जाती हैं और मदहोशी के शारीरिक लक्षण प्रकट होने लगते हैं। 0.4 प्रतिशत के संकेन्द्रण से अधिमूर्च्छा (coma) हो सकती है। 0.5 से 0.7 प्रतिशत के स्तर पर मस्तिष्क केन्द्रों (जोकि फेंफड़ों तथा हृदय के कार्य को नियंत्रित रखते है) का पक्षाघात हो सकता है। यह घातक हो सकता है। अलकोहॉल की बहुत अधिक तथा शीघ्रता से लत पड़ सकती है।

शरीर में अलकोहॉल का क्या होता है?

यह चीनी के समान एक ऊर्जा उत्पादक आहार है परन्तु इसकी पौष्टिकता न के बराबर है। अधिकतर अन्य आहारों के विपरीत यह उदर तथा छोटी आँतो के माध्यम से शीघ्रता से रक्त प्रवाह में अवशोषित हो जाता है क्योंकि इसको पचाने की तो आवश्यकता होती ही नहीं है। उसके बाद यह यकृत (liver) में ले जाया जाता है जहाँ कि लगभग सारा ही अलकोहॉल ऊष्मा तथा ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। बाकी बचा हुआ रक्त प्रवाह के साथ ही हृदय में ले जाया जाता है जहाँ से वह फेफड़ों में भेज दिया जाता है। इसमें से कुछ श्वास के साथ बाहर निकाल दिया जाता है तथा कुछ अन्तत: पसीने तथा मूत्र द्वारा निष्कासित हो जाता है। फेंफडों से अलकोहॉल मस्तिष्क में संचरित होता है। ऐसे व्यक्ति जो मदिरापान के समय विवेक से काम लेते हैं वह मुश्किल से ही मदहोश होते हैं।

ठीक-ठीक मात्रा में लिए गए अलकोहॉल से हृदय गति तेज़ होती है, क्षुधा तथा आमाशय रसों के प्रवाह में वृद्धि होती है परन्तु अधिक मात्रा में अलकोहॉल लेने से इसके प्रभाव हानिकारक होते हैं।

आदतन बिना पानी मिली व्हिस्की पीने से गले की परत की झिल्ली में विकार उत्पन्न हो सकते हैं। इससे वाक तंतुओं (Vocal cord tissues) भी मोटे होते हैं जिसके परिणाम स्वरुप आवाज फटी-फटी हो जाती है।

इससे उदर में अल्सर बढते है । यदि लकोहॉल का लम्बे समय तक लगातार प्रयोग किया जाता है तो उससे मस्तिष्क जल्दी ही काल प्रभावित होने लगता है । अधिक मात्रा में मद्यपान करने वाले अधिकतर कुपोषण के शिकार रहते हैं तथा उन्हें विषाणु तथा जीवाण्विक संक्रमण होने की संभावना बहुत होती है । सामान्य रूप से उनकी संक्रमण के प्रति निरोधक क्षमता कम हो जाती है । अधिक पीने वालों को रक्त स्रावी आधात (hemorrhagic stroke) का जोखिम बढ़ जाता है। यद्यपि अलकोहॉल से अन्तर्बाधायें कम हो जाती है तथा काम तृष्णा बढ जाती है परन्तु उसकी क्षमता कम हो जाती है ।

ऐसे व्यक्तियों को, जिन्हें पैष्टिक अल्सर, गुर्दे तथा यकृत के संक्रमण तथा मूर्च्छारोग हो, कभी भी चिकित्सक की अनुमति के बिना मद्यपान नहीं करना चाहिए ।

विश्व में कई भागों में अनन्त काल से अल्कोहल के पेयों का चिकित्सीय उद्देश्यों से प्रयोग होता रहा है । कुछ मामलों में चिकित्सक भी अलकोहॉल के किसी विशेष पेय का प्रशान्तक नींद लाने अथवा भूख बढाने की औषधि के रूप में सेवन का निर्देश देते हैं ।

6.6.2 नशीले पदार्थों (ड्रग) का दुरुपयोग

अलकोहॉल की तरह ही नशीले पदार्थों का दुरुपयोग भी चौंका देने की सीमा तक पहुँच रहा है, विशेष रूप से महानगरों तथा विश्वविद्यालयों में। जिस प्रकार अलकोहॉल शरीर के लिए हानिकारक है उसी तरह नशीले पदार्थ भी जीवन नष्ट करते हैं । बाज़ार में बहुत से ऐसे नशीले पदार्थ उपलब्ध है जो कि बहुत लाभदायक हैं परन्तु उनमें संभावित खतरा भी निहित होता है । जब तक उनका प्रयोग ठीक से विवेकानुसार किया जाता है तब तक तो वह दर्द, तनाव, परेशानी का निवारण करने वाले आरामदायक व उपयोगी होते हैं परन्तु जरूरत से ज्यादा मात्रा में सेवन से बहुत जल्दी लत का रूप ग्रहण कर लेती हैं । इनका बहुत कम असर डालने वाला उदाहरण चाय, काफी व कोकाकोला में विद्यमान कैफीन तथा सिगरेट की निकोटिन है । डाक्टर द्वारा निर्देशित नींद लाने की दवा कि गोलियाँ तथा अन्य प्रशान्तक (tranquilizers) इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। इनमें से कुछ खाँसी की दवाइयों व अन्य दवाइयों में भी मिश्रित की जाती हैं जैसे दर्द दूर करने वाले टीकों में । यही कारण है कि इनके अवैध प्रयोग को नियंत्रित करना बहुत कठिन है — कानूनी व गैर कानूनी प्रयोग आपस में इतने करीब है कि उनमें अन्तर करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । ऐसी औषधियाँ जिनका कि सामान्यत: दुरुपयोग किया जाता है, सामान्यत: छ: श्रेणियों के अन्तर्गत आती हैं। उत्तेजक, अवसादक तथा संवेदनात्मक सम्पाक — जिनमें से सबका ही वैध रूप में चिकित्सा के लिए प्रयोग किया जा सकता है, विभ्रमकारक (hallucinogens), कैनबिनौयडस जैसे मैरिहुआना तथा नि:श्वसनी जैसे ऐरोसल स्प्रे, चिपकने वाली वस्तुयें (सरेस) तथा ईंधन (जलाने वाले पदार्थ)।

मुख्य नशीली औषधियों का वर्गीकरण नीचे दिया गया है :

प्रमुख औषधी वर्गीकरण	
प्रकार	**उदाहरण**
उत्तेजक	एम्फीटामाइन्स,कोकेन अपसारण
अवसादक	वेलियम, काम्पोज़
संवेदनमन्दक (आफीम अपसारण)	मॉरफीन, कोडीन, हिरोइन
विभ्रमकारक	एल.एस.डी., मैस्कालीन
मैरिहुआना (भांग के उपसारण)	मैरिहुआना हशीश
नि:श्वसनी	गैसोलीन, ग्लू

बिना सोचे समझे नशीली दवाओं का प्रयोग करने से तीन प्रकार की आश्रिता या लत पड़ती है:

क) शारीरिक व्यसन या लत : व्यसनी को ड्रग न मिलने से अप्रिय लक्षण जैसे जी मिचलाना, सर दर्द या ठंडे पसीने आना आदि प्रदर्शित होते हैं ।

ख) मनोवैज्ञानिक व्यसन या लत : यह वह अवस्था होती है जब व्यसनी को लगता है कि वह बिना ड्रग के रह ही नही सकता ।

ग) क्रियात्मक व्यसन या लत : वह होता है जब व्यसनी किसी शारीरिक समस्या या स्थिति को दूर करने के लिये ड्रग पर निर्भर हो जाता है, जैसे बंद नाक खोलने के लिये, नाक में डालने वाली दवाई पर निर्भरता ।

उन दवाइयों में से, जो कि डाक्टर द्वारा रोगी के लिये निर्देशित की जाती है, कुछ दवाइयों में दुरुपयोग की संभावना बहुत अधिक है । ये उत्तेजक जैसे एम्फीटामाइन्स, अवसादक जैसे नींद की गोलियाँ, नशीली दर्द निवारक दवाइयाँ जैसे मॉरफीन तथा कोडीन जब डाक्टर के निर्देश के बिना प्रयोग में लाई जाती है तो यह हानिकारक ड्रग्स बन जाती हैं।

सामान्य रूप से दुरुपयोग की गई ड्रग्स हैं :

एम्फीटामाइन : यह उत्तेजक होती है तथा परीक्षा के लिये पढ़ने के समय बहुत से विद्यार्थियों द्वारा, बहुत थकाने वाले दिनों में सारा काम ठीक से कर पाने के लिये गृहणियों द्वारा तथा प्रातः कालीन बैठकों में चुस्त रहने के लिये व्यावसायियों द्वारा सामान्य रूप से प्रयोग में लाई जाती हैं । उत्तेजक औषधियों का दुरुपयोग करने वाले शीघ्र ही इसके प्रभाव के आदी बन जाते हैं तथा उपयुक्त प्रभाव प्राप्त करने के लिए इसकी मात्रा बढाते जाते हैं । बहुत शीध्र ही वह उस पर मनोवैज्ञानिक निर्भरता भी विकसित कर लेते हैं ।

कोकेन : कोकेन केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के लिये बहुत ही शक्तिशाली उत्तेजक है । यह या तो सूंघ कर या टीका शिरा के अन्दर लिया जाता है । कोकेन पर शारीरिक निर्भरता बहुत कम होती है परन्तु मनोवैज्ञानिक निर्भरता बहुत सामान्य है । इससे व्यक्ति को शारीरिक सुख की अनुभूति होती है परन्तु जब इसका असर समाप्त होने लगता है तो गहरा अवसाद छा जाता है । कोकेन का कानूनी रूप में मूर्च्छा लाने के लिये किया गया उपयोग व्यसनी नहीं होता है । यह सामान्यतः मुँह, गले तथा आँखों से संबंधित शल्यक्रिया में प्रयोग में लाया जाता है । अत्याधिक दुरुपयोग के मामलो में दुरुपयोगकर्त्ता को विभ्रम तथा उन्माद या अवसाद की अनुभूति हो सकती है। वह यह कल्पना कर सकते हैं कि कीड़े मकोड़े उनके सारे शरीर पर रेंग रहे हैं तथा उनकी छाती में दर्द भी हो सकता है

बार्बिट्यूरेटस (Barbiturates) : यह अवसादक होते हैं तथा न्यायसंगत रूप में अनिद्रा रोग दूर करने, अधिक रक्तचाप को कम करने, बेचैनी दूर करने, मानसिक विकारों का इलाज करने तथा शल्यक्रिया से पहले रोगी को शान्त करने के लिये दिये जाते हैं । इनका प्रयोग मिरगी व अन्य प्रकार की ऐंठन को नियंत्रित करने के लिये भी किया जाता है । फिनोबार्बिटाल (Phenobarbital), पैन्टोबार्बिटल (Pentobarbital) तथा सोडियम पैन्टोथल (Sodium pentothal) सामान्य रुप से अस्पतालों में प्रयुक्त बार्बिट्यूरेट्स हैं । पैन्टोथल का प्रयोग दन्त चिकित्सक द्वारा संवेदना हारक के रूप में किया जाता है । दुरुपयोगकर्ता सामान्यतः नींद की गोली से प्रारम्भ करते हैं तथा बाद में बढ़ा कर तनाव तथा बेचैनी निवारक के रूप में इसका प्रयोग करने लगते हैं। यह सब घर में बहुत ही अहानिकर रूप में प्रारम्भ होता है परन्तु धीरेधीरे औषधि के ऊपर निर्भरता के रूप में विकसित होने लगता है जब कि दुरुपयोगकर्ता इसको गलत माध्यमों से प्राप्त करना प्रारम्भ कर देता है तथा अन्ततः अपना अधिकाँश समय बिस्तर पर ही व्यतीत करने लगता है । बार्बिट्यूरेट का दुरुपयोग नशीली वस्तुओं के दुरुपयोग से बहुत अधिक गम्भीर माना जाता है । लगातार दुरुपयोग से मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक निर्भरता विकसित होती है ।

प्रशान्तक : प्रशान्तक भी विधिसंगत रूप में प्रयुक्त अवसादक होते हैं जिनका प्रयोग संवेगात्मक तनावों के उपचार तथा माँसपेशियों के तनाव को कम करने के लिए किया जाता है । प्रशान्तक सबसे अधिक दुरुपयोग की जाने वाली औषधि है क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दोनो प्रकार की निर्भरता उत्पन्न करती है । बेलियम (Valium) तथा कम्पोज (Campose) दोनो बाज़ार में सहज ही उपलब्ध प्रशान्तक है परन्तु इनको डाक्टरी निर्देश पर ही बेचा जा सकता है । प्रशान्तक को अलकोहॉल के साथ मिला कर प्रयोग में लाना बहुत ही खतरनाक होता है।

अफीम (Opium) : यह संवेदनबन्धक है जो कि पोस्त के पौधे से प्राप्त होती है । यह या तो खाई जाती है या धूम्रपान के लिये प्रयोग में लाई जाती है । यह विभिन्न संस्कृतियों में प्रागैतिहासिक (prehistoric) काल से एक आदत डालने वाली वस्तु तथा एक दवाई के रूप में प्रयोग में लाई जाती रही है । अफ़ीम से कई यौगिक बनाये जा सकते हैं परन्तु इनमें सबसे प्रमुख दो यौगिक हैं मॉर्फीन (morphine) तथा कोडीन (Codeine)। अफीम का गैर स्वापक (non-narcotic) सामान्य बीज खस-खस है जो कि एक सामान्य मसाला

है तथा हमारे देश में किसानों द्वारा बिना किसी रोकटोक के उगाया जाता था, लेकिन अब पोस्त की अधिकाँश खेती अफीम के उत्पादन में बदलती जा रही है क्योंकि उसमें पैसा अधिक मिलता है। परिणामस्वरूप सरकार ने पोस्त की सारी खेती अपने कठोर नियंत्रण तथा देखरेख में कर दी है।

मॉरफीन : मॉरफीन अफीम का रासायनिक तत्व होता है जोकि इसकी दर्दनिवारक तथा नींद लाने वाली क्षमताओं के लिये उत्तरदायी है। ड्रग के अवैध बिक्री केन्द्रों में यह सफेद पाउडर के रूप में पाई जाती है। इससे किसी भी प्रकार का दर्द दूर हो सकता है। यह ऐसे दर्दो के साथ आने वाले भय तथा बेचैनी में भी आराम देती है। यह निष्चेष्टता (drowsiness) तथा सुखभ्रान्ति (euphoria), मानसिक तथा शारीरिक कार्य में बाधा तथा जी मिचलाना, उल्टी तथा पसीना आदि उत्पन्न करती है। अधिक मात्रा में लेने से यह श्वास प्रश्वास में उदासीनता लाती है जो कि कभी-कभी इतनी अधिक हो जाती है कि उससे व्यक्ति सम्मूर्च्छा में चला जाता है या मर जाता है।

कोडीन : कोडीन अफीम से बना एक दूसरा यौगिक है जो कि एक हल्का दर्द निवारक है। यह मॉर्फीन की तुलना में बहुत कम असर वाला होता है तथा कई लोकप्रिय खाँसी की दवाइयों में मिला होता है। अगली बार जब आप खाँसी की दवा खरीदें तो उसका लेबल देखियेगा। इसका सेवन लत का रूप नहीं लेता। यह आवश्यक रूप से निर्भरता नहीं विकसित करता।

हिरोइन (Heroin) : यह मॉर्फीन से भी कई गुणा अधिक शक्तिशाली है। हिरोइन का दुरुपयोग करने वाले शीघ्र ही औषधि को सहन करने की शक्ति विकसित कर लेते हैं। यह मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दोनों ही प्रकार की निर्भरता विकसित करती है जिनमें से मनोवौनिक निर्भरता को छोड़ पाना बहुत मुश्किल होता है। यह या तो नाक से, जोर से साँस खीच कर, ली जाती है या सूई से त्वचा के नीचे या सीधे ही शिरा में डाली जाती है।

एल.एस.डी. (लाइसर्जिक एसिड डाइथिलामाइड) : एक विभ्रमकारक है। इसका प्रयोग करने वालो को विभ्रम तथा विकृत अनुभूति होती है। यह एक रंग रहित, स्वादरहित तथा गंध रहित यौगिक है जिसकी क्षमता बहुत अधिक होती है। यह गैर कानूनी रूप से चीनी के टुकड़े (cubes), टॉफियों, बिस्कुटो, मोतियों की सतहों पर, मिठाइयों में तथा टिकटों व लिफाफों की गोंद में भी मिलाया जा सकता है। सौभाग्यवश एल.एस.डी. का दुरुपयोग मुश्किल है क्योंकि इससे उतना प्रभावी असर होता है कि इसके कारण दैनिक अंतर्ग्रहण का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। अत: इसका प्रयोग निर्भरता विकसित नहीं करता। एल.एस.डी. के माध्यम से लाये गये विभ्रम कई बार दुखान्त होते हैं। कई बार इसका प्रयोग करने वाले कुछ व्यक्ति इसके प्रभाव में यह मान कर कि वह उड़ सकते हैं, ऊँची खिडकियों से नीचे गिरकर मौत का शिकार हो गये; कुछ अन्य रेलो या कारों के सामने आने से मारे गये। कोई भी यह नहीं बता सकता कि एल.एस.डी. किस प्रकार का विभ्रम उत्पन्न करेगी।

मारिहुआना या मारिजुआना : एक धूम्रपान के रूप में ली जाने वाली औषधि है जोकि भारतीय भाँग के पौधे (कैनवीस सैटाइवा) से बनाई जाती है। विश्व में लगभग 30 करोड़ व्यक्ति किसी न किसी प्रकार की औषधि जोकि पौधों से प्राप्त होती है, का प्रयोग करते हैं। नर पौधा भाँग के लिये रेशा बनाता है जबकि औषधि पूरी की पूरी केवल मादा पौधे से मिलती है। भारत में यह टिक्की के रूप में मिलती है जिसे चरस कहते हैं तथा मध्य पूर्व में भूरे रंग के पाउडर के रूप में मिलती है जिसे हशीश कहते हैं। भाँग की खेती संयुक्त राज्य अमेरिका में चोरी-छिपे किया जाने वाला व्यवसाय है। इस औषधि का सारे विश्व में गैर कानूनी व्यापार चलता रहता है। इसको विभ्रम कारक के रूप में वर्गीकृत किया गया है परन्तु यह वास्तविक विभ्रमकारकों से काफी कम प्रभावकारी है। यह एक नशीला पदार्थ नहीं है तथा यह उत्तेजकों तथा अवसादकों दोनों से अपने कुछ कुछ प्रभावों मे मिलती है। इसके प्रयोग से व्यक्ति शारीरिक रूप से इस पर निर्भर नहीं होता और न ही इसके प्रयोग के प्रति व्यक्ति सहनशीलता विकसित कर पाता है। प्रयोगकर्त्ता थोडी से लेकर मध्यम श्रेणी तक भी मनोवैज्ञानिक निर्भरता विकसित कर सकता है जोकि अलकोहॉल या तम्बाकू के नियमित प्रयोगकर्त्ता से भी शायद कम होती है।

नि:श्वसनी (सूंघने की दवा) (Inhalants) : इसमें सफाई करने वाले यौगिकों में प्रयुक्त विलायक, वायु विलय स्प्रे, ईधन तथा सरेश, गोंद सम्मिलित हैं। इन पदार्थों का दुरुपयोग करने वाले इनको मनोरंजक या ध्यान हटाने के उद्देश्य से श्वास के साथ जोर से अन्दर खींच कर या इनके धुयें को अन्दर लेकर करते हैं। यह यौगिक कभी भी मानवों के प्रयोग के लिये नहीं बनाये गये थे परन्तु यह ऐसे व्यक्तियों को, जोकि अन्य

प्रकार की औषधियों का सेवन करने का सामर्थ्य नहीं रखते, अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सही अर्थों में तम्बाकू, कोकेन तथा मारिहुआना को नि:श्वसनी माना जा सकता है परन्तु इस शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से विलायकों (solvents), वायुविलयों (aerosols) तथा निश्चेतकों (anaesthetics) के लिए किया जाता है। अधिकतर युवा किशोर इन नि:श्वसनी पदार्थों का दुरुपयोग करने वालों में प्रमुख हैं, विशेष रूप से गैराजों या वर्कशॉपों में काम करने वाले जहाँ कि यह यौगिक - गैसोलीन (gasoline), ट्रांस्मिशन फ्लुइडस (transmission fluids), पेन्ट थिनर (paint thinner), एयर प्लेन सीमेंन्ट, कीटनाशक, स्प्रे पेन्ट आदि - प्रयोग में लाये जाते हैं। इन रसायनों से निकलने वाला धूआँ शीघ्र ही रक्त प्रवाह में प्रवेश कर जाता है। उसके बाद वह मस्तिष्क तथा यकृत में वितरित कर दिया जाता है। केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में प्रवेश करके धूआँ श्वास तथा हृदय के सामान्य कार्य को धीमा कर देता है। इनसे भ्रम, विभ्रम तथा मानसिक विक्षोभ हो सकता है। लम्बे समय तक चलने वाला दुरुपयोग जी मिचलाना, पेशीय दुर्बलता, थकान तथा वजन में कमी तथा गुर्दों, यकृत, बोन मैरो तथा मस्तिष्क आदि को क्षति पहुँचा सकती है। इनसे शारीरिक व मनोवैज्ञानिक निर्भरता भी विकसित हो सकती है।

बोध प्रश्न 4

1) बताइए निम्नलिखित कथन सही है या गलत। गलत कथनों को सही कीजिए।

   क) स्वचिकित्सा के परिणामस्वरूप लत पड़ सकती है।

   ....

   ख) अलकोहॉल से पेशीय समन्वय की असमर्थता विकसित हो सकती है।

   ....

   ग) अलकोहॉल ऊर्जा का एक अच्छा स्रोत है।

   ....

   घ) डाक्टर के निर्देश के बिना प्रशान्तक का प्रयोग खतरनाक हो सकता है।

   ....

2) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए।

   क) शारीरिक लत

   ....

   ख) मनोवैज्ञानिक लत

   ....

   ग) क्रियात्मक लत

   ....

3) निम्नलिखित को मिलाइए।

क) उत्तेजक	1) वेलियम
ख) अवसादक	2) मॉरफीन
ग) विभ्रमकारक	3) एम्फेटेमीन
घ) संवेदनमन्दक	4) एल.एस.डी.

6.7 पहनावा एवं जूते

पहनावा तथा जूतों का हमारे जीवन में एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ लोग तो इनके लिए भोजन, स्वास्थ्य व शिक्षा की अपेक्षा कहीं अधिक समय, ध्यान व धन खर्च करते हैं। जीवन के इन महत्वपूर्ण उपांगों पर विस्तृत चर्चा करना इस खण्ड के क्षेत्र में नही आता है। अत: यहा हम केवल स्वास्थ्य एवं शारीरिक विश्राम के दृष्टिकोण से इन पर चर्चा करेंगे।

6.7.1 पहनावा

कपड़े पहनने के मुख्य उद्देश्य हैं :

क) शरीर की सर्दी, गर्मी, बारिश व बर्फ से रक्षा करना

ख) शरीर का तापमान बनाये रखना, तथा

ग) शरीर को ढकना तथा मानव को सुन्दर बनाना।

कपड़े बनाने के लिए प्रयुक्त सामग्री जानवरों तथा वनस्पति दोनों ही स्रोतों से प्राप्त होती है। ऊन, बालों सहित खाल (फर), चमड़ा, पर तथा रेशम जानवरों से तथा रुई, लिनेन, कृत्रिम रेशम, जूट व रबर वनस्पति जगत से निकाले जाते हैं। आजकल पहनावे के लिए सबसे अधिक प्रयुक्त सामग्रियाँ है —ऊन, रुई, लिनेन, रेशम, कृत्रिम रेशम तथा चमड़ा। कपड़ों के निर्माण के लिये संश्लिष्ट (Synthetic) सूत्र का प्रयोग अभी हाल में ही प्रारम्भ किया गया है। उपयोगिता, आराम, रखरखाव व खर्चे की दृष्टि से बुद्धिमानीपूर्ण चयन करने के लिये यह जानना व समझना आवश्यक है कि कपड़ा बनाने के लिये प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के कपड़ो की प्रकृति व विशेषताएं क्या क्या हैं ? पहनावे के प्रमुख तीनों उद्देश्यों में से जहाँ शरीर को ढकने और अच्छा बनाने की ओर बहुत ध्यान दिया जाता है वहीं उसके अन्य दोनों उद्देश्य अर्थात विभिन्न स्थितियों से बचाव तथा शरीर के तापमान को बनाये रखना, पीछे रह जाते हैं। ऐसा मुख्यत: अज्ञानता वश होता है न कि पहनावे की अभिकल्पना के कारण। यद्यपि यहाँ पर विभिन्न सूत्रों तथा सामग्रियों के विषय में विस्तार से विचार नहीं किया जा सकता फिर भी संक्षेप में चर्चा करने से विषय को समझने में सरलता होगी तथा शायद इससे पाठक की इस विषय में और जानने की उत्सुकता जागृत हो।

हम सभी जानते हैं कि ऊन हमें गर्मी देता है क्योंकि यह ऊष्मा का कुचालक है। यह ऊष्मा का कुचालक अपने रेशों की संरचना के कारण है न कि मोटे या गुदगुदे होने के कारण। आपने देखा होगा कि खूब ठन्ड में भी कुछ लोग छोटे बच्चों को टरकिश तौलियों में लपेटकर चलते हैं क्योंकि तौलिये मोटे और गुदगुदे होते हैं इसलिए वह मान लेते हैं कि बच्चे को गर्म रख रहे हैं जबकि बालक उसमें ठंड के मारे जम रहा हो सकता है। यह तौलिये सूती होते हैं और सूत चाहे जितना मोटा हो यह ऊष्मा का अच्छा चालक (conductor) होता है। इसीलिये जब बाहर ठंड होती है तो ऊनी वस्त्रों की आवश्यकता होती है परन्तु गर्मियों में, जब आप शरीर की अधिक से अधिक ऊष्मा निकालना व गर्मी कम करने के लिये अधिकाधिक वायु प्राप्त करना चाहते हैं, तब सूती कपड़ों का चयन किया जाता है। सूती वस्त्र में हवा का आवागमन भी अच्छा रहता है। इसमें हवा एक तरफ से दूसरी तरफ भी जा सकती है। रेशम (Silk) ऊष्मा का कुचालक है तथा इसमें हवा का आवागमन भी सूती कपड़ों के समान नहीं होता अत: रेशमी पहनावा ठंडे मौसम में अधिक उपयुक्त रहता है।

गर्मी में रेशम की साड़ियाँ भी असुविधाजनक रहती हैं। जब अगली बार आप गर्मियों में रेल गाड़ी से कहीं जायें तो अपने आसपास देखियेगा कि कितने लोग सिल्क की कमीज़, कुर्ता या सलवार कमीज़, पहनकर यात्रा करते हैं; तथा उसके बाद गर्मी लगने की शिकायत करते हैं व कष्ट में और पसीने से तर बतर रहते हैं। जबकि आप सूती कपड़ो में आराम से बैठे होंगे केवल आपके कपड़ों में कुछ शिकन पड़ी हो सकती है। संश्लिष्ट सूत्र (synthetic fibre) भी ऊष्मा के कुचालक होते हैं तथा उनमें वायु का आवागमन भी अच्छा नहीं होता इसलिये यह गर्मी के मौसम में आरामदायक नहीं होते। यदि आराम आपकी प्राथमिकता हो तो आपको मौसम को ध्यान में रख कर वस्त्र पहनने चाहिए। बारिश के दिनों में सूती साड़ी पहनना बिल्कुल उपयुक्त नहीं होगा।

छोटे बच्चों का मामला लीजिए। उनको मूल रूप से आरामदायक तथा ऐसे वस्त्र पहनाने चाहिए जो उनकी शारीरिक क्रियाओं में बाधक न हों। गर्मियों में ढीले-ढीले सूती वस्त्र जिनमें कम से कम चीजें (जैसे बाँहों व गले के चारों तरफ झालर, लेस या रिबन आदि) लगी हो जिससे कि आराम से व प्रसन्न रह सके। इसके विपरीत आप देखते हैं कि छोटे से प्यारे प्यारे बच्चों को नायलॉन, सिल्क तथा साटन जिन पर सख्त लैस, झालर तथा रिबन लगे रहते है जिनमें उनका मुँह छिप जाता है तथा उनकी शारीरिक क्रियाओं में बाधा पड़ती है पहनाए जाते है। गर्मियों में उनको नंगे पैर छोड़ने या बिना मोजे पहनाये खुले सैंडल पहनाने के स्थान पर हम उनको घुटनों तक के मोजे और लेस वाले जूते पहना देते हैं। वस्त्रों की शारीरिक अथवा स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयुक्ता, जो कि अधिक महत्वपूर्ण है, के स्थान पर हम उनके सबसे कम महत्वपूर्ण पहलू की ओर अधिक ध्यान देते हैं। विभिन्न प्रकार के वस्त्रों की विशेषताओं के विषय में जानकारी हमें कपड़ों का चयन करते समय उनसे मिलने वाले बचाव, आराम तथा उनकी सुन्दरता का उपयुक्त तालमेल करने में

सहायक होगी। कपड़े ढीले व आरामदायक होने चाहिये। उनको पहन कर आपको ठीक से साँस लेने, आराम से इधर उधर घूमने तथा सुरक्षापूर्वक अपना काम करने में कोई बाधा नहीं पड़नी चाहिएं।

आइये, अब वस्त्रों की सफाई के संबंध में थोड़ी चर्चा करे। यह बताने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि वस्त्रों की स्वच्छता कितनी महत्वपूर्ण है परन्तु यहाँ हम यह आवश्य बताना चाहेंगे कि अन्दर पहनने वाले वस्त्रों का स्वच्छ एवं धुला हुआ होना कितना आवश्यक है — बाह्य वस्त्रों की स्वच्छता से भी अधिक - क्योंकि ये वस्त्र आपकी त्वचा को स्पर्श करते हैं तथा स्वच्छ न होने पर दुर्गंध व संक्रमण का कारण बन सकते हैं। अन्दर के वस्त्रों जैसे जांगिए, बनियान तथा पेटीकोट आदि को सारे वर्ष प्रतिदिन बदलना अत्यावश्यक है। गर्मियों में यदि आपको बहुत पसीना आता हो तो आप इनको दिन में दो बार भी बदल सकते हैं। एक बार पहनी हुई कमीज़, कुर्ता या साड़ी दुबारा पहनना, स्नान के बाद बिना धुले जांगिया को पहनने से कहीं अधिक स्वच्छ होगा। इसलिए यदि जांगिए सीमित संख्या में हो तो इस प्रकार की व्यवस्था की जानी चाहिए कि यह प्रतिदिन धुले जिससे कि प्रतिदिन बदलने के लिए साफ व धुले हुए - चाहें प्रैस न हो - आन्तरिक वस्त्र उपलब्ध रहें। अपने बच्चें को भी शुरू से ही सदैव स्वच्छ व धुले हुए आन्तरिक वस्त्र पहनने की आदत डालें। यदि बचपन से ही ये चीजें सिखाई जायेंगी तो ये उनकी आदत बन जायेंगी।

रात में सोने के समय स्वच्छ एवं ढीले-ढाले वस्त्र पहनना एक अच्छी बात है। लम्बी बाँहों तथा लम्बे पैरों के टैरीकॉट, फलालैन या रेशम के रात में पहनने के कपड़े ठंडी जगहों या सर्दियों में अच्छे रहते हैं परन्तु गर्मियों में छोटी बाँहों तथा छोटे पैरो के सूती कपड़े अच्छे रहते हैं विशेष रुप से बच्चों के लिए। रात में पहनने के कपड़े पर्याप्त ढीले होने चाहिए जिससे कि उनमें शरीर आराम से हिल-डुल सके।

आप अपने वस्त्रों में कैसा महसूस करते है, रंग का इस पर भी प्रभाव पड़ता है। गहरे रंग के कपड़ों में आपको गरम लगेगा तथा हल्के रंगों के या सफेद कपड़ों में आप ठंडा महसूस करेंगे। जहाँ तक वस्त्रों का संबंध है इसमें आप बहुत कुछ सीख सकते हैं तथा हमें आशा है कि आप इसके बारे में पता लगा लेंगे।

6.7.2 जूते

आपके शरीर का सारा भार व संतुलन आपके दोनों पैरों पर टिका हुआ है। और फिर भी हममें से अधिकतर लोग इनके स्वास्थ्य व देखभाल की ओर तब तक ध्यान नहीं देते हैं जब तक हमारे सामने इनसे संबंधित कोई समस्या नहीं आती। अगली बार जब आप सड़क पर जायें तो लोगों के पैरों की ओर देखियेगा और अनुमान लगाइएगा कि हममे से कितने प्रतिशत लोग अपने पैरों व जूतों का ध्यान रखते हैं। यद्यपि अधिकांश मामलो में ठीक जूता न ले पाना हमारे सीमित वित्तीय साधनों के परिणामस्वरुप होता है परन्तु हमेशा ही ऐसा नहीं होता है। हम ज्यादातर फैशन व स्टाइल के अनुसार अपने जूते का चयन करते हैं न कि उसके आरामदायक व उपयोगी होने के कारण, चाहे उससे हमारे पैरों को ठीक न हो सकने वाला नुकसान ही क्यों न हो। कई मामलों में इससे शरीर पर पड़ने वाला प्रभाव, गम्भीर होता है। कई बार तो हमें पता ही नहीं लगता कि हमारी कुछ बीमारियाँ जैसे पीठ में दर्द, जंघा पेशी में दर्द, पैरों में दर्द, गलत मुद्रा आदि का कारण हमारे गलत तरीके के जूते पहनने में ही निहित रहता है। कौन सा जूता हमारे पैरो के लिए ठीक है इसके प्रति हमारे अज्ञान के साथ- साथ हमारे देश में अंधाधुंध फैल रहे जूते के लघु उद्योग ने, जिसे दुर्भाग्य से मानव शरीर व उसकी संरचना तथा उपयुक्त जूते की प्रमुख विशेषताओं आदि के संबंध में कोई जानकारी नहीं है, विशेष रूप से बच्चों के जूतों के विषय में, समस्या को और भी गम्भीर बना दिया है। एक जूता पैर में ठीक तरह से आना चाहिए। यह टखने और उंगलियों के बीच के भाग में पर्याप्त चौड़ा होना चाहिए, इसका नीचे का तला सीधा होना चाहिए तथा एड़ी उपयुक्त प्रकार से छोटी होनी चाहिए। एक जूता ठीक प्रकार से फिट होने के लिए लम्बाई में 1/2 से 3/4 इंच तक ढीला भी होना चाहिए। कोई भी जूता, जिसकी ऐडी दो इंच या उससे अधिक लम्बी है, पहनने से शरीर का सारा भार पैर के आगे के भाग की छोटी हड्डियों पर डलेगा तथा पंजे को जूते के आगे के कोने में धकेलेगा जहाँ पर वह बिल्कुल दब जाएगा। इससे पैर के गुलाई (arch) में दर्द हो सकता है, तलुवे में नया अस्थि निक्षेप (कैलस) हो जाता है, तथा कई प्रकार की अस्थि संबंधी विकृतियाँ भी हो सकती हैं। यदि आप ऊँची ऐड़ी के जूते पहनना ही चाहते हैं तो उन्हें केवल थोडे समय के लिए पहनिए - जब भी उतार सकें उन्हें उतार कर पाँव को आराम दें। लगातार ऊँची ऐड़ी के जूते पहनते रहने से भी शरीर का संतुलन बिगड़ता है।

वास्तविक तथा आरामदायक नाप का जूता खरीदने के लिये दिन की समाप्ति के समय जूता खरीदना चाहिए क्योंकि तब तक पैर चलने तथा खड़े रहने के कारण पूरा चौड़ा हो जाता है।

गरम आबोहवा वाले स्थानों पर सैंडिल अधिक लोकप्रिय हैं क्योंकि वह आंशिक रुप में खुले होते हैं तथा पाँवों को जूतों की अपेक्षा ठण्डा रखते हैं। सैंडिल जिनमें पाँव की सहायता प्रदान करने के लिए पीछे

स्ट्रैप लगा होता है वह चलने के लिए (पाँव में) अच्छे रहते हैं। हमारे देश में पैर के पहनावे में चप्पल सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। चप्पल व सैंडिल दोनों ही इस प्रकार के होने चाहिए कि चलने में पैर उठाते समय वह आपके पैर के साथ रहें वह ऐसे नहीं होने चाहिये जिन्हें चलने में आपको अपने पैर व पंजों की सहायता से उठा कर आगे अथवा पीछे ले जाना पड़े। परन्तु दुर्भाग्य से अधिकतर ऐसा ही होता है अन्यथा आप को चलते समय टुक टुक या चप्पल, सैंडिल ज़मीन पर रगडने की आवाज़ नहीं आयेगी। अत: यह सुनिश्चित करना बहुत आवश्यक है कि जूते की बनावट, फिटिंग तथा वज़न आप के पैर का सहायक हो न कि पैर को अपने साथ घसीटने वाला। जूते इतने हल्के होने चाहिये कि चलते समय पैर उठाने पर आपको उनका वज़न न महसूस हो।

यदि आपको दूर तक चल कर जाना है तो ऐसा जूता, जो कि सिर्फ 1/4 या 1/2 इंच ऊँचा हो, जिसके आगे का हिस्सा चौड़ा हो तथा जिसमें पैर के साथ जूते को बाँधने का आसान व आरामदायी तरीका हो, सबसे अच्छा रहेगा।

बच्चों के जूतों के संबंध में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। उनके जूते आगे सामने से चौड़े होने चाहिए केवल 1/4 इंच की एड़ी के साथ उनमें फीते बाँधकर या बकल बन्द कर के पैर में पहनने की व्यवस्था होनी चाहिए। यह वज़न में बहुत हल्के होने चाहिए। छोटे बढते हुए बच्चों के लिए आगे से पतले व ऊँची एड़ी के जूते बिल्कुल भी प्रयोग में नहीं लाने चाहिए। उनको बिना बाँधे पहनने वाले चप्पल या सैंडिल भी नहीं पहनाए जाने चाहिए। बकलों से बन्द होने वाले खुले सैंडिल गर्मियों में बच्चों के लिए अच्छे रहते हैं।

ठीक से पैर में न आने वाले जूतों को पहनने के कारण आने वाली कुछ समस्यायें निम्न प्रकार हैं :

कैलस (Calluses) तथा कॉर्न : ये पैर में तलुओं पर किसी क्षेत्र विशेष पर ठीक से फिट न होने वाले जूतों के फलस्वरूप लगातार दबाव व रगड़ के कारण बनते हैं। इनकी वजह से बहुत दर्द होता है तथा इनके उपचार के लिए डॉक्टर से परामर्श करना सबसे ठीक रहता है।

पादशोथ (पैर की सूजन) (Bunions) : यह बड़ी ऐड़ी के आधार पर ऐड़ी व पंजे के बीच की जगह की तरफ होने वाला विकार है। इसमें जोड़ सूज जाता है तथा उसमें बहुत दर्द होता है। सामान्यत: यह पैर में ठीक से फिट न होने वाले जूतों के कारण होता है। ये सपाट पैर वालों को बहुत होते हैं। इनमें गरम पानी से सिकाई करके दर्द कम किया जा सकता है। डाक्टर द्वारा सुझाए गए पाँव के व्यायाम तथा सही जूते से समस्या का समाधान किया जा सकता है। इसमें कभी कभी शल्य क्रिया की भी आवश्यकता पड़ जाती है। पादशोथ चलने में तथा खड़े होने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं।

छाले (Blisters) : सामान्य रूप से जूते या मोज़े के ठीक से फिट न होने के कारण पाँव में छाले पड़ जाते हैं। इनको ठीक करने का सबसे अच्छा तरीका है इन पर बैंड एड लगाकर इन्हें और रगड़ से बचाना। छाले सामान्य रूप से ऐड़ी के ऊपर पैर के पीछे के हिस्से में ठीक प्रकार से न बनाये गये "नागरा जूते - पंजाबी स्टाइल के सलवार सूट के साथ पहने जाने वाले सपाट जूतों के पहनने से होते हैं।

हैमर टो (Hammer toe) : यह पंजेनुमा विकार (clawlike deformity) है जो कि सामान्यता आगे से बहुत कम चौड़ें जूतें पहनने कें कारण आती है। यह शल्य क्रिया द्वारा ठीक किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 5

1) निम्नलिखित को मिलाइए।

क)	वस्त्र	1)	गर्मी
ख)	सूती वस्त्र	2)	आराम
ग)	सिल्क	3)	सपाट पाँव
घ)	ऊँची ऐड़ी	4)	सर्दी
ड.)	पादशोथ	5)	शरीर संतुलन

6.8 सुरक्षित एवं दायित्वपूर्ण यौन संबंध

एक जाति के नर व मादा के बीच यौन संबंध द्वारा जाति के प्रजनन के लिए अपनाया गया एक प्राकृतिक तरीका है। स्वाभाविक यौन संबंध जाति में ही होता है। जैसे जीवन बनाये रखने के लिए भोजन व जल ग्रहण करना आवश्यक है उसी प्रकार यह भी जाति की निरन्तरता बनाये रखने के लिए एक आवश्यक कार्य है। इस संबंध में निश्चित रूप से आश्वस्त होने के लिए कि जीवित प्राणी अपनी जाति का प्रजनन करे, जनन प्रक्रिया में आने वाली विभिन्न कठिनाइयों और संकटों के बावजूद भी, प्रकृति ने इस क्रिया को भी खाने व पीने की तरह ही एक चरम आनन्द एवं सन्तोष के भाव के साथ जोड़ दिया है। अन्यथा कोई भी खाने, पीने या प्रजनन की कठिनाइयों व कष्ट को सहने की मुसीबत नहीं उठायेगा।

प्रकृति ने यह सुनिश्चित करके कि प्राणीवर्ग के सदस्य यौन क्रिया से आनन्द प्राप्त करें, मनुष्य को सोचने की शक्ति भी दी तथा ऐसा करके उसने मनुष्य को यह उत्तरदायित्व दिया है कि वह इस क्रिया में बुद्धिमानी तथा सावधानी से काम करके मानव के विकास के अनुरूप चले।

पशुवर्ग की अन्य अधिकतर जातियाँ अपनी प्राकृतिक यौन प्रवृत्ति से यौन क्रिया में प्रवृत्त होते हैं वह उसके प्रभावों, दूसरे सहयोगी के स्वास्थ्य, सन्तति धारण करने की योग्यता, उपयुक्त सहयोगी के चुनाव तथा सहयोगी तथा सन्तति की देखभाल का उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता आदि का कोई ध्यान नहीं रखते। विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान होने के परिणामस्वरूप मनुष्य का प्रकृति व समाज के प्रति यह दायित्व बनता है कि वह यौन क्रिया में प्रवृत्त होने के पूर्व भलीभाँति सोच समझ ले। यह सुनिश्चित करले कि यदि वह इस क्रिया में लिप्त होगा तो वह इससे संबंधित सभी उत्तरदायित्वों को पूरा करेगा। समाज ने विवाह के नियम निर्धारित किये हैं।

इकाई के इस उपभाग में प्रजनन के शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर, जो कि यौन क्रिया में प्रकृति का निहित उद्देश्य है, विस्तार से विचार करना नहीं है। हम यहाँ केवल यौन क्रिया एवं प्रजनन, जो कि स्वास्थ्य चर्चा के क्षेत्र में आते हैं, से संबंधित कुछ समस्याओं पर विचार करेंगे।

क) **यौन क्रिया में प्रवृत्त होने के लिए शारीरिक रूप से तैयारी** : चूँकि यौन क्रिया का परिणाम गर्भ धारण, शिशु जन्म तथा उससे संबंधित उत्तरदायित्व होता है अत: यह आवश्यक है कि स्त्री का शरीर शारीरिक रूप से गर्भ धारण व शिशु जन्म का बोझ उठाने के लिये तैयार हो तथा स्त्री भावनात्मक तथा मानसिक रूप से इस उत्तरदायित्व को गम्भीरता से वहन करने के लिये परिपक्व हो। यह आवश्यक है कि पुरुष भी मानसिक व भावनात्मक रूप से अपने हिस्से का उत्तरदायित्व सम्भालने की परिपक्वता रखता हो। पुरुष व स्त्री के शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक विकास को ध्यान में रखते हुए विवाह की न्यूनतम आयु लड़कियों के लिए 18 वर्ष व लड़कों के लिये 21 वर्ष रखी गई है। यह माना गया है कि इस आयु पर दोनों सहभागियों में इतनी परिपक्वता आ जाती है कि वह इस संबंध में सोच समझ कर तथा सावधानी से प्रवृत्त हो सकते हैं। यह हमारा दायित्व है कि समझदार नागरिक होने के नाते हम इस नियम का पालन करे और इसका उल्लंघन करने से बचे।

ख) **विवाह के लिए अपने साथी का चयन** : विवाह के इस महत्वपूर्ण पहलू पर विस्तार से विचार करना भी इस उपभाग के क्षेत्र में नहीं आता। आपको इस संबंध में भी ज्ञान अन्य स्रोतों से ही प्राप्त करना होगा। यहाँ हम केवल इतना ही बताना चाहेंगे कि बहुत नज़दीकी रिश्तेदारों में विवाह (यानि कि एक ही गोत्र में) से सन्तान में अपसामान्यता (abnormality) आने की संभावनायें बहुत अधिक हो जाती हैं।

शरीर की कई बीमारियाँ तथा विसंगतियाँ, जीन (gene) जिससे कि मानव का निर्माण होता है, द्वारा आगे ले जाई जाती हैं। आधे जीन पिता से तथा बाकी के आधे जीन माता से प्राप्त होते हैं। इनमें से कई जीन रोगों के अनुभवी विशेषको (recessive trait) को ही अपने साथ लिए होते है जो कि दूसरे सहभागी के जीन्स में उन लक्षणों के अभाव से मलिन पड़ जाते हैं और या तो अप्रभावी रहते है या कुछ पीढ़ियों के उपरान्त समाप्त हो जाते हैं। परन्तु यदि वे दूसरे सहभागी के उसी प्रकार के जीन्स से मिल जाते हैं तो रोग के लक्षण प्रबल हो जाते हैं तथा अपने आप को सन्तान में प्रदर्शित करते हैं।

अत: आपके सन्तान एवं परवर्ती उत्तराधिकारियों के स्वास्थ्य के लिये यह बहुत आवश्यक है कि निकट रक्त संबंधियों में विवाह से बचा जाये ।

ग) **जनन नियंत्रण** : यद्यपि यौन क्रिया में प्रकृति का उद्देश्य स्वयं का पुनरुत्पादन ही है परन्तु यदि प्रत्येक यौनक्रिया से सन्तति उत्पन्न होने लगे तो प्रकृति में ही अव्यवस्था फैल जायेगी । इसलिये कुछ सीमा तक प्रकृति में ही इसे रोकने के लिये नियंत्रण व संतुलन बनाया है जैसे गर्भधारण करने के बाद स्त्री के शरीर में आने वाले हार्मोन सम्बन्धी परिवर्तन जोकि शिशु के जन्म तक ही नहीं उसके कुछ महीने बाद तक भी और गर्भ धारण को रोक देते हैं । उसके आगे यह आपके हाथ में है कि आप अपनी सन्तति में पर्याप्त अन्तर रखें जिससे कि माता एक गर्भ धारण तथा शिशु जन्म के बाद पूर्ण स्वस्थ्य हो जाए तथा घर व परिवार के संरक्षण में बच्चे के समझदार होने तक उसका ध्यान रख सके । यह निश्चय करना कि हम कितने बच्चों का भार वहन कर सकते हैं हमारे ऊपर ही छोड़ दिया गया है। परन्तु यह स्पष्ट ही है कि देश में हमने इस ओर लगभग बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया है और परिणामस्वरूप आज हमारे यहाँ आपार जनसंख्या है और इसके परिणाम व प्रभाव हमारे चारों ओर देखने व अनुभव करने के लिए विद्यमान हैं । शहरों व गाँवों में हर जगह भीडभाड़ है, सभी की ज़रुरतों को पूरा करने के लिये पर्याप्त भोजन, पानी व शरण स्थल नहीं है, पर्याप्त चिकित्सा सुविधा व शिक्षा नहीं है, जीविकोपार्जन के साधन नहीं हैं ।

विज्ञान की तरक्की के परिणामस्वरूप आज हमारे पास यौनक्रिया में सुरक्षित रूप से प्रवृत्त होने तथा जनन को नियंत्रित रखने के कई उपाय हैं। इसके लिये मुख से लिये जा सकने वाले गर्भनिरोधक अंतगर्भाशयी विधियाँ, यौनि के लिये स्पंज जो कि शुक्राणुओं के अवरोधक का काम करते है तथा इनमें शुक्राणु नाशक भी मिला होता है, डायफ्राम (diaphragms) तथा ग्रैव टोपियाँ (cervical caps), कन्डोम आदि है तथा आजकल नसबंदी (sterlization) की सुविधा भी उपलब्ध है । इसके साथ ही लय पद्धति (rhythm method), रति क्रिया विघ्न पद्धति (coitus interruptus technique) तथा ड्शिंग (duching) आदि भी है । आपको केवल अपने डाक्टर से यह पता करना होगा कि कौन सी पद्धति आपके लिए उपयुक्त रहेगी तथा कहाँ उपलब्ध होगी ।

घ) **रति क्रिया द्वारा संचरित बीमारियाँ (Sexually transmitted diseases)** : रोम देश की प्रेम की देवी "वीनस" का नाम यौन संबंधी रोगों में पूर्ववत् रखा गया है क्योंकि यह रोग यौन संबंधों से ही संचरित होते हैं । यद्यपि आजकल इनके लिये व्यापक शब्दों-यौन संबंधी रोगों-का प्रयोग किया जाता है जिसमें यौन संबंधी रोगों तथा अन्य रोगों को जो कि यौन संबंधी गतिविधियों द्वारा रसंचरित होते हैं को सम्मिलित किया जाता है । इन्ही में से एक है एक्वायरड इम्यूनो डैफिशियेंसी सेन्ड्रोम्र या "एड्स" जिसका अभी हाल ही में पता चला है ।

केवल श्रोणींय शोथ रोग (pelvic inflammatory disease) को छोड़ कर जोकि महिलाओं को होने वाला एक गम्भीर समस्या है, यौन संबंधी रोग स्त्रियों व पुरुषों दोनों को प्रभावित करते हैं। क्लेमाइडिया (Chlamydia), एक जीवाण्विक संक्रमण, सबसे ज्यादा पाया जाने वाला रोग है । यह इसलिए फैलता है क्योंकि इसके कोई स्पष्ट लक्षण नहीं होते तथा रोगी को कई वर्षों तक पता ही नहीं लगता कि उसे यह रोग है । इससे पुरुषों व स्त्रियों में अनुर्वरता आ सकती है । अत: यह आवश्यक है कि महिलाएं इसके लिये वर्ष में एक बार जाँच अवश्य करायें । इसमें संक्रमित माताओं के शिशु भी जन्म के समय इससे संक्रमित हो सकते हैं । यह माता के लिये घातक भी हो सकता है ।

दूसरी सबसे अधिक पाई जाने वाली रति क्रिया से संचरित बीमारी, जिसने सदियों से मानव जाति को ग्रसित कर रखा है, गॅनोरिया (Gonorrhoea) है जो कि जीवाणु से होती है। सौभाग्य से आजकल इसका उपचार उपलब्ध है । ट्रिकोमोनियासिस (Trichomoniasis) एक प्रकार का ल्यूकोरिया (Leukorrhea), एक अन्य संक्रमण है जो कि महिलाओं में जलन तथा खुजली उत्पन्न करता है । यह एक परजीवी से होता है जिसे आप सिरिंज, तौलियों, टॉयलेट की सीट, समुद्र तटों, तरण तालों से ग्रहण कर सकते हैं । इसका अर्थ है कि यह रति क्रिया के बिना भी फैल सकता है।

रतिजन्य मस्से (Venereal warts) : यद्यपि यह पीड़ा रहित होते हैं परन्तु यह गम्भीर हो सकते हैं इनको चिकित्सकीय उपचार की आवश्यकता होती है । यदि इनका उपचार नहीं किया जाता है तो इनसे पुरुषों में लिंगीय कैंसर तथा महिलाओं में ग्रीवा के कैंसर का खतरा बढ़ जाता है । सिफलिस मानव जाति की प्रमुख स्वास्थ्य आपदा रही है । आजकल यह नियंत्रण में है परन्तु फिर भी यह घातक हो सकती है । सिफलिस स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को तीन गुना अधिक होती है । इसके लगभग आधे पुरुष रोगी समलिंगी (homesexual) होते हैं। यह जीवाणु के कारण होती है ।

बोध प्रश्न 6

निम्नलिखित को मिलाइए :

1)	मनुष्य	क)	रतिक्रिया संचरण
2)	पशु	ख)	साहजिक मूलक यौनभाव
3)	सगोत्र विवाह	ग)	हार्मोनल परिवर्तन
4)	जनन नियंत्रण	घ)	संतति में अपसामान्यता
5)	एड्स	ड.)	दायित्वपूर्ण यौन संबंध

6.9 सारांश

इस इकाई में आपने निम्नलिखित के विषय में सीखा :

क) व्यक्तिगत अर्थात शरीर की स्वच्छता का अच्छे स्वास्थ्य के लिए महत्व ।

ख) एक स्वस्थ्य शरीर एवं दिमाग के लिए आराम, नींद तथा व्यायाम की क्या भूमिका है ।

ग) हमारे दैनिक जीवन में आदत डालने की भूमिका ।

घ) पदार्थ जोकि सामान्य रूप में ठीक प्रकार से प्रयोग किए जाने पर हमारे लिए लाभदायक होते हैं परन्तु दुरुपयोग किए जाने पर क्या खतरा पैदा करते हैं ।

ङ) अधिकतम आराम तथा व्यावहारिकता के संदर्भ में उपयुक्त वस्त्रों एवं जूतों की महत्ता ।

च) मनुष्य का अपने सहभागियों के प्रति यौन भाव संबंधी उत्तरदायित्व ।

6.10 शब्दावली

ब्रैक्टीरिया नाशक : बैक्टीरिया को मारने वाला पदार्थ ।

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) - सही, ख) - सही, ग) - गलत,
घ) - सही, ड.) - सही, च) - गलत,
छ) - गलत

2) निम्नलिखित में से कोई भी चार :
जीवाण्विक जनित संक्रमण
फंगल संक्रमण
एलर्जी
कस, खींच कर किया गया जूडा या चोटी,
गंभीर रोग गर्भावस्था व प्रसव रजोनिवृत्ति

3) क) - 2, ख) - 1, ग) - 4, घ) - 3, ड) - 5, च) - 6

बोध प्रश्न 2

1) क) - 4, ख) - 1, ग) - 3, घ) - 2, ङ) - 5

2) क) - सही, ख) - सही, ग) - सही, घ) - गलत

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित में से कोई चार :

फेंफडों का कैन्सर

रक्त में कार्बन मोनोऑक्साइड

पाचन क्रिया संबंधी असमर्थता

खाँसी एवं घरघराहट के साथ साँस लेना

श्वसनी - शोथ

हृदय रोग

बरजरस रोग

2) क)- 2; ख)- 3; ग)- 5, घ)- 4, ङ)- 1,

बोध प्रश्न 4

1) क)- सही, ख)- सही, ग)- सही, घ)- सही

2) क) शारीरिक लत - किसी लत में ड्रग न मिलने पर अप्रिय शारीरिक लक्षण

ख) मनोवैज्ञानिक लत - लत पड़े हुये व्यक्ति द्वारा यह विश्वास कर लेना कि वह ड्रग के बिना रह ही नहीं सकता।

ग) क्रियात्मक लत - शारीरिक समस्या के निवारण के लिये व्यसनी की ड्रग पर पूर्ण निर्भरता

3) क)- 3, ख) - 1, ग) - 4, घ) - 2,

बोध प्रश्न 5

क)- 2, ख) - 1, ग) - 4, घ) - 5, ङ)- 3

बोध प्रश्न 6

1 - ङ, 2 - ख, 3 - घ, 4 - ग, 5 - क

इकाई 7 गृह एवं सार्वजनिक सुरक्षा

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 घर में सुरक्षा

7.2.1 घर में दुर्घटना की संभावना वाले क्षेत्र

7.2.2 दुर्घटना की संभावना वाले कार्य

7.2.3 घर में प्रयोग होने वाली वस्तुएँ जिनसे दुर्घटना की आशंका हो

7.3 सार्वजनिक सुरक्षा

7.3.1 सड़क दुर्घटनाएँ

7.3.2 रेल तथा विमान दुर्घटनाएँ

7.4 सुरक्षात्मक उपाय

7.4.1 व्यक्तिगत उपाय

7.4.2 दुर्घटनाओं को कम करने वाले उपाय

7.4.3 कानून द्वारा लागू किए गए उपाय

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.1 प्रस्तावना

अपने शरीर की साफ - सफाई, स्वास्थ्य की ओर ध्यान देकर, उपयुक्त तरीके से ढके रहना, और बीमारी एवं संक्रमण से अच्छी तरह से बचाव आदि द्वारा अपने शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखना, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा उसके इष्टतक कार्य - निष्पादन के संबंध में है और आप सोच सकते हैं कि सभी कुछ ठीक है और सामान्य ऐसा ही होता है। लेकिन एक पक्ष यह भी है कि हमारे कार्यों अथवा हमारे आस-पास घटित होने वाले कार्यों की वजह से भी हमारे शरीर को हानि पहुँच सकती है । दूसरे शब्दों में, हमें अपनी सुरक्षा और आस-पास की सुरक्षा का भी ध्यान रखने की आवश्यकता होती है । कुछ घटनाएँ अचानक एवं अप्रत्याशित रूप से घटित हो जाती हैं जिसके कारण हमारे सुरक्षित जीवन को खतरा पैदा हो जाता है । अचानक एवं अप्रत्याशित रूप से घटित होने वाली इन घटनाओं को दुर्घटना कहा जाता है । वैसे, आवांछित कार्रवाइयों जैसे आपराधिक कार्यों से भी हमारी सुरक्षा को खतरा पैदा हो जाता है । किन्तु उसे हम यहाँ दुर्घटना की परिधि में नहीं लेंगे क्योंकि यह मूलत: सामाजिक समस्या है, कानून एवं व्यवस्था की समस्या है । इस कारण हम इस इकाई में दुर्घटनाओ अथवा अप्रत्याशित - अप्रिय घटनाओ की ओर ही ध्यान देंगे ।

दुर्घटना को अप्रत्याशित, अनापेक्षित, अचानक घटना के रूप में परिभाषित किया जाता है । किन्तु ध्यान देने की बात यह भी है कि दुर्घटना के घटित होने के पीछे कोई "कारण" होता है और उसके घटित होने पर प्रभाव भी पड़ता है । दुर्घटना, घटनाओं के अनुक्रम का भाग भी होती है । यदि कोई सावधान एवं चौकन्ना रहे और अपने आस - पास घटित होने वाली घटनाओं के प्रति जागरुक तथा सावधान रहे तो दुर्घटनाओं के घटित होने की संभावना कम हो सकती है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि तूफान और भूकम्प जैसी प्राकृतिक आपदाओं को छोड़कर अन्य सभी दुर्घटनाएँ परिहार्य (अर्थात् जिनसे बचकर रहा जा सकता है) हैं। यदि हम गौर करें तो स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अप्रिय घटना के घटित होने की चेतावनी देने वाले संकेत होते हैं । यह "कारण-और-प्रभाव" उस प्रतिरूप पर आधारित है जो घटना के पूर्वानुमान एवं उसके घटित होने पर सुरक्षात्मक उपायों की संभावना की जानकारी देते हैं । इसका साधारण सा उदाहरण है - उबलता हुआ दूध । दूध धीरे - धीरे उबलना शुरू होता है और यदि आप दूध के उबाल की ओर ध्यान दे

रहे हैं तो उबाल आने पर आप समय पर आँच बंद कर देंगे अथवा दूध उबालने वाले कूकर में सी - सी की आवाज़ सुनने पर उसे आँच से नीचे उतार लेंगे । यदि आप इन संकेतों की ओर ध्यान नहीं देंगे तो दूध उबलकर गिर जाएगा । इसी प्रकार, बिजली की कटी हुई तार इस बात का संकेत देती है कि उसे बदल दिया जाए या फिर कटे हुए हिस्से पर विद्युत - रोधी टेप लगा दिया जाए । एक अन्य उदाहरण है — एक वर्ष की आयु के बच्चों द्वारा सीढ़ियाँ चढ़ना, दुर्घटना का कारण बन जाता है। इसके अलावा, अपार्टमेन्टों के ऊँचे भवनों की खिड़कियों के नज़दीक रखे स्टूल अथवा मेज़ पर चढ़कर बच्चों के गिरने की घटनाएँ भी काफी होती रहती हैं ।

दुर्घटनाएँ घर पर भी हो सकती हैं और सार्वजनिक स्थलों पर भी। वैसे, यह सही है कि अधिकांश दुर्घटनाएँ घर पर ही होती हैं । इस इकाई में हम दुर्घटनाओं को दो श्रेणियों में विभाजित करके चर्चा करेंगे। ये हैं — (1) घर में सुरक्षा, और (2) सार्वजनिक सुरक्षा ।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- घर पर और आसपास होने वाली दुर्घटनाओं की विभिन्न संभावनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, और
- इस प्रकार की घटनाओं के घटित होने से बचने के लिए उठाए जाने वाले सुरक्षात्मक उपायों की चर्चा कर सकेंगे ।

7.2 घर में सुरक्षा

एक औसत परिवार में तीन विभिन्न आयु - वर्गों के लोग होते हैं । ये हैं वृद्ध, जवान और बच्चे । इनमें से प्रत्येक वर्ग में दुर्घटना की आशंका अलग - अलग होती है । नौजवानों की तुलना में अधिक छोटे बच्चें एवं वृद्ध दुर्घटना के शिकार हो सकते हैं । इस प्रकार की दुर्घटनाओं में जख्मी होने पर, स्वास्थ्य सुधार में लगने वाले समय संबंधी क्षमता में भी आयु-वर्ग के आधार पर अंतर पाया जाता है । 60 वर्ष से अधिक आयु के वृद्धों को ज्यादा गिरने और फिसलने की वजह से चोट लगती है । जबकि किशोरों और नौजवानों को वाहन — दुर्घटना के कारण चोट लगती है । इसी प्रकार, नवजात शिशुओं को घुटन और खाने की वस्तुओं की वजह से तथा छोटे बच्चे, गिरने तथा आग लगने की वजह से दुर्घटनाग्रस्त होते हैं ।

कोई भी घर ऐसा नहीं है जो पूरी तरह से दुर्घटना-मुक्त हो। प्रत्येक घर को समुचित सीमाओं के भीतर सुरक्षित बनाया जा सकता है । घर में दुर्घटना होने से रोकने की व्यवस्था और यह सुनिश्चित करना कि इस प्रकार की घटना होने की स्थितियाँ नहीं होंगी पर घर में दुर्घटना की संभावना, घर के प्रकार और उसकी स्थिति पर निर्भर करती है । छप्पर वाले घरों में आग को पकड़ने की संभावना अधिक रहती है । इसी प्रकार, नदियों के नजदीक एवं उससे नीचे बने घरों में मानसून के मौसम में बाढ़ आने की संभावना रहती है । यह भी सही है कि यदि आपका घर, अपेक्षाकृत अधिक सुविधाओं से सुसज्जित है तो उनमें दुर्घटना की संभावना अधिक होती है । सुरक्षा के बारे में इस इकाई में हम औसतन आधुनिक घर की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए ही चर्चा करेंगे ।

7.2.1 घर में दुर्घटना की संभावना वाले क्षेत्र

हमारे घरों में कुछ हिस्से ऐसे होते हैं जिनमें अन्य हिस्सों की तुलना में दुर्घटनाएँ होने की संभावना अधिक होती हैं । उदाहरण के लिए शयन - कक्ष की तुलना में सीढ़ियाँ अपेक्षाकृत अधिक दुर्घटना - प्रवण (accident prone) होती हैं । इसी तरह, भोजन कक्ष की अपेक्षा रसोई - घर अधिक दुर्घटना - प्रवण होती है । मकान बनाते समय घर के इन कुछ हिस्सों के लिए सावधानीपूर्व योजना बनानी पड़ती है या फिर मकान खरीद रहे हों अथवा किराए पर ले रहे हों तो इस ओर सावधानीपूर्वक ध्यान देना आवश्यक होता है। आइए, अब यह जाने कि ऐसे हिस्से कौन से हैं :

1) **मकान का डिजाइन और निर्माण** : मकान का डिजाइन और निर्माण, कानून द्वारा निर्धारित सुरक्षा - मानकों के अनुरूप होना चाहिए । यह, निर्माण के लिए भवन - निर्माण योजना को अनुमोदित करने से

पहले सुनिश्चित किया जाता है। सुरक्षा मानकों संबंधी कानून के अलावा, आग से सुरक्षा, लिफ्ट की सुरक्षा और बिजली के कनैक्शनों की सुरक्षा से संबंधित कानून भी हैं। खेद की बात यह है कि सभी राज्यों में ये कानून, एक - समान रूप से लागू नहीं है। उदाहरण के लिए, अखिल भारतीय लिफ्ट विनियमन अधिनियम है जिसके अनुसार सेवा - ठेका और लाइसेंस का नवीकरण करने के लिए हर वर्ष वार्षिक जाँच कराना आवश्यक है। लेकिन जिन भवनों में लिफ्टें लगी हुई हैं वहाँ इसका हर जगह अनुपालन नहीं किया जाता। प्रत्येक सार्वजनिक भवन में अग्नि -अलार्म, अग्नि से बच निकलने के लिए खुला मार्ग, पानी की सप्लाई, व्यवस्था से जुड़े और चालू हालत में अग्निरोधी उपकरण होने आवश्यक है। लेकिन, खेद की बात यह है कि मकानों के लिए इस प्रकार की शर्तें नहीं है।

मकान के फर्शों और सीढ़ियों के लिए इस्तेमाल की गई निर्माण सामग्री महत्वपूर्ण कारक सिद्ध होती है। फर्श तथा सीढ़ियां, फिसलन वाली नहीं होनी चाहिए। सीढ़ियाँ, पर्याप्त चौड़ाई वाली होनी चाहिए ताकि ज्यादा से ज्यादा लंबा पाँव भी उसपर आसानी से टिक सके। यह देखना भी महत्वपूर्ण है कि दु-मंजिला मकानों में सीढ़ियों पर लगी रेलिंग किस प्रकार से लगी है। रेलिंग इस प्रकार की होनी चाहिए कि छोटे बच्चे उसपर न फिसलें। यदि खुली छत तथा चबूतरा इस तरह का है कि वहाँ आसानी से पहुँचा जा सकता है तो उसके किनारे पर रेलिंग लगी होनी चाहिए या फिर दीवार खड़ी होनी चाहिए। फर्श के स्तरों में, विशेष तौर पर मेहमानों द्वारा अधिकांशत: इस्तेमाल किए जाने वाले क्षेत्रों में इसका अंतर भी महत्वपूर्ण है। 6 अथवा 8 का अंतर, पर्याप्त नहीं है और इसकी वजह से अपरिचित व्यक्ति फिसल सकता है और गिर भी सकता है। ये कुछ एक उदाहरण है, जिनकी ओर ध्यान देकर हम घर में होने वाली दुर्घटनाओं को कम कर सकते है।

2) **स्नानगृह (बाथरुम)** : स्नानगृह में सबसे ज्यादा दो प्रकार की दुर्घटनाएँ होती हैं। ये हैं --- (1) गंदे अथवा गीले अथवा चिकने फर्श पर से फिसल जाना, और (2) पानी गर्म करने के उपकरणों से अथवा गीले हाथों से बिजली के स्विचों को छूने की वजह से बिजली का झटका लगना। सामान्यत: घरो में, और विशेष तौर पर उन घरों में जहाँ छोटे बच्चे हैं और वे इधर-उधर घूमते हैं, निमज्जन तापक (immersion heater) का इस्तेमाल करना बहुत ही खतरनाक है। बच्चों वाले ऐसे घरों में निमज्जन तापक का कतई इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। स्टोव पर पानी गर्म करना भी खतरनाक है क्योंकि गर्म पानी वाला बर्तन तथा स्टोव, दोनों ही खतरनाक होते हैं। लकड़ी का कोयला इस्तेमाल करने से कार्बन मोनोऑक्साइड नामक जहरीली गैस के उत्पन्न होने का खतरा रहता है। स्नान-गृह के फर्श का सूखा रहना, और फर्श की साफ-सफाई रखना काफी महत्वपूर्ण है। यदि स्नान-गृह का फर्श गंदा और गीला है तो उसपर साबुन के गिरने से फिसलने का खतरा बना रहता है। फिसलने और गिरने की वजह से बाल्टियाँ, टूटियाँ, सिंक, डिब्बा और कभी-कभी स्नान-गृह को विभाजित करने वाली छोटी दीवार से शरीर पर और विशेषतौर पर सिर पर चोट लगने का भी खतरा रहता है। सामान्यत: स्नान-गृह के भीतर प्रवेश करने के बाद हम लोग दरवाजा बंद कर देते हैं। इस कारण, चोट वगैरह लगने की स्थिति में बाहर से किसी की सहायता जल्दी नहीं मिल पाती। इसलिए बेहतर यही होता है कि छोटे बच्चों को यह कहा जाए कि वे नहाने के लिए स्नान-गृह के दरवाजे को अंदर से चिटकनी लगाकर बंद न करें और जब तक बच्चा नहाकर बाहर न आ जाए, जब तक आप इस बात का ध्यान रखें कि कहीं स्नान-गृह से गिरने-फिसलने आदि की कोई आवाज तो नहीं आई। हम इस प्रकार के मामलों में सदैव ज्यादा सावधान नहीं रहते हैं। बीमार अथवा वृद्धों के लिए भी इस प्रकार की सावधानी बरतना जरूरी है। स्नान-गृह में बिजली के उपकरण विशेष रूप से खतरनाक होते हैं। गीले बालो को सूखाने वाला विद्युत उपकरण (अर्थात् हेयर ड्रायर) हाथ से फिसल सकता है और पानी में गिर सकता है। और आप, उसे उठाने का स्वाभाविक रूप से प्रयास करेंगे तो आपको प्राणघातक झटका लगेगा। इसी तरह रेडियो व निमज्जन प्लग तापक से भी झटका लग सकता है। यदि आप भीगे हुए हैं तो बिजली का करंट लगने की ज्यादा संभावना रहती है। और तो और, यदि आप गीली अंगुलियों से स्विच को छूते हैं तो भी करंट लग सकता है। इन दुर्घटनाओं से बचने के लिए यह जरूरी है कि स्नान-गृह में बिजली के केवल वे ही उपकरण रखें एवं इस्तेमाल किए जाएँ जो आवश्यक हैं और उन उपकरणों के तार सही एवं समुचित तथा सुरक्षा की दृष्टि से पर्याप्त ढके होने चाहिए।

पानी से भरे छोटे अथवा बड़े स्नान -टबों में बच्चों के डूबने एवं वृद्ध, हृदयरोगियों तथा जिन्हें मिरगी के दौरे पड़ते हैं, उनके लिए भी स्नान -टबों से दुर्घटनाएँ हो सकती हैं। स्नान - टब में फिसलने और गिरने से सिर पर चोट आ सकती है और डूबने से अचेतनता की स्थिति भी हो सकती है। स्नान - टब में चाहे कुछ इंच ही पानी क्यों न हो, लेकिन बच्चों को अकेले कुछ सेंकड के लिए भी नहीं छोड़ना चाहिए। चिकने अथवा फिसलन वाले टबों में दुर्घटनाएँ होने की ज्यादा आशंका होती है।

3) **रसोई-घर (Kitchen)** : रसोई–घर, घर में अन्य दुर्घटना-प्रवण क्षेत्र है । सामान्यत: छह वर्ष से कम आयु के बच्चों और उन वृद्धों को जो अपने पाँव पर स्थिर खड़े नहीं हो सकते या फिर उनके हाथ संतुलित एवं स्थायी नहीं रहते, रसोईघर में नही जाने दिया जाना चाहिए। रसोईघर में कई खतरे होते हैं। इन खतरों की चर्चा नीचे की जा रही है :

गैस स्टोव और सिलेंडर : आप, गैस कंपनियों द्वारा निर्धारित सभी विनियमों से आवश्य ही परिचित होंगे । इन विनियमों का टेलीविजन पर अक्सर विज्ञापन दिया जाता रहता है । बच्चों को स्टोव और सिलेंडर चालू करने की इजाजंत नहीं देनी चाहिए । असावधानी या फिर सही तरह से इन्हें चालू न करने की वजह से गैस लीक हो सकती है । गैस लीक होने की वजह से आग भी लग सकती है और विस्फोट भी हो सकता है । इस कारण, बेहतर यही होगा कि आप स्वयं गैस-स्टोव जलाएँ । रसोईघर में रखे मिट्टी के तेल के डिब्बे अथवा बोतल और स्टोव से भी दुर्घटना होने का खतरा रहता है । रसोईघर में मिट्टी का तेल की अतिरिक्त मात्रा मत रखिए क्योंकि इसके बह जाने, छलकने और आग पकड़ने का खतरा रहता है । स्टोव का यदि ठीक ढंग से इस्तेमाल नहीं किया जाता या फिर उसमें से तेल रिसता है तो उससे भी आग लग सकती है । पुराने प्रकार का स्टोव विशेष रूप से खतरनाक है क्योंकि उसमें पम्प मारना पड़ता है और ज्यादा पम्प मारने से स्टोव फट भी सकता है और भयंकर दुर्घटना हो सकती है । प्रेशर-कुकर की ठीक ढंग से साफ-सफाई न होने की वजह से भी भयंकर दुर्घटनाएँ हो सकती हैं । खुले बर्तन में तलने के लिए गरम किया गया तेल हमारी रसोइयों में एक सामान्य चीज हैं तथा कई बार यह ज़मीन पर भी रखा मिल जाता हैं । विशेष रूप से छोटी आयु के उत्सुक खाना बनाने वालें या रसोई में काम कर रही माँ के इर्द गिर्द मंडराते छोटे बच्चों के लिए यह गम्भीर दुर्घटनाओं का कारण बन सकता हैं । आग पर बहुत देर से रखा हुआ तेल भी आग पकड़ सकता हैं और उससे दुर्घटना हो सकती हैं । इस प्रकार की आग को बुझाने के लिए कभी भी पानी का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिये बल्कि उसे तत्काल ढक्कन से ढक देना चाहिए । इससे आग अपने आप बन्द हो जायेगी । बड़े से बर्तन में खौलता हुआ पानी खतरे का एक अन्य स्रोत हैं । आग पर रखें बर्तनों में लगे बड़े-बड़े हैंडिल भी समस्या उत्पन्न कर सकते हैं यदि वह इतने बाहर निकलें हों कि आने जाने वाले व्यक्तियों से टकरा कर बर्तन को नीचे गिरा सकें । सदैव इस प्रकार के हैंडिलों को दूसरी तरफ घुमा देना चाहिये जहाँ से उनके टकरा कर बर्तन के गिरने की संभावना न हो । बिजली के उपकरणों जैसे मिक्सी, ग्राइंडर आदि को यदि ध्यान से प्रयोग में न लाया जाये तो ये भी गम्भीर दुर्घटनाओं का कारण बन सकते हैं । ध्यान रखें कि मिक्सी व ग्राइंडर आपकी उंगली का भी वही हाल कर सकते हैं जो वह आपके द्वारा उनमें डाले गये नारियल या अन्य पदार्थों का करते हैं । कभी भी उपकरण में डाली गई वस्तु को उपकरण बन्द किये बिना न हिलायें । हमारे शहरों में कई बार बिजली जाती हैं, अत: हो सकता है कि बिजली जाने के कारण बन्द हो गया उपकरण गलती से खुला ही रह जाये और बिजली आने पर अपने आप चलना शुरू कर दे और किसी दुर्घटना का कारण बन जाए । अत: जब भी बिजली जाये तो उस समय प्रयोग में लाये जा रहे उपकरण को बिजली से अलग कर देना चाहिए ।

चाकू दुर्घटनाओं का एक और कारण हैं । इनको बच्चों की पहुँच से दूर रखा जाना चाहिए । यदि गलती से आपका पैर इन पर पड़ जाए तो कुछ काटते समय हाथ काटने के साथ साथ यह ज़मीन पर गिर जाने पर आपका पैर भी काट सकते हैं । अत: इस बात का बहुत ध्यान रखना चाहिये कि चाकू कहाँ और कैसे रखा गया है । बिजली के चाकू तो विशेष रूप से तंग करने वाले होते हैं यह सिर्फ उनके द्वारा ही प्रयोग में लाये जाने चाहिए जो कि इन्हें सम्भाल सकें । बच्चों को व ऐसे लोग जिनका हाथ स्थिर न हो या जिनकी निगाह कमज़ोर हो, उन्हें चाकू कभी नहीं छूना चाहिए।

सिन्थैटिक कपड़ों से बने वस्त्र, विशेष रूप से साड़ी व दुपट्टे खाना बनाते समय पहनना खतरनाक हो सकता है क्योंकि ये बहुत जल्दी आग पकड़ते हैं तथा शीघ्र जलते हैं और जलकर शरीर पर चिपक जाते हैं । साड़ी के पल्लू तथा दुपट्टों को खाना बनाते समय ठीक से बाँध लेना चाहिये। रसोई में काम करते समय लम्बे बालो को भी ठीक से कस कर बाँध लेना चाहिए । लोहे का बना हुआ किचन काउन्टर बिजली के उपकरणों के लिये खतरनाक हो सकता है जब तक कि उन पर अचालक आधार (non -conducting base) न लगा हो। खुली हुई दराजें व कपबोर्ड के दरवाज़ों से भी सिर में चोट लग सकती है । आप उनसे टकराकर गिर भी सकते हैं ।

4) **सीढियाँ** : सोपानों की सतह, सीढी की आकृति, उस पर लगी रेलिंग आदि पर यह बहुत निर्भर करता है कि आपकी सीढ़ियाँ कितनी सुरक्षित हैं । यह सुनिश्चित कर लें कि सभी सीढियों की ऊँचाई एक

बराबर हो, जहाँ तक हो सके यह साढ़े सात इंच होनी चाहिए। गोलाई में बनी सीढियाँ जो कि अन्दर की तरफ पतली होती हैं, पतली तरफ से पैर रखने पर व्यक्ति को गिरा सकती हैं। यदि सीढियों पर कारपेट डाल दिया जाय तो यह फिसल कर गिरने की दृष्टि से सुरक्षित हो जाती हैं परन्तु कारपेट सावधानीपूर्वक ठीक से फिट किया जाना चाहिए तथा वह कहीं से फटा या किनारे से कटा नहीं होना चाहिए अन्यथा उसमें पैर फँसने से व्यक्ति गिर सकता है। अन्तिम सोपान ठीक से दिखाई देने वाला होना चाहिए क्योंकि बहुत बार लोग अन्तिम सीढी से पहली सीढ़ी को ही अन्तिम सीढ़ी समझ कर गिर चुके हैं। बच्चे तथा बड़े लोगों की सीढियों पर गिरने या फिसलने की संभावना अधिक रहती है अतः यह सुनिश्चित करें कि सीढियाँ सदैव साफ सुथरी व सूखी रहें। उन पर कोई भी चीज़ विशेष रूप से खिलौने आदि पड़े हुये नहीं छोड़ने चाहिये क्योंकि यदि सीढियों पर कुछ पड़ा होगा तो चढ़ते उतरते समय उस पर पाँव पड़ने से व्यक्ति गिर कर गम्भीर रूप से घायल हो सकता है। सीढ़ियों पर चढ़ते - उतरते समय लम्बे - लम्बे तथा ढीले - ढाले वस्त्रों की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। सीढियों का प्रयोग करते समय बच्चों व बड़ों की हमेशा सहायता करनी चाहिए। सीढियों पर हमेशा पर्याप्त रोशनी होनी चाहिए। अधिकतर अपार्टमैंटों में ज्यादातर सीढियों पर लाइट ठीक नहीं होती है। यदि आपके घर में बच्चे हैं तो उनके बचाव के लिये सभी सीढियों पर दरवाज़े लगाइए।

5) **भंडारणस्थल** : कमरे या अन्य स्थान, जोकि सामान के भंडारण के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं, वे भी दुर्घटना के संभावित क्षेत्र होते हैं। परन्तु यदि यह भंडारण के दृष्टिकोण से बनाये जायें व सावधानी से उनका प्रयोग किया जाए तो यह सुरक्षित स्थान रह सकते हैं। ऐसी स्थितियों से, जहाँ सामान निकालने के लिये स्टूल या सीढी का प्रयोग करना पड़े, बचना चाहिए। घरों में ट्रंक, सूटकेस तथा अन्य विविध चीजें रखने के लिए लॉफ्ट (loft) बनाना बहुत व्यावहारिक व सुरक्षित समाधान नहीं है, विशेष रूप से उन घरों में जहाँ बच्चे बड़े होकर अपनी नौकरियों पर घर से बाहर रहते हों और घर में केवल बुजुर्ग माता पिता ही रहते हों। उनके लिये आवश्यक वस्तुओं को निकालने के लिये स्टूलों, सीढियों या ज़ीनों पर चढना खतरनाक है। यह करने का लोभ तब और भी बढ़ जाता है जब किसी चीज़ की आवश्यकता हो तथा आसपास मदद करने वाला कोई न हो। इन परिस्थितियों में गिरने से गम्भीर रूप से हड्डियाँ टूट सकती हैं। पैर उचका कर खड़े होकर अपेक्षित वस्तु प्राप्त करने के प्रयास में भी पेशीयों में चोट लग सकती है। यदि व्यक्ति घर में अकेला हो तो खतरा कई गुणा और बढ़ जाता है।

अपनी वस्तुओं को रखते समय भारी तथा बड़ी वस्तुओं को नीचे के स्तर पर रखना चाहिए। ऐसे ट्रंको व सूटकेसों को जिनकी बार-बार या जल्दी-जल्दी आवश्यकता पड़ती हो, एक दूसरे के ऊपर मत रखिए। इन चीजों को इधर-उधर उठा उठा कर रखने की बहुत इच्छा होती है परन्तु उन्हें उठाना नहीं चाहिए क्योंकि उससे पीठ या कमर में मोच आ सकती है। इस प्रकार की मोचें जैसे पेशी या नस खिंचना ठीक होने में बहुत समय ले लेती हैं तथा बहुत पीड़ादायी तथा परेशान करने वाली होती हैं। यह सबसे साधारण प्रकार को दुर्घटना है जिसके बड़े लोग बड़ी सरलता से शिकार होते हैं परन्तु थोड़ा-सा सोचकर और योजना बनाकर काम करने से इनसे पूरी तरह बचा जा सकता है।

तरल पदार्थों को रखने के लिए बने बड़े -बड़े डिब्बों को ऊँची जगहों पर नहीं रखना चाहिए। उनको ऊपर से उतारने की प्रक्रिया में उनमें रखा तरल पदार्थ आपके ऊपर छलक सकता है और दुर्घटना का कारण बन सकता है। यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि सामान रखने के स्थान साफ सुथरे हों, वहाँ पर बेकार इधर उधर का सामान न पड़ा हो। तेल व घी आदि चिकने पदार्थों में से रिस कर कुछ पदार्थ नीचे गिर सकता है और फर्श को फिसलन वाला बना सकता है जो कि खतरनाक होता है। सभी भंडारण स्थलों (storage places) पर उपयुक्त प्रकाश एवं हवा के आने जाने की व्यवस्था होनी चाहिये। लाइट का स्विच दरवाजे के बाहर लगाया जाना चाहिए जिससे कि स्टोर के अन्दर जाने से पहले लाइट जलाई जा सके।

6) **उद्वाहक या लिफ्ट (Elevators or lifts)** : आजकल लिफ्टें बहुत प्रचलन में आती जा रही हैं विशेष रूप से ऐसी बिल्डिगों में जहाँ फ्लैट बने हों। फिर भी यह बच्चों के लिए एक विस्मयजनक और प्रिय स्थान होती है जहाँ वह कुछ समय व्यतीत कर सकते हैं। ऐसा विशेष रूप से उन बच्चों के साथ होता है जो लिफ्ट से अधिक परिचित नहीं होते और किसी ऐसी जगह, जहाँ लिफ्ट लगी हो, किसी से मिलने जाते हैं। यद्यपि लिफ्टें बहुत सुरक्षित होती हैं परन्तु फिर भी यह बच्चों के खेलने के लिए नहीं होती हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अखिल भारतीय लिफ्ट विनियमन अधिनियम बना हुआ है जिसके अधीन लिफ्ट चलाने हेतु वार्षिक लाइसैंस के नवीकरण से पहले आवधिक जाँच प्रमाण पत्र आवश्यक होता है, परन्तु बहुत सी जगहों पर, जहाँ लिफ्टें काम कर रही हैं, इन शर्तों को न केवल पूरा ही नहीं किया जाता है बल्कि इनके विषय में जानकारी भी नहीं है। इसके परिणामस्वरूप लिफ्टें सामान्य खतरों की अपेक्षा कहीं अधिक खतरनाक बन जाती हैं। लिफ्ट के दरवाजे बच्चों के लिये ख़तरनाक हो सकते हैं क्योंकि जब वे बन्द हो रहे होते हैं उस समय यदि कोई बच्चा उनके बीच में आ जाये तो बीच में दबने के कारण उसे पीड़ा हो सकती है व उसके चोट भी लग सकती हैं। चल रही लिफ्ट में इस तरह की दुर्घटना घातक भी हो सकती है। अतः बच्चों को लिफ्ट का प्रयोग करने की विधि अवश्य सिखाई जानी चाहिए, साथ ही उनको लिफ्ट के ख़तरों के विषय में भी बताया जाना चाहिए। बिल्डिंग में बाहर से आने वाले बच्चों को लिफ्ट के बारे में जानकारी व उससे होने वाले खतरो से अवगत करवाना चाहिए और अपनी देखरेख में ही उनको लिफ्ट का प्रयोग करने देना चाहिए।

7.2.2 दुर्घटना की संभावना वाले कार्य

1) **अपना वाहन खड़ा करते समय** वाहन की चाबी इगनिशन में लगी रहने देना या गाड़ी को गीयर में डाल कर छोड़ने से दुर्घटना हो सकती है — विशेष रुप से तब जब बच्चे आसपास या गाड़ी में ही हों गाड़ी में चढ़ कर लगी हुई चाबी घुमाने का लोभ संवरण कर पाना बहुत कठिन होता है।

2) अपने घर के अन्दर **गाड़ी उल्टी चलाकर पीछे की तरफ ले जाते समय** बहुत ध्यान से यह देखते हुये गाड़ी पीछे ले जानी चाहिए और देखना चाहिए कि गाड़ी के पीछे क्या है, कौन है, विशेष रूप से छोटे बच्चों का ध्यान रखते हुए जो कि आपके साथ ही आकर गाड़ी के पीछे आ गए हों और आपको ड्राइवर की सीट से न दिखाई दे रहे हों।

3) **रसोई में तलने का काम करते समय दुर्घटना** की संभावना रहती है। जिस समय तलने का काम किया जा रहा हो उस समय बच्चों को रसोईघर के अन्दर नहीं आने देना चाहिए विशेष रूप से तब जबकि आप नीचे बैठकर तलने का काम कर रहे हों।

4) **पटाखे चलाना** भी एक खतरनाक काम है। पटाखे चलाते समय बच्चों की निगरानी रखने के साथ - साथ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि आप सिन्थैटिक कपड़ों की साड़ी, दुपट्टा या सूट न पहनें। पटाखों को घर के अन्दर इकट्ठे करके रखना भी खतरनाक है। उनको घर के अन्दर रखना ही नहीं चाहिए।

5) **बहुत सर्दी के मौसम में शयन-कक्ष (सोने के कमरे) को गरम रखना** विशेष रूप से अंगीठी में लकड़ी के कोयले का प्रयोग करके। यदि कमरे से ठंड हटाने के लिए सारे खिड़की दरवाज़े बन्द कर दिए गए हों तो इससे कई बार घातक मोनॉक्साइड विषाक्तता हो सकती है।

6) **घर पर अग्नि शस्त्रों को इधर उधर उठाने, रखने या साफ करने** से उनमें गोली भरी होने पर जानबूझ कर चलाए जाने के बिना ही उनके अपने आप चल जाने से दुर्घटना हो सकती हैं।

7) **ड्रिलिंग मशीन, बिजली का शेवर या सोल्डरिंग आयरन का घर पर प्रयोग** कुछ ऐसे कार्य हैं जिनमें दुर्घटना की संभावना रहती है, विशेष रूप से तब जब घर में बच्चे हों। इस बात का विशेष ध्यान रखें कि यदि इनका प्रयोग करते समय बीच में ही बिजली चली जाए तो उनके प्लग को याद से बिजली से निकाल दिया जाए।

8) प्रतिदिन किया जाने वाला **कपड़ों पर इस्तरी करने का कार्य** भी आग लगने व जलने का कारण बन सकता है यदि आप इस्तरी को कपड़े के ऊपर लिटा कर दरवाजे पर हुई दस्तक या टेलीफोन का जवाब देने चले जाएँ या आपके दुबारा इस्तरी शुरू करने से पहले ही कोई गरम इस्तरी से टकरा जाए या उसे गिरा दें।

9) **मकान की छतों से पतंग उड़ाने के कारण** ऊपर से नीचे गिरने से कई घातक दुर्घटनायें होती हैं विशेष रूप से यदि छत के चारों तरफ कोई रेलिंग या सुरक्षा दीवार न हो।

10) **प्रैशर कुकर का प्रयोग** - अधिकांश घरों में इसके बिना काम नहीं चलता अत: इसका प्रयोग करते समय पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। इसमें सेफ्टी वॉल्व के उड़ जाने से अथवा कभी-कभी पूरे बर्तन के ही आग के ऊपर से उड़ जाने से दुर्घटना हो सकती है।

11) माता अथवा पिता किसी के भी **अधिक मात्रा में अल्कोहलिक पेय लेने के कारण** घर में किसी भी प्रकार की दुर्घटना हो सकती है या दुर्घटना घटने में सहायता मिल सकती है । चूँकि अल्कोहॉल लेने से ध्यान केन्द्रित नहीं रहता और पेशीय संतुलन व तालमेल की असमर्थता आती है इसलिए इसके कारण भोजन बनाते समय, बिजली के उपकरणों के प्रयोग के समय या छोटे बच्चों को नहलाते समय, बच्चों का ध्यान रखते समय जब थोड़ी देर को ध्यान हट जाए तो दुर्घटना हो सकती है ।

12) **छोटे बच्चों को नहलाते समय** उनका पूरी तरह ध्यान रखने की आवश्यकता होती है । छोटे बच्चों को एक सैकिंड के लिए भी अकेला नहीं छोड़ना चाहिए और न हीं उन पर से ध्यान हटाना चाहिए, चाहे इसके लिए दरवाजे पर बज रही घंटी या फोन की घंटी की ही अवहेलना क्यों न करनी पड़े ।

13) **भोजन ग्रहण** करना यह दैनिक कार्य घरों में घटने वाली घातक दुर्घटनाओ का एक सामान्य कारण है तथापि समय से की गई कार्रवाई तथा अपेक्षित सहायता प्राप्त हो जाने पर मृत्यु से बचाया जा सकता है। भोजन नलिका (ओएसोफैगस) तथा श्वसन क्षेत्र (ट्रैकिया) के द्वार एक दूसरे के बराबर स्थित हैं — इनमें से एक (भोजन नली) उदर में जाता है तथा दूसरा (श्वास क्षेत्र का) फेफड़ों में जाता है । सामान्यत: प्रतिवर्ती क्रिया यह सुनिश्चित कर लेती है कि जब एक मार्ग उसके द्वारा ग्रहण की जाने वाली वस्तु को ग्रहण करने के लिए खुला होता है तो दूसरा अपने आप बन्द हो जाता है । परन्तु यदि उदर में जाने वाली सामग्री फेफड़ों को जाने वाले मार्ग में चली जाए तो दम घुटने के कारण मृत्यु हो जायेगी क्योंकि मार्ग बन्द होने के कारण वायु फेफड़ों में नहीं प्रवेश कर पायेगी । भोजन ग्रहण करते समय भोजन के श्वास नलिका में चले जाने से संबंधित दुर्घटनायें तभी होती हैं, जब आप भोजन को चबाते समय बातें करते हैं या हँसते हैं । समान्यत: भोजन के श्वास नलिका में जाने पर खाँसी का दौरा सा होता है तथा श्वास नलिका में गई हुई सामग्री खाँसने के साथ बाहर निकल आती हैं और व्यक्ति थोड़ी ही देर में सामान्य हो जाता है परन्तु यदि भोजन सामग्री श्वास नलिका में ज्यादा अन्दर तक चली जाती है तो व्यक्ति की एक दो मिनट में दम घुटने के कारण मृत्यु हो जाती है ।

शिशु या छोटे बालकों में किसी भी प्रकार की भोज्य सामग्री विशेष रूप से मूँगफली आदि श्वास नलिका में फँस सकती है । उनका दम मुलायम पदार्थ खाने से भी घुट सकता है यदि आप उनके मुख में बहुत अधिक भोजन भर दें या आप उनको जब वे लेटे हों तो लेटे हुए को ही कुछ खिलायें पिलाएं या आप उनको खिलाते समय ही हँसाने का भी प्रयत्न करें या जब वे रो रहे हों तो उनके मुख में खाने की कोई वस्तु डालें । अधिकतर तो आप कुछ फँस जाने पर बच्चे को उल्टा पकड़ कर उसकी पीठ पर धीरे-धीरे मार कर स्थिति नियंत्रण में ला सकते हैं । छोटी-छोटी चूसने वाली गोलियाँ या कोई छोटी गोल वस्तु जिसे बालक सरलता से मुँह में डाल सकता है, खतरनाक हो सकती है । यदि आप भाग्यवान हैं, तो मुँह में डाली गई छोटी-सी वस्तु तो श्वास नलिका में से होकर नीचे जा सकती है जहाँ से वह डाक्टर द्वारा निकाली जा सकती हैं । बड़ों में इस प्रकार की दुर्घटनायें सामान्यत: तभी होती हैं जब आप जल्दी-जल्दी खाना खा रहे होते हैं और विशेषकर मांस के बड़े-बड़े टुकड़े जल्दी जल्दी निगलने का प्रयत्न करते हैं । भोजन से पहले अल्कोहॉल का प्रयोग इस प्रवृत्ति को और बढ़ा देता है । भोजन करते समय आचानक ज़ोर से हँसने से भी साँस की नली में कुछ फँस सकता है । दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति बिल्कुल ही बोल नहीं पाता है और नीला पड़ जाता है । उसका अचानक उठना ही उसकी प्रतिक्रिया है और निढाल होकर गिरने से पहले वह वाशबेसिन तक जाने का प्रयास करता है। यदि इस प्रकार की कोई घटना घटित हो तो समझ लेना चाहिए कि व्यक्ति का दम घुट रहा है और तत्काल कार्रवाई करनी चाहिए । हो सकता है व्यक्ति अपना गला पकड़ कर आपको इशारा करे कि उसका दम घुट रहा है । आपके लिए तत्काल कार्रवाई करने हेतु इतना ही पर्याप्त होना चाहिए । ऐसे में आपको निम्न प्रकार से कार्रवाई करनी चाहिए :

जब व्यक्ति के गले में खाद्य पदार्थ या अन्य कोई वस्तु फँस जाती है और वह श्वास नहीं ले पाता है तो तत्काल निम्न कार्यवाही करें :

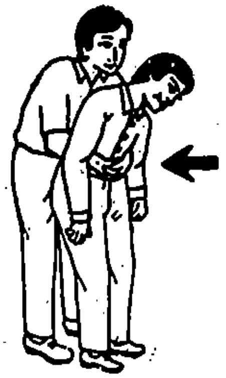

- उसके पीछे खड़े होकर अपनी बाँहे उसकी कमर में डाल कर उसे चारो तरफ से पकड़ लें ।
- अपनी मुट्ठी उसके पेट में नाभी के ऊपर तथा पसलियों के नीचे रखें ।
- उसके पेट को ऊपर को झटका देते हुये दबाएं, ऐसा करने से उसके फेफड़ों की हवा ब्राहर की ओर निकले, संभव है इससे उसका गला खुल जाए, ऐसा कई बार करें ।

इसका अभ्यास करें जिससे आवश्यकता पड़ने पर आप इसे याद रखें। यह बहुत ही सामान्य उपचार है और अधिकतर इससे लाभ होता है। जिस व्यक्ति के गले में कुछ फँस जाता है और साँस रुकने लगती है वह उपचार न किए जाने की स्थिति में अधिक से अधिक चार मिनट जीवित रह सकता है इसलिए इन मामलों में तुरन्त उपचार किया जाना चाहिए । यदि व्यक्ति मूर्छित हो जाता है तो उसका अर्थ होता है कि वह कुछ सैकिन्डों से अधिक जीवित नहीं रह सकता ।

यदि आप अकेले हों और आपके गले में कुछ अटक जाए तो अपने आप को जोर से मेज़ के किनारे पर, सिन्क पर शैल्फ पर या नीची दीवार पर जोकि आपकी पसलियों के नीचे पेट तक आए छोड़ दीजिए व अपना गला व सर नीचे की ओर कीजिए । इसे बार-बार कीजिए जब तक कि फँसी हुई चीज़ बाहर न आ जाए । पसलियाँ टूटने या उदर में कुछ फटने आदि की चिन्ता मत कीजिए । उनको बाद में ठीक किया जा सकता है परन्तु दम घुटना घातक होता है ।

14) **सोना** : छोटे बच्चों का बिस्तर की चादर आदि से भी दम घुट सकता है क्योंकि वह उसे हटा कर अलग नहीं कर सकते । इसलिए आपको बच्चे को सुलाते समय चादर उढ़ाने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए । इस बात का पूरा ध्यान रखें कि कोई भी चीज़ उसके चेहरे पर गिर कर या फिसल कर न आ जाए जिससे उसें साँस लेने में बाधा हो । छोटे बच्चों को सोते समय लुढककर नीचे गिरने से बचाने का भी पूरा -पूरा ध्यान रखना चाहिए ।

15) **धूम्रपान विशेष** रूप से बिस्तर पर लेटकर धूम्रपान करने में यदि आपको जलती हुई सिगरेट हाथ में रहते नींद आ जाए तो बिस्तर में आग लगने का खतरा रहता है । आधी बुझी हुई सिगरेट के टुकड़े यदि टैपेस्ट्री लगी कुर्सी पर रह जाएं तो टैपेस्ट्री को जला सकते हैं । सिगरेट लाइटर व माचिस आदि बच्चों के हाथ पड़ जाए तो उनसे भी खतरा रहता है ।

7.2.3 घर में प्रयोग होने वाली वस्तुएँ जिनसे दुर्घटना की आशंका हो

1) **बिजली की वस्तुएं** : आजकल अधिकांश घरों में बिजली है और बिना इसके काम नहीं चल पाता है परन्तु यदि इसका प्रयोग सावधानी से नहीं किया जाए तो परिणाम तत्काल मृत्यु हो सकती है । बिजली के सॉकेट अपने आप में खतरनाक होते हैं । इनको कभी भी नीचे भूस्तर पर नहीं लगवाना चाहिए क्योंकि छोटे-छोटे बच्चे जो घुटनों चलना सीख जाते हैं इनमें अपनी छोटी-छोटी उंगलियाँ डालने का प्रयास करते हैं । ऐसे सॉकेटों को बन्द करने के लिए नकली प्लग आते हैं । साधारणतया लोगों को टूटे हुए प्लग को प्रयोग में लाए जाने या नंगे तारों को ही सॉकेट में लगा कर काम करने की आदत होती है — परन्तु यह एक बहुत ही खतरनाक काम है । कटे-फटे बिजली के तार या तो तत्काल बदल दिए जाने चाहिए या उन पर अच्छी तरह से बिजली वाला टेप लगा देना चाहिए । कुछ समय बाद पहले टेप लगातार नंगा हो सकता है । उस पर हाथ लगने से व्यक्ति चिपक सकता है और दुर्घटना हो सकती है ।

पानी गरम करने का हीटर भी एक खतरनाक उपकरण है । यदि इसमें करैंट आता हो तो वह पानी में पड़ कर और खतरनाक हो जाता है। यदि आप को लगे कि बिजली का कोई प्लग गरम

हो जाता है तो उसे बिजली से निकाल कर उसकी जाँच करवाए। निश्चित रूप से उसमें कहीं ढीला तार है जिसके कारण स्पार्किंग हो रही है। यदि इसे ठीक नहीं किया जाए और उसी तरह छोड़ दिया जाए तो उससे सॉकेट जल जाएगा और इससे आग भी लग सकती है। अधिकतर घरों और दुकानों में आग लगने का कारण इसी प्रकार के ढीले कॉन्टैक्ट होते हैं विशेष रूप से ऐसे स्थानों पर जहाँ कि प्रज्वलन सामग्री (combustible material) भी पास ही रखी हो।

कमरा गरम करने वाले बिजली के हीटर तथा बिजली के पंखे भी उनके आसपास घूमते छोटे बच्चों के लिए खतरनाक हो सकते हैं। यह उनकी पहुँच से दूर रखे जाने चाहिए। वैक्यूम क्लीनर से भी बिजली का झटका लग सकता है यदि उसका तार कटा-फटा हो या जब उसे बन्द किए बिना उसमें फँसी किसी चीज़ को निकालने का प्रयास किया जाए।

2) **औषधियाँ तथा रसायन (कीटनाशक या पीड़कनाशी आदि)** : औषधियों और रसायनों को या तो तुरन्त प्रयोग के लिए या भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग के लिए प्रत्येक घर में इनको रखा जाता है। इनको रखते समय विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए कि ये ऐसी जगह रखे जाएं जो रोजाना के काम के बीच में न आती हो तथा जो बच्चों की पहुँच से दूर हो। यदि संभव हो तो इन्हें ताले में बन्द करके रखा जाए। इन सब पर लेबल लगाया जाना चाहिए। समय - समय पर दवाइयों को देखा जाना चाहिए कि उनकी उपयोगिता अवधि समाप्त तो नहीं हो गई है - उपयोगिता अवधि सामान्यत: पीने व खाने की दवाइयों की शीशियों या लेबलों पर लिखी रहती है। अवधि समाप्त दवाइयों को बच्चों व घर के पालतू जानवरों की पहुँच से दूर फेंक दिया जाना चाहिए। बेकार गोलियाँ फेंकते समय विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए क्योंकि बच्चे अक्सर खेल-खेल में कूड़े के डिब्बे तक पहुँच जाते हैं और उसके अन्दर पड़ी रंग-बिरंगी गोलियों को खा सकते हैं।

3) **तेज धार के औज़ार व चाकू** : घरों के लिए बहुत आवश्यक होने के बावजूद इनको बहुत ध्यान से रखा जाना चाहिए तथा ये बच्चों की पहुँच से दूर होने चाहिए।

4) **अग्निशस्त्र तथा पटाखे** : जहाँ तक संभव हो इन्हें घर पर नहीं रखा जाना चाहिए — यह घर में रखने के लिए बहुत खतरनाक होते हैं। परन्तु फिर यदि आपको रखना ही हो तो ध्यान रहे कि इन्हें ताले में बन्द करके रखा जाए व सामान्य रुप से यह सभी की पहुँच से दूर हों।

5) **मोटर गाड़ियाँ** : जब भी इनका प्रयोग न किया जा रहा हो तो इनको न्यूट्रल गियर में, इग्निशन की चाभी निकाल कर तथा ताला बन्द करके रखना चाहिए। यदि इसको ढलान पर पार्क किया गया हो तो उसे गियर में छोड़ना पड़ेगा। वाहन को ठीक से बन्द अवश्य कर दें। उसके पहियों के पीछे कुछ रोक लगा दें जिससे वह पीछे को न लुढ़के।

6) **टेलीविजन (टी.वी.) सैट** : इसके काम में ताँकझाँक करने या उसको ठीक करने के प्रयास में व्यक्ति इससे चिपक (electrocuted) सकता है। इससे टी.वी. में तथा घर में आग भी लग सकती है। टी.वी. को ऐसी जगह रखा जाना चाहिए जहाँ हवा का आवागमन अच्छा हो क्योंकि टी.वी. में चलते समय बहुत गर्मी निकलती है। बच्चों को इसके पास खेलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यदि टी.वी. के बाहरी पैनल पर कोई चीज़ लग जाए तो उससे टी.वी. ट्यूब टूट सकती है और धमाके से इधर-उधर उड़ने वाले शीशों से चोट भी लग सकती है। बाह्य भाग की सफाई करते समय टी.वी. को बन्द रखा जाना चाहिए। कभी भी सफाई के लिये तरल पदार्थ का प्रयोग न करें इससे बिजली का झटका लग सकता है तथा प्लास्टिक का ट्यूब कवर भी खराब हो सकता है।

7) **ग्लू (glue)** : ग्लू घरों में प्रयुक्त एक सामान्य वस्तु है। छोटे बच्चों को भी इसके प्रयोग की अनुमति होती है। फिर भी इनसे दुर्घटनायें हो सकती हैं विशेष रूप से सुपर ग्लू से। इससे आपकी दो उंगलियाँ एक दूसरे से चिपक सकती हैं, यदि आप ग्लू लगे हाथों से अपनी आँख को छू लें तो उससे आँखों की पलकें व आँख आपस में चिपक जाने से आँख बन्द हो सकती है। ग्लू लगे हुये सीलिंग टेप भी खतरनाक होते हैं। यदि आप इसे एक तरफ से रोकने के लिये अपने होठों के बीच में रखें तो यह आपके होठों से चिपक जाएगी और निकालने पर अपने साथ श्लेष्मल झिल्ली को अपने साथ बाहर निकाल लेगी। बच्चों को काम करने के लिये ग्लू नहीं

दिया जाना चाहिए। उन्हें कोई और चिपकाने वाला पदार्थ दिया जाना चाहिए जोकि कम खतरनाक हो।

8) **प्लासटिक बैग** : आजकल घरों में सब से अधिक प्रयुक्त प्लास्टिक बैग जैसी चीज़े बच्चों के लिए सबसे खतरनाक है क्योंकि वह खेल-खेल में उन्हें अपने सिर पर रख लेते हैं और यदि उनका मुँह उसके अन्दर बन्द हो जाए तो उससे उनका दम घुट सकता है। पश्चिमी देशों में सभी प्लास्टिक बैगों पर यह चेतावनी लिखी होती है कि उन्हें बच्चों की पहुँच से दूर रखा जाए।

9) **रस्सी व डोरियाँ** : रस्सी व डोरियाँ यदि खेलते समय बच्चों के हाथ में पड़ जाएँ तो खतरनाक हो सकती हैं। घोड़े बने बच्चों को खींचने जैसे निर्दोष खेल से बच्चे के गले में फन्दा लग सकता है।

10) **पौधे व उनके फल** : बगीचे में लगे या घर के अन्दर रखे गये पौधे भी खतरनाक हो सकते हैं। कुछ कंटीले पौधे (कैक्टस), उन पर हाथ लग जाने से, त्वचा में जलन पैदा कर देते हैं। अमलताश के पौधे के फल बहुत ज़हरीले होते हैं और बच्चे अक्सर उन्हें मुँह में डालने की फिराक में रहते हैं। मिस्ल-टो बैरी (Mistle - toe berries) के साथ भी यही बात है। पनसुतिया की पत्ती (poinsethia leaf) यदि बच्चा चबा ले तो वह मर भी सकता है। इसी प्रकार कैस्टर की फली (castor beans) भी खतरनाक होती है व मार सकती है। यदि कोई दुर्घटना हो जाए तो तत्काल मुँह में डाली हुई वस्तु को बाहर निकालें व या तो बालक को स्वयं डाक्टर के पास ले जाएं या डाक्टर को फोन करके घर पर बुला लें तथा उसे बताएं कि ज़हर कहाँ से आया है और क्या क्या लक्षण दिखाई दिए। डाक्टर के निर्देश को ध्यानपूर्वक अपनाएँ।

बोध प्रश्न 1

1) अपने घर के दुर्घटना की संभावना वाले क्षेत्रों की सूची बनाइएं। आप इन क्षेत्रों को सुरक्षित बनाने के लिए इनमें क्या–क्या सुधार लाएंगे, सुझाए।

....

....

....

2) अपने घर के उन सभी बिजली के कनैक्शनों व घर पर प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरणों की जाँच कीजिए जिनको आप दुर्घटना का संभावित स्रोत समझते हों। आपने निम्नलिखित के संबंध में क्या क्या पता लगाया।

- मानक बिजली के उपकरण ☐ हाँ ☐ नहीं
- उपयुक्त दीदार के सॉकेट ☐ हाँ ☐ नहीं
- अर्थ-सहित कनैक्शन ☐ हाँ ☐ नहीं
- आद्रता के साथ कान्टेक्ट ☐ हाँ ☐ नहीं

आपके निष्कर्ष क्या हैं ?

....

....

....

....

....

7.3 सार्वजनिक सुरक्षा

सार्वजनिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा सड़क पर होने वाली दुर्घटनाओं से है। अन्य है, सार्वजनिक इमारतों में आग, मानव निर्मित कारणों अथवा प्राकृतिक कारणों से भवनों का ढह जाना। हम यहाँ उनके संबंध में चर्चा करेंगे जिनको रोकना हमारी अपनी क्षमता में है।

7.3.1 सड़क दुर्घटनाएँ

भारत की सड़क दुर्घटना दर विश्व में सबसे अधिक है। सबसे अधिक दुर्घटनाग्रस्त होने वाला वाहन दुपहिया वाहन है क्योंकि वह कार की तुलना में कम स्थिर होते हैं तथा वाहन चालक को बहुत कम सुरक्षा प्रदान करते हैं। हमारी सड़कों पर ट्रैफिक का स्वरूप, हमारे जन सामान्य की वाहनों के बारे में समझ और जानकारी की कमी कि वे किस प्रकार संचालित होते हैं कुछ ऐसे कारण हैं जो कि सड़क दुर्घटना की संभावनाओं को बढ़ा देते हैं। हमारे देश में इतनी बड़ी संख्या में सड़क दुर्घटना होने के कुछ कारण हैं।

1) सड़कों पर नाना प्रकार की तेज़ व धीरे चलने वाली सवारियों, मनुष्यों, बैलगाड़ियों, साइकिलों, दुपहिया वाहनों, तिपहिया वाहनों, कारों, बसों, ट्रकों, लारियों, ठेले गाड़ियों, पैदल चलने वालों, बच्चों के साथ ही बकरियों, कुत्तों, मुर्गियों तथा बैलों का साथ साथ सड़क पर चलना।

2) वाहनों का खराब रख -रखाव।

3) कम अनुभव तथा कम योग्यता के वाहन चालक जिनमें से कई तो वाहन चलाने का टैस्ट दिये बिना ही लाइसैंस प्राप्त कर लेते हैं।

4) सार्वजनिक वाहनों जैसे बसों, लॉरियों तथा कभी - कभी कारों में भी सवारियों के भरे होने के कारण ड्राइवर को वाहन चलाने व नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त स्थान न मिल पाना। वाहन ठीक प्रकार से चलाने के लिये ड्राइवर के लिए पर्याप्त स्थान होना आवश्यक है।

5) खराब सड़कें, कम प्रकाश, अचिन्हित स्पीड ब्रेकर।

6) बिना ट्रैफिक लाइट या ट्रैफिक पुलिस के चौराहे।

7) अपर्याप्त प्रशिक्षणप्राप्त व अकुशाग्र ट्रैफिक पुलिस जो कि अपने दायित्व के प्रति समर्पित नहीं है।

8) तीव्र गति से चलने वाले वाहनों को चलाना तो दूर उन में सवारी कर पाने से भी वंचित व उनसे अनभिज्ञ।

आइए अब इनमें से कुछ को देखते हैं कि कैसे वे दुर्घटना का कारण बनते हैं।

गति : गति अपने आप में कोई खतरनाक चीज़ नहीं है। विश्व के कुछ भागों में तो कुछ सड़कों पर लोग 100 किलोमीटर या उससे भी अधिक गति पर बिल्कुल सुरक्षित रूप से गाड़ी चलाते हैं। किसी एक गति पर सुरक्षा, सड़कों की स्थिति जिसमें उसकी ऊपरी सतह, उसकी चौड़ाई, उसपर चलने वाला ट्रैफिक, वह किस क्षेत्र से गुज़रती है, उस पर कैसे मोड़ हैं आदि के साथ - साथ ड्राइवर कितना अनुभवी है आदि से परस्पर संबंधित रहती है। एक सुरक्षित गति, वह गति है जिस पर वाहन आपके नियंत्रण में रहे अर्थात् आप उसको अपनी इच्छानुसार इधर- उधर घुमा सकते हों, न कि आप वाहन के साथ इधर- उधर घूम रहे हों। सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अधिकांश सड़कों व क्षेत्रों के लिए अधिकतम गति निर्धारित कर दी जाती हैं। यह आवश्यक है कि हम उसी निर्धारित गति के अन्दर ही अपना वाहन चलाए। जितनी अधिक गति पर टक्कर होगी उतनी ही अधिक दुर्घटना के घातक होने की संभावना होगी।

वाहन का प्रकार ; दुर्घटनाओं में घातक दुर्घटनाओं की दर सबसे अधिक दुपहिए वाहनों की होती हैं और दुपहिए वाहनों में भी मोटर साइकिलों के लिए यह सबसे अधिक होती हैं। उसके बाद सवारी गाड़ियों का नम्बर आता है —– गाड़ी जितनी हल्की होगी, दुर्घटना का उस पर प्रभाव उतना ही बुरा होगा। सवारी

गाड़ियों के बाद ट्रकों और लॉरियों का नम्बर आता है। बसों में सबसे कम दुर्घटनाएं होती हैं, और दुर्घटना में मरने वालों की दर न्यूनतम भी होती है।

ड्राइवर की आयु : संभवत: आसानी से तेज़ गति से वाहन चलाने और आकर्षित होने तथा इनमें अधिकांशत: मोटर साइकिल चलाने वाले होने के कारण अधिकतर दुर्घटनाओं में मरने वालों में सबसे अधिक संख्या कम आयु के लोगों अर्थात् - 15 से 35 वर्ष की आयु वर्ग-के लोगों की होती हैं।

ड्राइविंग का अनुत्तरदायित्वपूर्ण रवैया : अवैध तरीकों से लाइसेंस प्राप्त करके, बिना लाइसेंस के गाड़ी चलाने, अनधिकृत रूप से सार्वजनिक सड़कों व राजमार्गों पर वाहन चलाने, सीखने व उसका अभ्यास करने, कम आयु के बच्चें को ट्रैफिक नियमों की समझ व जानकारी न होते हुए भी वाहन चलाने की स्वतंत्रता, सड़कों पर केवल अपना स्वार्थ देखना आदि कुछ सामान्य कारण हैं जिनके फलस्वरूप हमारी सड़कों पर दुर्घटनायें घटती हैं। अत: यह आवश्यक कर दिया जाए कि किसी व्यक्ति को भी गाड़ी का लाइसेंस देने से पहले प्रत्येक ड्राइवर को लिखित परीक्षा व गाड़ी चलाने का टैस्ट पास करना होगा जिसका अर्थ यह भी होगा कि प्रत्येक ड्राइवर के लिए लिखना व पढ़ना आना आवश्यक होगा।

रात में गाड़ी चलाना : यह ट्रक व लॉरियों की दुर्घटनाओं का एक सामान्य कारण है। ऐसे ड्राइवर जो बहुत थके हुये होते हैं और गाड़ी चलाते- चलाते सो जाते हैं वे अपनी गाड़ियों को खतरें में डालने के साथ-साथ सड़क पर चलने वाली अन्य गाड़ियों के लिए भी खतरा बन जाते हैं। भारतीय सड़कों की स्थिति भी रात्रि में गाड़ी चलाने में सहायक नहीं हैं। अत: रात्रि में गाड़ी चलाने से जहाँ तक हो, बचना चाहिए।

अल्कोहॉल : अल्कोहॉल के प्रभाव में गाड़ी चलाना अधिकतर दुर्घटना का कारण बनता हैं विशेष रूप से ट्रक व लॉरियों के संबंध में। सामान्य मात्रा में लिया गया अल्कोहॉल भी दुर्घटना की संभावनायें बढ़ा देता हैं। सड़को पर नशे से प्रभावित ड्राइवरों की संख्या रात्रि में, सप्ताहान्त पर, नए साल की पूर्व संध्या पर तथा दीवाली, होली आदि त्यौहारों पर बढ़ जाती हैं।

7.3.2 रेल तथा विमान दुर्घटनाएँ

पिछले दो तीन सालों में रेल तथा विमान दुर्घटनायें भयभीत करने वाली स्थिति तक बढ़ गई हैं। भारत का रेल नेटवर्क विश्व का सबसे बड़ा नेटवर्क हैं, जिसमें एक करोड़ से भी अधिक व्यक्ति प्रतिदिन एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए जाते हैं। ठीक प्रकार से न रखी गई रेल लाइनें ही दुर्घटनाओं का सबसे बड़ा कारण हैं। विमान दुर्घटनाओं के संबंध में भी जहाँ तक कारणों का निर्धारण हो पाता है उसके अनुसार भी दुर्घटना के लिए विमान चालकों की गलतियाँ तथा वायुयान या ज़मीन पर लगे उपकरणों का ठीक से काम न कर पाना बराबर बराबर जिम्मेदार होते हैं। यहाँ भी यह कहना असंगत न होगा कि उत्तम स्वास्थ्य तथा पर्याप्त विश्राम, चेतन मस्तिष्क तथा तुरन्त निष्कर्ष निकालने की क्षमता के लिए आवश्यक हैं। चीजों को तुरन्त देख पाने की क्षमता, तत्काल निर्णय लेकर तुरन्त कार्यवाही करना एक स्वस्थ शरीर एवं मस्तिष्क की ही विशेषता हो सकती हैं। एक ऐसा मस्तिष्क जो तनावरहित न हो तथा ऐसा शरीर जो ठीक से पोषित न हो व जिसे पूरा विश्राम न मिला हो, इस प्रकार के उत्तरदायित्व का कुशलता से निर्वाह नहीं कर सकता।

7.4 सुरक्षात्मक उपाय

इस इकाई में पहले ही घर पर घट सकने वाली दुर्घटनाओं पर चर्चा करते समय रोकथाम के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया हैं। उनका संक्षिप्त विवरण हम निम्न प्रकार से दे सकतें हैं:

1) किसी भी स्थिति के संभावित खतरों के प्रति जागरूक रहना ही उसके नियंत्रण में हमारी आधी सफलता बन जाता हैं।

2) इस बात की जानकारी व समझ कि आप क्या कर रहें हैं, उसके क्या परिणाम निकलेंगे, दुर्घटना की संभावनाओं को न्यूनतम बनाने में सहायक होती हैं।

3) किसी होने वाली घटना का पूर्वानुमान कर सकना तथा उसके लिये पहले से ही बचाव करना तथा उसको घटने से रोकने का प्रयास सुरक्षा का मूल आधार है।

यद्यपि हमने उन खतरों पर बल दिया हैं जिनका सामना अपने ही घरों में हम सबको करना पड़ता है परन्तु इसके साथ ही हम यह भी कहना चाहतें हैं कि पहले से सोच समझकर, उपाय करके तथा ध्यान से काम

करने से हमारे लिये अपने घरों को ऐसा सुरक्षित स्थान बनाना सम्भव है, जिसकी कल्पना घर के नाम से ही हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होती हैं। हमारे लिए केवल यही पर्याप्त नहीं है कि हम आज के जीवन में विद्यमान खतरों को जानते हो, वरन् यह भी आवश्यक है कि हम अपने आपको दिन-प्रतिदिन होने वाली प्रौद्योगिकी की उन्नति से भी परिचित कराते रहें तथा प्रतिदिन बाज़ार में आने वाले नए-नए उत्पादों की जानकारी रखें। जहाँ आधुनिक टैक्नालॉजी हमारे अनुभवों को इक्कीसवीं सदी तक ले जाना चाहती है, वहीं यह विभिन्न प्रकार के खतरों की संभावना भी बढ़ाती है जिनका संतोषजनक एवं अपने लाभ के लिए सामना करना हमको सीखना होगा।

अब हम आगे सार्वजनिक सुरक्षा शीर्षक के अन्तर्गत चर्चित कुछ प्रकार की दुर्घटनाओं के लिए, उनसे बचने व उनकी रोकथाम के उपायों पर, चर्चा करेंगे। इनको हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं — वे उपाय जो गाड़ियों के ड्राइवरों से संबंधित हैं, वे उपाय जो ड्राइवरों के ऊपर निर्भर नहीं है परन्तु दुर्घटनाओं को कम करने में अप्रत्यक्ष रुप में सहायक होते हैं और वे उपाय जो कानून द्वारा लागू किए जा सकते हैं।

7.4.1 व्यक्तिगत उपाय

कुछ ऐसी सावधानियाँ हैं जिनको गाड़ियों के ड्राइवर अपना सकते हैं। सावधानी तथा बिना इधर-उधर ध्यान दिए एकाग्रता से गाड़ी चलाना आवश्यक हैं। अल्कोहॉल लेने के बाद गाड़ी न चलाएं - चाहें कितनी ही कम मात्रा में अल्कोहॉल लिया हो। यदि आप नींद की गोलियों, प्रशान्तकों, प्रतिहिव्यमिनो (anti histamines) आदि जैसी किसी औषधि का सेवन कर रहे हों तो भी गाड़ी नहीं चलानी चाहिए। जब आप बहुत थके हुए हों, सोना चाह रहे हों या तनाव में हों, तब भी आपको गाड़ी नहीं चलानी चाहिए। गाड़ियों में सीट बैल्ट का तथा मोटर साइकिलों पर सुरक्षा हैल्मैट का प्रयोग दुर्घटना की संभावनाओं को न्यूनतम कर देता है। चमड़े के कपड़े तथा जूते दुर्घटना में चोट लगने की संभावना को कम करते हैं। बच्चों को गाड़ी में सदैव पीछे की सीट पर बिठाना चाहिए जो उसका ध्यान रख सके। यदि संभव हो तो उन्हें सीट पर सीट बैल्ट लगाकर सुरक्षित रूप में बिठाना चाहिए सुरक्षात्मक रूप में गाड़ी चलाना अच्छा रहता हैं। गाड़ी चलाते समय ज्यादा से ज्यादा संभावनाओं का अनुमान लगाइए। विशेष रूप से उनका जो कि अचानक सामने आ सकती हैं, जैसे आपके सामने वाली गाड़ी का एक दम रुक जाना, या साइड लेन से एकदम से गाड़ी का आपके आगे निकल आना या किसी बालक का आपकी गाड़ी के सामने से दौड़ते हुए सड़क पार करना आदि। इसका अर्थ है कि आपकी प्रतिक्रियात्मक बुद्धि अधिकतम क्षमता पर कार्य कर रही हो। इसका अर्थ यह भी है कि आप थके हुए न हो, भावनात्मक रूप से परेशान न हों, आपको नींद न आ रही हो तथा आप अलकोहॉल या नींद लाने वाली या प्रशान्तक औषधि के प्रभाव में न हों। अपनी गाड़ी का उपयुक्त रखरखाव करें तथा सुनिश्चित करें कि वह काम करने की अच्छी स्थिति में हो, उसके ब्रेक, टायर, लाइट व इंडिकेटर ठीक हालत में हों। नियमित रूप से पहियों की हवा चैक करनी चाहिए। सड़कों पर लगे संकेतों का गम्भीरता से पालन कीजिए तथा निर्धारित रफ्तार में गाड़ी चलाइए। अपने लिये सड़क के निर्धारित स्थान में गाड़ी चलाइए तथा अपनी सीमाओं का ध्यान रखिए। अपना ध्यान ड्राइविंग तथा ट्रैफिक पर रखिए। गाड़ी चलाते समय ध्यान इधर - उधर न जाने दीजिए। गाड़ी पीछे ले जाते समय देखिए कि आपके पीछे क्या है? ड्राइवर की सीट से आमतौर पर पीछे के स्कूटर व बच्चे दिखाई नहीं देते हैं अत: उतर कर सुनिश्चित कर लें कि पीछे कुछ है तो नहीं।

साइकिल तथा दुपहिये वाहन चालकों को भी उन सभी ट्रैफिक नियमों का पालन करना चाहिए जो कि कार चलाने वालों के लिए होते हैं, जैसे अपनी लेन में ही वाहन चलाना, मुड़ने की सूचना देना, ट्रैफिक लाइटों का पालन करना आदि।

7.4.2 दुर्घटनाओं को कम करने वाले उपाय

सड़कों की ऊपरी सतह की क्वालिटी, सड़क पर किस प्रकार के मोड़ हैं, सड़क एक दम मुड़ती या धीरे - धीरे मोड़ लेती है, सड़कों पर लगी लाइटे कैसी हैं, ड्राइवरों को पहले से ही सड़क पर आगे आने वाली चीज़ों के संबंध में सूचना देने वाले संकेत, गाड़ियों के प्रकार तथा गाड़ी में लगे सुरक्षात्मक उपकरण जैसे सीट बैल्ट, झटका लगने पर अन्दर चला जाने वाला स्टीयरिंग व्हील तथा गाड़ी के गद्दी लगे अन्दर के भाग आदि, सभी चीज़ें ट्रैफिक दुर्घटनाओं को कम करने के लिए महत्वपूर्ण है। गाड़ी के नए मॉडलों का विज्ञापन व प्रचार सामान्यत: उसमें उपलब्ध सुरक्षा उपायों के आधार पर ही किया जाता है।

महत्वपूर्ण चौराहों पर लगाई गई ट्रैफिक लाइटें, रेल क्रॉसिंगों पर लगे फाटक, ट्रैफिक पुलिस, आने जाने की सड़कों में विभक्त सड़कें, गति सीमा तथा अन्य चल रहीं गाड़ियों से गाड़ी आगे ले जाने के नियमों सहित सभी ट्रैफिक नियम ट्रैफिक दुर्घटनाओं को कम से कम करने के उपाय हैं। सड़कों को अपने व औरों के लिए सुरक्षित बनाने हेतु निर्धारित नियमों का हर ड्राइवर तथा पैदल चलने वाले को पालन करना चाहिए। हमारी सड़कों पर विभिन्न प्रकार का ट्रैफिक चलने के कारण इन नियमों का पालन करना और भी आवश्यक हो जाता है।

7.4.3 कानून द्वारा लागू किए गए उपाय

हमारी अधिकाँश समस्यायें इनसे संबंधित हैं। हमारे देश के कानून में बहुत से उपाय किये गये हैं जो कि यहाँ के नागरिकों के लिए कानूनी रूप से अनिवार्य हैं परन्तु दुर्भाग्य से यहाँ पर उनका इस प्रकार अनुपालन करवाने के लिये कि कोई भी उनकी अवज्ञा न कर पाए, अपेक्षित पर्याप्त शासन तंत्र नहीं है। कुछ कानूनी उपाय जो कि राज्य द्वारा लागू किये गए हैं, यह है कि मोटर द्वारा चालित दुपहिए व अन्य चार पहियों के वाहनों को चलाने के लिये न्यूनतम आयु होगी, ड्राइविंग लाइसैंस जारी करने के लिए ड्राइविंग टैस्ट होना, दुपहिए वाहनों के ड्राइवरों व सहयात्री के लिए हैलमेट पहनना आवश्यक होगा, गाड़ी ठीक हालत में हैं, इसका प्रमाण-पत्र लेना होगा, हैड लाइट के ऊपर के एक तिहाई भाग को काला पेन्ट करना होगा जिससे कि सामने से आने वाले ट्रैफिक से ड्राइवरों की आँखों में चमक न पड़े, सड़को तथा राजमार्ग पर जगह जगह लाइसेन्स की वैधता, गाड़ी ठीक हालत में होने का प्रमाण-पत्र तथा ड्राइवर के रक्त में अल्कोहॉल के स्तर आदि की जाँच करना आदि। कानून द्वारा विभिन्न सड़कों के लिए गति सीमा भी निर्धारित की गई हैं जिससे कि सड़कें सुरक्षित बनें। इनमें से कुछ बातें तो पूरे देश में लागू हैं जबकि कुछ राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र में आती हैं जैसे हैल्मेट पहनने से संबंधित नियम एक राज्य से दूसरे राज्य में बदल जाता हैं। यह केवल हमारा नैतिक दायित्व ही नहीं है बल्कि हमारी अपनी सुरक्षा तथा जन-सामान्य की सुरक्षा के लिए भी आवश्यक हैं कि हम स्वयं इन नियमों का पालन करें तथा औरों से भी करवाएं। यह प्रवृत्ति हमारे बच्चों में शुरू नें छोटी उम्र से ही विकसित की जानी चाहिए। इसका अर्थ हैं कि हमें माता-पिता होने के नाते अपने 18 साल से कम आयु के बच्चों को स्कूटर या कार चलाने पर न केवल उन्हें हतोत्साहित नहीं करना चाहिए बल्कि उनके गाड़ी या स्कूटर चलाने पर पूरी रोक लगानी चाहिए, चाहें हम उन्हें कितना भी होशियार व चुस्त समझते हों। इसका यह भी अर्थ हैं कि हमें उन्हें लाइसेंस ठीक प्रकार से ड्राइविंग टैस्ट पास करके बनवाने देना चाहिए। कई बार प्रत्येक घातक ट्रैफिक दुर्घटना के साथ कई लोगों को इस प्रकार की चोटें लगती हैं जो उन्हें सारी जिन्दगी के लिए अक्षम बना देती हैं।

बोध प्रश्न अभ्यास 2

1) यदि आपके घर में कोई वाहन हैं तो उनके लाइसेंसों और ठीक हालत में होने के प्रमाण पत्रों की जाँच कीजिए और देखिए कि उनकी अवधि तो समाप्त तो नहीं हुई है। अपनी जाँच के परिणामों के संबंध में टिप्पणी दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

7.5 सारांश

इस इकाई में आपने निम्नलिखित के संबंध में जानकारी प्राप्त की है :

1) हमारे घरों की सुरक्षा को स्वत: मिली हुई सुरक्षा के रूप में नहीं लिया जा सकता । हमारे घर उतने ही सुरक्षित होते हैं जितना सुरक्षित हम इन्हें बनाते हैं ।

2) जो दैनिक कार्य हम करते हैं, लगभग उन सभी कार्यों में कुछ गलत घटने और चोट लगने की संभावना रहती है । यह खतरा उन अधिकांश चीजों में भी विद्यमान रहता है जिनका प्रयोग हम अपने दैनिक के जीवन में दिनचर्या के भाग के रूप में करते हैं परन्तु यह निहित संकट वास्तव में किसी अप्रिय घटना में परिणत होता है या यह बहुत सीमा तक हमारे अपने ऊपर निर्भर करता है।

3) अपने द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं या किये जाने वाले कामों के संबंध में जानकारी रख कर अपने कार्यकलापों में सावधानी रख कर तथा ध्यान से सभी आवश्यक बचाव करके कि कहीं कुछ गलत न हो, हम दुर्घटनाओं को घटने से रोक सकते हैं।

4) दुर्घटना का पूर्वानुमान लगाने की क्षमता ही हमें उसे रोकने की क्षमता भी प्रदान करती हैं ।

7.6 शब्दावली

पूर्वानुमान लगाना	:	समय से पहले ही कार्रवाई करना ।
प्रतिहिस्टमिन	:	जुकाम या एलर्जी का निदान करने के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली औषधि जैसे एविल, फॉरेसटाल, एक्टीफैड ।
आकस्मिकताएँ	:	कुछ जो घट सकता हैं परन्तु उसका घटना निश्चित न हो ।
विनाशकता (घातकता)	:	दुर्घटना जिसका अन्त मृत्यु हो ।
आश्रय, शरण	:	एक सुरक्षित स्थान ।
जोखिमपूर्ण	:	खतरनाक ।

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके सावधान न होने पर आपके घर में घट सकने वाली दुर्घटनाओं की सूची बनाइएं।

2) अपने घर में प्रयोग में लाएं जा रहे उन सभी बिज़ली के कनैक्शनों तथा उपकरणों की जाँच कीजिएं जिनके बारे में आप सोचते हैं कि उनमें दुर्घटना की संभावना हैं ।

बोध प्रश्न 2

यदि आपके घर में कोई वाहन है तो उनके लाइसैंस तथा ठीक हालत में होने के प्रमाण पत्रों की जाँच करें । आजकल मोटर चालित वाहनों के लिये प्रदूषण स्तर की जाँच समय-समय पर की जाती है।

परिशिष्ट 1

उत्सर्ग के निपटान (मल व्ययन) की पद्धतियाँ

मल व्ययन की पद्धतियों में सामान्य रूप से स्वच्छता आवरण निर्मित करने का प्रयास किया जाता है। इन पद्धतियों में सबसे महत्वपूर्ण चरण मल को अलग करके यह सुनिश्चित करना होता है कि उसका ठीक प्रकार से व्ययन हो जाए, जिससे कि रोग उत्पन्न करने वाले एजेन्ट किसी भी प्रकार औरों तक न पहुँच सकें। आइए, अब देखते हैं कि ऐसे क्षेत्रों में जहाँ बन्द नालियों की पद्धति उपलब्ध नहीं हैं वहाँ किन पद्धतियों को अपनाया जाता हैं।

स्वच्छ शौचालय (Sanitary latrines)

एक स्वच्छ शौचालय वह होता है जो कि निम्नलिखित मापदण्डों को पूरा करें :

- उत्सर्ग भूजल तथा सतही जल को संदूषित न करे।
- उत्सर्ग मिट्टी को प्रदूषित न करें।
- उत्सर्ग उसे इधर से उधर पहुँचाने, सचंरित करने के साधनों जैसे मक्खी, चूहें तथा जानवरों (सूअर, कुत्ता, मवेशी) आदि की पहुँच में न हो।
- मल दुर्गंध व गन्दगी फैलाकर आपत्तिजनक न बनें।

कई प्रकार के स्वच्छ शौचालय विकसित किए गए हैं जिनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया जा रहा है -

छेद बनाकर बनाए गए शौचालय (Bore hole Latrine)

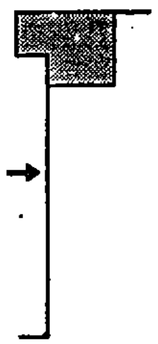

शौचालय

इस प्रकार के शौचालय में एक गोल छेद बनाया जाता हैं जो कि 30 से 40 सैंटीमीटर (12 से 16 इंच) की गोलाई का होता है तथा ज़मीन में सीधा नीचे की ओर 6 मीटर (20 फुट) की गहराई तक एक विशेष उपकरण की सहायता से, जिसे बेघनी कहते हैं, खोदा जाता है। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ मिट्टी ढीली और रेतीली होती है वहाँ छेद के अन्दर की ओर बाँस की चटाई लगाई जाती है या मिट्टी के पकाए हुए बड़े-बड़े छल्ले लगाए जाते हैं जिससे कि शौचालय नीचे धसक न जाए। ऊपर बैठने के लिये पक्का चबूतरा बनाया जाता हैं जिसमें बीच में छेद होता हैं तथा छेद के ऊपर पैर रखने के लिए स्थान बनाया जाता हैं। पर्दें के लिए चारों तरफ से बाड़ा बना दिया जाता हैं। 5 - 6 लोगों के छोटे से परिवार के लिये ज़मीन में छेद करके बनाया गया शौचालय एक वर्ष या इससे कुछ अधिक समय के लिए काम कर सकता हैं। जब छेद के भरने का स्तर ज़मीन से 50 सै.मी. (20 इंच) नीचे तक पहुँच जाता है तो उस पर बैठने का चबूतरा हटा दिया जाता हैं तथा छेद को मिट्टी से भर दिया जाता हैं। फिर एक नया छेद बना कर उसी तरह से प्रयोग में लाया जाता हैं। मल का अवायवीय पाचन क्रिया (anaerobic digestion) से स्वच्छीकरण हो जाता है तथा वह एक अहानिकर स्थूल में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार के शौचालय बनाने में यह सावधानी रखनी चाहिए कि इनको जल स्रोत से कम से कम 15 मीटर (50 फुट) की दूरी पर बनाया जाना चाहिए जिससे कि उसके प्रदूषण की संभावना को रोका जा सके। अब और अच्छे नये नए प्रकार के शौचालय विकसित हो जाने के कारण छेद करके बनाए गए शौचालय अब लोकप्रिय नहीं रह गए हैं।

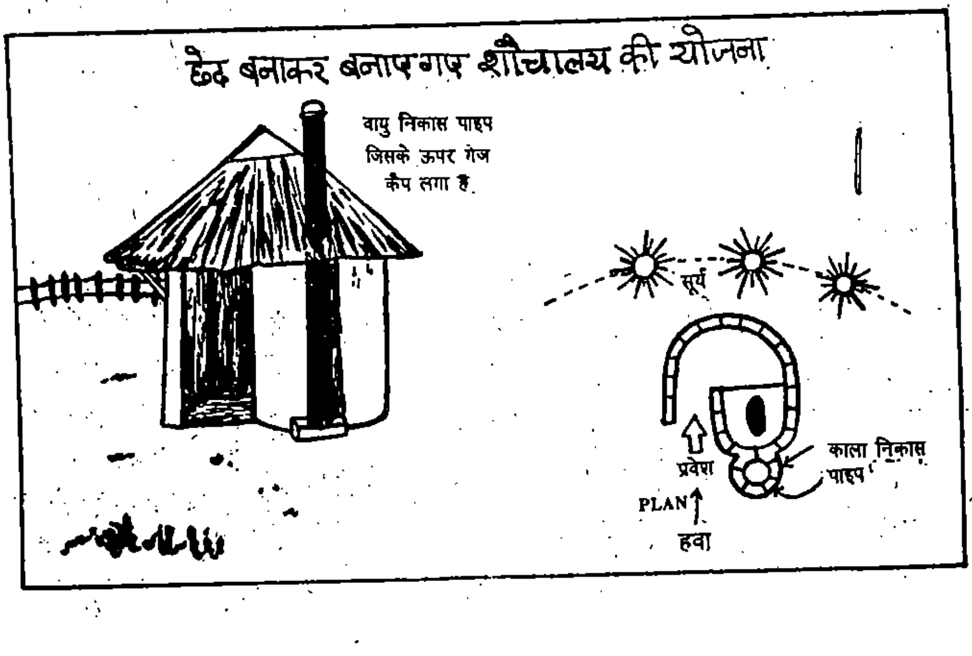

कुँआ खोदकर बनाएँ गए शौचालय (Dug well Latrine)

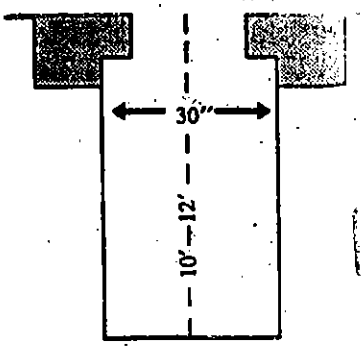

कुंआ खोदकर बनाए गए शौचालय

यह छेद करके बनाए गए शौचालयों का ही और अच्छा करके बनाया गया स्वरूप है। एक गोल गड्ढा जो कि गोलाई में लगभग 75 सै.मी. (30 इंच) होता है तथा 3 से 3.5 मीटर (10 से 12 फीट) गहरा खोदा जाता है। ढीली तथा रेतीली मिट्टी में गहराई कम करके 1.5 या 2 मीटर (6 से 7 फीट) कर दी जाती हैं। गडढे के अन्दर सख्त मिट्टी के स्तर के पक्की मिट्टी के गोले लगाए जाते हैं जिससे कि मिट्टी नीचे न धंस जाए। गडढे के ऊपर बैठने के लिए पक्का चबूतरा बना दिया जाता हैं तथा पर्दे के लिए बाहर से आवरण बना दिये जाते हैं। इस प्रकार के शौचालय 5 - 6 सदस्यों के परिवार के लिए 5 साल तक चल सकते हैं। जब गडढा भर जाए तो नया गडढा बनाया जा सकता है। छेद कर के बनाए गए शौचालयों के समान ही इनमें भी मल अवायवीय पाचन प्रक्रिया से अहानिकर स्थूल में परिवर्तित हो जाता हैं।

पानी से सील बन्द शौचालय (Water seal Latrine)

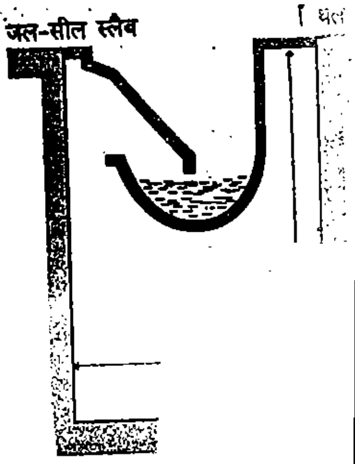

पानी से सील ब

ग्रामीण परिवारों के लिए यह सबसे उपयुक्त व सुरक्षित शौचालय है। इनमें ऊपर से डाला गया पानी शौचालय को सील कर देता हैं। शौच के लिए बैठने की सीट में ही लगाई गई पानी की सील (1) मल तक मक्खियों की पहुँच बन्द कर देती है, तथा (2) दुर्गन्ध तथा दूषित गैसों को ऊपर आने से रोकती हैं। जब एक बार मल को बहा दिया जाता है तो निकास पाइप में शेष पानी जिसे ट्रैप कहते हैं मल को सामने दिखाई देने से रोकता हैं। इस सिद्धांत पर आधारित पानी से सील बन्द विभिन्न प्रारूप डिजाइन बनाए गए हैं जैसे पी. आर. ए. आई. प्रकार के तथा आर. सी. ए. प्रकार के डिजाइन। ये शौचालय प्रत्यक्ष प्रकार के हो सकते हैं (चित्र) जहाँ बैठने का चबूतरा खोदे गए गड्ढे के ऊपर सीधे ही बना दिया जाता है या अप्रत्यक्ष प्रकार के शौचालय हो सकते हैं जिनमे बैठने का चबूतरा खोदे गए गड्ढे से अलग बनाया जाता है तथा दोनो स्थानों को एक पाइप की सहायता से जोड़ दिया जाता हैं। अप्रत्यक्ष प्रकार के शौचालयों में यह लाभ रहता हैं कि जब गडढा भर जाता है तो नए गडढे को केवल जोड़ने वाले पाइप की दिशा बदल कर ही बैठने के चबूतरे से जोड़ा जा सकता है।

शौचालयों का रखरखाव : यदि निम्नलिखित सावधानियाँ बरती जाए तो किसी भी शौचालय की उपयोग अवधि को बढ़ाया जा सकता है :

- मल को छोड़ कर और कोई कूड़ा करकट या गन्दगी उसमें न डाली जाए।
- शौच के लिये बैठने की जगह को साफ व सूखा रखा जाए।
- प्रत्येक बार प्रयोग करने के बाद ठीक प्रकार से पानी डालकर मल को बहा दिया जाए।

इस प्रकार पानी से सील बन्द प्रकार के शौचालय मानव मल के व्ययन का एक प्रभावी व उपयुक्त तरीका है तथा ऐसी जगहों में जहाँ मल व्ययन की व्यवस्था न हो, यह स्वास्थ्य की दृष्टि से एक सुरक्षित तरीका है।

सैप्टिक टैंक (Septic Tank) : घर में प्रवाहित मल के व्ययन के लिये यह पानी बाहर न निकलने देने वाला एक पक्का बनाया गया टैंक होता है। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ मल व्ययन व्यवस्था न हों यह एक घर या घरों के छोटे से समूह के लिए तथा संस्थाओं के लिए, जिनके पास अपनी जल-आपूर्ति व्यवस्था है, उपयोगी रहता है।

टैंक एक कक्ष का या कई कक्षों वाला व 20 से 30 गैलन (2.5 से 5 क्यूबिक फीट) प्रति प्रयोगकर्त्ता की क्षमता का बनाया जा सकता है। न्यूनतम क्षमता जिसकी कि निर्माण के लिए सिफारिश की जाती है 500 गैलन की होती है। इसकी लम्बाई सामान्यत: चौड़ाई की दुगनी होती हैं। गहराई सामान्यत: 5 से 7 फीट की होती है लेकिन इसका निर्माण करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि 4 फीट की तरल गहराई के लिए जगह तथा टैंक की ऊपरी सतह के अन्दर की सतह तथा तरल स्तर के बीच कम से कम एक फीट की जगह हवा के लिए छोड़ी जाए। यह उसके अन्दर जाने के तथा बाहर निकलने के प्रवाह मार्गों को ठीक प्रकार संतुलित व स्थित करके किया जा सकता है। नीचे तली को अन्दर जाने के प्रवाह मार्ग की ओर को थोड़ा ढलवा बनाया जाता है। सामान्यत: हमारे देश में सैप्टिक टैंक इस प्रकार से निर्मित किए जाते हैं कि

उनमें एक दिन का मल विसर्जन एकत्रित हो सके। सैप्टिक टैंकों को कंक्रीट स्लैब से, जिसमें एक मैन-होल होता है, ढका जाता है।

सैप्टिक टैंक में क्या होता है ? : ठोस पदार्थ नीचे बैठ कर गाढ़ा चिकना कीचड़ (sludge) बन जाते हैं,जबकि हल्के पदार्थ ऊपर तैरते रहते हैं और मलफेन (scum) बनाते हैं। इसके उपरान्त स्वच्छीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती हैं। अवायवीय बैक्टीरिया तथा फंगी (fungi) गंदी कीचड़ में क्रिया करके उनको छोटे और सरल रासायनिक रूपों में परिवर्तित कर देते हैं, उसकी मात्रा को कम करते हैं तथा उसको स्थिर तथा अनुपद्रवी रूप में बदल देते हैं। इसका कुछ भाग तरल तथा गैसीय (मीथेन) रूप में परिवर्तित हो जाता है। फिर मलनिस्राव बाहर निकालने वाले पाइप से गुजरता है तथा उसमें कई जीवाणविक सिस्ट तथा पैरासाइटों के ओवा तथा कुछ जैव पदार्थ मिले होते हैं।

इसके उपरान्त वह आसपास की ज़मीन के नीचे की सतह के नीचले स्तर में इधर-उधर रिस जाता है। मिट्टी में विद्यमान अवायवीय जीवाणु जैव पदार्थों पर क्रिया करते है तथा उसके बाद ऑक्सीकरण की प्रक्रिया से वह स्थिर अन्तिम उत्पादों जैसे नाइट्रेट, कार्बन डायऑक्साइड तथा पानी में परिवर्तित हो जाता है।

सावधानी

शौचालय को साफ करने के लिये साबुन या रोगाणुनाशी पदार्थों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वे सैप्टिक टैंक के जीवाणु वनस्पतिजगत को मार देंगे। सैप्टिक टैंक के प्रभावी व कुशल रूप से कार्य करने के लिए वर्ष में एक बार उसकी सफाई अवश्य कर दी जानी चाहिए।

NOTES

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

DHEN-02

जन स्वास्थ्य और स्वच्छता

खंड

4

खाद्य - जन्य रोग, खाद्य संक्रमण तथा मादकताएं

इकाई 11
सामान्य खाद्य-जन्य रोग—I 7

इकाई 12
सामान्य खाद्य-जन्य रोग—II 24

इकाई 13
परजीवी ग्रसन 33

इकाई 14
खाद्य संक्रमण तथा मादकताएं 55

खंड परिचय

खंड 2 में आपको पर्यावरण की स्वच्छता से अवगत कराया गया है, जिसमें मुख्यत: पीने के पानी, कूड़ा - करकट तथा मल उत्सर्जन, व्यक्तिगत स्वच्छता, खाद्य स्वच्छता तथा दूषण के कारकों के बारे में बताया गया है । क्या होगा, यदि आप दूषित भोजन, जल या अन्य पेय पदार्थों का सेवन करेंगे ? जी हां, आप रोगग्रस्त हो जायेंगे । सूक्ष्मजीवियों (जीवाणु, विषाणु, फफूंदी) या इनके द्वारा उत्पन्न विष या कुछ अन्य विषैले पदार्थों से दूषित भोजन से होने वाली सामान्य रोगों / संक्रमणों के बारे में जानने के लिए इस खंड को पढ़ें ।

इकाई 11 तथा 12, भोजन द्वारा होने वाले प्रमुख रोगों जैसे अतिसार, पेचिश, हैजा, टायफाइड या पीलिया पर केन्द्रित है । यह रोग किन कारकों से होता है ? इनके लक्षण / जटिलतायें क्या हैं? ये रोग किस प्रकार फैलते हैं ? इनकी रोकथाम / नियंत्रण के क्या तरीके हैं ? इन कुछ तथ्यों का इस इकाई में वर्णन किया गया है ?

हमारे देश में परजीवी ग्रसन (parasitic infestations) बहुत होते हैं । परजीवी जलन करते हैं तथा शारीरिक कार्यों में बाधा डालते हैं । ये शरीर के ऊतकों को नष्ट करते हैं तथा शरीर में विष उत्पन्न करते हैं जो कि स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं तथा विसंगतियाँ उत्पन्न करते हैं । *इकाई 13* में आप सामान्य परजीवी ग्रसन तथा उनकी रोकथाम / नियंत्रण के बारे में जानेंगे ।

इकाई 14 में खाद्य विषाक्तता (food poisoning)— वह रोग जो दूषित भोजन (जीवाणु या जीवाणु द्वारा उत्पन्न विष से दूषित भोजन) के सेवन से पाचन तंत्र के प्रभावित होने के कारण होता है — के बारे में बताया गया है । इस इकाई में खाद्य विषाक्तता के दो वर्गों – खाद्य संक्रमण (food infections) तथा खाद्य मादकता (food intoxications) के बारे में बताया गया है ।

अध्ययन दर्शिका

निम्न तथ्य आपको खंड 4 के अध्ययन को व्यवस्थित करने में सहायक होंगे :

1) खंड 4 में भोजन द्वारा उत्पन्न विसंगतियों जैसे अतिसार, पेचिश, हैजा, टायफाइड (मियादी बुखार) पीलिया तथा परजीवी ग्रसन, खाद्य संक्रमण तथा मादकता के बारे में बताया गया है। इन विसंगतियों की जटिलताओं के कारण तथा इनके फैलाव, तीव्रता की पहचान, रोकथाम तथा व्यवस्था के बारे में इस खंड में बताया गया है। इन्हें ध्यान पूर्वक पढ़ें।

2) भोजन द्वारा उत्पन्न निशिष्ट विसंगतियों के बारे में जानने से पहले, इस पाठ्यक्रम में प्रयोग किए गए कुछ तकनीकी शब्दों की परिभाषा जानना आपके लिए उपयोगी होगा। अत: आपको इस खंड के शुरू में "तकनीकी शब्दों को समझना" शीर्षक के अंतर्गत तथा प्रत्येक इकाई के अंत में दी गयी शब्दावली के अध्ययन की सलाह दी जाती है।

3) "ध्यान रखने योग्य बातें" अवश्य पढ़ें क्योंकि पाठ का सारांश उनमें दिया गया है।

तकनीकी शब्दों को समझना

इस खंड का अध्ययन करने से पूर्व आपका निम्न तकनीकी शब्दों से परिचित होना आवश्यक है। इन शब्दों को भली प्रकार समझ लें क्योंकि इस खंड में इन शब्दों का कई बार प्रयोग किया गया है।

संक्रमण (Infection) : मनुष्य या जानवर के शरीर में किसी संक्रामक कारक का प्रवेश और बहुगुणन। संक्रमण का अर्थ हमेशा संक्रमक रोग नहीं होता है। कई बार संक्रमण द्रष्टव्य (प्रत्यक्ष रूप से सामने नहीं आता) नहीं होता है अर्थात् उसके नैदानिक लक्षण नजर नहीं आते हैं। इस दशा को लक्षणहीन संक्रमण (subclinical infection) भी कहते हैं।

संक्रमक रोग (Infectious disease) : मनुष्य या जानवर में संक्रमण से होने वाले रोग। संक्रमक रोग से पीड़ित रोगी में नैदानिक लक्षण अर्थात् वे लक्षण जिनसे रोग की पहचान की जा सके, दिखाई देते हैं।

संक्रमक कारक (Infectious agent) : वह जीव - मुख्यत: सूक्ष्मजीव— जिनमें संक्रमण या संक्रमक रोग उत्पन्न करने की क्षमता होती है। अधिकांश संक्रमण उन जीवाणु या विषाणुओं के कारण होते हैं, जिन्हें मात्र आंखों से नहीं देखा जा सकता तथा उन्हें देखने के लिए साधारण या विशिष्ट सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता होती है।

ग्रसन (Infestation) : शरीर के ऊपर (उदाहरणत: टिक-चीचडी) या अंदर (जैसे कृमि) जानवर परजीवियों की उपस्थिति।

ऊष्मायन अवधि (Incubation period) : संक्रामक कारक के संपर्क तथा रोग के प्रथम लक्षण या चिन्ह के नजर आने के बीच का समय। आप यह बात समझ लें कि संक्रामक कारक के संपर्क तथा रोग के विकसित होने के बीच में एक निश्चित अंतराल होता है। इसे ऊष्मायन अवधि कहते हैं।

संचारी रोग (Communicable disease) : किसी विशेष संक्रामक कारक या इसके विषैले उत्पाद के कारण उत्पन्न रोग, जोकि उस कारक या उसके उत्पाद के संचिति जीव से ग्रहणशील परपोषी तक, प्रत्यक्ष संवहन अर्थात् संक्रमणग्रस्त व्यक्ति या जानवर से या अप्रत्यक्ष संवहन अर्थात् मध्यस्थ पौधे या परपोषी जीव, रोग वाहक (vector) या निर्जीव वातावरण के कारण होता है।

यह तो आपको मालूम होगा कि यदि एक व्यक्ति (ग्रहणशील परपोषी) किसी तपेदिक ग्रस्त रोगी (संक्रमण ग्रस्त व्यक्ति) के संपर्क में आता है तो उसके रोग की पकड़ने की संभावना बढ़ जाती है। इसी प्रकार मलेरिया मच्छरों के कारण फैलता है। दूसरे शब्दों में मच्छर मलेरिया के वाहक हैं।

संक्रमक कारकों के संचिति (Reservoir of infectious agents) : कोई भी मनुष्य, जानवर, पौधा, मिट्टी या निर्जीव पदार्थ जिसमें संक्रमक कारक साधारणतया रहता है तथा वृद्धि करता है तथा जीवित रहने के लिए मुख्यत: उसी पर निर्भर करता है या फिर इस प्रकार वृद्धि करता है जिससे कि वह किसी ग्रहणशील परपोषी के पास पहुँच सके।

संक्रमक रोगों के मामले में आप यह जानेंगे कि संक्रामक रोगों में मनुष्य संचिति है। ये उन जलाशयों के समान है जिनमें जल का भंडारण तथा फिर वितरण किया जाता है। संक्रमण के संचिति के मामले में रोग कारकों को आश्रय मिलता है तथा फिर वहाँ से दूसरों तक संवहन होता है।

परपोषी (Host) : मनुष्य या अन्य जीवित जानवर जैसे कि पक्षी या कीड़े जिनमें प्राकृतिक स्थितियों में संक्रामक कारकों को जीवन मिलता है।

ग्रहणशील (Susceptible) : वह व्यक्ति या जानवर जिसमें पूर्व संक्रमण या प्रतिरक्षीकरण के द्वारा रोधक्षमता (immunity) उत्पन्न न हुई हो, अत: उस व्यक्ति को रोग कारक के संपर्क में आने पर रोग होने की संभावना हो जाती है।

संचरणीय अवधि (Communicable period) : वह अवधि जिसमें संक्रामित व्यक्ति या जानवर से संक्रमण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दूसरे व्यक्ति तक फैल सकता है।

यह समझना आवश्यक है कि यदि व्यक्ति संचारी रोग से पीड़ित व्यक्ति के संपर्क में न आए तो उसे रोग नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, यदि आपको किसी रोग की संक्रमण अवधि मालूम हो तो आप संक्रामक रोग से बचने के लिए उचित कदम उठा सकते हैं। इसके लिए या तो रोगी को दूसरों से अलग रख सकते हैं या दूसरे व्यक्तियों को संक्रमण अवधि में रोगी के संपर्क में आने से रोक सकते हैं।

महामारी (Epidemic) : किसी समुदाय या क्षेत्र में स्पष्ट रूप से किसी रोग का सामान्य से अधिक अर्थात् विस्फोटक संख्या में होना। यह किसी सामान्य या उत्पादित स्रोत के कारण हो सकता है। कोई भी रोग जो कि बहुत समय से उस क्षेत्र में न हुआ हो, ऐसे में एक भी रोगी उस रोग की महामारी होने की संभावना का सूचक होता है।

स्थानिक रोग (Endemic) : किसी विशिष्ट क्षेत्र में होने वाला रोग या संक्रामक कारक। दूसरे शब्दों में, किसी विशेष क्षेत्र में रहने वाले समुदाय में किसी एक समय पर उस रोग से ग्रस्त व्यक्ति हों। उदाहरण के लिए मलेरिया भारत में स्थानिक रोग है।

संक्रमण का गुदा-मुखीय मार्ग (Faecal - oral route) : कुछ रोगों में संक्रामक कारक मल के साथ निकलता है तथा शरीर में मुंह द्वारा प्रवेश करता है। किसी कारक के मल से मुंह तक संवहन की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न होती है तथा अधिकतर इस विषय में मालूम नहीं चलता है।

संक्रमणी पदार्थ (Fomites) : ये वह पदार्थ है जो कि विसंगति फैलाने वाले जीवों से संदूषित होने के पश्चात् उस संक्रामक कारक को अन्य जीवों में फैला सकते हैं। गंदे वस्त्र, तौलिए, कपड़े, रूमाल, कप, चम्मच, पेंसिल, किताबें, गिलास, दरवाजे के हैंडिल, नल, शौचालय, चैन या फ्लश तंत्र, सिरिंज (इंजैक्शन लगाने की सुई), यंत्र तथा शल्य-पट्टियां इनके उदाहरण हैं।

अलक्षणीय या लक्षणहीन (Asymptomatic) : किसी रोग का ऐसा रूप / स्थिति जब नैदानिक लक्षण नजर न आये।

नैदानिक लक्षण (Clinical manifestation) : वे लक्षण या चिन्ह जिनके आधार पर रोग की पहचान की जा सके।

वाहक (Carriers) : यह वह व्यक्ति होते हैं जो किसी विशेष संक्रामक रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म जीवियों को आश्रय देते हैं। उनमें स्वयं में तो विसंगति के कोई लक्षण या चिन्ह नजर नहीं आते परन्तु ये दूसरे व्यक्तियों को संक्रमित कर सकते हैं।

सीरमीय परीक्षण या सीरम जांच (Serological test) : रक्त सीरम तथा उसके अवयवों की जांच विशेषकर रोग से शरीर की रक्षा करने में इनकी देन।

इकाई 11 सामान्य खाद्य-जन्य रोग — I

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 अतिसार

- 11.2.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?
- 11.2.2 अतिसार के लक्षण तथा जटिलताएं
- 11.2.3 अतिसार का नियंत्रण, रोकथाम तथा व्यवस्था

11.3 पेचिश

- 11.3.1 रोग–यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?
- 11.3.2 पेचिश के लक्षण तथा जटिलताएं
- 11.3.3 पेचिश का नियंत्रण, रोकथाम तथा व्यवस्था

11.4 हैजा

- 11.4.1 रोग–यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?
- 11.4.2 हैजा के लक्षण तथा जटिलताएं
- 11.4.3 हैजे का नियंत्रण, रोकथाम तथा व्यवस्था

11.5 सारांश

11.6 शब्दावली

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.1 प्रस्तावना

लगभग सभी विकासशील देशों में अधिकांशत: बच्चों में बीमारी तथा मृत्यु का मुख्य कारण अतिसार, पेचिश तथा हैजा जैसे रोग होते हैं । अनुमानत: भारत में कम से कम 15 लाख बच्चे अपना पांचवां जन्मदिन मनाने से पहले ही तीव्र अतिसार के कारण मृत्यु की गोद में चले जाते हैं। पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों में 40 प्रतिशत मृत्यु अतिसार के कारण होती है । इसका अर्थ यह है कि अतिसार एक मुख्य जनस्वास्थ्य समस्या है । अत: इस रोग ने जन स्वास्थ्य अधिकारियों का काफी ध्यान आकर्षित किया है क्योंकि इससे स्वास्थ्य सेवाओं पर भारी आर्थिक बोझ पड़ना शुरू हो गया है ।

पेचिश में रक्त और/या श्लेष्मल (mucous) के साथ पानी जैसे दस्त आते है तथा उदर में दर्द / पीड़ा भी हो सकती है । यद्यपि इस रोग की प्रचुरता का सही अनुमान उपलब्ध नहीं है, सम्पूर्ण भारत में विभिन्न कारणों से पेचिश होती है । इसके अतिरिक्त पेचीश का प्रकोप महामारी के रूप में भी देखने को मिलता है। उदाहरणत: 1984 में पश्चिमी बंगाल, त्रिपुरा, आसाम तथा उड़ीसा में पेचिश महामारी हुई थी जिसमें 80,000 लोग प्रभावित हुये थे तथा 2000 लोगों की मृत्यु हो गयी थी । इस रोग का विस्तार प्रचलन 10 - 50 प्रतिशत के बीच है।

हैजा विब्रियो कोलेरी (हैजे के जीवाणु) नामक सूक्ष्मजीवी द्वारा छोटी आंतों में होने वाला एक तीव्र संक्रमण है । इस रोग की शुरुआत पतले दस्तों से होती है । हैजे तथा इसके कुप्रभावों के बारे में शताब्दियों से मालूम है क्योंकि महामारी के रूप में इसके कारण बहुत अधिक मृत्यु तथा सामाजिक अव्यवस्था हुई है । हमारे देश के कुछ क्षेत्रों में जैसे महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश पश्चिमी बंगाल में हैजा एक स्थानिक रोग है। इस रोग के जीव आहार-नलो में विष उत्पन्न करता है जिससे इस रोग के लक्षण उभर कर सामने आते है।

इस इकाई में हम भोजन द्वारा उत्पन्न होने वाले तीन मुख्य रोगों के बारे में जानेंगे ।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- अतिसार,पेचिश तथा हैजे के प्रकार, कारण तथा फैलने के तरीकों से अवगत हो सकेंगे
- अतिसार, पेचिश तथा हैजे के लक्षणों तथा जटिलताओं की सूची बना सकेंगे, और
- इन रोगों के नियंत्रण, रोकथाम तथा व्यवस्था से संबंधी कारकों का वर्णन कर सकेंगे ।

11.2 अतिसार

अतिसार क्या है ?

अतिसार एक लक्षण है जिसमें अचानक बार-बार पानी की तरह पतले दस्त आते है, पेट में दर्द होता है व मरोड़ उठते हैं, कमजोरी आ जाती है और कभी-कभी बुखार और उल्टी भी हो सकती है।

अतिसार का यह अर्थ कदापि नहीं है कि बार-बार दस्त जाना पड़े। केवल एक बार पानी जैसा पतला दस्त होना भी अतिसार का लक्षण हो सकता है। अधिकतर अतिसार निम्न कारणों से होता है :

- गंदा व बासी भोजन खाने से
- गंदा पानी पीने से
- गंदे हाथों से खाना खाने से, या
- गंदे बर्तनों के प्रयोग से

अतिसार आम होने के कारण, कभी-कभी लोगों द्वारा गंभीरता से नहीं लिया जाता है। परन्तु अतिसार बहुत खतरनाक भी हो सकता है विशेषकर बहुत छोटे व कमजोर बच्चों में। इसलिए जैसे ही बच्चे को एक भी पतला दस्त आए तुरंत उसका उपचार प्रारंभ कर देना चाहिए।

अतिसार खतरनाक क्यों है ?

अतिसार बहुत खतरनाक होता है, विशेषकर बहुत छोटे व कमज़ोर बच्चों में। आपको मालूम होना चाहिए कि शरीर से तरल पदार्थों व खनिज लवणों (विद्युत अपघट्यों) की क्षति खतरनाक हो सकती है। इस स्थिति को निर्जलीकरण (चित्र 11.1) कहते हैं। यदि बहुत अधिक निर्जलीकरण हो जाये तो इससे मृत्यु भी हो सकती है। अत: अतिसार के रोगी में निर्जलीकरण की उग्रता का पता लगाना अति आवश्यक है।

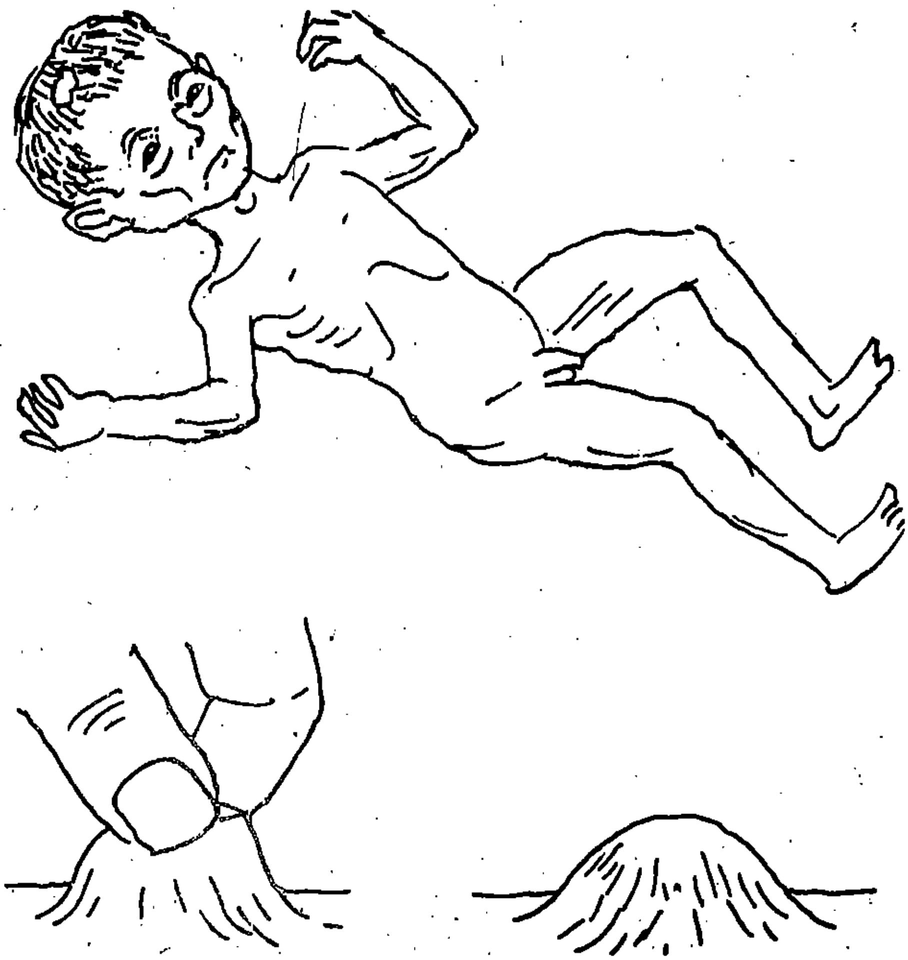

चित्र 11.1 : निर्जलीकरण

जब बच्चे के शरीर में जल की कमी हो जाती है तो ऐसा लगता है कि जैसे शरीर में सब कुछ सूख गया है। यदि बच्चे में निम्नलिखित चिन्हों में से कोई भी खतरे के चिन्ह दिखाई दें तो उसे तुरन्त चिकित्सक के पास ले जाना चाहिए :

1) आंखें शुष्क व धंसी हुई लगे जिनमें आंसू (पानी) न हो।

2) जीभ सूखी हो व प्यास बहुत लगे / बार-बार पानी मांगे।

3) बच्चे का सिर का मुलायम (कोमल) भाग धंसा हुआ लगे।

4) त्वचा ढीली पड़ जाए व झुरीदार लगे।

5) त्वचा पर चिकोटी काटने पर वह कुछ सेकेण्डों तक सिकुड़ी हुई रहे।

6) आवाज भारी व कर्कश हो जाये।

7) तेजी से व जल्दी-जल्दी श्वास लेना व हाँफना।

8) बेहोश हो जाना या दौरे पड़ना।

9) मूत्र बहुत कम या बिल्कुल न आये।

10) पेट फूल जाये विशेषकर कुपोषित बच्चों में।

11.2.1 रोग–यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?

आप जानते हैं कि अतिसार बच्चों में आम होता है। इसको उत्पन्न करने वाले कारक कौन से हैं ? तथा यह संक्रमण कैसे फैलता है ? अतिसार के अध्ययन में ये महत्वपूर्ण पहलू हैं। इस उपभाग में हम इन पहलुओं के बारे में पढेंगे आइए चर्चा की शुरूआत अतिसार के विभिन्न प्रकारों से संबंधित जानकारी से करें।

अतिसार के प्रकार : अतिसार दो प्रकार का होता है :- (1) तीव (Acute) तथा (2) दीर्घकालिक (Chronic) अतिसार। तीव्र अतिसार वह स्थिति है, जब अचानक दस्त लग जाते हैं तथा सामान्य रूप से 3 से 7 दिन तक रहते हैं। कभी-कभी यह 10 - 14 दिन तक भी हो सकते हैं। दीर्घकालिक अतिसार वह है, जब अतिसार 3 सप्ताह या अधिक समय तक रहता है।

अतिसार किन कारणों से होता है ? सभी विकासशील देशों में अतिसार संक्रमण के कारण होता है। अभी तक जीवाणु, विषाणु तथा परजीवियों को मिलाकर लगभग 25 ऐसे कारक ज्ञात हो चुके हैं जिनसे अतिसार रोग होते हैं। अतिसार करने वाले सबसे महत्वपूर्ण तथा सामान्य जीव निम्न है :

क) ***विषाणु :*** अकेला रोटा विषाणु (Rotavirus) शिशुओं और बच्चों में अतिसार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है। यद्यपि बहुत से अन्य प्रकार के विषाणु भी अतिसार उत्पन्न करते हैं।

ख) ***जीवाणु :*** बहुत से जीवाणु अतिसार उत्पन्न करते हैं जो कि निम्न है :

1) *एशरिकिआ कोली (Escherichia coli)* : यह एक ग्रैम-अग्राही (gram negative) जीवाणु है। प्राय: यह जीवाणु सामान्य व्यक्तियों व जानवरों की आंतों में पाया जाता है।

   कुछ इ. कोली ऐसा विष उत्पन्न करते हैं जिनसे अतिसार हो जाता है। कुछ अन्य प्रकार के ई.कोली विष नहीं उत्पन्न करते परन्तु फिर भी अतिसार का कारण हो सकते हैं।

2) *शीगैला (Shigellae)* : यह जीवाणु कुछ देशों में अतिसार का मुख्य कारण है। यह विशेषरूप से 9 वर्ष से छोटे बच्चों को प्रभावित करता है। यह आंतों में जलन पैदा करता है जिससे अतिसार हो जाता है। यद्यपि बार-बार दस्त होना (एक दिन में 10 से 70 बार) इसका सबसे सामान्य लक्षण है परन्तु कभी-कभी मल के साथ रक्त व श्लेष्मल भी निकलता है अर्थात् पेचिश हो जाती है।

3) *कम्पाइलोबैक्टर (Campylobacters)* : ये बहुत ही सक्रिय ग्रैग अग्राही जीवाणु है। यह किसी भी प्रकार का विष उत्पन्न नहीं करते हैं।

4) *विब्रियो - कोलेरी (Vibrio cholerae)*: जिन क्षेत्रों में अतिसार स्थानिक रोग के रूप में होता है, वहां 5 - 10 प्रतिशत मामलों में इसका कारण विब्रियो कोलेरी नामक जीवाणु है। इसका विस्तृत विवरण इकाई 11.1.3 में अलग से दिया गया है।

5) *सैल्मोनेला (Salmonella)*: ये जीव कई प्रकार के होते हैं लेकिन उनमें से केवल कुछ ही अतिसार करते हैं। इन जीवों द्वारा होने वाले संक्रमणों को साल्मनेलता (Salmonellosis) कहते हैं।

ग) अन्य संक्रमण

1) *गिआर्डिया (Giardia)* : यह जीव पाचन- तंत्र के ग्रहणी (duodenum) तथा जेजूनम (jejunum) नामक अंगों में पाया जाता है । ये जीव काफी अधिक संख्या में पाये जाते हैं । इन जीवों से होने वाले अतिसार को गिआर्डियता (giardiasis) कहते हैं।

2) *अमीबता (Amoebiasis)* : इसका विवरण अन्यत्र दिया गया है। इसके लिए इकाई 13 परजीवी ग्रसन देखें ।

विभिन्न जीव अलग - अलग तरीकों से अतिसार उत्पन्न करते हैं। कुछ जीव छोटी आंत की सतह में थोड़ा बहुत या बिल्कुल परिवर्तन नहीं करते हैं । जबकि अन्य कई आंतों की दीवारों के कुछ क्षेत्रों को काफी हानि पहुँचाते हैं । कुछ जीव प्रत्यक्ष रूप से आंतों की दीवारों को प्रभावित करते हैं जबकि अन्य विष उत्पन्न करके अपना प्रभाव डालते हैं ।

रोग के असंक्रमणीय रूप जैसे क्वाशियोरकर (कुपोषण का एक रूप), संग्रहणी रोग (Sprue), उदरगुदीय रोग (coeliac disease), पेलेग्रा, भी अतिसार का कारण हो सकते हैं । नवजात शिशुओं में अतिसार नहीं होता है । परन्तु यदि होता है तो कुछ जन्मजात विसंगतियों जैसे एंजाइमों की कमी के कारण होता है । यह शारीरिक संक्रमणों जैसे रक्त का विषैला (septicaemia) होने के कारण भी हो सकता है ।

बच्चों में दूध या कोई नया पदार्थ न पचा सकने, कुछ विशेष पदार्थों से ऐलर्जी या भोजन विषाक्तता के कारण भी अतिसार हो सकता है । अधिक मात्रा में कच्चे फल, मसाले युक्त भारी व तले पदार्थ खाने से भी अतिसार हो सकता है । कुछ दवाइयों के प्रतिकूल प्रभाव, मृदु विरेचक (laxative), सारक (purgative) का उपयोग तथा कुछ विष भी अतिसार पैदा करते हैं ।

संक्रमण के संचिति कौन हैं ?

अतिसार उत्पन्न करने वाले कुछ जीवों जैसे ई. कोली, शीगैला, वि. कोलेरी, गिआर्डिया के लिये मनुष्य मुख्य संचिति है । कम्पाइलोवैक्टर तथा साल्मनेला के लिए जानवर प्रमुख संचिति है ।

अतिसार किन्हें होता है?

आयु : अतिसार किसी भी आयु के व्यक्ति को हो सकता है, परन्तु बच्चों में यह अधिक पाया जाता है । कुछ अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि घुटनों के बल चलने वाले बच्चों में अतिसार होने की संभावना अधिक होती है।

लिंग : दोनों लिंगों में अतिसार होने की संभावना समान होती है ।

कुपोषण : सामान्य स्वस्थ बच्चे की अपेक्षा कुपोषित बच्चों को अतिसार बार-बार तथा अधिक भयंकर (तीव्र) रूप में होता है ।

सामाजिक कारक : गरीबी, भीड़, अज्ञानता तथा गलत खानपान की आदतों के कारण निम्न सामाजिक आर्थिक वर्गों में अतिसार अधिक होता है । सफाई की उचित सुविधाओं व व्यक्तिगत सफाई का अभाव, अपर्याप्त व अस्वच्छ पानी कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जो कि इन वर्गों में अतिसार उत्पन्न करने तथा उसके बार-बार होने के लिए उत्तरदायी हैं ।

मौसम : अतिसार वर्षा के दिनों में अधिक होता है जबकि पीने के पानी के दूषित होने की संभावना अधिक होती है । वर्षा के मौसम में अधिकांश जमीन में भूमिगत जल का स्तर बढ़ जाता है तथा मक्खियों का प्रजनन भी अधिक होता है । नदियों, नहरों तथा टैंकों में ताजा पानी भर जाता है जिससे उनमें प्रदूषकों के प्रवेश की संभावना भी अधिक हो जाती है ।

अतिसार किस प्रकार फैलता है ?

अतिसार अधिकतर गुदा-मुखीय मार्ग द्वारा फैलता है । जल, भोजन अथवा प्रत्यक्ष रूप से यह रोग फैलता है।

ऊष्मायन अवधि व संचरणीय अवधि : चूंकि अतिसार के लिए बहुत से जीव तथा कारक उत्तरदायी हैं अत: ऊष्मायन अवधि व संक्रमण अवधि भी इसे उत्पन्न करने वाले कारक के अनुसार अलग-अलग होती है ।

11.2.2 अतिसार के लक्षण व जटिलताएँ

तालिका 11.2 में निर्जलीकरण की विभिन्न श्रेणियों के लक्षण बताए गए हैं। यदि किसी व्यक्ति में किसी विशेष श्रेणी के दो या अधिक लक्षण नजर आए तो उसे उस श्रेणी के निर्जलीकरण से पीड़ित माना जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति को एक दिन में 10 से अधिक बार दस्त हो, साथ ही साथ उसे उल्टी भी हो रही है तो वस्तुतः उसकी दशा खराब ही है। वह बेहोशी की हालत में है व उसकी नब्ज धीरे चल रही है। इन लक्षणों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि वह गंभीर (severe) निर्जलीकरण से पीड़ित है।

अतिसार की जटिलताएं

जैसाकि पहले बताया जा चुका है कि अतिसार में बीमारी या मृत्यु का मुख्य कारण निर्जलीकरण है । यदि बच्चों को बार-बार अतिसार होता है तो वह अल्पपोषित रहेंगे तथा उनकी वृद्धि धीमी गति से होगी । अतिसार से पीड़ित बच्चों को भूख भी कम लगती है तथा वह ठीक प्रकार से भोजन को अवशोषित नहीं कर पाते है । इस दशा में बच्चे को तरल पदार्थ व भोजन (यहां तक कि माता का दूध भी न देना) बहुत सामान्य बात है । विभिन्न संक्रमणों के प्रति रोधक्षमता कम होने के कारण कुपोषित बच्चा संक्रमण व कुपोषण के दुश्चक्र में फंस जाता है तथा कभी भी वृद्धि में रह गई कमी को पुन: प्राप्त (catch-up growth) नहीं कर पाता है।

तालिका 11.1: रोग की गंभीरता के अनुसार अतिसार के लक्षण व चिन्ह

	प्रकटता (Manifestation)	मंद निर्जलीकरण	मध्यम निर्जलीकरण	गंभीर निर्जलीकरण
शिकायतें	अतिसार	एक दिन में चार से कम पतले दस्त	एक दिन में चार से दस बार पतले दस्त	एक दिन में 10 से अधिक पतले दस्त
	उल्टी	नहीं या बहुत कम	कुछ	बार-बार
	प्यास	सामान्य	सामान्य से ज्यादा	तरल पीने में असमर्थ
	मूत्र	सामान्य	कम मात्रा तथा गहरे, रंग का	6 घंटे से मूत्र नहीं आना
प्रेक्षण	स्थिति	अच्छी सतर्क व चौकन्ना	बीमार, नींद आना चिड़चिड़ापन	उनींदा, बेहोशी, दौरे भी पड़ सकते हैं
	आंसू	विद्यमान हैं	नहीं हैं	नहीं हैं
	आंखे	सामान्य	धंसी हुई	बहुत सुखी व अंदर धसी हुई
	मुंख व जीभ	गीला	सुखी	बहुत सूखी
	सांस	सामान्य	सामान्य से तेज	गहरी व बहुत तेज
अनुभव	त्वचा	चूटी काटने पर जल्दी से सामान्य स्थिति में आ जाती हैं	चूटी काटने पर धीरे से वापस जाती है	चूटी काटने पर बहुत धीरे वापस जाती है
	नब्ज	सामान्य	सामान्य से तेज	बहुत तेज,धीमी जोकि महसूस न हो
	कलांतराल (शिशु के सिर के आगे के भाग में बिना जुड़ी सामान्य संधि रेखा)	सामान्य	धंसा हुआ	बहुत धंसा हुआ

11.2.3 अतिसार का नियंत्रण, रोकथाम तथा व्यवस्था

चूँकि अतिसार में अधिकतर मृत्यु (60 से 70 प्रतिशत) निर्जलीकरण के कारण होती है, अत: अतिसारी रोगों पर नियंत्रण एक जन स्वास्थ्य समस्या मानी गयी है । इस निर्जलीकरण को मुख द्वारा पुन: जलीकरण उपचार (जीवन रक्षक घोल या ओ.आर.एस.) द्वारा रोका व ठीक किया जा सकता है । इस प्रकार जीवन रक्षक घोल द्वारा अतिसार से होने वाली मृत्यु संख्या को कम किया जा सकता है क्योंकि इसका प्रयोग सभी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर किया जा सकता है तथा घर पर भी परिवार के सदस्यों द्वारा भी किया जा सकता है । इसको ध्यान में रखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1978 में "अतिसार संबंधी रोग नियंत्रण कार्यक्रम" शुरू किया जिसके द्वारा जीवन रक्षक घोल के साथ-साथ अन्य तरीकों के प्रयोग पर बल दिया गया । ये तरीके एक दूसरे के प्रभाव को बढ़ाते हैं तथा इसके पूरक प्रभाव होते हैं । हालांकि ये सभी तरीके जीवन रक्षक घोल पर ही केन्द्रित है ।

अतिसारी रोग नियंत्रण कार्यक्रम के घटक क्या-क्या हैं ?

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अतिसारी रोग नियंत्रण के लिए प्रभावित कार्यक्रम घटक निम्नलिखित हैं :

- अतिसारी रोगों का उपचार
- परपोषी के संक्रमण प्रतिरोधशक्ति (resistance) को बढ़ाना
- रोगजनक कारकों के संचरण (फैलाव) को कम करना
- अतिसारी रोगों को महामारी के रूप में फैलने से रोकथाम

आइये प्रत्येक को विस्तार से समझें ।

क) अतिसारी रोगों का उपचार

मुख द्वारा पुन: जलीकरण उपचार (ओ.आर.टी.) यानि की जीवन रक्षक घोल : विभिन्न देशों में हुये भिन्न-भिन्न अध्ययनों से यह पूर्ण रूप से साबित हो चुका है कि किसी भी आयु में, किसी भी कारण से उत्पन्न अतिसार के रोगी में जटिलताओं को रोकने के लिए जीवन रक्षक घोल बहुत ही सक्षम उपाय है । जीवन रक्षक घोल की सफलता का वैज्ञानिक आधार उसमें उपस्थित शर्करा है जिसके कारण आंत जल तथा सोडियम को अवशोषित कर सकती है । अत्यधिक अतिसार होने पर भी यह क्रिया चलती रहती हैं । इस प्रकार जीवन रक्षक घोल द्वारा पहले हुई पानी की क्षति तथा उस समय हो रही तरल व खनिज लवणों की क्षति पूर्ति होती है । यद्यपि जीवन रक्षक घोल से अतिसार ठीक नहीं होता है। क्योंकि प्राय: अतिसार की एक निश्चित अवधि होती है । अतिसार अधिकतर सीमित समय के लिए होता है क्योंकि यह अपने आप ठीक होने वाला रोग है । अत: प्राथमिक चिकित्सा देखभाल के अंतर्गत, जीवन रक्षक घोल, अतिसार द्वारा उत्पन्न निर्जलीकरण के कारण होने वाली मृत्यु तथा रुग्णता को कम करने में एक सक्षम तथा सस्ता तरीका है । अब बहुत से देशों में अतिसार के नियंत्रण तथा उपचार में जीवन रक्षक घोल का प्रयोग बहुत व्यापक रूप में किया जाता है । पुन: जलीकरण उपचार के लिए सहायक कुछ निर्देश नीचे दिए गये हैं ।

संस्था ने निम्न घटकों से बने घोल (मुख द्वारा दिये जाने वाले) के प्रयोग की सलाह दी है ।

मुख द्वारा दिए जाने वाले पुन: जलीकरण घोल (Oral Rehydration fluid) की संरचना

सामग्री	मात्रा
सोडियम क्लोराइड (नमक)	3.5 ग्राम
सोडियम बाइकारबोनेट (मीठा सोडा)	2.5 ग्राम
पोटेशियम क्लोराइड	1.5 ग्राम
ग्लूकोज़	20.0 ग्राम
पीने योग्य पानी	1 लिटर

इस पुन: जलीकरण घोल से निम्न अनिवार्य विद्युत अपघट्य मिलते हैं :

घटक	मी.मोल प्रति लिटर घोल
सोडियम	90
पोटैशियम	20
क्लोराइड	80
बाइकारबोनेट	30
ग्लूकोज	11.1

जीवन रक्षक घोल के पैकेट अब सभी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, उपकेन्द्रों, ग्राम स्वास्थ्य सहायकों, आंगनवाड़ी तथा सभी चिकित्सालयों में उपलब्ध हैं । एक पैकेट को लिटर पेयजल में घोलना होता है । इस घोल को प्रतिदिन ताज़ा बनाना चाहिए, 24 घंटों के अन्दर-अन्दर इसका प्रयोग करना चाहिए और यदि विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्मित घोल उपलब्ध न हो तो नमक व चीनी का घोल, जिसमें चीनी तथा नमक व नींबू का रस डाला गया हो का भी प्रयोग किया जा सकता है । इस विधि में विभिन्न पदार्थों को हाथ से मापा जाता है । जैसे एक मुट्ठी चीनी तथा एक चुटकी नमक को एक लिटर पानी, जिसमें एक नींबू का रस डाला गया है, में घोला जाता है (चित्र 11.2)। यद्यपि यह निर्जलीकरण उपचार का उचित आर्दश तरीका नहीं है परन्तु अतिसार शुरू होने पर जीवन रक्षक घोल के उपलब्ध न होने की स्थिति में निर्जलीकरण को रोकने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है ।

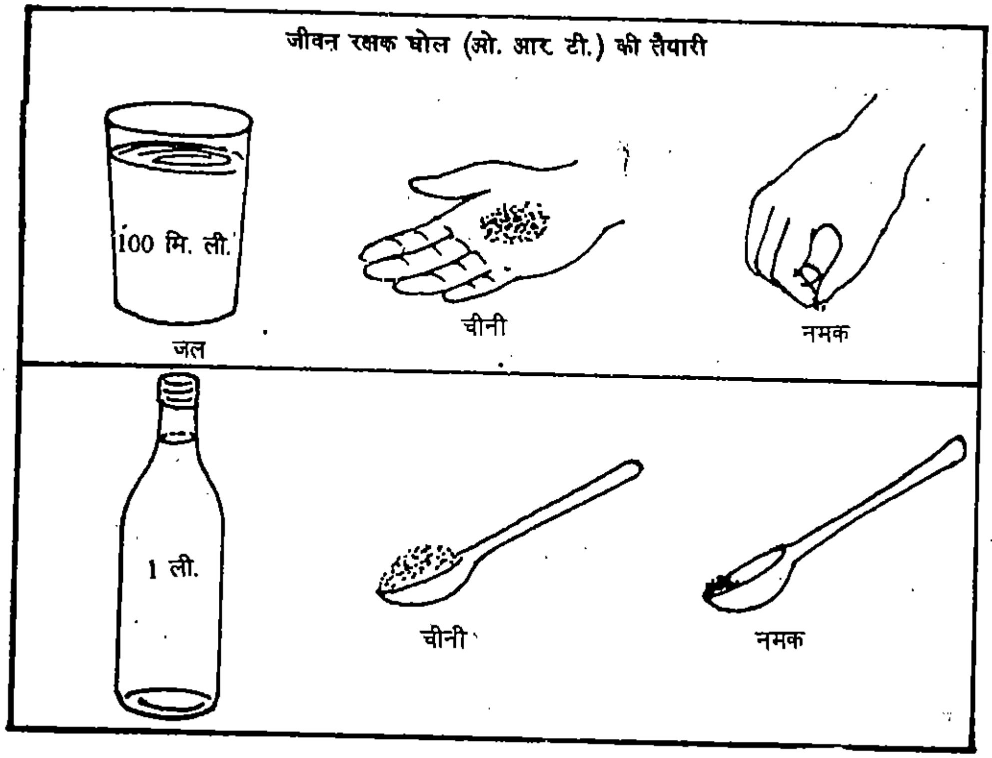

चित्र 11.2 : नमक व चीनी का घोल बनाने का घरेलू तरीका

न्य पुनः जलीकरण घोल (जीवन रक्षक घोल)

वेश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्मित जीवन रक्षक घोल के अतिरिक्त कुछ अन्य पुन: जलीकरण घोल भी ्रयोग किये जाते हैं। स्थानीय उपलब्धता तथा प्रयोग में सुविधा के कारण इन्हें अधिक महत्व दिया जाता है।

) पहले से निर्मित पैकेट बंद घोल

क) विश्व स्वास्थ्य संगठन फार्मूला जिसमें सूक्रोज़ होता है।

ख) व्यावसायिक पैकेट (Commercial Packets)

) घर पर बनाये गये घोल

क) नमक / चीनी फार्मूला

ख) चावल, कांज़ी, लस्सी, जौ के पानी आदि से बना जीवन रक्षक घोल

ग) चीनी के स्थान पर गुड़, शहद आदि से बना जीवन रक्षक घोल

घ) नारियल का पानी

ितना जीवन रक्षक घोल देना चाहिये?

ह निर्जलीकरण के स्तर / श्रेणी पर निर्भर करता है। मंद *निर्जलीकरण* के मामले में (अर्थात् जब रोगी को ्यास लगी हो, नब्ज़ सामान्य हो, जीभ गीली हो, त्वचा पर चिकोटी काटने पर त्वचा पुन: जल्दी वापस ली जाये) 4 घंटे के अंदर 50 मि.ली. प्रति किलोग्राम शरीर भार के हिसाब से तरल पदार्थ देने चाहिए।

ध्यम निर्जलीकरण के मामले में (अर्थात् जब रोगी को प्यास लगे, नब्ज की गति तीव्र व कमजोर हो, आंखें ्सी हुई लगे तथा जीभ सूखी हो तब) प्रति चार घंटे के अंदर 100 मि.ली. प्रति किलोग्राम शरीर भार के ्साब से तरल पदार्थ देने चाहिए।

भीर निर्जलीकरण के मामलों में (अर्थात् जब रोगी बेहोश हो, ठंडा हो, नब्ज बहुत धीमी हो, रक्तचाप भी ्म हो तथा चिकोटी काटने पर त्वचा बहुत धीरे वापस जाये, जीभ भी बिल्कुल सूखी हो) रोगी को तुरन्त ्कट के चिकित्सालय ले जाना चाहिए। इस दशा में चिकित्सक ही यह निर्णय ले सकता है कि रोगी को ्त: शिरा द्रव्य (Intravenous fluid) दिया जाए और क्या उपचार दिया जाए।

ुरक्षण उपचार (Maintenance therapy)

्क बार निर्जलीकरण ठीक होने पर अर्थात् जब निर्जलीकरण के लक्षण समाप्त हो जायें अनुरक्षण उपचार ्लिए मुंह द्वारा तरल पदार्थ दिये जाने चाहिए। इसका सामान्य सिद्धांत यह है कि तरल पदार्थ की ्सको नापा जा सकता है) इतनी मात्रा लेनी चाहिए जिससे शरीर द्वारा मल व उल्टी में निष्कासित जल

की कमी (जिसे नापा जा सकता है) को पूरा किया जा सके। यद्यपि वयस्क तथा बड़े बच्चों में, प्यास या पानी पीने की इच्छा, तरल पदार्थ की आवश्यकता बताने के लिए पर्याप्त है। उनको अपनी प्यास बुझाने के लिए जल के स्थान पर जीवन रक्षक घोल पीने की सलाह दी जा सकती है। निर्जलीकरण की स्थिति में (जब हर दो घंटे में लगभग 1 बार दस्त आये), मात्रा के हिसाब से, एक दिन में प्रति किलो शरीर भार के लिए 100 मि.ली. तरल पदार्थ लेने चाहिए। गंभीर अतिसार में (हर दो घंटे में एक से अधिक बार दस्त आये) मल द्वारा निष्कासित तरल की क्षति को पूरा करने के लिए, निष्कासित तरल के बराबर, तरल पदार्थ दें या अगर इसे मापा न जा सके तो प्रति घंटे में 15 मि.ली. तरल प्रति किलो शरीर भार के अनुसार दें।

उचित सम्भरण (Appropriate feeding) : हमारे समाज में यह एक आम धारणा है कि अतिसार के समय पाचन तंत्र को आराम मिलना चाहिए। वास्तव में जैसे ही रोगी खाने योग्य हो जाए, उसे सामान्य भोजन देना प्रारम्भ करें। यही सलाह स्तनपान करने वाले शिशुओं के लिये भी दी जाती है। माँ का दूध दो प्रकार से मदद करता है। प्रथम यह पोषक तत्व प्रदान करता है तथा शरीर के पुन: जलीकरण में सहायक होता है। दूसरा अपनी संक्रमण प्रतिरोधी गुणों के कारण यह अन्य संक्रमणों को होने से रोकता है। आपको पाठ्यक्रम 1 के खंड 6 की इकाई 20 के उपभाग 20.3.2 में अतिसार की आहार व्यवस्था के विषय में की गई चर्चा याद होगी। वहां बताई गयी सभी बातें यहाँ भी उपयुक्त हैं। उन्हें एक बार फिर से ध्यानपूर्वक पढ़ें।

रसायन चिकित्सा : साधारण अतिसार में प्रतिजैविकों का प्रयोग बिल्कुल अनुपयोगी समझा जाता है। जबकि अतिसार करने वाले जीव जैसे शीगैला, कम्पाइलोबैक्टर या गिआर्डिया, के निश्चित होने पर उचित प्रतिजैविकों से उपचार करना चाहिए। परन्तु यह भी उचित चिकित्सक की सलाह से लेने चाहिए। अब हम अतिसारी रोग नियंत्रण कार्यक्रम के दूसरे घटक पर चलें।

ख) रोगी में संक्रमण के प्रति रोधक क्षमता बढ़ाना

नीचे बताए गए तीन कारक रोगी की संक्रमण के प्रति रोधक क्षमता को प्रभावित करते हैं।

मातृक पोषण : गर्भवती स्त्री के पोषण को बेहतर बनाने से जन्म के समय कम भार की समस्या को कम किया जा सकता है तथा इस प्रकार नवजात शिशु की सामान्य संक्रमणों के प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। गर्भवती व स्तनपान कराने वाली स्त्रियों का पोषण बढ़ाने से माँ के दूध की गुणवत्ता को भी बढ़ाया जा सकता है।

बाल्यावस्था में पोषण

क) *स्तनपान :* स्तनपान को बढ़ावा देकर शिशु में पाई जाने वाले अतिसारी रोगों को कम किया जा सकता है। अपने संक्रमण - रोधी गुणों के कारण माँ का दूध सबसे अच्छा माना जाता है। व्यवसायिक तथा कृत्रिम शिशु आहारों के प्रयोग से बचना चाहिए।

ख) *स्तन्यमोचन (Weaning) प्रक्रिया में सुधार लाना :* शिशु को चौथे या पांचवें महीने से अर्द्धठोस आहार देने से उनकी प्रतिरोध शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। बेहतर है कि पूरक आहार स्थानीय खाद्य पदार्थों से बनाये जायें।

ग) *पूरक आहार (Supplementary feeding) :* बढ़ते बच्चों के आहार अन्तग्रहण के प्राक्कलन से यह ज्ञात हुआ है कि उनमें से अधिकांश का आहार उनकी आवश्यकता पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होता है। अत: संवेदनशील आयु अर्थात् 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों को पूरक आहार अवश्य देना चाहिए। पूरक आहार बनाते समय उचित स्वच्छता का भी ध्यान रखना अनिवार्य है।

टीकाकरण (प्रतिरक्षीकरण) : अतिसार, खसरे में उत्पन्न होने वाली एक प्रमुख जटिलता है। अत: खसरे के प्रतिरक्षी टीके लगाना अतिसार नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण उपाय है। रोटा विषाणु के लिए प्रतिरक्षीकरण भी अभी विकासाधीन है। अतिसार नियंत्रण कार्यक्रम के अंतर्गत तीसरा अंत:क्षेप इस विसंगति को फैलाने वाले कारकों का संवहन रोकना है। ऐसा किस प्रकार किया जाता है, आइए जानें।

ग) रोगजनक कारकों के संवहन (transmission) को कम करना

स्वास्थ्य शिक्षा तथा जन स्वास्थ्य अभियांत्रि (Public health engineering) (स्वच्छता) की दिशा में कठोर प्रयास रोग जनक कारकों के संवहन को कम कर सकते हैं। अत: हमें निम्न दिशाओं में प्रयास करने चाहिए।

सुरक्षित जल संभरण : प्रत्येक घर को सुरक्षित पेयजल की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

स्वच्छ रूप से उत्सर्ग / मल का निपटान : शौचालयों का निर्माण व उचित रख-रखाव अनिवार्य है। मनुष्य या जानवरों के मल द्वारा होने वाले अतिसारी रोगों को फैलने से रोकने के लिए मक्खियों के जनन का नियंत्रण।

घरेलू स्वच्छता : घर में तथा घर के आसपास स्वच्छता तथा घर के प्रत्येक सदस्य द्वारा खाने से पहले हाथ धोने की आदत को बढ़ावा देना चाहिए। स्वास्थ्य शिक्षा में फल तथा सब्जियों को धोकर प्रयोग करने की आदत पर बल देना चाहिए । पके हुये खाद्य पदार्थों के उचित भंडारण को बढ़ावा देना चाहिए जिससे कीड़ों व कृतकों से बचाव हो सके ।

अंत में हम अतिसार के नियंत्रण व रोकथाम पर आते हैं ।

घ) अतिसारी महामारी (Diarrhoeal epidemics) का नियंत्रण व रोकथाम

यह केवल जन स्वास्थ्य विभागों को मजबूत करके विशेषकर जानपदिकरोग विज्ञानी निगरानी पद्धति (epidemiological surveillance system) की व्यवस्था करके ही संभव है । इसके लिए समुदाय में अतिसार संबंधी रोगों पर लगातार निगरानी रखने की आवश्यकता है । इसके अंतर्गत निम्नलिखित पर निगरानी रखनी पड़ेगी—अतिसार की व्यापकता तथा आपतन, इसके कारण इसका मर्त्यता पर प्रभाव, रुग्णता (रोग की आक्रमण दर तथा अवधि के अनुसार), पोषण स्तर पर इसके परिणाम, समुदाय की स्वास्थ्य आदतें, प्रचलित स्वच्छता सुविधायें जिससे अतिसार हो सकता है । अत: निगरानी से हमें बदलती हुई नई आवश्यकतायें तथा स्वास्थ्य देखभाल के प्रभाव को जानने का आधार मिलेगा । अतिसारी रोगों के नियंत्रण व रोकथाम में आपकी भूमिका ऊपर बताये गये कारकों की, निगरानी करने में है । किसी भी असफलता के कारणों का पता लगाएं तथा लोगों को अतिसार के कारकों तथा प्रभावों के बारे में शिक्षित करें । स्वास्थ्य शिक्षा में मुंह द्वारा पुन: जलीकरण उपचार करने पर बल देना चाहिए ।

इस भाग में वर्णित मुख्य बातें नीचे याद रखने योग्य बातों के अंतर्गत दी गयी हैं ।

याद रखने योग्य बातें

अतिसार

- अतिसार एक लक्षण है, जो अचानक बार-बार पानी की तरह पतले दस्त होने से संबंधित हैं।
- अतिसार से कुपोषण होता है तथा कुपोषण से अतिसार का प्रभाव अधिक हो जाता है ।
- निर्जलीकरण अतिसार से होने वाली मृत्यु का मुख्य कारण है ।
- मुंह द्वारा पुन: जलीकरण उपचार से निर्जलीकरण को रोका व ठीक किया जा सकता है ।
- अतिसारी रोग नियंत्रण कार्यक्रम के घटक निम्न हैं :
  - अतिसारी रोगों का उपचार
  - संक्रमण के प्रति परपोषी की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाना
  - बीमारी के फैलने को कम करना
  - अतिसार महामारी के रूप में न फैलने देना

बोध प्रश्न 1

1) अतिसार उत्पन्न करने वाले जीवों की सूची बनाएं ।

....

....

....

....

....

2) अतिसार-ग्रस्त बच्चे में निर्जलीकरण को आप कैसे रोकेंगे? बताएँ ।

....

....

....

....

....

11.3 पेचिश

उदर में पीड़ा के साथ या इसके बिना रक्त और / या श्लेष्म युक्त बार-बार पतले दस्त का होना पेचिश कहलाता है। यद्यपि यह रोग होने के सही प्राक्कलन उपलब्ध नहीं है तथापि भारत में पेचिश होने के कारण सामने आए हैं। इसके अतिरिक्त पेचिश महामारी के रूप में बार-बार फैलती रहती है। उदाहरणत: 1984 में बंगाल, त्रिपुरा, आसाम व उड़ीसा में जब यह महामारी के रूप में आई तो 80,000 लोग इससे प्रभावित हुए व 2000 मृत्यु को प्राप्त हुए। इस रोग की व्यापकता 10 - 50 प्रतिशत है।

11.3.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है? कब और कैसे फैलता है ?

पेचिश विभिन्न प्रकार के जीवों के द्वारा उत्पन्न संक्रमण से होती है। कारक जीव के अनुसार इसका वर्णन किया जा सकता है। वह इस प्रकार है :

शीगैलता (Shigellosis): शीगैला, अतिसार व पेचिश का (विशेषकर बच्चों में) मुख्य आम कारण है। शीगैला एक जीवाणु है तथा पाचननाल की आंतों की दीवारों की श्लैष्मल में जलन उत्पन्न कर देता है तथा उसके अन्दर प्रवेश कर नुकसान पहुँचाता है।

अमीबता : यह एक परजीवी संक्रमण है जोकि एन्टीअमीबा हिस्टोलिटिका नामक प्रोटोजोआ से होता है। यह रोग संक्रमित व्यक्तियों में से केवल 10 प्रतिशत में ही दृष्टिगत होता है। अतिसार व पेचिश करने के अतिरिक्त, अमीबा शरीर के अन्य अंगों जैसे बड़ी आंत, यकृत, मस्तिष्क, तिल्ली, त्वचा आदि को भी संक्रमित कर सकता है। यकृत की विसंगति जिसे यकृत अमीबता (hepatic amoebiasis) कहते हैं, भारत में बहुत पायी जाती है। अनुमानत: अमीबता से भारत की 15 प्रतिशत जनसंख्या प्रभावित है।

कम्पाइलोबेक्टर, बैलेन्टीडियासिस, गिआर्डियता तथा टायफाइड न करने वाला साल्मोनेला भी पेचिश कर सकता है। सूक्ष्मजैविक जांच (Microbiological investigations) द्वारा व्यक्तिगत मामलों या महामारी की स्थिति में कारक जीवों की पहचान करना संभव है।

यह संक्रमण किन्हें होता है ?

सामान्यत: पेचिश किसी भी आयु में हो सकती है। दोनो लिंग समान रूप से इससे प्रभावित होते हैं। अमीबता एक घरेलू संक्रमण है यदि घर में किसी एक को यह संक्रमण हो जाये तो उस परिवार के अन्य सदस्यों को इस संक्रमण के होने की अधिक संभावना होती है। अल्पपोषित व्यक्ति को इस संक्रमण के होने की ज्यादा संभावना होती है। अतिसार की भांति पेचिश भी समाज के निम्न सामाजिक आर्थिक वर्गों में अधिक होती हैं। यूँ तो सभी को पेचिश हो सकती है परन्तु बच्चों में पेचिश अधिक गंभीर रूप में होती है। सभी वृद्ध, शीर्ण व्यक्ति तथा कुपोषण से ग्रस्त व्यक्ति इस रोग के प्रति ज्यादा संवेदनशील हैं।

संक्रमण के संचिति : मनुष्य इस संक्रमण का मुख्य संचिति है। कुछ जीवों के लिये जानवर भी मुख्य संचिति होते हैं।

संक्रमण किस प्रकार फैलता है ?

अतिसार की भांति पेचिश करने वाले जीवों का संवहन भी मुख्यत: केवल गुदा - मुखीय मार्ग से होता है। हालांकि यह रोग दूषित जल, भोजन या प्रत्यक्ष संवहन से भी हो सकता है।

ऊष्मायन अवधि : कारक जीव की किस्म के अनुसार ऊष्मायन अवधि अलग-अलग होती है। अमीबता के मामले में ऊष्मायन अवधि 3 या 4 सप्ताह होती है। अत्यधिक संक्रमण में ऊष्मायन अवधि छोटी हो जाती है। शीगैलता में यह 1 से 7 दिन, सामान्यतया 4 दिन होती है। गिआर्डियता में यह 6 से 22 दिन हो सकती है।

संचरणीय अवधि : अमीबता में संचारणीय अवधि तब तक रहती है, जब तक रोगी के मल में अमीबा निकलते रहते हैं। यदि रोगी का पता न लग पाये या उसका उपचार न हो तो यह काल कई वर्षों तक चलता है। शीगैलता के मामले में संचरणीय अवधि संक्रमण के तीव्र काल से शुरू होता है तथा उसके 4 सप्ताह बाद तक रहती है। गिआर्डिया में संचरणीय अवधि जब तक संक्रमण हो तब तक रहती है।

वाहक स्थिति (Carrier State) : शीगैलता में वाहक अवस्था प्राय: कम होती है पर कभी-कभी यह एक वर्ष तक भी रहती है। अमीबता में वाहक अवस्था काफी लम्बी होती है। गिआर्डियता के मामले में भी वाहक स्थिति लम्बी होती है।

पर्यावरणीयकारक : पेचिश के लिए वही पर्यावरणीय कारक उत्तरदायी है जो कि अतिसार के लिये उत्तरदायी होते हैं।

पेचिश किस प्रकार फैलती है?

पेचिश अधिकांशतः गुदा-मुखीय मार्ग द्वारा फैलती है। इसके फैलने का दूसरा तरीका प्रत्यक्ष संवहन है। पेचिश फैलने के लिए अन्य वही सब कारक उत्तरदायी हैं जिनके विषय में अतिसार में बताया जा चुका है।

11.3.2 पेचिश के लक्षण व जटिलताएं

अधिकांशतः ज्वर से पेचिश की शुरुआत होती है। अधिकतर रोगी मल के साथ रक्त और / या श्लेष्मल का निष्कासन, उदर में मरोड़, उल्टी, बार-बार मल जाने की इच्छा परन्तु जाने पर मल निष्कासित करने में असमर्थता, की शिकायत करते हैं। यदि पेचिश के साथ अतिसार होता है गंभीरता के अनुसार निर्जलीकरण के लक्षण नजर आते हैं। यदि मल की सूक्ष्मदर्शीका द्वारा जाँच की जाए तो कारक जीव की पहचान की जा सकती है।

जटिलताएं : यदि पेचिश की सही समय पर पहचान न की जाये या उचित उपचार न किया जाये तो इससे कुछ निम्नलिखित जटिलताएं पैदा हो सकती हैं :

1) तरल पदार्थों की क्षति के कारण निर्जलीकरण
2) रक्त की क्षति के कारण ऐनिमिया
3) एक बार प्रभावित होने पर रोग की चिरकारिता (Chronicity of disease), तथा
4) कभी-कभी मृत्यु

11.3.3 पेचिश का नियंत्रण, रोकथाम तथा व्यवस्था

पेचिश के नियंत्रण और रोकथाम के उपाय ऊपर वर्णित अतिसार की रोकथाम व नियंत्रण उपायों के समान ही हैं।

व्यवस्था : चूंकि अधिकांश कारक जीवों के लिए विशेष उपचार होता है, अतः कारक जीव की पहचान के लिए मल की जाँच करवानी चाहिए, जिससे की कारक जीव की विशिष्ट प्रतिजीवियों के प्रति संवेदनशीलता के बारे में पता लगाया जा सके तथा योग्य चिकित्सक की सलाह से उचित उपचार शुरू किया जा सके। इसके साथ-साथ ज्वर व उदर में दर्द का उपचार कराना आवश्यक है। यदि साथ में निर्जलीकरण भी हो तो निर्जलीकरण श्रेणी को पहचानना चाहिए तथा अतिसार में बताये गये तरीके के अनुसार इस समस्या से निपटना चाहिए। किसी भी प्रकार का आहारीय प्रतिबंध नहीं लगाना चाहिए तथा पोषण स्तर को बनाये रखना चाहिए। रक्त की क्षति के कारण, हीमोग्लोबिन के स्तर की जांच करानी चाहिए तथा यदि आवश्यकता हो तो चिकित्सक की सलाह अनुसार रक्त - संबंधी दवाएँ (haematenics) (लौह तत्व के पूरक) भी देनी चाहिए।

ध्यान रखने योग्य बातों के अंतर्गत पेचिश का सारांश दिया गया है, इसे ध्यानपूर्वक पढ़ें।

ध्यान देने योग्य बातें
पेचिश

पेचिश में उदर पीड़ा के साथ या इसके बिना रक्त और / या श्लेमल युक्त बार-बार पानी जैसा पतले दस्त होते हैं।

- यह बहुत से जीवाणु या परजीवियों के कारण होती है।
- मनुष्य इस संक्रमण का मुख्य संचिति है।
- यह गुदा-मुखीय मार्ग या प्रत्यक्ष संवहन द्वारा फैलता है।
- इसका सामान्य लक्षण ज्वर, बार-बार रक्त और / या श्लेष्मल युक्त दस्त आना, उदर में मरोड़, उल्टी व निर्जलीकरण हैं।
- इसकी व्यवस्था के अंतर्गत मल की जाँच द्वारा जीव की पहचान कर सही उपचार करना आते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) पेचिश की रोकथाम के लिए आप क्या कदम उठायेंगे ?

....

....

....

....

....

2) पेचिश उत्पन्न करने वाले दो कारकों की सूची बनाएँ ।

....

....

....

....

....

11.4 हैजा

हैजा विब्रियो कोलेरी नामक सूक्ष्मजीव द्वारा उत्पन्न छोटी आंतों का एक तीव्र संक्रमण है । इसकी शुरुआत पानी जैसे दस्तों से होती है । शताब्दियों से हैजा महामारी के रूप में प्रसिद्ध है क्योंकि इसके फलस्वरूप बहुत अधिक मृत्यु तथा सामाजिक अव्यवस्था हुई है ।

हमारे देश के कुछ प्रदेशों जैसे महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, पश्चिमी बंगाल में हैजा स्थानिक रोग के रूप में होता है । यह जीव आहार नली (gut) में एक विष उत्पन्न करता है, जिसके कारण यह रोग होता है।

11.4.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है? कब और कैसे फैलता है ?

हैजा किन कारणों से होता है ?

जिस जीव के कारण हैजा होता है उसे विब्रियो कोलेरी समूह कहते हैं । इस समूह में दो जैव प्रकार के जीव पाये जाते हैं ।

(1) क्लैसिकल (classical) प्रकार (2) ई एल टॉर (EL Tor) प्रकार। आजकल हैजा अधिकतर ई एल टॉर वर्ग जीव से होता है । इन दो प्रकार के जीवों को तीन सीरमीय प्रकारों में बांटा जा सकता है । इनावा, (Inaba), ओगावा (Ogava) तथा हाइकोजीमा (Hikojima) । भारत में पाए गए ई एल टॉर विब्रियोस ओगावा सीरो वर्ग से संबंधित हैं ।

संक्रमण का संचिति : हैजा संक्रमण का संचिति मनुष्य है । मनुष्य रोगी या वाहक दोनों हो सकता है ।

संक्रामक सामग्री : रोगी या वाहक का मल तथा उल्टी दोनों द्वारा संक्रमण फैलता है ।

ऊष्मायन अवधि : हैजा की ऊष्मायन अवधि कुछ घंटों से लेकर 5 दिन औसत : 1 से 2 दिन तक होती है।

संचरणीय अवधि : हैजा संक्रमण में संचरणीय अवधि 7 से 10 दिन होती है । रोगनिवृत्ति वाहक (Convalescent carrier) 2 से 3 सप्ताह तक संक्रमित रहते हैं । रोगनिवृत्ति वाहक की अवस्था 10 वर्ष तक रह सकती है ।

हैजा के वाहक : वाहक वह व्यक्ति है जो देखने में स्वस्थ दिखता है परन्तु वह कारक जीव विब्रियो कोलेरी निष्कासित करता है । इस रोग के 4 वाहक हैं ।

1) *पूर्वनैदानिक या ऊष्मायन संबंधी वाहक (Preclinical or incubatory carrier):* ये वे लोग हैं जिनका रोग से संपर्क हुआ है परन्तु उनमें रोग के लक्षण नहीं दिखाई देते हैं अर्थात् उनके रोगी होने की संभावना होती है ।

2) *रोगनिवृत्ति वाहक:* वह रोगी जिनको हैजा हुआ परन्तु वह ठीक हो गया हो पर वह फिर भी विब्रियो कोलेरी जीव निष्कासित करते हों । यह अनुपयुक्त प्रतिजैविकों के उपचार के कारण होता है । यह स्थिति 2 से 3 सप्ताह तक रह सकती है ।

3) *संपर्क या स्वस्थ वाहक :* ये वे लोग है जिन्हें रोगी के या संक्रमित वातावरण में रहने के कारण उपनैदानिक संक्रमण हुआ हो। रोग फैलाने में यह वाहक मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं ।

4) *चिरकालिक वाहक:* यह अवस्था तब उत्पन्न होती है, जब कारक जीव अर्थात् विब्रियो कोलेरी पित्ताशय में रहता है तथा लगातार निष्कासित होता रहता है । यह अवस्था 10 वर्ष तक जारी रह सकती है ।

यह रोग किन्हें होता है?

आयु व लिंग : हैजा सभी आयु व दोनों लिंगों के व्यक्तियों को समान प्रभावित करता है । उन क्षेत्रों में जहाँ हैजा स्थानिक रोग के रूप में होता है, वहाँ बच्चे सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं । महामारी में जो लोग एक स्थान से दूसरे स्थान जाते रहते हैं वे जल्दी प्रभावित होते हैं क्योंकि उन्हें दूषित पानी व भोजन का प्रयोग करना पड़ सकता है ।

जनसंख्या गतिशीलता (Population mobility) : तीर्थ यात्रा, विवाह, मेला तथा त्यौहारों में लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के कारण संक्रमण होने का खतरा बढ़ जाता है।

आर्थिक स्तर : सफाई का निम्न स्तर होने के कारण हैजा निम्न सामाजिक आर्थिक वर्गों में अधिक होता है ।

प्रतिरक्षी क्षमता (Immunity): एक बार हैजा होने पर उस व्यक्ति में भविष्य में हैजा से रक्षा के लिए अस्थायी प्रतिरक्षी क्षमता उत्पन्न हो जाती है । यह प्रतिरक्षी क्षमता हैजा होने के 10 दिन बाद से 7 महीने बाद तक रहती है ।

पर्यावरणीय कारक : आसपास की स्वच्छता का निम्न स्तर भी रोग फैलने का एक कारण है । कुछ महत्वपूर्ण पर्यावरणीय कारक निम्न हैं :

1) जल-मल द्वारा दूषित जल हैजा फैलाने के लिए उत्तरदायी एक महत्वपूर्ण कारक हैं ।

2) खाद्य पदार्थ : दूध व दूध से बने पदार्थ तथा उबले हुए चावल हैजा उत्पन्न करने वाले जीव की वृद्धि के लिये अनुकूल माध्यम हैं। दूषित जल से धोए गए फल व सब्जियाँ भी रोग फैलाते हैं ।

3) मक्खियां : मक्खियां भी रोग उत्पन्न करने वाले कारकों का संवहन करती है तथा उनमें स्वयं में भी ये जीव पाए जाते हैं ।

4) सामाजिक कारक : मनुष्य मल से जल व मिट्टी का प्रदूषण, उचित स्वच्छता सुविधाओं का अभाव, निम्न स्तर की व्यक्तिगत स्वच्छता, शिक्षा का अभाव, निम्न आर्थिक स्तर, अत्यधिक भीड़भाड़ तथा अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं कुछ ऐसे सामाजिक कारक है जो कि हमारे देश में हैजा के स्थानिक प्रचलन तथा फैलाव के लिए उत्तरदायी हैं ।

यह रोग किस प्रकार फैलता है ?

हैजा गुदा-मुखीय मार्ग से फैलता है । दूषित जल, दूषित भोजन व पेय इस रोग के फैलाने में मुख्य भूमिका अदा करते हैं । रोगी के मल व उल्टी के असावधानीपूर्वक निष्कासन व रोगी के कीटाणु-युक्त कपड़ों से भी हैजा एक व्यक्ति से दूसरे में फैलता है ।

11.4.2 हैजा के लक्षण व जटिलताएं

हैजे के बहुत से लक्षण होते हैं जिसमें अप्रकट (अस्पष्ट) संक्रमण से लेकर बहुत घातक प्रभाव वाले भयानक लक्षण भी हो सकते है । सामान्यतया बिना दर्द के अचानक से पानी जैसे दस्त हो जाते है । रोगी की शुरू की अवस्था में अधिकतर उल्टी होती है, बिना गंध का तरल मल जिसमें कुछ श्लेष्मल हो, आता है । इसे चावल के पानी जैसा दस्त (rice water stool) कहते हैं । रोगी को हल्का सा सिर दर्द, उत्तेजना, प्यास तथा मांसपेशियों में खिंचाव या ऐठन की शिकायत हो सकती है । रोगी में साइनोसिस (Cyanosis) (श्लेष्मा भिल्ली का नीला होना), तीव्र हृदय गति तथा नब्ज का तेज चलना, रक्त चाप कम होना, जल्दी-जल्दी सांस लेना, त्वचा शुष्क होना तथा त्वचा का लचीलापन समाप्त होना, चिकोटी काटने पर त्वचा धीरे वापस लौटना, मूत्र का कम आना तथा निर्जलीकरण के अन्य लक्षण (जैसे आंखों की पुतली का धंसना, होंठ व जीभ का सूख जाना आदि) नज़र आते है । यदि तरल तथा विद्युत अपघट्य की हानि को शीघ्र पूरा न किया जाये तो घातक (fatality) दर 30 से 40 प्रतिशत हो सकती है ।

जल्दी-जल्दी पानी जैसे दस्त होने से निर्जलीकरण हो जाता है। यह शरीर से तरल तथा विद्युत अपघट्य की बहुत अधिक हानि से होता है। यदि इस हानि की पूर्ति न की जाये तो गंभीर निर्जलीकरण के कारण कभी-कभी मृत्यु भी हो सकती है या शरीर का कोई मुख्य अंग जैसे गुर्दे काम करना बंद कर सकते है। बड़ी महामारी में मृत्यु दर 40 से 50 प्रतिशत तक हो सकती है।

11.4.3 हैजे की व्यवस्था, रोकथाम तथा नियंत्रण

व्यवस्था : चूंकि निर्जलीकरण हैजे का सामान्य लक्षण है, अत: हैजे की व्यवस्था में पहला कदम निर्जलीकरण को नियंत्रित करना है। निर्जलीकरण को कैसे ठीक करें ?

पुन: जलीकरण अर्थात् तरल व विद्युत अपघट्यों की हानि को पूरा करके हैजे का उचित रूप से उपचार किया जा सकता है। पुन: जलीकरण (जीवन रक्षक घोल) मुंह द्वारा या अंत:शिरा (Intravenous) धमनी द्वारा किया जा सकता है। इस उपचार से हैजे की मृत्युदर को 1 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।

आप पहले ही जान चुके हैं कि ओ.आर.टी. निर्जलीकरण के लिए अधिक उपयुक्त है। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी मुंह के द्वारा दिये जाने वाले तरलों के प्रयोग की सलाह देता है। इसका वर्णन अतिसार वाले भाग में पहले ही दिया जा चुका है, विस्तार चर्चा के लिए भाग 11.2.3 को देखें।

मुंह द्वारा कितना तरल पदार्थ देना चाहिए ?

यह निर्जलीकरण के स्तर पर निर्भर करता है। यदि निर्जलीकरण कम हो अर्थात् रोगी प्यासा हो, नब्ज सामान्य हो, जीभ गीली हो, त्वचा पर चिकोटी काटने से त्वचा तुरन्त वापस चली जाए, तब 4 घंटे के अंदर 50 मि.ली. (1/2 गिलास) तरल प्रति किलो शरीर भार के अनुसार देना चाहिए।

मध्यम निर्जलीकरण के मामले में अर्थात् जब रोगी को प्यास लगे नब्ज तेज परन्तु धीमी हो तथा आंखें धंसी हुई हों, जीभ सूखी हो तब प्रति चार घंटे के अंदर प्रति किलोग्राम शरीर भार के लिए 100 मि.ली. (1 गिलास) तरल पदार्थ मुंह द्वारा देना चाहिए।

गंभीर निर्जलीकरण के मामले में अर्थात् जब रोगी को नींद आए, वह ठंडा हो जाए तथा उसे पसीना आए, नब्ज धीमी चले, रक्तचाप को नापा न जा सके, चिकोटी काटने पर त्वचा बहुत धीरे-धीरे वापस जाए, जीभ बिल्कुल सूखी हो ऐसे में रोगी को तुरन्त पास के चिकित्सालय में ले जाना चाहिए। ऐसी अवस्था में चिकित्सक ही अंत: शिरा टीका लगा सकता है तथा उचित उपचार का निर्णय ले सकता है।

अनुरक्षण उपचार : एक बार निर्जलीकरण के ठीक होने पर अर्थात् जब निर्जलीकरण के लक्षण लुप्त हो जाये तब अनुरक्षण उपचार के लिए मुंह द्वारा तरल पदार्थ देने चाहिए। इसका सिद्धांत यह है कि तरल पदार्थ की इतनी मात्रा लेनी चाहिए, जिससे शरीर से मल व उल्टी में निष्कासित जल की कमी (जिसे नापा जा सकता है) को पूरा किया जा सके। यद्यपि वयस्क व बड़े बच्चों में "प्यास" तरल पदार्थ की आवश्यकता बताने के लिए पर्याप्त है। उनको अपनी प्यास बुझाने के लिए जितना जीवन रक्षक घोल (ओ.आर.एस.) वे पी सके उतना पीने के लिए कहा जाता है। तथापि, कम निर्जलीकरण के मामले में (जब हर 2 घंटे में एक से अधिक बार दस्त न आए) मात्रा के हिसाब से एक दिन में प्रति किलो ग्राम शरीर भार के लिए 100 मि.ली. तरल देना चाहिए। गंभीर अतिसार के मामलों में (जब हर 2 घंटे में एक से अधिक बार दस्त आये) मल द्वारा निष्कासित तरल की क्षति को पूरा करने के लिए निष्कासित तरल के बराबर तरल पदार्थ दें तथा यदि इसे मापा न जा सके तो प्रति घंटे में 15 मि.ली. तरल प्रति किलोग्राम शरीर भार के अनुसार दें।

रोकथाम तथा नियंत्रण

अधिसूचना : चूंकि हैजा ऐसा रोग है जिसकी पहचान आसानी से की जा सकती है अत: जब भी हैजे का कोई रोगी दिखे तुरन्त ही स्थानीय स्वास्थ्य अधिकारियों को सूचना देनी चाहिए जिससे स्वास्थ्य अधिकारी सही समय पर आवश्यक कदम उठा कर इससे होने वाली महामारी तथा मनुष्य के जीवन की होने वाली क्षति को रोक सकें।

स्वच्छता उपाय

क) *जल नियंत्रण :* जल, हैजा फैलाने का सबसे महत्वपूर्ण कारक है। अत: सुरक्षित व पर्याप्त जल संभरण के लिए उचित कदम उठाने चाहिए।

ख) *मल निपटान :* ऐसे स्वच्छ शौचालयों का निर्माण करना चाहिए जिसमें आसान, सस्ते तथा सक्षम तरीकों से मल का निपटान किया जा सके। साथ-साथ निम्न विषयों से संबंधित स्वास्थ्य शिक्षा भी दी जानी चाहिए।

1) इन सुविधाओं के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना

2) अव्यवस्थित (Indiscriminate) तरीको से मल त्याग के खतरे को व्यर्थ पदार्थों का निपटाने बताना व उतका महत्व

3) शौच के बाद सही तरीकों से हाथ धोना।

ग) *खाद्य स्वच्छता :* भोजन, संक्रमण को फैलाने का एक महत्वपूर्ण साधन है। अत: उचित खाद्य स्वच्छता का ध्यान रखना अनिवार्य है। इस बात का महत्व मेलों व भीड़ वाले स्थानों पर अधिक हो जाता है। लोगों को पका हुआ गर्म खाना खाने तथा सुरक्षित तरीकों से भोजन को रखने के महत्व के बारे में शिक्षा देनी चाहिए।

घ) *विसंक्रमण (Disinfections) :* क्रिसोल (cresol) व विरंजन चूर्ण (bleaching powder) सबसे अधिक प्रभावशाली विसंक्रामक है। रोगी का दूषित मल, वमन, कपड़े तथा अन्य वस्तुओं को विसंक्रमित करना अनिवार्य है। रोगी के घर, शौचालयों तथा आस-पड़ोस को भी विसंक्रमित करना चाहिए।

निरोधक औषधियां (हैजा रोकने की औषधियां): उस समुदाय के लोग जहाँ पर हैजा फैला हो, रोग को रोकने के लिए रोग निरोधक औषधियों के विषय में चिकित्सक से सलाह ले सकते हैं।

प्रतिरक्षी टीके (Vaccination) : हैजे के लिए प्रतिरक्षी टीके उपलब्ध है। परन्तु आजकल उपलब्ध इन टीकों से केवल 50 प्रतिशत सुरक्षा मिलती है तथा यह सुरक्षा सीमित समय (3 से 6 महीनों) के लिए होती है। आजकल उपलब्ध टीकों से पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों को, जोकि हैजे से ज्यादा प्रभावित होते हैं ज्यादा सुरक्षा नहीं प्राप्त होती है। आयु बढ़ने के साथ-साथ सुरक्षा की प्रतिशत भी बढ़ती जाती है। ऐसी स्थितियों में हैजे की रोकथाम व नियंत्रण के लिए इसके प्रतिरक्षी टीके एक पूर्ण सुरक्षित उपाय नहीं है। यद्यपि इन टीकों से हैजा ग्रस्त क्षेत्र के लोग थोड़ेचिन्ता मुक्त हो सकते हैं परन्तु यह झूठी तसल्ली देने वाली बात है। अत: सबसे उत्तम यही है कि पानी को उबाल कर पीएं, घर को मक्खियों से मुक्त रखें तथा भोजन को ठीक प्रकार ढक कर रखें।

प्रतिरक्षी टीके व उनके लिए प्रस्तावित अनुसूची का विस्तृत ब्यौरा

हैजे के टीके में लगभग विब्रियो कोलेरी के ओगावा तथा इनाया प्रकार के लगभग 60 लाख जीव प्रति 0.1 मि.ली. नमक के घोल (saline suspension) में होते हैं। यह जीव मृत रूप में होते हैं तथा घोल में 0.5 प्रतिशत फीनोल (phenol) डालकर इन्हें परिरक्षित किया जाता है। यह टीका ई एल टॉर प्रकार के जीव से भी सुरक्षा प्रदान करता है। प्राथमिक प्रतिरक्षीकरण के अंतर्गत बराबर मात्रा के दो अंत: मांस पेशी (त्वचा के नीचे) इजेक्शन 4 से 6 सप्ताह के अंतराल पर दिए जाते हैं। नीचे तालिका 11.1 में दी गयी खुराक अनुसूची (Dosage schedule) प्रयोग की जाती है।

तालिका 11.1 : हैजे की प्रतिरक्षी टीकों की खुराक की सूची

आयु	खुराक 1	खुराक 2
1) वयस्क तथा 10 वर्ष से अधिक आयु के बच्चे	0.5 मि.ली.	0.5 मि.ली.
2) 2 से 10 वर्ष के बच्चे	0.3 मि.ली.	0.3 मि.ली.
3) 1 से 2 वर्ष के बच्चे	0.2 मि.ली.	0.2 मि.ली.

इस रोग की रोकथाम व नियंत्रण में आपकी भूमिका यह है कि यदि रोग फैल जाये तो आप यह देखें कि क्या रोग की सूचना दे दी गई है, स्थानीय स्वास्थ्य अधिकारी उचित कदम उठा रहे हैं या नहीं। जिन्हें आवश्यकता हो, उन्हें ओ. आर. एस. मिलें, प्रतिरक्षी टीकों की व्यवस्था की जाये तथा यह रोग क्यों होता है, कैसे फैलता है, इसकी शिक्षा लोगों को दी जाये जिससे रोग को फैलने से रोका जा सके तथा उन्हें यह भी बताया जाये कि किस प्रकार रोग की जटिलतायों तथा रोग को पुन: होने से रोका जा सकता है, व हैजे में ओ. आर. टी. (मुहं द्वारा पुन: जलीकरण) का क्या महत्व है।

याद रखने योग्य बातें
हैजा

- हैजा विबियो कोलेरीरा से होता है तथा पानी जैसे दस्तों से इसकी पहचान होती है।
- हैजा संक्रमण का संचिति केवल मनुष्य है।
- यह रोगी व वाहकों के मल व उल्टी से फैलता है।
- हैजा गुदा-मुखीय मार्ग से फैलता है।
- चावल के पानी जैसा मल, सिर में हल्का दर्द, उत्तेजना, प्यास तथा मांसपेशियों में ऐंठन, साइनोसिस, तीव्र हृदय गति तथा नब्ज का तेज चलना, कम रक्त चाप, सांस का तेज चलना, शुष्क त्वचा, त्वचा का लचीलापन कम होना तथा निर्जलीकरण हैजे के प्रमुख लक्षण हैं।
- निर्जलीकरण को ठीक करना प्रमुख उपचार है।
- हैजे की रोकथाम व नियंत्रण के लिए उत्सर्ग का उचित निपटान, जल व खाद्य स्वच्छता प्रमुख उपाय हैं।
- हैजा के प्रतिरक्षी टीके रोग निरोधक उपाय के अंतर्गत आते हैं।

बोध प्रश्न 3

1) रोग वाहक किसे कहा जा सकता है?

....
....
....
....
....
....

2) हैजे के संव्हन की प्रक्रिया की रूपरेखा क्या है? बताएं।

....
....
....
....
....
....

11.5 सारांश

इस इकाई में आपने जाना कि अतिसार, पेचिश तथा हैजा कई प्रकार के जीवाणु तथा विषाणु द्वारा होते हैं। निर्जलीकरण इन तीनों रोगों का सामान्य लक्षण है। उपचार का पहला कदम पुन: जलीकरण करना है। इन रोगों की व्यवस्था, रोकथाम तथा फैलाव के नियंत्रण के लिए स्वास्थ्य शिक्षा, वातावरण की स्वच्छता तथा निरोधक उपायों का प्रयोग किया जा सकता है।

11.6 शब्दावली

1.) **वाहक** : वह व्यक्ति जिसमें स्वंय रोग के लक्षण न नजर आये परन्तु जो रोगकारकों को आश्रय देता है तथा फिर उन्हें उत्सर्जित करता है तथा दूसरों में इस प्रकार रोग फैलाता है

2) **निर्जलीकरण** : शरीर से जल तथा घुलनशील खनिज लवणों (विद्युत अपघट्यों) की क्षति उदाहरणत: अतिसार या उल्टी या दोनों के कारण उत्पन्न स्थिति

3) **विसंक्रामक** : शरीर से बाहर संक्रमण फैलाने वाले कारक को मारने के लिए प्रयुक्त रसायन या पदार्थ

4) **विसंक्रमण** : रसायनिक या भौतिक तरीकों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से शरीर के बाहर संक्रमण फैलाने वाले कारकों को मारना

5) **स्थानिक रोग** : किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र में किसी रोग या संक्रामक कारक का लगातार पाया जाना उदाहरण के लिये हैजा, मलेरिया आदि

6) **महामारी** : किसी समुदाय या क्षेत्र में किसी रोग का स्पष्ट रूप से सामान्य से ज्यादा संख्या में पाया जाना

7) **ऊष्मायन अवधि** : संक्रमण के बाद रोग के लक्षणों को दृष्टिगत होने के लिए अपेक्षित समय

8) **मुख द्वारा पुन जलीकरण उपचार** ; निर्जलीकरण की रोकथाम या उपचार के लिए मुंह द्वारा तरल पदार्थ देना

9) **संचरणीय अवधि** : वह अवधि जिसमें प्रत्यक्ष संपर्क या संक्रमणी पदार्थ वाहक के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से रोग एक व्यक्ति से दूसरे में फैलता है

10) **पुन: जलीकरण** : निर्जलीकरण को ठीक करना

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. रोटा वायरस, एस्चरशिया कोलाई, शीगैला, कम्पाइलोबैक्टर, विब्रियो कोलेरी, विब्रियो पेराहिमौ इलिटीकस, सैल्मोनेता, गिआर्डिया, अमीबा
2. मुंह द्वारा पुन: जलीकरण उपचार

बोध प्रश्न 2

1) स्वास्थ्य शिक्षा के साथ जानपदिकरोग विज्ञानी निगरानी पद्धति की व्यवस्था करके।

2) प्रोटोजोआ एंटअमीवा हिस्टोलिटिका, जीवाणु शीगैला

बोध प्रश्न 3

1) रोग वाहक वह व्यक्ति होता है जोकि देखने में स्वस्थ लगता है परन्तु वह रोग कारकों जीवों को अपने शरीर से निष्कासित / उत्सर्जित करता है।

2) हैजा गुदा-मुखीय मार्ग द्वारा फैलता है। दूषित जल, भोजन तथा मल का असावधानीपूर्वक निपटान, उल्टी तथा रोगी के कपड़े इसके फैलने के लिए उत्तरदायी हैं।

इकाई 12 सामान्य खाद्य-जन्य रोग —II

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 टायफाइड (आन्त्रज्वर)

12.2.1 रोग–यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?

12.2.2 टायफाइड का नियंत्रण, रोकथाम व व्यवस्था

12.3 संक्रामक यकृतशोथ (Infective hepatitis)

12.3.1 रोग–यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?

12.3.2 संक्रामक यकृतशोथ की व्यवस्था, रोकथाम व नियंत्रण

12.4 सारांश

12.5 शब्दावली

12.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने अतिसार, पेचिश तथा हैजे के कारण, फैलाव, लक्षण, नियंत्रण, रोकथाम तथा व्यवस्था के बारे में चर्चा की है। इस इकाई में हम खाद्य-जन्य दो अन्य रोगों, टायफाइड तथा संक्रामक यकृतशोथ के बारे में पढ़ेंगे।

टायफाइड एक सर्वांगीण संक्रमण है, जो कि ज्वर द्वारा प्रकट होता है। विकासशील देशों में टायफाइड ज्वर एक मुख्य जन स्वास्थ्य समस्या है। इन देशों में प्रति 100,000 लोगों में इस रोग के लगभग 100 से 1500 रोगी पाये जाते हैं।

संक्रामक यकृतशोथ एक तीव्र संक्रामक रोग है जोकि यकृत को प्रभावित करने वाले विषाणु से होता है। इसे पीलिया या यकृतशोथ भी कहते हैं। यह विश्व के सभी भागों विशेषकर विकासशील देशों में एक मुख्य जन स्वास्थ्य समस्या है तथा इसकी छोटी या बड़ी महामारी की घटनाएं अक्सर होती रहती हैं। कई बार यह रोग चक्रीय पुनरावृत्ति (cyclic recurrences) में होता रहता है।

ये रोग कैसे फैलता है, इनका निवारण और व्यवस्था कैसे की जा सकती है ? इस इकाई में इन पहलुओं पर चर्चा की गई है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- टायफाइड तथा संक्रामक यकृतशोथ के कारण की पहचान कर सकेंगे
- टायफाइड तथा संक्रामक यकृतशोथ के लक्षणों की सूची बना सकेंगे, तथा
- इन रोगों के नियंत्रण, रोकथाम तथा व्यवस्था के कारकों का वर्णन कर सकेंगे।

12.2 टायफाइड (आन्त्रज्वर)

आपको याद होगा कि टायफाइड एक सर्वांगीण संक्रामक रोग है। सर्वांगीण संक्रामक रोग से हमारा तात्पर्य ऐसे संक्रमण से है, जिसमें रोगाणु (रोग कारक जीव) रोगी के सम्पूर्ण शरीर में फैल जाते हैं। टायफाइड, ज्वर द्वारा व्यक्त होता है। ज्वर वह स्थिति है, जब शरीर का तापमान संक्रमण के प्रभाव के कारण सामान्य से ज्यादा हो जाता है। टायफाइड ज्वर की शुरुआत धीरे-धीरे हुये सिर दर्द तथा लम्बे समय तक चलने वाले ज्वर से होती है। इस ज्वर में बैचैनी (malaise), क्षुधा अभाव (anorexia) की शिकायत भी पायी जाती है। कब्ज या अतिसार तथा कभी-कभी पेचिश भी हो सकती है। ऐसा ज्वर जिसमें पसीना न आये तथा मानसिक सुस्ती भी कई बार देखने को मिलती है।

12.2.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?

यह किन कारणों से होता है ?

सैल्मोनेला टायफ़ी नामक सूक्ष्म जीव इस रोग का कारक है। मुख्य रूप से यह आंतों को प्रभावित करता है, तथा रुधिर परिसंचरण में आविष छोड़ देता है।

यह किन्हें होता है ?

आयु : यह किसी भी आयु में हो सकता है परन्तु 10 - 30 वर्ष की आयु में अधिक पाया जाता है।

लिंग : पुरुषों में स्त्रियों की अपेक्षा अधिक पाया गया है।

मौसम : टायफाइड ज्वर के मामले पूरे वर्ष भर देखे जाते हैं, फिर भी जुलाई, अगस्त तथा सितम्बर में अधिक देखे जाते हैं क्योंकि इन महीनों में प्राय: वर्षा का मौसम होता है तथा मक्खियों का प्रजनन अधिक होता है।

यह कैसे फैलता है ?

इस संक्रमण के फैलने का मुख्य तरीका गुदा - मुखीय मार्ग है।

टायफाइड संक्रमण मुख्यत: टायफाइड रोगी या रोग के वाहक के मल या मूत्र से दूषित जल व भोजन से फैलता है। कुछ सामाजिक कारक भी इस संक्रमण में योग देते हैं, ये निम्न है :

1) प्रचलित गलत मलोत्सर्ग स्वभाव, जिससे मिट्टी का मलप्रदूषण (faecal pollution) हो जाता है तथा इससे जल, भोजन व मक्खियों द्वारा संक्रमण फैल जाता है।
2) व्यक्तिगत स्वच्छता का निम्न स्तर उदाहरण के लिए शौच के बाद हाथ न धोना।
3) स्वास्थ्य संबंधी अस्वच्छतापूर्ण आदतें, उदाहरण के लिए गन्दे कपड़े टंकियों, नदियों या पास के कुओं में धोना
4) खाद्य स्वच्छता (food hygiene) का निम्न स्तर
5) निरक्षरता व स्वास्थ्य संबंधी अज्ञानता

टायफाइड के वाहक : जिन्हें टायफाइड हो चुका है उनमें से कुछ (10 प्रतिशत) टायफाइड के वाहक बन जाते हैं। वाहक अवस्था कुछ महीनों से लेकर एक वर्ष तक रह सकती है। वाहक इन जीवों को मल, मूत्र या पित्त में उत्सर्जित करता है।

ऊष्मायन अवधि : यह रोग प्रकट होने में प्राय: 10 से 15 दिन लेता है व इसकी अवधि सीमा 4 दिनों से लेकर तीन सप्ताह तक हो सकती है।

संचरणीय अवधि : टायफाइड की संचरणीय अवधि तब तक रहती है जब तक टायफाइड जीवाणु मल में निष्कासित होते रहते हैं। प्राय: यह रोगनिवृत्ति (convalescence) के पूरे पहले हफ्ते और कभी-कभी इसके बाद भी चलता रहता है। लगभग 10 प्रतिशत रोगी लक्षणों के शुरू होने के 3 महीने बाद तक जीवाणु निष्कासित करते रहते हैं तथा 2 से 5 प्रतिशत स्थायी वाहक बन जाते हैं।

कौन इस रोग के प्रति अधिक संवेदनशील है

सामान्यता प्रत्येक व्यक्ति टायफाइड को ग्रहण कर सकता है। नैदानिक लक्षण युक्त रोग से मुक्त होने पर या अप्रत्यक्ष (लक्षणहीन) संक्रमण या सक्रिय प्रतिरक्षीकरण के उपरांत, छोटे मोटे संक्रमण के प्रति प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है। उन क्षेत्रों से जहाँ टायफाइड स्थानिक रोग के रूप में होता है आयु बढ़ने के साथ रोग होने की दर कम हो जाती है।

12.2.2 टायफाइड का नियंत्रण, रोकथाम व व्यवस्था

कुछ विकसित देशों में टायफाइड अब जन स्वास्थ्य समस्या नहीं है। इसका अर्थ यह है कि वहाँ पर टायफाइड की रोकथाम व नियंत्रण के तरीके उपलब्ध हैं। टायफाइड ज्वर के नियंत्रण व रोकथाम के तीन उपाय हैं। ये निम्न हैं :

1) संक्रमण की संचिति का नियंत्रण (Control of reservoir of infection)
2) स्वच्छता का नियंत्रण
3) प्रतिरक्षीकरण

आइए, अब प्रत्येक के बारे में विस्तार से पढ़ें:

1. **संचितियों का नियंत्रण** : टायफाइड ज्वर के संक्रमण की संचिति (i) रोगी (ii) संपर्क (contacts) तथा (iii) वाहक होते हैं।

   (i) **रोगी** : रोगी से दूसरे लोगों में टायफाइड को फैलने से रोकने के लिए (क) रोगी को अलग रखना चाहिए, (ख) उचित उपचार करना चाहिए, (ग) उचित विसंक्रमण करना चाहिए, तथा (ध) स्थिति का पुन: निरीक्षण (review) करना चाहिए । आइये, जानें यह कैसे किया जा सकता है ।

   क) *वियोजन (Isolation)* : संक्रमण को फैलने से रोकने के लिए रोगी को अलग रखना चाहिए । चूंकि टायफाइड लम्बे समय के लिए होता है अत: अच्छा हो कि रोगी को चिकित्सालय, विशेषकर संगरोध चिकित्सालयों (Quarantine hospitals) में जहाँ उचित वियोजन, उपचार तथ विसंक्रमण की सुविधा हो, स्थानान्तरित कर देना चाहिए । रोगी को नैदानिक रूप से पूर्ण स्वस्थ होने तक अर्थात जब तक तीन अलग - अलग दिनों की लगातार मल व मूत्र की जांचें में टायफाइड जीवाणु नहीं पाये जाये, अलग रखना चाहिए ।

   ख) *उपचार* : उचित चिकित्सा देखभाल के द्वारा उचित उपचार करना चाहिए ।

   ग) विसंक्रमण *(Disinfection)* : चूंकि टायफाइड ज्वर में रोगी का मल, मूत्र तथा उसकी वस्तुएं संक्रमण फैलाने वाले मुख्य कारक है अत: उन्हें अच्छी तरह से विसंक्रमित करना चाहिए ।

   घ) *पुन: निरीक्षण* : रोगी, वाहक बनकर टायफाइड जीवाणु उत्सर्जित तो नहीं कर रहा, इसकी जांच के लिये पुन: चिकित्सीय निरीक्षण करना चाहिए ।

   अब रोगी के संपर्क में आने वाले व्यक्तियों के लिये सूचना :

   ii) **संपर्क में आने वाले व्यक्ति (Contacts)** : रोगी के संपर्क में आने वाले व्यक्तियों को रोग के फैलने की रोकथाम के लिए निम्न तरीके अपनाने चाहिए ।

   क) *प्रतिरक्षीकरण* : रोगी के परिवारजनों तथा संपर्क के व्यक्तियों को प्रतिरक्षीकरण टीका लगवाना चाहिए ।

   ख) *संपर्क में आने वाले व्यक्तियों का पुन: निरीक्षण (review of contacts)* : रोगी के संपर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों का कम से कम 3 सप्ताह तक चिकित्सीय निरीक्षण होना चाहिए ।

   ग) खाद्य पदार्थों का हस्तन *(food handling)* ; संपर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों को 3 सप्ताह तक या जब तक उनके मल में टायफाइड जीवाणु की उपस्थिति शून्य न हो, भोजन को स्पर्श करने से बचना चाहिए।

   घ) स्वास्थ्य शिक्षा : संपर्क में आने वाले सभी लोगों को व्यक्तिगत स्वच्छता जैसे शौच के बाद या रोगी को देखभाल या उसके गंदे कपड़ों के संपर्क में आने के बाद साबुन से हाथ धोना आदि विषय में स्वास्थ्य शिक्षा देनी चाहिए ।

   अंत में, वाहकों पर चर्चा :

   iii) **वाहक** : केवल कुछ वे ही लोग जिन्हें टायफाइड हो चुका हो, वाहक बनते हैं । इन वाहकों की पहचान कैसे करें ? ये वाहक अपने मल, मूत्र व पित्त में जीव उत्सर्जित करते हैं । अत: जैवरसायनिक परीक्षणों (biochemical analysis) द्वारा वाहकों की पहचान की जा सकती है । अत: क्या करें ?

   क) टायफाइड जीवाणु के वाहकों की पहचान करनी चाहिए तथा उनका उचित उपचार करना चाहिए । यह बहुत आवश्यक, व टायफाइड की रोकथाम व नियंत्रण के लिए महत्वपूर्ण कदम है । अत: वाहकों को उचित चिकित्सीय सलाह लेनी चाहिए ।

   ख) वाहकों को खाद्य पदार्थों जैसे दूध, पानी आदि को छूने की छूट नहीं देनी चाहिए विशेषकर सार्वजनिक खाद्य स्थलों पर तथा उन्हें बहुत अधिक व्यक्तिगत स्वच्छता का पालन करना चाहिए ।

आइए अब टायफाइड का नियंत्रण व रोकथाम के लिए अपनाए जाने वाले दूसरे उपाय अर्थात् "स्वच्छता के नियंत्रण" के विषय में जानें ।

2) **स्वच्छता के नियंत्रण :** किन उपायों को अपनाया जाए ? आइए जानें ।

- **सार्वजनिक जल, आपूर्ति की सुरक्षा, स्वच्छीकरण व क्लोरीनीकरण ।**
- **मानव मल का स्वच्छता पूर्वक निपटान।**
- **मक्खियों के प्रजनन का नियंत्रण।**
- **दूध व दूध से बने पदार्थों को उबालना या पास्तेरीकरण (Pasteurisation) करना।**
- **मछली व अन्य डिब्बाबंद पदार्थों के एकत्रीकरण और क्रयविक्रय (marketing) पर प्रतिबंध।**
- **सार्वजनिक खाद्य स्थलों पर भोजन के संसाधन, पकाने व परोसने में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना।**
- **लोगों को इस बात की स्वास्थ्य शिक्षा देना कि वे केवल पके हुए व गर्म-गर्म परोसे गये खाद्य पदार्थों को चुनें।**
- **टायफाइड वाहकों की पहचान व उचित निरीक्षण।**
- **समुदाय के लोगों को टायफाइड संक्रमण के स्रोतों व संचरण के तरीकों के बारे में शिक्षित करना।**

टायफाइड नियंत्रण / रोकथाम का तीसरा व अंतिम उपाय, प्रतिरक्षीकरण है, जिस का वर्णन नीचे दिया गया है ।

3) **प्रतिरक्षीकरण : टायफाइड ज्वर के लिए प्रतिरक्षी टीके उपलब्ध है। यद्यपि अधिक सफाई व अच्छी घरेलू व व्यक्तिगत स्वच्छता टायफाइड की रोकथाम का मुख्य उपाय है, फिर भी प्रतिरक्षीकरण परिपूरक (complementary) भूमिका अदा करता है । प्रतिरक्षी टीकों से पूरी 100 प्रतिशत सुरक्षा प्राप्त नहीं होती है, फिर भी निम्न व्यक्तियों में टायफाइड की रोकथाम में यह मुख्य भूमिका निभाते हैं :**

1) **उन क्षेत्रों में जहाँ टायफाइड स्थानिक रोग के रूप में हो वहाँ रहने वाले लोग**
2) **रोगी व वाहक के संपर्क में आने वाले लोग**
3) **स्कूल के बच्चे व अस्पताल के कर्मचारी जिन्हें रोग होने के ज्यादा खतरे हों**
4) **उन क्षेत्रों में जाने वाले यात्री जहाँ टायफाइड स्थानिक रोग के रूप में फैला हो**
5) **मेले, यात्रा व अन्य सामाजिक सभाओं में जाने वाले लोग**

चूंकि अलग-अलग प्रकार के प्रतिरक्षी टीके उपलब्ध है तथा अलग-अलग आयु के लोगों को अलग - अलग मात्रा (खुराक) के टीके लगने चाहिए, अत: सही प्रतिरक्षीकरण तथा उसकी प्रतिक्रिया की देखभाल के लिए उचित स्वास्थ्य अधिकारियों के पास जाना चाहिए ।

टायफाइड के नियंत्रण / रोकथाम के बाद आइये अब इसकी व्यवस्था के बारे में पढ़ें ।

व्यवस्था

किसी भी दीर्घकालीन ज्वर (prolonged fever) में, यह अनिवार्य है कि उचित चिकित्सा सेवा ली जाये। एक बार नैदानिक तथा जीवाण्वीय (bacteriologically) (जैव रसायनिक) रूप में रोग की पहचान हो जाने के बाद, चिकित्सक के निरीक्षण में, विशिष्ट उपचार देना चाहिए। यह अनिवार्य है कि टायफाइड का चिकित्सीय उपचार किसी चिकित्सक की देखरेख में करना चाहिए क्योंकि:

(i) इस उपचार में प्रयोग किये जाने वाले विशिष्ट दवाइयों के शरीर पर कुछ हानिकारक प्रभाव भी होते हैं, तथा

(ii) रोग के दौरान कुछ गंभीर जटिलताएं भी उत्पन्न हो जाती हैं।

जठरांत्र तंत्र के प्रभावित होने के कारण पोषण तथा आहार संबंधी उचित देखभाल करनी चाहिए। योग्य चिकित्सक से विश्वसनीय सलाह लेनी चाहिए। उन समुदायों में जहाँ मल निपटाने की आधुनिक व पर्याप्त सुविधाएँ न उपलब्ध हो, वहाँ रोगी के मल, उसके कमरे के सभी सामान व रोगी द्वारा उपयोग किए गए कपड़ों का उचित विसंक्रमण करना चाहिये। रोग मुक्ति की उल्लाध अवधि (convalascent period) में रोगी को उचित पोषण मिलना चाहिए।

प्रस्तावित टीकाकरण तालिका व टीके का विशद वर्णन

भारत में आजकल उपलब्ध एन्टी–टायफॉइड टीके निम्नलिखित तीन प्रकार के हैं:

1) *एक संयोजक एंटी टायफाइड टीके (Monovalent anti-typhoid vaccine):* यह टीका ऐगार (agar) में संवृद्ध करके उष्मा द्वारा मार कर फीनोल में परिरक्षित किया जाता है और प्रति मिली लीटर में 100 करोड़ एस. टायफी होते हैं। कभी-कभी एसीटोन द्वारा जीवों का निष्क्रियण करके भी यह टीके

बनाये जाते हैं। तब इन्हें ए. के. डी. (एसीपेन द्वारा मृत व सूखाये गये) एन्टी टायफाइड टीके कहा जाता है। अधिकतर इसी टीके का प्रयोग किया जाता है।

2) *द्विसंयोजन एंटीक टायफाइड टीके (Bivalent vaccine)* : इसमें एस. टायफी तथा एस. पेराटायफी ए. 100 करोड़ और 50 करोड़ के अनुपात में पाये जाते हैं। यह जीव 54 डीग्री से. तापमान पर एक घंटे तक रखकर तथा फिर 0.5 प्रतिशत फीनोल डालकर मारे व संरक्षित किए जाते हैं। तापन (heating) से जीव मर जाते हैं तथा फीनोल उन्हें सुरक्षित रखता है। इस प्रकार के टीके के लिए ए. के. डी. भी मिलता हैं।

3) *टी. ए. बी. टीके (TAB Vaccine)* : यह पारंपरिक टीका है जिसमें प्रति मि.ली. में एस. टायफी (1000 करोड़), एस. पेराटायफी (500 से 750 करोड़) होते हैं। यह पारम्परिक टी. ए. बी. टीके को ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता है क्योंकि इसमें उपस्थित पैराटायफी अधिक सक्षम नहीं होते है तथा कुछ हानिकारक प्रभाव भी उत्पन्न कर देते हैं। अत: विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसका प्रयोग न करने का प्रस्ताव रखा है।

4) *मुँह द्वारा दिए जाने वाला सक्रिय टीका (Live oral Vaccine)* : हाल ही में मिश्र में हुये प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि एक सक्रिय क्षीणीकृत मुखीय टीका शत प्रतिशत सुरक्षा प्रदान करता है। यह जीव उत्परिवर्तित (Live attenuated oral vaccine) (कमजोर जीवाणुओं या विषाणुओं का घोल जोकि सक्रिय प्रतिरोधक क्षमता उपन्न करते है) जो उत्परिवर्ती विभेद से तैयार किया जाता है। इस टीके के अभी क्षेत्रीय परीक्षण होने है तथा थोड़े समय बाद ये टीके आजकल प्रयोग होने वाले टीकों के स्थान पर प्रयोग होने लगेंगे।

ऊपर टायफाइड की व्यवस्था, नियंत्रण व रोकथाम का विस्तृत विवरण दिया गया है। इस विवरण का सारांश याद रखने योग्य बातों के अंतर्गत नीचे दिया गया है।

याद रखने योग्य बातें

टायफाइड

- टायफाइड सैल्मोनेला टायफी नामक सूक्ष्मजीव द्वारा उत्पन्न होता है।
- टायफाइड संक्रमण मुख – मुखीय मार्ग द्वारा फैलता है।
- टायफाइड ज्वर के नियंत्रण व रोकथाम के तीन मुख्य तरीके निम्न है :

  क) संक्रमण के संचिति का नियंत्रण

  ख) स्वच्छता का नियंत्रण

  ग) प्रतिरक्षीकरण

बोध प्रश्न 1

1) संक्रमण के संचिति से क्या अभिप्राय है ?

....

....

....

....

....

2) अपने समुदाय में टायफाइड ज्वर की रोकथाम के लिए स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम की योजना बनाइए।

....

....

....

....

....

12.3 संक्रामक यकृतशोथ (Infective Hepatitis)

यह एक संक्रामक रोग है, जिसकी पहचान यकृत में जलन व अपह्रासी (degenerative) परिवर्तनों से होती है।

इस रोग की शुरुआत अचानक से ज्वर होना, आलस आना, भूख न लगना, जी मिचलाना तथा उदर में बेचैनी से होती है। उसके कुछ दिनों बाद पीलिया (Jaundice) (अर्थात् श्लेष्मा झिल्ली, नाखून, मूत्र तथा कभी-कभी त्वचा का पीला रंग होना) हो जाता है। इस रोग के मंद रूप में बीमारी एक से 2 सप्ताह तक चलती है और गम्भीर असमर्थकारी रोग कई महीनों तक चल सकता है। रोगनिवृत्ति अवधि प्राय: काफी लम्बी होती है। रोग की तीव्र अवस्था में संमूर्च्छा तथा मृत्यु भी हो सकती है। परन्तु अधिकतर रोग मंद रूप में तथा बिना पीलिया के होते हैं तथा इनकी पहचान जैवरसायनिक परीक्षणों से होती है।

12.3.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कैसे और कब फैलता है ?

यह किन कारणों से होता है ?

इसका कारक एक सूक्ष्म जीव है यह एक आंत्र विषाणु (entero virus) है, जिसे यकृतशोथ ए विषाणु (Hepatitis A virus) कहते हैं। रोग के शुरू होने से एक या दो सप्ताह पहले से यह विषाणु मल में निष्कासित होता है तथा उसके चार सप्ताह बाद तक निष्कासित होता रहता है।

यह रोग किन्हें होता है ?

आयु : संक्रामक यकृतशोथ सभी आयु के ग्रहणशील व्यक्तियों में हो सकता है। छोटे बच्चों में रोग मंद रूप में होता है तथा उनमें इसके सामान्य लक्षण नहीं दिखते हैं। यह देखा गया है कि पांच वर्ष तक की आयु के 90 प्रतिशत बच्चों में इस विषाणु के रोगप्रतिकारक (antibody) पाये जाते हैं जोकि इंगित करता है कि वह इस विषाणु से संक्रमित हुये थे।

लिंग : स्त्री व पुरुष दोनों इस रोग से समान रूप से प्रभावित होते हैं।

मौसम : यह रोग पूरे वर्ष भर कभी भी हो सकता है। परन्तु जून से नवम्बर में इसके अधिक रोगी पाये जाते हैं।

यह किस प्रकार फैलता है?

यह रोग गुदा - मुखीय मार्ग द्वारा फैलता है। यह मुख्य रूप से जल या भोजन के संदूषित होने या प्रत्यक्ष संपर्क से फैलता है। स्वच्छता का निम्न स्तर व अत्यंत भीड़भाड़ भी इस रोग के फैलने के लिए उत्तरदायी है। निम्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों में यह वयस्कों की अपेक्षा बच्चों में अधिक पाया जाता है।

संक्रमण के संचिति : केवल मनुष्य ही इस संक्रमण का ज्ञात संचिति है। संक्रमण का मुख्य स्रोत स्वयं रोगी ही होता है। चूंकि अधिकतर लोग मंद या उप - नैदानिक संक्रमण से ग्रसित होते हैं, अत: उनकी पहचान नहीं हो पाती हैं, ऐसे लोग संक्रमण के फैलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संक्रामक सामग्री (Infective material) : चूंकि रोगी के मल में विषाणु निष्कासित होते हैं अत: मल, मुख्य संक्रामक पदार्थ है। रोग की सक्रिय अवस्था में शरीर के अन्य द्रव्य (लार आदि) भी संक्रामक हो सकते हैं।

ऊष्मायन अवधि : रोग के लक्षण नजर आने में 15 से 50 दिन औसतन 25 दिन लगते हैं।

संचरणीय अवधि : यह पाया गया है कि रोग शुरू होने के 1 से 2 सप्ताह पहले तथा उसके 4 सप्ताह बाद तक विषाणु मल में निष्कासित होते हैं। संक्रामक यकृतशोथ की वाहक अवस्था के बारे में ज्ञात नहीं है।

कौन इस रोग के प्रति अधिक संवेदनशील है?

सामान्यत: सभी इस रोग को ग्रहण कर सकते हैं। उन क्षेत्रों में जहाँ यह रोग स्थानिक रोग के रूप में होता है, अधिकांश लोग, मंद संक्रमण या उपनैदानिक संक्रमण के कारण, बाल्यावस्था में ही इसके प्रति रोधक्षमता प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार उत्पन्न रोधक्षमता यद्यपि स्थायी नहीं होती है, फिर भी काफी लम्बे समय के लिए रहती है। केवल 5 प्रतिशत लोगों में संक्रमण दुबारा होने की संभावना होती है।

12.3.2 संक्रामक यकृतशोथ की व्यवस्था, रोकथाम व नियंत्रण

संक्रामक यकृतशोथ के उपचार के लिए कोई विशिष्ट चिकित्सा उपलब्ध नहीं है। फिर भी सहायक उपचार तथा सही पोषण सुझाव के लिए उचित चिकित्सीय सलाह लेनी चाहिए। निदान सुनिश्चित हो जाने पर पूर्ण शयया विश्राम (bed rest) अधिक - ऊर्जा, कम वसा युक्त तरल आहार लेने की सलाह दी जाती है। रोगी के मल का उचित निपटान तथा रोगी व उसके परिचर सेवक की व्यक्तिगत सफाई का ध्यान रखना अनिवार्य है।

रोकथाम व नियंत्रण के विभिन्न उपायों का वर्णन नीचे दिया गया है ।

रोग की रोकथाम या नियंत्रण किस प्रकार किया जा सकता है ?

यकृतशोथ के रोकथाम नियंत्रण के लिए निम्न चार तरीके अपनाये जा सकते हैं :

क) संचिति का नियंत्रण

ख) रोग के संचरण का नियंत्रण

ग) ग्रहणशील जनसंख्या का नियंत्रण

घ) मानव प्रतिरक्षाग्लोब्युलिनों (human immunoglobulins) को देना ।

आइये, प्रत्येक पर विस्तार से चर्चा करें ।

क) ***संचिति का नियंत्रण :*** यह काफी कठिन है क्योंकि :

1) ऊष्मायन अवधि अर्थात् रोग के लक्षण दृष्टिगत होने से पहले ही यह विषाणु मल में निष्कासित होने लगते हैं ।

2) बहुत बार यह रोग उप नैदानिक रूप में होता है तथा बिना लक्षणों के ही समाप्त हो जाता है तथा ऐसे रोग की पहचान ही नहीं हो पाती ।

3) रोगी को विषाणु मुक्त करने के लिए कोई विशिष्ट उपचार उपलब्ध नहीं है ।

4) समाज में गरीबी तथा उचित सफाई की सुविधाएं नहीं है। इन तथ्यों के कारण रोगी को अलग रखने पर भी रोग के फैलने को नियंत्रित नहीं किया जा सकता है ।

तथापि, रोग की शंका हो जाने व पूर्ण पहचान हो जाने पर निम्न तरीकों द्वारा नियंत्रण करना चाहिए :

1) उचित अधिकारियों को रोग की सूचना देनी चाहिए

2) रोगी को पूर्ण शयया विश्राम की सलाह देनी चाहिए।

3) मल व अन्य वस्तुओं को विसंक्रमित करना चाहिए । प्रभावी संक्रमण के लिए 0.5 प्रतिशत सोडियम हाइपोक्लोराइड नामक रसायन के प्रयोग की सलाह दी जाती है ।

ख) **संचरण का नियंत्रण** : नियमित व्यक्तिगत स्वच्छता जैसे खाने से पहले तथा शौच के बाद साबुन से हाथ धोने, पेय जल व खाद्य पदार्थों को दूषित होने से बचाने के लिए, मल के स्वच्छतापूर्वक निपटान से संक्रमण को फैलने से रोका जा सकता है ।

इस रोग का कारक जीव एच. ए. वी. – उबालने से नष्ट हो जाता है । अत: जब यह रोग महामारी के रूप में फैल जाये तो उबला पानी पीने के सलाह देनी चाहिए। ऐसा पाया गया है कि पेयजल को क्लोरीनयुक्त करने से संक्रमण की संभावना कम हो जाती है ।

ग) **संवेदनशील जनसमूह का नियंत्रण :** उपयुक्त नियंत्रण के उपायों के लिए, संवेदनशील जनसमूह चिकित्सक की सलाह ले सकते हैं । विशिष्ट संवेदनशील जन समूहों तथा उन व्यक्तियों के लिए जिन्हें रोग होने का खतरा हो, उनके लिए कुछ सुरक्षात्मक उपाय उपलब्ध है ।

घ) **मानव प्रतिरक्षाग्लोब्युलिनों को देना :** उन व्यक्तियों या विशिष्ट समूहों को जिन्हें रोग का खतरा हो प्रतिरक्षाग्लोब्युलिनों की खुराक देने से रोग की रोकथाम हो सकती है या रोग की तीव्रता को कम किया जा सकता है । नियंत्रण का अन्य तरीका है, टीके लगाना । संक्रामक यकृतशोथ के विरुद्ध टिके विकसित किये जा चुके हैं परन्तु अभी ये नैदानिक प्रयोग की अवस्था में है तथा संक्रामक यकृतशोथ की रोकथाम के लिये इनके प्रयोग में कुछ समय लगेगा। रोकथाम व नियंत्रण के इन तरीकों के विवरण के साथ संक्रामक यकृतशोथ का अध्ययन संपूर्ण समाप्त होता है । यकृतशोथ की मुख्य बातों का सारांश याद रखने योग्य बातों, में नीचे दिया गया है ।

याद रखने योग्य बातें
संक्रामक यकृतशोथ

- संक्रामक यकृतशोथ एक अति संक्रामक रोग है, जोकि यकृत को प्रभावित करने वाले विषाणु द्वारा होता है।
- ज्वर, आलस्य, भूख न लगना, जी-मिचलाना, उदर में बेचैनी व पीलिया इसके मुख्य लक्षण हैं।
- केवल मनुष्य ही इस संक्रमण का संचिति है।
- इस रोग की रोकथाम के निम्न उपाय हैं :
  - — संचिति का नियंत्रण
  - — रोग के संवहन का नियंत्रण
  - — संवेदनशील जनसंख्या का नियंत्रण
  - — प्रतिरक्षाग्लोब्युलिनों को देना

बोध प्रश्न 2

1) संक्रामक यकृतशोथ की रोकथाम के लिए स्वास्थ्य शिक्षा में दिये जाने वाले कुछ संदेशों का सुझाव दीजिए।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित शब्दों से क्या तात्पर्य है :

क) उष्मायन (Incubation):

....

....

....

ख) रोगनिवृत्ति :

....

....

....

ग) संचरणीय अवधि :

....

....

....

12.4 सारांश

इस इकाई में आपने जाना कि टायफाइड, सैल्मोनेला टायफी तथा संक्रामक यकृतशोथ, हीपेटाइटस विषाणु ए से होता है। इनकी रोकथाम व नियंत्रण के मुख्य उपाय संक्रमण के संचिति का नियंत्रण, संचरण व सफाई का नियंत्रण, प्रतिरक्षीकरण तथा संवेदनशील जनसंख्या का नियंत्रण है। इन रोगों की व्यवस्था, रोकथाम व प्रसारण के नियंत्रण के लिए स्वास्थ्य शिक्षा का प्रयोग किया जा सकता है।

12.5 शब्दावली

क्षीणीकृत मुखीय टीका : कमजोर जीवाणुओं या विषाणुओं का घोल जोकि सक्रिय प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करते है। यह मुख द्वारा दिए जाते हैं

संगरोधकाल : उन संवेदनशील व्यक्तियों को जिनका संक्रामक रोग से संपर्क हुआ हो, इस रोग के संगरोधकाल के समय उनके आवागमन पर प्रतिबंध लगाना

12.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) रोगी, संपर्क में आने वाले व्यक्ति तथा वाहक संक्रमण के संचिति होते हैं।

2) खुले अंत वाले उत्तर।

बोध प्रश्न 2

1) निम्न 4 उपायों के आधार पर संदेश देने चाहिए।
   - संचिति का नियंत्रण
   - रोग फैलने का नियंत्रण
   - संवेदनशील जनसंख्या का नियंत्रण
   - प्रतिरक्षा ग्लोब्युलिनों को देना

2) क) संक्रमण के बाद रोग के लक्षणों के विकास के लिए आवश्यक समय।
   ख) रोग के होने के बाद ठीक होने का समय व उनकी प्रक्रिया।
   ग) वह अवधि जब संक्रमक रोग एक व्यक्ति से दूसरे में फैल सकता है।

इकाई 13 परजीवी ग्रसन

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 सामान्य परजीवी ग्रसन

- 13.2.1 टीनियता (Taeniasis) (फीता कृमि रोग)
- 13.2.2 उदाशयता (Hydatidosis)
- 13.2.3 ऐस्केरिसता (Ascariasis) (गोल कृमि रोग)
- 13.2.4 ऐन्किलोस्टोमता (Ancylostomiasis) (अंकुश कृमि रोग)
- 13.2.5 अमीबता (Amoebiasis)
- 13.2.6 गिआर्डियता (Giardiasis)
- 13.2.7 ट्राइक्यूरिसता (Trichuri (कशाकृमि रोग)
- 13.2.8 ऑक्सीयूरिसता (Oxyuriasis) (पिन कृमि रोग)

13.3 सारांश

13.4 शब्दावली

13.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.1 प्रस्तावना

परजीवी वह जीव होते है जो पोषण तथा आश्रय के लिए दूसरे जीवों (मनुष्य या अन्य जानवर) में रहते हैं या उनपर निर्भर करते हैं। अस्वच्छता तथा आधारभूत स्वच्छता सुविधाओं के अभाव के कारण कुछ परजीवी ग्रसन हमारे देश में बहुत ही पाये जाते हैं।

कुछ सामान्य परजीवी जो मनुष्य को प्रभावित करते हैं, वे हैं – फीता कृमि (Tape worm) अंकुश कृमि (Hook worm), गोल कृमि (Round worm), पिन कृमि (Pin worm), आदि। संदूषित कच्ची सब्जियों, फल तथा अधपके खाद्य पदार्थ खाने से यह संक्रमण हो जाते हैं। ये परजीवी पाचन नाल को हानि पहुँचाते हैं जिससे अतिसार, रक्त युक्त मल, उदर पीड़ा तथा वजन कम होने जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। हमारे देश में होने वाले सामान्य परजीवी ग्रसन कौन से हैं ? उनके मनुष्य पर क्या प्रभाव होते हैं ? इनसे कैसे छुटकारा पाए तथा इनकी रोकथाम कैसे की जा सकती है ? इस इकाई में इन्हीं महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा की गई है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- मनुष्य में पाये जाने वाले सामान्य परजीवी ग्रसनों की पहचान कर सकेंगे
- इन ग्रसनों के लक्षणों व जटिलताओं को पहचान सकेंगे
- इन ग्रसनों के कारणों व फैलने के तरीकों के बारे में जान सकेंगे, तथा
- इनके नियंत्रण, रोकथाम व व्यवस्था का वर्णन कर सकेंगे।

13.2 सामान्य परजीवी ग्रसन

ग्रसन का अर्थ है त्वचा या शरीर के अंदर किसी परजीवी की उपस्थिति। ऐसे कई तरीके हैं जिनसे मनुष्य ग्रसित हो सकता है इनमें सबसे सामान्य तरीका खाद्य पदार्थों या पीने वाले पानी के साथ अंडे या अपरिपक्व परजीवी का ग्रहण करना है। हमारे देश में होने वाले सामान्य परजीवी ग्रसन हैं – टीनियता (फीता कृमि संक्रमण), ऐस्केरिसता (गोल कृमि रोग), ऐन्किलोस्टोमता (अंकुश कृमि रोग), अमीबता, गिआर्डियता, ट्राइक्यूरिसता तथा आक्सीयूरिसता (सूत्र कृमि रोग)। प्रत्येक संक्रमण का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

13.2.1 टीनियता (Taeniasis) (फीता कृमि रोग)

टीनियता का अर्थ है फीता कृमि का ग्रसन । मनुष्य में यह दो प्रकार के जीवों (1) टीनिआ, तथा (2) एकाइनोकोकस के द्वारा होता है ।

टीनियता तीन प्रकार का होता है :।

1) टीनिआ सैजीनाटा : यह गाय में पाये जाने वाला फीता कृमि से होता है तथा उन क्षेत्रों में होता है जहाँ गाय का मांस खाया जाता है (चित्र 13.1 क)।
2) टीनिआ सोलियम : उन क्षेत्रों में होता है जहाँ सुअर का मांस खाया जाता है । इस ग्रसन के मामले में भारत एक स्थानिक क्षेत्र माना जाता है ।
3) एकाइनोकोकस ग्रेनुलोसस : इसे कुत्ते में पाए जाने वाला फीता कृमि (dog tapeworm) भी कहते हैं (चित्र 13.1 ख) इसका विवरण उदाशय रोग के अंतर्गत दिया गया है ।

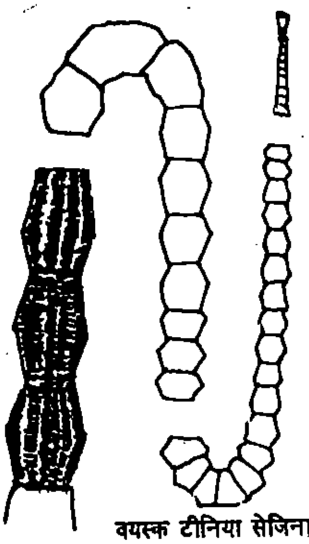

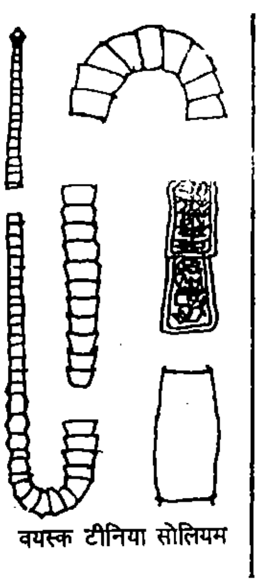

चित्र 13.1 (क, ख) विभिन्न प्रकार के फीता कृमि

फीता कृमि का शरीर सिर,स्कोलैक्स (Scolex), छोटी गर्दन व प्रशृंखल (Strobila) भिन्न-भिन्न खंडों की शृंखला से बना होता है (देहखंड (Proglottids)

यह कहाँ और कैसे होता है ?

टीनियता महानगरों में पाया जाता है । विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ कच्चा या अधपका गाय तथा सुअर का मांस खाया जाता है । कभी-कभी वयस्क, कृमि के अंडे या परजीवी के लारवा से दूषित सब्जियां खाने से भी मनुष्य कृमि से ग्रसित हो जाता है । टीनियता से दूषित भोजन खाने के क्या प्रभाव होते हैं ? अगले उपभाग में इस कृमि ग्रसन के लक्षणों / उससे उत्पन्न जटिलताओं का उल्लेख किया गया है ।

टीनियता के लक्षण / जटिलताएं क्या हैं ?

उदर पीड़ा, भूख न लगना तथा अपचन जैसे लक्षणों को छोड़कर अधिकांशत: इस ग्रसन से स्वास्थ्य पर कोई नैदानिक दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। बैचेनी, नींद न आना व भार में कमी अन्य लक्षण भी इस रोग से संबद्ध दृष्टिगत हो सकते हैं ।

आइए अब इसकी जटिलताओं के बारे में जानें ।

सिस्टीसर्कसता (Cysticercosis) टीनिया सोलियम के द्वारा होने वाली एक प्रमुख जन स्वास्थ्य समस्या है । यह स्थिति (1) टीनिआ सोलियम के अंडों से दूषित भोजन या जल के सेवन, तथा (2) छोटी आंतों से आमाशय में अंडों के पुन: प्रवाह से उत्पन्न होती है । ये अंडे आमाश्य में जाकर फट जाते हैं तथा इसके लारवा पाचन-तंत्र की दीवारों में प्रवेश कर जाते हैं । ये लारवा शरीर के अन्य अंगों में भी पहुँच सकते हैं। लारवा 60 से 70 दिनों में सिस्टीसरकाए (Cysticerci) में बदल जाते हैं । ये विभिन्न अंगों जैसे मस्तिष्क, नेत्रगोलक, (eye - ball), फेफड़े, मांसपेशियों तथा त्वचा के नीचे पाए जाते हैं । समय के साथ-साथ ये कैलसीभूत (Calcified) हो जाते हैं ।

इनमें मस्तिष्क या नेत्रगोलक में अपना निवास स्थान बनाने वाले घातक हो सकते हैं । मस्तिष्क में इनके कारण गंभीर मिर्गी (epilepsy), दाब (pressure) में बढ़ोत्तरी या पुटी अर्थात् जल से भरी हुई (असमान्य) थैली (cyst) का निर्माण हो सकता है ।

इस संक्रमण के संचिति कौन हैं ?

ऐसा संक्रमित व्यक्ति जिसके मल में अंडे मुक्त अवस्था में या परजीवी के देहखंड (Proglottids) के अंदर होते हैं, संक्रमण के संचिति होते हैं । टीनिआ सेजिनाटा तथा टीनिआ सोलियम का जीवन चक्र क्रमश: चित्र 13.2 क तथा 13.2 ख में दर्शाया व समझाया गया है । इनके जीवन चक्रों का ध्यानपूर्वक अध्ययन कीजिए।

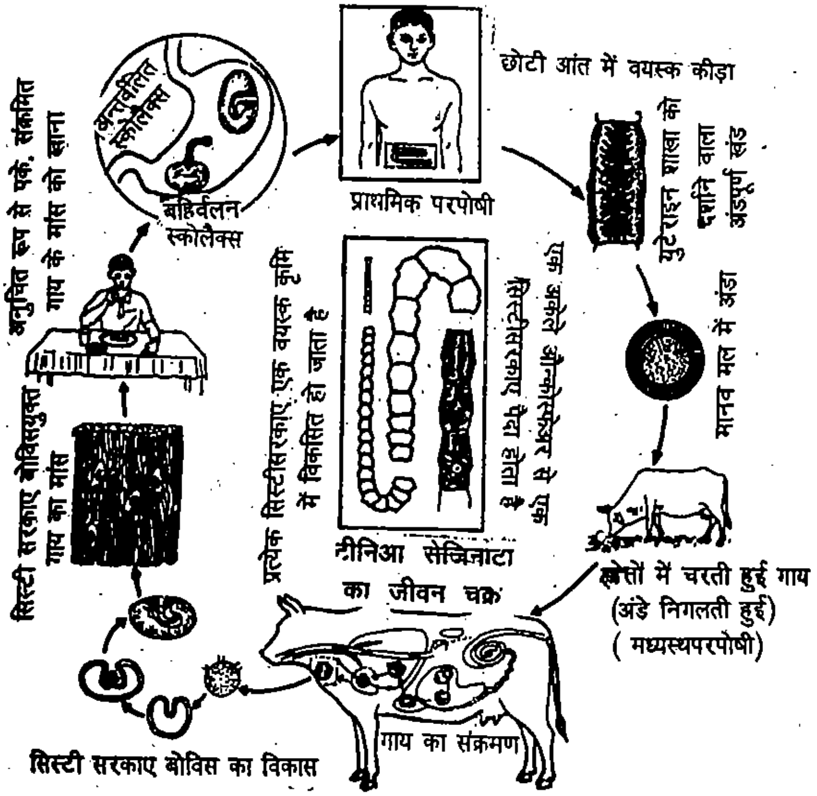

चित्र 13.2 क : टीनिआ सेजिनाटा का जीवन चक्र

(स्रोत : डा.चैटर्जी द्वारा लिखित पुस्तक 'बुक ऑफ पैरासिटोलोजी से अनुकूलित')

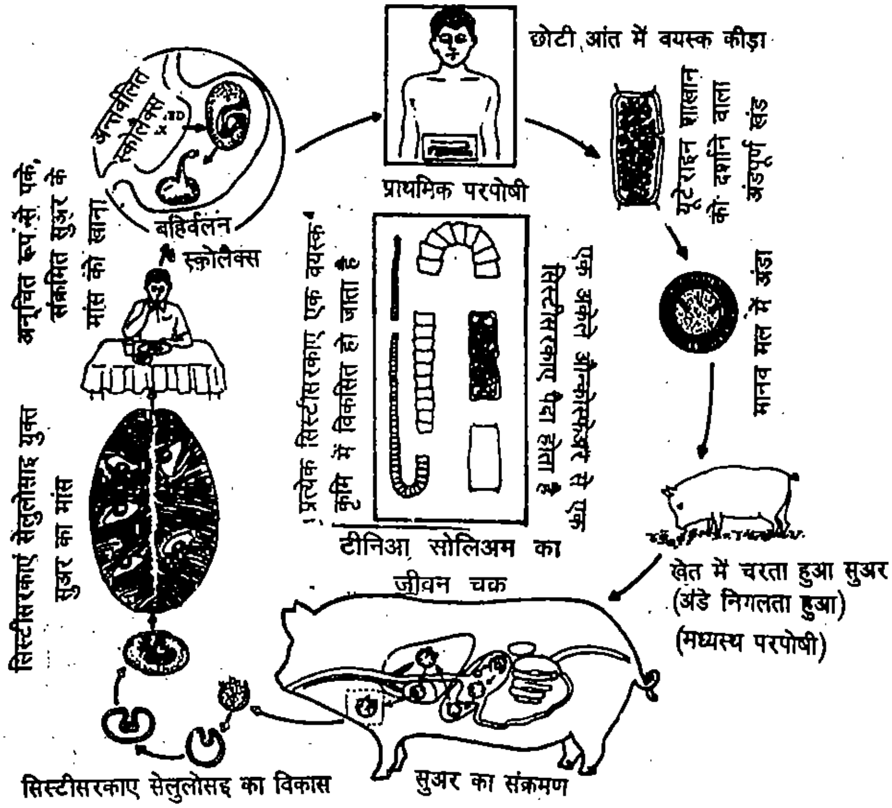

चित्र 13.2 ख: टीनिआ सोलियम का जीवन चक्र

(स्रोत : डा. चैटर्जी द्वारा लिखित पुस्तक 'बुक आफ पैरासिटोलोजी से अनुकूलित')

कृमि के मुक्त सिरे से अंडों से भरी हुई परिपक्व देहखंड निष्कासित होता है तथा परपोषियों (मनुष्य) के मल से उत्सर्जित होता है। ये अंडे मध्यस्थ (intermediate) परपोषी (सुअर, गाय) के द्वारा ग्रहण कर लिए जाते हैं तथा उसके ऊतकों में ये लारवा में परिवर्तित हो जाते हैं। जब कोई व्यक्ति अधपका मांस खाता है तो ये पुटी (cyst) छोटी आंतों में जाकर फीता कृमि बन जाते हैं।

इसकी उष्मायन अवधि क्या है ?

टीनियता की उष्मायन अवधि 8 से 14 सप्ताह होती है।

इसके परपोषी कारक क्या हैं ?

यह परजीवी वास्तव में अपना जीवन दो परपोषियों में पूरा करते हैं। एक अन्त्य (definitive) परपोषी दूसरा मध्यस्थ परपोषी (inter mediary host)। टीनिआ सेजिनाय तथा टीनिआ सोलियम का अन्त्य परपोषी मनुष्य है। ई. *ग्रैनुलोसिस* (E. Granulosis) का अन्त्य परपोषी कुत्ता है। *टी.सेजिनाटा* का मध्यस्थ परपोषी बकरी तथा टीनिआ सोलियम का मध्यस्थ परपोषी सुअर है जबकि भेड़ व बकरी *ई.ग्रैनुलोसिस* के मध्यस्थ परपोषी हैं।

टीनियता की रोकथाम कैसे करें ?

आपके विचार में क्या टीनियता की रोकथाम के तरीकों के बारे में जानना मनुष्य के लिये उपयोगी है ? हाँ, इसकी रोकथाम के तरीकों को जानना अत्यन्त आवश्यक है। आइए, इसे जानें। नीचे टीनियता की रोकथाम के तरीके दिये गये हैं। आइए, उन्हें पढ़ें तथा उन्हें अपनाने या कार्यान्वित करने की चेष्टा करें :

1) लोगों को शिक्षित करना :
   i) मल द्वारा मिट्टी व जल के दूषण की रोकथाम
   ii) सब्जियां व चारा उगाने में सीवर के पानी का प्रयोग न करना, तथा
   iii) गाय व सुअर के मांस को खाने से पहले भली प्रकार पकाना।
2) संक्रमित मांस की बिक्री को रोकने के लिए बूचड़खानों (slaughter house) का पूर्ण निरीक्षण करना।
3) सुअरों को शौचालयों में जाने तथा वहाँ व्यर्थ पदार्थ (मल) खाने से रोकना।
4) वयस्क टीनिआ सोलियम ग्रसन से ग्रस्त व्यक्ति को पहचानना तथा सिस्टीसर्कसता की रोकथाम के लिए उचित उपचार करना।

टीनियता का नियंत्रण कैसे करें ?

टीनियता के नियंत्रण के लिये निम्न उपाय अपनाने चाहिए :

1) रोगी का नियंत्रण
2) संपर्क में आने वालों का नियंत्रण
3) रोगी व संपर्क में आने वालों के वातावरण का नियंत्रण

ग्रसन की घटना के बारे में जन स्वास्थ्य अधिकारियों को सूचित करना चाहिए। टीनिआ सोलियम से ग्रस्त रोगी को उपचार होने तक अन्य व्यक्तियों से अलग रखना चाहिए। मल का उचित निपटान करना चाहिए तथा शौच से आने के बाद व खाने से पहले हाथ अवश्य धोने चाहिए।

टीनियता का उपचार क्या है ?

टीनिआ सेजिनाटा व टी.सोलियम के लिए विशिष्ट उपचार (दवाइयां) उपलब्ध हैं। अत: चिकित्सक की सलाह लें तथा उचित दवाइयों का सेवन करें। सिस्टीसर्कसता की पहचान होने पर, शल्य चिकित्सा (ऊछेदन) की सलाह दी जाती है।

13.2.2 उदाशयता (Hydatidosis)

परजीवी से होने वाला ऐसा रोग है जिसमें अधिकतर फेफड़े या यकृत प्रभावित होते हैं। यह कुत्ते में पाये जाने वाले फीता कृमि से होता है। शरीर का कोई अन्य अंग भी इसमें प्रभावित हो सकता है। व्यावसायिक रोग होने के कारण कसाइओं में यह रोग हो सकता है। यह संक्रमण अधिकतर बाल्यावस्था में ही हो जाता है तथा पुटी (cyst) की वृद्धि करने तथा रोग को दृष्टिगत होने में 5 से 20 वर्ष तक का समय लग जाता है।

यह कहाँ होता है ?

यह परजीवी अन देशों में अधिक पाया जाता है जहाँ कुत्ते अधिक पाये जाते है तथा वे मनुष्यों से काफी घनिष्ठ संपर्क में आते है, जैसे दक्षिण अमरीका, मध्य पूर्वी देश, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड। फिर भी यह रोग भारत सहित सभी देशों में देखने में आता है। भारत में आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु में यह सबसे अधिक होता है।

इसका कारक जीव क्या है ?

उदाशय (Hydatid) रोग एकाइनोकोकस ग्रेनुलोसिस (Echinococcus granulosis) नामक जीव से होता है। इसे श्वान फीता कृमि (Dog tape worm) भी कहते है (चित्र 13.1 ख)।

उदाशय रोग के चिन्ह व लक्षण क्या हैं ?

इसके लक्षण अलग-अलग होते हैं तथा पुटी (cyst) की वृद्धि के स्थान पर निर्भर करते हैं। पुटी पिन के सिरे जितना छोटा भी हो सकता है जो बढ़कर फुटबाल जितना बड़ा भी हो सकता है। यकृत व फेफड़ों में धीमी गति से वृद्धि करते हुए पुटी के कारण कई बार जीवन भर कोई भी लक्षण दिखाई नहीं देता है। परन्तु यदि पुटी किसी मुख्य अंग में हो तो उसके गंभीर लक्षण होते हैं तथा कभी-कभी मृत्यु भी हो सकती है। एक्स रे के द्वारा पुटी की स्थिति / स्थान का पता लगाया जा सकता है। क्रमवीक्षण (Scanning) के द्वारा भी उदाशय रोग का पता लगाया जा सकता है। आजकल इस रोग की पक्की पहचान के लिए कई रक्त परीक्षण भी उपलब्ध हैं।

इस संक्रमण के संचिति कौन है ?

वयस्क कृमि से संक्रमित कुत्ता, भेड़िया तथा अन्य रदनक (canines) जीवी इसके अन्त्य परपोषी हैं। शाकाहारी जानवर जैसे गाय, भेड़ आदि इसके मध्यस्थ परपोषी हैं। एकाइनोकोकस ग्रेनुलोसिस का जीवन चक्र चित्र 13.3 में दर्शाया गया है।

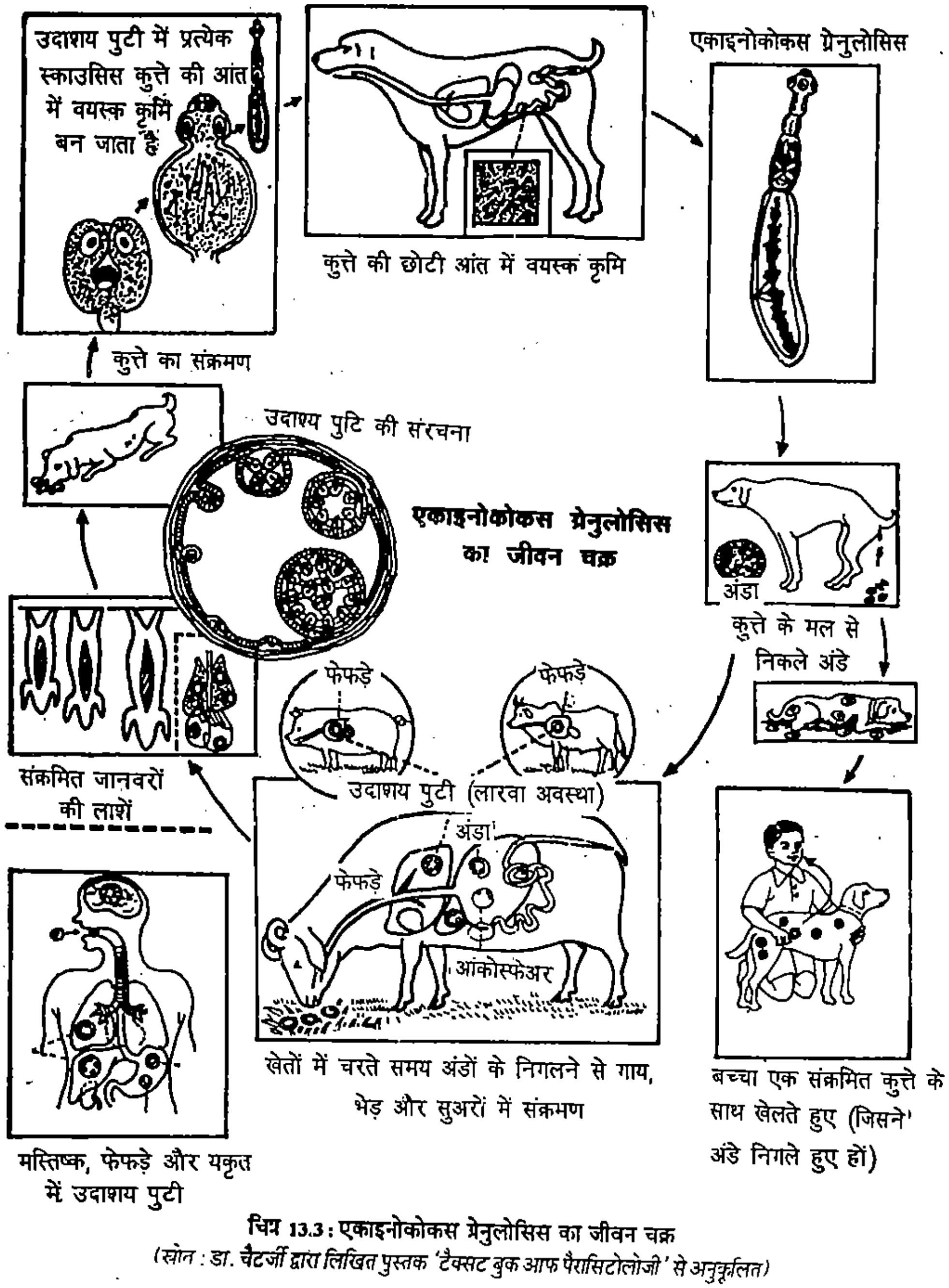

चित्र 13.3 : एकाइनोकोकस ग्रेनुलोसिस का जीवन चक्र

(स्रोत : डा. चैटर्जी द्वारा लिखित पुस्तक 'टैक्सट बुक आफ पैरासिटोलोजी' से अनुकूलित)

एकाइनोकोकस ग्रेनुलोसिस से संक्रमित कुत्ते में लगभग 7 सप्ताहों में इस परजीवी के अंडे मल में निष्कासित होने लगते हैं। बच्चे या वयस्कों द्वारा संक्रमित कुत्ते के साथ खेलने की इस प्रक्रिया के दौरान ये अंडे व्यक्ति के नाखूनों, हाथों आदि में लग सकते हैं। अत: यदि खाने से पहले हाथ न धोए जाए तो अंडे मुँह के रास्ते निगल लिए जाते हैं तथा ये मानव शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

इसकी ऊष्मायन अवधि क्या है ?

इसकी ऊष्मायन अवधि महीनों से लेकर वर्षों तक हो सकती है, पुटी की संख्या, स्थिति व वृद्धि करने की गति पर निर्भर करती है।

संचरणीय अवधि कितनी होती है ?

संक्रमण के लगभग सप्ताह के बाद कुत्ते परजीवी के अंडे निष्कासित करने लगते हैं। वयस्क कृमि 2 से 3 वर्ष तक जीवित रहते हैं। यह रोग एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में या एक मध्यस्थ परपोषी से दूसरे में प्रत्यक्ष रूप से नहीं फैलता है। मनुष्य में इस कृमि का वयस्क रूप नहीं पाया जाता है।

कौन इस संक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील है ?

बच्चों में संक्रमण होने की संभावना अधिक होती है, क्योंकि उनमें बड़ों की अपेक्षा प्राकृतिक रोधक क्षमता कम होती हैं।

उदाशयता रोग की व्यवस्था कैसे करें ?

आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि शल्यचिकित्सा द्वारा पुटी को हटाने के अतिरिक्त इस रोग का विशिष्ट उपचार नहीं है। जिस व्यक्ति में इस रोग का संदेह हो उन्हें शल्य चिकित्सक के पास भेजना चाहिए।

इस संक्रमण की रोकथाम / नियंत्रण कैसे करें ?

क्या आपके विचार में इस रोग की रोकथाम व नियंत्रण अति आवश्यक नहीं है ? उदाशय रोग की रोकथाम, उपचार से अधिक आवश्यक है क्योंकि जैसाकि आप जानते हैं कि इस रोग का कोई विशिष्ट उपचार उपलब्ध नहीं है ? इसकी रोकथाम के लिये निम्न उपाय अपनाये जा सकते हैं :

1) गलियों में आवारा घूमने वाले कुत्तों को नष्ट करना तथा कुत्तों की आबादी कम करना

2) एकाइनोकोकस की रोकथाम के लिए कुत्तों का सामूहिक उपचार। आपको मालूम होना चाहिए कि कुत्तों में इस संक्रमण का उपचार संभव है

3) कुत्तों को कटे हुये तथा मृत जानवरों का माँस खाने से रोकना (जब कुत्ते संक्रमित जानवर की मृत शरीर खाते हैं तो परजीवी उनके शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं)

4) उदाशय से प्रभावित जानवरों के विनाश के लिए मांस की दुकानों का समुचित रूप से निरीक्षण करना व ऐसे मांस की बिक्री पर रोक

5) व्यक्तिगत स्वच्छता की ओर ध्यान देना तथा कुत्तों के बहुत अधिक संपर्क में न आना। कच्ची सब्जियों व फलों का सेवन न करना, चूंकि ये मांसाहारी के मल से दूषित हो सकते हैं

6) उपरोक्त सिद्धांतों के विषय में सबको व्यापक स्वास्थ्य शिक्षा देना।

बोध प्रश्न 1

1) रिक्त स्थान भरें :

क) मनुष्य में टीनियता .... तथा .... से होता है।

ख) मनुष्य टीनिआ सेजिनाटा व टीनिआ सोलियम का .... परपोषी है।

ग) .... उदाशय का कारक जीव है।

घ) एकाइनाककोकस ग्रेनुलोसिस के .... परपोषी कुत्ता, भेड़िया तथा रदनक है तथा शाकाहारी जानवर इसके .... परपोषी हैं

ड.) फीता कृमि सबसे अधिक खतरनाक तब होता है जब पुटी मनुष्य के .... में प्रवेश कर जाती है।

13.2.3 ऐस्केरिसता (Ascariasis) (गोल कृमि रोग)

ये छोटी आंतों का कृमीय (परजीवी कृमि) ग्रसन (helminthic infestation) है। इसे गोल कृमि भी कहते हैं।

यह कहाँ होता है ?

ऐस्केरिसता महानगरों में पाया जाता है। यह सबसे अधिक पाये जाने वाला कृमि ग्रसन है। अनुमान लगाया गया है कि लगभग एक चौथाई जनसंख्या इससे प्रभावित (संक्रमित) है। एशिया तथा लेटिन अमेरिका में लगभग 50 से 70 प्रतिशत जनसंख्या इससे प्रभावित है। बड़े बच्चों व वयस्कों की अपेक्षा स्कूलपूर्व आयु के छोटे बच्चे तथा स्कूल जाने वाले बच्चे इससे अधिक संख्या में तथा गंभीर रूप से प्रभावित होते हैं।

इसका कारक जीव क्या है ?

इसके कारक जीव का नाम ऐस्केरिस लूम्बरीकोइडस है (चित्र 13.4)।

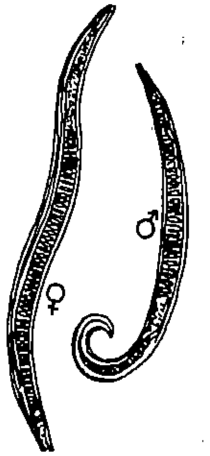

चित्र 13.4 : गोलकृमि (ऐस्केरिस)

गोल कृमि के जीवन चक्र से अवगत होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये छोटी आंतों की गुहा (lumen) में रहते हैं जहाँ ये बिना रोक-टोक के एक स्थान से घूम दूसरे स्थान पर आ जा सकते हैं। वहाँ नर व मादा दोनों कृमि विद्यमान रहते हैं। मादा कृमि की लम्बाई 20 से 25 सें.मी. तथा नर कृमि की लम्बाई 12 से 30 सें.मी. होती है। ये अंडे उत्पादित करते हैं तथा प्रत्येक मादा एक दिन में लगभग 2,40,000 अंडे देती है। ये अंडे मल में निष्कासित होते हैं। फिर मिट्टी में इन अंडों से भ्रूण (embryo) निकलता है जोकि लगभग 2 से 3 सप्ताह में संक्रमण फैलाने योग्य हो जाता है। अब यदि ये अंडे पाचन नाल में प्रवेश कर जाते हैं तो छोटी आंतों में इनमें से लारवा में विकसित हो जाते हैं। ये लारवा पाचन नाल की दीवारों में घुस यकृत में पहुँच जाते है। फिर रक्त द्वारा फेफड़ों तक पहुँच जाते हैं। फेफड़ों में ये दो बार निर्मोक (moult) होते हैं। खांसी के द्वारा फेफड़ों से यह श्वास नली के रास्ते मुँह में आकर मनुष्य परपोषी द्वारा निगल लिये जाते हैं तथा पुन: छोटी आंत में पहुँच जाते हैं। 60 से 80 दिनों में ये वयस्क कृमि में विकसित हो जाते हैं। एक वयस्क कृमि का जीवन काल 6 से 12 महीने होता है।

एस्केरिस का जीवन चक्र चित्र 13.5 में दर्शाया गया है।

इसके लक्षण क्या हैं ?

इसके विभिन्न लक्षण होते हैं। अधिकतर ये लक्षण काफी कम गंभीर तथा अनिश्चित (vague) होते हैं या होते ही नहीं है। इस संक्रमण का प्रथम लक्षण मल या उल्टी (वमन) में जीवित कृमियों का पाया जाना है। जबकि अनियमित श्वसन, खासी, ज्वर तथा इओसिनोफिल (eosinophils) (श्वेत रक्त कणिकाओं का अवयव) की संख्या में वृद्धि, फेफड़ों में इनके लारवा की उपस्थिति के लक्षण हैं। इस परजीवी की अधिक संख्या के कारण पाचन में कठिनाई, उदर पीड़ा, उल्टियाँ, बैचेनी तथा नींद में रुकावट हो सकती है। गोलकृमि से ग्रसित बच्चों का पेट अधिकतर फूला व सूजा हुआ होता है। जब बच्चे को ज्वर होता है तो कृमि कभी मल में निकल आते है या फिर मुँह या नाक से रेंगते हुये बाहर आ जाते हैं। कभी - कभी ये वायु मार्ग (श्वासनली) से बाहर आ जाते हैं तथा गैगन (gagging) उत्पन्न करते हैं।

इससे कौन-सी जटिलताएं हो सकती हैं ?

आइए, ऐस्केरिसता की जटिलताओं को जानें। चूंकि वयस्क कृमि काफी स्थान घेरता है अत: यह पाचन नाल में रुकावट कर सकते हैं तथा इस कारण कई बार आपातकालीन स्थिति भी पैदा हो जाती है जिसके

कारण शल्यचिकित्सा द्वारा उपचार करना पड़ता है । जब मनुष्य की नाल में इन कृमियों की संख्या काफी अधिक हो जाती है तो ये कृमि परपोषी के भोजन को भी खा जाते हैं । अत: परपोषी, विशेषकर बच्चे, कुपोषित हो जाते हैं । इससे बच्चों की वृद्धि रुक जाती है । कुछ लोगों में इस कृमि से एलर्जी भी हो जाती है । मल या उल्टी में कृमियों का निकलना कभी-कभी खतरे का भी सूचक है ।

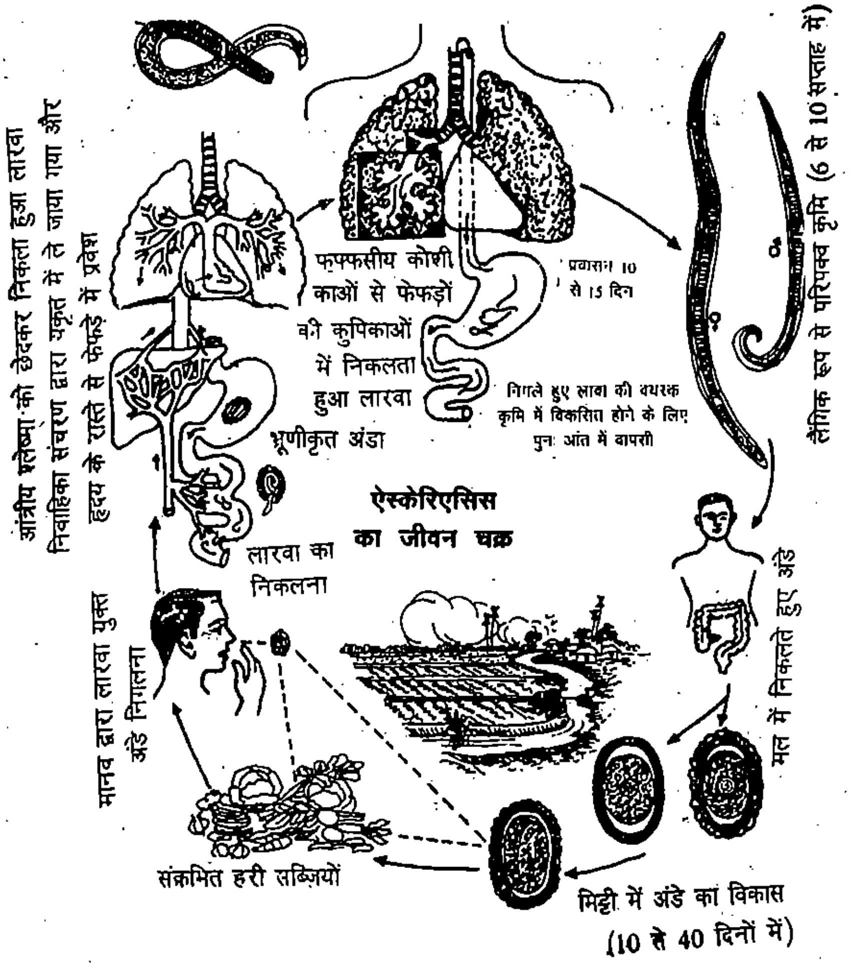

चित्र 13.5 : गोल कृमि का जीवन चक्र

इस संक्रमण के संचिति कौन है ?

गोल कृमि का एकमात्र संचिति मनुष्य है । यह देखा गया है कि बच्चों में संक्रमण की दर बहुत अधिक होती है । अत: यह रोग को फैलाने के मुख्य कारक हैं । वयस्कों में यह ग्रसन कम होता है शायद इसका कारण पूर्ण संक्रमण से उपार्जित रोधक क्षमता है ।

इस रोग की संक्रामक सामग्री क्या है ?

निषेचित अंडों (fertilized egg) से युक्त मल संक्रमित सामग्री होती है तथा इससे संक्रमण फैलता है ।

इससे कौन प्रभावित होता है ?

यह देखा गया है कि बच्चों में संक्रमण की दर बहुत अधिक होती है। अत: रोग को फैलाने के मुख्य कारक बच्चे ही हैं । वयस्कों में ग्रसन कम होता है । इसका कारण यह पूर्व संक्रमणों से उपार्जित रोधक्षमता है ।

इस रोग में वातावरण की क्या भूमिका है ?

इस परजीवी के अंडे उचित परिस्थितियों में महीनों, वर्षों तक मिट्टी में रहते हैं । गर्म व नमी युक्त वातावरण पर्याप्त आक्सीजन तथा सूर्य प्रकाश से कम मात्रा में पराबैंगनी विकिरण इसके लिए उचित परिस्थितियां है । मिट्टी के ढेले गोलकृमि के अंडों के विकास के लिए सर्वोत्तम माध्यम है ।

इसके उत्पन्न होने में मनुष्य की आदतों की क्या भूमिका है ?

खुले में मल त्यागने की आदत, बहुत से समुदायों में ऐसा करने से, मिट्टी गोल कृमि के अंडे से दूषित हो जाती है । गोल कृमि ग्रसन के फैलने के लिए यह आदत सबसे ज्यादा उत्तरदायी है । इससे घर के आसपास की मिट्टी जहाँ बच्चे खेलते हैं, बहुत अधिक दूषित हो जाती है । फिर संक्रमित अंडे आसानी से बच्चों में जोकि नंगे पाँव जमीन / मिट्टी पर खेलते हैं, पहुँच जाती है तथा उनके हाथों व भोजन को दूषित कर देते हैं ।

इसकी संचरणीय अवधि क्या है ?

जब तक सभी प्रजनन योग्य गोल कृमि नष्ट नहीं हो जाते हैं तथा मल के नमूने में अंडों की उपस्थिति समाप्त नहीं हो जाती, तब तक संक्रमण अवधि रहती है।

इसके फैलने का क्या तरीका है ?

ऐस्केरिसता, गुदा - मखीय मार्ग द्वारा फैलता है। कच्चे खाद्यों जैसे प्रदूषित सब्जियां तथा सलाद के खाने से संक्रमण फैलता है। प्रदूषित जल से भी रोग फैलता है। यह भी पाया गया है कि धूल भी विशेषकर शुष्क क्षेत्रों में संक्रमण को फैलाने में उत्तरदायी है।

इसकी उष्मायन अवधि क्या है ?

ऐस्केरिसता की ऊष्मायन अवधि लगभग 2 महीने होती है।

एस्केरिसता की रोकथाम / नियंत्रण कैसे करें ?

सक्षम रोकथाम / नियंत्रण के लिए परजीवी के जीवन चक्र, के बारे में जानकारी होना तथा समुदाय में पाये जाने वाले पारिस्थतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक है। एस्केरिसता की रोकथाम, नियंत्रण, निम्न दो तरीकों के द्वारा संभव है।

क) *प्राथमिक रोकथाम (Primary Prevention) :* इस सिद्धांत पर आधारित तरीके रोग के फैलाव की रोकथाम के लिए सबसे अधिक सक्षम है। प्राथमिक रोकथाम के अंतर्गत निम्न उपाय आते हैं:

- मनुष्य मल का स्वच्छता पूर्ण निपटान, जिससे कि मिट्टी का मल द्वारा दूषण न हो
- सुरक्षित पीने के पानी की सुविधा
- अच्छी खाद्य स्वच्छता की आदतें
- स्वच्छ शौचालयों के प्रयोग व व्यक्तिगत स्वच्छता के बारे में समुदाय को स्वास्थ्य शिक्षा देना।

ख) *द्वितीयक रोकथाम (Secondary Prevention) :* रोगियों व संचिति के विशिष्ट उपचार द्वारा द्वितीयक रोकथाम की जाती है। आपको मालूम ही है कि इस रोग का विशिष्ट उपचार संभव है। रोग के प्रमाणित होने तथा उपचार के लिए चिकित्सीय सलाह ली जा सकती है।

ऐस्केरिसता का क्या उपचार है ?

मानव संचिति में ऐस्केरिसता के उपचार के लिए सक्षम एक खुराक औषध (पिपराजीन) उपलब्ध है। अत: रोग प्रमाण व उपचार के लिए चिकित्सीय सलाह लेनी चाहिए।

सामूहिक उपचार की भूमिका : बहुत अधिक ग्रसन दर वाले क्षेत्रों में 2 से 3 महीनों के अंतराल में आवर्ती कृमि हरण (periodic deworming) किया जा सकता है। परन्तु सामूहिक उपचार द्वारा ऐस्केरिसता की पूर्ण रोकथाम / नियंत्रण संभव नहीं है क्योंकि इससे रोग को फैलने से नहीं रोका जा सकता, केवल कृमि उद्भार में कमी लाई जा सकती है। इसके साथ-साथ स्वच्छता संबंधी अपनाए गए प्रयास ऐस्केरिसता को समाप्त करने में सहायक होंगे।

13.2.4 ऐन्किलोस्टोमता (Ancylostomiasis) (अंकुश कृमि ग्रसन)

अंकुश कृमि ग्रसन बाल्यावस्था का सबसे अधिक खतरनाक रोग है। इसे ऐन्किलोस्टोमता भी कहते हैं। ऐसा बच्चा जिसमें खून की कमी हो, पीला व कमज़ोर लगे तथा मिट्टी खाता हो, उसको अंकुश कृमि ग्रसन हो सकता है।

यह कहाँ होता है ?

यह उष्ण कटिबंधीय (tropical) तथा उपोष्ण (sub-tropical) देश में जहाँ अधिकतर गर्म तथा नमी युक्त मौसम रहता है, में पाया जाता है। शीतोष्ण मौसम वाले क्षेत्रों में खानों के पास ये ग्रसन अधिक पाया जाता है। अनुमान लगाया गया है कि विश्व की एक चौथाई जनसंख्या इस रोग से पीड़ित है। भारत में भी अंकुशकृमि ग्रसन काफी पाया जाता है। आसाम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल तथा महाराष्ट्र में इस ग्रसन की बहुत अधिक घटनाएं पायी गयी हैं।

इसका कारक जीव कौन है ?

अंकुश कृमि रोग दो जीवों द्वारा होता है : (i) ऐन्किलोस्टोमा डूयोडिनेल, तथा (ii) नेकेटर अमेरिकेनस (Necator americanus)। एक तीसरा जीव (iii) ऐन्किलोस्टोमा सीलेनीकम भी पाया गया है, परन्तु यह बहुत कम होता है। अंकुश कृमि चित्र 13.6 में दिखाया गया है।

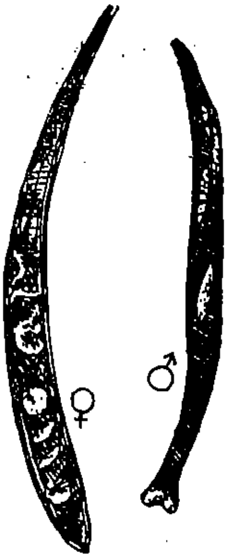

चित्र 13.6: अंकुश कृमि

नेकेटर अमेरीकेन्स कृमि दक्षिणी भारत में जबकि *ऐन्किलोस्टीमा डयोडिनेल* उत्तरी भारत में अधिक पाया जाता है। वयस्क कृमि छोटी आंतों में विशेषकर जेजूनम (jejunum) में रहते हैं जहाँ वह आंतों की रसांकुर (villi) से चिपक जाते हैं। यह देखा गया है कि आंतों की रसांकुर कृमि की मुख गुहिका में फंस /जड़ जाती है। नर कृमि की लम्बाई 8 से 10 मि.मी. तथा मादा कृमि 10 से 13 मि.मी. होती है। कृमि का औसत जीवन काल लगभग 5 वर्ष होता है। कभी-कभी एन. अमेरीकेन्स लम्बे समय तक (13 वर्ष) भी जीवित रहते हैं।

ए. डूयोडीनेल तथा ए.सीलेनीकम का जीवन-चक्र समान होता है। केवल अंतर यह है कि ए.सीलेनीकम मनुष्य के अतिरिक्त बिल्लियों व कुत्तों में भी ग्रसन करता है। एन.अमेरिकेन्स के जीवन चक्र में एक भिन्नता है - संक्रमण केवल त्वचा द्वारा ही होता है जबकि ऐन्किलोस्टोमा ग्रसन मुँह व त्वचा दोनों मार्गों से हो सकता है। ऐन्किलोस्टोमा का जीवन चक्र चित्र 13.7 में दर्शाया गया है।

अंकुशकृमि का जीवन चक्र जानना बहुत रोचक है। इसके अंडे (लगभग 60× 40 मि.मी. का एक अंडा) मल में निष्कासित होते हैं तथा उनमें खंडित अंडाणु होता है। उचित परिस्थितियों जैसे गर्म, नमी युक्त मिट्टी में अंडे लारवा में विकसित हो जाते है तथा 1 या 2 दिन के बाद अंडे में से लारवा निकल आता है (चित्र 13.7)। स्फुटन अंडों में से निकलने वाले लारवा 7 से 10 दिन तक स्वतंत्र रूप से मिट्टी में रहता है। फिर इसका दो बार निर्मोचन (moulting) होता है, जिसके उपरांत यह आच्छादित फाइलेरिरूप लारवा (sheat hed filariform larva) में परिवर्तित हो जाता है। यह रूप मनुष्य के लिए संक्रामक होता है। यह संक्रामक लारवा घास में 3 फुट ऊपर तक पहुँच जाता है तथा किसी मानव परपोषी त्वचा को काटने का अवसर ढूंढता है। परपोषी में प्रवेशित लारवा रक्त धमनियों से हृदय के दाएं निलय (ventricles) में पहुँच जाता है तथा वहाँ से फेफड़ों के वायु कोश (alveoli) में पहुँच जाता है। फेफड़ों के वायु कोश से यह ऊपर की ओर श्वासनली तथा वाक् कंठी तक पहुँच जाता है। वहाँ से भोजन नली, आमाशय तथा छोटी आंतों में पहुँच जाता है। लारवा की यहाँ तक पहुँचने में त्वचा में घुसने के उपरांत 3 से 5 दिन का समय लग जाता है। इसके 4 से 5 सप्ताह बाद कृमि लौगिंक रूप से परिपक्व हो जाता है तथा नर व मादा कृमि अलग - अलग हो जाते हैं। एक मादा ऐन्किलोस्टोमा लगभग एक दिन में 30,000 अंडे तथा नेकेटर की एक मादा लगभग 9000 अंडे देती है। इस रोग की ऊष्मायन अवधि 6 से 8 सप्ताह तक हो सकती है।

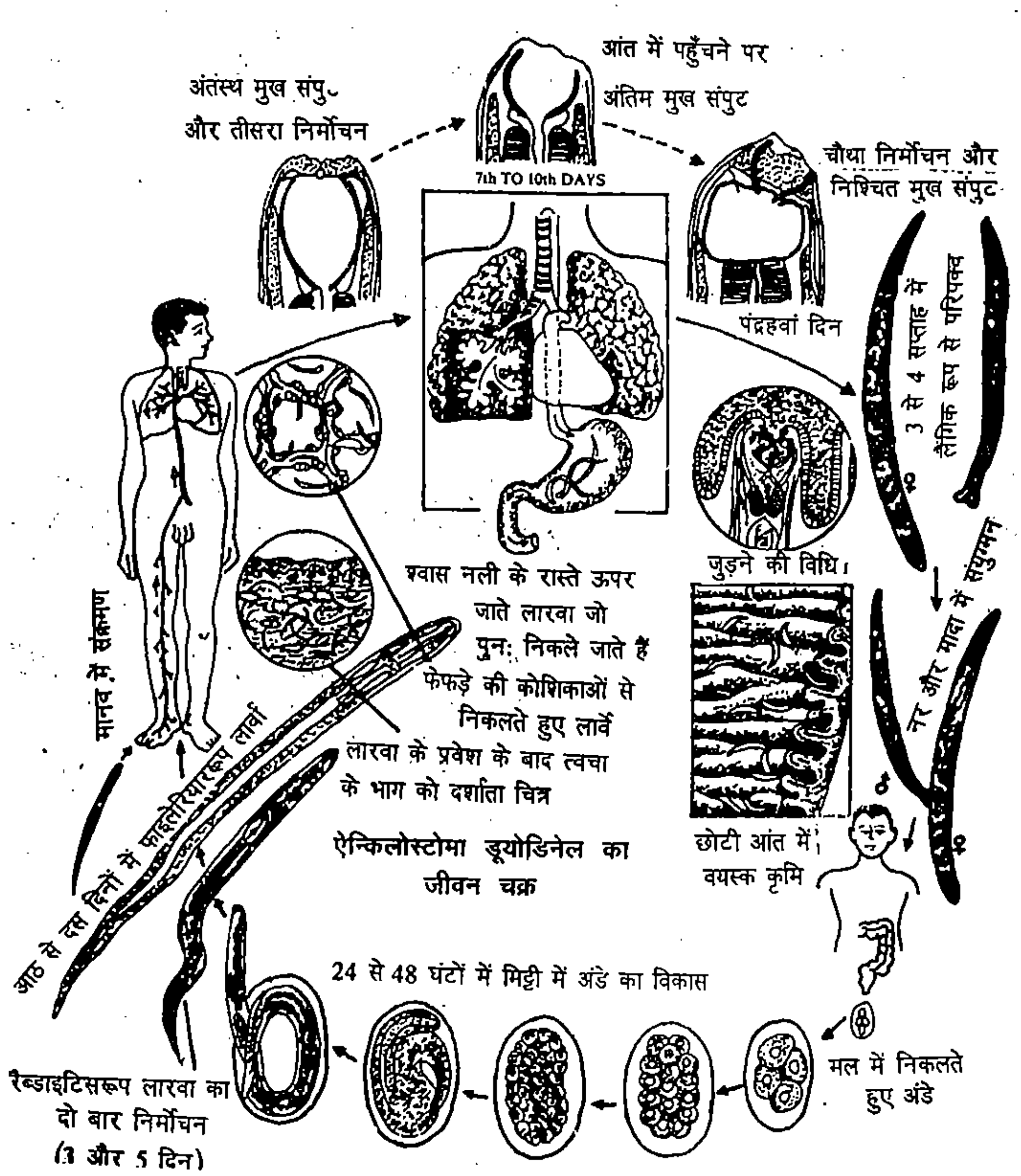

चित्र 13.7 : अंकुश कृमि का जीवन चक्र
(स्रोत: डा.चैटर्जी द्वारा लिखित पुस्तक 'टैक्सट बुक आफ पैरासिटोलोजी' से अनुकूलित)

इसके लक्षण क्या हैं ?

आइए, देखें की अंकुश कृमि रोग में कृमि के जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में कौन-कौन से लक्षण दिखाई देते हैं ? यह संक्रमण शैशवास्था या बाल्यावस्था या वयस्कावस्था किसी में भी ग्रहण किया जा सकता है। जिस स्थान से लारवा त्वचा में प्रवेश करता है उस स्थान पर बने घाव को "पाद खुजली" **(Ground itch)** या "कुली खुजली" (Coolie itch) कहा जाता है। वहाँ पर बहुत अधिक खुजली सूजन तथा शुरू में त्वचा में लाली आ जाती है। इसके उपरांत यह घाव फूल जाता है तथा यह 2 सप्ताह तक ऐसा रहता है।

उन क्षेत्रों में जहाँ यह स्थानिक रोग है वहां इन के बारे में या तो पता लक्षणों को नजरअंदाज कर दिया जाता है या यह लक्षण होता ही नहीं है।

उस स्थिति में जब लारवा फेफड़ों में चला जाता है तो उनकी संख्या के अनुसार श्वसन संबंधी कुछ एक लक्षण भी दिखाई दे सकते हैं। परन्तु स्थानिक रोग वाले क्षेत्रों में यह कम होता है या नजरअंदाज हो जाते हैं।

जब कृमि परिपक्व होने की अवस्थाओं में होता है तो उदर पीड़ा, भूख न लगना तथा रक्त व श्लेष्मल युक्त दस्त आते हैं, इस रोग के स्थानिक क्षेत्रों में कई बार कृमि जीवन पर्यन्त शरीर में रहते हैं तथा उनमें लक्षणहीन संक्रमण रहता है।

उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में अधिकतर रोगी दीर्घकालिक रूप से संक्रमित रहते हैं तथा अधिकतर श्वसन संबंधी

या उदर संबंधी लक्षण उनमें दिखाई नहीं देते हैं। परन्तु उनकी मुख्य शिकायत एनीमिया होती है जोकि कृमि द्वारा आंतों से रक्त चूसने के कारण होती है। रक्त प्रोटीन (एल्बूमिन) की मात्रा में भी कमी आती है।

स्थानिक रोग वाले क्षेत्रों में रोगियों की मुख्य शिकायतें होती है : काम करने में असमर्थता, जल्दी थकना, थोड़ा सा काम करने पर सांस फूलना, पैरों में सूजन, त्वचा का सामान्य रंग बदलना (पीलापन आना), भूख न लगना तथा नपुंसकता। कुछ रोगी चलने पर छाती, जांघों व पैरों में भी दर्द की शिकायत करते हैं। निरीक्षण करने पर संक्रमण की तीव्रता तथा उदभार के अनुसार उल्टा करने पर निचली पलकों, होठों, जीभ तथा तालू में बहुत अधिक पीलापन देखा जा सकता है। नाखून चम्मच के आकार (Koilonychia) के हो सकते है।

सूक्ष्मदर्शी द्वारा मल में वयस्क कृमि व अंडे की उपस्थिति की जांच द्वारा इसका पक्का पता लगाया जा सकता है।

इसकी जटिलताएँ क्या हैं ?

अंकुश कृमि संक्रमण से निम्न जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं।

क) *एनीमिया* : इस संक्रमण की मुख्य विशेषता एनीमिया है। रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा का पता लगाकर इसकी पहचान की जा सकती है। एनीमिया की तीव्रता निम्न बातों पर निर्भर करती है। (1) संक्रमण की तीव्रता तथा अवधि, (2) आहार में लोह तत्व की मात्रा, तथा (3) शरीर में लौह तत्व के भंडार।

ख) *रक्त की हानि* : यह देखा गया है कि अंकुश कृमि संक्रमण में एन.अमेरिकेन्स का एक कृमि एक दिन में 0.03 मि.ली से 0.05 मि.ली. तथा ए.डयूडिनेल का एक कृमि 0.16 से 0.34 मि.ली. रक्त चूसता है। रक्त की हानि के अतिरिक्त प्रोटीन की हानि भी होती है।

आपको मालूम होना चाहिए कि ये दो मुख्य जटिलताएं यद्यपि जीवननाशक नहीं है, फिर भी तीव्र असमर्थता तथा कार्य क्षमता में बहुत अधिक कमी उत्पन्न कर देती हैं।

इस संक्रमण के संचिति कौन है ?

आपको याद रखना चाहिए की मानव अंकुश कृमि ग्रसन का एकमात्र संचिति है।

इस रोग की संक्रामक सामग्री (Infective material) क्या है?

अंकुश कृमि के अंडों से युक्त मल संक्रामक सामग्री है। संक्रामक का प्रत्यक्ष स्रोत संक्रमित लारवा से संदूषित मिट्टी है।

इस संक्रमण के प्रति कौन संवेदनशील है ?

ऐन्किलोस्टोमता सभी आयु वर्ग तथा दोनों लिंगों के व्यक्तियों को हो सकता है। उन क्षेत्रों में जहाँ यह स्थानिक रोग के रूप में होता है 15 से 25 वर्ष की आयु के लोगों में सर्वाधिक पाया जाता है। इस रोग के होने तथा लम्बी अवधि तक रहने के लिए अल्पपोषण एक महत्वपूर्ण कारक है। वाहित मल खेती (sewage farming) खेतीबारी, चाय बागान तथा खानों में लगे हुये लोगों में इस ग्रसन की अधिक दर पायी जाती है। रोग के फैलने तथा निरन्तर बने रहने में मनुष्य की आदतों की महत्वपूर्ण भूमिका है। संक्रामक अंकुशकृमि लारवा उन विशिष्ट व सीमित स्थानों पर बहुत अधिक पाये जाते हैं जहाँ लोग शौच के लिए जाते हैं। नंगे पैर चलने तथा संक्रमित स्थानों पर बच्चों के खेलने व चलने से संक्रमण व पुन: संक्रमण की संभावना अधिक हो जाती है। अंकुश कृमि रोग के फैलने के लिए उत्तरदायी कुछ अन्य कारक गरीबी, निरक्षरता अज्ञानता तथा निम्न जीवन स्तर है।

अंकुशकृमि रोग किस प्रकार फैलता है ?

जैसा कि इस इकाई में पहले आप पढ़ चुके हैं कि ऐन्किलोस्टोमता संक्रमण त्वचा तथा मुख दोनों ही मार्गों द्वारा हो सकता है। संक्रमित लारवा से दूषित सब्जियां व फल खाने पर यह मुख मार्ग द्वारा फैलता है। जबकि नेकेटर संक्रमण तलवों तथा पैरों की त्वचा से लारवा के शरीर में प्रवेश के द्वारा होता है। उष्ण कटिबंधीय तथा उपोष्ण देशों में पूरे वर्ष इन मार्गों के द्वारा संक्रमण फैलता है।

अंकुशकृमि रोग की रोकथाम / नियंत्रण कैसे करें ?

तीन मुख्य शीर्षकों के अंतर्गत इसकी रोकथाम / नियंत्रण को आसानी से समझा जा सकता है :

क) *संचिति का नियंत्रण* : रोगी की पहचान तथा सभी संक्रमित व्यक्तियों के उपचार द्वारा संचिति का नियंत्रण किया जा सकता है। अब इसका विशिष्ट उपचार उपलब्ध है तथा संक्रमित व्यक्ति को चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए। समय - समय पर सामूहिक उपचार द्वारा संक्रमण उद्भार (load)

तो कम किया जा सकता है। परन्तु इस बात को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि केवल उपचार से संचिति को समाप्त नहीं किया जा सकता है। उपचार के साथ - साथ स्वच्छता की तरफ भी बहुत अधिक ध्यान देना चाहिए। यदि ऐस्केरियता भी हो तो पहले उसका उपचार करना चाहिए। अंकुशकृमि संक्रमण की जटिलताओं जैसे एनीमिया, सीरम प्रोटीन में कमी का भी उपचार करना चाहिए। यदि गंभीर एनीमिया हो (हीमोग्लोबिन की मात्रा 5 ग्रा. /डेसी.ली. से कम हो) तो लौह तत्व के पूरक देने चाहिए। सभी अस्पतालों तथा स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के पास लौह तत्व की गोलियां पायी जाती है।

ख) *रोग फैलने या सवंहन का नियंत्रण :* मनुष्य मल का स्वच्छतापूर्ण निपटान द्वारा मिट्टी के प्रदूषण को रोका जा सकता है। बागवानी के लिए ताजी मिट्टी के स्थान पर कम्पोस्ट मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए। कम्पोस्ट करने की अवधि 6 सप्ताह होनी चाहिए, जिससे अंडे पूर्णतया 100 प्रतिशत नष्ट हो जाएं।

ग) *मानव परपोषि का नियंत्रण :* रोग के नियंत्रण के लिए स्वास्थ्य शिक्षा तथा समुदाय का सहयोग आवश्यक है। स्वास्थ्य शिक्षा में निम्न पहलुओं के बारे में शिक्षा देनी चाहिए :

- स्वच्छ शौचालयों के प्रयोग को बढ़ावा देना
- पैरों मे सुरक्षित जूते या चप्पल पहनने की आदत को बढ़ावा देना
- रोग निदान (diagnosis) व उपचार को बढ़ावा देना
- आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों को उन्नत करना

बोध प्रश्न 2

1) रिक्त स्थान भरे :

क) ऐस्केरियता को .... रोग भी कहते हैं।

ख) एस्केरिस संक्रमण का एकमात्र संचिति .... है।

ग) ऐस्केरियता का .... मार्ग द्वारा फैलाव होता है।

घ) अंकुश कृमि रोग .... से होता है।

ङ) अंकुश कृमि रोग में उत्पन्न होने वाली जटिलतायें .... तथा .... है।

2) अंकुशकृमि ग्रसन की रोकथाम के लिए समुदाय के लिए स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम की योजना बनाएं।

....

....

....

....

....

13.2.5 अमीबता (Amoebiasis)

अमीबता शब्द का अर्थ है वह स्थिति जिसमें *एन्टअमीबा हिस्टोलिटीका* नामक प्रोटोजोआ परजीवी शरीर में रहता है। यह स्थिति लक्षणहीन या लक्षणयुक्त दोनों ही हो सकती है। यह रोग महानगरीय परजीवी संक्रमण है जो कि सारे विश्व में पाया जाता है। परन्तु एशिया तथा अफ्रीका में यह जन स्वास्थ्य महत्व की समस्या है। जिन क्षेत्रों में उनित सफाई नहीं होती है, वहाँ यह रोग 10 से 50 प्रतिशत या अधिक लोगों में पाया जाता है। अनुमान लगाया गया है कि भारत में लगभग 15 प्रतिशत लोग इससे प्रभावित हैं।

इसका कारक जीव क्या है ?

कारक जीव *ई.हिस्टोलिका* एक कृमि नहीं है अपितु यह एक बहुत छोटा सा जीव परजीवी है जोकि बड़ी आँतों की अवकाशिका (lumen) में रहता है। सूक्ष्मदर्शी में देखने पर अमीबता चित्र 13.8 जैसा दिखाई देता है।

जीव वृद्धि के लिए इष्टतम परिस्थितियां कौन सी हैं ?

अमीबा की पुटी जो कि संक्रमित रूप है, बाह्य वातावरण के परिवर्तनों से अप्रभावित रहती है। नमी तथा कम तापमान के इष्टतम परिस्थितियों में पुटी महीनों तक जीवित रहती है परन्तु उबलते पानी, नमी की कमी, प्रत्यक्ष सूर्य प्रकाश, पराबैंगनी किरणों तथा 55 डिग्री से.से अधिक ताप में आसानी से नष्ट हो जाति हैं। क्लोरीनीकरण द्वारा भी पुटी नष्ट हो जाती है। परन्तु शहरों में तथा कस्बों में सामान्यतया पीने के पानी को शुद्ध करने के लिए प्रयोग की गयी क्लोरीन की मात्रा इस कार्य के लिए अपर्याप्त होती है।

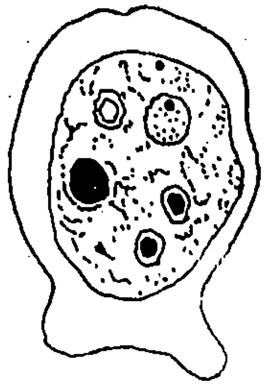

सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर अमीबा

चित्र 13.8 : अमीबा

अमीबता के क्या लक्षण होते हैं ?

जैसा कि आप पहले ही जान चुके है कि अमीबता नैदानिक लक्षणयुक्त या लक्षणहीन दोनों ही प्रकार का हो सकता है। लक्षण युक्त रोग संक्रमित व्यक्तियों में से केवल 10 प्रतिशत को ही होता है। इस रोग से आँतें तथा अन्य अंग जैसे यकृत, फेफड़े, मस्तिष्क, तिल्ली, त्वचा आदि प्रभावित होते है। आंत्रबाह्य अमीबता का सबसे सामान्य लक्षण अमीबीता यकृत विद्रधि (Amoebic liver abscess) तथा अतिसार है। आंतीय अमीबता पेचिश (रक्तयुक्त दस्त) आंत्रशोथ (पेचिश के बिना बड़ी आंतो में जलने) अमीबोमा (फोड़ा), अमीबिक अपन्डीसाइटीस आदि से दृष्टिगत होता है।

संक्रमण के संचिति कौन हैं ?

मनुष्य स्वयं इस संक्रमण का संचिति हैं। वह दीर्घकालिक लक्षणहीन व्यक्ति भी हो सकता है।

संक्रामक सामग्री क्या है ?

संक्रमण का प्रत्यक्ष स्रोत *ई.हिस्टोलिटिकायुक्त* की पुटी युक्त मल है।

इस रोग से कौन-कौन प्रभावित हो सकता है ?

अमीबता किसी भी आयु में हो सकता है। दोनों लिंग इससे प्रभावित हो सकते हैं। अधिकांशतया यह एक घरेलू संक्रमण है अर्थात् यदि परिवार के एक सदस्य इससे प्रभावित होता है तो अन्य सदस्य भी इससे प्रभावित होते हैं। कुछ लोगों में पूर्व संक्रमण होने के कारण रोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

संचरणीय अवधि क्या है ?

जब एक व्यक्ति पुटी निष्कासित करता है तब तक संक्रमण अवधि काल रहता है। यदि रोगी की पहचान तथा उपचार न हो तो संक्रमण अवधि कई वर्षों की हो सकती है।

अमीबता को प्रभावित करने वाले वातावरणीय कारक कौन - कौन से हैं ?

हमारे देश में अनुचित स्थान पर शौच जाने से हुआ मिट्टी का प्रदूषण तथा सुरक्षित पेय जल की कमी, स्वास्थ्य अज्ञानता व निम्न जीवन स्तर इस रोग के उत्तरदायी मुख्य कारक हैं।

यह रोग कैसे फैलता है ?

अमीबता का संवहन गुदा-मुखीय मार्ग से होता है। अन्य रोगों की भांति अमीबता का संवहन भी ई.हिस्टोलिका की पुटी - युक्त मल से दूषित भोजन या जल के उपयोग के कारण होता है। वांछित मल से दूषित जल द्वारा सिंचाई किए हुये खेतों में उत्पन्न सब्जियां विशेषकर जब उन्हें कच्चा खाया जाए संक्रमण फैलता है। यह जानना आवश्यक है कि हाथों तथा नाखूनों में जीवित पुटी पाए जाते हैं जिनसे यह रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है। खाद्य हस्तन (food handling) में लगे हुये लोग स्वयं संक्रमित होने पर अपनी अस्वच्छ आदतों के कारण संक्रमण को फैलाते हैं। कई बार मक्खियां, ककरोच तथा चूहों में भी पुटी रहते हैं तथा ये भी खाद्य व पेय पदार्थों को दूषित करते हैं। ये जीव जो कि रोग फैलाने में मदद करते हैं, वेक्टर (vector) या वाहक कहलाते हैं।

अमीबता की ऊष्मायन अवधि क्या है ?

अमीबता की ऊष्मायन अवधि 3 से 4 सप्ताह है। परन्तु वातावरण के अनुसार इसकी ऊष्मायन अवधि कुछ दिनों से कई महीनों या वर्षों तक हो सकती है।

अमीबता की जटिलताएं

आइए देखें कि आंतीय तथा आंत्रबाह्य अमीबता से कौन-कौन सी जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं।

क) *आंतीय अमीबता*

1) गंभीर संक्रमण में, बड़ी आंतों में बहुत से घाव हो सकते हैं। कई बार इन घावों से छिद्र भी बन जाते हैं जिससे आपातस्थिति पैदा हो जाती है। यदि इसका उपचार न किया जाये तो इलियास (ileus) लकवा (नाल का लकवा) होने के कारण मृत्यु भी हो सकती है।

2) संक्रमण की गंभीरता, उपचार तथा प्रभावित व्यक्ति के स्वास्थ्य स्तर के अनुसार यह रोग दीर्घकालिक तथा शीघ्र ठीक न होने वाला बन जाता है। ऐसे रोगियों में अविशिष्ट (Non specific) तथा विभिन्न लक्षण दिखाई देते हैं।

3) एक अन्य लक्षण अमीबोमा, अर्थात् अन्धान्त्र (Caecum) या वृहदन्त्र के (Colon) घुमावदार भाग में फोड़ा।

ख) *आंत्रबाह्य अमीबता*

तीव्र या दीर्घकालिक यकृत विद्रधि (abscess), फेफड़ों का विद्रधि, मस्तिष्क विद्रधि जैसी जटिलताएं भी पैदा हो सकती हैं।

क्या इसका कोई विशिष्ट उपचार है ?

एक बार रोग प्रमाणित हो जाने पर अमीबता का विशिष्ट उपचार उपलब्ध है तथा चिकित्सक की सलाह तथा निगरानी में लिया जा सकता है। आंत्रबाह्य अमीबता में अस्पताल में दाखला व उपचार करवाना अनिवार्य है।

अमीबता की रोकथाम / नियंत्रण कैसे करें ?

आपकी सुविधा के लिए अमीबता की रोकथाम का निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत वर्णन किया गया है :

क) *प्राथमिक रोकथाम :* अमीबता की प्राथमिक रोकथाम के लिये पेयजल, खाद्यों, सब्जियों व फलों के मल प्रदूषण को रोकना चाहिए। आइएं, देखें कि हमें कौन-कौन सी सावधानियां बरतनी चाहिए :

- अमीबता की रोकथाम / नियंत्रण के लिए मनुष्य मल का स्वच्छतापूर्ण निपटान करना। साथ-साथ उचित स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा इन सुविधाओं के उचित प्रयोग को भी बढ़ावा देना चाहिए।
- कच्ची सब्जियों व फलों को पानी में आयोडीन के घोल (सान्द्रता 200 भाग प्रति दस लाख) या 5 से 10 प्रतिशत एसिटीक अम्ल या सिरके के घोल से धोना चाहिए जिससे उनको अमीबा पुटी से मुक्त किया जा सके।
- खाद्य हस्तन में लगे लोगों का समय-समय पर स्वास्थ्य निरीक्षण होना चाहिए। उन्हें उचित व्यक्तिगत स्वच्छता, शौचालय का उचित प्रयोग आदि के बारे में स्वास्थ्य शिक्षा देनी चाहिए।

ख) *द्वितीयक रोकथाम :* शीघ्र रोग की पहचान, तुरंत तथा पूर्ण उपचार द्वारा गौण रोकथाम की जा सकती है। अमीबता से ग्रस्त गर्भवती स्त्री के उपचार में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि अमीबता के उपचार के लिए प्रयुक्त कुछ दवाओं के हानिकारक प्रभाव हो सकते हैं।

13.2.6 गिआर्डियता (Giardiasis)

गिआर्डियता छोटी आंतों में होने वाला प्रोटोज़ोअल संक्रमण है जिससे अतिसार हो जाता है। इस परजीवी के बारे में हाल में प्राप्त जानकारी से इस रोग के नैदानिक व जानपदिक रोगविज्ञानीय पहलुओं के बारे में कुछ नए तथ्य सामने आए हैं।

यह कहां होता है ?

यह रोग पूरे विश्व में पाया जाता है। गन्दगी वाले क्षेत्रों तथा संस्थाओं में यह अधिक पाया जाता है। गिआर्डियता की महामारी जल द्वारा होने वाली महामारी है। इससे अधिकतर दो प्रकार के लोग प्रभावित होते हैं – किसी अतिथि और शिविर में रहने वाले या किसी क्षेत्र के निवासी। भारत में ये रोग बच्चों को प्रभावित करता है तथा आंत संबंधी लक्षण उत्पन्न करता है।

इसका कारक जीव कौन है ?

गिआर्डिआ इन्टेस्टिनैलिस (गिआर्डिआ लैम्बलिआ) द्वारा गिआर्डियता होता है। अमीबा की भांति गियार्डिआ भी सूक्ष्मदर्शी से दिखाई देने वाला परजीवी है तथा आहार नाल में रहता है। यह अतिसार का मुख्य कारण है। चित्र 13.9 में गिआर्डिआ दिखाया गया है।

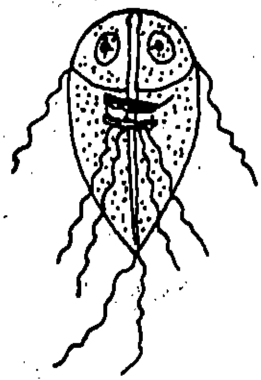

सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने

पर गिआर्डिआ

चित्र 13.9: गिआर्डिआ

किस प्रकार यह जीव रोग उत्पन्न करता है ?

गिआर्डिआ आहार नाल की दीवारों पर चिपक जाता है तथा नाल की दीवारों को क्षतिग्रस्त व नष्ट कर देता है। इस जीव द्वारा उत्पन्न विष आहार नाल की श्लेष्मा झिल्ली को क्षति पहुँचाता है।

इस रोग के चिन्ह व लक्षण क्या हैं ?

गिआर्डियता रोग लक्षणहीन होता है। पीले रंग के, बुरी गंद व झाग-युक्त दस्त जिसमें रक्त या श्लेष्मल न हो, गिआर्डिआ के कारण हो सकते हैं। बच्चों में इस रोग के कारण अतिसार, जी-मिचलाना, उदर पीड़ा, दर्द, आलस व बैचेनी, अकुलाहट हो सकती है। वयस्कों में अधिकतर आलस के साथ पेट के विकार बदहजमी, तथा कार्य क्षमता में कमी दिखाई देती है। गंभीर मामलों में गिआर्डियता से अपावशोषण (malabsorption) भी हो सकता है जिसके कारण प्रोटीन, ऊर्जा व फोलिक अम्ल की कमी हो जाती है। अपावशोषण परजीवी के द्वारा उत्पन्न आहार नाल पर हुए हानिकारक प्रभाव के कारण होता है। इस संक्रमण से आमाशय तथा छोटी आंत के दूरस्थ भागों की श्लेष्मल झिल्ली में आकारीय परिवर्तन पाये जाते हैं।
गिआर्डियता निम्न दो रूपों में पाया जाता है :

- कम अवधि का तीव्र गिआर्डियता जिसमें अतिसार तथा अपावशोषण होता है जोकि स्वयं नियंत्रित (self) तथा अपचारीय होता है, या
- दीर्घकालिक या बार-बार होने वाला गिआर्डियता। यह बहुत ही स्वच्छ वातावरण में भी उन लोगों को हो सकता है जिनकी छोटी आंतों की रोधक क्षमता कम हो गयी होती है।

संक्रमण के संचिति कौन हैं ?

मनुष्य तथा अन्य घरेलू जानवर जैसे कुत्ते व चूहे गिआर्डियता संक्रमण के संचिति हैं।

इस संक्रमण की ऊष्मायन अवधि क्या है ?

ऊष्मायन अवधि निश्चित नहीं होती है, पर 6 से 22 दिन तक हो सकती है। जल द्वारा उत्पन्न होने पर ऊष्मायन अवधि संक्रमण से संपर्क होने के 1 से 4 सप्ताह बाद तक हो सकती है।

संचरणीय अवधि क्या है ?

संपूर्ण संक्रामक अवधि जब तक रहती है जब तक संक्रमण रहता है।

2) रोग के प्रति कौन अधिक संवेदनशील है ?

अल्पपोषित तथा कम रोधक्षमता वाले व्यक्ति विशेषकर शिशु व बच्चे गिआर्डियता संक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। गिआर्डियता में लक्षणहीन वाहक अवस्था बहुत अधिक पायी जाती है।

गिआर्डियता कैसे फैलता है ?

गुदा-मुखीय मार्ग द्वारा गिआर्डियता का संवहन होता है। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में विशेषकर संस्थाओं में रोग फैलने का यह मुख्य तरीका है। दूषित जल से इसकी महामारी भी हो सकती है।

गिआर्डियता का क्या उपचार है ?

आपको मालूम होना चाहिए कि आजकल गिआर्डियता के विरुद्ध बहुत ही सक्षम दवाइयां उपलब्ध हैं। यदि गंभीर अतिसार हो तो ओ.आर.टी. द्वारा निर्जलीकरण की रोकथाम व उपचार करना चाहिए। गिआर्डियता की पहचान व उपचार के लिए चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

गिआर्डियता की रोकथाम व नियंत्रण कैसे करें ?

जैसा कि आप जानते हैं कि गिआर्डियता जल व भोजन के द्वारा फैलता है। अत: शुद्ध जल की आपूर्ति व आहार स्वच्छता गिआर्डियता के नियंत्रण व रोकथाम के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। संस्थाओं में गिआर्डियता का संक्रमण फैलने पर, वहाँ के लोगों के स्वच्छता स्तर में सुधार लाना, इस संक्रमण के नियंत्रण के लिए अति आवश्यक है। अत: गिआर्डियता संक्रमण की रोकथाम के लिए स्वच्छ पेय जल की आपूर्ति तथा स्वच्छता व व्यक्तिगत सफाई के बारे में लोगों को स्वास्थ्य शिक्षा देना अनिवार्य है।

बोध प्रश्न 3

1) रिक्त स्थान भरें :

क) अमीबता .... के कारण होता है।

ख) अमीबता संक्रमण का संप्रति .... है।

ग) अमीबता का संवहन .... मार्ग द्वारा होता है।

घ) गिआर्डियता .... परजीवी द्वारा होता है।

ड.) गिआर्डियता दो रूपों में पाया जाता है : .... तथा ....।

13.2.7 ट्राइक्यूरिसता (Trichuriasis) (कशाकृमि रोग)

ये परजीवी संक्रमण बड़ी आंतों को प्रभावित करता है। इसे कशा कृमि (whip worm) रोग भी कहते हैं।

यह कहाँ पाया जाता है ?

यह महानगरों में पाया जाता है परन्तु गर्म व नमीयुक्त क्षेत्रों में इसकी घटनाएं अधिक होती है। यह *ट्राइक्यूरिस ट्राइकियूरा (Trichuris trichura)* नामक जीव से उत्पन्न होता है (चित्र 13.10)

वयस्क कृमि

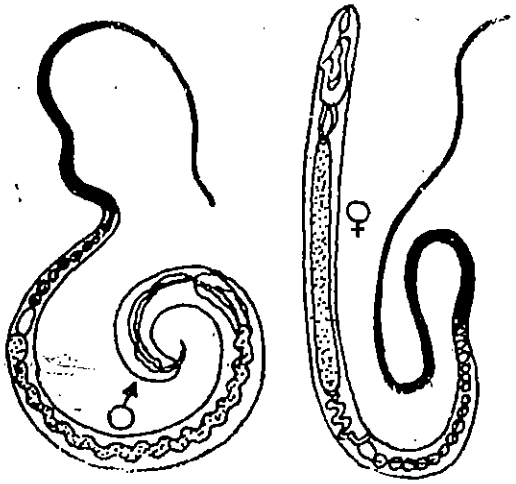

चित्र 13.10 कशा कृमि

इसके लक्षण व चिन्ह क्या हैं ?

अधिकतर यह रोग लक्षणहीन होता है तथा मल की जाँच द्वारा ही इसका पता लगाया जा सकता है। कशा कृमि के कारण गंभीर रोग कम लोगों में ही तब होता है जबकि ये कृमि बहुत अधिक संख्या (500 - 1000) में उपस्थित हो। ऐसी अवस्था में रक्त व श्लेष्मलयुक्त दस्त व उदर पीड़ा हो जाती है। रक्त युक्त अतिसार लम्बे समय तक चलता है तथा इसके फलस्वरूप आंत का नीचला भाग गुदा से बाहर निकल आता है। इस स्थिति को मलाशयी भ्रंश (Rectal Prolapse) कहते हैं। इससे पिडित बच्चों के भार में कमी आती है, वृद्धि रुक जाती है तथा वे एनीमिया से ग्रस्त हो जाते हैं।

जीव किस प्रकार रोग उत्पन्न करता है ?

अधिक संक्रमण होने पर आंत की दीवारें जिन पर कृमि चिपके होते है, फूल जाती है तथा उनमें जलन होती है। इस अवस्था को आंत्रशोथ कहते हैं। इसके कारण रक्त युक्त अतिसार हो जाता है तथा बार-बार अतिसार होने के कारण वृद्धि रुक जाती है।

इस संक्रमण के संचिति कौन हैं ?

मनुष्य इस संक्रमण का संचिति है। चित्र 13.11 में ट्राइक्यूरिस ट्राइकियूरा का जीवन चक्र दिखाया गया है। गोल कृमि की भांति कशा कृमि भी गुदा - मुखीय मार्ग द्वारा फैलता है। इससे अधिकतर अतिसार होता है। इस रोग की ऊष्मायन अवधि अनिश्चित होती है।

चित्र 13.11: ट्राइक्यूरिस ट्राइकियूरा का जीवन चक्र
(स्रोत: डॉ चैटर्जी द्वारा लिखित पुस्तक ''बुक आफ पैरासिटोलोजी'' से अनुकूलित)

इसकी संचरणीय अवधि क्या है ?

जब तक मल में अंडे रहते है तब तक संक्रमण अवधि रहती है । यह कई वर्षों तक हो सकती है ।

यह कैसे फैलता है ?

कशा कृमि रोग का संवहन अप्रत्यक्ष रूप से होता है क्योंकि यह रोग मनुष्य से मनुष्य में नहीं फैलता है । मल में निष्कासित अंडों को मिट्टी में भ्रूण बनने के लिए तीन सप्ताह का समय लगता है । दूषित मिट्टी से भ्रूण बने अंडों के शरीर में पहुँचने के बाद स्फुटन क्रिया होती है, और बढ़ता कृमि अन्धान्त्र या कोलन के श्लेष्मल झिल्ली से चिपक जाता है । इसके 90 दिन बाद अंडे मल में निष्कासित होने शुरू हो जाते हैं । सभी व्यक्ति संक्रमण के प्रति संवेदनशील होते हैं ।

आप इस रोग की रोकथाम व नियंत्रण कैसें कर सकते हैं ?

इस रोग के रोकथाम के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य मल के निपटान के लिए स्वच्छ सुविधाओं की उपलब्धता है । परिवार के सभी सदस्यों को स्वास्थ्य शिक्षा देनी चाहिए, विशेषकर बच्चों को शौचालयों का सही प्रकार से प्रयोग करना सिखाना चाहिए । स्वच्छतापूर्ण आदतों जैसे भोजन को छूने से पहले हाथ धोना तथा सब्जियों को अच्छी तरह धोना व मिट्टी न खाना को बढ़ावा देना चाहिए ।

ट्राइक्यूरिसता का क्या उपचार है ?

कशा कृमि ग्रसन का विशिष्ट उपचार उपलब्ध है । अतः यदि आपको कशा कृमि ग्रसन का संदेह हो तो पूर्ण प्रमाणित होने के लिए डाक्टर के पास जाना चाहिए, मल निरीक्षण करवा कर उचित उपचार लेना चाहिए ।

13.2.8 ऑक्सीयूरिसता (Oxyuriasis) (पिन कृमि रोग)

ऑक्सीयूरिसता पिन कृमि द्वारा आंतों का ग्रसन है जिसके कुछ मंद विशिष्ट लक्षण हो सकते हैं या यह लक्षणहीन भी हो सकता है । इससे गुदा द्वार पर खुजली हो जाती है । इसे पिन कृमि रोग भी कहते हैं ।

यह कहाँ पाया जाता है?

यह रोग पूरे विश्व भर में पाया जाता है । स्कूल जाने वाले बच्चों में सबसे अधिक, फिर पूर्व स्कूल गामी अर्थात् 1 से 5 वर्ष की आयु के बच्चों तथा सबसे कम वयस्कों में पाया जाता है ।

इसका कारक जीव कौन है ?

यह रोग *एन्टेरोबियस वर्मिक्युलेरिस (Enterobius Vermicularis)* (चित्र 13.12) के कारण होता है । यह कृमि केवल मनुष्य को ग्रसित करता है ।

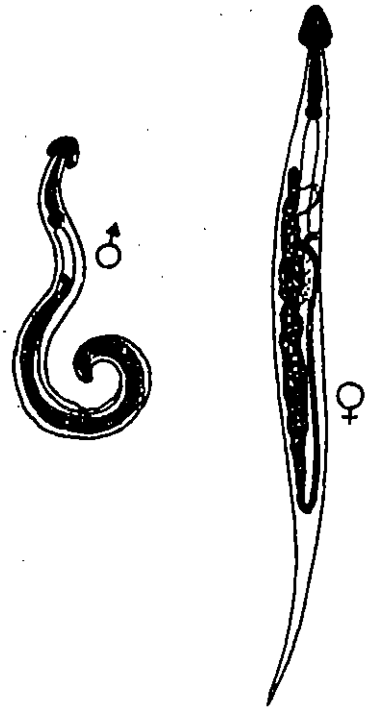

चित्र 13.12 : पिन कृमि

इसके चिन्ह व लक्षण क्या हैं ?

अधिकतर इस संक्रमण के लक्षण कम तीव्र व अवशिष्ट (non specific) होते हैं। गंभीर मामलों में गुदा में खुजली हो जाती है जिससे नींद में विघ्न, अकुलाहट तथा खुजली के कारण उस स्थान पर जलन होती है। इसके निदान के लिए गुदा द्वार पर चिपकने वाली पारदर्शी टेप लगा देते हैं तथा फिर सूक्ष्मदर्शी द्वारा उसमें अंडों की उपस्थिति का निरीक्षण करते हैं।

जीव किस प्रकार रोग उत्पन्न करता है ?

निकलने के कुछ घंटों बाद ही अंडे संक्रमित हो जाते हैं। यह कुछ दिनों तक जीवित रहते हैं। अंडों का छोटी आंतों में स्फुटन (hatching) होता है तथा छोटी आंत के अन्धान्त्र (caecum) तथा बृहदन्त्र कोलन (Proximal colon) भाग में तरुण कृमि परिपक्व हो जाते हैं।

अण्डपूर्ण कृमि अंडे देने के लिए गुदा के पास के स्थान पर चले जाते है। स्त्री के जनन मार्ग द्वारा ये कृमि पर्युदया (उदर) गुहा में पहुँच जाते हैं।

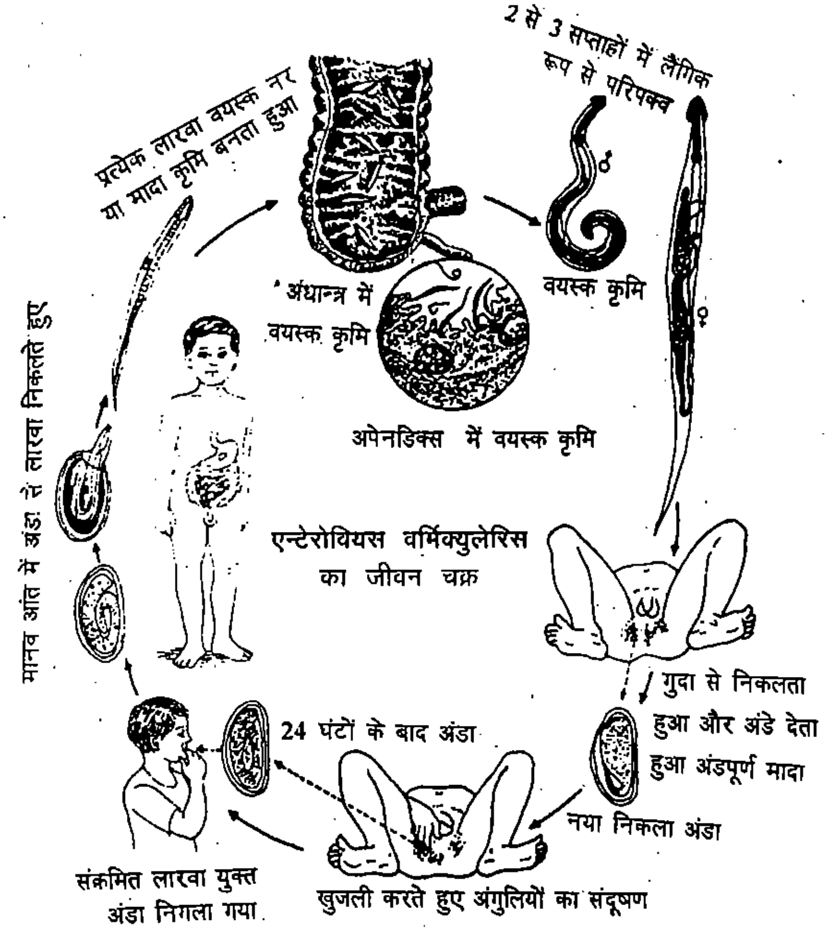

चित्र 13.13 : एन्टेरोवियस वर्मिक्युलेरिस का जीवन चक्र
स्रोत : डा.चैटर्जी द्वारा लिखित पुस्तक "टैक्सट बुक आफ पैरासिटोलोजी" से अनुकूलित

क्या पिन कृमि रोग से कोई जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं ?

इस रोग से यदा कदा कुछ जटिलताएं जैसे उण्ड्कपुच्छशोथ (appendicitis) तथा स्त्रियों की श्रोणीय अंगों में जलन हो जाती है।

संक्रमण का संचिति कौन है ?

स संक्रमण का संचिति मनुष्य है ।

उष्मायन अवधि क्या है ?

कृमि का जीवन चक्र 3 से 6 सप्ताह में पूरा हो जाता है । एक बार संक्रमण होने के बाद पुन: संक्रमण से कृमियों की संख्या बढ़ जाती है।

संचरणीय अवधि क्या है ?

वयस्क कृमि केवल 2 महीनों के लिए जीवित रहता है परन्तु अपने आप से या परिवार / संस्था के अन्य संक्रमित व्यक्ति से पुन: संक्रमण हो सकता है । अत: जब तक गर्भवती मादा आंतों में रहती है, संक्रमण अवधि रहती है । संक्रमण सभी को हो सकता है ।

यह कैसे फैलता है ?

रोगी की अंगुलियों के द्वारा गुदा से मुंह तक प्रत्यक्ष संवहन से स्वयं रोगी में ही या किसी अन्य नए व्यक्ति में रोग फैलता है । अप्रत्यक्ष रूप से परजीवी के अंडों से दूषित कपड़ों, बिस्तरों, भोजन या अन्य वस्तुओं के द्वारा भी संक्रमण फैलता है । बहुत अधिक दूषित स्थानों पर मिट्टी के द्वारा भी संक्रमण हो सकता है ।

पिन कृमि रोग की रोकथाम / नियंत्रण कैसे करें ?

पिन कृमि रोग की रोकथाम के लिए लोगों को शिक्षा देनी चाहिए। शिक्षा में निम्न बातों को अधिक महत्व देना चाहिए :

- प्रतिदिन स्नान करना
- नीचे पहनने वाले कपड़ों, रात को पहन कर सोने वाले कपड़े, चादर आदि को प्रतिदिन बदलना चाहिए
- व्यक्तिगत स्वच्छता रखनी चाहिए, विशेषकर, शौच संबंधी स्वच्छ आदतें
- भीड़भाड़ से बचना
- सफाई की उचित सुविधाओं का उपलब्ध होना व उनका उचित रख रखाव
- रोगियों का उचित उपचार

पिन कृमि रोग के रोगियों का उपचार कैसे करें ?

पिन कृमि रोग के लिए विशिष्ट उपचार उपलब्ध है । अत: सभी आशंकित व्यक्तियों में रोग को पूर्ण प्रमाणित करने तथा उपचार के लिए चिकित्सक के पास भेजना चाहिए । आपको याद रखना चाहिए कि यह परिवार का संक्रमण है. अत: परिवार या संस्था के सभी सदस्यों का उपचार होना चाहिए ।

बोध प्रश्न 4

1) रिक्त स्थान भरें

क) ट्राइक्यूरिसता .... से होने वाला संक्रमण है ।

ख) ट्राइक्यूरिसता का संचिति .... है ।

ग) आक्सीरिसता .... के द्वारा होने वाला आंत्र ग्रसन है ।

घ) आक्सीरिसता का संवहन .... से होता है ।

ड.) पिन कृमि संक्रमण उस परपोषी या नये परपोषी की .... के द्वारा .... से .... में संवहन होता है ।

13.3 सारांश

इस इकाई में आपने सामान्य परजीवी संक्रमणों जैसे टीनियता, उदाशयता, ऐन्किलोस्टोमता, गिआर्डियता, ट्राइक्यूरिसता तथा ऑक्सीयूरिसता के बारे में जाना । इस इकाई में इन ग्रसनों के लक्षणों, जटिलताओं, परजीवियों के जीवन चक्र, कारण तथा संवहन के मार्ग, उपचार, नियंत्रण रोकथाम व व्यवस्था के बारे में उल्लेख किया गया है ।

13.4 शब्दावली

विद्रधि (Abscess) : शरीर में किसी स्थान पर मवाद का एकत्र होना जिसके चारों ओर क्षतिग्रस्त व टूटे-फूटे ऊतक हो ।

पुटी (cyst)	:	पाचन नाल में पाये जाने वाले परजीवियों के जीवन चक्र की एक निष्क्रिय अवस्था । मल में निष्कासित पुटी के चारों ओर एक सख्त आवरण होता है जो कि विषम परिस्थितियों में परजीवी की रक्षा करता है ।
जानपदिक रोग विज्ञान (Epidemiology)	:	महामारी या व्यापक रोगों का अध्ययन जिससे उनके नियंत्रण व भविष्य में रोकथाम के तरीके ढूंढे जा सकें ।
सूक्ष्मदर्शी	:	ऐसा यंत्र जिससे वस्तु वास्तविक माप से काफी बड़ी दिखाई देती है ।
आकारीय (Morphological)	:	जीवित प्राणियों के बनावट का अध्ययन विशेषकर विभिन्न स्पीशीज़ के रूपों में अंतर का अध्ययन ।
जुगाली करना (Regurgitation)	:	बिना पचे हुये भोजन को आमाशय से पुनः मुँह में लाना ।

13.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) टीनिया, एकिनोकोकस
ख) निश्चित (प्राथमिक)
ग) ऐकाइनोकोकस ग्रेनुलोसस
घ) निश्चित, मध्यस्थ
ङ) मस्तिष्क

बोध प्रश्न 2

1) क) गोल कृमि
ख) मनुष्य
ग) गुदा-मुखीय मार्ग
घ) निम्न में से कोई एक : ऐन्किइलोस्टोमा डुयोडिनेल, नेकेटर अमेरिकेनस तथा ऐन्किलोस्टोमा सीलेनीकम
ङ) एनीमिया, प्रोटीन की हानि

2) निम्न तीन बातों पर महत्व देना चाहिये :
- संचिति का नियंत्रण
- संवहन का नियंत्रण
- मनुष्य परपोषी का नियंत्रण

बोध प्रश्न 3

1) क) ई. हिस्टोलिटिका
ख) मनुष्य
ग) गुदा-मुखीय मार्ग
घ) गिआर्डियता इन्टसटीनेलिस
ङ) तीव्र अल्पकालिक, दीर्घकालिक

बोध प्रश्न 4

1) क) ट्राइक्यूरिसता
ख) मनुष्य
ग) एन्टेरोबियस वरमीकुलेरिस
घ) अंगुलियों के द्वारा गुदा से मुँह तक
ङ) अंगुलियां, गुदा, मुँह

इकाई 14 खाद्य संक्रमण तथा मादकताएं

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 खाद्य संक्रमण तथा मादकताएं (Intoxications)

14.3 जीवाणु द्वारा उत्पन्न खाद्य विषाक्तता (Food poisoning)

- 14.3.1 सैल्मोनेला खाद्य विषाक्तता
- 14.3.2 स्टैफिलोकॉकी (Staphylococcal) खाद्य विषाक्तता
- 14.3.3 बाटुलिज्म (Botulism)
- 14.3.4 क्लॉस्ट्रिडियम परफ्रिंजेंस (Clostridium Perfringens) खाद्य विषाक्तता
- 14.3.5 बैसिलस सीरस (Bacillus cereus) खाद्य विषाक्तता

14.4 खाद्य संक्रमणों तथा मादकताओं की रोकथाम / नियंत्रण कैसे करें ?

14.5 गैर - जीवाण्विक (Non - bacterial) स्रोत द्वारा उत्पन्न विषाक्तता

- 14.5.1 अर्गट रोग (Ergotism)
- 14.5.2 एफ्लाटाक्सिकोसिस (Aflatoxicosis)
- 14.5.3 कलायखंज (Lathyrism)
- 14.5.4 आर्जेमोनि आविषालुता (Argemone toxicity)

14.6 सारांश

14.7 शब्दावली

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.1 प्रस्तावना

आपने विभिन्न स्थानों पर हुई खाद्य विषाक्ताओं की कई घटनाओं के विषय में समाचार-पत्रों में पढ़ा होगा, जिनसे कई बार मृत्यु भी हो जाती है। ये घटनाएं खाद्य संक्रमणों, या खाद्य मादकताओं द्वारा होती है जोकि भोजन के किसी जीवाणु या उनके विष, अकार्तनिक रसायन (Inorganic chemicals), पशुजन्य विष या पौधों से प्राप्त विषैले पदार्थ से संदूषित होने के कारण होती हैं। खाद्य संक्रमणों तथा मादकता में वमन या अतिसार या दोनों के ही तीव्र लक्षण नज़र आते हैं। इस तरह की घटनाओं की कुछ मुख्य विशेषताएं हैं :

क) अचानक बीमार पड़ जाना

ख) सामान्य स्रोत से भोजन प्राप्त करना

ग) बहुत सारे लोगों को एक साथ प्रभावित होना, तथा

घ) सभी प्रभावित लोगों में एक जैसे लक्षण दृष्टिगत होना।

इस इकाई में आप उन खाद्य-जन्य रोगों के विषय में पढ़ेंगे जोकि भोजन में उपस्थित विषैले पदार्थों (खाद्य विष) के सेवन से या जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न विष युक्त भोजन के ग्रहण करने से हुई मादकताओं से होते है। इस इकाई का दूसरा महत्वपूर्ण विषय खाद्य संक्रमण है जोकि ऐसे भोजन ग्रहण करने से होते हैं जिसमें बहुत अधिक सूक्ष्मजीव उपस्थित हों, जैसे कि सैल्मोनेला-युक्त भोजन। इनसे आंतों के कई रोग हो जाते हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- हमारे समाज में पाये जाने वाले सामान्य खाद्यआविष, खाद्य संक्रमणों तथा मादकताओं की सूची बना सकेंगे
- उनके कारणों, लक्षणों तथा जटिलताओं को पहचान सकेंगे, तथा
- इन स्थितियों की व्यवस्था, रोकथाम व नियंत्रण का वर्णन कर सकेंगे।

14.2 खाद्य संक्रमण तथा मादकताएं (Intoxications)

खाद्य विषाक्तता के दो वर्ग हैं – खाद्य संक्रमण तथा खाद्य मादकताएं । खाद्य विषाक्तता का क्या अर्थ है ? *खाद्य विषाक्तता से तात्पर्य उन सभी हानिकारक प्रभावों से है जोकि सूक्ष्म जीवियों (जीवाणु, विषाणु, मोल्ड, फंफूदी) से संदूषित भोजन का उपयोग करने से होते हैं।* आप पाठ्यक्रम 1 के खंड 4 की इकाई 16 में किया गया इन सूक्ष्मजीवियों का वर्णन याद करें ।

आइए, अब हम यह जानें कि खाद्य संक्रमण, खाद्य मादकताओं से किस प्रकार भिन्न हैं ?

जब आप संदूषित भोजन (अर्थात् जिसमें सूक्ष्मजीवी पहले से ही उपस्थित हों) को ग्रहण करते हैं तो ये सूक्ष्मजीवी शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, वहां वृद्धि करते हैं तथा रोग उत्पन्न करते हैं । इसे खाद्य संक्रमण कहते हैं । संदूषित भोजन के सेवन से उत्पन्न होने वाले सामान्य संक्रमण पेचिश, हैजा, टायफाइड, संक्रामक यकृत्शोथ (विषाणु संक्रमण) हैं । दूसरी ओर, *सूक्ष्मजीवियों द्वारा उत्पन्न विष युक्त भोजन के सेवन से खाद्य मादकताएं होती हैं ।* बाटुलिज्म (एक रोग) खाद्य मादकता का एक उदाहरण है । भोजन में क्लॉस्ट्रिडियम बाटुलिज्म (एक जीवाणु) द्वारा उत्पन्न विष से मृत्यु भी हो सकती है । मोल्ड व फंफूदी भी भोजन में विष उत्पन्न करते हैं । अर्गट रोग, अरगोट फफूंदी से हो जाता है ।

अत: खाद्य विषाक्तता अर्थात् खाद्य संक्रमण तथा मादकताएं दो प्रकार की होती हैं ।

1) जीवाणु द्वारा उत्पन्न, तथा
2) गैर - जीवाण्विक

नीचे इन दोनों प्रकारों का विस्तृत वर्णन दिया गया है ।

14.3 जीवाणु द्वारा उत्पन्न खाद्य विषाक्तता (Food Poisoning)

आपको ज्ञात ही है कि जीवित जीवाणुओं या उनके द्वारा छोड़े गए विष से संदूषित भोजन के सेवन से खाद्य विषाक्तता होती है । विभिन्न प्रकार के जीवाणु विषाक्तता उत्पन्न करते हैं । आइये, अब हम जानें कि वे कौन से विभिन्न जीवाणु हैं जो खाद्य विषाक्तता उत्पन्न करते हैं तथा किस प्रकार से जीव भोजन में प्रवेश करते हैं ।

14.3.1 सैल्मोनेला खाद्य विषाक्तता

सैल्मोनेला विषाक्तता खाद्य विषाक्तता का बहुत ही प्रचलित रूप है। हाल के वर्षों में इसकी घटनाओं में वृद्धि, सामाजिक भोजों के अवसरों जैसे विवाह तथा बड़े उत्सवों की बढ़ती संख्या, तैयार भोज्यों (ready - to - eat foods) के अधिक प्रचलन विशेषकर डिब्बाबंद खाद्यों तथा कुछ घरेलू आदतों के कारण हुई है।

इसका कारक जीव कौन है?

सैल्मोनेला विषाक्तता के लिए उत्तरदायी विभिन्न जीवाणु है – *सैल्मोनेला टायफीमुरियम (Salmonella Typhimurium), सैल्मोनेला कोलेरी--सुइस (Salmonella Cholerae - suis)* तथा *सैल्मोनेला एनट्राइटीडिस (Salmonella Enteritidis)* हैं ।

इस संक्रमण का स्रोत क्या है ?

संदूषित मांस, दूध व दूध से बने पदार्थ, मुर्गी का मांस, अंडे तथा अंडे के उत्पादों से भोजन संक्रमित हो जाता है । चूहों के मल व मूत्र से संदूषित होने के कारण भी भोजन संक्रमित हो जाता है ।

विषाक्तता किस प्रकार होती है ?

भोजन स्रोत पर ही या संसाधन के समय क्रास - संदूषण द्वारा हो सकता है । (संसाधन के दौरान वातावरण या उसमें उपस्थित भोजन से जीव खाद्यों में प्रवेश कर जाते है) । यह वाहक या भोजन के संपर्क में आने वाले लोगों के मल से संदूषित होने के कारण भी हो सकता है । शरीर में प्रवेश करने के पश्चात् भोजन को दूषित करने वाले जीव आंत में बढ़ते जाते हैं तथा अचानक से अतिसार या वमन या दोनों शुरू हो जाते हैं।

सैल्मोनेला संक्रमण के क्या लक्षण व चिन्ह हैं ?

इस आक्रमण की शुरुआत अचानक होती है तथा इसके लक्षण है: सर्दी लगना, ज्वर, जी - मिचलाना, वमन तथा पानी जैसे दस्त होना जोकि 2 या 3 दिन तक रहते हैं । एक प्रतिशत लोगों की मृत्यु भी हो जाती है ।

कौन इस रोग से संवेदनशील है ?

सामान्यतया सभी को यह रोग हो सकता है। परन्तु दुर्बलता की स्थितियों (debilitating conditions) में इसकी होने की संभावना अधिक हो जाती है।

इसकी ऊष्मायन अवधि क्या है ?

इसकी ऊष्मायन अवधि 12 से 24 घंटे की होती है।

इसकी संचरणीय अवधि कितनी है ?

जब तक रोग रहता है तब तक इसका संचरण काल रहता है। इसके कुछ ऐसे वाहक भी होते है जिनकी पहचान न हो पायी हो।

14.3.2 स्टैफिलोकॉकी (Staphylococcal) खाद्य विषाक्तता

जीवाणु द्वारा उत्पन्न एक अन्य सामान्य खाद्य विषाक्तता स्टैफिलोकॉकस है। स्टैफिलोकॉकस आविष, वह विष है जो जीवाणु के भोजन में वृद्धि करने से उत्पन्न होता है।

इसका कारक जीव कौन है ?

स्टैफिलोकॉकस औरियस, स्टैफिलोकॉकी विषाक्तता उत्पन्न करने वाला जीव है। जब इन जीवों द्वारा छोड़ा गया आंत्रा विष (enterotoxin) भोजन को संदूषित करता है तो विषाक्तता हो जाती है। जीवाणु द्वारा आंत्रा विष निर्माण के लिए अधिकतम तापमान 35 डिग्री से 37 डिग्री सें. के नीचे होता है। इस प्रकार निर्मित आविष ऊष्मा (heat) स्थिर रहता है तथा 30 मिनट तक उबलते ताप को सह सकता है।

संक्रमण का स्रोत क्या है ?

प्रकृति में स्टैफिलोकॉकस बहुतायात में पाये जाते हैं। ये मनुष्य व जंतुओं की त्वचा, नाक व गले में पाये जाते हैं। फोड़े, फुंसिया तथा अन्य त्वचा के सामान्य संक्रमण इन जीवों के द्वारा होते हैं। दूध देने वाले पशुओं में स्टेफिलोकॉकस से थनों में संक्रमण हो जाता है, जिस से दूध व उस दूध से बने पदार्थ संदूषित हो जाते है जिससे खाद्य विषाक्तता हो जाती है। पका हुआ हैम (सूअर का सुखाया मांस) या अन्य मांस, टुकड़े किये हुए या पिसे हुए खाद्य पदार्थ, बार-बार गर्म किया हुआ भोजन (warmed - over food), इस संक्रमण के अन्य स्रोत हैं।

इस संक्रमण की संचिति क्या है ?

इस संक्रमण के मुख्य स्रोत भोजन के संपर्क में आने वाले वो लोग हैं जिन्हें नाक, गले या त्वचा के संक्रमण (फोड़े, मुहासे आदि) हुये हों। अन्य स्रोत थनों के संक्रमण से ग्रस्त गाय से प्राप्त दूध है।

यदि आप इस प्रकार से संक्रमित भोजन को कई घंटों के लिए कमरे के ताप पर रखेंगे तो जीवाणु (रोग कारक जीव) बहुगुणन होते हैं तथा आविष उत्पन्न करते हैं, जिससे विषाक्तता हो जाती है।

इसके संवहन (फैलने) का क्या तरीका है ?

दूषित खाद्य पदार्थ जैसे पेस्ट्री, कस्टर्ड, सलाद, सैंडविंच, मांस तथा मांसाहारी पदार्थ खाने से यह विषाक्तता हो जाती है। संक्रमित अंगुलियों, आंखों, पस, नाक का स्राव तथा भोजन के संपर्क में आने वाले लोगों की सामान्य दिखने वाली त्वचा के भोजन के संपर्क मे आने से भोजन दूषित हो जाता है। जब भोजन को परोसने से पहले घंटों रखा जाता है तो ये जीवाणु उसमें बहुगुणन होते हैं। ये जीवाणु आविष उत्पन्न करते हैं, जिससे खाद्य विषाक्तता हो जाती है।

यह विषाक्तता कैसे होती है ?

दूषित भोजन में जीव द्वारा उत्पन्न आविष से खाद्य विषाक्तता होती है। जैसा कि आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि यह आविष ताप सह लेता है, अत: यह भोजन में ही रहता है तथा जीवों के मरने के बाद भी हानि पहुंचा सकता है। विषाक्तता के प्रभाव आविष से आहार नाल तथा तंत्रिका तंत्र के प्रभावित होने के कारण होते हैं।

इसके लक्षण व चिन्ह क्या हैं ?

स्टैफिलोकॉकस विषाक्तता में रोग अचानक उत्पन्न हो जाता है तथा अचानक हुई उल्टी, उदर पीड़ा तथा दस्त इसके मुख्य लक्षण हैं। जब रोग बढ़ जाता है तो मल में रक्त व श्लेष्मल भी आता है। इसमें ज्वर नहीं होता है तथा 1 से 3 दिन में व्यक्ति ठीक हो जाता है।

इसकी ऊष्मायन अवधि क्या है ?

स्टेफिलोकॉकस विषाक्तता की ऊष्मायन अवधि छोटी अर्थात् केवल 1 से 6 घंटे के बीच होती है।

14.3.3 बाटुलिज्म (Botulism)

बाटुलिज्म खाद्य विषाक्तता का एक गंभीर रूप है परन्तु सौभाग्य से इसकी घटनाएं बहुत कम होती हैं। परन्तु यदि यह होता है तो प्रभावित व्यक्तियों में से दो तिहाई की मृत्यु हो जाती है।

इसका कारक जीव कौन है ?

इसके लिये उत्तरदायी जीव *क्लॉस्ट्रीडियम बाटुलिज्म* है तथा इस जीव के द्वारा छोड़ा गया आविष खाद्य विषाक्तता उत्पन्न करता है।

इस संदूषण का स्रोत क्या है ?

इस विषाक्तता को उत्पन्न करने वाला जीव मिट्टी व धूल में बहुतायात में पाया जाता है। क्लॉस्ट्रीडियम बाटुलिज्म द्वारा उत्पन्न आविष, विष कारक होता है। ठीक प्रकार से संसाधित न किये गये खाद्य पदार्थ तथा कम अम्लता वाले फ्रिज में न रखे हुए खाद्य पदार्थ में यह अविष उत्पन्न होते हैं। यह घरेलू जानवरों की आंतों में भी पाया जाता है। यह बीजाणु (स्पोर) के रूप में खाद्य पदार्थों में प्रवेश करता है। बाटुलिज्म विषाक्तता से प्रभावित होने वाले सामान्य खाद्य पदार्थ हैं, घर में संरक्षित किये गये खाद्य पदार्थ (अचार, सब्जियां), घर में बनाया गया पनीर आदि।

इसकी उष्मायन अवधि क्या है ?

बाटुलिज्म की ऊष्मायन अवधि 12 से 36 घंटे होती है।

यह विषाक्तता किस प्रकार होती है ?

जब जीव के बीजाणु (स्पोर) भोजन में प्रवेश कर जाते हैं, तो उचित अवायवीय स्थितियों (anaerobic conditions) में वे वृद्धि करते हैं तथा आविष छोड़ते हैं। इस प्रकार छोड़ा गया आविष तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है। जठरांत्र प्रणाली पर आविष का प्रभाव काफी कम होता है।

इसके संवहन (फैलने) का क्या तरीका है ?

ठीक प्रकार से संसाधित न किये गए तथा पूर्ण रूप से न पकाए गए डिब्बाबंद संदूषित खाद्य पदार्थ खाने से यह रोग फैलता है। संक्रमित घावों से संदूषण होने के कारण भी बाटुलिज्म फैलता है।

इसके चिन्ह व लक्षण क्या हैं ?

बाटुलिज्म के मुख्य लक्षण है – भोजन निगलने में कठिनाई, दृष्टि का धुंधला होना, पलकों का बंद होना, जोड़ों में दर्द, मांसपेशियों का कमजोर होना तथा कभी-कभी दोनों हाथों व पैरों का लकवा मार जाना। रोगी पूर्ण चेतना में होता है तथा सामान्यतया उसको ज्वर भी नहीं होता है। प्रायः यह स्थिति घातक होती है तथा फेंफड़ों या हृदय या दोनों की क्रियाशीलता बंद हो जाने के कारण 4 से 8 दिन में मृत्यु हो जाती है।

बोध प्रश्न 1

1) बताइएं कि निम्न कथन सही है या गलत। गलत कथन को सही कीजिये।

   क) सालमोनैला खाद्य विषाक्तता दूषित मांस, दूध व दूध से बने पदार्थ से होती है। (सही/गलत)

   ....

   ....

   ख) स्टैफिलोकॉकस खाद्य विषाक्तता के संक्रमण के संचिति बर्तन होते हैं। (सही/गलत)

   ....

   ....

ग) अपर्याप्त रूप से संसाधित डिब्बाबंद पदार्थ स्टेफिलोकॉकस खाद्य विषाक्तता के लिये उत्तरदायी हैं ।

(सही/गलत)

....

....

2) निम्न खाद्य विषाक्तताओं के कारक जीव, फैलने के तरीकों तथा लक्षणों के बारे में बताए ।

खाद्य विषाक्तता	कारक जीव	फैलने का तरीका	लक्षण
बाटुलिज्म			
सैल्मौनेलता			

14.3.4 क्लॉस्ट्रिडियम परफ्रिन्जेंस (Clostridium Perfringens) खाद्य विषाक्तता

क्लॉस्ट्रिडियम परफ्रिंजेंस के कारण उत्पन्न खाद्य विषाक्तता कम समय तक रहने वाला साधारण रोग है तथा यह कभी-कभी ही घातक होता है। केवल बहुत ही गंभीर स्थितियों में मृत्यु होती है ।

इसका कारक जीव क्या है ?

इसके कारक जीव *क्लौस्ट्रिडियम परफ्रिंजेंस* (जिन्हें एवीलीनाए भी कहा जाता है) की कुछ किस्में है । समान्यतया इसके बीजाणु (स्पोर) भोजन को संदूषित कर देते हैं । इस जीव द्वारा छोड़ा गया आविष विषाक्तता उत्पन्न करता है ।

संक्रमण का स्रोत क्या है ?

बाटुलिज्म की भांति इस विषाक्तता में भी मिट्टी व मनुष्य तथा जानवरों की जठरांत्र प्रणाली संक्रमण की संचिति होती है । ऐसा मांस जिसे उबाला गया हो, भाप में पकाया गया हो या आधा सेका गया हो तथा फिर कई घंटों तक ठंडा किया गया हो या पुन: गर्म किया गया हो, संक्रमण का दूसरा स्रोत है ।

यह विषाक्तता कैसे होती है ?

बीजाणु (स्पोर) विषाक्तता उत्पन्न करते हैं । यह मांस में पाये जाने वाले प्राकृतिक संदूषक हैं । यह बीजाणु पकाने के उपरांत भी जीवित रहते हैं । इन जीवों की वृद्धि के लिए उचित तापमान 30 सें. से 50 सें. के बीच में होता है ।

इसके चिन्ह व लक्षण क्या हैं ?

इस विषाक्तता के सामान्य लक्षण दूषित भोजन का सेवन करने के 8 से 24 घंटे के बाद अचानक से तीव्र उदर पीड़ा व उसके बाद अतिसार होना है । ज्वर बिल्कुल भी नहीं या थोड़ा बहुत होता है । जी मिचलाना व वमन कभी-कभी होता है । रोग अधिकतर थोड़े समय के लिए अर्थात् लगभग एक दिन के लिए रहता है तथा जल्दी ही ठीक हो जाता है । सामान्यतया ये रोग किसी को भी हो सकता है ।

इसकी ऊष्मायन अवधि क्या है ?

इसकी ऊष्मायन अवधि 6 से 24 घंटे होती है तथा अधिकतम प्रभाव 10 से 14 घंटे बाद नज़र आते हैं ।

14.3.5 बैसिलस सीरस (Bacillus cereus) खाद्य विषाक्तता

बैसिलस सीरस खाद्य विषाक्तता जठरांत्र का रोग है जो कि बैसीलस सीरस नामक दंडाणु (Bacillus) से भोजन संदूषित होने के कारण होता है ।

इसका कारक जीव क्या है ?

इसका कारक जीव *बैसिलस सीरस* है । यह वायुजीवी बीजाणुधारी (aerobic spore bearing) गतिशील व छड़ी के आकार जैसा जीवाणु है । इस जीव के बीजाणु पकाने की क्रियाओं को सह लेते है अर्थात् उसमें नष्ट नहीं होवें हैं। यह एक आंत्रविष (enterotoxin) उत्पन्न करते हैं जोकि खाद्य विषाक्तता के लिए उत्तरदायी होता है। इस प्रकार छोड़ा गया आविष काफी स्थायी होता है ।

इस संक्रमण के स्रोत क्या हैं ?

इस संक्रमण का स्रोत बैसिलस सीरस है जो कि मिट्टी व कच्चे, सूखे व संसाधित खाद्य पदार्थों में बहुतायात में पाया जाता है।

यह खाद्य विषाक्तता कैसे होती है ?

यह खाद्य विषाक्तता ऐसे दूषित भोजन को खाने से होती है जिसे इसके दंडाणु की वृद्धि के लिए उपयुक्त स्थितिओं में रखा गया हो।

इसके चिन्ह व लक्षण क्या हैं ?

इस दंडाणु के द्वारा उत्पन्न विषाक्तता के दो प्रकार के लक्षण दिखाई देते हैं। पहले प्रकार के लक्षणों में अचानक से जी मिचलाने तथा वमन की शिकायत होती है। दूसरे प्रकार में उदर पीड़ा के साथ अतिसार हो जाता है। इस रोग में सामान्यतया ज्वर नहीं होता है। लक्षण थोड़ी अवधि के लिए (अधिकतम 24 घंटे) दिखाई देते हैं। इसमें मृत्यु के मामले बहुत कम होते हैं। संचरण अवधि तथा संवेदनशीलता की प्रकृति के विषय में अभी ज्ञात नहीं है।

इसकी ऊष्मायन अवधि क्या है ?

ऊष्मायन अवधि 1 से 24 घंटे तथा सामान्यतया लगभग 6 घंटे होती है।

खाद्य विषाक्तता तथा जठरांत्र संबंधी अन्य रोगों में अंतर कैसे ज्ञात करें ?

खाद्य विषाक्तता को अन्य रोगों जैसे हैजा, अतिसार तथा पेचिश तथा भोजन की रसायनिक विषाक्तता (chemical poisoning) से अलग पहचान करना आवश्यक है। इसकी मुख्य पहचान है बहुत सारे लोगों का जिन्होंने एक ही स्रोत से खाना खाया हो, एक ही साथ अचानक अस्वस्थ होना। इससे यह संभावना बनती है कि खाद्य विषाक्तता हुई है। इसके अतिरिक्त यदि कोई प्रायोगिक परीक्षण किया जाये तो किसी जीव या रोग कारक का पाया जाना, खाद्य विषाक्तता की पुष्टि करेगा।

14.4 खाद्य संक्रमणों तथा मादकताओं की रोकथाम / नियंत्रण कैसे करें ?

खाद्य संक्रमण की रोकथाम व नियंत्रण, स्वच्छ व सुरक्षित भोजन जो कि संदूषण से मुक्त हो तथा स्वच्छ लोगों के द्वारा स्वच्छ स्थान, स्वच्छ बर्तनों में पकाया व परोसा गया हो व मक्खियों व अन्य कीड़ों से बचाया गया हो, पर निर्भर करती है। जैसाकि आप जानते हैं अधिकांश संक्रमण मनुष्य के हाथों या मक्खियों, चूहें आदि कीड़ों से खाद्य पदार्थों या बर्तनों तक संदूषण या रोगकारक जीवों के अंतरण से फैलते हैं। खाद्य संक्रमणों की रोकथाम व नियंत्रण के लिए खाद्य स्वच्छता व भोजन के संपर्क में आने वाले व्यक्तियों की स्वच्छता अनिवार्य है। वास्तव में तो सम्पूर्ण खाद्य श्रृंखला अर्थात् उत्पादन, कटाई, बाजार में भंडारण, बिक्री, संसाधन, परोसने तथा भोजन का सेवन करने तक, भोजन की स्वच्छता व सफाई पर बहुत अधिक ध्यान देना आवश्यक है। जिन स्थानों पर लोगों के बड़े समूहों को भोजन दिया जाता है या संस्थाओं में अच्छी स्वच्छतापूर्ण आदतों को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त सुविधाएं जैसे स्वच्छ प्रसाधन व बार-बार हाथ धोने की सुविधा उपलब्ध करानी चाहिए। भोजन के संपर्क में आने वाले लोगों का जल्दी-जल्दी व नियमित स्वास्थ्य परीक्षण होना चाहिए जिससे कि किसी संक्रमण या संक्रमण वाहन अवस्था का पता लगाया जा सके। लगभग (रोग कारक) सभी जीव ताप से नष्ट हो जाते हैं। अत: भोजन को उचित रूप से पकाने तथा स्पर्श करने से भोजन सुरक्षित हो जाता है। यहाँ आपको याद दिला दें कि हमारे यहाँ की प्रतिदिन खाना पकाने तथा गर्म खाने की पुरातन प्रथा ही सबसे सुरक्षित तरीका है। भोजन को गर्म स्थान पर नहीं छोड़ना चाहिए, जिससे रोगकारक जीवों की वृद्धि न हो तथा आविष उत्पन्न होने से रोका जा सके। तुरन्त न खाये जाने वाले भोजन को प्रशीतन गृह (cold storage) में रखना चाहिए जिससे जीवाणु का बहुगुणन न हो सके तथा आविष उत्पन्न न हो। जीवाणु गुणन व आविष उत्पादन के लिए एक उचित तापमान है 10 डिग्री सें. और 49 डिग्री सें. के बीच का तापमान। 4 डिग्री सें. नीचे का तापमान जीवाणु निरोधी होता है अर्थात् इस तापमान पर जीवाणु वृद्धि नहीं करते हैं।

जन स्वास्थ्य प्रयोगशालाओं तथा जन स्वास्थ्य विभागों व नगर निगम के कार्मिकों को भोजन से उत्पन्न रोगों को रोकने व नियंत्रण के लिए कुछ अधिकार दिए गए हैं। ये कार्मिक लोगों के खाने के सार्वजनिक स्थानों का स्वच्छता के लिए निरीक्षण कर सकते हैं, पशु बध गृहों तथा मांस की दुकानों का सफाई की जांच कर सकते हैं तथा भोजन के संपर्क में आने वाले लोगों की स्वच्छता के लिए अपने अधिकारों को लागू कर सकते हैं। चूंकि आपको अधिकांश घटनाओं में संदूषण के कारणों का पता है, अत: आपको पेचिश, गले के संक्रमणों की रोकथाम के लिए इन संक्रमणों के वाहकों को भोजन के संपर्क में आने से रोकना चाहिए।

शहरीकरण तथा आधुनिक लोगों के जीवन में समय के अभाव के कारण "तैयार खाद्य पदार्थ" (ready-to-eat-food) बहुत लोकप्रिय हो रहे हैं। नंगे हाथों से इन खाद्य पदार्थों को कम से कम छूना चाहिए तथा इनकी पैकिंग तथा भंडारण की उचित देख-रेख करनी चाहिए। भोजन के रखने, पकाने व परोसने के स्थानों को चूहों, मक्खियां व धूल मिट्टी से बचाना चाहिए। दूध व दूध से बने पदार्थों को पास्तुरीकृत करना चाहिए। खाद्यजन्य रोगों की घटनाओं से बचने के लिए लगातार निरीक्षण करते रहना आवश्यक है।

समुदाय को खाद्य-जन्य रोगों के खतरे, इनके उत्पन्न होने के कारण तथा भोजन के संदूषण को रोकने के उपायों के बारे में स्वास्थ्य शिक्षा देनी चाहिए, जिससे इन रोगों की रोकथाम / नियंत्रण किया जा सके तथा इन्हें पुन: होने से रोका जा सके। पाठ्यक्रम 1 के खंड 4 की इकाई 16 में उल्लेखनीय 6 में "बैक्टीरिया तथा फफूंदी से कैसे बचें" में बताई गई जानकारी खाद्य विषाक्तता की रोकथाम / नियंत्रण के लिए काफी उपयोगी है। इस उल्लेखनीय को ध्यानपूर्वक पढ़ें।

खाद्य विषाक्तता की व्यवस्था के बारे में कुछ शब्द

व्यवस्था : खाद्य संक्रमणों तथा मादकताओं की व्यवस्था उनके जनन कारकों की पहचान पर निर्भर करती है। अत: जनता व स्वास्थ्य अधिकारियों को इन घटनाओं के प्रति सजग कर देना चाहिए। अधिक गंभीर मामलों में रोगी को तुरन्त पास के चिकित्सालयों में भेजना चाहिए। जब तक रोगी को चिकित्सालय में पहुंचाया जाए तब तक अतिसार व वमन के कारण हुए निर्जलीकरण को रोकने के लिये ओ. आर. एस. (जीवन रक्षक घोल) का प्रयोग करना चाहिए।

बोध प्रश्न 2

1) समुदाय को खाद्य संक्रमणों की रोकथाम के विषय में जानकारी देने के लिए एक शिक्षा कार्यक्रम की योजना बनाइए।

....

....

....

....

2) खाद्य विषाक्तता को रोकने के लिए आप किन तरीकों को अपनायेंगे, किन्हीं तीन की सूची बनाइए।

क) ....

....

ख) ....

....

ग) ....

....

4.5 गैर-जीवाण्विक (Non-bacterial) स्रोत द्वारा उत्पन्न खाद्य विषाक्तता

आपको याद होगा कि मोल्ड व फफूंदी से भी खाद्य विषाक्तता हो सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ आविष प्राकृतिक रूप से ही भोजन में पाये जाते है जिससे खाद्य विषाक्तता हो सकती है। इस भाग में आप भोजन के आविष द्वारा संदूषित होने के कारण होने वाली चार महत्वपूर्ण स्थितियों के बारे में पढ़ेंगे। ये गैर-जीवाण्विक होती हैं। इन चार स्थितियों में से *अर्गटरोग* तथा *एफ्लाटाक्सिकोसिस*, अनाजों के फंफूदी व मोल्ड के द्वारा संदूषित होने के कारण होती है। तीसरी, *कलायखंज*, स्थिति है जो खाद्य पदार्थ में उपस्थित विषैले अंश के कारण होती है तथा जानपदिक ड्राप्सी *(जलशोफ) (Epidemic dropsy)* खाद्य तेलों के आर्जेमोनि तेल से मिलावट के कारण हो जाती है। इन चारों प्रकार की खाद्य विषाक्तता का अलग-अलग वर्णन नीचे दिया गया है।

14.5.1 अर्गट रोग (Ergotism)

अर्गट रोग खाद्यान्नों जैसे बाजरा, ज्वार, राई तथा गेहूँ के खेतों में लगने वाली फंफूदी के कारण उत्पन्न स्थिति है। अर्गट फंफूदी की वृद्धि, पुष्पन अवस्था (flowering stage) में होती है। इस प्रकार अर्गट फंफूदी लगे हुये खाद्यान्न खाने से अर्गट रोग हो जाता है। जहाँ बाजरा व राई मुख्य खाद्यान्न है वहाँ समय-समय पर अर्गट विषाक्तता की घटनाएं हुई हैं। अधिक उत्पादन देने वाली बाजरा की किस्मों में अर्गट फंफूदी लगने की संभावना अधिक होती है।

अर्गट रोग उत्पन्न करने वाली फंफूदी कौन सी है ?

जिस फंफूदी से अर्गट रोग होता है उसे *क्लैविसेप्स फ्यूजिफोरमीस (Claviceps fusiformis)* कहते हैं। यह फफूंदी काले पदार्थ के रूप में वृद्धि करती है तथा इसके बीज भी काले व अनियमित आकार के हो जाते हैं जोकि खाद्यान्नों की फसल के साथ ही मिल जाते है। यह अर्गट आविष उत्पन्न करता है जिससे अर्गट रोग होता है।

इसके चिन्ह व लक्षण क्या हैं ?

अर्गट रोग के लक्षण तीव्र होते हैं परन्तु ये कभी-कभी ही घातक होते हैं। इसके लक्षण हैं : जी - मिचलाना, बार-बार उल्टी आना, चक्कर आना, नींद आती रहना। ये लक्षण अर्गट रोग से प्रभावित अनाज खाने के दो वर्ष बाद तक भी पाए जाते हैं। जब यह स्थिति दीर्घ कालिक हो जाती है तब रोगी अंगों में दर्दभरी मरोड़, मानसिक उदासी, कमज़ोरी व ऐंठन की शिकायत करता है। कभी - कभी रक्त धमनियों पर विषैले प्रभाव के कारण अंगों में रुधिर परिसंचरण भी प्रभावित होता है जिससे कोथ (gangrene) भी हो सकती है। कोथ वह स्थिति है जिसमें संक्रमण के कारण शरीर के अंग नष्ट होने लगते हैं। ऐसे अंगों को काटना पड़ता है अन्यथा यह शरीर के अन्य भागों में फैल सकती है।

अर्गट रोग का नियंत्रण / रोकथाम कैसे करें ?

खाद्य पदार्थों में अर्गट ऐल्केलॉइड की सुरक्षित सीमा 0.05 ग्रा / 100 ग्रा खाद्य पदार्थ है। लोगों को अर्गट रोग व इसके हानिकारक प्रभावों के बारे में स्वास्थ्य शिक्षा देकर उनमें इसके प्रति जागरुकता पैदा की जा सकती है। आप उन्हें अर्गट बीजों को अलग करने के तरीकों के बारे में भी शिक्षित कर सकते है। अर्गट लगे हुये दानों को 20 प्रतिशत नमक के पानी में डालकर आसानी से अलग किया जा सकता है। ये दाने हाथ द्वारा दाने चुगने की विधि तथा हवा में फटक कर भी अलग किये जा सकते हैं।

14.5.2 एफ्लाटाक्सिकोसिस (Aflatoxicosis)

एफ्लाटाक्सिकोसिस वह स्थिति है जो कि एफ्लाटाक्सिन (एक विषैला पदार्थ) के द्वारा होती है। यह एफ्लाटाक्सिन *एस्परजिलस फ्लेवस (Aspergillus flavous)* तथा *एस्परजिलस पैरासिटियस* (Aspergillus parasitious) नामक मोल्ड के द्वारा उत्पन्न होते हैं जो कि माइकोटाक्सइन का एक समूह है। यह मोल्ड अधिकतर मूंगफली के दानों को संदूषित करते हैं। एफ्लाटाक्सिन यकृत के लिए विषैले होते हैं। इनके द्वारा यकृत का कैंसर भी हो सकता है। मनुष्य में सीरोसिस करने में इनकी भूमिका की जांच अभी भी जारी है। इस विष से घातक घटनाएं हो सकती है जिनकी मुख्य पहचान तीव्र आंत्रशोथ तथा यकृतशोथ है। अब यह ज्ञात हो चुका है कि मूंगफली के अतिरिक्त, यह मोल्ड अन्य खाद्यान्नों जैसे मक्का, ज्वार तथा मनुष्य के अन्य कई खाद्यों जैसे उसना चावल, टैपियोका, गेहूँ आदि को भी प्रभावित करता है। डेयरी से प्राप्त कुछ दूध के नमूनों में भी एफ्लाटाक्सिन पाये गये हैं। फसल काटने, भंडारण तथा संसाधन के समय अधिक नमी व अन्य उपयुक्त स्थितियों में एस्परजिलस फ्लेवस मोल्ड खाद्यान्नों में वृद्धि करती है तथा उन्हें संदूषित कर देती है। 10 प्रतिशत से अधिक आद्रता (नमी) व 11 से 37 सें के बीच का तापमान इस आविष को उत्पन्न करने के लिये उपयुक्त होता है।

इसकी रोकथाम / नियंत्रण के क्या उपाय हैं ?

आप यह जान चुके हैं कि संदूषण करने वाले मुख्य कारक हैं आद्रता तथा अनुचित भंडारण। अत: एफ्लाटाक्सिकोसिस रोकने का मुख्य उपाय फसल काटने के बाद खाद्यान्नों को सुखाना तथा फिर उसका उचित भंडारण करना है। यदि किसी खाद्य के संदूषित होने की शंका हो तो उसको उपयोग करने की आज्ञा नहीं देनी चाहिए। लोगों को खाद्यान्नों का मोल्ड द्वारा दूषित होने के कारण उत्पन्न स्वास्थ्य हानियों के विषय में स्वास्थ्य शिक्षा देनी चाहिए। पाठ्यक्रम 1 के खंड 4 की इकाई 16 की उल्लेखनीय 6 में दिये गये नियंत्रण / रोकथाम के उपाय यहाँ भी लागू होते हैं।

14.5.3 कलायखंज (Lathyrism)

कलायखंज वह स्थिति है जो कि लम्बे समय तक काफी अधिक मात्रा में केसरी दाल खाने से होती है। इस दाल का वैज्ञानिक नाम *लैथाइरस सैटाइवस (Lathyrus sativus)* है। कलायखंज का मुख्य लक्षण / चिन्ह निचले अंगों का पक्षाघात (spastic paralysis) होना है। यह केसरी दाल में उपस्थित आविष बीटा आक्जैलिल अमीनो एलेनिन (Beta oxalyl amino alanine) के कारण होता है। केसरी दाल की फसल अच्छी होती है तथा यह सूखा पड़ने से भी प्रभावित नहीं होती है। यह अधिकतर मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में उगाई जाती है, अत: यह रोग भी देश के उन्हीं भागों में अधिक होता है जहाँ केसरी दाल मुख्य खाद्य के रूप में प्रयोग की जाती है। यह रोग अधिकतर जवान व चुस्त लोगों को होता है तथा उन्हें अपंग बनाकर समाज पर बोझ बना देता है।

अब इस फसल के लाभों को जानते हुये तथा इसके उगाने पर पाबंदी लगाने में पायी गयी समस्याओं के कारण, इस दाल से विष को निकालने के तरीके ढूंढे गए हैं। दाल को भिगोकर, फिर उबाल कर तथा फिर एक घंटे के लिए भिगोकर विष को निकाला जा सकता है।

जिस पानी में दाल को भिगोया जाता है, उसे फेंक दिया जाता है, दाल को सुखाया जाता है तथा उपयोग करने योग्य रूप में पीसा जाता है। इस प्रक्रिया से दाल विष - रहित हो जाती है। इस प्रक्रिया द्वारा प्राप्त दाल पूर्णतया खाने के लिए सुरक्षित होती है। कम विष वाली किस्मों और विष की मात्रा कम के संभावित आनुवांशिक हेरफेर के विषय में अनुसंधान जारी है।

पाठ्यक्रम 1 के खंड 5 की इकाई 19 (भाग 19.6) में कलायखंज की रोकथाम के उपायों के बारे में पहले ही बताया जा चुका है। आप रोकथाम के इन उपायों को याद कीजिए। इस भाग को पुन: पढ़िए तथा कलायखंज के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त कीजिए।

14.5.4 आर्जेमोनि अविषालुता (Argemone toxicity)

आपने बहुत बार देश के किसी न किसी भाग में *जानपदिक जलशोफ* के बारे में पढ़ा ही होगा। यह क्या होता है? *जानपदिक जलशोफ वह स्थिति है जिसमें हृदय व रक्त धमनियों में परिवर्तन हो जाते हैं।* इसके कारण का पता 1926 में लगा था जब सरसों के तेल में आरजीमोनि तेल की मिलावट की गई थी।

इसमें कौन सा विष पाया जाता है?

आर्जेमोनि तेल में उपस्थित विषैला एल्कलोइड, *सैंग्विनारिन (Sanguinarine)* के कारण जानपदिक जलशोफ या एपीडेमिक ड्राप्सी होती है।

ये विषाक्तता किस प्रकार होती है?

आर्जेमोनि तेल में उपस्थित विष कार्बोज़ चयापचय में बाधक होता है।

इसके चिन्ह व लक्षण क्या है?

आर्जेमोन आविषालुता से प्रभावित व्यक्ति को अचानक दोनों पैरों में सूजन व साथ में अतिसार की शिकायत हो जाती है। कुछ लोगों में ग्लूकोमा के कारण आंखों में भी दर्द की शिकायत होती है। यह नेत्रगोलक (eyeball) में तनाव के बढ़ने के कारण होता है। कभी-कभी हृदय गति रूक जाने व सांस में कठिनाई होने से मृत्यु भी हो सकती है।

इस आविषालुता के प्रति कौन सुग्राही है?

वे सभी लोग जो सरसों के संदूषित तेल का प्रयोग करते हैं, उन्हें यह आविषालुता हो सकती है। स्तनपान करने वाले बच्चों में आविषालुता नहीं पायी जाती है क्योंकि वे तेल का सेवन नहीं करते हैं।

यह संदूषण कैसे होता है?

आपने भड़भड़वा (prickly poppy) के पौधे को देखा होगा या इसके बारे में सुना होगा। ये पौधा भारत में जंगली पौधे के रूप में उगता है। इस पौधे का वैज्ञानिक नाम (वनस्पतिक नाम) *आर्जेमोनि मेक्सिकाना* (Argemone maxicana) है। इस पौधे के बीज सरसो के बीजों से मिलते-जुलते होते हैं। सरसों की फसलें गर्मियों के शुरू में काटी जाती है तथा उसी समय आरजीमोनि के बीज भी पक जाते है तथा सरसों के बीजों के साथ इकट्ठे कर लिए जाते हैं। सरसों के बीज में आरजीमोनि बीजों की मिलावट, संयोग से या आकस्मिक रूप से भी, हो सकती है। परन्तु यह जानबूझ कर भी की जाती है। जब कोई तेल विक्रेता रातो रात अमीर बनना चाहता है तब वह सरसों या अन्य तेलों में आरजीमोनि तेल की मिलावट कर देता है।

जानपदिक जलशोथ की व्यवस्था कैसे करें ?

जैसा कि आप जानते हैं कि यह एक अत्याधिक तीव्र व घातक स्थिति होती है । अत: जब भी आर्जेमोनि आविषालुता होने की जरा भी आशंका हो, मिलावटी तेल का उपयोग तुरन्त बंद कर देना चाहिए तथा प्रभावित लोगों को पास के चिकित्सालय में ले जाना चाहिए, जहाँ उनका तुरन्त उपचार किया जा सके ।

क्या खाद्य तेलों में आरजीमोनि तेल के संदूषण की जांच का कोई तरीका है ?

आर्जेमोनि तेल के मुख्य भौतिक गुण है संतरी रंग तथा तीखी गंध इसके संदूषण की पहचान के लिए एक रासायनिक परीक्षण भी उपलब्ध है । इसे नाइट्रिक अम्ल परीक्षण कहते हैं । यह एक सरल परीक्षण है जिसे आप भी कर सकते हैं । इसके लिए तेल के नमूने को परखनली (test tube) में लेकर उसमें नाइट्रिक अम्ल डालें । परखनली को हिलायें । भूरा या संतरी लाल रंग बनना आरजीमोनि तेल की उपस्थिति दर्शाता है । इस परीक्षण की कमी यह है कि 0.25 प्रतिशत या अधिक संदूषण होने पर ही इससे आरजीमोनि तेल की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है। इससे भी अधिक सक्षम व संवेदनशील परीक्षण उपलब्ध है परन्तु उसके लिए बहुत ही विकसित यंत्रों की आवश्यकता होती है जो केवल बड़ी प्रयोगशालाओं में ही पाये जाते हैं । इसे पेपर क्रोमेटोग्राफ परीक्षण कहते हैं । इस परीक्षण के द्वारा सभी खाद्य तेलों में 0.00001 प्रतिशत तक आर्जेमोनि तेल संदूषण की जांच की जा सकती है ।

इस संदूषण की रोकथाम कैसे करें ?

सरसों के बीजों का अन्य तेल के बीजों से आकस्मिक रूप से हुआ संदूषण खेतों मे ही रोका जा सकता है । इसके लिए तिलहन की फसल के बीच उगते हुए आरजीमोनि खरपतवार को उसी समय हटा देना चाहिए । धुर्त तेल विक्रेताओं द्वारा जानबूझ कर की गई मिलावट खाद्य अपमिश्रण की रोकथाम संबंधी अधिनियम (Prevention of Food Adulteration Act) को सख्ती से लागू करके रोका जा सकता है।

बोध प्रश्न 3

1) चार खाद्य आविषो के कारक, जीव, चिन्ह व लक्षण व उनकी रोकथाम के उपाय को तालिका रूप में लिखें :

खाद्य आविष	कारक जीव	लक्षण/चिन्ह	रोकथाम के उपाय
क) अर्गट रोग			
ख) एफलाटॉक्सिकोसिस			
ग) कलायखंज			
घ) आर्जेमोनि आविषालुता			

14.6 सारांश

इस इकाई में आपने सामान्य खाद्य संक्रमण तथा मादकताओं जैसे सैल्मोनेला तथा स्टैफलोकोक्स खाद्य विषाक्तता, बोटुलिज्म, क्लोस्ट्रीडियम परफ्रिन्जनस तथा बैसीलस सीरस खाद्य विषाक्तता के बारे में पढ़ा । सामान्य खाद्य आविष जिनसे अर्गट रोग एफ्लाटाक्सिकोसिस, कलायखंज आर्जेमोनि आविषालुता तथा जानपदिक शोथ होता है, की सूची बनाई गयी है । इन खाद्य विषाक्तताओं की रोकथाम / नियंत्रण व व्यवस्था का भी वर्णन किया गया है ।

14.7 शब्दावली

अवायुवीय : ऐसा कोशिकीय श्वसन (Cellular respiration) जिसमें खाद्य पदार्थ (अधिकतर कार्बोज़) कभी भी पूर्णतया आक्सीकृत नहीं होते हैं क्योंकि इसमें आणविक आक्सीजन (molecular oxygen) का उपयोग नहीं होता है । खामीरीकरण अवायुवीय श्वसन का उदाहरण है

सिरोसिस : ऐसी स्थिति जिसमें यकृत की कुछ कोशिकाओं को चोट लगने या उनकी मृत्यु हो जाने के कारण रेशेदार ऊतक के अंतग्रथन तन्तुगुच्छ बन जाते हैं तथा उनके बीच में पुन: निर्मित कोशिकाओं की ग्रंथिकाएं पायी जाती है

(स्पोर) बीजाणु	:	पौधों व सूक्ष्म जीवियों द्वारा उत्पन्न छोटी सी जनन वस्तु
आंत्राविष	:	ऐसा विषैला पदार्थ जोकि जठरांत्र नली पर बहुत अधिक प्रभाव डालता है तथा वमन, अतिसार व उदर पीड़ा उत्पन्न करता है
मोल्ड	:	ये छोटे पौधे होते है जोकि सभी तरह के भोज्य पदार्थों पर उग जाते हैं परन्तु हल्के गर्म, नमीयुक्त व अंधेरे स्थानों पर उनके उगने की संभावना अधिक होती है । ये हानिकारक विषैले पदार्थ उत्पन्न करते हैं
पास्चुरीकृत	:	जब जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए दूध को कम समय के लिए उच्च तापमान पर उबाला जाता है उसे पास्चुरीकृत दूध कहते हैं
मुख्य खाद्यान्न	:	अधिकतर या प्रतिदिन प्रयोग होने वाला खाद्य । उदाहरणार्थ दक्षिण का मुख्य खाद्यान्न चावल है तथा उत्तर का मुख्य खाद्यान्न गेहूँ है
आविष	:	आविष माने जहर। कुछ पौधों, जानवरों तथा रोगजन जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न प्रोटीन जोकि अन्य जीवित प्राणियों के लिए बहुत विषैला होता है

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) सही

ख) गलत; भोजन के संपर्क में आने वाले लोग

ग) गलत; अपर्याप्त रूप से संसाधित डिब्बाबंद पदार्थ बाटुलिज्म खाद्य विषाक्तता उत्पन्न करते हैं।

2)

खाद्य विषाक्तता	कारक	संवहन का तरीका	लक्षण
बाटुलिज्म	क्लॉस्ट्रीडियम बाटुलिज्म	• दूषित भोजन जैसे संसाधित डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों का प्रयोग	• भोजन निगलने में कठिनाई • नज़र का धुंधला होना दोहरी दृष्टि
		• संक्रमित लोगों (घाव /कटा हुआ अंग) का भोजन के संपर्क में आना	• जोड़ो में दर्द • शारीरिक अंगों का लकवा, • जोड़ो में कमज़ोरी
सैल्मोनेला संक्रमण	सैल्मोनेला टायफीमुरियम	• संदूषित मांस, दूध व दूध से बने पदार्थ पोलिट्री, अंडे • वाहक के द्वारा संदूषण	• सर्दी के साथ ज्वर, जी मिचलाना व वमन • पानी जैसे पतले दस्त
		• चूहे के मल व मूत्र द्वारा खाद्य पदार्थों का संदूषण	

बोध प्रश्न 2

1) खुले अंत वाले उत्तर

2) क) खाद्य के उत्पादन से उपयोग तक की सभी अवस्थाओं में खाद्य स्वच्छता के नियमों का पालन करना।

ख) संक्रमण से ग्रस्त व्यक्ति (जिसे जुकाम खांसी या फोड़े फुंसी आदि हो) को भोजन नहीं छूने देना चाहिए।

ग) जीवाणु / स्पोर नष्ट करने के लिए भोजन को उचित तापमान पर पर्याप्त समय के लिये पकाना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

खाद्य विष	कारक	चिन्ह / लक्षण	रोकथाम के उपाय
क) अर्गट रोग	क्लेवीसेप फुजीफोरमीस	• जी मिचलाना • बार-बार वमन अंगो में दर्द भरी मरोड़ गेंग्रीन	• खाद्यान्नों से अर्गट रोग के बीज हटाना • इसके हानिकारक आविश के बारे में लोगों को शिक्षित करना
ख) एफ्लाटाक्सि-कोसिस	एंस्परजिलस फ्लेविस पैरासिटीकस	• तीव्र यकृतशोथ यकृत रोग आंत्रशोथ	• फसल काटने के पश्चात खाद्यान्नों को सुखाना • खाद्यान्नों का उचित भंडारन लोगों को स्वास्थ्य शिक्षा देना
ग) कलायखंज	केसरी दाल में उपस्थित विष	• अंगों को लकवा मारना • दाल से विष को पृथक करना	• केसरी दाल के उपयोग पर प्रतिबंध
घ) आर्जेमोनि आविषालुता	सैंग्विनरिन	• पैरों में सूजन अतिसार	• सरसों के बीज़ों से आर्जेमोनि के बीज़ो को अलग करना। • संदूषित तेल के उपयोग पर प्रतिबंध • खाद्य अपमिश्रण संबंधी अधिनियम को सख्ती से लागू करना।

NOTES

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

DHEN-02
जन स्वास्थ्य और स्वच्छता

खंड

5

सामान्य संक्रामक रोग

इकाई 15

खसरा, क्षयरोग तथा काली खाँसी 9

इकाई 16

डिप्थीरिया, टिटेनस तथा पोलियो 21

इकाई 17

मलेरिया 33

इकाई 18

त्वचा, आँख तथा कान के संक्रमण 40

खंड परिचय

खंड चार में भोजन द्वारा फैलने वाले रोगों, खाद्य संक्रमणों तथा विषाक्तताओं की विस्तृत जानकारी के बाद खंड पांच में आपका ध्यान कुछ सामान्य संक्रामक रोगों की तरफ आकर्षित किया गया है। संक्रामक रोग वे रोग हैं जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलते हैं। यह प्रत्यक्ष भौतिक संपर्क, रोग वाहक से दूषित वस्तुओं को लेने तथा रोगी द्वारा खांसने पर या बाहर निकाली गई हवा में उपस्थित संक्रमित बिन्दुकों से फैलते है। जैसाकि आप जानते हैं कि संक्रामक रोग जीवाणु तथा अन्य जीवों द्वारा फैलते हैं जो शरीर को हानि पहुँचाते हैं। इन रोगों की रोकथाम की जा सकती है तथा सरकार ने इनके नियंत्रण के लिए सक्रिय प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम शुरू किया है।

हम खंड 5 के अध्ययन की शुरूआत सामान्य रोगों—खसरा, क्षयरोग, काली खांसी, डिप्थीरिया, टिटेनस तथा पोलियो से करेगें। इस खंड की *इकाई 15 तथा 16* में मुख्य ध्यान निम्न बातों पर दिया गया है। ये रोग कैसे फैलते हैं? कौन से कारक रोग की गंभीरता को प्रभावित करते हैं? इन रोगों की रोकथाम कैसे की जा सकती है? इन रोगों के रोगियों की व्यवस्था/उपचार कैसे करें?

मलेरिया एक संक्रामक रोग है जो कि लाल रक्त कणिकाओं में एक कोशिकीय परजीवी प्रोटीजोआ की उपस्थिति के कारण होता हैं। इस रोग का संवहन कैसे होता है तथा इसकी रोकथाम नियंत्रण कैसे करें? *इकाई 17* में इनका विवरण दिया गया है।

इकाई 18 में उन रोगों/संक्रमणों के बारे में बताया गया है जो कि उचित व्यक्तिगत स्वच्छता न रखने के कारण होती है। हमारे देश की सामान्य जन स्वास्थ्य समस्याऐं त्वचा, आँख व कान के संक्रमण हैं। ये संक्रमण क्या हैं? इनकी रोकथाम कैसे करें? इस इकाई में इन संक्रमणों के नियंत्रण/रोकथाम/व्यवस्था के कुछ सरल उपाय बताए गए हैं।

अध्ययन संदर्शिका

निम्न बातें आपको खंड 5 के अध्ययन में सहायक होंगी :

1) खंड 5 में संक्रामक रोगों जैसे खसरा, क्षयरोग, काली खांसी, डिफ्थीरिया, टिटेनस, पोलियो, मलेरिया, त्वचा, आंख व कान के संक्रमणं के कारणों व लक्षणों के बारे में बताया गया है। उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ें।

2) इस खंड में इन रोगों के रोकथाम, नियंत्रण के उपायों के बारे में भी बताया गया है। उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़े। इन्हें पढ़ने के बाद आप इन रोगों की रोकथाम के लिए उचित उपायों का चुनाव कर सकेगें तथा इन रोगों को फैलने से रोक सकेगें।

3) प्रत्येक भाग में दी गयी "याद रखने योग्य बातों" को ध्यानपूर्वक पढ़ें क्योंकि उनमें मुख्य बातों का सारांश दिया गया है।

4) विशिष्ट संक्रामक रोगों के बारे में जानने से पहले इस कार्यक्रम में प्रयोग किये गये कुछ तकनीकी शब्दों की परिभाषा जानना आपके लिए अनिवार्य है। शायद अब तक आपको इस खंड में प्रयुक्त अधिकांश तकनीकी शब्दों के बारे में मालूम हो गया होगा। खंड 4 में दी गयी शब्दावली आपको कठिन शब्दों को समझने में सहायक होगी। आपके लिए हम एक बार फिर उसी शब्दावली को इस खंड के शुरू में "तकनीकी शब्दों को समझना शीर्षक" के अंतर्गत दे रहे हैं। एक बार फिर उसे ध्यानपूर्वक पढ़े, समझे तथा आगे के अध्ययन की शुरूआत करें।

तकनीकी शब्दों को समझना

संक्रमण (Infection) : मनुष्य या जानवर के शरीर में किसी संक्रामक कारक का प्रवेश और बहुगुणन। संक्रमण का अर्थ हमेशा संक्रामक रोग नहीं होता है। कई बार संक्रमण द्रष्टव्य (प्रत्यक्ष रूप से सामने नहीं आता) नहीं होता है अर्थात् उसके नैदानिक लक्षण नजर नहीं आते हैं। इस दशा को लक्षणहीन संक्रमण (subclinical infection) भी कहते हैं।

संक्रामक रोग (Infectious disease) : मनुष्य या जानवर में संक्रमण से होने वाले रोग। संक्रामक रोग से पीड़ित रोगी में नैदानिक लक्षण अर्थात् वे लक्षण जिनसे रोग की पहचान की जा सके, दिखाई देते हैं।

संक्रामक कारक (Infectious agent) : वह जीव–मुख्यतः सूक्ष्म–जीव जिनमें संक्रमण या संक्रामक रोग उत्पन्न करने की क्षमता होती है। अधिकांश संक्रमण उन जीवाणु या विषाणुओं के कारण होते है, जिन्हें मात्र आंखों से नहीं देखा जा सकता तथा उन्हें देखने के लिए साधारण या विशिष्ट सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता होती है।

ग्रसन (Infestation): शरीर के ऊपर (उदाहरणतः टिक–चीचड़ी) या अंदर (जैसे क्रमि) जानवर परजीवियों की उपस्थिति।

ऊष्मायन अवधि (Incubation Period) : संक्रामक कारक के संपर्क तथा रोग के प्रथम लक्षण या चिन्ह के नजर आने के बीच का समय। आप यह बात समझ लें कि संक्रामक कारक के संपर्क तथा रोग के विकसित होने के बीच में एक निश्चित अंतराल होता है। इसे ऊष्मायन अवधि कहते हैं।

संचारी रोग (Communicable disease) : किसी विशेष संक्रामक कारक या इसके विषैले उत्पाद के कारण उत्पन्न रोग, जोकि उस कारक या इसके उत्पाद के संचिति जीव से ग्रहणशील परपोषी तक, प्रत्यक्ष संवहन अर्थात् संक्रमण ग्रस्त व्यक्ति या जानवर से या अप्रत्यक्ष संवहन अर्थात् मध्यस्थ पौधे या परपोषी जीव, रोग वाहक (vector) या निर्जीव वातावरण के कारण होता है। यह तो आप को मालूम होगा कि यदि एक व्यक्ति (ग्रहणशील परपोषी) किसी तपेदिक ग्रस्त रोगी (संक्रमण ग्रस्त व्यक्ति) के संपर्क में आता है तो उसके रोग की पकड़ने की संभावना बढ़ जाती है। इसी प्रकार मलेरिया मच्छरों के कारण फैलता है। दूसरे शब्दों में मच्छर मलेरिया के वाहक हैं।

संक्रामक कारकों के संचिति : कोई भी मनुष्य, जानवर, पौधा, मिट्टी या निर्जीव पदार्थ जिसमें संक्रामक कारक साधारणतया रहता है तथा वृद्धि करता है तथा जीवित रहने के लिए मुख्यतः उसी पर निर्भर करता है या फिर इस प्रकार वृद्धि करता है जिससे कि वह किसी ग्रहणशील परपोषी के पास पहुँच सके। संक्रामक रोगों के मामले में आप यह जानेगें कि संक्रामक रोगों में मनुष्य संचिति है। ये उन जलाशयों के समान है जिनमें जल का भंडारण तथा फिर वितरण किया जाता है। संक्रमण के संचिति के मामले में रोग कारकों को आश्रय मिलता है तथा फिर वहाँ से दूसरों तक संवहन होता है।

परपोषी (Host) : मनुष्य या अन्य जीवित जानवर जैसे कि पक्षी या कीड़े जिनमें प्राकृतिक स्थितियों में संक्रामक कारकों को जीवन मिलता है।

ग्रहणशील (Susceptible) : वह व्यक्ति या जानवर जिसमें पूर्व संक्रमण या प्रतिरक्षीकरण के द्वारा रोधकक्षमता (immunity) उत्पन्न न हुई हो, अतः उस व्यक्ति को रोग कारक के संपर्क में आने पर रोग होने की संभावना हो जाती है।

संचरणीय अवधि (Communicable period): वह अवधि जिसमें संक्रामित व्यक्ति या जानवर से संक्रमण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दूसरे व्यक्ति तक फैल सकता है। यह समझना आवश्यक है कि यदि व्यक्ति संचारी रोग से पीड़ित व्यक्ति के संपर्क में न आए तो उसे रोग नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, यदि आपको किसी रोग की संक्रमण अवधि मालूम हो तो आप संक्रामक रोग से बचने के लिए उचित कदम उठा सकते हैं। इसके लिए या तो रोगी को दूसरों से अलग रख सकते हैं या दूसरे व्यक्तियों को संक्रमण अवधि में रोगी के संपर्क में आने से रोक सकते हैं।

महामारी (Epidemic): किसी समुदाय या क्षेत्र में स्पष्ट रूप से किसी रोग का सामान्य से अधिक अर्थात् विस्फोटक संख्या में होना। यह किसी सामान्य या उत्पादिक स्रोत के कारण हो सकता है। कोई भी रोग जो कि बहुत समय से उस क्षेत्र में न हुआ हो, ऐसे में एक भी रोगी उस रोग की महामारी होने की संभावना का सूचक होता है।

स्थानिक रोग (Endemic): किसी विशिष्ट क्षेत्र में होने वाला रोग या संक्रामक कारक। दूसरे शब्दों में, किसी विशेष क्षेत्र में रहने वाले समुदाय में किसी एक समय पर उस रोग से ग्रस्त व्यक्ति हों। उदाहरण के लिए मलेरिया भारत में स्थानिक रोग है।

संक्रमण का गुदा-मुखीय मार्ग (faecal-oral route) : कुछ रोगों में संक्रामक कारक मल के साथ निकलता है तथा शरीर में मुह द्वारा प्रवेश करता है। किसी कारक के मल से मुंह तक संवहन की प्रक्रिया भिन्न–भिन्न होती है तथा अधिकतर इस विषय में मालूम नहीं चलता है।

संक्रमणी पदार्थ (Fomites): ये वह पदार्थ है जो कि विसंगति फैलाने वाले जीवों में संदूषित होने के पश्चात् उस संक्रामक कारक को अन्य जीवों में फैला सकते हैं। गंदे वस्त्र, तौलिए, कपड़े, रूमाल, कप, चम्मच, पेंसिल, किताबें, गिलास, दरवाजे के हैंडिल, नल, शौचालय, चैन या फ्लश तंत्र, सिरिंज (इन्जैक्शन लगाने की सुई), यंत्र तथा शल्य पट्टिया इनके उदाहरण हैं।

अलक्षणीय या लक्षणहीन (Asymptomatic): किसी रोग का ऐसा रूप/स्थिति जब नैदानिक लक्षण नजर न आए।

नैदानिक लक्षण (Clinical manifestation): वे लक्षण या चिन्ह जिनके आधार पर रोग की पहचान की जा सके।

वाहक (Carriers): यह वह व्यक्ति होते हैं जो किसी विशेष संक्रामक रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म जीवियों को आश्रय देते हैं। उनके स्वयं में तो विसंगति के कोई लक्षण या चिन्ह नजर नहीं आते परन्तु ये दूसरे व्यक्तियों को संक्रमित कर सकते हैं।

सीरमीय परीक्षण या सीरम जाँच (Serological test) : रक्त सीरम तथा उसके अवयवों की जाँच विशेषकर रोग से शरीर की रक्षा करने में इनकी देन।

ट्यूबरक्यूलिन (Tuberculin): जीवाणु के संवर्धन से प्राप्त प्रोटीन उत्पाद; इसका प्रयोग यह पता लगाने के लिए किया जाता है कि व्यक्ति को क्षयरोग हुआ था या व्यक्ति उसके सम्पर्क में था।

मान्टू परीक्षण (Montou Test): क्षयरोग की पहचान के लिए किए जाने वाला त्वचा परीक्षण। इस परीक्षण के लिए ट्यूबरक्यूलिन की एक निश्चित मात्रा त्वचा के नीचे इन्जैक्शन द्वारा डाली जाती है तथा अगले 18–24 घंटे में इन्जैक्शन लगाने के आस पास की जगह में लाली का धब्बा बनना परीक्षण के प्रभावयुक्त (positive reaction) होने को दर्शाता है, जो कि व्यक्ति में प्रतिरोधकता क्षमता होने का सूचक है।

चिक परीक्षण (Schick Test): डिप्थीरिया के प्रति संवेदनशीलता की जाँच के लिए यह परीक्षण किया जाता है। डिप्थीरिया टाक्सिन की थोड़ी सी मात्रा त्वचा में इन्जैक्शन के

द्वारा डाली जाती है। लाल धब्बा तथा सूजन यह दर्शाती है कि व्यक्ति में इसके प्रति कोई प्रतिरोधक क्षमता नहीं है तथा खतरे से बचने के लिए प्रतिरक्षीकरण किया जाना चाहिए।

निरीक्षण (Surveillance) : निगरानी रखना या पर्यवेक्षण या देखरेख करना।

सिकल सैल ट्रेट (Sickle Cell Trait) : रक्त की ऐसी पैतृक बीमारी जिसमें लाल रक्त कणिकाओं में असामान्य हीमोग्लोबिन का निर्माण होता है।

इकाई 15 खसरा, क्षयरोग तथा काली खाँसी

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 खसरा

15.2.1 रोग—यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कैसे और कब फैलता है ?

15.2.2 लक्षण तथा जटिलताएं

15.2.3 रोकथाम तथा व्यवस्था

15.3 क्षयरोग

15.3.1 रोग—यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कैसे और कब फैलता है?

15.3.2 लक्षण तथा जटिलताएं

15.3.3 रोकथाम तथा व्यवस्था

15.4 काली खाँसी (Whooping Cough)

15.4.1 रोग—यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कैसे और कब फैलता है?

15.4.2 लक्षण तथा जटिलताएं

15.4.3 रोकथाम तथा व्यवस्था

15.5 सारांश

15.6 शब्दावली

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.1 प्रस्तावना

आप जानते हैं कि बच्चों में संक्रमण होने की संभावना अधिक होती है। ये संक्रमण सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये सूक्ष्मजीव बहुत ही छोटे होते हैं तथा इन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखा जा सकता है। बच्चों में सर्वाधिक होने वाले तीन संक्रामक रोग – खसरा, क्षयरोग तथा काली खाँसी हैं। इन रोगों को उत्पन्न करने वाले कारक कौन से हैं? ये कैसे फैलते हैं ? इन रोगों की पहचान कैसे करें ? अपने बच्चों को इन रोगों से कैसे बचा सकते हैं ? इस इकाई में इन महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर दिये गए हैं। इस इकाई में आप इन संक्रामक रोगों के कारकों, जटिलताओं, रोकथाम व नियंत्रण के उपायों के बारे में पढ़ेगें ।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- खसरा, क्षयरोग तथा काली खाँसी के कारकों तथा फैलने के तरीकों को पहचान सकेंगे
- खसरा, क्षयरोग तथा काली खाँसी के लक्षणों तथा जटिलताओं की सूची बना सकेंगे, और
- इन रोगों की व्यवस्था व रोकथाम के चरणों तथा लोगों को इनकी रोकथाम के विषय में शिक्षित करने के बारे में वर्णन कर सकेंगे ।

15.2 खसरा

खसरा विषाणु द्वारा होने वाला रोग है जोकि सामान्य तथा लगभग एक वर्ष की आयु के बच्चों को प्रभावित करता है। यह एक महत्वपूर्ण तथा बच्चों में काफी अधिक होने वाला संक्रामक रोग है। विश्व के अधिकांश देशों में खसरा स्थानिक रोग (endemic) के रूप में होता है। भारत में

हर वर्ष लगभग 140 लाख बच्चे खसरे से प्रभावित होते हैं। अनुमान लगाया गया है कि लगभग 20,000 बच्चे प्रति वर्ष खसरे से उत्पन्न जटिलताओं के कारण मृत्यु की गोद में चले जाते हैं।

15.2.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कैसे और कब फैलता है?

खसरा किसके कारण होता है ?

यह रोग के विषाणु द्वारा होता है। आप जानते ही हैं कि विषाणु एक सूक्ष्मजीव है जिसें केवल अत्याधिक आधुनिक सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकता है।

यह रोग किन्हें होता है ?

आयु : यह रोग बाल्यावस्था में अधिक पाया जाता है। अधिकतर बच्चों में तीन वर्ष की आयु पूरी होने तक एक बार खसरा अवश्य हो जाता है। खसरे से प्रभावित कुल बच्चों में से एक तिहाई में यह एक वर्ष से कम की आयु में ही हो जाता है।

सामाजिक आर्थिक कारक : विशेषकर गरीब समुदायों में खसरा गंभीर रूप में होता है। बच्चे पर निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के बहुत से हानिकारक प्रभावों के अतिरिक्त, खसरे के आक्रमण से पहले तथा इसके दौरान, अल्प पोषण इस रोग की तीव्रता तथा संक्रमण के प्रभावों को प्रभावित करता है ।

भीड़भाड़ वाले बड़े शहरों में, विशेषकर शहरी स्लम क्षेत्रों में 2 से 4 वर्ष के दौरान खसरे की महामारी होती है। अस्वच्छ वातावरण में बच्चों में खसरा बहुत कम आयु से ही हो जाता है। मध्य आय वर्ग के परिवारों में यह बाद में लगभग स्कूल जाने की आयु में होता है।

लिंग : दोनों लिंगों को खसरा समान रूप से प्रभावित करता है।

ऋतु : सर्दियों में खसरा अधिक होता है।

यह किस प्रकार फैलता है ?

यह रोग खसरे से संक्रमित व्यक्ति की नाक या गले के स्राव या मूत्र के प्रत्यक्ष संपर्क में आने या रोगी की खाँसी या छींक की बिन्दुक (droplet) द्वारा फैलता है। यह बहुत आसानी और शीघ्रता से फैलने वाला संक्रामक रोग है। लार या नाक से निकले स्राव से दूषित वस्तुएँ भी संक्रमण फैला सकती हैं। गर्भवती स्त्री में खसरे के कारण गर्भपात भी हो सकता है।

उष्मायन अवधि : खसरे के विषाणुओं के शरीर में प्रवेश करने तथा ज्वर होने के बीच में 8 से 13 दिन तथा औसतन 10 दिन का समय लगता है। संक्रमित बच्चे से संपर्क के 14 दिन बाद त्वचा पर दाने दिखाई देते हैं।

संचरणीय अवधि : ज्वर के शुरू होने तथा त्वचा पर दाने दिखने के 4-6 दिन बाद तक का समय संक्रामक होता है। खसरा बहुत अधिक संक्रामक होता है तथा रोगी के संपर्क में आने वाले 90 प्रतिशत संवेदनशील सदस्यों को यह रोग हो जाता है। दूसरे शब्दों में, रोगी के परिवार के उन बच्चों को जिन्हें पहले यह संक्रमण न हुआ हो, संक्रमण होने की बहुत अधिक संभावना होती है।

संवेदनशीलता : सामान्यतया सभी व्यक्ति इस रोग के प्रति संवेदनशील हैं। एक बार खसरा होने पर, अधिकतर व्यक्तियों में इसके प्रति स्थायी रोधकक्षमता उत्पन्न हो जाती है। दूसरे शब्दों में, किसी व्यक्ति को जीवन में केवल एक बार खसरा होता है। जिन माताओं को यह रोग हुआ हो अधिकतर उनके शिशुओं में इसके प्रति रोधकक्षमता होती है, जिससे उन्हें पहले 6 महीनों में यह रोग नहीं होता है।

15.2.2 लक्षण तथा जटिलताएं

खसरा एक तीव्र, कम अवधि का तथा अचानक होने वाला संक्रामक रोग है। मंद ज्वर, खांसी तथा नाक बहने जैसे लक्षणों से इसकी शुरुआत होती है। नेत्रश्लेष्मल शोथ (conjunctivitis) भी

हो जाते है। यदि आप मुँह के अंदर का परीक्षण करें तो आपको मुँह की श्लेष्मा झिल्ली के ऊपर विशिष्ट भूरे या सफेद रंग के धब्बे दिखाई देगें। एक या दो दिन बाद त्वचा पर विशेष प्रकार के मटमैले लाल रंग के दाने निकल आते हैं। ये दाने ज्वर होने के तीन से सातवें दिन बाद निकलते हैं। ये दानें सबसे पहले मुँह पर और फिर पूरे शरीर पर निकलते हैं तथा सामान्यतया 4-5 दिन तक रहते हैं। कुपोषित बच्चों में खसरा अधिक गंभीर या तीव्र रूप में होता है।

खसरे से क्या जटिलताएं हो सकती हैं ?

खसरा एक मुख्य जन स्वास्थ्य समस्या है क्योंकि इसके कारण बच्चा दुर्बल स्थिति में आ जाता है। खसरा होने के बाद होने वाली एक सामान्य जटिलता तीव्र श्वसन संक्रमण है, जिससे ब्रोन्को निमोनिया, फेफड़ों का संक्रमण, हो सकता है। इससे मृत्यु भी हो सकती है। सबसे अधिक होने वाली जटिलताओं में प्रमुख अतिसार है जिसके कारण अधिकतर बच्चों में कुपोषण हो जाता है। खसरे तथा बच्चे का पोषण स्तर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। यदि आप गंभीर कुपोषण से ग्रस्त बच्चे की माँ से पूछेंगे तो लगभग हमेशा ही वे बताएंगी कि कुछ समय पूर्व ही उनके बच्चे को खसरा हुआ था। भूख न लगने तथा अत्यधिक अतिसार के कारण खसरे से ठीक होते हुए बच्चे में गंभीर रूप का कुपोषण हो जाता है। पाठ्यक्रम 1 के खंड 5 की इकाई 20 में खसरे का बच्चों के पोषक स्तर पर प्रभाव के विषय में आपने अवश्य पढ़ा होगा। खसरे के बाद मध्य कान का संक्रमण, मंद बुद्धि जैसी जटिलताएं भी हो सकती हैं। खसरे से आँख का कॉर्निया (आँख का काला भाग) क्षतिग्रस्त हो जाता है जिससे अंधापन हो सकता है। बच्चों में खसरे से विटामिन ए की कमी की समस्या भी बढ़ जाती है, जिससे अंधता हो सकती है।

15.2.3 रोकथाम तथा व्यवस्था

खसरे की रोकथाम/नियंत्रण का वर्णन नीचे किया गया है :

प्रतिरक्षण द्वारा खसरे की रोकथाम : खसरे की रोकथाम का सबसे सरल तथा सर्वोत्तम तरीका प्रतिरक्षीकरण है। सामान्यतया 12 महीने की आयु या इसके तुरंत बाद सभी बच्चों को खसरे के प्रतिरक्षी टीके लगाए जाने चाहिए। केवल एक ही टीके से 95 प्रतिशत संवेदनशील बच्चों को 12 वर्ष तक के लिए या लगभग पूरे जीवन भर के लिए सुरक्षा प्राप्त हो जाती है। प्रतिरक्षीकरण के बाद अधिकतर बच्चों को बहुत कम तीव्रता का संक्रमण जिसमें कम उग्र लक्षण, जैसे ज्वर, खाँसी, नाक बहना या त्वचा पर हल्के दाने होते हैं। पुनेर्शित हिमशुष्क (reconstituted freeze dried) प्रतिरक्षी टीके का 0-5 मि.ली. का एक इंजेक्शन अंतःमांसपेशी में लगाया जाता है। सामान्यतया प्रतिरक्षी टीका लगने के 11 से 12 दिन बाद रोधक क्षमता उत्पन्न होती है।

आइए, अब खसरे के उपचार के बारे में कुछ जानें।

खसरे की व्यवस्था : खसरे के लिए कोई विशिष्ट उपचार उपलब्ध नहीं है। उपचार के लिए ज्वर को नियंत्रित करने की जवररोधी (anti pyretics) दवाइयां, पूर्ण आराम तथा पर्याप्त तरल पदार्थ देने की सलाह दी जाती है। खसरे की व्यवस्था के अन्तर्गत उचित प्रतिजैविकों द्वारा द्वितीयक जीवाणु संक्रमणों को नियंत्रित करना बहुत महत्वपूर्ण है। निमोनिया तथा मध्य कान के संक्रमण जैसी जटिलताओं का उपचार उचित प्रतिजैविकों द्वारा किया जाता है। बच्चे का पोषण स्तर बनाये रखना चाहिए। जो बच्चे माँ का दूध पीते हैं, उनके मुँह में छाले होने के कारण वह माँ का दूध नहीं चूस सकते हैं, उन्हें माँ का दूध निकाल कर चम्मच से दिया जा सकता है। जो बच्चे स्तनपान नहीं करते हैं उन्हें नरम आहार जैसे दलिया दिया जा सकता है। खसरे से प्रभावित बच्चों का शरीर भार बहुत कम हो जाता है तथा रोग से मुक्त होने के काल में भी भार में बढ़ोत्तरी कम गति से होती है। खसरे से ठीक होते बच्चे को पर्याप्त आहार देना चाहिए, जिससे उसका भार तीव्र गति से बढ़ सके। बच्चे को जल्दी–जल्दी कम अंतराल के बाद अर्थात् दिन में 5-6 बार आहार देना चाहिए। आहार में खाद्यान्न जैसे चावल या गेंहू, दाल तथा हरी सब्जियाँ शामिल करनी चाहिए। बच्चे को दिन में कम से कम एक गिलास दूध अवश्य देना चाहिए। भोजन को भली प्रकार अच्छी तरह गलने तक पकाना चाहिए तथा माँ या घर के किसी

बड़े सदस्य को बच्चे को अपने हाथ से भोजन खिलाना चाहिए। पाठ्यक्रम 1 के खंड 5 की इकाई 20 में बतायी गयी खसरे में आहार व्यवस्था संबंधी अन्य बातें भी महत्वपूर्ण हैं। इन बातों को एक बार ध्यान से पढ़ें।

याद रखने योग्य बातें

खसरा

- खसरा एक तीव्र संक्रामक रोग तथा महत्वपूर्ण जन स्वास्थ्य समस्या है।
- यह खसरे के विषाणु द्वारा होता है।
- यह खसरे से संक्रामित व्यक्ति के नाक, गले के स्राव तथा मूत्र के प्रत्यक्ष संपर्क द्वारा फैलता है।
- इस रोग की उद्भावन अवधि लगभग 10 दिन है।
- खसरे की रोकथाम का सबसे सरल तथा सर्वोत्तम उपाय प्रतिरक्षीकरण है।
- खसरे की व्यवस्था का सर्वोत्तम तरीका द्वितीय संक्रमणों तथा जटिलताओं का उपचार करना है।
- अच्छे पौष्टिक भोजन द्वारा बच्चे के पोषण स्तर को बनाये रखना चाहिए।

बोध प्रश्न 1

1) बच्चे में खसरे के रोग की विभिन्न अवस्थाओं का प्रवाह चार्ट बनाइए।

2) माताओं को खसरे की रोकथाम व व्यवस्था के बारे में शिक्षा देने के लिए कार्यक्रम की योजना बनाइए।

....

....

....

....

....

15.3 क्षयरोग

क्षयरोग सर्वत्र पाए जाने वाला एक सामान्य रोग है। विश्व के बहुत से भागों में क्षीर्णता तथा मृत्यु का मुख्य कारण क्षयरोग है। भारत जैसे विकासशील देशों में पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों में क्षयरोग अधिक होता है क्योंकि इस आयु में रोग के संपर्क में आने के अधिक अवसर होते हैं। दूसरे शब्दों में, इस आयु वर्ग में यह रोग अधिक पाया जाता है। अनुमान लगाया गया है कि यहाँ पर फेफड़ों के क्षयरोग के कम से कम 90-100 लाख रोगी पाए जाते हैं।

15.3.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? ये कैसे और कब फैलता है ?

क्षयरोग माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्यूलोसिस नामक अगतिशील (Non-mobile), पतले, अम्ल स्थायी (acid fast) जीवाणु द्वारा होता है। इस जीवाणु के दो प्रकार – ह्यूमन तथा बोवाइन (human and bovine)—मनुष्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। मनुष्य स्रोत का जीवाणु भारत में होने वाले अधिकांश रोगियों के रोग का कारण है। रोगी के थूक या अन्य स्त्रावों में (जीवाणुओं को उचित प्रकार से रंगने के बाद) सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जा सकता है।

यह रोग किन्हें होता है ?

आयु : क्षयरोग किसी भी आयु में हो सकता है। भारत में हाल ही में हुए सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि कम आयु वाले लोगों की अपेक्षा अधिक आयु वाले लोगों में यह अधिक होता है।

लिंग : भारत में 45 वर्ष से अधिक आयु के पुरुषों में स्त्रियों की अपेक्षा अधिक क्षयरोग होता है जबकि स्त्रियों में 35 वर्ष से कम की आयु में यह सबसे अधिक पाया जाता है।

सामाजिक आर्थिक कारक : यह रोग निम्न आय वर्ग के परिवारों में अधिक पाया जाता है। पश्चिमी देशों में जीवन स्तर में बढ़ोत्तरी होने के कारण इस रोग से होने वाली मृत्यु की दर में कमी आई है। निम्न स्तर के छोटे तथा कम हवादार मकानों में रहने वाले समुदायों में यह रोग होने की संभावना अधिक होती है। खानों तथा कपड़ा मिलों में काम करने वाले लोग इससे अधिक प्रभावित होते हैं। शहरों के स्लम क्षेत्रों में अधिक भीड़भाड़ के कारण यह रोग बहुत अधिक फैल रहा है।

कुछ सामाजिक प्रथाएं/आदतें जैसे कहीं भी थूकना, हुक्का पीना तथा पर्दा–प्रथा भी इस संक्रमण के फैलने में सहायक हैं। क्षयरोग को समाज में अच्छा नहीं माना जाता है जिसके कारण लोग इस रोग को छुपाते हैं तथा इसकी पहचान करने में देर हो जाती है जिससे इस रोग के दूसरे लोगों में भी फैलने की संभावना अधिक हो जाती है।

यह कैसे फैलता है ?

क्षयरोग संक्रमित व्यक्ति की खाँसी के दौरान उत्पन्न थूक की बिंदुकों द्वारा फैलता है। संक्रमण फैलाने के लिए थूक की बिंदुकें ताजी होनी चाहिए जिससे कि उनमें जीवित जीव उपस्थित हों। घर मे क्षयरोग के रोगियों के साथ अधिक समय तक संपर्क में रहने से दूसरे लोगों को भी संक्रमण हो सकता है। संक्रमणी पदार्थों अर्थात् रोगी के बर्तनों तथा अन्य वस्तुओं द्वारा संक्रमण नहीं फैलता है। अतः इन वस्तुओं का कीटाणुरहित करने का कोई विशेष लाभ नहीं है।

बोवाइन क्षयरोग, क्षयरोग से ग्रसित गाय से प्राप्त बिना पास्चुरीकृत दूध या अन्य डेयरी उत्पादों के सेवन करने से होती है। मुख्यतः मानव और कुछ क्षेत्रों में रोग ग्रस्त गाय–बैल क्षयरोग संक्रमण के संचिति है।

उष्मायन अवधि : क्षयरोग के किसी सक्रिय रोगी से संक्रमित होने के बाद प्राथमिक लक्षण दिखाई देने में 4-12 सप्ताह का समय लगता है। फुप्फुस (pulmonary) तथा फुप्फुसबाह्य (extra-pulmonary) क्षयरोग होने में वर्षों लग जाते हैं। आपको याद रखना चाहिए कि क्षयरोग संक्रमण का अर्थ है माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्यूलोसिस जीवाणु का शरीर में प्रवेश या विकास तथा इस संक्रमण के कारण इस रोग के विशिष्ट लक्षण तथा चिन्ह होना हैं।

संचरणीय अवधि : यह एक संक्रामक रोग है अर्थात् यह एक रोगी से दूसरे व्यक्ति में फैल सकता है। रोगी तब तक रोग फैला सकता है जब तक कि उसके शरीर से ट्यूबरकयूल जीवाणु निकलते रहते हैं। कुछ गरीब (निम्न आय वर्ग) समुदायों में ऐसे रोगी जिनका उपचार न हुआ हो या अपूर्ण उपचार हुआ हो, कई वर्षों तक थूक के द्वारा संक्रमण फैलाते रहते हैं। उचित उपचार के द्वारा सामान्यतया संक्रमण अवधि कुछ सप्ताह तक की ही रह जाती है। इसका अर्थ यह है कि क्षयरोग के नियंत्रण के लिये, तुरन्त तथा पूर्ण उपचार अति आवश्यक है। फुप्फुसबाह्य क्षयरोग जिसमें कोई भी स्राव नहीं निकलता है, प्रत्यक्ष रूप से संक्रामक नहीं होता है।

संवेदनशीलता : हर व्यक्ति इस रोग के प्रति संवेदनशील होता है, फिर भी तीन वर्ष से कम आयु के बच्चे ज्यादा संवेदनशील होते हैं। अल्पपोषित व्यक्ति इस रोग के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। 4-10 वर्ष की आयु में संवेदनशीलता सबसे कम होती है परन्तु किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में पुनःसंवेदनशीलता अधिक हो जाती है।

15.3.2 लक्षण तथा जटिलताएं

क्षयरोग एक दीर्घकालिक रोग है अर्थात् यह धीरे–धीरे शुरू होता है तथा लम्बे समय के लिए रहता है। बच्चों में प्राथमिक संक्रमण का तो पता ही नहीं चलता है। क्षयरोग के प्राथमिक लक्षण घाव (रोग से उत्तकों में होने वाले वेकृत परिवर्तन) तो अधिकतर कोई प्रभाव छोड़े बिना ही समाप्त हो जाते हैं या यह सक्रिय फेफड़ों के क्षयरोग में भी विकसित हो सकती है तथा फिर लिम्फो हेमोटोजीनस (lympho-haematogenous) मार्ग अर्थात् रक्त द्वारा तंत्रिका तंत्र विशेषकर मेनिनजिस (अर्थात् मस्तिष्क तथा मेरुरज्जु (spinal cord) के ऊपर की परत) में भी फैल जाता है।

फुप्फुस क्षयरोग की पहचान विभिन्न बदलते रहने वाले लक्षणों से होती है। इसमें पहले तीव्रता में बढ़ते हुए तथा फिर कम होते हुए लक्षण दिखाई देते हैं। फेफड़ों, श्वास नली तथा श्वसनी से स्राव व मुँह से निकले थूक से ट्यूबरक्यूलर जीवाणु की उपस्थिति की जाँच से रोग की पक्की पहचान की जाती है। रोग के नैदानिक लक्षण व चिन्ह दिखाई देने से पहले ही एक्स–रे में आयी घनत्व में विभिन्नता से फुप्फुस क्षयरोग की पहचान की जा सकती है। रोगी को खाँसी हो जाती है, जल्दी थकावट होती है अर्थात् व्यक्ति थोड़ा सा काम करने पर ही थकान महसूस करता है। ज्वर, शरीर भार व भूख में कमी, आवाज में भारीपन तथा छाती में दर्द भी होता है। रोग के अधिक बढ़ने पर थूक में खून भी आता है। अधिकतर रोगी, विशेषकर निम्न आय वर्ग के रोगी रोग के बहुत बढ़ने पर चिकित्सक के पास जाते हैं।

आजकल क्षयरोग के रोगियों की पहचान के लिए सूक्ष्मदर्शी द्वारा थूक का परीक्षण सर्वोत्तम तरीका माना जाता है। भारतीय क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम के अन्तर्गत चिकित्सालयों तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर आने वाले ऐसे रोगी जिनमें निम्न लक्षण पाये जाते हैं, उनके थूक का परीक्षण नियमित रूप से किया जाता है।

1) 4 सप्ताह से अधिक समय तक खाँसी रहना
2) लगातार ज्वर
3) छाती में दर्द
4) थूक में खून का आना

क्षयरोग की पहचान करने के लिए ट्यूबरक्यूलिन परीक्षण किया जाता है। यह परीक्षण क्या है ? तथा किस प्रकार किया जाता है ? इसका विवरण नीचे दिया गया है।

ट्यूबरक्यूलिन टेस्ट : क्षयरोग से ग्रसित व्यक्ति ट्यूबरक्यूलिन परीक्षण (टेस्ट) की कम मात्रा के प्रति भी प्रतिक्रिया दिखाता है। इस प्रकार का एक परीक्षण त्वचा में किए जाने वाला मोन्टू परीक्षण (Montoux Test) है। इसका प्रयोग सबसे ज्यादा होता है तथा बड़ी जनसंख्या में जानपादिक रोग विज्ञान अध्ययन के लिए यह एक सन्तोषजनक परीक्षण है। त्वचा की उपरी परतों में पुराने ट्यूबरक्यूलिन (old tuberculin—OT) या इसके शोधित प्रोटीन व्युत्पन्न (purified protein derivative - PPD) के मानक घोल की 0-1 मि.ली. मात्र इन्जेक्शन द्वारा डाली जाती है। इस उद्देश्य के लिए विशेष सीरिंज का प्रयोग किया जाता है। यदि 72 घंटे बाद 6 मि.मी. के व्यास से अधिक का उभार (सख्त तथा लाल रंग की त्वचा) बन जाए तो परीक्षण क्षयरोग का सूचक है। गंभीर रूप से बीमार क्षयरोग के रोगियों तथा कुछ संक्रामक रोगों जैसे खसरे में इस परीक्षण के परिणाम ऋणात्मक भी हो सकते है।

फुप्फुस बाह्य क्षयरोग फेफड़ों के क्षयरोग की अपेक्षा बहुत कम पाया जाता है। इसके अंतर्गत टुबरकुलस मेनिनजाइटिस (मेरुदंड की सुरक्षात्मक परत का संक्रमण), हड्डियों तथा जोड़ों, आंतों, गुर्दों, स्वरयंत्र आदि का क्षयरोग आता है। ऐसी अवस्था में इन घावों या इनसे निकलने वाले स्रावों में ट्यूबरक्यूली जीवाणु की उपस्थिति से क्षयरोग की पहचान की जाती है।

15.3.3 क्षयरोग की रोकथाम तथा व्यवस्था

निम्न उपायों द्वारा क्षयरोग की रोकथाम की जा सकती है।

क) **सामाजिक परिस्थितियों को बेहतर बनाना :** ऐसी परिस्थितियां जैसे भीड़भाड़ जो कि क्षयरोग के संक्रमण होने की संभावना को बढ़ाती है, को कम करना चाहिए। गरीब लोगों के लिए हवादार (जिसमें प्रकाश और हवा आती हो) घरों का प्रबन्ध करना चाहिए। आपको मालूम होगा कि स्लम में रहने वाले गरीब लोगों को पुनःस्थापित करने के लिए सरकार कम लागत के उचित योजनाबद्ध नक्शे के मकान बनवा रही है। इस प्रकार के प्रयासों द्वारा क्षयरोग का नियंत्रण हो सकता है।

लोगों को रोग फैलने के तरीकों के बारे में शिक्षित करना चाहिए। उदाहरण के लिये, लोगों को जगह–जगह थूकने के लिए मना करना चाहिए तथा लम्बे समय तक ज्वर रहने, खाँसी, भूख न लगने जैसे लक्षण होने पर प्रारम्भिक अवस्था से ही चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

ख) **प्रारम्भिक अवस्था में ही रोग की पहचान तथा उपचार :** संक्रमण की प्रारम्भिक अवस्था में ही क्षयरोग की पहचान करके तथा शीघ्र उचित उपचार देकर, इसकी रोकथाम तथा नियंत्रण किया जा सकता है। परन्तु रोगियों की पहचान और जाँच के लिए चिकित्सकों तथा प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है। क्षयरोग के रोगी के संपर्क में रहने वाले उसके परिवार के सभी सदस्यों तथा अन्य लोग जिन्हें क्षयरोग होने का संदेह हो, सभी की सावधानीपूर्वक जांच होनी चाहिए। इसके लिए ट्यूबरक्यूलिन परीक्षण करने तथा थूक की सूक्ष्मदर्शी द्वारा जाँच के लिए चिकित्सालयों तथा प्रयोगशाला की सुविधाएं भी दी जानी चाहिए।

ग) **बी.सी.जी. का टीका :** जिन्हें क्षयरोग न हो, उन्हें बी.सी.जी. के टीके द्वारा सुरक्षा प्रदान की जा सकती है। बच्चों में क्षयरोग रोकने के लिए यह विशेष रूप से आवश्यक है। कुछ नियंत्रित अध्ययनों द्वारा ज्ञात हुआ है कि बी.सी.जी. का टीका लगने के बाद बारह वर्ष तक के लिए सुरक्षा प्राप्त हो जाती है। भारत में हाल में हुए अध्ययनों से पता चला है कि वयस्कों में क्षयरोग की रोकथाम के लिए यह बहुत सक्षम उपाय नहीं है। भारत में लगभग 3 महीने की आयु तक शिशुओं में बी.सी.जी. का टीका लगाया जाता है। डेयरी में पशुओं में क्षयरोग की समाप्ति उनमें ट्यूबरक्यूलिन परीक्षण तथा क्षयरोग से ग्रस्त पशुओं के वध तथा दूध के पास्चुरीकरण द्वारा की जा सकती है।

क्षयरोग की व्यवस्था : अधिकांश प्राथमिक संक्रमण अलक्षित होते हैं तथा बिना उपचार के ही ठीक हो जाते हैं। बच्चों में जब प्राथमिक संक्रमण का पता लग जाए तो क्षयरोग विरोधी दवाओं जैसे आइसोनायजिड, इथामब्यूटोल (Ethambuitol), स्ट्रेपटोमायसिन (Streptomycin) तथा पैरा अमीनो सैलिसिक्लिक एसिड (Para amino salicyclic acid) दवाओं के मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। इन दवाओं के प्रति प्रतिक्रिया न दिखाने वाले अर्थात् ठीक न होने वाले रोगियों को रिफैमपीसिन (Refampicin) नामक दवा दी जातीहै।

उचित आहार भी रोग के नियंत्रण में सहायक होता है। आजकल रोगी को घर पर ही रखकर उपचार की सलाह दी जाती है। इसके लिए विशेषज्ञों द्वारा बतायी गयी दवाइयां घर पर ही लेने के लिए कहा जाता है। रोगी को अस्पताल में रखने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इससे उपचार का मूल्य काफी कम हो जाता है। रोगी को उपचार को पूरा करने तथा स्थिति में थोड़ा सुधार होने पर उपचार न रोक देने के लिए शिक्षा तथा प्रोत्साहन देना चाहिए।

क्षयरोग का सारांश 'याद रखने योग्य बातों' के अन्तर्गत दिया गया है।

याद रखने योग्य बातें

क्षयरोग

- क्षयरोग माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्यूलोसिस द्वारा होने वाला एक दीर्घकालिक रोग है।
- यह निम्न आय वर्ग के 45 वर्ष से ऊपर की आयु के पुरुषों में अधिक पाया जाता है।
- यह संक्रमित व्यक्ति के थूक की बूंदों द्वारा फैलता है।
- इस रोग की उद्भवन अवधि 4-12 सप्ताह होती है।
- सामाजिक परिस्थितियों के सुधार, प्रारम्भिक अवस्था में ही रोग की पहचान तथा शीघ्र उपचार व बी.सी.जी. के टीके द्वारा रोग को रोका जा सकता है।

बोध प्रश्न 2

1) रिक्त स्थान भरें।

क) क्षयरोग .... के द्वारा होता है।

ख) .... क्षयरोग का प्राथमिक संचिति है।

ग) सबसे अधिक प्रयोग में आने वाला ट्यूबरक्यूलिन परीक्षण .... है।

घ) .... आयु में शिशुओं को बी.सी.जी. का टीका लगवाना चाहिए।

ङ) .... क्षयरोग के रोगियों की पहचान के लिए .... परीक्षण किया जाता है।

15.4 काली खाँसी (Whooping Cough)

काली खाँसी श्वसन तंत्र का अत्यधिक संक्रामक रोग है। चीनी लोग इसे 100 दिन की खाँसी कहते हैं क्योंकि यह रोग लगभग 3 महीने या अधिक समय तक के लिए रहता है। भारत तथा अन्य विकासशील देशों में अभी भी यह एक खतरनाक रोग है। जिसके कारण बहुत से बच्चे मृत्यु की गोद में समा जाते हैं। इससे बहुत सी जटिलताएं भी हो सकती हैं। एक वर्ष से कम की आयु के 4-15 प्रतिशत बच्चे काली खाँसी के कारण मरते हैं।

15.4.1 रोग–यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?

काली खाँसी एक *बोरडेटेला परटूसिस* (Bordetella Pertusis) या *परटूसिया* जीवाणु नामक सूक्ष्मजीव द्वारा होती है। लगभग 5 प्रतिशत में यह *वी.पैरापरटूसिया* नामक जीव से होती है तथा इसके कारण उत्पन्न रोग की तीव्रता कम होती है। कुछ विषाणु भी इसी प्रकार की नैदानिक लक्षणों वाला रोग उत्पन्न कर देते हैं।

यह रोग किन्हें होता है ?

आयु : यह मुख्यतः शिशुओं तथा बच्चों का रोग है। अतः इसे एक बालरोग माना जाता है। भारत जैसे देश में लगभग 50 प्रतिशत रोग 20-30 महीने की आयु में होता है। परन्तु पश्चिमी विकसित देशों में लगभग 50 महीने की आयु में होता है। एक वर्ष से कम आयु के बच्चों में इस रोग के कारण मृत्यु की दर अधिकतम होती है।

लिंग : यह रोग स्त्री तथा पुरुषों को समान रूप से प्रभावित करता है परन्तु लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा मृत्यु दर अधिक होती है।

सामाजिक आर्थिक कारक : कुपोषित बच्चों में यह रोग अधिक गंभीर रूप में होता है क्योंकि ऐसे कमजोर बच्चों में किसी भी रोग के प्रति रोधक क्षमता नहीं होती है। इसी प्रकार निर्धन समुदायों में जहाँ बच्चों को बहुत से संक्रमणों का सामना करना पड़ता है, काली खाँसी एक खतरनाक रोग है। इन समुदायों में जब बच्चे को पहले से ही संक्रमण जैसा अतिसार हुआ होता है तो बच्चा

कमजोर हो जाता है तथा काली खाँसी का संक्रमण गंभीर रूप ले लेता है जिसके कारण मृत्यु भी हो सकती है।

यह रोग किस प्रकार फैलता है ?

श्वसन तंत्र के अन्य संक्रमणों की भाँति यह रोग भी मुख्यतः बिन्दुकों के द्वारा या प्रत्यक्ष संपर्क से फैलता है। जब भी काली खाँसी का रोगी बात करता है, खाँसता है या छींकता है तो इसके जीवाणु वायु में फैल जाते हैं। यदि संवेदनशील व्यक्ति पास में ही हो तो इन जीवाणुयुक्त बिंदुकों के द्वारा सांस के साथ जीवाणु उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। अधिकतर बच्चे खेलते समय अन्य बच्चों से रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही संक्रमण ग्रहण कर लेते हैं।

इसी प्रकार संक्रमित व्यक्ति के श्वसन तंत्र से निकला कोई भी स्राव (जैसे थूक आदि) के सीधे संपर्क में आने से भी रोग फैलता है। संक्रमित व्यक्ति के स्रावों से दूषित वस्तुओं के अप्रत्यक्ष रूप से संपर्क में आने से संक्रमण फैलता है।

उष्मायन अवधि : सामान्यतया संक्रमित व्यक्ति के संपर्क में आने के 7-10 दिन व अधिकतम 3 सप्ताह बाद संक्रमण दिखाई देता है।

संचरणीय अवधि : यह रोग प्रारम्भिक नजला (अर्थात् जब बच्चे को हल्की खाँसी तथा जुकाम हो) अवस्था से ही बहुत अधिक संक्रामक होता है। लगभग तीन सप्ताह की अवधि के बाद संक्रमण की संभावना न के बराबर हो जाती है। उचित प्रतिजैविकों से उपचार शुरू करने के केवल 5-7 दिन बाद तक ही संक्रमण की अवस्था रहती है। दूसरे शब्दों में तुरंत उपचार द्वारा रोग के संक्रमण तथा रोग के फैलने को कम किया जा सकता है।

संवेदनशीलता : प्रत्येक व्यक्ति विशेषकर 7 वर्ष से कम आयु वाला इस रोग के प्रति संवेदनशील होता है। बहुत बार बिना किसी नैदानिक विशिष्ट लक्षणों के ही संक्रमण हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि बहुत से बच्चों में यह रोग कम तीव्र रूप में अर्थात् किसी सामान्य श्वसन संक्रमण के समान होता है।

15.4.2 लक्षण तथा जटिलताएं

हल्की खाँसी तथा नाक बहने (जुकाम) के साथ इस रोग की शुरुआत होती है। उसके बाद खाँसी बहुत अधिक बढ़ जाती है तथा नाक से पतला स्राव निकलता है। सामान्यतया खाँसी के साथ जुकाम जिसमें नाक से स्राव निकलता है, बहुत अधिक गंभीर रूप में नहीं होता है परन्तु काली खाँसी में यह बहुत अधिक होता है। 1-2 सप्ताह बाद खाँसी बहुत तेज धमाके से आती है तथा बच्चा खाँसते समय साँस भी नहीं ले पाता है। दूसरे सप्ताह के अंत तक खाँसी बहुत अधिक हो जाती है। खाँसते समय एक विशेष मुर्गे जैसी या सांस लेते समय उत्पन्न वूप (whoop) जैसी आवाज आती है। इसीलिए इसे कुक्कर खाँसी भी कहते हैं। तेज आंतरायिक खाँसी (rapid spasmodic cough) के बाद दम घुटने का अनुभव होता है तथा उल्टी आती है जिसमें चिपचिपा थूक निकलता है। बहुत छोटे बच्चों अर्थात् शिशुओं व वयस्क में कई बार ऐसा नहीं होता है।

खसनी–फुप्फुस शोथ (broncho pneumonia) तथा तीव्र श्वसनी शोथ (bronchitis) इस रोग में होने वाली मुख्य जटिनलताएं हैं। कभी–कभी तेज प्रवेगी खाँसी के बाद नेत्रश्लेष्मता (conjunctiva) के नीचे या नाक से रक्त बहने लगता है। बच्चे को दौरे पड़ते हैं तथा वह लंबी मूर्छा (coma) में चला जाता है।

बहुत से प्रमाणों से सिद्ध होता है कि काली खाँसी से गंभीर कुपोषण हो जाता है। बच्चों का वजन कम हो जाता है, बढ़ोतरी कम होती है तथा अंत में पोषणहीनताजन्य विसंगति प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण–मरास्मस–हो जाता है जिसमें बच्चे की मांसपेशियां बिल्कुल क्षीण हो जाती हैं। अतः पुनः स्वस्थ होने के समय पोषण संबंधी उचित देखभाल अनिवार्य है।

15.4.3 रोकथाम तथा व्यवस्था

काली खाँसी की रोकथाम के लिए निम्न उपाय अपनाने चाहिए :

क) **सक्रिय प्रतिरक्षीकरण :** अब इस रोग के लिए सक्षम प्रतिरक्षी टीके उपलब्ध हैं। यह प्रतिरक्षी टीका एक बार डेढ़ से दो वर्ष की आयु तथा फिर 5 वर्ष की आयु में लगता है। सामान्यतया यह डिप्थीरिया तथा टिटेनस के टीके के साथ ट्रिपल टीका अर्थात् डी.पी.टी. के नाम से लगाया जाता है।

ख) **शिक्षा :** माता–पिता को इस रोग के खतरों के बारे में शिक्षित करना चाहिए तथा उन्हें अपने शिशुओं का प्रतिरक्षीकरण करवाने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए। भारत सरकार ने दूरदर्शन तथा रेडियो द्वारा लोगों को प्रतिरक्षीकरण के महत्व के बारे में शिक्षित करने के लिए एक बड़ा कार्यक्रम शुरू किया है।

ग) **रोगियों को अलग करना :** काली खाँसी के रोगियों को अलग रखना चाहिए तथा अगर संभव हो तो संवेदनशील बच्चों को (जिन्हें प्रतिरक्षी टीके न लगे हों तथा जो इस रोग से कभी प्रभावित न हुये हों) जिनके घर में किसी को काली खाँसी हुई हो, स्कूल तथा अन्य सामुदायिक स्थानों पर नहीं जाने देना चाहिए। रोगी से अंतिम बार संपर्क में आने के 14 दिन बाद तक की अवधि के लिये यह रोक लगानी चाहिये। इससे उनके द्वारा अन्य लोगों में रोग के फैलने को कम किया जा सकता है।

काली खाँसी की व्यवस्था करना बहुत सरल है। इसके लिए निम्न उपायों को अपनाना चाहिए।

काली खाँसी की व्यवस्था : काली खाँसी के विशिष्ट उपचार के लिए शिशुओं व बच्चों में एथ्रोमायसिन (Erythromycin) या एम्पीसिलिन (Ampicillin) दवाओं का प्रयोग करना चाहिए। 'याद रखने योग्य बातों' के अन्तर्गत काली खाँसी की मुख्य विशेषताओं की सूची बनायी गयी है।

याद रखने योग्य बातें

काली खाँसी

- काली खाँसी श्वसन तंत्र का एक तीव्र व बहुत अधिक संक्रामक रोग है।
- यह बोरडेटेला परटूसिस या परटूसिस जीवाणु द्वारा होता है।
- यह रोग प्रत्यक्ष संपर्क व बिंदुक के द्वारा फैलता है।
- शिशु व बच्चे काली खाँसी के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।
- इस रोग की उष्मायन अवधि 7-10 दिन है।
- रोग के मुख्य लक्षण बहुत अधिक खाँसी के साथ जुकाम होना व नाक से पतला स्राव निकलना है।
- इस रोग में होने वाली मुख्य जटिलताएं ब्रोन्को निमोनिया तथा गंभीर श्वसनी शोथ (bronchitis) है।
- काली खाँसी को रोकने का सबसे सरल व सर्वोत्तम उपाय सक्रिय प्रतिरक्षीकरण है।

बोध प्रश्न 3

1) रिक्त स्थान भरें।

क) काली खाँसी .... द्वारा होती है।

ख) काली खाँसी की उष्मायन अवधि .... है।

ग) काली खाँसी में होने वाली मुख्य जटिलताएं .... तथा .... हैं।

काली खाँसी की रोकथाम के उपायों के बारे में बच्चों के माता-पिता को शिक्षित करने के लिए कार्यक्रम की योजना बनाइए।

....

....

....

....

....

....

....

15.5 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि जीवाणु तथा विषाणु जैसे सूक्ष्मजीव संक्रामक रोग उत्पन्न करते हैं।

खसरा विषाणु द्वारा होता है। तीन वर्ष से कम आयु के बच्चे इसके प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। खसरा रोगी के मूत्र, नाक व गले से निकलने वाले स्राव की बिंदुकों या प्रत्यक्ष संपर्क में आने से फैलता है। रोग के कारक के संपर्क में आने के 10 दिन बाद रोग प्रकट होता है। हल्के ज्वर, खाँसी व नाक बहने के साथ रोग की शुरुआत होती है, उसके बाद मुँह तथा शरीर की त्वचा पर दाने निकलते हैं। खसरे के बाद होने वाली मुख्य जटिलता गंभीर श्वसन संक्रमण जैसे *श्वसनी–फुप्फुसी शोथ* तथा अतिसार है। खसरे की रोकथाम का सरल व सर्वोत्तम उपाय प्रतिरक्षीकरण है।

क्षयरोग माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्यूलोसिस द्वारा होता है। हाल में हुए सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि यह रोग कम आयु की अपेक्षा अधिक आयु वाले व्यक्तियों में अधिक होता है। घटिया या निम्न जीवन परिस्थितियों में रहने वाले लोगों में अधिक पाया जाता है। संक्रमित व्यक्ति की थूक की बिन्दुकों द्वारा इस रोग का संवहन होता है। इस रोग की उष्मायण अवधि 4-12 सप्ताह है। क्षयरोग के रोगी को खाँसी, ज्वर, भार व भूख में कमी, आवाज का भारीपन तथा छाती में दर्द जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। सामाजिक परिस्थितियों को उन्नत बनाकर, प्रारम्भिक अवस्था में ही रोग की पहचान तथा उपचार व बी.सी.जी. के टीके द्वारा इस रोग की रोकथाम की जा सकती है।

काली खाँसी बोरडेटेला परटूसिस से होती है। ये मुख्यतः शिशुओं व बच्चों का रोग है। ये संक्रमण बिन्दुकों द्वारा या प्रत्यक्ष संपर्क से फैलता है। सामान्यतया रोग को प्रकट होने में 7–10 दिन का समय लगता है। हल्की खाँसी व नाक बहने से रोग की शुरुआत होती है तथा बाद में खाँसी बहुत अधिक हो जाती है। काली खाँसी में होने वाली मुख्य जटिलताएं श्वसनी–फुप्फुसी शोथ तथा श्वसनी शोथ है। इस रोग की रोकथाम का सबसे सरल व सर्वोत्तम तरीका सक्रिय प्रतिरक्षीकरण है।

15.6 शब्दावली

तीव्र (Acute)	:	कम अवधि का अचानक होने वाला रोग।
लक्षणहीन	:	किसी नैदानिक लक्षण के बिना।
बोन्क्रोनिमोनिया	:	फेफड़ों का संक्रमण।
नैदानिक लक्षण	:	रोग के नैदानिक लक्षण व चिन्ह जिनके आधार पर रोग की पहचान की जा सके।
घरेलू व्यवस्था	:	घर पर ही रोग का उपचार/दवाइयां डिस्पेंसरी या चिकित्सालय से प्राप्त की जा सकती हैं।

डी.पी.टी. प्रतिरक्षीकरण : डिफ्थीरिया, काली खाँसी तथा टिटेनस के लिए प्रतिरक्षीकरण।

अलक्षित संक्रमण : ऐसा संक्रमण जिसमें पहचानने योग्य लक्षण व चिन्ह न दिखाई दें।

अतः त्वचा परीक्षण : जब परीक्षण सामग्री त्वचा की ऊपरी परत में डाली जाती है।

मोन्टू परीक्षण : क्षयरोग संक्रमण की पहचान के लिए त्वचा में किए जाने वाला परीक्षण।

टयूबरक्यूलीन : टयूबरकल जीवाणु सार जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि व्यक्ति को क्षयरोग है या वह क्षयरोगी के संपर्क में आया है

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1)

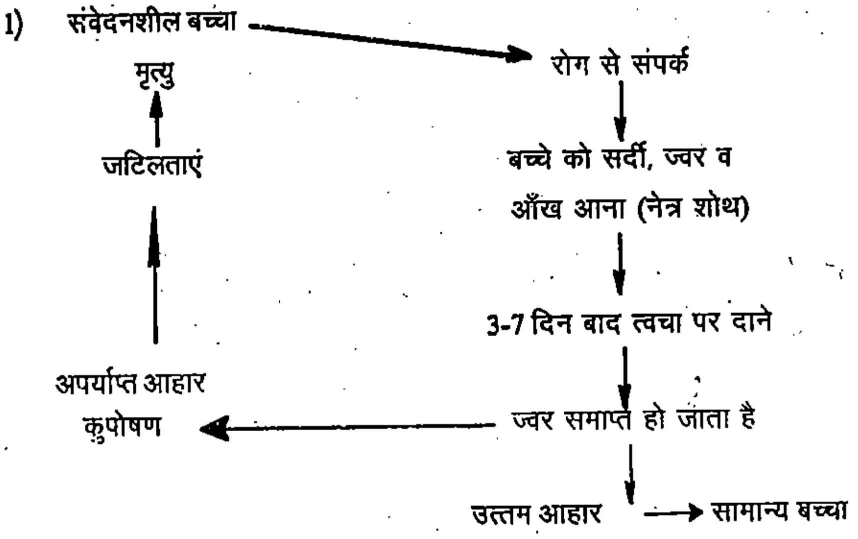

2) स्वयं उत्तर लिखें। खसरे के लिए प्रतिरक्षीकरण को महत्व दें।

बोध प्रश्न 2

1) क) माइकोबैक्टीरियम टयूबरक्यूलोसिस
   ख) मनुष्य
   ग) मोन्टू परीक्षण
   घ) 3 महीने
   च) थूक

बोध प्रश्न 3

1) क) बोरडेटेला परटूसिस
   ख) 7-10 दिन
   ग) ब्रोन्को निमोनिया, गंभीर श्वसनी शोथ

2) इस इकाई के अध्ययन के आधार पर उत्तर दें जिसमें सक्रिय प्रतिरक्षीकरण, रोगियों को अलग करना तथा रोग के खतरों के बारे में जानकारी के विषयों पर अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।

इकाई 16 डिप्थीरिया, टिटेनस तथा पोलियो

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 डिप्थीरिया

16.2.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?

16.2.2 लक्षण व जटिलताएं

16.2.3 रोकथाम व व्यवस्था

16.3 टिटेनस

16.3.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?

16.3.2 लक्षण व जटिलताएं

16.3.3 रोकथाम व व्यवस्था

16.4 पोलियो

16.4.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?

16.4.2 लक्षण व जटिलताएं

16.4.3 रोकथाम व व्यवस्था

16.5 सारांश

16.6 शब्दावली

16.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.1 प्रस्तावना

अभी तक आपने हमारे देश में सबसे अधिक होने वाली तीन संक्रामक बीमारियों – खसरा, क्षयरोग तथा काली खाँसी – के बारे में जाना । आपने देखा होगा कि इन तीन रोगों के कारण बहुत अधिक संख्या में लोग, विशेषकर छोटे बच्चे, बीमार होते हैं तथा उनकी मृत्यु हो जाती है ।

इस इकाई में आप तीन अन्य महत्वपूर्ण रोगों – डिप्थीरिया, टिटेनस तथा पोलियो के बारे में पढ़ेंगे । इस इकाई में इन तीन रोगों के कारणों, लक्षणों / जटिलताओं, रोकथाम / नियंत्रण के उपायों का वर्णन किया गया है ।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- डिप्थीरिया, टिटेनस तथा पोलियो के कारकों तथा फैलने के तरीकों को पहचान सकेंगे
- डिप्थीरिया, टिटेनस तथा पोलियो के लक्षणों तथा जटिलताओं को बता सकेंगे, तथा
- इन रोगों की रोकथाम के उपायों की चर्चा कर सकेंगे तथा लोगों को इन रोगों की रोकथाम के बारे में शिक्षित कर सकेंगे ।

धामक

16.2 डिफ्थीरिया

डिफ्थीरिया भारत में होने वाला सामान्य संक्रामक रोग है। रिपोर्टों से ज्ञात हुआ है कि हमारे देश में डिफ्थीरिया के रोगियों की संख्या बढ़ रही है। दिल्ली के संक्रामक रोग अस्पताल में दाखिले के विश्लेषण से पता चला है कि 5 वर्ष से छोटे, डिफ्थीरिया से पीड़ित बच्चों, में से 13 प्रतिशत की मृत्यु हो जाती है। डिफ्थीरिया के कारण होने वाली मृत्यु की दर काफी अधिक है। दुर्भाग्य से भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देशों में डिफ्थीरिया से प्रभावित रोगियों की असली संख्या जान पाना कठिन है;क्योंकि इस रोग के जैविक प्रमाण आसानी से नहीं मिलते हैं या इस रोग के जैविक परीक्षणों को सरलता से नहीं पहचाना जा सकता है।

16.2.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कैसे और कब फैलता है ?

डिफ्थीरिया कार्नीबैक्टीरियम डिफ्थीरी नामक अगतिशील (non - motile) जीव द्वारा होता है। ये जीव एक विष उत्पन्न करता है। डिफ्थीरिया के जीवाणु तीन प्रकार के होते हैं।

1) *ग्रवीस (Gravis) :* इससे गम्भीर किस्म का डिफ्थीरिया हो जाता है। डिफ्थीरिया के लगभग एक चौथाई रोगी इसी जीवाणु के शिकार होते हैं।
2) *मीटीस (Mitis) :* इससे कम गंभीर किस्म का डिफ्थीरिया होता है तथा यह 65 प्रतिशत डिफ्थीरिया के लिए उत्तरदायी है।
3) *इन्टरमीडियस :* 10 प्रतिशत डिफ्थीरिया इसके कारण होता है।

यह रोग किन कारणों से होता है?

आयु : सामान्यतया: डिफ्थीरिया 15 वर्ष से कम आयु के बच्चों को लगने वाला रोग है। 6 महीने से कम की आयु के बच्चों में आपने शायद ही डिफ्थीरिया के बारे में सुना होगा। डिफ्थीरिया से सबसे अधिक पूर्वस्कूलगामी अर्थात् 1 – 5 वर्ष के बच्चे प्रभावित होते हैं। यह अप्रतिरक्षित वयस्कों में भी हो सकता है।

लिंग : यह रोग दोनों लिंगों को समान रूप से प्रभावित करता है।

मौसम : सभी मौसमों में डिफ्थीरिया हो सकता है परन्तु अगस्त से अक्टूबर के महीनों में डिफ्थीरिया के सबसे अधिक मामले देखने में आए हैं।

यह कैसे फैलता है ?

डिफ्थीरिया, रोगी या अप्रत्यक्ष संक्रमण से ग्रस्त व्यक्ति (जिसमें रोग के नैदानिक चिह्न व लक्षण दिखाई नहीं देते) के संपर्क में आने से फैलता है। संक्रमित बिंदुक (droplets) या मिट्टी से इस रोग का संवहन होता है।

रोगी के स्रावों से दूषित कच्चे दूध पीने से भी यह रोग फैल सकता है। परन्तु भारत में जहाँ उपयोग करने से पहले अधिकतर दूध को उबाला जाता है, वहाँ दूध द्वारा डिफ्थीरिया नहीं फैलता है।

संक्रमित व्यक्ति के घावों के स्राव से दूषित वस्तुओं के उपयोग से भी इस रोग के फैलने की संभावना बहुत कम होती है। कभी-कभी घाव / जख्म की त्वचा में से यह बैक्टीरिया प्रवेश कर जाता है तथा संक्रमण पैदा कर देता है।

उष्मायन अवधि : सामान्यतया 2 से 5 दिन होती है।

संचरणीय अवधि : जब तक रोगी के घावों के स्रावों में जीवित जीवाणु होते हैं तब तक वह किसी भी दूसरे ऐसे व्यक्ति को जिसे डिफ्थीरिया के प्रतिरक्षी टीके न लगे हों, संक्रमित कर सकता है। सामान्यतया इसकी संक्रमण अवधि दो सप्ताह और अधिकतम चार सप्ताह होती है।

संवेदनशीलता : जिन माताओं में इसकी प्रतिरोधक क्षमता होती है उनके शिशुओं को छह महीनों तक यह बीमारी नहीं होती है। खसरे के विपरीत, इस रोग में रोग के उपरांत बहुत लंबे समय तक रहने वाली प्रतिरोधक क्षमता नहीं प्राप्त है। डिफ्थीरिया टाक्सॉइड देने से लंबे समय तक के लिए प्रतिरोधक क्षमता मिल जाती है।

16.2.2 लक्षण तथा जटिलताएं

डिफ्थीरिया एक तीव्र संक्रामक रोग है जो कि नाक, गले तथा टॉन्सिल को प्रभावित करता है । शरीर में प्रवेश स्थल (नाक, गला, टान्सिल इत्यादि) पर ही जीवाणु बहुगणित होते हैं और उस जगह पर घाव बन जाते हैं। इस घाव की पहचान प्रभावित भाग जैसे टॉन्सिल तथा स्वर यंत्र में धब्बे (patches) या भूरे रंग की परत का बनना है । इसमें से गन्दी तथा तीव्र गंध आती है । आसपास के ऊतक लाल हो जाते हैं तथा वहाँ सूजन आ जाती है ।

जब डिफ्थीरिया में टॉन्सिल प्रभावित होते हैं तो गला खराब हो जाता है तथा ग्रैवलासिका ग्रंथियां (cervical lymph gland) सूज जाती है। इसके कारण बैल जैसी गर्दन (bull neck) हो जाती है । शिशुओं और बच्चों में स्वरयंत्र को प्रभावित करने वाला डिफ्थीरिया गंभीर हो सकता है। अधिकतर इसके कारण मृत्यु भी हो जाती है । नाक का डिफ्थीरिया कम गंभीर होता है तथा इसमें एक तरफ की नाक से स्राव निकलता है। जब भी गला खराब हो तो हमेशा यह सोचना चाहिए कि डिफ्थीरिया हो सकता है। अधिकतर ऐसे रोगियों को अधिक गंभीरता से नहीं लिया जाता है तथा उनका उपचार कम गंभीर श्वसन तंत्र संक्रमण समझ कर किया जाता है। ऐसी स्थिति में प्रतिजैविकों से उपचार के कारण रोग की पहचान करने में देर हो जाती है तथा रोगी की जान खतरे में पड़ सकती है।

घाव में जीवाणु की उपस्थिति की जांच करके इस रोग की पहचान की जा सकती है। कई बार सूक्ष्मदर्शी से भी जीवाणु नहीं दिख पाते, ऐसी स्थिति में डिफ्थीरिया का उपचार शुरू करने में देर नहीं करनी चाहिए ।

16.2.3 रोकथाम तथा व्यवस्था

डिफ्थीरिया की रोकथाम कैसे करें ? इसकी रोकथाम के उपाय सरल हैं । नीचे दिया गया विवरण पढ़ें तथा स्वयं ही पता लगाएं :

क) **प्रतिरक्षीकरण :** इस रोग की रोकथाम का सबसे सक्षम तरीका डिफ्थीरिया टाक्सॉइड के प्रतिरक्षी टीके लगाना है । इसके लिए डी.पी.टी. का टीका लगाया जाता है । यह टीका डिफ्थीरिया के अतिरिक्त काली खाँसी तथा टिटेनस के प्रति भी रोधक क्षमता उत्पन्न करता है । इसके 0.5 मि.ली. की मात्रा के तीन टीके अंत: मांसपेशी में 4 से 6 सप्ताह के अंतराल में बच्चे को तीसरे, चौथे तथा पांचवे महीने में लगाए जाते हैं । तीसरे टीके के एक साल बाद बूस्टर टीका लगाया जाता है । 6 वर्ष से अधिक की आयु के बच्चे को केवल डिफ्थीरिया तथा टिटेनस का प्रतिरक्षी टीका जिसे डी. टी. कहते हैं, लगाया जाता है ।

ख) **संवेदनशील मामलों की पहचान :** संवेदनशील व्यक्तियों की पहचान के लिए चिक टैस्ट (Schick Test) नामक परीक्षण किया जाता है । प्रतिरक्षीकरण ठीक प्रकार से हुआ है या नहीं, इस टैस्ट द्वारा यह भी पता लगाया जा सकता है । इसमें चिक टैस्ट आविष (toxin) की 0.2 मि.ली. की मात्रा का इंजेक्शन अगली बाँह की त्वचा में लगाया जाता है । ताप द्वारा निष्क्रिय किया गया आविष का इंजेक्शन दूसरी बाँह (जो नियंत्रण बाँह कहलाती है) में लगाया जाता है। दूसरे शब्दों में ऐसा, व्यक्ति के शरीर में, आविष को अक्रिय करने के लिए पर्याप्त प्रतिआविश (एन्टीटाक्सिन) उत्पन्न करने के लिए किया जाता है, जिससे व्यक्ति बीमारी से लड़ सके । यदि एक दिन के अंदर इंजेक्शन के स्थान पर 1 से 5 से.मी. के व्यास में लाली आ जाये तो टैस्ट सकारात्मक होता है। अर्थात् यह दर्शाता है कि वह व्यक्ति रोग के प्रति संवेदनशील है । जिस बाँह में निष्क्रिय आविष युक्त इंजेक्शन लगाया जाता है उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता है ।

अत: छोटे बच्चों के माता-पिता को, शिक्षा के द्वारा अपने बच्चों को डिफ्थीरिया, काली खाँसी तथा टिटेनस से बचाने के लिए डी.पी.टी के टीके लगवाने के लिए, प्रोत्साहित करना चाहिए । यह तो आप जानते ही हैं कि उपचार से रोकथाम बेहतर है । परन्तु यदि कोई डिफ्थीरिया से ग्रस्त हो तो आप क्या करें । आइए यह जानें।

डिप्थीरिया की व्यवस्था : ऐसे सभी रोगियों को जिन्हें डिप्थीरिया होने की शंका हो, जैव अध्ययन के प्रमाण मिलने से पहले ही एनटीटाक्सिन दे देनी चाहिए। परन्तु प्रतिआविष (एन्टीटाक्सिन) देने से पहले इनके प्रति एलर्जी की जांच कर लेनी चाहिए। एन्टीटाक्सिन को अंतः मांसपेशी इंजेक्शन के द्वारा दिया जाना चाहिए। पैनीसिलिन तथा एथ्रोमाइसिन भी उपयोगी होती हैं। परन्तु इन्हें साथ दिया जाना चाहिए ।

डिप्थीरिया के रोगी को तुरन्त एन्टीटाक्सिन के इंजेक्शन देने की व्यवस्था करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में इन रोगियों को जिले में पास के अस्पताल में ले जाना चाहिए। अस्पताल में प्रायोगिक जांच तथा प्रतिजैविक उपचार की व्यवस्था की जाती है। इसके साथ-साथ परिवार के अन्य सदस्य जो रोगी के निकट संपर्क में रहे हों, उनकी जांच भी करनी चाहिए तथा उनपर भी निगरानी रखनी चाहिए। इसके अतिरिक्त रोगी के परिवार वालों को, जो कि उसके संपर्क में आये हों, डिप्थीरिया प्रतिआविष की 500 – 1000 युनिट्स दे देना उचित रहता है ।

डिप्थीरिया का सारांश, ''याद रखने योग्य बातों'' के अंतर्गत नीचे दिया गया है ।

याद रखने योग्य बातें

डिप्थीरिया

- डिप्थीरिया नाक, गले तथा टॉन्सिल को प्रभावित करने वाला एक तीव्र संक्रामक रोग है।
- डिप्थीरिया कोरीनेबैक्टीरियम डिप्थीरी नामक जीव से होता है।
- डिप्थीरिया मुख्यतः 15 वर्ष से कम आयु के बच्चों को होने वाला रोग है।
- संक्रमित थूक या मल द्वारा डिप्थीरिया का संवहन होता है।
- जब डिप्थीरिया टॉन्सिल को प्रभावित करता है तो गला खराब हो जाता है तथा गले की ग्रैव लसिका ग्रन्थियां सूज जाती हैं।
- इस रोग की रोकथाम का सबसे प्रभावशाली तरीका प्रतिरक्षीकरण है।

बोध प्रश्न 1

1) डिप्थीरिया रोगी के उपचार तथा इसकी रोकथाम के लिए आप क्या कदम उठायेंगे, ऐसे कार्यक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा तैयार कीजिए ।

....

....

....

....

....

16.3 टिटेनस

टिटेनस विश्व के लगभग सभी देशों में होने वाला एक सामान्य रोग है । आम तौर पर इसे लॉक जॉ (Lockjaw) अर्थात् बंदजबड़ा के नाम से भी जाना जाता है । भारत जैसे उष्णकटिबंधीय गर्म देशों में टिटेनस से संक्रमण की दर तथा इसके फलस्वरूप मृत्यु की दर बहुत अधिक है। जन्म के पहले महीने में हुई 5 से 10 प्रतिशत शिशुओं की मृत्यु नवजात शिशुओं को हुई टिटेनस संक्रमण के कारण होती है ।

16.3.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कब और कैसे फैलता है ?

क्लोस्ट्रीडियम टिटेनी बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न विष द्वारा टिटेनस होता है । अवायुजीवी (आक्सीजन की अनुपस्थिति) स्थिति में ये जीव चोट के स्थान पर वृद्धि करता है । ये जीवाणु, बीजाणु (spores) बनाता है जोकि आकार में गोल होते हैं । अतः सूक्ष्मदर्शी से देखने पर यह जीव चोब (drum-stick) की भांति

दिखता है। अवायुजीवी स्थितियों में ये बीजाणु वृद्धि करते है तथा जीवाणु एक शक्तिशाली विष उत्पन्न करता है। टिटेनस जीवाणु, जानवरों जैसे गाय, घोड़े, बकरी आदि की आंतों में पाए जाने वाला सामान्य जीव है। अत: इन जानवरों के मल से दूषण टिटेनस का एक महत्वपूर्ण कारक है।

यह रोग किन्हें होता है ?

आयु : यद्यपि टिटेनस अधिक क्रियाशीलता की सक्रिय आयु में होने वाला रोग है फिर भी ये किसी भी आयु में हो सकता है। सामान्यतया ये 5 से 40 वर्ष तक की आयु में अधिक होता है। क्योंकि इस आयु के लोगों में सभी प्रकार की चोट लगने का भय रहता है, अत: इस कारण से उनमें इस रोग के होने की संभावना अधिक होती है। भारत तथा अन्य गर्म देशों में नवजात शिशुओं में टिटेनस बहुत अधिक होता है, क्योंकि प्रसव के समय सफाई का ध्यान नहीं रखा जाता है विशेषकर अप्रशिक्षित दाई द्वारा बच्चे की नाल काटने के दौरान। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कुछ दाइयां बच्चे की नाल काटने के बाद वहाँ पर गाय का गोबर लगा देती हैं क्योंकि वे सोचती हैं कि इससे घाव भरने में मदद मिलती है। आप समझ सकते हैं कि यह बहुत ही खतरनाक प्रथा है तथा इससे निश्चय ही टिटेनस हो सकता है। अत: इस प्रथा को रोकना चाहिए।

लिंग : टिटेनस अधिकतर स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक होता है। परन्तु जनन आयु (15 से 45 वर्ष) की स्त्रियों में, विशेषकर आपराधिक गर्भपातों तथा प्रसव (ग्रामीण तथा जनजातीय क्षेत्रों में) पुराने तरीकों से किए जाने के कारण टिटेनस होने का खतरा अधिक हो जाता है।

सामाजिक आर्थिक कारक : यह रोग शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक होता है। खेतिहर मजदूरों में यह रोग होने की संभावना अधिक होती है क्योंकि वे मिट्टी तथा जानवरों के संपर्क में अधिक आते हैं। गरीबी, अशिक्षा तथा इसके कारण अस्वच्छ आदतें, जैसे घाव को साफ किए बिना बारीक रेत लगाने, के कारण भी निम्न आय वर्ग में टिटेनस हो सकता है।

यह कैसे फैलता है ?

अधिकतर टिटेनस चोट लगने के बाद होता है। चोट छोटी-सी भी हो सकती है जो कि नज़र में न आए। ऐसा अधिकतर मजदूरों में होता है। टिटेनस के बीजाणु द्वारा घाव के दूषित होने के कारण संक्रमण हो जाता है। ये दूषण मिट्टी, धूल या जानवर के मल के कारण हो सकता है। टिटेनस के जीवाणु मिट्टी में पाये जाते हैं।

नवजात शिशुओं में यह भ्रूण नाल (umbilical cord) के संक्रमण के कारण होता है, विशेषकर तब जब अप्रशिक्षित दाई नाल काटते समय अस्वच्छ तरीकों का प्रयोग करती है। शल्य-चिकित्सा के बाद भी टिटेनस हो सकता है। त्वचा काटने के लिए अपूर्ण रूप से कीटाणुरहित सामग्री या औजार प्रयोग करने के कारण ऐसा होता है। घाव की पट्टी करने के लिए प्रयोग की गयी पट्टी तथा टूटी हड्डियों को जोड़ने के लिए प्रयोग किए गए पलास्टर आफ पेरिस के द्वारा भी टिटेनस के बीजाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

उष्मायन अवधि : सामान्यतया: उष्मायन अवधि 4 से 21 दिन की होती है। यह सब घाव की प्रकृति तथा गंभीरता पर निर्भर करता है। औसतन ये 10 दिन की होती है। अधिकतर घाव होने के 14 दिन के भीतर ही टिटेनस हो जाता है परन्तु कभी-कभी अधिक समय भी लग सकता है।

संचरणीय अवधि : यह रोग एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में नहीं फैलता है।

संवेदनशीलता : टिटेनस संक्रमण सभी को हो सकता है। एक बार टिटेनस होने के बाद भविष्य के लिए निश्चित सुरक्षा प्राप्त नहीं होती है। यह पुन: हो सकता है। परन्तु टिटेनस टाक्साइड के टीके से लंबे समय तक के लिए इस रोग के प्रति रोधक क्षमता प्राप्त हो जाती है।

16.3.2 लक्षण तथा जटिलताएं

टिटेनस एक तीव्र रोग है जिसकी मुख्य पहचान जबड़े तथा गर्दन की मांसपेशियों का दर्द के साथ सिकुड़ना है। इसके बाद पेट तथा रीढ़ की हड्डी की मांसपेशियां भी सिकुड़ जाती हैं (चित्र 16.1)। टिटेनस का पहला लक्षण उदर की मांसपेशियों का सख्त होना है। कई बार केवल चोट के पास के स्थान पर ही अकड़न आती है। प्रयोगशाला की जांच द्वारा इस रोग की पहचान करना कठिन है, क्योंकि संक्रमण के स्थान पर कारक जीव बहुत कम मिलता है।

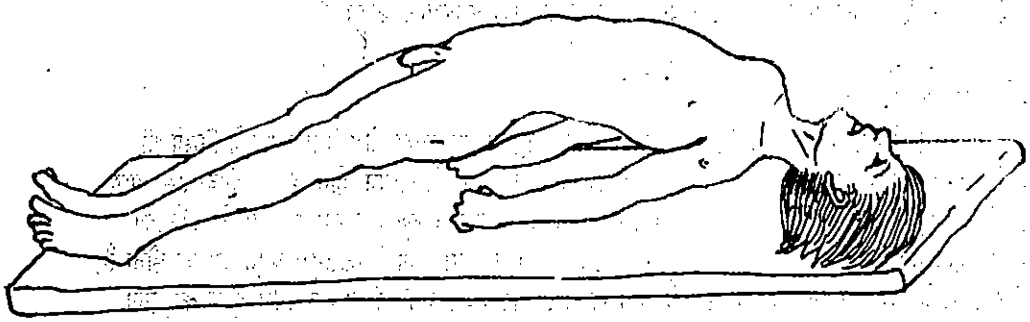

चित्र 16.1: धड़ व रीढ़ की हड्डी की मांसपेशियों का अकड़ना

टिटेनस की घातक दर बहुत अधिक है । इस रोग से लगभग 40 से 80 प्रतिशत रोगियों की मृत्यु हो जाती है । अत: आप समझ ही गए होंगे कि इसकी रोकथाम करना कितना आवश्यक है ।

16.3.3 रोकथाम व व्यवस्था

नीचे टिटेनस के रोकथाम के उपायों का वर्णन दिया गया है ।

क) **सक्रिय प्रतिरक्षीकरण :** टिटेनस की रोकथाम का सर्वोत्तम उपाय टिटेनस टाक्साइड के प्रतिरक्षी टीके नियमित रूप से लगवाना है । टिटेनस टाक्साइड किसी भी आयु में लगाया जा सकता है । ऐसे मजदूर जो मिट्टी या घरेलू जानवरों के संपर्क में आते हैं या जिन्हें चोट लगने की अधिक संभावना होती है, जैसे कि सेना या पुलिस कर्मी, उन्हें टिटेनस का प्रतिरक्षी टीका अवश्य लगाया जाना चाहिए। विभिन्न व्यक्तियों को निम्न आधार पर टीके लगाये जाने चाहिए ।

- *बच्चों के लिए :* बच्चे को सर्वप्रथम टिटेनस टाक्साइड का पहला टीका, डी.पी.टी. के रूप में 3 महीने की आयु पर लगाया जाता है । उसके 6 सप्ताह के बाद दूसरा तथा फिर 6 सप्ताह के बाद तीसरा टीका लगाया जाता है। इस प्रकार कुल तीन टीके 6 सप्ताह के अंतर पर लगाए जाते हैं । तीसरे टीके के एक वर्ष बाद बूस्टर टीका लगाया जाता है । इसके उपरांत 10 वर्ष बाद पुन: बूस्टर टीका लगाने की सलाह दी जाती है ।

- *गर्भवती स्त्रियों के लिए :* नवजात शिशु को टिटेनस से बचाने के लिए सभी गर्भवती स्त्रियों को टिटेनस का टीका लगाया जाना चाहिए ।

  इसके लिए गर्भवती महिलाओं को प्रथम गर्भ के दौरान पांचवे, छठे तथा नवें महीने में टिटेनस टाक्साइड के तीन टीके तथा इसके बाद के गर्भ में एक टीका लगाया जाता है।

- *घायल व्यक्ति* को एन्टीटिटेनस सीरम का टीका लगाकर अस्थायी सुरक्षा प्रदान की जाती है। यह केवल चिकित्सा विशेषज्ञ की निगरानी में ही लगाना चाहिए । टिटेनस विरोधी मानव इम्यूनोग्लोबूलिन को टिटेनस से सुरक्षा प्रदान करने का सर्वोत्तम उपाय समझा जाता है ।

ख) **शिक्षा :** मजदूरों को इस रोग के संवहन के बारे में शिक्षित करना बहुत महत्वपूर्ण है, जिससे कि चोट लगने के उपरांत वे रोकथाम के उपाए कर सकें जैसे टिटेनस का टीका लगवा सकें । चोट के बाद टिटेनस का टीका लगवाने का महत्व उन्हें समझाना चाहिए । इसके अतिरिक्त सफाई के बारे में उन्हें बताना चाहिए । वे चोट के बाद जख्म को मिट्टी, पशुमल के संपर्क में न आने दें तथा जख्म को स्वच्छ रखें । ऐसा करने से रोग को होने से रोका जा सकता है। नवजात शिशुओं में टिटेनस की रोकथाम के लिए प्रसव कराने वाली दाइयों को शिशुनाल काटने के उचित तरीकों के बारे में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए । उन्हें जीवाणुरहित ब्लेड का उपयोग करने, प्रसव कराने से पहले साबुन से अच्छी तरह हाथ धोने तथा कटी हुई शिशुनाल पर गोबर आदि न लगाने के बारे में बताना चाहिए ।

टिटेनस की व्यवस्था : रोगियों को मानव इम्यूनोग्लोबूलिन की काफी अधिक मात्रा का टीका अंत: मांसपेशियों में लगाया जाता है। पर्याप्त सावधानियों के साथ टिटेनस टाक्साइड का टीका अंत: शिरा में भी लगाया जा सकता है। याद रखिए कि एन्टीटाक्सिन देने से गंभीर एलर्जी हो सकती है, जिसके कारण मृत्यु भी हो सकती है। अत: एलर्जी की क्रियाओं के बारे में परीक्षण करने के उपरांत ही यह देने चाहिए। पेनिसिलिन का अंत:मांसपेशीय टीका लगवाने की सलाह भी दी जाती है। अधिक गंभीर रोगियों को मशीनों के द्वारा कृत्रिम श्वसन करवाया जाता है।

आइए टिटेनस की मुख्य बातें जानने के लिए "याद रखने योग्य बातों" को पढ़ें।

याद रखने योग्य बातें

टिटेनस

- क्लास्ट्रीडियम टिटेनस जीवाणु द्वारा उत्पन्न विष से टिटेनस होता है।
- टिटेनस 5 से 40 वर्ष की आयु में होता है।
- इसकी उष्मायन अवधि 4 से 21 दिन है।
- अधिकतर टिटेनस चोट लगने के बाद होता है।
- उदर मांसपेशियों का सख्त होना या अकड़ना टिटेनस का पहला लक्षण है।
- टिटेनस की रोकथाम का सर्वोत्तम उपाय प्रतिरक्षीकरण है।

बोध प्रश्न 2

1) क्रम से उन सभी साधनों को बताइए जिनके द्वारा खेतों में काम करने वाले मजदूर को टिटेनस हो सकता है।

क)..

ख)..

ग)..

2) मजदूरों में टिटेनस की रोकथाम के लिए क्या कदम उठाने चाहिए?

क)..

ख)..

ग)..

16.4 पोलियो

पोलियो एक तीव्र संक्रामक रोग है। यह मुख्यत: पाचन तंत्र में होने वाला संक्रमण है परन्तु इसके कारण केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (Central nervous system) भी प्रभावित होता है जिसके कारण पक्षाघात या लकवा हो सकता है। आपने बचपन में पोलियो होने के कारण अपंग हुए बहुत से लोगों को देखा होगा। पोलियो के लिए प्रतिरक्षी टीकों का विकास होने के कारण विकसित देशों में पोलियो शायद ही देखने को मिलता है। इन देशों में पोलियो की घटनाएं शून्य के बराबर हैं। परन्तु भारत में अभी भी पोलियो की हजारों घटनाएं सामने आती हैं।

16.4.1 रोग – किन कारणों से होता है? किन्हें होता है? कब और कैसे फैलता है?

पोलियो एक विषाणु द्वारा होने वाला रोग है। इस विषाणु को केवल अतिआधुनिक विशिष्ट सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जा सकता है। पोलियो विषाणु तीन प्रकार का होता है – टाइप 1, टाइप 2 तथा टाइप 3। पोलियो की महामारी के समय तथा अन्यथा भी पोलियो का टाइप 1 विषाणु अधिक पाया जाता है। प्रशीतन तथा सूखने की क्रिया से पोलियो विषाणु अप्रभावित रहता है।

यह रोग किन्हें होता है ?

आयु : भारत में यह मुख्यत: बाल्यावस्था तथा शैशवास्था का रोग है । इसकी लगभग 95 प्रतिशत घटनाएं 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों में पायी जाती हैं तथा उनमें से 80 प्रतिशत तीन वर्ष से कम आयु के बच्चों में देखने को मिलती है । सर्वाधिक संवेदनशील आयु 6 महीने से 3 वर्ष है । शेष 25 प्रतिशत घटनाएं 15 वर्ष तथा उससे अधिक की आयु में पायी जाती हैं।

लिंग : स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष इससे अधिक प्रभावित होते हैं । स्त्रियों व पुरुषों में पोलियो की घटनाएं 1 : 3 अनुपात में पायी जाती हैं ।

चोट : सामान्यत: पक्षाघात वाला पोलियो किसी चोट या सदमें के कारण होता है, उदाहरण के लिए, इंजेक्शन, हड्डी टूटना तथा शल्यचिकित्सा, जैसे टान्सिल का आपरेशन आदि ।

मौसम : मौसम का पोलियो पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। पोलियो की लगभग दो-तिहाई घटनाएं जून से सितम्बर तक के महीनों के बीच होती है । लगभग सम्पूर्ण देश में यह समय मानसून का समय होता है।

जीवनस्तर : अन्य रोगों के विपरीत, पक्षाघात करने वाला पोलियो उच्च जीवन स्तर से जुड़ा हुआ है । यह देखने में आया है कि जिन क्षेत्रों में शिशु की मृत्यु दर कम हुई है उन क्षेत्रों में इस रोग की घटनाएं बढ़ी हैं।

यह रोग कैसे फैलता है ?

असंक्रमित व्यक्ति का संक्रमित व्यक्ति के गले में से निकले स्राव या मल के प्रत्यक्ष सपर्क में आना इस रोग के संवहन का सामान्य तरीका है । कभी-कभी दूध भी इस विषाणु का वाहक हो सकता है । जानपदिक रोग विज्ञानिय (Epidemiologic) प्रमाणों से ज्ञात हुआ है कि मुँह से मुँह (गले के स्रावों के) द्वारा इस रोग का फैलना अधिक महत्वपूर्ण है परन्तु जब सफाई का स्तर अच्छा होता है तो यह मल द्वारा (गुदा-मुखीय मार्ग से) फैलता है ।

उष्मायन अवधि : संक्रमण के संपर्क में आने के सामान्यत: 7 से 12 दिन के भीतर संक्रमण विकसित हो जाता है । परन्तु यह अवधि 3 दिन से 2 सप्ताह के बीच कभी भी हो सकती है ।

संचरणीय अवधि : संक्रमण होने के 36 घंटे बाद पोलियो विषाणु गले के स्राव में तथा 72 घंटे बाद मल में देखा जा सकता है । ऐसा नैदानिक रूप से दिखाई देने वाले तथा नैदानिक रूप से न दिखाई देने वाले दोनों प्रकार के संक्रमित लोगों में होता है । गले में यह विषाणु एक सप्ताह तक तथा मल में 3 से 6 सप्ताह या अधिक समय तक जीवित रह सकता है। लक्षण दिखाई देने से 10 दिन पहले तथा दिखाई देने के 10 दिन बाद तक पोलियो के रोगी बहुत अधिक संक्रामक होते हैं ।

संवेदनशीलता : सामान्यतया सभी व्यक्ति पोलियो के प्रति संवेदनशील होते हैं । परन्तु सौभाग्य से संक्रमित व्यक्तियों में से केवल कुछ ही को पक्षाघात होता है । एक बार होने के बाद पोलियो दूसरी बार कम ही होता है । दो स्थितियों अर्थात् नैदानिक रूप से पहचानने योग्य संक्रमण या अलक्षित संक्रमण के बाद इस रोग के प्रति लंबे समय तक के लिए उस रोग की विशिष्ट रोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है । अर्थात् यदि कोई व्यक्ति टाइप 1 प्रकार के पोलियो विषाणु से संक्रमित हुआ है तो उसमें टाइप 1 के ही पोलियो विषाणु के प्रति पुन: संक्रमण के लिए रोधक क्षमता उत्पन्न हुई है । वह टाइप 2 तथा टाइप 3 के विषाणु के संक्रमण से ग्रस्त हो सकते हैं । जिन माताओं में पोलिओ के प्रति रोधक क्षमता होती है उनके शिशुओं को माताओं से निष्क्रिय रोधक क्षमता प्राप्त हो जाती है परन्तु यह अस्थायी होती है । गर्भवती स्त्रियां अन्य स्त्रियों की तुलना में पक्षाघात करने वाले पोलियो के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं ।

16.4.2 लक्षण व जटिलताएं

पोलियो एक विषाणु से पैदा होने वाला तीव्र रोग है । इसकी उग्रता भिन्न होती है जिसमें एक तरफ संक्रमण के कोई लक्षण दिखाई नहीं देते लेकिन दूसरी ओर पक्षाघात भी हो सकता है । बुखार, सरदर्द, थकान, जठरांत्र मार्ग (gastrointestinal tract) में खराबी और गर्दन व पीठ में अकड़न आदि इसके लक्षण हैं । इस रोग के कारण पक्षाघात भी हो सकता है । पोलियो विषाणु शरीर में भोजन-नाल से प्रवेश करते हैं और पहले ग्रसनी (pharyxn) फिर छोटी आंत में बढ़ते जाते है । यह रक्तधारा द्वारा मुख्य तंत्रिका-तन्त्र में भी प्रवेश कर सकते है जिससे खासतौर पर निचले अंगों का पक्षाघात हो सकता है । कभी-कभी श्वसन व निगलने की मांसपेशियों का भी पक्षाघात हो सकता है जिससे रोगी की मृत्यु भी हो सकती है ।

आप के लिए यह याद रखना ज़रूरी है कि नैदानिक मामलों की अपेक्षा अलक्षित संक्रमण के मामलों की संख्या सौ गुणा हो सकती है।

पोलियो विषाणु को आधुनिक जांचों के आधार पर अलग किया जा सकता है जैसे मल या गले के स्रावों के नमूनों से संक्रमण के आरंभ में ऊतक संवर्धन द्वारा लेकिन छोटे अस्पताल जैसे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, तालुक या जिले के अस्पतालों में यह सुविधाएं उपलब्ध नहीं होती। ऐसी परिस्थितियों में रोग विषयक निदानों पर ही आपको निर्भर करना पड़ेगा।

पोलियो की जटिलताएं : यदि श्वसन माँसपेशियों का लकवा मार जाए तो बच्चे की मृत्यु हो सकती है और अगर निगलन की माँसपेशियों का लकवा मार जाए तो भी जीवन को खतरा हो सकता है। अपक्षाघात पोलियो (Non paralysing polio) की स्थिति में अपूतिक तनिका-शोथ (aseptic meningitis) हो सकता है। लकवा से पीड़ित करीब 2 - 10 प्रतिशत मामलों में मृत्यु हो जाती है।

16.4.3 रोकथाम और व्यवस्था

पोलियो की रोकथाम के अन्तर्गत निम्नलिखित उपाय आते हैं :

क) **सक्रिय प्रतिरक्षीकरण :** टीकों की खोज के कारण पोलियो की रोकथाम आज संभव है। सभी संवेदनशील व्यक्तियों में तीनों प्रकार के पोलियो विषाणुओं से बचाव का सबसे सरल तरीका सक्रिय प्रतिरक्षीकरण है। वे सभी बच्चे जिन्हें यह रोग होने का अत्यधिक खतरा है, उनका प्रतिरक्षीकरण अवश्य हो जाना चाहिए।

प्रतिरक्षीकरण के दो तरीके उपलब्ध हैं। ये हैं :

क) मुंह द्वारा दिए जाने वाला पोलियो का सक्रिय टीका (live polio vaccine), और

ख) पोलियो का निष्क्रिय टीका (killed polio vaccine)

आइए अब प्रत्येक के बारे में चर्चा करें :

– *मुंह द्वारा दिए जाने वाला पोलियो का सक्रिय टीका :* इस टीके को बच्चे के मुंह में डाला जाता है, इसे सेबिन टीके (Sabin Vaccine) के नाम से जाना जाता है। इसे तीनों प्रकार के पोलियो विषाणुओं के क्षीणीकृत (कम उग्रता वाले) विभेद से तैयार किया जाता है (त्रिसंयोजक टीका)। दूसरे शब्दों में यह उस विषाणु से तैयार किया जाता है जिसमें रोगोत्पादकता अपेक्षाकृत कम होती है। प्रारंभिक प्रतिरक्षीकरण में तीन खुराकें दी जाती हैं जिन्हें 4 से 8 सप्ताहों के अंतराल पर बच्चे को मुंह द्वारा पिलाया जाता है। खुराकों के बीच में आठ सप्ताहों का अंतर ठीक रहता है। ज्यादातर पहली खुराक को तीन महीने की आयु पर उस समय दिया जाता है जब डी.पी.टी. की भी पहली खुराक दी जाती है। तीसरी खुराक के लगभग एक वर्ष बाद बूस्टर दिया जाता है।

  मुंह द्वारा दिए जाने वाला पोलियो वेक्सिन (ओ.पी.वी.) का लाभ यह है कि इससे आन्त्र प्रतिरक्षा (Intestinal immunity) होती है और यह पोलियो विषाणु के उग्र विभेदों द्वारा बाद में पोषण-नाल मार्ग में होने वाले संक्रमण से भी प्रतिरक्षा करता है। यह टीका अपेक्षाकृत कम महंगा है। महामारी की रोकथाम में यह बहुत उपयोगी सिद्ध होता है क्योंकि यह रोगप्रतिकारकों (antibodies) की उत्पत्ति करता है ताकि जिन्होंने यह टीका लगवाया हुआ हो, उनमें से इस विषाणु को खत्म किया जा सके।

  निष्क्रिय टीका (killed vaccine) : यह अक्रियाशील टीका है जिसे इन्जेक्शन के रूप में दिया जाता है। इसमें भी तीनों प्रकार के पोलियो विषाणु पाए जाते हैं। यह भी सुरक्षा प्रदान करता है लेकिन बाद के आहार-नाल संक्रमण में अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होता। दूसरे शब्दों में इससे किसी स्थानीय या आन्त्र प्रतिरक्षा को बढ़ावा नहीं मिलता। अत: मंद पोलियो विषाणु प्रतिरक्षीत व्यक्तियों के आन्त्र मार्ग में इनका बहुगुणन होता रहता है जिसके फलस्वरूप यह अन्य व्यक्तियों में भी संक्रमण का स्रोत बन सकते हैं।

  प्राथमिक प्रतिरक्षीकरण में चार इन्जेक्शनों की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से पहले तीन 4 से 6 सप्ताहों के अंतराल पर दिए जाते हैं और चौथा तीसरे के बाद 6 - 12 महीनों पर दिया जाता है। तीन महीने की आयु पर पहली खुराक दी जा सकती है। निष्क्रिय टीके की

सबसे बड़ी हानि विशेषकर पोलियो की महामारी के समय यह है कि महामारी के समय इसे इन्जेक्शन के रूप में नहीं दिया जा सकता क्योंकि इससे पक्षाघात होने की अधिक आशंका हो जाती है और मुंह के द्वारा दिए जाने वाले टीके (Oral polio vaccine) की तुलना में इससे प्रतिरक्षा भी ज़्यादा नहीं होती।

ख) **शिक्षा :** समुदाय को इस रोग से होने वाले खतरों के बारे में, यह रोग कैसे फैलता है और प्रतिरक्षीकरण के लाभों के बारे में पर्याप्त शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए ।

पोलियो की व्यवस्था : पोलियो के लिए कोई विशिष्ट उपचार उपलब्ध नहीं है । बहुत अधिक तीव्र रूप में रोग होने पर पक्षाघात की तरफ ध्यान देना चाहिए । किसी-किसी रोगी को श्वसन में सहायता की आवश्यकता हो सकती है ।

पोलियो की मुख्य बातें "याद रखने योग्य बातों" के अंतर्गत बताई गयी है। उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ें ।

याद रखने योग्य बातें

पोलियो

- पोलियो विषाणु द्वारा होने वाला एक तीव्र संक्रामक रोग है।
- यह संक्रमित व्यक्ति के गले के स्रावों या मल के प्रत्यक्ष सम्पर्क से फैलता है।
- इसकी उष्मायन अवधि 7 से 12 दिन होती है।
- पोलियो के मुख्य लक्षण ज्वर, पाचन तंत्र में विकार, आलस्य, गर्दन व पीठ में अकड़न तथा साथ में पक्षाघात / लकवा है ।
- इसकी रोकथाम का सबसे आसान तरीका प्रतिरक्षीकरण है।

बोध प्रश्न 3

1) पोलियो संक्रमण के प्रारम्भ होने से पक्षाघात होने तक की अवस्थाओं का प्रवाह चार्ट बनाइए ।

2) निम्न का मिलान करें।

क)	भारत में पोलियो से सबसे अधिक प्रभावित होने वाली आयु	1)	15 वर्ष से अधिक की आयु
ख)	पक्षाघातिक पोलियो	2)	6 महीने से 3 वर्ष
ग)	पोलियो प्रारम्भ होने की आयु	3)	कम शिशु मृत्युदर वाले क्षेत्र

3) सही या गलत बताइए । गलत कथनों को सही करके लिखिए ।

क) पक्षाघातिक पोलियो का इंजैक्शन या टान्सिल के आपरेशन जैसे सदमों से कोई संबंध नहीं है । (सही / गलत)

....

ख) विकसित देशों में जहाँ शिशु मृत्यु दर कम है, असुरक्षित बच्चों में पक्षाघातीय पोलियो अधिक होता है।
(सही / गलत)

....

ग) भारत में 5 से 40 वर्ष की आयु के व्यक्ति पोलियो के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील होते हैं।
(सही / गलत)

....

....

16.5 सारांश

इस इकाई में आपने तीन संक्रामक रोगा—डिप्थीरिया, टिटेनस तथा पोलियो के बारे में पढ़ा।

डिप्थीरिया कार्नीबैक्टीरियम डिप्थीरिया द्वारा होने वाला एक सामान्य संक्रामक रोग है। यह मुख्यत: 15 वर्ष से कम आयु के बच्चों को होने वाला रोग है। यह आम तौर पर संक्रमित थूक या धूल द्वारा फैलता है। इसकी उष्मायन अवधि 2 से 5 दिन की होती है। डिप्थीरिया नाक, गले तथा टान्सिल को प्रभावित करता है तथा इसमें ग्रैव लसिका ग्रंथियां सूज जाती हैं।

टिटेनस जिसे लॉकजॉ (बंद जबड़े) के नाम से जाना जाता है, एक अन्य तीव्र रोग है जिसकी मुख्य पहचान दर्द के साथ मांसपेशियों का सिकुड़ना व अकड़ (सख्त हो) जाना है। यह रोग टिटेनस जीवाणु द्वारा उत्पन्न (आविष के कारण होता है। यह क्रियाशील आयु अर्थात् 5 से 40 वर्ष) के उन व्यक्तियों को होता है जिन्हें चोट लगने की संभावना होती है। अधिकतर टिटेनस चोट लगने या भ्रूण नाल के द्वारा या शल्यचिकित्सा के उपरांत संक्रमण होने के कारण होता है। बच्चों तथा गर्भवती स्त्रियों का प्रतिरक्षीकरण व लोगों को शिक्षित करना इसकी रोकथाम के सबसे उपयुक्त उपाय हैं।

पोलियो एक तीव्र विषाणु संक्रमण है जोकि मुख्यत: बच्चों व शिशुओं को प्रभावित करता है। इसके कारण पक्षाघात हो सकता है तथा कभी-कभी मृत्यु भी हो सकती है। संक्रमित व्यक्ति के स्रावों के प्रत्यक्ष संपर्क में आने से रोग फैलता है। इसकी रोकथाम का सबसे सरल तरीका पोलियो के प्रतिरक्षी टीके लगवाना है।

16.6 शब्दावली

रोग की घटनाएं : किसी एक निश्चित समय में किसी समुदाय में रोग से ग्रसित रोगियों की संख्या।

चिक परीक्षण : व्यक्ति की डिप्थीरिया के प्रति संवेदनशीलता की जांच करने का परीक्षण

मांसपेशीय खिंचाव : मांसपेशीयों का संकुचन।

अवायुजीवी परिस्थितियां : आक्सीजन की अनुपस्थिति।

दाई : प्रसव के समय सहायता करने वाली परंपरागत दाई।

16.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) डिप्थीरिया के उपचार व रोकथाम के बारे में चर्चा करते समय आप निम्न को भी ध्यान में रखें।
   - क) प्रतिरक्षीकरण
   - ख) संवेदनशील व्यक्तियों की पहचान
   - ग) रोगियों को प्रति आविष के टीके

बोध प्रश्न 2

1) क) खेती-बाड़ी करते समय खेतिहर मजदूर लगातार मिट्टी के संपर्क में आते हैं। टिटेनस के जीवाणु मिट्टी में पाए जाते हैं।

   ख) खेतिहर मजदूरों में चोट लगने जैसे कटने या घाव होने का खतरा अधिक होता है। कार्यालय जाने वाले व्यक्ति को व्यवसाय में ऐसे खतरों का सामना नहीं करना पड़ता है।

   ग) पशुमल से दूषण टिटेनस का एक प्रमुख कारण है। खेतों में गोबर का प्रयोग खाद के रूप में बहुत अधिक किया जाता है। जब खेतिहर मजदूर इसको छूता है तो उसके संक्रमित होने का खतरा रहता है।

2) क) मजदूर को यह बताना चाहिए कि मिट्टी में काम करने के कारण उसको यह रोग हो सकता है। रोग कैसे होता है ? उन्हें यह भी बताया जाना चाहिए।

   ख) उन्हें टिटेनस टाक्साइड के प्रतिरक्षी टीके लगवाने का महत्व समझाना चाहिए।

   ग) सभी मजदूरों के लिये टिटेनस के प्रतिरक्षी टीकों की व्यवस्था करनी चाहिए।

बोध प्रश्न 3

1) ज्वर ⟶ सिर दर्द ⟶ पाचन तंत्र में विकार ⟶ आलस, गले व पीठ की अकड़न ⟶ पक्षाघात

2) (क), 3; (ख), 2; (ग), 1,

3) क) गलत; उनके बीच एक सम्बन्ध है।

   ख) सही

   ग) गलत; भारत में सर्वाधिक संवेदनशील आयु वर्ग 5 वर्ष से कम है।

इकाई 17 मलेरिया

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना

17.2 मलेरिया

17.2.1 रोग – यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कैसे और कब फैलता है ?

17.2.2 लक्षण तथा जटिलताएं

17.2.3 रोकथाम व व्यवस्था

17.3 सारांश

17.4 शब्दावली

17.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.1 प्रस्तावना

खंड 5 की पहली दो इकाइयों में आपने कुछ सामान्य संक्रामक रोगों जैसे–खसरा, क्षयरोग, पोलियो, काली खाँसी, डिप्थीरिया तथा टिटेनस के बारे में जाना । आपने देखा कि सभी रोगों की रोकथाम की जा सकती है तथा इन रोगों के नियंत्रण के लिए सरकार ने सक्रिय प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम (Active immunization programme) शुरू किया है । इस इकाई में आप मच्छर द्वारा फैलने वाले एक संक्रामक रोग – मलेरिया के बारे में पढ़ेंगे । मलेरिया का क्या परिणाम होता है ? क्या इसकी रोकथाम की जा सकती है ? इस इकाई में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण विषयों की चर्चा की गई है । आप जानते ही होंगे कि अन्य संक्रामक रोगों की तरह मलेरिया की रोकथाम के लिए कोई प्रतिरक्षी कार्यक्रम नहीं शुरू किया गया है । अत: मलेरिया की रोकथाम / नियंत्रण कैसे करें ? यह जानने के लिए आप इस इकाई को पढ़ें ।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- मलेरिया के कारण तथा फैलने के तरीकों को पहचान सकेंगे
- मलेरिया के लक्षणों तथा जटिलताओं की सूची बना सकेंगे, तथा
- मलेरिया की व्यवस्था तथा रोकथाम का वर्णन कर सकेंगे ।

17.2 मलेरिया

मलेरिया के बारे में लगभग 90 वर्ष पहले पता चला जब *सर रोनाल्ड रोस* ने यह बताया कि मलेरिया कैसे फैलता है ? शायद आप जानते ही होगें कि मलेरिया एक संक्रामक रोग है, जोकि प्लैज़मोडियम वंश के परजीवी प्रोटोजोआ की श्वेत रक्त कणिकाओं में उपस्थिति के कारण होता है । यह रोग मादा ऐनोफेलीज (Anopheles) मच्छर के द्वारा फैलता है । ये मुख्यत: उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है।

सन् 1950 से भारत में मलेरिया की रोकथाम के लिए अथक प्रयास किए गए हैं । साठ के दशक में, मलेरिया की रोकथाम में हुई सफलता में आज गतिरोध हुआ है । सन 1958 में भारत में मलेरिया की रोगियों की संख्या 750 लाख से घट कर 20 लाख रह गयी परन्तु 1975 में फिर से 65 लाख मलेरिया के रोगी पाए गए । इस रोग के रोगियों की संख्या में लगातार वृद्धि के कारण स्वास्थ्य प्रशासकों तथा योजना बनाने वालों का ध्यान मलेरिया की तरफ गया है ।

17.2.1 रोग - यह किन कारणों से होता है ? किन्हें होता है ? कैसे और कब फैलता है ?

यह रोग प्लैज्मोडियम (Plasmodium) नामक परजीवी द्वारा होता है तथा ऐनोफलीज मच्छर से फैलता है।

यह रोग किन्हें होता है ?

विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत नीचे दिए गए वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि मलेरिया किन-किन को हो सकता है ।

आयु : मलेरिया सभी आयु वर्ग के व्यक्तियों को प्रभावित करता है परन्तु नवजात शिशुओं में इसके प्रति कुछ प्रतिरोधक क्षमता होती है ।

लिंग : मलेरिया स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक प्रभावित करता है, क्योंकि वे बाहर अधिक जाते हैं तथा उन जगहों पर भी अधिक जाते है जहां मच्छर पाए जाते हैं । इसके अतिरिक्त भारत में स्त्रियां कपड़ों से भी ढकी रहती हैं ।

सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ : निम्न आर्थिक स्थितियों में रहने वालों में मलेरिया अधिक होता है । कम हवादार तथा कम रोशनी वाले घरों में मच्छर अधिक पनपते हैं । अधिकतर मलेरिया घर में ही मच्छर के काटने से होता है । जनजातीय क्षेत्रों में मलेरिया बहुत अधिक होता है क्योंकि अधिकतर इन क्षेत्रों के चारों तरफ पाए जाने वाले वनों में मच्छर के जनन (वृद्धि) के लिए उपयुक्त वातावरण होता है । इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों में पहुँचने में कठिनाइयों के कारण, यहाँ पर मलेरिया की रोकथाम करना कठिन हो जाता है ।

बांधों पर काम करने वाले प्रवासी मजदूर : नव भवन निर्माण, बांध, खेतों में काम करने वाले प्रवासी मजदूर अपने साथ मलेरिया उन स्थानों पर ले जाते हैं जहाँ यह नहीं होता है या नियंत्रित है ।

वातावरणीय कारक : इनका विवरण नीचे दिया गया है :

मौसम : भारत में जुलाई से नवम्बर के महीनों में मलेरिया अधिक होता है । अधिक तापमान इस परजीवी विकास के लिये घातक होता है ।

मनुष्य द्वारा होने वाला मलेरिया : वातावरण में मनुष्य द्वारा किए गए परिवर्तन जैसे बहुत अधिक सिंचाई के कारण उन क्षेत्रों में भी मलेरिया हो जाता है जहाँ शुष्क होने के कारण मच्छर कम होते हैं । बगीचों में पाए जाने वाले तालाब, रुके हुए पानी के तालाब तथा सीवर के कारण भी मच्छर अधिक पनपते हैं तथा मलेरिया फैलाते हैं ।

यह कैसे फैलता है ?

मादा ऐनोफेलिज की कुछ किस्म के काटने के कारण मलेरिया फैलता है । भारत में *ऐनोफेलीज क्यूलीसिफेसीज़ (Anopheles culicifacies) तथा ऐनोफेलीज फ्लूवायटीलिस (Anopheles fluviatilis)* मलेरिया के मुख्य वाहक हैं । शहरी क्षेत्रों में *ऐनोफेलीज स्टीफेंसी (Anopheles stephensi)* मलेरिया का प्रमुख वाहक (संक्रामक कारक को एक परपोषी से दूसरे में ले जाने वाला) है । मादा ऐनोफेलीज मच्छर मलेरिया परजीवियुक्त मनुष्य का रक्त चूस लेती है । मच्छर के पेट में नर व मादा परजीवी मिलकर वृद्धि करते हैं तथा फिर लार ग्रंथि में प्रवेश कर जाते हैं । जब ये मच्छर मनुष्य को काटते हैं तथा उसका खून चूसते है तो परजीवी मनुष्य के रक्त में प्रवेश कर जाते हैं तथा यकृत व अन्य अंगों में पहुंच कर वृद्धि करते हैं । (यकृत में यह परजीवी यकृत की दीवार में घुस जाते हैं तथा एक संक्रामक परजीवी विभाजित होकर कई हजार नये परजीवीयों में बंट जाता है) । इनकी उपस्थिति से यकृत की कोशिकाएं फट जाती है तथा नये परजीवी रक्त में प्रवेश करते हैं । इनमें से कुछ कोशिकाओं में प्रविष्ट होकर बहुगुणन (multiply) व विकास करते हैं। परजीवी की तीव्र वृद्धि होने के कारण लाल रक्त कणिकाएं नष्ट हो जाती हैं तथा नवनिर्मित परजीवी पुन: रक्त में मुक्त हो जाते है जोकि नई लाल रक्त कोशिकाओं में प्रवेश करते हैं । लाल रक्त कणिकाओं के नष्ट होने के कारण एनीमिया हो जाता है तथा परजीवी के जीवन चक्र की इस अवस्था में रोगी को कंपकपी, ज्वर होता है तथा पसीना आता है । इस अवस्था में परजीवी के लैंगिक रूप युग्मकजनक (Gametocytes) विकसित होते है जोकि ऐनोफेलीज़ मच्छर में इस परजीवी का जीवन चक्र शुरू होता है ।

संवेदनशील व्यक्तियों में जीवन चक्र से गुजरने के बाद परजीवी सामान्य तथा लक्षण प्रकट होने के उपरांत 3 से 14 दिन बाद रक्त में दिखाई देते हैं । रक्तदान से भी मलेरिया का संवहन होता है ।

ऊष्मायन अवधि : संक्रमित मच्छर के काटने तथा ज्वर होने में कम से कम 10 दिन का समय लगता है। प्लेज्मोडियम के चार प्रकार के स्पीशीज़ हैं। स्पीशीज़ के अनुसार ऊष्मायन अवधि अलग-अलग होती है। पी. प्लैज्मोडियम फैल्सीपेरम में 12 दिन तथा *पी. वायवेक्स (P. Vivax)* व *पी.ओवेल (P. Ovale)* में 14 से 15 दिन होती है। *पी.मलेरिये (P.Malariae)* के मामले में ऊष्मायन अवधि लगभग एक माह है।

संचरणीय अवधि : जब तक रोगी के रक्त में परजीवी उपस्थित रहते हैं तब तक रोगी मच्छर को संक्रमित कर सकता है।

संवेदनशीलता : सभी इस रोग के प्रति संवेदनशील होते हैं। जो व्यक्ति जल्दी-जल्दी मलेरिया से संक्रमित होते है, कभी-कभी उनमें संवेदनशीलता कम हो जाती है। उन क्षेत्रों में जहाँ मलेरिया स्थानिक रोग है, वहां वयस्क इसके प्रति अधिक सहनशील होते हैं। दात कोशिका विशेषक (Sickel cell trait) वाले व्यक्तियों में मलेरिया की प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है।

बोध प्रश्न 1

1) मलेरिया परजीवी का, मच्छर व मनुष्य में, जीवन चक्र का चित्र बनाइए।

2) मच्छर से काटने तथा ज्वर होने के बीच में कितना समय लगता है ?

....

....

3) मलेरिया होने के लिए उत्तरदायी कारकों की सूची बनाइए। अपने पड़ोस में या घर के पास पाए जाने वाले स्लम में पाए जाने वाले कारकों पर घेरा लगाइए।

क)..

ख)..

ग)..

घ)..

ङ)..

च)..

17.2.2 लक्षण व जटिलताएं

चिकित्सीय दृष्टि से मलेरिया की तीन अवस्थाएं हैं :

1) *शीत अवस्था :* रोगी को ठंड या बहुत अधिक कंपकंपी के साथ अचानक ज्वर होता है।
2) *गर्म अवस्था :* रोगी जलन की शिकायत करता है तथा अपने सभी वस्त्र उतारना चाहता है। रोगी के सिर में बहुत दर्द होता है।
3) *पसीना आने की अवस्था* (sweating stage) : बहुत अधिक पसीना आने के बाद ज्वर कम हो जाता है।

एक बार ज्वर उतरने के बाद पुन: ठंड के साथ ज्वर तथा फिर पसीना आता है। ऐसा प्रतिदिन या एक दिन छोड़कर दूसरे दिन या तीसरे दिन तक हो सकता है। यदि उपचार न किया जाए तो मलेरिया एक सप्ताह से लेकर एक से अधिक महीने तक रह सकता है। अनिश्चित समय के बाद कई वर्षों तक मलेरिया पुन: हो सकता है। जब मलेरिया लगातार होता है तब तिल्ली (Spleen) बढ़ जाती है। रोगी को एनीमिया (रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा में कमी) भी हो सकती है। वास्तव में मलेरिया चार प्रकार का होता है। इनके लक्षण काफी कुछ एक से होते हैं तथा बिना प्रयोगशाला के परीक्षण के इनमें अंतर जान पाना कठिन है। सबसे अधिक खतरनाक *दुर्दम तृतीयक मलेरिया (malignant tertian malaria) या फैलसीपैरम मलेरिया* होता है। उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त मलेरिया से केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र भी प्रभावित होता है जिससे मानसिक असंतुलन तथा लम्बी अवधि की मूर्छा (coma) हो सकती है।

मनुष्य में होने वाले अन्य प्रकार के मलेरिया : सूक्ष्म तृतीयक (benign tertian) या बाइवैक्स (Vivax), चतुर्थक (quartan) तथा ओवेले (ovale) खतरनाक नहीं होते हैं क्योंकि उनसे मृत्यु नहीं होती है (केवल बहुत छोटे बच्चों को छोड़कर)।

मलेरिया की जटिलताएं : फैलसीपैरम मलेरिया की सबसे खतरनाक जटिलता प्रमस्तिष्क मलेरिया (cerebral malaria) है। इसमें रोगी को दौरे पड़ते हैं तथा वह कोमा में चला जाता है। यह बहुत अधिक घातक हो सकता है।

मलेरिया में होने वाली अन्य सामान्य जटिलताएं अतिसार तथा कुपोषण है। बच्चों में मलेरिया के कारण दीर्घकालिक एनीमिया हो सकती है।

17.2.3 रोकथाम व व्यवस्था

मलेरिया की रोकथाम व व्यवस्था का वर्णन नीचे किया गया है। आइए हम रोकथाम / नियंत्रण के उपायों से इस अध्ययन की शुरुआत करें।

मलेरिया की रोकथाम / नियंत्रण : मलेरिया की रोकथाम तथा नियंत्रण मुख्य रूप से निम्न बातों पर निर्भर करता है:

क) डी.डी.टी. या मैलथायान (malathion) कीटनाशकों के छिड़काव द्वारा मच्छरों का नियंत्रण

ख) उन क्षेत्रों का, जहाँ इस परजीवी की घटनाएं वर्ष में दो बार से अधिक होती है, सक्रिय या निष्क्रिय (passive) निरीक्षण करके, तथा

ग) रोगियों का संभावित (presumptive) तथा मौलिक (radical) उपचार।

आइए इन उपायों के बारे में और जानकारी प्राप्त करें।

क) *कीटनाशकों का छिड़काव :* जिन क्षेत्रों में मलेरिया की वार्षिक घटनाएं प्रति 1000 व्यक्तियों में से मलेरिया के पूर्ण प्रमाणित रोगियों की संख्या घटनाएं 2 से अधिक होती है, डी.डी.टी. तथा मैलथयान जैसे कीटनाशकों का छिड़काव किया जाता है।

ख) *सक्रिय निरीक्षण :* इसके अंतर्गत एक स्वास्थ्य कर्मचारी अपने क्षेत्र के ब्लाक जिसमें 1000 घर होते हैं के प्रत्येक घर में हर 15 दिन बाद जाता है। उन घरों में पिछले 15 दिनों या उसके आने के समय पर किसी को ज्वर हुआ है या नहीं, इस विषय में जानकारी प्राप्त करता है। ज्वर पाए जाने पर वह उसके खून की फिल्म एकत्र करता है, तथा फिर क्लोरोक्वीन की 4 गोलियों की एक खुराक देता है। क्लोरोक्वीन मलेरिया के उपचार के लिए प्रयोग होने वाली दवा है। इस प्रकार के उपचार को संभावित (presumptive) उपचार कहा जाता है।

ग) *मौलिक (radical) उपचार :* यदि रक्त की फिल्म से मलेरिया पाया जाता है तो मौलिक उपचार दिया जाता है। इसमें परजीवी को नष्ट करने के लिए प्रीमक्विन (primaquine) के इनके साथ क्लोरोक्वीन दी जाती है। अतिरिक्त रोकथाम / नियंत्रण के अन्य उपाय निम्न हैं :

घ) *मच्छर की रोकथाम :* निम्न चार तरीकों के द्वारा मच्छरों की रोकथाम की जा सकती है :

- ऐसी सभी स्थितियों को हटाना जोकि मच्छरों के जनन में सहायता करती है।
- मच्छरों को उनके जीवन चक्र की किसी भी अवस्था में नष्ट करना। इसके लिए रुके हुए पानी की सतह पर डी.डी.टी. या मिट्टी का तेल, डीज़ल या ईधन तेल का छिड़काव किया जा सकता है (ऐसा करने से मच्छरों के लारवा का दम घुट जाता है तथा वे सांस नहीं ले पाते हैं) या पानी के तालाब में जहाँ मच्छर पनपते हैं, लारवा खाने वाली मछलियां डाली जा सकती हैं।

- मच्छरों को मनुष्य को काटने से रोकना । लोगों का मच्छर दानी लगाकर सोने की सलाह देनी चाहिए जिससे मच्छर न काटें या मच्छर भगाने की दवाई (ओडोमॉस) त्वचा पर लगाकर सोना चाहिए।
- मनुष्य के रक्त में परजीवी को नष्ट करना । इसके लिए मलेरिया की दवाइयों (क्लोरोक्वीन, प्रीमक्विन) का प्रयोग किया जा सकता है ।

च) *वातावरण की स्वच्छता :* मच्छरों की संख्या बढ़ने को रोकने का एक स्थायी उपाय, नालियों तथा रुके हुए पानी के पोखरों को ढक कर वातावरण को स्वच्छ करना है । गाँवों में घर की नालियों के पानी को खुली नालियों में छोड़ने की बजाए सूखे गड्ढों में डालना चाहिए । मलेरिया की रोकथाम में आप भी सहायक हो सकते हैं । उन क्षेत्रों में जहाँ मलेरिया स्थानिक रोग है, आप यह मान कर चलें कि सभी ज्वर के मामले मलेरिया हैं । ऐसी अवस्था में वहाँ के लोगों की रक्त की फिल्म बनाने के बाद संभावित उपचार की व्यवस्था करनी चाहिए । इसके साथ ही स्वास्थ्य अधिकारियों को मच्छरों के नियंत्रण के लिए कीटनाशकों के छिड़काव की व्यवस्था करनी चाहिए । यदि मलेरिया पाया जाए तो रोगियों को मौलिक उपचार लेने के बारे में शिक्षित करना चाहिए । आप लोगों को मच्छरों के पनपने के स्थानों जैसे रुके हुए तालाबों, मलकुंड आदि को हटाने के बारे में शिक्षा देनी चाहिए ।

मलेरिया की व्यवस्था : पूर्ण प्रमाणित मलेरिया के रोगियों का क्लोरोक्वीन तथा प्रीमक्विन से उपचार की सलाह दी जाती है । अधिक गम्भीर अवस्था में क्लोरोक्वीन का अंत: मांसपेशी इंजैक्शन भी दिया जा सकता है । नीचे "याद रखने योग्य बातें" मलेरिया की मुख्य विशिष्टताएं बताती हैं । अत: इन्हें ध्यान से पढ़ें ।

याद रखने योग्य बातें

मलेरिया

- [illegible]
- [illegible]
- [illegible]
- [illegible]
- [illegible] मच्छरों के नियंत्रण तथा वातावरण की स्वच्छता पर निर्भर करता है ।

बोध प्रश्न 2

1) उन क्षेत्रों में जहां मलेरिया स्थानिक रोग के रूप में पाया जाता है, वहाँ मलेरिया नियंत्रण के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए बताइए ?

....

....

2) मलेरिया की कोई दो जटिलताओं की सूची बनाए ।

....

....

17.3 सारांश

इस इकाई में आपने जाना कि मलेरिया प्लैज्मोडियम के परजीवी द्वारा होता है । मादा एनौफैलीज मच्छर के काटने से मलेरिया परजीवी का संवहन होता है । मलेरिया की मुख्य पहचान बारी-बारी से ठंड के साथ ज्वर तथा फिर पसीना आना । मलेरिया में होने वाली एक जटिलता एनीमिया है। मलेरिया की रोकथाम व नियंत्रण मच्छरों के नियंत्रण तथा वातावरण की स्वच्छता पर निर्भर करता है ।

17.4 शब्दावली

रक्तहीनता (एनीमिया)	:	रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा में कमी ।
वार्षिक परजीवी घटनाएं	:	एक वर्ष में प्रति 1000 लोगों में मलेरिया के पूर्ण प्रमाणित रोगी ।
सूक्ष्म तृतीयक	:	वाइवैक्स श्रेणी के मलेरिया परजीवी द्वारा होने वाला मलेरिया ।
युग्मकजनक	:	मलेरिया परजीवी के लैंगिक रूप । ये मनुष्य में विकसित होते हैं ।
दूर्दम तृतीयक मलेरिया	:	फैल्सीपैरम श्रेणी के मलेरिया परजीवी द्वारा होने वाला मलेरिया ।
मलेरिया का संभावित उपचार	:	यह मानकर कि सभी ज्वर मलेरिया के कारण है, ज्वर के रोगियों का उपचार ।
रोकथाम उपचार	:	रोग की रोकथाम के लिए उपचार ।
मौलिक उपचार	:	मलेरिया परजीवी के युग्मकजनक को नष्ट करने के लिए मलेरिया का उपचार ।
वाहक	:	परजीवी को एक परपोषी से दूसरे परपोषी में ले जाने वाला (उदाहरण के लिए मलेरिया का वाहक मच्छर है) ।

17.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1)

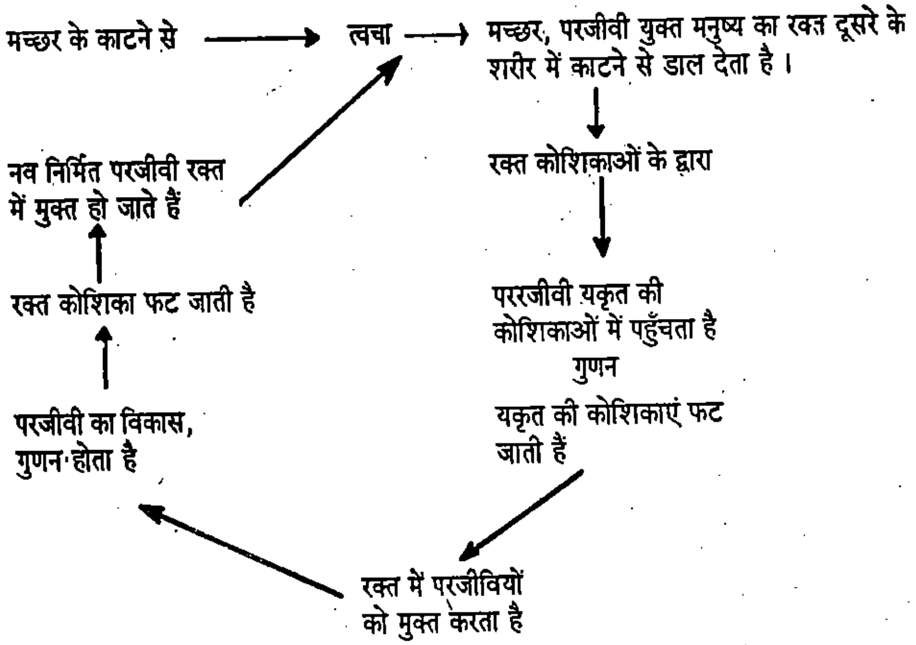

2) लगभग 10 दिन

3) क) निम्न आर्थिक स्थितियां

ख) कम हवादार तथा कम प्रकाशमय घर

ग) प्रवासी खेतिहर मजदूर

घ) जुलाई से नवम्बर

ङ) वर्षा

च) रुके हुए पानी के तालाब तथा सीवर

बोध प्रश्न 2

1)
- ज्वर के रोगियों की पहचान करें
- स्लाइड पर खून की फिल्म लें
- क्लोरोक्वीन की गोलियाँ दें
- यदि रक्त की फिल्म से मलेरिया साबित हो तो प्रीमक्विन व क्लोरोक्वीन से मौलिक उपचार करें
- कीटनाशकों के छिड़काव की व्यवस्था करें
- मच्छरों के पनपने के स्थानों को नष्ट करें
- लोगों को वातावरण को स्वच्छ व सूखा करने के बारे में शिक्षा दें
- उन्हें मच्छरदानी लगाकर सोने की सलाह दें

2) अतिसार व रक्तहीनता (एनीमिया)

इकाई 18 त्वचा, आँख तथा कान के संक्रमण

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना

18.2 त्वचा के संक्रमण

18.2.1 जीवाणु द्वारा होने वाले संक्रमण

18.2.2 फफूँदी द्वारा होने वाले संक्रमण

18.2.3 कीट ग्रसन - स्केबीज़

18.2.4 कुष्ठ रोग

18.3 आंख के संक्रमण

18.3.1 आखों में रोहें (ट्रैकोमा)

18.3.2 नेत्रश्लेष्मला के अन्य संक्रमण

18.4 कान के संक्रमण

18.4.1 तीव्र पूयक मध्यकर्ण शोथ (Acute suppurative otitis media)

18.4.2 कान का दीर्घकालिक आस्राव (Chronic discharging of ear)

18.4.3 बाह्य कर्णशोथ (Otitis Externa)

18.5 सारांश

18.6 शब्दावली

18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.1 प्रस्तावना

इकाई 17 में हमने मलेरिया के कारणों, संवहन, फैलाव के तरीकों, लक्षणों, नियंत्रण, रोकथाम तथा व्यवस्था के बारे में जाना। इस इकाई में हम त्वचा, आंख तथा कान के कुछ सामान्य संक्रमणों का वर्णन करेंगे। ये कुछ महत्वपूर्ण जन स्वास्थ्य समस्याएं है जोकि निम्न स्तर की व्यक्तिगत स्वच्छता के कारण होती हैं। यद्यपि ये संक्रमण घातक नहीं होते है परन्तु चूंकि ये हमारे शरीर के कुछ मुख्य अंगों को बुरी तरह प्रभावित कर सकते हैं अत: ये महत्वपूर्ण है। इस इकाई में इन संक्रमणों की रोकथाम / नियंत्रण के उपायों पर विशेष ध्यान दिया गया है। आंख, कान व त्वचा के विभिन्न संक्रमणों के बारे में संक्षिप्त विवरण भी दिया गया है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- त्वचा, आंख व कान के कुछ सामान्य संक्रमणों के प्रकार, कारण तथा फैलाव को पहचान सकेंगे
- इन संक्रमणों के लक्षणों की सूची बना सकेंगे, और
- इन संक्रमणों की व्यवस्था व रोकथाम के तरीकों का वर्णन कर सकेंगे।

18.2 त्वचा के संक्रमण

हमारे देश में त्वचा का संक्रमण एक महत्वपूर्ण जन स्वास्थ्य समस्या है। इनमें से अधिकांश त्वचा रोग व्यक्तिगत सफाई न रखने के कारण होते हैं। अज्ञानता के अतिरिक्त नहाने व सफाई के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध न होना भी महत्वपूर्ण कारण है, विशेषकर ग्रामीण व शहरी स्लमों में। यद्यपि त्वचा के संक्रमण अपने आप में जीवन के लिए घातक नहीं होते हैं परन्तु ये महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनमें से कुछ त्वचा संक्रमण मुख्य अंगों जैसे गुर्दों में संक्रमण उत्पन्न कर सकते हैं।

त्वचा संक्रमण निम्न प्रकार के हो सकते हैं :

क) जीवाण्विक संक्रमणों के कारण जैसे फोड़े, छाजन (impetigo)

ख) फफूँदी संक्रमण के कारण जैसे दाद (ringworm infection)

ग) कीट ग्रसन जैसे स्केबीज़

घ) छाजनीय त्वक्शोथ (Eczematous dermatitis) (लाल-लाल धब्बे जिन पर छोटे-छोटे छाले)

इनकी पहचान या जांच संक्रमण के प्रकार पर निर्भर करती है । इस इकाई में हम जीवाणु, फफूँदी व कृमियों के द्वारा होने वाले कुछ सामान्य त्वचा संक्रमणों के बारे में पढ़ेगें । इनके अतिरिक्त कुष्ठ रोग के बारे में भी बताया गया है ।

18.2.1 जीवाणु द्वारा होने वाले संक्रमण

सामान्य त्वचा में कुछ जीवाणु पाए जाते है (जोकि परजीवी नहीं होते हैं और न ही हानिकारक होते है बल्कि एक दूसरे के लिए लाभदायक होते है तथा एक साथ रहते हैं)। उदाहरण के लिए स्टेफीलोकोकस तथा स्ट्रेपटोकोकस । ये जीवाणु सामान्यत: रोगकारक (virulent) नहीं होते है । परन्तु इनके कारण उत्पन्न कुछ सामान्य स्थितियां जैसे छाजन तथा वर्ण रोग (furunculosis) (फोडे) महत्वपूर्ण मानी जा सकती है । आइए प्रत्येक के बारे में जानें ।

छाजन (Impetigo) : यह जीवाण्विक संक्रमण है जोकि त्वचा पर छोटे से लाल धब्बे (त्वचा की अपवर्णता का एक छोटा चिकना परिवृत्त) के रूप में शुरू होता है तथा कुछ ही घंटों बाद फफोले (blister) में बदल जाता है । इसके उपरांत इसमें मवाद भरना शुरू हो जाता है । फिर मवाद भरे दाने फट जाते हैं तथा उनमें से स्राव या मवाद बाहर निकल आता है । ये दाने सूखने पर शहद जैसे पीले रंग की पपड़ी छोड़ते हैं।

वर्ण रोग (Furunculosis) : उष्णकटिबन्धी क्षेत्रों जैसे भारत में हमें दीर्घकालिक फोड़े-फुन्सियों के रोगी अक्सर देखने को मिलते हैं । ये बालों की पुटिका (बाल की जड़) में संक्रमण के कारण होता है । ये अधिकतर उन लोगों में होता है जिन्हें रक्तहीनता या मलेरिया जैसे दुर्बल करने वाले रोग हों । इस रोग में घाव शरीर के किसी एक विशेष भाग में होते हैं तथा उनमें दर्द होता है । कई बार हल्का बुखार भी होता है। ऐसे मामलों में वर्ण रोग आमतौर पर बहुलता से होता है ।

ये क्यों होते हैं ?

छाजन, *स्ट्रेपटोकोकाई* (एक प्रकार का जीवाणु) के कारण होता है जबकि फोड़े *स्ट्रेपटोकोकाई* के कारण होते हैं ।

यह रोग किन्हें होता है ?

त्वचा के संक्रमण मुख्यत: बच्चों में होते हैं । तथापि ये संक्रमण किसी को भी हो सकते हैं । नवजात शिशुओं में इस रोग के प्रति संवेदनशीलता सर्वाधिक होती है ।

अधिकतर निम्न आय वर्ग के परिवारों में जहाँ भीड़भाड़ होती है तथा सफाई नहीं रहती है, त्वचा के ये संक्रमण अधिक पाए जाते है । दरअसल अज्ञानता के अतिरिक्त पानी की कमी भी इस संक्रमण को उत्पन्न करने में एक महत्वपूर्ण कारक है । गर्मी के मौसम में ये पसीने के कारण, नमीयुक्त त्वचा भी जीवाणु विकास में सहायक होती है । चूंकि निर्धन परिवारों में, लोग प्रतिदिन स्नान नहीं करते है अत: उनमें छाजन तथा वर्णरोग काफी पाए जाते हैं ।

इसकी रोकथाम के क्या उपाय हैं ?

त्वचा के जीवाण्विक संक्रमणों को "वाटर वाश" अर्थात् जल से हट जाने वाले रोग भी कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में सफाई व नहाने के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध कराने से इन संक्रमणों की व्यापकता को कम किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त लोगों को त्वचा की धुलाई के लिए साबुन का प्रयोग करने की शिक्षा देनी चाहिए । प्रतिदिन नहाने की सलाह भी देनी चाहिए । बहुत सारे लोगों द्वारा एक ही तौलिया प्रयोग

करने से भी यह संक्रमण फैलता है। अत: इन संक्रमणों के सुरक्षा उपायों को प्रोत्साहित करने के लिए ।२।८।। बहुत आवश्यक है। लोगों को भली प्रकार से कपड़े धोने के बारे में भी शिक्षित करना चाहिए। कपड़े धोने (विशेषकर संक्रमित व्यक्ति) के लिए धुलाई के अच्छे पाउडर या साबुन का प्रयोग करना चाहिए। त्वचा के बहुल संक्रमण से ग्रस्त व्यक्ति के कपड़े धोने के लिए गर्म पानी का प्रयोग बेहतर है। संक्रमण को फैलने से बचाने का सबसे सरल उपाय संक्रमित व्यक्ति के कपड़ों को अन्य लोगों के कपड़ों से अलग रखना है।

संक्रमण की व्यवस्था कैसे करें ?

छाजन के उपचार के लिए प्रतिजैविकों के मलहम / क्रीम लगाना सबसे सरल उपाय है। परन्तु फिर भी सबसे महत्वपूर्ण है—घाव की पपड़ी को हटाना। ऊपरी परत सबसे पहले उतारनी चाहिए। इसके लिए प्रभावित अंग को साबुन व उबले हुए ठंडे पानी से धोए तथा फिर आराम से उसकी पपड़ी उतारें। छाजन तथा वर्णरोग के गंभीर रूपों में सर्वांगी प्रतिजैविक मुँह या आन्त्रेतर (parenterally) रूप द्वारा (आहार नाल के अतिरिक्त) दिये जाते हैं।

18.2.2 फफूँदी द्वारा होने वाले संक्रमण

भारत में फफूँदी द्वारा होने वाले त्वचा के संक्रमण बहुत अधिक पाए जाते है। कुछ सामान्य फफूँदी संक्रमण निम्न है :

क) शरीर में पाए जाने वाला दाद कृमि (Body ring worm), तथा

ख) बाल व नाखून में पाए जाने वाला दाद कृमि (Head ring worm)

अधिकांश फफूँदी संक्रमण गोले के रूप में शुरू होते हैं। बालों में दाद के कारण सिर में पपड़ी दार गोल धब्बे बन जाते हैं तथा उस जगह से बाल टूट जाते हैं।

इस रोग की पहचान कैसे करें ?

शरीर का दाद कृमि : यह एक दीर्घकालिक संक्रमण है। नैदानिक भाषा में इसे *टीनिया कारपोरिस (Tinea Corporis)* भी कहते हैं। इसके कारण पेट या धड़ पर गोलाकार रूप में घाव दिखाई देता है। घाव की परिधि स्पष्ट व उठी हुई होती है। परिधि पर छाले हो सकते हैं। इस परिधि के क्षेत्र में फफूँदी संवृद्धि करती है। ऐसे कई छाले एक सामान्य सीमान्त रेखा वाले बड़े भागों में एकरूप (fuse) हो सकते हैं। परिधि के मध्य भाग में पीलापन हो सकता है। रोगी को खुजली व जलन हो सकती है। खुजली करने या रगड़ने से द्वितीयक जीवाण्विक संक्रमण हो सकते हैं।

सिर का दाद कृमि : इसे *टीनिया कैपीटिस (Tinea Capitis)* कहते है। इस संक्रमण में सिर में धूसर सफेद रंग के गोल धब्बे हो जाते हैं जहां पर से बाल सिर की खाल से लगभग 1 मि.मी. दूरी पर टूटे हुए होते हैं। त्वचा पर पपड़ी जम जाती है।

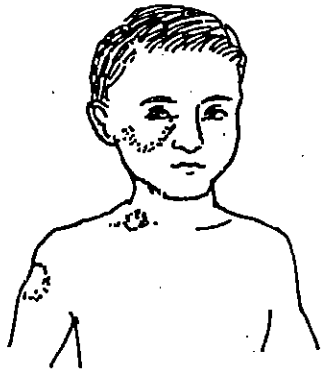

यह क्यों होता है ?

त्वचा के फफँदी संक्रमण मुख्यत: *ट्राइकोफाइटन (Trichophyton)* वर्ग की फफूँदी के कारण होते हैं।

यह रोग किन्हें होता है ?

फफूंदी के संक्रमण सभी व्यक्तियों को प्रभावित कर सकते हैं परन्तु बच्चे अधिक प्रभावित होते हैं। मिट्टी या पशुओं में पलने वाली फफूंदी से उत्पन्न आविष के कारण संक्रमण होता है। जो लोग मिट्टी तथा जानवरों के सम्पर्क में आते हैं, उन्हें ये संक्रमण होने की अधिक संभावना होती है।

इसकी रोकथाम के क्या उपाय हैं ?

इस संक्रमण को रोकने का सबसे अचूक उपाय शरीर को पूर्ण रूप से स्वच्छ रखना है। बच्चों को मिट्टी में खेलने से रोकना चाहिए। परन्तु ये तो आप मानेंगे कि ये काफी कठिन कार्य है। अत: अच्छा है कि मिट्टी से खेलने के बाद बच्चों को अच्छी तरह पानी से साफ कर दिया जाए।

सिर के दाद कृमि के मामले में नाई की कंघी को साफ रखना अति आवश्यक है यह संक्रमण के फैलाव को रोकेगा। संक्रमण-ग्रस्त होने पर तुरंत उपचार करना बहुत ही आवश्यक है।

फफूंदी द्वारा उत्पन्न संक्रमणों की व्यवस्था कैसे करें ?

संक्रमित भागों को रोज साबुन व पानी से धोना अति आवश्यक है। *टीनिया कैपिटीस* (सिर का दाद कृमि) के संक्रमण के लिए *ग्रीसीयोफुलविन (griseofulvin)* नामक फफूंदी नाशक दवाई का प्रयोग उचित रहता है। यह दवाई मुंह द्वारा ली जाती है। इसका लगभग 6 सप्ताह तक उपचार चलता है। प्रभावित भाग पर फफूंदीनाशक (anti-fungal) मलहम लगाने से संक्रमण जल्दी नहीं हटता है।

शरीर कृमि का संक्रमण फफूंदीनाशक मलहम लगाने से ठीक हो जाता है। अधिक संक्रमण होने पर मुंह द्वारा ग्रीसीयोफुलविन दवा दी जाती है।

बोध प्रश्न 1

1) रिक्त स्थान भरें।

क) टिनिया कैपिटीस ……………… तथा ……………… को प्रभावित करता है तथा इसे ……………… दाद कृमि कहते हैं।

ख) टीनिया कोर्पोरिस ……………… के रूप में होता है जिसके मध्य भाग में त्वचा पर ……………… आ जाता है।

ग) टीनिया ……………… के उपचार के लिए मुंह द्वारा ली जाने वाली दवा ……………… का प्रयोग सबसे अधिक प्रचलित है।

2) बताइए कि निम्न कथन सही हैं या गलत। गलत कथनों को ठीक कीजिए।

क) सिर के दाद कृमि के मामले में कंघी को साफ रखना संक्रमण फैलने से रोकेगा। (सही / गलत)

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

ख) छाजन अधिकतर रक्तहीनता या मलेरिया से ग्रस्त व्यक्तियों में होता है। (सही / गलत)

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

ग) बच्चों में फोड़े-फुन्सियां स्ट्रेप्टोकोकस के कारण होते हैं। (सही / गलत)

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

घ) फफूँदी संक्रमणों को सामान्यत: "वाटर वाश" रोग कहा जाता है। (सही / गलत)

....

....

ङ) शरीर / सिर के दाद कृमि का उपचार फफूँदीनाशक दवाओं से किया जाता है। (सही / गलत)

....

....

18.2.3 कीट ग्रसन - स्केबीज़

त्वचा संक्रमणों में सबसे अधिक होने वाला संक्रमण स्केबीज़ है जो एक कीड़े द्वारा होता है। भारत में तो ऐसे भी परिवार पाए जाते है जिसके सभी सदस्य स्केबीज़ से ग्रस्त हों। ग्रामीण क्षेत्रों में तो यह रोग बहुत अधिक पाया जाता है।

स्केबीज़ की पहचान कैसे करें ?

सामान्यत: इसका रोगी रात को बहुत अधिक खुजली की शिकायत करता है। यह संक्रमण अंगुलियों के बीच, कलाई के चारों ओर, जांघों, कमर तथा जनन अंगों के पास अधिक होता है। ध्यान से देखने पर आपको प्रभावित स्थान पर त्वचा पर छोटे-छोटे उठे हुये दाने (papules) या फफोले (blisters) दिखायी देंगे। इन दानों में जीवाणु संक्रमण भी हो जाता है, जिसके कारण ये संक्रमण छाजन जैसा लगता है विशेषकर कूल्हे के ऊपर और धड़ के पीछे।

यह क्यों होता है ?

स्केबीज़ पिस्सू या लाल मत्कुण (chiggers) जैसे छोटे जीवों के कारण होता है, ये जीव त्वचा के नीचे सुरंग सी बना लेते हैं।

इसे *"माइट ईच"* भी कहा जाता है तथा इसका वैज्ञानिक नाम *'सार्कोप्टीज सकेबीज़"* *(Sarcoptes scabies)* है। मादा कीड़ा त्वचा में घुस जाती है तथा अंडे देती है जोकि परिपक्व होकर वयस्क हो जाते है। त्वचा की परतों को सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखने पर इस परजीवी की पहचान की जा सकती है।

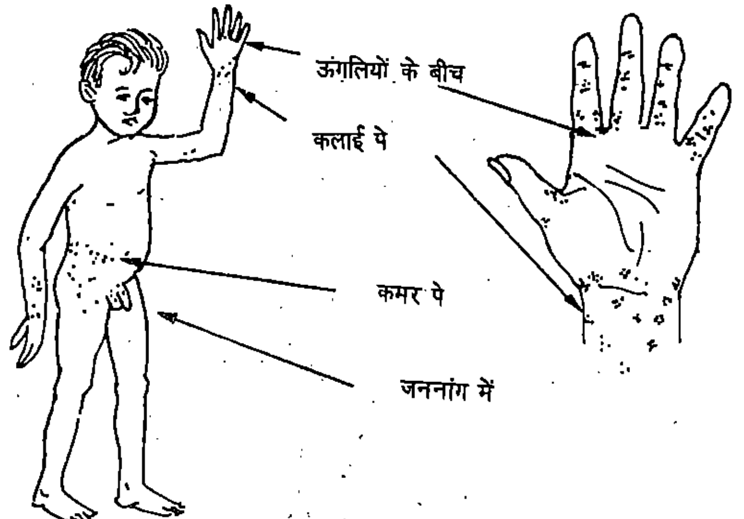

चित्र 18.1: स्केबीज़

यह रोग किन्हें होता है ?

कम आयु में यह रोग जल्दी-जल्दी होता है। सामाजिक रूप से और पिछड़ी हुई निर्धन जातियों में अधिक पाया जाता है। सामान्यत: पूरा परिवार ही इससे प्रभावित होता है। रोज नहाने वाले लोगों में यह रोग कम पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, जो लोग अच्छी व्यक्तिगत स्वच्छता नहीं रखते है, विशेषकर जो रोज नहाते नहीं हैं, वे इस रोग से अधिक ग्रस्त होते हैं।

यह कैसे फैलता है ?

यह रोग संक्रमित व्यक्ति के प्रत्यक्ष संपर्क में आने से फैलता है । ऐसा संक्रमित व्यक्ति के साथ एक ही पलंग पर सोने या बच्चों में एक साथ खेलने से होता है । यह पूरे परिवार में फैल जाता है । संक्रमित व्यक्ति के प्रयोग किए गए संदूषित कपड़ों के प्रयोग तथा कुछ हद तक नीचे पहनने वाले कपड़ों से भी यह फैलता है ।

इसकी रोकथाम के क्या उपाय हैं ?

इस रोग का शीघ्र उपचार करना आवश्यक है । परिवार के सभी प्रभावित तथा अन्य सदस्यों का उपचार करना चाहिए । इस संक्रमण से ग्रस्त परिवार के लोगों के अधोवस्त्र (नीचे पहनने वाले कपड़े) तथा बिस्तरे आदि को बदलते रहना चाहिए तथा भली प्रकार से धोना चाहिए । इन्हें उबलते पानी से धोना चाहिए । लोगों को रोज़ नहाने के महत्व के बारे में बताना चाहिए । वस्त्रों और बिस्तरों को साफ रखना आवश्यक है। स्कूल जाने वाले बच्चों के मामले में संक्रमित बच्चों को तब तक अलग रखना चाहिए, जब तक कि उनके परिवार में संक्रमित जनों का उचित उपचार न हो जाए।

स्केबीज़ की व्यवस्था / उपचार कैसे करें ?

इसकी सबसे प्रभावशाली दवा -बेन्जाइल बेंज़ोएट (benzyl benzoate) या एक प्रतिशत गामा बेन्ज़ीन **हक्साक्लोराइड (gama benzene hexachloride)** है । दवाई लगाने से पहले साबुन व पानी से अच्छी तरह शरीर को रगड़ कर स्नान करना चाहिए । उसके बाद ठोड़ी से नीचे पूरे शरीर पर दवाई लगानी चाहिए। 12 घंटे बाद फिर दवाई लगानी चाहिए तथा दो या तीन बार दवाई लगाने के बाद नहाना अवश्य चाहिए तथा सभी वस्त्र यहाँ तक कि बिस्तरे भी बदलने चाहिए । संक्रमण को पुन: होने से रोकने के लिए सभी स्वस्थ व अस्वस्थ परिवार जनों का उपचार करना आवश्यक है ।

इस संक्रमण के साथ होने वाले जीवाणु संक्रमणों का उचित प्रतिजैविकों से उपचार करना चाहिए ।

18.2.4 कुष्ठरोग

कुष्ठरोग (Leprosy) एक दीर्घकालिक संचरणीय रोग है । इससे ग्रस्त होने पर त्वचा पर विक्षत (lesions) बन जाते हैं । इस रोग से तंत्रिकाएं भी प्रभावित होती है । यह हमारे देश की एक मुख्य जन स्वास्थ्य समस्या है । हाल ही में अनुमान लगाया गया है कि भारत में लगभग 40 लाख लोग कुष्ठरोग से पीड़ित हैं। हालांकि सभी राज्यों में कुष्ठरोग के रोगी हैं परन्तु इसके 83 प्रतिशत रोगी आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, बिहार, महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, आसाम, कर्नाटक तथा उत्तर प्रदेश में हैं । कुष्ठ रोग आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडू की एक मुख्य समस्या है ।

कुष्ठरोग की पहचान कैसे करें ?

निम्नलिखित एक या अधिक लक्षणों के उपस्थित होने पर कुष्ठरोग की पहचान की जा सकती है ।

- चैतन्यशून्यता (loss of sensation)
- तंत्रिकाओं का विवर्धन (enlargement of nerves), और
- त्वचा आलेपों (skin smears) में त्वचा में कुष्ठरोग के जीवाणुओं की उपस्थिति ।

चिकित्सीय परीक्षण करने पर त्वचा में पीले / रंगहीन धब्बे दिखाई देते हैं । इन हिस्सों में संवेदन हो भी सकता है या फिर ये संवेदनहीन हो सकते हैं । जिन रोगियों में संवेदनहीनता होती है, उनको पंख या रुई के फाये से छूने पर सामान्य त्वचा की भांति स्पर्श का अहसास नहीं होता है (चित्र 18.2) । शरीर के ऊपरी तथा नीचे के बाहरी अंगों की कुछ तंत्रिकाएं मोटी हो जाती हैं तथा अंगुलियों के बीच में मोडी जा सकती हैं। प्रभावित भाग की त्वचा मोटी तथा चमकदार (तांबे जैसे लाल रंग की) हो जाती है । सामान्यतया यह संवेदनहीनता शरीर के अग्रांगो (extremities) जैसे हाथों व पैरों में पायी जाती है परन्तु यह संपूर्ण शरीर में भी हो सकती है । कई बार त्वचा पर बने विक्षत गोठ (nodules) में बदल जाते हैं । जिन रोगियों का उपचार नहीं होता है, उनमें तंत्रिकाओं तथा त्वचा के बहुत अधिक प्रभावित होने के कारण, अंगों की बनावट बदल जाती है ।

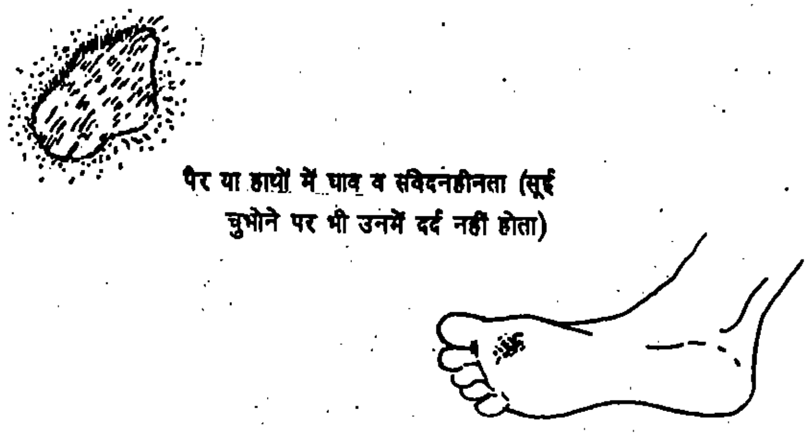

चित्र 18.2 : कुष्ठरोग के व्रण

इस रोग को दो मुख्य वर्गों में बांटा गया है :

- टयूबरक्युलौइड (tuberculoid)
- लैपरोमेटस (Lepromatous)

इन दोनों वर्गों के बीच के संक्रमण को सीमारेखा (border line type) संक्रमण कहते हैं । इसके अतिरिक्त रोग के प्रारम्भिक लक्षणों की अवस्था को अनिर्धारित रूप (indeterminate form) कहते हैं । आइए कुष्ठ रोग के इन विभिन्न प्रकारों के बारे में जानें ।

कुष्ठरोग के प्रकार

टयूबरक्युलौइड प्रकार में रोग मंद रूप में होता है तथा आगे और नहीं बढ़ता है । इसमें त्वचा पर थोड़े बहुत रंगहीन या पीले धब्बे नज़र आते हैं । अधिकांशत: इसमें केवल एक ही तंत्रिका प्रभावित होती है । विक्षेता में जीवाणु नहीं पाए जाते हैं तथा बालों की वृद्धि बहुत कम हो जाती है ।

लैपरोमेटस प्रकार का कुष्ठरोग अधिक भयंकर तथा जल्दी बढ़ने वाला होता है । त्वचा पर विक्षत अधिक होते हैं तथा वे गांठों में बदल जाते हैं । बालों की वृद्धि प्रभावित नहीं होती है । सामान्यत: तंत्रिकाएं व्यवस्थित रूप से प्रभावित होती है । अग्रांगों पर संवेदनहीनता हो जाती है । ऊपरी अग्रांगों के मामले में त्वचा पर संवेदनहीनता हो जाती है, और ऐसे में हाथों में दसताने पहनने पर भी दसताने पहनने जाने का अनुभव नहीं होता । उसी प्रकार, निचले अग्रांगों के मामले में, त्वचा के उस भाग में जो मोज़े पहनने से ढक जाता है वहां संवेदना नहीं होती । इसे दसताने व मोजे (glove and stocking) प्रकार की संवेदनहीनता कहते हैं । त्वचा तथा नाक के आलेपी (smearS) में बहुत से जीवाणु पाए जाते हैं ।

घावों में जीवाणु की उपस्थिति की जांच से रोग की पहचान की जाती है।

यह क्यों होता है ?

कुष्ठरोग *माइकोबैक्टीरियम लैपरी (mycobacterium leprae)* नामक कुष्ठरोग जीवाणु से उत्पन्न होता है। ये जीवाणु क्षयरोग के जीवाणु जैसे होते हैं । ये अम्ल स्थायी (acid fast) होते है तथा समूह या गुच्छों में पाये जाते है जिन्हें ग्लोबी (globi) कहते हैं । मनुष्य के अतिरिक्त ये जीवाणु चूहे के तलवों तथा आर्मडिलो (armedillo) (चीटीं खाने वाला) में वृद्धि करते हैं । यह जानकारी कुष्ठरोग में अनुसंधानों के लिए बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है ।

संक्रमण के संचिति : इस रोग का ज्ञात संचिति केवल मनुष्य ही है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कुष्ठरोग के जीवाणु सामान्यत: केवल मनुष्यों में ही रहते, बढ़ते और स्वयं को पुनरुत्पादित करते है जिससे यह रोग दूसरे व्यक्तिओं को संचरित हो सके।

यह रोग किन्हें होता है ?

आयु : यह रोग बच्चों में बहुत कम होता है। भारत में हुए अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि यह रोग 20-25 वर्ष की आयु के बाद होता है। तथापि कहीं अगर बच्चों में यह रोग अधिक पाया जाता है तो यह दर्शाता है कि उस क्षेत्र में यह संक्रमण काफी सक्रिय है।

लिंग : सामान्यत: इस रोग की घटनाएं स्त्रियों की तुलना में पुरुषों में दुगनी पायी जाती है। इसका एक मुख्य कारण पुरुषों का इस संक्रमण के प्रभावन में अधिक आना है।

सामाजिक-आर्थिक कारक : उच्च आय वर्ग की तुलना में निम्न आय वर्ग के लोगों में यह संक्रमण अधिक पाया जाता है। इसका मुख्य कारण निम्न जीवन स्तर, भीड़, व्यक्तिगत अस्वच्छता तथा रोग के बारे में कुछ पूर्वाग्रह हैं। सामाजिक घृणा तथा इसके फलस्वरूप रोगी के बहिष्कार की वजह से रोगी प्रारम्भिक अवस्था में रोग को छुपाता है जबकि उस समय रोग पर शीघ्रता से नियंत्रण किया जा सकता है।

जलवायु : यद्यपि यह रोग विश्व के सभी देशों में देखने को मिलता है परन्तु गर्म तथा आद्र जलवायु वाले देशों में अधिक पाया जाता है।

यह कैसे फैलता है ?

इस रोग के फैलने का तरीका अभी तक पूर्ण रूप से मालूम नहीं पड़ा है। ऐसा समझा जाता है कि संक्रमणग्रस्त रोगी के नाक से निकले स्राव से कुष्ठरोग के जीवाणु त्वचा या श्वसन अंगों द्वारा दूसरे स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इसके लिए घर में लगातार जीवाणु के संपर्क में आना आवश्यक है। घरेलू संपर्क द्वारा अन्य प्रकारों की तुलना में लैपरोमेटस रूप (lepromatous type) के कुष्ठ रोग होने की संभावना 6 से 8 बार अधिक होती है।

ऊष्मायन अवधि : इसमें ऊष्मायन अवधि लम्बी होती है। यह औसतन 3 से 5 वर्ष की होती है। रोग की पहचान होने में इससे भी अधिक समय लग सकता है। न्यूनतम ऊष्मायन अवधि 7 महीने है।

संचरणीय अवधि : जब तक कुष्ठरोग के जीवाणु उपस्थित रहते है, तब तक यह रोग संक्रामक होता है। यह मुख्य रूप से उन रोगियों के मामले में होता है जिनका उपचार नहीं हुआ है। तथापि यह देखा गया है कि उपचार शुरू होने के तीन महीनों के अंदर अधिकांश मामलों में संक्रमण समाप्त हो जाता है।

संवेदनशीलता : बार-बार कुष्ठरोग संक्रमण के अधिक संपर्क में आने से चिकित्सीय कुष्ठरोग हो जाता है। परन्तु संक्रमण के संपर्क में आने पर अधिकतर वयस्क लोगों को आसानी से संक्रमण नहीं होता है उपनैदानिक तथा अलक्षित संक्रमण के रोगी भी काफी पाए जाते है।

इसकी रोकथाम के क्या उपाय हैं ?

कुष्ठरोग की रोकथाम के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपाय रोग की शीघ्र पहचान, तुरंत उपचार है। जिन क्षेत्रों में यह रोग अधिक पाया जाता है वहाँ पर इसके रोगियों की खोज होती रहनी चाहिए। रोगी के घरेलू तथा निकट संबंधियों के निरीक्षण से इसके बहुत से अन्य रोगियों को पहचाना जा सकता है। लोगों को स्वास्थ्य शिक्षा दी जानी चाहिएं कि कुष्ठरोग का उपचार प्रभावी रूप से किया जा सकता है, तथा तुरन्त उपचार द्वारा इस रोग को रोका भी जा सकता है। लोगों के मन में यह भ्रांति है कि यह रोग पैतृक (hereditary) होता है, अशुद्ध रक्त के कारण होता है तथा इस रोग से हमेशा ही अंग-भंग हो जाते है। यह निराधार सामाजिक धारणा है। अत: त्वचा पर कम रंग (बदरंग) के धब्बे होने पर चिकित्सक की सलाह लेने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए। उपचार से ठीक हुए कुष्ठरोगियों को सामान्य जीवन बिताने के लिये पुनर्स्थापित करने की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे वे समाज में अपनी सामान्य भूमिका प्राप्त कर सके। कुष्ठरोग नियंत्रण कार्यक्रम का यह भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। यह देखने के लिए कि उपचारित रोगी नियमित रूप से दवाई लेते है तथा उपचार कैसा रहा, रोगियों के बारे में बाद में भी बराबर पता लगाते रहना चाहिए। कुष्ठरोग के विरुद्ध प्रतिरक्षी टीकों के विकास के लिये अनुसंधान हो रहे हैं।

कुष्ठरोग की व्यवस्था कैसे करें ?

हाल में ही राष्ट्रीय कुष्ठरोग निवारण कार्यक्रम के अंतर्गत बहुऔषधियों (एक से अधिक दवाइयों) द्वारा कुष्ठरोग को समाप्त करने का कार्यक्रम शुरू किया गया है । रोग के प्रकार के आधार पर डेपसोन (डी.डी.एस.), रिफेम्पेसीन (refampicin), क्लोफोजीमीन (clofazimine) के सम्मिश्र द्वारा उपचार किया जाता है । रोग के अनुसार ही उपचार 6 महीने से 24 महीने तक चलता है । उपचार के मूल्यांकन और दवाइयों के किन्हीं दुष्प्रभावों पर बराबर नज़र रखनी चाहिए इससे रोगी को सही अनुवृत्ति में मदद मिलेगी ।

उपरोक्त विवरण से हमें विभिन्न त्वचा संक्रमणों की विस्तृत जानकारी प्राप्त हुई । आपकी सुविधा के लिए इस भाग की मुख्य बातें "याद रखने योग्य बातों" के अंतर्गत [illegible] बतायी गयी हैं ।

याद रखने योग्य बातें
कुष्ठरोग

- त्वचा संक्रमण (फोड़े, दाद, छाजन आदि) मुख्य रूप से कुछ सूक्ष्मजीव जैसे जीवाणु, फफूंदी द्वारा होते हैं । परन्तु स्केबीज़ एक कीड़े से होती है ।
- वैसे तो त्वचा संक्रमण सभी व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं परन्तु [illegible] अधिक पाए जाते हैं (सिवाय कुष्ठरोग के जोकि केवल वयस्कों में होता है) ।
- त्वचा संक्रमण के मुख्य कारण निम्न जीवन स्तर व व्यक्तिगत अस्वच्छता है ।
- अधिकांश संक्रमण रोगी के प्रत्यक्ष संपर्क में आने से फैलते हैं ।
- शरीर की उचित सफ़ाई रखने से इन संक्रमणों को रोका जा सकता है ।
- त्वचा संक्रमणों के उपचार के लिये दवाइयों व मलहम (क्रीम) का प्रयोग किया जाता है ।

बोध प्रश्न 2

1) बच्चों में कारक जीव के शरीर में प्रवेश के उपरांत स्केबीज़ कैसे विकसित व प्रकट होता है, दर्शाने के लिए प्रवाह चित्र बनाइए ।

2) तालिका के रूप में टयूबरक्युलॉइड टाइप कुष्ठरोग तथा लैप्रोमैट्स कुष्ठरोग में अंतर बताइए ।

....

....

....

18.3 आंख के संक्रमण

आंख के संक्रमणों में पलकों (eyelid) तथा नेत्रश्लेष्मला (conjunctiva) को प्रभावित करने वाले संक्रमण सबसे अधिक पाये जाते हैं (चित्र 18.3)। नेत्रश्लेष्मला शोथ (conjunctivitis) अर्थात् नेत्रश्लेष्मला का संक्रमण सबसे अधिक पाया जाता है, विशेषकर बच्चों में। कुछ अन्य सामान्य आंख के संक्रमण निम्न है—रोहें (trachoma), जीवाणु द्वारा उत्पन्न नेत्रश्लेष्मला (bacterial conjunctivitis) शोथ तथा विषाणु द्वारा उत्पन्न नेत्रश्लेष्मला शोथ (viral conjunctivitis)। हम प्रत्येक के बारे में विस्तार से पढ़ेंगे। आइए, सबसे पहले रोहें (ट्रकोमा) के बारे में जानें।

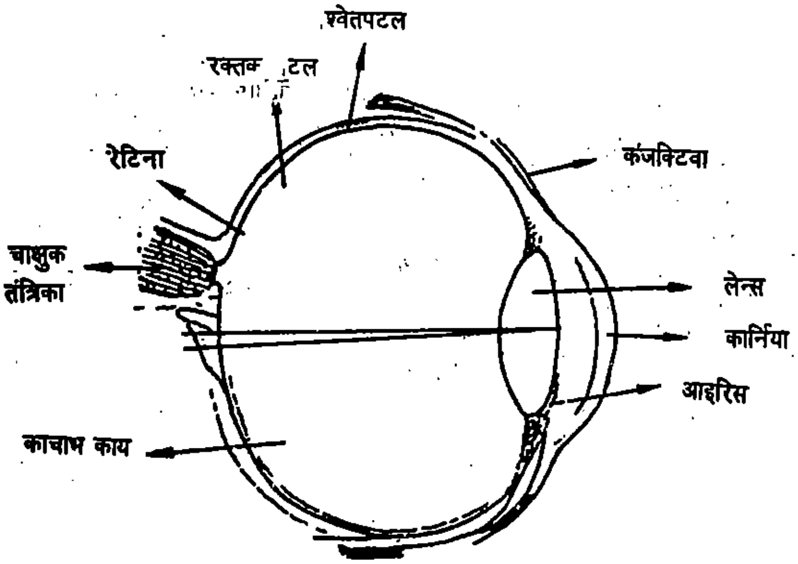

चित्र 18.3 : आंख की संरचना

18.3.1 आखों में रोहें (ट्रैकोमा)

नेत्रश्लेष्मला के संक्रमणों में से अंधेपन का मुख्य कारण रोहें हैं। पंजाब, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में इसके लगभग 75 प्रतिशत रोगी पाए जाते हैं। दक्षिण भारत में यह कम पाया जाता है।

रोहों से ग्रस्त रोगी की आंख में पानी आता है तथा आंखों में खुजली मचती है। ऐसा लगता है कि आंख में कुछ गिरा हुआ है या रगड़ रहा है। देखने पर नेत्रश्लेष्मला, विशेषकर ऊपरी पलक के नीचे के हिस्से में, लाली नज़र आती है। पलक को उल्टा करने के बाद ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने पर मटमैले रंग के छोटे - छोटे दाने जिन्हें पुटक (follicles) कहते हैं, दिखाई देते है। इनके चारों ओर लाल रक्त शिराएं नज़र आती है। कुछ महीनों के बाद ये घाव भर जाते है तथा उन स्थानों पर रेशेदार ऊपक बन जाते है जिसे रेशामयता (fibrosis) कहते हैं। ऊपरी पलक के रेशेदार (fibrous) ऊतकों के सिकुड़ने के कारण पलक अंदर की ओर मुड़ जाती है और इसके अतिरिक्त बरौनियां बहुत अधिक बढ़ जाती हैं। जिसके कारण कार्निया (आंख का काला भाग) में लगातार खुजली मचती रहती है तथा कर्निया में घाव / फोड़े हो जाते है। इसके फलस्वरूप आंशिक या पूर्ण अंधता हो सकती है।

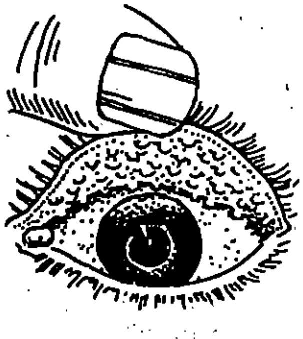

चित्र 18.4: आंखों में रोहें (ट्रैकोमा)

यह क्यों होता है ?

रोहे *क्लेमाइडिया (Chlamydia)* जाति *(क्लेमाइडिया ट्रेकोमेटिस)* नामक जीवाणु के कारण होते हैं। पहले यह समझा जाता था कि यह बड़े अप्ररूपी विषाणु के कारण होता है।

यह रोग किन्हें होता है ?

आयु : यह जीवन काल के शुरू में ही हो जाता है। जिन क्षेत्रों में रोहें बहुत अधिक पाए जाते हैं वहाँ मुख्यत: 10 वर्ष से कम आयु के बच्चे इससे प्रभावित होते हैं।

लिंग : 10 वर्ष से कम आयु में दोनों ही लिंग इससे समान रूप से प्रभावित होते हैं परन्तु इस आयु के उपरांत स्त्रियों -पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रभावित होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि स्त्रियां बच्चों के संपर्क में अधिक आती है तथा संक्रमित हो जाती है।

सामाजिक-आर्थिक कारक : निर्धन तथा व्यक्तिगत अस्वच्छता रखने वाले लोगों में यह रोग अधिक पाया जाता है।

मौसम : अप्रैल से मई तथा जुलाई से सितम्बर के बीच के महीनों (घरेलू मक्खी के जनन काल) में यह रोग अधिक होता है।

यह कैसे फैलता है ?

यह रोग मुख्यत: प्रत्यक्ष संपर्क से फैलता है जैसे कि एक साथ सोने पर। दूषित तौलियों तथा रूमाल के प्रयोग के कारण अप्रत्यक्ष रूप से भी यह फैल सकता है। घरेलू मक्खी रोग के संचरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। मक्खी के संक्रमित व्यक्ति की आंख पर बैठने पर जीवाणु उसके साथ चिपक जाते हैं। जब यह मक्खी किसी असंक्रमित व्यक्ति की आंख पर बैठती है तो वहाँ यह जीवाणु छोड़ देती है, जिससे उसकी आंख भी संक्रमण ग्रस्त हो जाती है।

ऊष्मायन अवधि : प्रथम संपर्क में आने के 5 - 12 दिन बाद संक्रमण दिखाई देता है।

संचरणीय अवधि : जब तक रोग सक्रिय रूप में रहता है तब तक यह संक्रामक रहता है। घाव के रेशेदार होने के बाद जीवाणु की संख्या कम हो जाती है परन्तु रोग के पुन: होने पर इनकी संख्या फिर बढ़ जाती है।

इसकी रोकथाम के क्या उपाय हैं ?

रोगियों की शीघ्र पहचान तथा उनका शीघ्र उपचार सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। विशेषकर स्कूल पूर्व बच्चों में इस रोग की जांच जरूरी है। जिन स्थानों पर पानी की कमी पायी जाती है, वहाँ यह रोग अधिक होता है। अत: इसकी रोकथाम के लिए स्वच्छता रखना तथा पानी की आपूर्ति को बढ़ाना बहुत आवश्यक है। लोगों को मुंह व शरीर को धोने के लिए साबुन व पानी दोनों को प्रयोग करने के लिये प्रेरित करना चाहिए। बहुत सारे लोगों द्वारा एक ही तौलिए के प्रयोग की मनाही करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में रोग के नियंत्रण के लिए उचित सफाई रखना अति आवश्यक है।

रोहों की व्यवस्था कैसे करें ?

लगभग 10 सप्ताह तक स्थानीय उपचार द्वारा रोग को पर्याप्त रूप से नियंत्रण में लाया जा सकता है। *टेट्रासाइक्लिन (Tetracycline)* मलहम दिन में दो बार आंख में लगाने से रोग ठीक हो जाता है। रोग की सक्रिय अवस्था में सल्फोनामाइड तथा टेट्रासाइक्लिन की खुराक ली जा सकती है। चूंकि संक्रमण पुन: हो जाता है अत: उपचार के कुछ महीनों बाद तक रोगी की निगरानी रखनी चाहिए तथा ध्यानपूर्वक निरीक्षण भी करते रहना चाहिए।

18.3.2 नेत्रश्लेष्मला के अन्य संक्रमण

नेत्रश्लेष्मला शोथ जीवाणु, विषाणु या फफूंदी के कारण हो सकता है। चूंकि जीवाणु व विषाणु द्वारा होने वाला नेत्रश्लेष्मला शोथ अधिक पाया जाता है अत: हम केवल इन्हीं के बारे में बतायेंगे।

क) जीवाणु द्वारा उत्पन्न नेत्रश्लेष्मला शोथ

जीवाणु द्वारा उत्पन्न नेत्रश्लेष्मलाशोथ में आंखें लाल हो जाती है तथा रोगी को ऐसा लगता है कि आंख में कुछ गिर गया है। आंख से स्राव निकलते है जिससे पसमवाद भी हो सकता है। सुबह सो कर उठने पर ऊपरी तथा नीचे की पलके चिपकती हैं। तथापि दृष्टि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

जीवाणु द्वारा उत्पन्न नेत्रश्लेष्मलाशोथ स्टेफीलोकोकाई, *(staphylococci)*, न्यूमोकोकाई *(pneumococci)* तथा हीमोलिटिक स्ट्रेप्टोकोकाई (haemolytic streptococci) द्वारा होती है।

संक्रमित व्यक्ति की आंख से निकले स्राव की सूक्ष्मदर्शी से जांच करने से कारक जीव की पहचान की जा सकती है। आंख की प्रतिजैविक क्रीम या आइ ड्राप्स से जीवाणु द्वारा उत्पन्न नेत्रश्लेष्मला का उपचार किया जाता है। आंख की दशा ठीक होने पर इनका प्रयोग बंद कर देना चाहिए। इसका उपचार एक सप्ताह से अधिक नहीं चलता है। रोग के नियंत्रण के लिए आवश्यक है कि असंक्रमित व्यक्ति पूरी सफाई रखे तथा संक्रमित व्यक्ति के आंख से निकले स्राव के संपर्क में न आए।

ख) विषाणु द्वारा उत्पन्न नेत्रश्लेष्मला शोथ

विषाणु द्वारा उत्पन्न नेत्रश्लेष्मलाशोथ काफी अधिक होता है तथा अधिकतर यह स्थानिक रोग के रूप में होता है क्योंकि यह रोग बहुत जल्दी फैलता है। इसके कारण नेत्रश्लेष्मला लाल हो जाती है तथा उसमें से पतला पानी जैसा स्राव निकलता है। यह एक विषाणु से होता है। यह 12 - 14 दिन तक रहता है। इसका कोई विशिष्ट उपचार नहीं है। सल्फोनामाइड (sulfonamide) आई ड्राप्स या विस्तृत स्पेक्ट्रम प्रतिजैविक आई क्रीम से द्वितीयक जीवाणु संक्रमण को रोका जा सकता है। उचित व्यक्तिगत स्वच्छता रखने से ही इस रोग को रोका जा सकता है। संक्रमित व्यक्ति की आंख से निकले स्राव के संपर्क में नहीं आना चाहिए। संक्रमित व्यक्ति द्वारा प्रयोग किए गए तौलियों का प्रयोग दूसरे लोगों को नहीं करना चाहिए। कई बार संक्रमण की रोकथाम के लिए भी प्रतिजैविक क्रीम या ड्राप्स का पहले से ही प्रयोग किया जा सकता है।

नीचे "याद रखने योग्य बातों" के अंतर्गत आंख के संक्रमणों की मुख्य बातों को बताया गया है।

याद रखने योग्य बातें

आंख के संक्रमण

- [illegible] को प्रभावित करने वाले संक्रमण सबसे अधिक [illegible]
- [illegible] तथा [illegible] के द्वारा होते हैं।
- [illegible] को अधिक प्रभावित करते हैं।
- आंख के संक्रमणों की रोकथाम के लिए [illegible] व्यक्तिगत स्वच्छता तथा पर्याप्त स्वच्छ जल की [illegible] आवश्यक है।
- [illegible] (मलहम) द्वारा आंख के संक्रमण का उपचार किया जाता है।

बोध प्रश्न 3

1) ऐसे तीन तरीके बताइये जिनसे रोहें संक्रमित व्यक्ति से दूसरों में फैल सकते हैं।

क) ....

ख) ....

ग) ....

2) रोगों के फैलने से रोकने के लिए उपयुक्त कुछ तरीकों का सुझाव दें ।

....

....

....

18.4 कान के संक्रमण

ग्रामीण तथा शहरी स्लम क्षेत्रों में कान के संक्रमण विशेषकर बच्चों में काफी पाए जाते हैं । गांव में तो ऐसे बच्चे अक्सर देखने को मिल जाते है जिनके कान बह रहे होते हैं । यद्यपि कान के संक्रमणों से मृत्यु नहीं होती है परन्तु इससे कुछ जटिलताएं पैदा हो सकती है जैसे श्रवण शक्ति में कमी (कम सुनाई देना), तानिका शोथ (मस्तिष्क तथा मेरुरज्जु की परतों में प्रवाह), कर्णमूल शोथ (mastoiditis) (कान के पीछे की हड्डी में प्रवाह) आदि । शीघ्र उपचार के द्वारा बच्चों को इन जटिलताओं से बचाया जा सकता है । कान के सामान्य संक्रमणों में से, मध्य कान को प्रभावित करने वाले संक्रमण महत्वपूर्ण हैं । क्या आपको कान की संरचना के बारे में मालूम है? आपकी जानकारी के लिये चित्र 18.4 में कान की संरचना दिखायी गयी है। मध्य कान में संक्रमण की संभावना सर्वाधिक होती है । बाह्य कान में भी संक्रमण अक्सर होते हैं ।

कान में होने वाले तीन सामान्य संक्रमण निम्न है :

1) तीव्र पूयक मध्यकर्ण शोथ (Acute suppurative otitis media)

2) कान का दीर्घकालिक आस्राव (कान बहना)

3) बाह्य कर्णशोथ (Otitis externa)

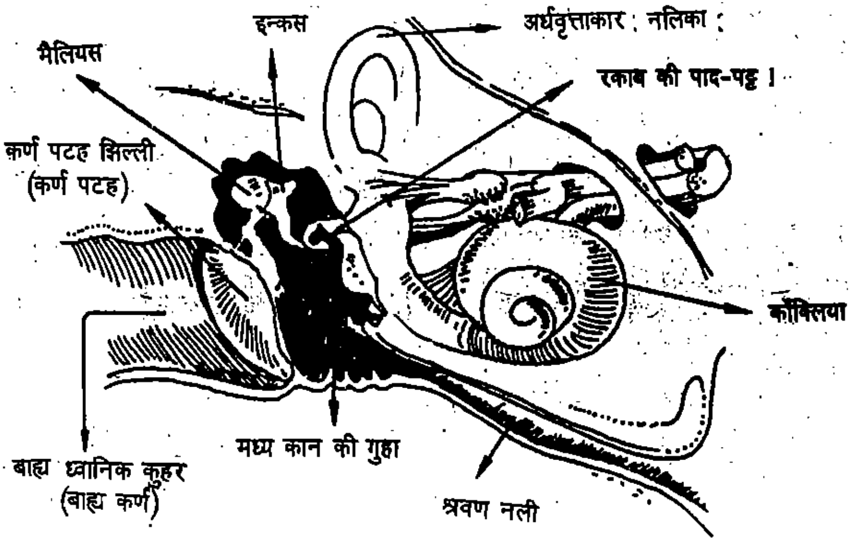

चित्र 18.5 : कान की संरचना

तीव्र पूयक मध्यकर्ण शोथ तथा कान का आस्राव मध्य कान में होने वाले मुख्य संक्रमण हैं । बाह्य कर्णशोथ बाह्य कान में होने वाला संक्रमण है। आइए इन संक्रमणों के बारे में जानें ।

18.4.1 तीव्र पूयक मध्यकर्ण शोथ (Acute suppurative otitis media)

तीव्र पूयक मध्यकर्णशोथ मध्यकान का संक्रमण है जो कि अधिकतर ऊपरी श्वसन नली के संक्रमण के बाद होता है। इसकी पहचान के मुख्य चिन्ह हैं : क) कान में दर्द, ख) ज्वर, तथा ग) बाहर निकला हुआ लाल कान का परदा।

बच्चों में यह बड़ी तेज़ी से बढ़ता है। बच्चा जब सोने जाता है तो वह बिल्कुल स्वस्थ होता है परन्तु कुछ समय बाद दर्द के कारण रोता हुआ उठता है। उसे सोने में परेशानी होती है। बड़ा बच्चा भी दर्द का सही स्थान नहीं बता पाता है। कभी-कभी कान में खिंचाव सा भी हो जाता है। यह एक महत्वपूर्ण चिन्ह है। इसके साथ ही ज्वर होता है तथा नाक बहती है।

कान का परीक्षण करने पर (चित्र 18.2 देखिए) टिम्पेनिक परत सूजी हुई तथा फैली हुई लाल दिखाई देती है। कान का पूरा पर्दा बाहर आ जाता है। कभी - कभी कान का पर्दा अचानक फट जाता है तथा कान में से धब्बेदार सा स्राव निकलता है। उपचार न किए जाने पर अधिक स्राव हो जाने के कारण कान के पर्दे में छेद हो जाता है। कुछ लोगों को हर बार जुकाम होने पर तीव्र पूयक मध्यकर्णशोथ हो जाता है। इसे पुनरावर्ती तीव्र पूयक मध्यकर्ण शोथ कहते हैं। उपचार न किए जाने पर इससे कर्णमूल प्रवाह (कान के पीछे की हड्डी में प्रवाह) तथा मैनिन्जाइटिस हो जाता है। कभी-कभी पूरे कान के ऊतक नष्ट हो जाते हैं। ऐसा कान के तीव्र संक्रमणों में होता है।

यह क्यों होता है ?

यह जुकाम में होने वाली एक सामान्य जटिलता है। ऐसे मामलों में अधिकतर यह *न्यूमोकोकाई एच. एन्फ्लुन्ज़ा (pneumococci H.influenzae)* तथा *हीमालिटिक स्ट्रेप्टोकोकाई (haemolytic streptococci)* के कारण होता है।

किन्हें यह रोग होता है ?

अधिकतर छोटे बच्चे इससे प्रभावित होते हैं। इसका कारण यह भी हो सकता है कि बच्चों में ऊपर श्वसन नली के संक्रमण अधिक होते हैं। बच्चों में युस्टेकी नलिका (कान व नाक को जोड़ने वाली नली) छोटी होती है। यद्यपि यह अधिकतर निम्न आय वर्ग के परिवारों में पाया जाता है। परन्तु उच्च आय वर्ग के बच्चों में भी पाया जाता है।

कान के तीव्र संक्रमणों की व्यवस्था कैसे करें ?

इसके उपचार के लिए पैनीसिलिन मुंह द्वारा या अंतः मांसपेशी इंजैक्शन के रूप में दी जाती है। यदि रोगी को पैनिसीलिन से एलर्जी हो तो एक अन्य प्रतिजैविक एथ्रोमायसिन दी जा सकती है। यह उपचार 10 दिन के लिए किया जाता है।

प्रतिजैविकों की कान में डालने वाली दवाई तीन बार दिन में डाली जाती है। कर्ण पर्दे में छेद होने के कारण पस स्रावित होने की स्थिति में पस को सिरिंज तथा छोटी सी प्लास्टिक नली द्वारा निकाला जाता है। दर्दनाशक व ज्वर को रोकने वाली दवाइयां भी दी जाती हैं।

18.4.2 कान का दीर्घकालीक आस्राव (Chronic discharging of ear)

कान बहना बहुत ही सामान्य रोग है तथा ग्रामीण व शहरी स्लमों में काफी पाया जाता है। यह रोग निम्न स्तर का सूचक है।

इस समस्या (रोग) की पहचान कैसे करें ?

बच्चे के कान से तेज़ गंध वाला स्राव निकलता है। परीक्षण करने पर आप पायेंगे कि एक या दोनों कानों से पस तथा श्लेष्मल वाला स्राव निकलता है। यदि रोग का उपचार न किया जाए तथा लापरवाही बरती जाए तो कान के बाहरी हिस्से में मक्खियां तथा अन्य कीड़े बैठे हुए दिखाई देते हैं। कान की ऊपरी त्वचा हट जाती है परन्तु इससे दर्द नहीं होता है। कान के परदे का परीक्षण करने के लिये स्राव को साफ करना पड़ता है। परदे में एक बड़ा छिद्र हो जाता है।

जटिलताएं : कान के लगातार लम्बे समय तक के लिए बहने को नज़र अन्दाज़ नहीं करना चाहिए।

इसका यदि उपचार न किया जाए या लापरवाही बरती जाए तो क्या जटिलताएं हो सकती हैं ? कान के पीछे की हड्डी (कर्ण मूल आस्थे) तथा मध्य कान के भागों का गलना एक सामान्य जटिलता है । बच्चों को मुँह का लकवा (facial palsy), मैनिन्जाइटिस तथा मस्तिष्क में फोड़ा (Brain abscess) (ठमवाद भी इकट्ठा हो सकता है) ।

यह रोग किन्हें होता है ?

अधिकतर बच्चे इससे प्रभावित होते हैं । यह निम्न आय वर्ग के बच्चों में बहुत पाया जाता है जोकि निम्न पोषण, भीड़भाड़, अस्वच्छ वातावरण में रहते हैं तथा जिनमें श्वसन तंत्र के संक्रमण बहुत अधिक पाए जाते हैं । कभी-कभी मध्य आय वर्ग के परिवारों के बच्चों में भी यह पाया जाता है । बच्चों को संक्रमित टान्सिल व/साइनसाइटिस (Sinusitis) भी हो सकता है ।

यह क्यों होता है ?

अधिकतर यह तीव्र मध्यकर्ण शोथ होने पर लापरवाही बरतने के कारण होता है । स्राव में पाए जाने वाले सामान्य सूक्ष्मजीव *सूडोमोनास (Pseudomonas)*, *ई.कोलाई* तथा *स्टेफीलोकोकाई* हैं ।

कान के दीर्घकालिक आस्राव की व्यवस्था कैसे करें ?

सर्वप्रथम कान को नियमित रूप से प्रतिदिन व अच्छी तरह साफ करना चाहिए। कान में स्थानीय प्रतिजैविक दवाइयों की बूंदें या प्रतिजैविक दवाइयों के इंजेक्शन लगाने की कोई आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि इसमें मध्यकान में संक्रमण नहीं होता है । परन्तु यदि यह हो तो उचित प्रतिजैविक देने चाहिए ।

माता-पिता को बच्चों के कान साफ रखने तथा तुरन्त उपचार करने के बारे में स्वास्थ्य शिक्षा देनी चाहिए ।

आइए अब बाह्य कान के संक्रमणों के बारे में जानें ।

18.4.3 बाह्य कर्णशोथ (Otitis Externa)

बाह्य कर्णशोथ बाह्य कान में होने वाला संक्रमण है । गर्म क्षेत्रों में यह बहुत अधिक पाया जाता है । इसमें बाह्य आडीटरी कैनाल (श्रवण नली) तथा कर्णपालि (pinna of ear) में प्रवाह होता है । कान का कौन सा भाग प्रभावित होता है ? यह जानने के लिए चित्र 18.5 देखें । बाह्य कान का उचित प्रकाश में प्रेक्षण करने पर प्रवाह को आसानी से देखा जा सकता है परन्तु बहुत अधिक संक्रमण होने पर (acute stage) दर्द के कारण कान का परीक्षण करना संभव नहीं है । दीर्घकालिक बाह्य कर्णशोथ तो साथ में नहीं है, यह जानने के लिए कान के परदे का भी प्रेक्षण करना चाहिए । इसके रोगी को कान में दर्द होता है जो कि बाह्य कान खींचने पर और अधिक हो जाता है ।

बाह्य कर्णशोथ जीवाणु संक्रमण के कारण होता है । परन्तु कभी-कभी फफूँदी भी इसका कारण बन सकती है। कान में जैनटिन वायलेट (gentian violet) लगाने से लाभ होता है । कान में डालने की दवाई क्लोरमफेनिकोल (chloromphenicol) भी दी जाती है ।

कान के संक्रमणों की पुनरावलोकन के लिए "याद रखने योग्य बातें" पढ़िए।

याद रखने योग्य बातें

कान के संक्रमण

- [illegible]
- [illegible]
- [illegible]
- [illegible]

- कान के संक्रमणों के कारण उत्पन्न होने वाली कुछ जटिलताएं श्रवण शक्ति कम या समाप्त होना, मैनिंजाइटिस, कर्णमूल शोथ है।
- कान के संक्रमणों के उपचार के लिए प्रतिजैविकों की कान में डालने की दवाइयां या गोलियों का प्रयोग किया जाता है।
- माता-पिता को बच्चों के कान साफ रखने व संक्रमण होने पर तुरंत उपचार रखने के बारे में शिक्षा दी जानी चाहिए।

प्रश्न 4

तीव्र मध्य कर्णशोथ व कान के दीर्घकालिक आस्रव में अंतर की सूची बनाएं।

....

....

....

....

....

2) आप तीव्र मध्य कर्णशोथ से ग्रस्त बच्चे का उपचार कैसे करेंगे ?

....

....

....

....

18.5 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि त्वचा संक्रमण जीवाणु, फफूँदी संक्रमणों तथा कृमि ग्रसन के कारण होते हैं। बच्चे त्वचा संक्रमणों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। इन संक्रमणों के फैलने का मुख्य तरीका संक्रमित व्यक्ति के प्रत्यक्ष संपर्क में आना है। निम्न जीवन स्तर, निम्न व्यक्तिगत स्वच्छता त्वचा संक्रमणों के मुख्य कारक हैं। शरीर की उचित सफाई रखने से त्वचा संक्रमणों को रोका जा सकता है। आंख में होने वाले कुछ सामान्य संक्रमण रोहें, जीवाणु, विषाणु व फफूँदी द्वारा होने वाली कंजक्टिवाइटिस नेत्रश्लेष्मलाशोथ हैं।

वैसे तो नेत्र संक्रमण सभी को हो सकते है परन्तु बच्चे इनके प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। उचित व्यक्तिगत स्व्च्छता, बेहतर सफाई तथा उचित जल आपूर्ति द्वारा आंख के संक्रमणों को रोका जा सकता है। इनके उपचार के लिए मुंह द्वारा ली जाने वाली दवाएं व प्रतिजैविक मलहमों का प्रयोग किया जाता है।

कान में होने वाले मुख्य संक्रमण तीव्र पूयक मध्यकर्णशोथ, कान का दीर्घकालिक आस्राव, बाह्य कर्ण शोथ है। अधिकतर इनसे मध्य व बाह्य कर्ण प्रभावित होते हैं। गाँवों में रहने वाले छोटे बच्चों को यह संक्रमण अधिक होते हैं। कान के संक्रमणों के मुख्य लक्षण कान में दर्द, कान बहना, बाहरी कान का लाल होना है। यदि इनका उपचार न किया जाए तो सुनने की क्षमता में कमी आ सकती है। बच्चों व माता-पिता को कान को साफ रखने के बारे में शिक्षित करना महत्वपूर्ण है।

18.6 शब्दावली

संवेदनहीन धब्बा : त्वचा पर संवेदनहीन धब्बा।

रेशामयता (fibrosis)	:	रेशेदार ऊतक का निर्माण जो की आमतौर पर घाव भरने की प्रक्रिया के दौरान होता है।
वर्ण रोग	:	त्वचा पर छोटे-छोटे फोड़े।
छाजन	:	त्वचा पर एक प्रकार का जीवाण्विक संक्रमण।
कर्णमूल शोथ	:	कान के पीछे हड्डी वाला भाग।
विषाकता (Virulent)	:	रोगजनक (रोग उत्पन्न करने वाला)।

18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) सिर की खाल, बाल, टीनियां केपिटिस

ख) गोलाकार क्षेत्र, पीलापन

ग) केपिटीस, ग्रीसियोफुलविन

2) क) सही

ख) गलत, वर्ण रोग अधिकतर रक्तहीनता या मलेरिया से ग्रस्त व्यक्तियों में होता है।

ग) गलत, बच्चों में फोड़े-फुन्सियां स्टैफिलोकोकस के कारण होते हैं।

घ) गलत, छाजन तथा वर्ण रोग को वाटर वाश रोग कहा जाता है।

च) सही

बोध प्रश्न 2

1) मादा कीट त्वचा में घुस जाती है

↓

अंडे देती है जोकि वयस्क रूप में विकसित हो जाते हैं

↓

रात को बड़ी तेज़ खुजली होती है

↓

अंगुली के बीच में, कमर, जांघ व जनन अंगों के आस-पास संक्रमण देखा जा सकता है

↓

नितम्बों व धड़ के पीछे छाजन दिखाई देना

2)

ट्यूबरक्युलौइड रूप	लैपरोमेटस रूप
• क्षीर्ण रूप में होता है तथा बढ़ता नहीं है	• गंभीर होता है तथा बढ़ता जाता है
• बदरंग धब्बों की संख्या कम होती है	• त्वचा पर धब्बे /घाव अधिक होते है तथा गांठ के रूप में होते हैं

होती है	होते हैं तथा गांठ के रूप में होते हैं
• बालों की वृद्धि रुक जाती है	• बालों की वृद्धि प्रभावित नहीं होती है
• केवल एक ही तंत्रिका प्रभावित होती है	• सभी तंत्रिकाएं समान रूप से प्रभावित होती हैं
...गवों में कोई भी जीवाणु नहीं ...ो जाते हैं	• त्वचा व नाक की पपड़ी में बहुत से जीवाणु पाए जाते हैं

...श्न 3

...) प्रत्यक्ष संपर्क

ख) एक साथ सोना

ग) ...क्खियों के द्वारा संवहन

2) • ...ागी व अप्रभावित व्यक्तियों के संपर्क को रोकना

- अपने अलग तौलियें व रुमालों का प्रयोग करना
- वातावरण को साफ रखना
- रोगी द्वारा धूप के चश्मों का प्रयोग करना

...ध प्रश्न 4

तीव्र पूयक मध्य कर्ण शोथ	कान का दीर्घकालिक आस्राव
• मध्य कान का संक्रमण, जिसमें कान में दर्द, ज्वर व कर्णपटह झिल्ली (tymphanic membrane) का लाल होना व बाहर की तरफ निकलना	• कान से तेज गंध वाला स्राव निकलना
• दर्द होता है	• दर्द नहीं होता है
• कान के परदे में छेद होना	• कान के परदे में बड़ा सा छेद होना

बच्चे को 10 दिन तक मुंह द्वारा पैनिसिलीन की खुराक या अंत:मांसपेशी इंजेक्शन लगाने चाहिए। प्रतिजैविक दवाई की बूंदें कान में दिन में 3 बार डालनी चाहिए। कान में मवाद स्रावित होने पर मवाद को सिरिंज से निकालना चाहिए। दर्द रोकने व ज्वर को नियंत्रित करने के लिए गोलियां देनी चाहिए।

NOTES

NOTES

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

DHEN-02
जन स्वास्थ्य और स्वच्छता

ड

6

न स्वास्थ्य और संबद्ध मुद्दे

ाई 19

ामिक स्वास्थ्य देखभाल – I : अवधारणा और संगठन 5

ाई 20

ामिक स्वास्थ्य देखभाल – II : भारत में वर्तमान स्थिति 14

ाई 21

मिक स्वास्थ्य देखभाल – III : सेवाओं का वितरण 36

ई 22

स्थ्य कार्यक्रम 53

ई 23

सजृन संबंधी कार्यक्रम 76

ई - 24

त्ररण प्रतिरक्षण 105

खंड परिचय

यह पाठ्यक्रम 2 का अंतिम खंड है । 2 - 5 खंडों में आपको समुदाय में विद्यमान सामान्य स्वास्थ्य समस्याओं – उनकी प्रकृति, कारण, उपचार और रोकथाम, से पहले ही परिचित कराया जा चुका है । इस खंड में अब हम जन स्वास्थ्य और उनसे संबंधित मुद्दों का सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करेंगे ।

इकाई 19 से 21 में हमारे देश में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल उपागम और उसके अनुप्रयोग के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। सेवाओं की संकल्पना, संगठन और वितरण के साथ-साथ भारत में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के वर्तमान स्तर के बारे में विस्तृत चर्चा की गई है । *इकाई 22* स्वास्थ्य कार्यक्रमों के बारे में है ।

इस पाठ्यक्रम के *खंड 1* में हमने एक मुद्दे पर चर्चा की है जो कि जन स्वास्थ्य - जनसंख्या से संबंधित है। इस खंड में स्वास्थ्य से संबंधित कुछ अन्य मुद्दों का निरीक्षण किया गया है । आय हमारे जीवन स्तर का प्रमुख निर्धारक है । स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच आय पर निर्भर करती है । अत: वे कार्यक्रम जो लोगों की क्रय-क्षमता को बेहतर बनाते हैं, समुदायों के स्वास्थ्य स्तर को प्रभावित कर सकते हैं । यही विषय-वस्तु *इकाई 23* की है । पर्यावरण सुरक्षा वह दूसरा निर्णायक क्षेत्र है जो स्वास्थ्य को प्रभावित करता है । जैसा कि आप जानते हैं कि स्वास्थ्य और रोग, जल-आपूर्ति, स्वच्छता और प्रदूषण जैसे पर्यावरणीय कारकों से घनिष्ठ रूप से संबद्ध है । मानव के घरेलू और व्यावसायिक कार्यकलापों से पर्यावरण को किस प्रकार क्षति पहुँचती है, इन पहलुओं पर प्रकाश *इकाई-24* में डाला गया है । हमारे स्वास्थ्य पर इसके प्रभाव पर्यावरणीय समस्याओं के संभावित हलों के साथ दिए गए हैं ।

इकाई 19 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल - I : अवधारणा और संगठन

इकाई की रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना

19.2 स्वास्थ्य और स्वास्थ्य का उत्तरदायित्व

19.2.1 स्वास्थ्य देखभाल के विभिन्न स्तर

19.2.2 अलमा अता घोषणा

19.2.3 राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति

19.3 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल (Primary Health Care)

19.3.1 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की विशेषताएँ

19.3.2 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल और विकास

19.4 सारांश

19.5 शब्दावली

19.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

19.1 प्रस्तावना

इस इकाई में स्वास्थ्य की परम्परागत और आधुनिक अवधारणाओं के बारे में चर्चा की गई है। इस इकाई का अध्ययन आपको प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की अवधारणा उसकी विशिष्टताओं और यह अवधारणा विकास से किस प्रकार संबंद्ध है, से अवगत होने में सहायक होगा। इस इकाई में अलमा अता घोषणा(Alma Ata Declaration) के उन प्रमुख मुद्दे पर प्रकाश डाला गया है जिसमें स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के वितरण में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल उपागम के माध्यम से, विश्व के कई देशों ने सन् 2000 तक अपने सभी नागरिकों के लिए स्वास्थ्य देखभाल के न्यूनतम स्तर प्राप्त करने के प्रयासों के लिए प्रतिबद्धता दर्शायी।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- स्वास्थ्य और प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल को परिभाषित कर सकेंगे, और
- प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल अवधारणा की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।

19.2 स्वास्थ्य और स्वास्थ्य का उत्तरदायित्व

ारम्परिक तौर पर रूढ़िगत संदर्भ में स्वास्थ्य शब्द का संकुचित अर्थ – बीमारी का अभाव है। तथापि, ्वकासमान उन्नति और विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी के साथ, अब यह विश्वव्यापी रूप से स्वीकार ःर लिया गया है कि इसके काफी प्रशाखाएं हैं और स्वास्थ्य को उसको पूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखना ा समझना चाहिए। यह तथ्य विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा दी गई स्वास्थ्य की परिभाषा में तिबिंबित होता है। इस परिभाषा के अनुसार : स्वास्थ्य न केवल बीमारी अथवा शारीरिक कमज़ोरी की ानुपस्थिति है, अपितु शारीरिक, मानसिक व सामाजिक रूप से पूर्णतया स्वस्थ होना है। ास्थ्य के भिन्न-भिन्न घटक जिनकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं, संभवत: आपको याद होंगे। ाइए, उन्हें जल्दी से एक बार दोहरा लें। शारीरिक स्वास्थ्य पूर्ण स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण घटक है। च्छे शारीरिक स्वास्थ्य में व्यक्ति का रंग अच्छा, साफ त्वचा, चमकदार आंखें, गठा हुआ शरीर, उचित ख लगना, गहरी निंद्रा, नियमित रूप से शौच आदि और शरीर की क्रियाओं की समायोजित गतिविधियाँ ामिल हैं। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति आत्मसंतुष्टि महसूस करता है, वह अच्छी तरह से समायोजित

होता है और उसका अपने पर अच्छा नियंत्रण होता है। सामाजिक स्वास्थ्य की अवधारणा संतुष्ट व स्थायी मित्रता स्थापित करना, व्यक्ति की क्षमताओं के अनुरूप जिम्मेदारियाँ समझना, सामाजिक रूप से गंभीर व विचारशील व्यवहार दिखाना और दूसरों के साथ अच्छे ढंग से रहना जैसी योग्यताओं को घोषित करता है।

भारत के संविधान में वर्णित है कि अपने राज्य के लोगों के पोषण स्तर और जीवन स्तर को ऊपर उठाना और लोगों में जन-स्वास्थ्य को सुधारना, राज्य सरकार की प्राथमिक कर्त्तव्यों में से हैं। इससे देश में स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की स्वास्थ्य पद्धति को राष्ट्र-व्यापी स्तर पर स्थापित करने में राज्य सरकार का काफी योगदान रहा है। स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं शब्द में मात्र जन स्वास्थ्य सेवाएं ही शामिल नहीं हैं अपितु चिकित्सा देखभाल और उससे संबंधित शिक्षा व अनुसंधान भी इसमें शामिल हैं। ये सेवाएं समुदाय की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के अनुरूप ही विकसित हुई। इससे हमारे समक्ष यह मूल प्रश्न आता है कि हमारे देश में सामान्य स्वास्थ्य समस्याएं क्या हैं? अब तक तो आप इस विषय पर इतना पढ़ चुके हैं कि आप स्वयं इनकी सूची बना सकते हैं। आइए, प्रत्येक समस्या पर संक्षेप में चर्चा करें।

भारत में सामान्य स्वास्थ्य समस्याएं

भारत में पाई जाने वाली सामान्य समस्याएं निम्नलिखित हैं :

i) ***पोषण संबंधी विसंगतियाँ :*** पाँच वर्ष से कम आयु वाले लगभग 80 प्रतिशत बच्चे अल्पपोषित हैं। गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं में से लगभग 50 प्रतिशत महिलाएं पोषणात्मक एनीमिया से ग्रस्त हैं। 1-3 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों में विटामिन ए की कमी एक प्रमुख समस्या है। भारत में लगभग 540 लाख लोग आयोडिन की कमी से होने वाली विसंगतियों से प्रभावित हैं।

ii) ***संचारी रोग :*** मलेरिया, तपेदिक, कुष्ठ रोग, फाइलेरिया, हैजा आदि संचारी रोग हैं जो समुदाय में बीमारी का एक प्रमुख कारण हैं।

iii) ***पर्यावरणीय स्वच्छता संबंधी समस्याएं :*** देश के कई क्षेत्रों में सुरक्षित पेय जल का अभाव और मलमूत्र निपटान के असुरक्षित तरीकों से संक्रमण और ग्रसन का खतरा बढ़ता है। अस्वच्छ व्यवहार, रोग और मृत्यु का विशेषकर बच्चों और महिलाओं में, सर्वाधिक सामान्य कारण है।

हमारे देश में लोगों को प्रभावित करने वाले सामान्य समस्याओं पर ऊपर हमने चर्चा की। इन समस्याओं के अतिरिक्त हमारे देश की निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या अब अन्य स्वास्थ्य समस्या बनती जा रही है। प्रत्येक वर्ष हमारे देश की जनसंख्या में 150 लाख लोगों की वृद्धि होती है।

इन समस्याओं के प्रति सरकार की क्या अनुक्रिया है ? कौन-सी स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं प्रदान की गई है ? स्वास्थ्य को सुधारने हेतु कौन-से स्वास्थ्य देखभाल कार्यकर्ता काम कर रहे हैं ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर आपको निम्नलिखित चर्चा में मिलेंगे।

19.2.1 स्वास्थ्य देखभाल के विभिन्न स्तर

स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं तीन स्तरों पर प्रदान की जाती हैं, जो इस प्रकार हैं :

i) *स्वास्थ्य देखभाल का प्राथमिक स्तर (Primary level of Health Care)*: स्वास्थ्य देखभाल का सर्वाधिक परिधीय स्तर स्वास्थ्य देखभाल का प्राथमिक स्तर कहलाता है (चित्र 19.1)। भारत में ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ताओं की टीम यानी कि ग्रामीण गाइड (Village Guide), प्रशिक्षित दाई, बहु उद्देशीय (multipurpose) महिला व पुरुष कार्यकर्ता समुदाय में प्राथमिक स्तरीय स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं प्रदान करते हैं। विकासशील देशों में अधिकांश सामान्य स्वास्थ्य समस्याएं समुचित रूप से प्रशिक्षित परा चिकित्सा कार्यकर्त्ताओं (जैसा कि ऊपर बताए गए हैं, जो ग्राम स्तर पर कार्य करते है), द्वारा नियंत्रित की जा सकती हैं। इन कार्यकर्त्ताओं के बारे में आप इस इकाई-भाग में पढ़ेंगे।

ii) *स्वास्थ्य देखभाल का द्वितीय स्तर (Secondary level of Health Care)* : कुछ थोड़ी सी ऐसी ही स्वास्थ्य समस्याएं हैं जिनके लिए व्यावसायिक व्यक्तियों की सेवाओं की आवश्यकता होती है। ऐसे स्तर की स्वास्थ्य देखभाल, द्वितीय स्तरीय स्वास्थ्य देखभाल कहलाती है। ये सेवाएं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, समुदाय स्वास्थ्य केन्द्रों, जिला अस्पतालों इत्यादि द्वारा प्रदान की जाती हैं। देखभाल के इस स्तर के अन्तर्गत आने वाली जनसंख्या और उनके ऊपर होने वाले व्यय संबंधी सूचना चित्र 19.1 में दी गई है।

) *स्वास्थ्य देखभाल का तृतीयक स्तर (Tertiary level of Health Care)* : बहुत कम स्वास्थ्य स्थितियों में स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के अत्यधिक विशेष प्रकार की सेवाएें - जो कि राज्य अस्पतालों, मेडिकल कालेज अस्पतालों, राष्ट्रीय संस्थाओ आदि जैसे परिष्कृत अस्पतालों द्वारा प्रदान की जाती है । स्वास्थ्य देखभाल का यह स्तर तृतीयक स्तर कहलाता है जो केवल 1 प्रतिशत जनसंख्या को ही कवर करती हैं । (चित्र 19.1)

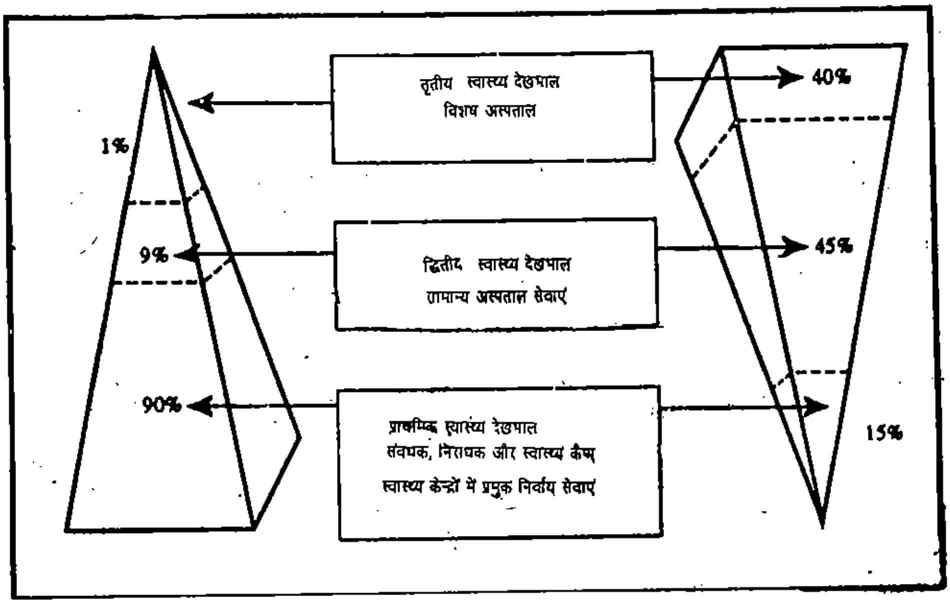

चित्र 19.1 : स्वास्थ्य देखभाल के स्तर

I चर्चा से यह तो प्रमाणित है कि हमारी सरकार का प्रयास जनसंख्या के सभी खंडों के लिए प्रभावी पक स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करना है । अपनी सेवाओं को सुधारने के लिए सरकार ने अलमा अता को अपनाया है और सन् 2000 तक सभी लोगों को स्वास्थ्य प्रदान करने हेतु कार्यरत है । आप चाहेंगे कि अलमा अता घोषणा क्या है । आइए, इस घोषणा से संबंधित जानकारी हासिल करने के नलिखित चर्चा पढ़ें ।

: अलमा अता घोषणा

वास्थ्य संगठन की स्वास्थ्य सभा ने 1976 में संकल्प (resolution) अपनाया जिसके अन्तर्गत सभी लिए प्रभावशाली व्यापक स्वास्थ्य देखभाल के प्रावधान और संवर्धन संबंधी और प्राथमिक स्वास्थ्य I के विकास पर अनुभवों का आदान-प्रदान करने हेतु अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन करने की आवश्यकता की । यह सम्मेलन 1978 में पूर्व सोवियत समाजवादी गणराज्य के काज़क (Kajakh) राज्य की I अलमा अता में हुआ । अंत: सरकारी सम्मेलन में 134 सरकारों के प्रतिनिधिमंडल, और संयुक्त गठनों, विशेषीकृत एजेंसियों और गैर-सरकारी संगठनों के 67 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। निम्नलिखित के साथ सम्मेलन समाप्त हुआ :

i) सम्मेलन ने पुन: इसी बात को सुनिश्चित किया कि स्वास्थ्य (न केवल बीमारी अथवा शारीरिक कमज़ोरी की अनुपस्थिति, अपितु शारीरिक, मानसिक व सामाजिक रूप से पूर्णता स्वस्थ होना ही स्वास्थ्य है) मूल मानव अधिकार है और स्वास्थ्य के उच्चतम संभावित स्तर को प्राप्त करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण विश्वव्यापी सामाजिक लक्ष्य है ।

ii) लोगों के स्वास्थ्य स्तर में वर्तमान पूर्व असनानता राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से अस्वीकार्य है और इसीलिए सभी देशों के लिए यह विचारणीय विषय है।

iii) सभी के लिए पूर्ण स्वास्थ्य की उपलब्धि तथा विकासशील और विकसित देशों के स्वास्थ्य स्तर में अंतराल को कम करने में आर्थिक और सामाजिक विकास की मूल प्रमुख महत्ता है।

iv) लोगों का अधिकार व उनका कर्तव्य है कि वे अपनी स्वास्थ्य देखभाल की योजना और कार्यान्वियन में व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से भाग लें ।

v) लोगों के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी सरकार पर है और इसे केवल समुचित स्वास्थ्य और सामाजिक उपायों के प्रावधान द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। आने वाले दशकों में सरकारों, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों और संपूर्ण विश्व के समुदाय का प्रमुख सामाजिक लक्ष्य सन् 2000 तक विश्व के सभी लोगों द्वारा स्वास्थ्य के स्तर को प्राप्त करना होना चाहिए जो लोगों को सामाजिक और आर्थिक रूप से उत्पादक जीवन यापन करने की ओर प्रवृत्त करेगा।

vi) प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल इस लक्ष्य की प्राप्ति करने की प्रमुख कुंजी है।

vii) सभी सरकारों को राष्ट्रीय नीतियाँ, कार्यनीतियाँ और कार्य योजनाएं बनानी चाहिए ताकि व्यापक राष्ट्रीय स्वास्थ्य पद्धति के एक हिस्से के रूप में वे प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल को प्रारम्भ व जारी रख सकें।

viii) सभी व्यक्तियों के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सुनिश्चित करने हेतु सभी देशों को साझेदारी और सेवा की भावना से सहयोग करना चाहिए।

ix) सन् 2000 तक विश्व के संसाधनों के बेहतर और पूर्ण प्रयोग द्वारा विश्व के सभी व्यक्तियों के लिए स्वास्थ्य के स्वीकार्य स्तर को प्राप्त किया जा सकता है।

हमारी सरकार इस घोषणा का पालन करेगी। इसी आधार पर एक राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति निर्मित की गई। इस नीति का वर्णन अगले उप-भाग में किया गया है।

10.2.3 राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति

संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग और समुदाय सदस्यों के स्वास्थ्य के संवर्धन में हिस्सा लेने वाले विभिन्न विभागों और मंत्रालयों के प्रयासों में समन्वय के लिए भारत ने 1983 में स्वास्थ्य नीति विकसित की। नीति की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

i) प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल उपागम के आधार पर स्वास्थ्य के बुनियादी ढाँचे का पुनर्गठन।

ii) सरकारी स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के वितरण में शामिल स्वास्थ्य कार्मिकों का पुन: अभिविन्यास।

iii) खाद्य और कृषि, जल आपूर्ति और स्वच्छता: शिक्षा: ग्राम विकास: सामाजिक कल्याण जैसे अन्य क्षेत्रों को शामिल करना और अन्त: क्षेत्रीय समन्वय।

iv) प्राथमिक क्षेत्रों पर प्रमुख बल। इसके अन्तर्गत जनसंख्या नियंत्रण, मातृक और बाल स्वास्थ्य, टीकाकरण, जल आपूर्ति और स्वच्छता, स्कूल स्वास्थ्य, पोषण और व्यावसायिक स्वास्थ्य आते हैं।

v) पहचाने गए प्राथमिकता क्षेत्रों में प्रायोगिक अनुसंधान।

vi) स्वास्थ्य और परिवार नियोजन गतिविधियों में गैर-सरकारी संगठनों को शामिल करना।

vii) स्वास्थ्य और जनसंख्या शिक्षा।

viii) औषधिक स्वदेशी पद्धति को शामिल करना।

ix) आयुर्विज्ञान शिक्षा पद्धति को समुदाय – उन्मुख बनाने के लिए उसमें सुसंगत परिवर्तन करना।

x) औषधि, पोषण, आयुर्विज्ञान, शिक्षा और बच्चों पर राष्ट्रीय नीति विकसित करना।

बोध प्रश्न - 1

1) स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों को सूचीबद्ध कीजिए।

....

....

....

....

....

हमारे देश में तीन प्रमुख स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं क्या हैं?

....

....

....

स्वास्थ्य देखभाल के प्राथमिक स्तरों पर शामिल स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं की सूची बनाइए।

....

....

....

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति दस्तावेज में पहचाने गए जिन तीन प्रमुख क्षेत्रों पर बल दिया गया है उनके बारे में बताइए।

....

....

....

3 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल (Primary Health Care)

कि आपने पढ़ा, अलमा अता घोषणा के अन्तर्गत सभी व्यक्तियों के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल कास पर बल दिया गया है। प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की क्या अवधारणा है ? इसके बारे में हम भाग में पढ़ेंगे।

न देशों और विकासशील विश्व में जनसंख्या के स्वास्थ्य स्तर के बीच व्यापक अंतर है। -अलग विकासशील देशों के बीच भी धनी और निर्धनों के स्वास्थ्य में यह अन्तर स्पष्ट रूप से दृष्टिगत है। समुदाय के बेहतर स्वास्थ्य स्तर को उपलब्ध तकनीकी ज्ञान के साथ भी प्राप्त किया जा सकता है। ग्यवश, अधिकांश देशों में इस तकनीकी ज्ञान का लाभ नहीं उठाया जा रहा है। स्वास्थ्य संसाधन प्रमुख शहरी क्षेत्रों के परिष्कृत चिकित्सा संस्थाओं को आबंटित किए गए हैं। वास्तव में, स्वास्थ्य में सुधार त अस्पतालों द्वारा प्रदान की जाने वाली चिकित्सा देखभाल के समान ही माना जा रहा है। इसके साथ य, संवेदनशील वर्ग के लिए स्थायी रूप से किसी भी प्रकार की स्वास्थ्य देखभाल सुविधा उपलब्ध नहीं वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध होने पर भी वे धन के अभाव व सांस्कृतिक निषेधों के कारण इन सेवाओं का भ नहीं उठा पाते। इसके अतिरिक्त अधिकांश विकासशील देशों ने पश्चिमी मॉडल पर आधारित अपनी स्वास्थ्य देखभाल वितरण प्रणाली विकसित कर ली है। इस प्रकार अधिकांश परंपरागत स्वास्थ्य ल प्रणालियाँ निरंतर जटिल, और महंगी बनती जा रही हैं और इनकी सामाजिक प्रासंगिकता पर भी होने लगा है।

उपलब्ध धन होते हुए, ऐसे में इसका क्या विकल्प है ? इस समस्या का उत्तर प्राथमिक स्वास्थ्य ल है। प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल उपागम लागत - प्रभावी होने के साथ-साथ समुदाय की स्वास्थ्य ओं पर काफी प्रभाव डालता है – लेकिन इसे प्रस्तुत (introduce) करना कठिन है। दूसरी ओर स्वास्थ्य देखभाल को प्रस्तुत करना आसान है किन्तु यह खर्चीली होने के साथ-साथ स्वास्थ्य ओं पर बहुत कम प्रभाव छोड़ती है। आइए प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल उपागम को समझें।

क स्वास्थ्य देखभाल ऐसा उपागम है जिसका लक्ष्य विश्वभर में आगामी समय में उचित लागत पर).2) स्वास्थ्य के स्वीकार्य स्तर को हासिल करना है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य देखभाल को इस प्रकार परिभाषित किया है, *''समुदाय के व्यक्तियों और परिवारों की सम्पूर्ण सहभागिता के साथ अनिवार्य स्वास्थ्य देखभाल को स्वीकार्य और समर्थशील तरीके से सार्वभौमिक रूप से सुलभ बनाना।''* विभिन्न देशों की स्वास्थ्य सेवाओं के वितरण से प्राप्त सकारात्मक और नकारात्मक अनुभवों के प्रकाश में पिछले कुछ वर्षों में इस उपागम का उद्‌गम हुआ है।

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल समुदाय के लोगों की प्रमुख स्वास्थ्य समस्याओं की व्याख्या करते हुए *संवर्धक, निरोधक, निवार्य और पुनर्वास सेवाएं* प्रदान करता है। स्वास्थ्य देखभाल को सार्वभौमिक रूप से सुलभ बनाने हेतु योजना बनाने, उसे संगठित करने व उसके प्रबंधन में समुदायों को शामिल करना अनिवार्य है और ऐसा समुचित शिक्षा के माध्यम से ही किया जा सकता है।

यदि स्थानीय समुदाय से चुने गए स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं और समुदाय की स्वास्थ्य समस्याओं को ध्यान में रखकर समुचित रूप से प्रशिक्षित लोगों द्वारा प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल वितरित की जाए तो यह अत्यधिक प्रभावशाली और अल्पव्ययी होगी। इन समुदाय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं को वर्तमान सरकार की स्वास्थ्य प्रणाली का समर्थन भी प्राप्त होना चाहिए। चूँकि स्वास्थ्य, मात्र स्वास्थ्य सेक्टर द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है अत: आर्थिक विकास, खाद्य-उत्पादन, जल, स्वच्छता, आवास और शिक्षा के लिए अन्य सेक्टरों में समुचित उपाय भी अपेक्षित हैं।

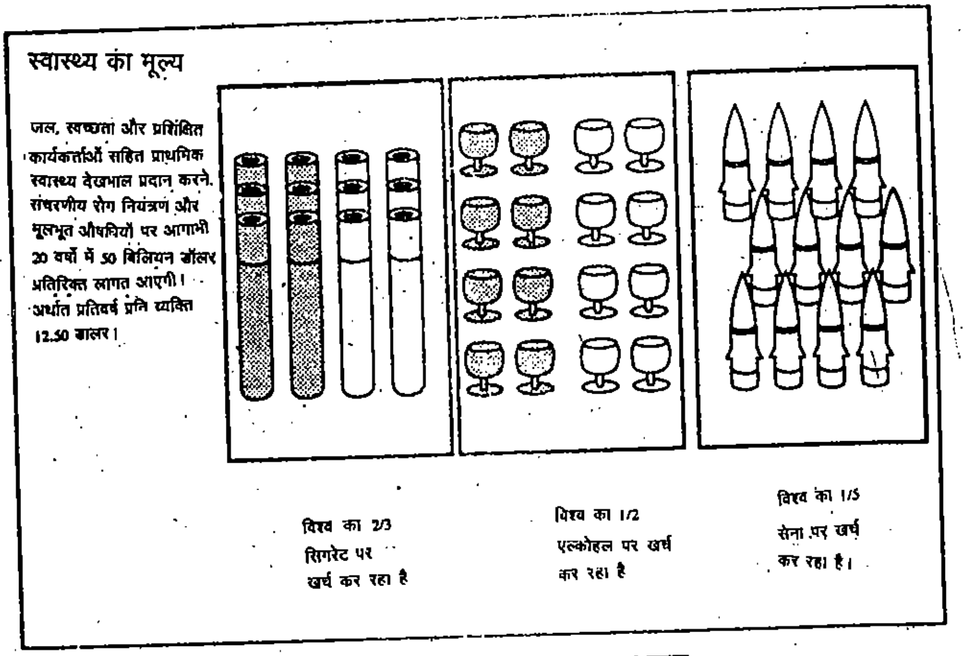

चित्र 19.2 : स्वास्थ्य का मूल्य

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की राजनैतिक वचनबद्धता भी उपलब्ध होनी चाहिए जिसका अर्थ हुआ कि इसे सरकार व समुदाय के नेताओं का समर्थन प्राप्त है। इसके लिए राष्ट्रीय स्वास्थ्य विकास नीतियों का पुन: अभिविन्यास और सेवाधीन अधिकांश जनसंख्या के लिए स्वास्थ्य संसाधनों के अधिकांश हिस्से का हस्तांतरण भी अपेक्षित है।

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की प्रमुख विशेषताएं अगले भाग में वर्णित हैं।

19.3.1 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की विशेषताएं

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

i) यह अनिवार्य स्वास्थ्य देखभाल है जो व्यवहार, वैज्ञानिक रूप से युक्तिसंगत और सामाजिक रूप से स्वीकार्य उपायों और प्रौद्योगिकी पर आधारित है।

ii) यह समुदाय के व्यक्तियों और परिवारों को उनकी पूर्ण सहभागिता के साथ सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य होनी चाहिए।

iii) इसकी उपलब्धता की लागत समुदाय और देश के सामर्थ्य में होनी चाहिए।

iv) यह समुदाय के लोगों की प्रमुख समस्याओं की व्याख्या करते हुए तदनुसार संवर्धक, निरोधक निवार्य और पुनर्वास सेवाएं प्रदान करती है ।

v) यह स्वास्थ्य सेक्टर के अतिरिक्त समुदाय विकास से संबद्ध अन्य सभी सेक्टरों को शामिल करती है।

vi) यह अधिकतम समुदाय और व्यक्तिगत आत्म-निर्भरता को संवर्धित करता है और स्थानीय संसाधनों के पूर्णतया उपयोग करते हुए इसकी योजना बनाने, संगठन और कार्यान्वयन में समुदाय की सहभागिता को प्रोत्साहित करती हैं ।

vii) इसकी समन्वित और कार्यशील संदर्भ प्रणाली होनी चाहिए ।

viii) यह स्वास्थ्य टीम के रूप में काम करने के लिए सही रूप से प्रशिक्षित और समुदाय द्वारा व्यक्त स्वास्थ्य जरूरतों के प्रतिक्रिया दिखाने वाले स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं और समुदाय कार्यकर्त्ताओं को दिए गए स्थानीय परामर्शों पर निर्भर करती है ।

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की अवधारणा को समझने/जानने के पश्चात् आप स्वयं भली-भांति देख सकते हैं कि किस प्रकार अच्छा स्वास्थ्य प्रदान करके जीवन-स्तर और रहन-सहन को बेहतर बनाया जा सकता है । अगले भाग 19.3.2 में स्वास्थ्य और विकास के बीच संबंध पर प्रकाश डाला गया है ।

19.3.2 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल और विकास

विकास का निहित अर्थ-समाज और उसके सदस्यों के रहन-सहन की परिस्थितियों और जीवन के स्तर में उत्तरोत्तर सुधार है । यह एक सतत् प्रक्रिया है । स्वास्थ्य का स्तर स्वीकार्य होने पर ही लोग विकास के लाभ का फायदा उठा सकते हैं । चूँकि, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सभी व्यक्तियों द्वारा स्वास्थ्य के स्वीकार्य स्तर को प्राप्त करने की कुँजी है, अत: यह लोगों को अपने सामाजिक और आर्थिक विकास में योगदान देने में सहायक होता है ।

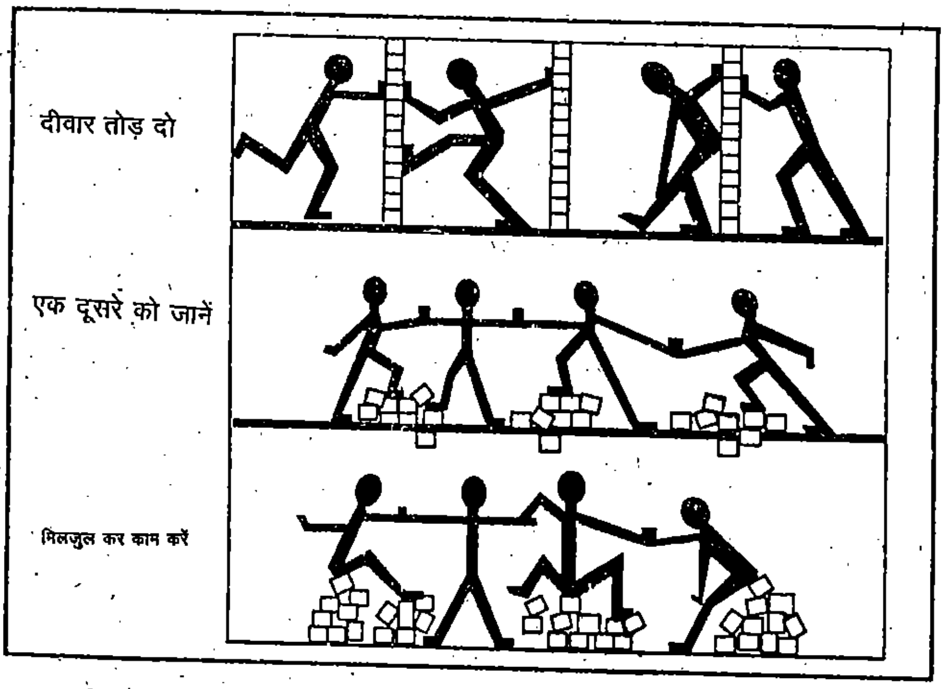

एक उदाहरण के रूप में, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल उपागम द्वारा रोगों की रोकथाम सामान्य रूप में विकास के संवर्धन में सहायक होगी । समुचित पोषण और बीमारी में कटौती से कार्य - उत्पादकता में वृद्धि होगी । कुपोषण और संक्रमण के दुश्चक्र को तुडवा कर बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास को बेहतर बनाया जा सकता है ।

बोध प्रश्न - 2

1) प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल को परिभाषित कीजिए ।

....

....

....

....

....

2) प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल द्वारा प्रदान किए जाने वाले चार सेवाओं को सूचीबद्ध कीजिए ।

....

....

....

....

19.4 सारांश

इस इकाई में आप स्वास्थ्य और प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की अवधारणा से परिचित हुए । रोग की अनुपस्थिति ही नहीं परन्तु स्वास्थ्य का शारीरिक, मानसिक और सामाजिक हित के क्षेत्रों में व्यापक आयाम है। स्थानीय समुदायों के पूर्ण योगदान सहित और अधिक आर्थिक और प्रभावी ढंग से प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की अवधारणा समुदाय में स्वास्थ्य सेवाओं के वितरण के वैकल्पिक उपागम है ।

इस इकाई में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की विभिन्न विशेषताओं की भी चर्चा की गई और इस संबंध में इस अवधारणा में अलमा अता घोषणा के रूप में किए गए अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों का भी वर्णन किया गया है ।

19.5 शब्दावली

समुदाय	:	निर्धारित भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले लोगों का समूह।
समुदाय सहभागिता	:	यह वह प्रक्रिया है जिसमें निर्धारित भौगोलिक क्षेत्रों में रहने वाले लोग निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए लक्ष्यों का पता लगाते हैं, योजना बनाते है और कार्यक्रमों का कार्यान्वयन करते हैं।
समुदाय की स्वास्थ्य समस्याएं	:	समुदाय के लोगों की प्रमुख स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं।
निवार्य सेवाएं	:	वे सेवाएं जो बीमार (रोग ग्रस्त) व्यक्ति को उसकी रोग के उपचार हेतु दी जाती हैं। उदाहरणार्थ, अस्पताल में रोगियों को प्रदान की जाने वाली सेवाएं ।
अनिवार्य स्वास्थ्य देखभाल	:	व्यक्ति को प्रदान किए जाने वाला स्वास्थ्य देखभाल का न्यूनतम स्तर जो उसे सामाजिक और आर्थिक रूप से उत्पादनकारी जीवन जीने का सामर्थ्य प्रदान करता है ।

निरोधक सेवाएं	:	समुदाय को प्रदान की जाने वाली वह स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं जो रोगों की घटनाओं की रोकथाम करती है जैसे बच्चों को दिए जाने वाले प्रतिरक्षी टीके ।
संवर्धक सेवाएं	:	स्वास्थ्य और स्वास्थ्यप्रद आदतों को प्रोत्साहित करने हेतु समुदाय को प्रदान की जाने वाली सेवाएं ।
संदर्भ सेवाएं	:	उच्चतर स्तर वाले स्वास्थ्य संस्थाओं में उपलब्ध सेवाएं ।

19.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1) शारीरिक, मानसिक, सामाजिक

2) पोषणहीनता जन्य विसंगतियाँ

   संचरणीय रोग

   पर्यावरणीय स्वच्छता

3) प्रशिक्षित दाई

   ग्रामीण स्वास्थ्य गाइड

   बहु-उद्देशीय कार्यकर्त्ता (पुरुष और महिला)

4) अन्त: क्षेत्रीय समन्वय
   स्वास्थ्य में गैर-सरकारी संगठनों को शामिल करना
   स्वास्थ्य कर्मिकों का पुन: अभिविन्यास।

बोध प्रश्न - 2

1) समुदाय के व्यक्तियों और परिवारों की सम्पूर्ण सहभागिता के साथ अनिवार्य स्वास्थ्य देखभाल को स्वीकार्य और समर्थशील तरीके से सार्वभौमिक रूप से सुलभ बनाना ।

2) संवर्धक, निरोधक, निवार्य और पुनर्वास।

इकाई 20 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल – II : भारत में वर्तमान स्थिति

इकाई की रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना

20.2 स्वास्थ्य देखभाल वितरण सेवाओं के विकास का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

20.3 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के विकास की वर्तमान स्थिति

20.3.1 बहु-उद्देशीय कार्यकर्त्ता (Multipurpose Worker) (एम.पी.डब्ल्यू.) योजना

20.3.2 ग्रामीण स्वास्थ्य गाइड योजना

20.3.3 ग्रामीण दाइयों का प्रशिक्षण

20.4 विभिन्न स्तरों पर स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं

20.4.1 ग्रामीण स्तर

20.4.2 उप-केन्द्र स्तर

20.4.3 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्तर

20.4.4 समुदाय स्वास्थ्य केन्द्र

20.4.5 तालुका अस्पताल

20.4.6 जिला स्तर

20.5 सन् 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य के लक्ष्य

20.5.1 भारत में स्वास्थ्य अवसंरचना का स्तर

20.6 सारांश

20.7 शब्दावली

20.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.1 प्रस्तावना

इस इकाई में भारत की स्वास्थ्य देखभाल वितरण सेवाओं के ऐतिहासिक विकास और प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की वर्तमान स्थिति का वर्णन किया गया है। इसमें ग्राम उप-केन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, समुदाय स्वास्थ्य केन्द्र, ताल्लुका और जिला-स्तर पर उपलब्ध स्वास्थ्य वितरण सेवाओं का भी उल्लेख किया गया है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- भारत में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं को प्रदान करने वालों का वर्णन कर सकेंगे, और
- विभिन्न स्तरों पर स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने वाली संस्थाओं के बारे में बता सकेंगे।

20.2 स्वास्थ्य देखभाल वितरण सेवाओं के विकास का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत में स्वास्थ्य विकास और प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल वैदिक काल से ही विचारणीय विषय रहा है। 3000 ई.पू. सिन्धु घाटी सभ्यता के युग में भी शहरों में सुविकसित नालियाँ, जन-स्नानगृह इत्यादि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। स्वास्थ्य को दैनिक जीवन में उच्च वरीयता दी जाती थी और स्वास्थ्य की इस अवधारणा

में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक हित शामिल थे। जीवन-शैली स्वास्थ्य संवर्धन और रोजमर्रा की गतिविधियाँ - जो दिनचर्या कहलाती थी, की प्रेरक थी। स्वास्थ्य देखभाल की जिन अनिवार्यताओं पर बल दिया गया वे हैं - स्वास्थ्य शिक्षा, व्यक्तिगत स्वच्छता व्यायाम, भोजन संबंधी प्रचलन, खाद्य-स्वच्छता, पर्यावरणीय स्वच्छता, आचरण संहिता, स्व-अनुशासन, नागरिक और आध्यात्मिक मूल्य इत्यादि। दुर्भाग्यवश, कई कारणों से विशेष रूप से विदेशी आक्रमणों के कारण, आयुर्वेदिक पद्धति राज्य संरक्षण और मान्यता के अभाव में विकसित नही हो पाई। 18वीं शताब्दी के मध्य में ब्रिटिश सरकार ने भारत में ऐसी चिकित्सा सेवाएं स्थापित की जो प्रमुख रूप से ब्रिटिश सेना और कुछ विशेष सुविधा प्राप्त सिविल सेवाओं के लिए लाभप्रद थीं। लेकिन जनसंख्या के अधिकांश लोगों तक पश्चिमी दवाइयां सुलभ नहीं थी। महामारियों के नियंत्रण के लिए कुछ निवारक उपाय प्रदान किए गए और कुछ दूरस्थ गाँवों में डिस्पैंसरियाँ खोली गई। 1919 में प्रान्तीय स्वास्थ्य विभागों की स्थापना की गई लेकिन स्वास्थ्य योजना व चिकित्सा-शिक्षा दोनों का संबंध लोगों की स्वास्थ्य जरूरतों से नहीं था। सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में वर्तमान स्वास्थ्य परिस्थितियों और स्वास्थ्य संगठनों के सर्वेक्षण और भावी विकास हेतु सिफारिशें तैयार करने के लिए सरकार द्वारा स्वास्थ्य सर्वेक्षण में स्वास्थ्य देखभाल वितरण सेवाएं और विकास समिति (भोर समिति) नियुक्त की गई। समिति ने प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के माध्यम से ग्रामीण जनता को निरोधक, संवर्धक और निवार्य स्वास्थ्य सेवाओं के वितरण का सुझाव दियां।

अक्तूबर 1952 में, समेकित सर्वांगीण ग्राम विकास कार्यक्रम के लिए समुदाय विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। प्रत्येक समुदाय विकास खंड के लिए एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (पी.एच.सी.) स्थापित करने का प्रस्ताव रखा गया। उस समय पी.एच.सी. का संचालनात्मक उत्तरदायित्व था - चिकित्सा देखभाल प्रदान करना, जिसके अन्तर्गत संचरणीय रोगों का नियंत्रण, मातृक और बाल-स्वास्थ्य, पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा, स्कूल स्वास्थ्य पर्यावरणीय स्वच्छता और जीवन-मृत्यु आंकड़ों का संग्रहण शामिल है (चित्र 20,1)।

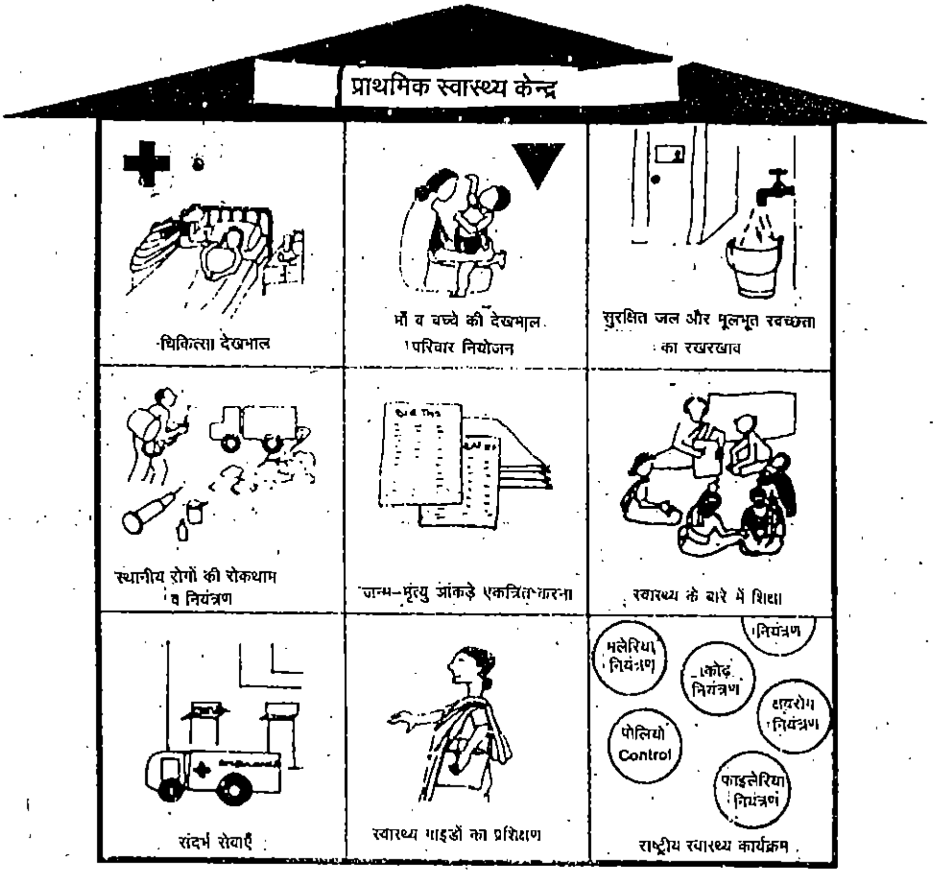

चित्र 20.1 : प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की गतिविधियाँ

बाद में विभिन्न विशेषज्ञ समितियों - मुदालियर (Mudaliar) समिति (1961), मुकर्जी समिति (1974) और श्रीवास्तव समिति (1975) - के समीक्षा के फलस्वरूप स्वास्थ्य सेवाएं, संगठन और उसके बुनियादी ढाँचे में व्यापक परिवर्तन और विस्तार हुए।

सन् 1978 में भारत ने अलमा अता घोषणा पर हस्ताक्षर किए और सन् 2000 तक सभी नागरिकों के लिए स्वास्थ्य देखभाल के न्यूनतम स्तर को प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध हुए। 1983 में भारत में राष्ट्रीय स्वास्थ्य

नीति अपनाई गई, जिसके द्वारा प्राथमिक देखभाल उपागम में स्वास्थ्य के बुनियादी ढाँचे को पुन: संगठित व दिशा प्रदान करने के लिए अनिवार्य राजनैतिक प्रतिबद्धता प्रदान की गई (चित्र 20.2)।

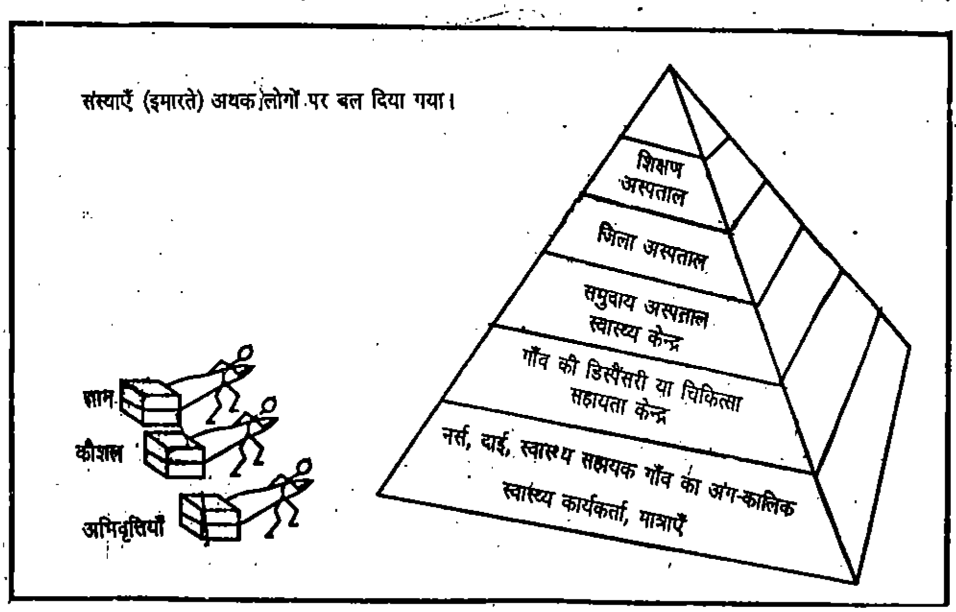

चित्र 20.2 : प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल उपागम

20.3 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के विकास की वर्तमान स्थिति

विभिन्न-विभिन्न समुदायों की विभिन्न सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार ने स्वास्थ्य देखभाल वितरण की बुनियादी संरचना में कई नवीन परिवर्तन प्रस्तुत किए । जो विविध योजनाएं प्रस्तुत की गई उनमें निम्नलिखित शामिल है।

20.3.1 बहु-उद्देशीय कार्यकर्त्ता (Multipurpose Worker) (एम.पी.डब्ल्यू.) योजना

एम.पी.डब्ल्यू योजना 1974 में प्रस्तुत की गई । इसका प्रमुख उद्देश्य था एक-उद्देशीय कार्यक्रमों को समन्वित बहु-उद्देशीय बनाना । पी.एच.सी. स्तर पर परा-चिकित्सा स्टाफ को स्वास्थ्य सहायकों (महिला और पुरुष) के रूप में नया पदनाम दिया गया ।

वे स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं - महिला और पुरुष - के लिए पर्यवेक्षकों के रूप में कार्य करते हैं और वी.एच.जी. (ग्राम स्वास्थ्य गाइड) और दाइयों को उप-केन्द्रों में तैनात किया गया । इन कार्यकर्त्ताओं की भूमिका, उत्तरदायित्व व कार्य-विवरण तद्नुसार रूपांतरित किए गए है । किए जाने योग्य विभिन्न स्वास्थ्य क्रियाओं के संदर्भ में विभिन्न स्तरों पर इन कार्यकर्त्ताओं के पुन:अभिविन्यास हेतु एम.पी.डब्ल्यू योजना के अन्तर्गत समुचित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं ।

बहु-उद्देशीय कार्यकर्त्ता योजना के अधीन 50,000 जनसंख्या के लिए एक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष/महिला), नियुक्त किया गया जिसपर निम्नलिखित कार्य करने का दायित्व होता है :

बहु-उद्देशीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष) का उत्तरदायित्व

- मलेरिया
  - बुखार संबंधी मामलों का पता लगाना।
  - सभी बुखार संबंधी मामलों में, रोगियों के रक्त की मोटी और पतली रक्त की फिल्में बनाना।
  - स्लाइडों को प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए भेजना।
  - बुखार के सभी मामलों में संभावित उपचार देना।

- रक्त फिल्मों (blood film) की जाँच के परिणामों को रिकार्ड करना।
- सकारात्मक रक्त फिल्मों (Positive blood films) के सभी मामलों को स्वास्थ्य सहायक (पुरुष) के पास उपचार के लिए भेजना।
- बुखार के मामलों में, रक्त की जाँच, बुखार के उपचार, घरों में कीटनाशक दवाइयों के छिड़काव, लारवानाशी उपाय और मलेरिया को फैलने को नियंत्रित करने संबधी अन्य उपायों की महत्ता के लिए समुदाय को शिक्षित करना।

संचरणीय रोग

- घरों का दौरा करते हुए हैजा, प्लेग, पोलियो, और लगातार ज्वर से पीड़ित व्यक्तियों, या लम्बे समय से हो रही खाँसी या थूक में खून आना जैसे अधिसूचित रोगों (notifiable diseases) के मामलों का पता लगाना और स्वास्थ्य सहायक (पुरुष) और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में उनके बारे में सूचना देना।
- स्वास्थ्य सहायक (पुरुष) के पहुँचने तक नियंत्रण उपाय कार्यान्वित करना।
- क्षय-रोग सहित संचरणीय रोगों संबंधी नियंत्रण और निरोधक उपायों की महत्ता के बारे में लोगों को शिक्षित करना।
- स्वास्थ्य सहायक (पुरुष) को लावारिस कुत्तों (stray dogs) की उपस्थिति की रिपोर्ट करना ।

पर्यावरणी स्वच्छता

- नियमित अन्तरालों पर कुओं सहित जन जल स्रोतों को क्लोरीनित करना ।
- समुदाय को (क) तरल अपशिष्टों के निपटान की विधि; (ख) ठोस अपशिष्टों के निपटान की विधि; (ग) गृह - स्वच्छता, (घ) सैनिटरी प्रकार के शौचालयों का प्रयोग और लाभ; (च) धुआं रहित चुल्हों को बनाना व प्रयोग संबंधी शिक्षा प्रदान करना ।
- समुदाय की (क) सिक्तन गर्त (Soakage pits); (ख) घरेलू बागवानी; (ग) खाद गर्त (manure pits); (घ) कम्पोस्ट गर्त; (च) स्वच्छता शौचालयों के बनाने में सहायता करना ।

टीकाकरण

- टीका लगवाने योग्य सभी बच्चों को डी.पी.टी., बी.सी.जी., खसरे और मुँह द्वारा दिए जाने वाला पोलियो का टीका देना।
- स्कूल टीकाकरण कार्यक्रम में स्वास्थ्य सहायक (पुरुष) की सहायता करना।
- समुदाय के लोगों को विभिन्न संचरणीय रोगों के विरुद्ध टीकाकरण की महत्ता के बारे में शिक्षित करना।

प्रशिक्षण

- स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला) की सहायता से दाइयों के लिए प्रशिक्षण आयोजित करना।

मातृक व बाल स्वास्थ्य

- स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष) की सहायता से प्रत्येक उप-केन्द्र में साप्ताहिक मातृक व बाल स्वास्थ्य क्लिनिक संचालित करना।
- स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला) और प्रशिक्षित दाइयों और स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष) के बुलावे पर प्रतिक्रिया दिखाना और आवश्यक सहायता प्रदान करना।

परिवार कल्याण

- स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला) की सहायता से प्रत्येक उप-केन्द्र पर एम.सी.एच. (MCH) क्लिनिकों के अतिरिक्त साप्ताहिक कल्याण क्लिनिक संचालित करना।
- परिवार नियोजन के प्रति विरोध रखने वाले मामलों को प्रेरित करना।
- चिकित्सीय गर्भपात (MTP) की सेवाएं कहाँ-कहाँ उपलब्ध हैं, सूचना प्रदान करना और उचित मामलों को अनुमोदित संस्थाओं में भेजना।

- गर्भ निरोधकों के वितरण के लिए महिला डिपो धारकों (depot holder) को स्थापित करने में स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला) की सहायता से डिपो धारकों को प्रशिक्षित करना।

- **पोषण**
  - शिशुओं और छोटे बच्चों (0-5 वर्ष के) में कुपोषण के मामलों का पता लगाना, अनिवार्य उपचार व सलाह देना, गंभीर मामलों को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में भेजना।

- **प्राथमिक चिकित्सा देखभाल**
  - छोटी-मोटी बीमारियों का उपचार करना, दुर्घटनाओं और आपातकालों में प्राथमिक सहायता प्रदान करना, अपनी क्षमता से बाहर के मामलों को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या नजदीकी अस्पताल में भेजना।

- **स्वास्थ्य शिक्षा**

- स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला) की सहायता से एम.सी.एच. में शैक्षिक कार्यकलाप, परिवार नियोजन, पोषण और टीकाकरण कार्यान्वित करना।
- नेताओं के साथ समूह बैठके आयोजित करना और विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रमों के लिए संदेश प्रेषित करने में उन्हें सम्मिलित करना।
- स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला) की सहायता से महिला नेताओं के लिए प्रशिक्षण आयोजित व संचालित करना।
- परिवार कल्याण कार्यक्रमों के अन्तर्गत समुदाय में महिला मंडलों, अध्यापकों और महिलाओं को संगठित करना।

वे निम्नलिखित कार्य करेगी :

बहु-उद्देशीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला) के उत्तरदायित्व

मातृक व बाल स्वास्थ्य

- गर्भावस्था की पूरी अवधि में गर्भवती महिलाओं का पंजीकरण करना और उनकी देखभाल करना ।
- अपने घरेलू दौरों के दौरान या क्लिनिक में गर्भवती महिलाओं में ऐल्बूमिन व शर्करा की मात्रा का पता लगाने के लिए उनके मूत्र की जाँच करना।
- असामान्य गर्भता और स्त्री-रोग संबंधी व चिकित्सा संबंधी समस्याओं के मामले को स्वास्थ्य सहायक (महिला) या प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के पास भेजना ।
- कुल प्रसवों के लगभग 50% प्रसवों का अपने ही क्षेत्र में निपटान करना ।
- दाइयों द्वारा किए जाने वाले प्रसवों का पर्यवेक्षण करना । आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता करना ।
- मुश्किल प्रसूति और अपसामान्यताओं वाले नवजात शिशुओं के मामलों को आगे भेजना और उन्हें संस्थागत देखभाल प्राप्त कराने में उनकी सहायता करना, अस्पताल भेजे गए या अस्पताल से छुट्टी प्राप्त रोगियों के मामलों में अनुवर्ती देखभाल प्रदान करना ।
- गहन स्थितियों में किए गए प्रसव के मामले में कम से कम तीन सप्ताह बाद प्रसवोत्तर जाँच करने के लिए वहाँ जाना और जच्चा की देखभाल व नवजात को स्तनपान संबंधी जानकारी उसको देना ।
- शिशु की वृद्धि और विकास का मूल्यांकन करना और आवश्यक कार्यवाही करना ।
- उप-केन्द्रों पर एम.सी.एच. और परिवार नियोजन आयोजित करने में चिकित्सा अधिकारी और स्वास्थ्य सहायक (महिला) की सहायता करना ।
- एम.सी.एच., परिवार नियोजन, पोषण, टीकाकरण, संचरणीय रोगों के नियंत्रण, निजी व्यक्तिगत और पर्यावरणीय स्वास्थ्य विज्ञान और छोटी-मोटी बीमारियों की देखभाल सहित

परिवार के बेहतर स्वास्थ्य के लिए माताओं को व्यक्तिगत रूप से तथा समूह में शिक्षित करना।

- **परिवार नियोजन**

परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिए पात्र दम्पत्ति पंजिका में पंजीकृत सूचना का प्रयोग करना।

– दम्पत्तियों तक परिवार नियोजन का संदेश पहुँचाना और प्रत्येक दम्पत्ति को व्यक्तिगत रूप से तथा समूहों में परिवार नियोजन के लिए अभिप्रेरित करना।

– दम्पत्तियों में परम्परागत गर्भनिरोधकों को वितरित करना, उन्हें सुविधाएं प्रदान करना, और यदि आवश्यक हो तो, स्वीकार करने वाले दम्पत्तियों को परिवार-नियोजन सेवाएं प्रदान करना। इसके लिए आप या तो उनके साथ अस्पताल जा सकते हैं या उनके लिए दाइयों की व्यवस्था कर सकते हैं।

– परिवार नियोजन स्वीकार करने वाली (स्वीकारी) महिलाओं को अनुवर्ती सेवाएं प्रदान करना, उसके सह-प्रभावों का पता लगाना, सह-प्रभावों और छोटी-मोटी शिकायतों के निवारण हेतु वहीं पर उपचार देना और वे मामले जिनमें फिज़ीशियन द्वारा ध्यान देने की आवश्यकता हो, उन्हें प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र / अस्पताल में भेजना।

– महिला डिपो धारकों को स्थापित करना; उनके प्रशिक्षण में स्वास्थ्य सहायक (महिला) की सहायता करना; डिपो धारकों को पारंपरिक निरोधको की आपूर्ति जारी रखना।

– स्वीकारियों, गाँव के नेताओं, दाइयों और अन्य लोगों से सौहार्द स्थापित करना और इनकी सहायता से परिवार कल्याण कार्यक्रमों को आगे बढ़ाना।

– महिला मंडलों की बैठकों में भाग लेना, ऐसी बैठकों का लाभ उठाते हुए महिलाओं को परिवार कल्याण कार्यक्रमों के बारे में अवगत कराना।

- **चिकित्सीय गर्भपात**

– उन महिलाओं का पता लगाना जो गर्भपात कराना चाहती हैं और उन्हें पास की अनुमोदित संस्था में भेजना।

– चिकित्सीय गर्भपात (MTP) के लिए सेवाओं की उपलब्धता के बारे में समुदाय को शिक्षित करना।

- **पोषण**

– शिशुओं और छोटे बच्चों (0-5 वर्ष) में कुपोषण के मामलों का पता लगाना और उसके लिए अनिवार्य उपचार व सलाह देना और गंभीर मामलों को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में भेजना।

– गर्भवती महिलाओं, स्तनपान कराने वाली माताओं, शिशुओं और छोटे बच्चों (0-5 वर्ष तक के) और परिवार नियोजन स्वीकारियों को निर्देशानुसार लौह-तत्व और फोलिक अम्ल की गोलियाँ वितरित करना।

– 1 से 5 वर्ष के बच्चों को निर्धारित विटामिन-ए का घोल देना।

– माँ और बच्चों के लिए पौष्टिक आहार की अनिवार्यता के बारे में समुदाय को शिक्षित करना।

- **टीकाकरण**

– गर्भवती महिलाओं को टिटेनस टॉक्सॉइड का टीका लगाना।

– सभी शिशु (0 - 1 वर्ष तक के) को बी.सी.जी., खसरा, डी.पी.टी. का टीका लगाना, मुँह द्वारा दिए जाने वाली पोलियो की और बी.सी.जी की खुराक देना।

- **दाई प्रशिक्षण**

– क्षेत्र की दाइयों की सूची बनाना और उन्हें परिवार कल्याण के संवर्धन में शामिल करना।

– दाइयों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में स्वास्थ्य सहायक महिला की सहायता करना।

- जन्म-मृत्यु घटनाएं
  - क्षेत्र में होने वाले जन्म व मृत्यु को क्रमश: जन्मों और मृत्यु रजिस्टरों में रिकार्ड करना और उनके बारे में स्वास्थ्य कार्यालय को सूचना देना ।
- रिकार्ड (अभिलेख) रखना (Record keeping)
  - व्यवस्थित रूप से घरों के दौरे करके निम्नलिखित के नाम रजिस्टर में दर्ज करना ।
    (क) तीन माह से ऊपर की गर्भवती महिलाओं,
    (ख) 0 - 1 वर्ष की आयु के शिशुओं, और
    (ग) 15 - 44 की आयु वाली महिलाओं
  - प्रसव पूर्व और प्रसूति रिकार्ड तथा बाल देखभाल संबंधी रिकार्ड बनाना ।
  - पात्र दम्पत्ति रजिस्टर बनाने में और अद्यतन करने में स्वास्थ्य कार्यालय (पुरुष) की सहायता करना ।
  - समय निर्धारित आवधिक रिपोर्ट तैयार करके, उसे स्वास्थ्य सहायक (महिला) को भेजना ।
  - स्वास्थ्य सहायक (महिला) के क्षेत्र के लिए नक्शे व चार्ट बनाना और उसकी योजना कार्य के लिए उनका प्रयोग करना।
- प्राथमिक चिकित्सा कार्य
  - छोटी-मोटी बीमारियों का उपचार करना, दुर्घटनाओं और आपातकालों में प्राथमिक सहायता प्रदान करना, क्षमता से बाहर के मामलों को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या नजदीकी अस्पताल में भेजना ।
- सामूहिक गतिविधियाँ
  - प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र / समुदाय विकास खंड या दोनों में होने वाली स्टाफ बैठकों में भाग लेना ।
  - स्वास्थ्य गाइडों और दाइयों सहित स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष) और अन्य कार्यकर्त्ताओं के साथ उसकी क्रियाओं में तालमेल रखना ।
  - स्वास्थ्य सहायक (महिला) से प्रत्येक सप्ताह मिलना और जहाँ कहीं आवश्यक हो उसकी सलाह व मार्गदर्शन लेना ।
  - उप केन्द्र को साफ सुथरा रखना ।
  - कैंप, शिविरों और प्रचारों में टीम के सदस्य के रूप में भाग लेना ।

20.3.2 ग्रामीण स्वास्थ्य गाइड योजना

यह योजना 1977 में समुदाय स्वयं सेवक योजना के रूप में प्रस्तुत की गई । समुदाय स्वास्थ्य स्वयं सेवकों के पदनाम को हाल में बदलकर स्वास्थ्य गाइड का नाम दे दिया गया है । स्वास्थ्य गाइड यानी हैल्थ गाइड या संक्षेप में एच.जी. । एच.जी. समुदाय में से चुने जाते हैं और वह स्वैच्छिक आधार पर अंशकालिक (part-time) के रूप में कार्य करते हैं (चित्र 20.3) ।

सेवा योग्य अंश-कालिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता
- समुदाय से ही चुने जाते हैं।
- स्थानीय रूप से प्रशिक्षित होते हैं
- किसी केन्द्रीय वेतन पत्रक में नहीं आते

चित्र 20.3 : स्वास्थ्य गाइड : अंशकालिक कार्यकर्त्ता

वास्थ्य गाइड की प्रमुख भूमिका स्वास्थ्य देखभाल के निरोधक और संवर्धक पहलुओं में सहायता करना, छोटी-मोटी बीमारियों के लिए अनिवार्य सेवाएं प्रदान करना और समस्या मामले या तो उप-केन्द्र में या रीक्षण करने आई हुई मोबाइल चिकित्सा टीम को भेजना (चित्र 20.4)।

वास्थ्य गाइड से सारे गाँव की देखभाल करने की आशा की जाती है और यदि गाँव बहुत बड़ा है तो गभग 1,000 जनसंख्या का उत्तरदायित्व उस पर होता है। उसका तकनीकी मार्गदर्शन स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता महिला / पुरुष) करते हैं।

अंश-कालिक स्वास्थ्यकर्ता जिन लोगों की सेवा करते हैं, उनके साथ रहते और काम करते हैं। उनका पहला काम उन लोगों को जनकारी का सहभागी बनाना।

चित्र 20.4 : समुदाय में काम कर रही स्वास्थ्य गाइड

शिक्षण के पश्चात् स्वास्थ्य गाइडों पर निम्नलिखित कार्यों का उत्तरदायित्व होता है।

वास्थ्य गाइड के कार्य

- मलेरिया
  - ज्वर के मामलों का पता लगाना।
  - सभी प्रकार के ज्वर संबंधी मामलों की मोटी और पतली रक्त की फिल्में बनाना।
  - स्लाइडों को प्रयोगशाला में परीक्षण हेतु भेजना।
  - ज्वर संबंधी मामलों में संभावित उपचार करना।
  - जिन व्यक्तियों का संभावित उपचार किया गया है उनका रिकार्ड रखना।
  - जिन व्यक्तियों के खून की स्लाइडें तैयार की गई हैं उनके नामों और पते की सूचना स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष) को देना।
  - उनकी छिड़काव करने में व लार्वानाशी आपरेशन में स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष) व छिड़काव करने वाली टीम की सहायता करना।
  - मलेरिया की रोकथाम के संबंध में समुदाय को शिक्षित करना।

- **संचरणीय बीमारियाँ**
  - क्षेत्र में घटित महामारी की सूचना तत्काल स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष) को देना ।
  - बीमारी को फैलने से रोकने के लिए तत्काल सावधानियाँ बरतना ।
  - समुदाय को संचरणीय रोगों की रोकथाम और नियंत्रण के बारे में शिक्षित करना ।
- **पर्यावरणीय स्वच्छता और व्यक्तिगत स्वच्छता**
  - नियमित अन्तरालों पर पेय जल स्रोतों को क्लोरीनित करना ।
  - क्लोरीनित किए गए कुओं की संख्या का रिकार्ड रखना ।
  - निम्नलिखित के निर्माण की व्यवस्था करने में स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष) की मदद करना ।
  - सिक्तन गर्त (Soakage Pits)
  - शाक वाटिका (घरेलू बागवानी)
  - कम्पोस्ट गर्त (Compost Pits)
  - स्वच्छता शौचालय (Sanitary latrines)
  - धूएँ रहित चूल्हे

समुदाय को निम्नलिखित के बारे में शिक्षित करना :

  - सुरक्षित पेय जल
  - तरल अपशिष्ट (Liquid waste) के निपटान के स्वास्थ्यकर तरीके
  - ठोस अपशिष्ट के निपटान के स्वास्थ्यकर तरीके
  - गृह स्वच्छता
  - शाक वाटिका
  - स्वच्छता शौचालयों (Sanitary Latrines) के लाभ व उपयोग
  - धूएँ-रहित चुल्हों के लाभ
  - खाद्य स्वच्छता
  - कीटों / कीड़ों, कृतंकों व लावारिस कुत्तों का नियंत्रण
  - व्यक्तिगत स्वच्छता की महत्ता के बारे में समुदाय को शिक्षित करना ।
- **टीकाकरण**
  - टीकाकरण की व्यवस्था करने में स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष/ महिला) की सहायता करना ।
  - डिफ्थीरिया, काली खांसी, टिटेनस, टी.बी., पोलियो से बचने के लिए टीकाकरण के बारे में समुदाय को शिक्षित करना ।
- **परिवार नियोजन**
  - अपने क्षेत्र के दम्पतियों में परिवार नियोजन के संदेश को प्रचार करना और छोटे परिवार के मूल्यों की अनुकूलता के बारे में शिक्षित करना ।
  - परिवार नियोजन के लिए उपलब्ध तरीकों के बारे में लोगों को शिक्षित करना ।
  - डिपोधारक के रूप में काम करते हुए दम्पत्तियों में निरोध वितरित करना और वितरित किए गए निरोध के रिकार्ड रखना ।
  - परिवार नियोजन के तरीकों को अपनाने के इच्छुक दम्पत्तियों की सूचना-स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष / महिला) को देना ताकि वह उसके लिए सभी आवश्यक प्रबंध कर सके ।

- चिकित्सीय गर्भपात के लिए उपलब्ध सेवाओं के बारे में समुदाय को शिक्षित करना ।

- **पोषण**
  - स्कूल-पूर्व बच्चों (एक से पाँच वर्षीय) में कुपोषण के संकेतों और लक्षणों वाले मामलों का पता लगाना और उन्हें स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष / महिला) के पास भेजना।
  - गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं व बच्चों में एनीमिया के लक्षण वाले मामलों का पता लगाना और उन्हें उपचार के लिए स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष / महिला) के पास भेजना ।
  - बच्चों के लिए दिए गए औषध निर्देश के अनुसार उन्हें विटामिन-ए का घोल पिलाने / देने में स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला / पुरुष) की मदद करना ।
  - स्तनपान और पूरक आहार देने की महत्ता के बारे में परिवारों को शिक्षित करना ।
  - माताओं और बच्चों के लिए पोषक आहार के बारे में समुदाय को शिक्षित करना ।

- **जन्म - मृत्यु संबंधी घटनाएं**
  - क्षेत्र में होने वाले सभी जन्म व मृत्यु की रिपोर्ट स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष) को देना ।
  - सभी जन्म और मृत्यु को पंजीकृत कराने की महत्ता के बारे में समुदाय को शिक्षित करना ।

- **आपातकाल में प्राथमिक सहायता**
  - निम्नलिखित परिस्थितियों में प्राथमिक सहायता दें । यदि आवश्यक हो तो इन मामलों को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में भेजना और स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष / महिला) को सूचित करना ।
  - मरहम पट्टी
  - विद्युत करंट
  - ऊष्माधात (Heatstroke)
  - साँप का काटना
  - बिच्छु का डंक मारना
  - कीड़े का काटना / डंक मारना
  - कुत्ते का काटना
  - दुर्घटनाएं
  - दुर्घटनाओं से निपटने के लिए प्रक्रिया - विधियाँ कार्यान्वित करना ।
  - प्राथमिक सहायता प्राप्त प्रत्येक रोगी का रिकार्ड रखना ।

- **छोटी - मोटी बीमारियों का उपचार**

निम्नलिखित लक्षणों के दिखाई देने पर साधारण उपचार करना और ऐसे मामले जो सामर्थ्य से परे हों उन्हें उप - केन्द्र या प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में भेजना :

– ज्वर	- दांत में दर्द
– सिरदर्द	- कान में दर्द
– पीठ और जोड़ों का दर्द	- आखें दुखना
– खांसी - जुकाम	- फोड़े, घाव और अल्सर (व्रण)
– अतिसार	- खुजली (Scabies)
– उल्टी आना	- दाद (ring worm)
– उदर में पीड़ा	- उपचार प्राप्त प्रत्येक रोग का रिकार्ड रखें ।
– कब्ज़	

- **मानसिक स्वास्थ्य**
  - मानसिक बीमारी के लक्षणों की पहचान करना और इन मामलों को स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला / पुरुष) को भेजना ।
  - मानसिक बीमारी से संबद्ध आपातकालों में तत्काल सहायता देना ।
  - समुदाय को मानसिक बीमारी के बारे में शिक्षित करना ।

20.3.3 ग्रामीण दाइयों का प्रशिक्षण

परंपरागत जन्म परिचरों (टी.बी.ए.) अर्थात् गाँव में कार्यरत दाइयों के प्रशिक्षण हेतु भारत सरकार ने 1976 में एक योजना प्रारंभ की । इस योजना का लक्ष्य प्रत्येक 1,000 की आबादी वाले गाँव में कम से कम एक प्रशिक्षित दाई उपलब्ध कराना है । एम.सी.एच. देखभाल प्रदान करने के अतिरिक्त सुरक्षित और आपूतिक प्रसवों के लिए अब तक 3,50,000 से भी अधिक दाइयों को प्रशिक्षित किया जा चुका है । (स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट 1990-91, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार) । दाइयों से यह भी आशा की जाती है कि वे महिलाओं को परिवार नियोजन को अपनाने हेतु प्रेरित करें । दाइयाँ प्रति सप्ताह दो दिन प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या उप - केन्द्र में व्यतीत करती हैं। वे महिला स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता के साथ गाँव में जाती हैं ।

प्रशिक्षित दाइयों के कार्य

गाँव में दाई एक महत्वपूर्ण व्यक्ति है । वह गाँव के परिवारों और स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला) सहायक नर्स दाई (Auxillary Nurse Midwife-ANM) के बीच सूत्र का कार्य करती है । गाँव में माँ और बच्चे के स्वास्थ्य के सुधार हेतु उसे जो जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं वे निम्नलिखित हैं :

1) उसे अपने क्षेत्र की प्रत्येक गर्भवती महिला से संपर्क स्थापित कर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसका नाम उप - केन्द्र या प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में दर्ज हो ।

2) उसे साप्ताहिक पूर्व-प्रसव क्लिनिक जाना चाहिए और स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला) की काम में मदद करनी चाहिए ।

3) उसे सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए कि उसके क्षेत्र की प्रत्येक गर्भवती महिला प्रसव - पूर्व क्लिनिक कम से कम तीन बार अवश्य जाए अर्थात् गर्भ की पुष्टि के लिए तीसरे महीने, सातवें महीने में और नौवे महीने में ।

4) उसे सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए कि प्रत्येक गर्भवती को टिटेनस का टीका लगा हो (दो खुराकें - प्रसव से कम से कम महीने पूर्व अंतिम खुराक और प्रथम खुराक अंतिम महीने से एक महीना पहले)।

5) उसे सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए कि प्रत्येक गर्भवती महिला फोलिक-अम्ल और लौह-तत्व की गोलियाँ अब नुस्खे के अनुसार खाती है ।

6) यदि किसी प्रकार की असामान्य गर्भावस्था के बारे में पता चलता है तो उसे तत्काल उस मामले को महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता / ए.एन.एम. या स्वास्थ्य सहायक / एल.एच.वी. को दिखाना चाहिए या मामले को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में भेजना चाहिए ।

7) सुनिश्चित करे कि प्रसव के लिए तैयारी या तो घर पर ही हो या प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या अस्पताल में हो ।

8) प्रसूति के दौरान यदि उसे किसी भी प्रकार की असामान्यता का पता चलता है तो उसे बिना विलम्ब किए चिकित्सा - सहायता मांगनी चाहिए ।

9) प्रसूति के लिए बुलावा आने पर निम्नलिखित का पालन करना :
   - अपनी किट अपने साथ ले जानी चाहिए ।
   - प्रसूति की प्रगति को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए ।

- बिना किसी अनावश्यक रोक-टोक के प्रसूति को सामान्य रूप से प्रगति करने देना चाहिए ।
- प्रसूति करते समय आपूतिक तकनीकों का पालन करना चाहिए ।

10) उसे ध्यान रखना चाहिए कि उसकी किट सदैव स्वच्छ, साफ़ और पूरी हो तथा प्रसूति में उपयोग के लिए हमेशा तैयार हो ।

11) उसे माँ और बच्चे को सुविधाजनक रूप में रखना चाहिए और दोनों के पोषण का ध्यान रखना चाहिए ।

12) किस परिस्थिति में उदाहरणत: माँ को ज्यादा रक्त स्राव के मामले में, या बच्चे की नाल में रक्तस्राव होने पर तत्काल उसे बुलाना चाहिए, इसके बारे में संबंधियों व माँ को बता देना चाहिए ।

13) प्रसवोत्तर अवधि में यदि उसे माँ में किसी भी प्रकार की जटिलताएं दृष्टिगत होती है जैसे बुखार या योनि से किसी प्रकार का स्राव या बच्चे के नाभ में संक्रमण या बच्चे को पीलिया, तो उसकी सूचना तत्काल स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला), सहायक नर्स / दाई को देनी चाहिए और माँ या बच्चे को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र भेजना चाहिए ।

14) यह सुनिश्चित करना कि क्षेत्र के सभी बच्चों को बी.सी.जी. और डी.पी.टी. का टीका और पोलियो वैक्सीन दी जाए ।

15) क्षेत्र के पात्र दम्पत्तियों को गर्भनिरोधक के प्रयोग के बारे में प्रेरित करना या नसबंदी हेतु प्रेरित करना।

16) जिन दम्पत्तियों को निरोध फोम की गोलियों और जैली की आवश्यकता है उनमें गर्भ निरोधक वितरित करना ।

17) अपने क्षेत्र के सभी जन्म और मृत्यु की रिपोर्ट स्वास्थ्य कार्यकर्ता /ए.एन.एम. को करनी चाहिए ।

बोध प्रश्न - 1

1) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र द्वारा प्रदान की जा रही किन्हीं पांच सेवाओं को सूचीबद्ध कीजिए ।

....

....

....

....

....

2) बहु-उद्देशीय कार्यकर्त्ताओं की किन्हीं पाँच कार्यों की सूची बनाइए ।

....

....

....

....

....

3) स्वास्थ्य गाइड के पाँच कार्यों का उल्लेख कीजिए ।

....

....

....

....

....

4) प्रशिक्षित दाइयों के पांच महत्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

20.4 विभिन्न स्तरों पर स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं

विगत 20 वर्षों में देश में संपूर्ण स्वास्थ्य अवसंरचना को उल्लेखनीय रूप से विस्तृत किया गया है । सरकार के निर्णय के अनुसार निम्न प्रकार से स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता और अवसंरचनात्मक सुविधाएं विकसित की गई । विभिन्न स्तरों पर स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएं / स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता :

- ग्राम स्तर : ग्राम स्वास्थ्य गाइड, प्रशिक्षित दाइयाँ,
- उप-केन्द्र स्तर : महिला और पुरुष बहु-उद्देश्य कार्यकर्त्ता
- प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्तर : चिकित्सा अधिकारी स्वास्थ्य सहायक - पुरुष और महिला
- तालुका स्तर : आयुर्विज्ञान के महत्वपूर्ण विषय विशेष में विशेषज्ञ
- समुदाय स्वास्थ्य केन्द्र स्तर : आयुर्विज्ञान के महत्वपूर्ण विषय विशेष में विशेषज्ञ
- जिला स्तर : आयुर्विज्ञान के महत्वपूर्ण विषय विशेष में विशेषज्ञ

आइए, अब इन विभिन्न स्तरीय सुविधाओं के बारे में विस्तार से जानें ।

20.4.1 ग्राम स्तर

गाँव की 1,000 आबादी के लिए, कम से कम एक स्वास्थ्य गाइड और एक प्रशिक्षित दाई हो सकती है। यह प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और उप-केन्द्र के स्तर पर प्रशिक्षित होते हैं और उनके तकनीक और सतत् शिक्षा सहित सहायक पर्यवेक्षण उप-केन्द्र पर तैनात स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता पुरुष और महिला द्वारा होता है।

इन स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं के अन्य प्रशासनिक नियंत्रण और पर्यवेक्षण ग्राम स्वास्थ्य समिति और / या ग्राम पंचायत द्वारा कार्यान्वित होते हैं । स्वास्थ्य गाइड और प्रशिक्षित दाइयाँ स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं (पुरुष / महिला) की पर्यवेक्षण व सहयोग में कार्य करते है ।

ग्राम स्तर पर प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की व्यवस्था का सार तालिका 20.1 में दिया गया है ।

तालिका 20.1: ग्राम स्तर पर सुविधाएं

जनसंख्या	प्रदत्त श्रम शक्ति	प्रदत्त सेवाएं
1000/कार्यकर्त्ता	1 स्वास्थ्य गाइड	छोटी-मोटी बीमारियों का उपचार एम.सी.एच. और परिवार नियोजन
	1 प्रशिक्षित दाई	सुरक्षित प्रसव करना, परिवार नियोजन संबंधी सलाह

20.4.2 उप-केन्द्र स्तर

प्रत्येक उप-केन्द्र में एक बहु-उद्देशीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता पुरुष और महिला होती है। वह अपने कार्यों के अतिरिक्त प्रशिक्षित दाइयों तथा स्वास्थ्य गाइडों का पर्यवेक्षण का कार्य करती है। जिन मामलों में उच्चतर चिकित्सा कौशलों की आवश्यकता होती है उन्हे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र से आई अतिथि चिकित्सा टीम के पास भेजा जाता है। प्रभावी कवरेज़ (coverage) प्रदान करने हेतु अतिरिक्त उपकेन्द्र बनाए या स्थापित किए गए हैं, जिससे कि प्रति 3000 पर (पहाड़ी, रेगिस्तान और कठिन क्षेत्र में 3000 - 5000 आबादी के लिए) एक उप-केन्द्र के लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। उप-केन्द्रों के स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता छोटी-मोटी बीमारियों का उपचार करते है, दुर्घटनाओं या आपातकालों के लिए प्राथमिक सहायता प्रदान करते हैं और जो मामलें उनकी क्षमता से परे होते हैं उन्हें प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को भेजते हैं। इसके अतिरिक्त वे स्वास्थ्य शिक्षा कार्य, जल स्रोतों का क्लोरीनीकरण, ग्रामीण जनता में विभिन्न राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों और परिवार नियोजन सेवाओं का कार्यान्वियन करते हैं। तालिका 20.2 में उप-केन्द्र स्तर पर प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल पद्धति के बारे में बताया गया है।

तालिका 20.2 : उप-केन्द्र स्तर पर उपलब्ध सेवाएं

जनसंख्या	प्रदत्त श्रम शक्ति	प्रदत्त सेवाएं
5000/ इकाई	1 पुरुष बहु - उद्देशीय कार्यकर्त्ता 1 महिला बहु-उद्देशीय कार्यकर्त्ता	स्वास्थ्य शिक्षा गतिविधियाँ,जल का क्लोरीनिकरण राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों का कार्यान्वयन,परिवार नियोजन
20000/इकाई	1 महिला और पुरुष स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता	बहु-उद्देशीय कार्यकर्त्ता को कार्यों में सहायता, पर्यवेक्षण और सहयोग

20.4.3 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्तर

प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर केवल मूलभूत स्वास्थ्य सेवाएं ही नहीं अपितु संदर्भ सेवाएं भी प्रदान की जाती हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र परिधीय होने के बावजूद सबसे महत्वपूर्ण सीमा चौकी है जिसको केन्द्र या लक्ष्य मानकर ग्रामीण स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं निर्मित होती हैं।

30,000 जनसंख्या पर 1 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की संख्या में बढ़ोतरी की गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में कई जगह निवार्य सेवाएं प्रदान करने हेतु औषधालय हैं। अधिकांश औषधालयों को सहायक स्वास्थ्य केन्द्र बनाने के लिए उनका उन्नयन किया जा रहा है जिससे कि उनसे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के स्तर तक लाया जा सके। जहाँ ऐसे औषधालय नहीं हैं वहां वे नए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित किए जा रहे हैं।

प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्तर पर चिकित्सा अधिकारी (2 से 3) खंड विस्तार शिक्षक (बी.ई.ई.) - 1, स्वास्थ्य सहायक - महिला और पुरुष, स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता - पुरुष और महिला और अन्य सहायक स्टाफ होते हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर निरोधक सेवाएं और स्वास्थ्य देखभाल के निरोधक और संवर्धक पहलुओं, उप-केन्द्र स्टाफ के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संगठन और सतत् शिक्षा गतिविधियाँ और ग्राम स्तर पर स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता प्रदान किए जाते हैं। स्वास्थ्य सहायक कार्यकर्त्ताओं और ग्राम कार्यकर्त्ताओं (स्वास्थ्य गाइडों

और दाइयों) के कार्यों का पर्यवेक्षण करते हैं। खंड विस्तार शिक्षक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के अन्तर्गत आने वाले सूचना, शिक्षा और संचार (आई.ई.सी.) कार्यक्रम के लिए उत्तरदायी होता है । तालिका 20.3 में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्तर पर प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल का संगठन प्रस्तुत किया गया है ।

तालिका 20.3 : प्राथमिक स्वास्थ्य के स्तर पर सुविधाएं

जनसंख्या	प्रदत्त श्रम शक्ति	प्रदत्त सेवाएं
30,000	-चिकित्सा अधिकारी	-निरोधक,निवार्य और संवर्धक स्वास्थ्य सेवाओं का अनुरक्षण,मार्गदर्शन व पर्यवेक्षण
	-खंड - विस्तार शिक्षक	
	-स्वास्थ्य सहायक (पुरुष, महिला)	
	-स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष / महिला)	-संदर्भ केन्द्र के अनुसार कार्य

भारत सरकार ने प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर अतिरिक्त आगतें (inputs) बनाने का निर्णय लिया है :

1) समुदाय स्वास्थ्य अधिकारी (सी.एच.ओ) का पद बनाया गया । समुदाय स्वास्थ्य अधिकारी का मुख्य उत्तरदायित्व स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के निरोधक और संवर्धक पहलुओं को संगठित करना है।

2) जनता को स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करने हेतु खंड विस्तार शिक्षक को प्रशिक्षित किया जा रहा है।

20.4.4 समुदाय स्वास्थ्य केन्द्र

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रम की सफलता के लिए, प्रभावी संदर्भ समर्थन प्रदान किया जाना चाहिए । इसकी प्राप्ति के लिए 100,000 जनसंख्या के लिए एक समुदाय स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित करने का निर्णय लिया गया और इस केन्द्र पर सेवाएं, औषधि, शल्यचिकित्सा, प्रसूति और स्त्री रोग सहित सभी विशिष्ट सेवाएं उपलब्ध होंगी । वे मामले जो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की सामर्थ्य से परे होंगे उन्हें समुदाय स्वास्थ्य केन्द्र में भेजा जाएगा । 30 बिस्तरों वाले समुदाय स्वास्थ्य केन्द्र बनाने के लिए प्रत्येक चौथे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र को उन्नत बनाने का प्रस्ताव रखा गया ।

20.4.5 तालुका अस्पताल

कुछ तालुका अस्पतालों को प्रसवोत्तर केन्द्र और उसकी बुनियादी ढाँचे के लिए निवेश प्रदान करके सुदृढ़ किया गया है । यह अस्पताल परिधीय केन्द्रों को संदर्भ सेवाएं प्रदान करेंगे ।

20.4.6 जिला स्तर

विस्तारशील ग्राम स्वास्थ्य और परिवार कल्याण कार्यक्रमों की ज़रूरतों की पूर्ति हेतु जिला अस्पतालों को सुदृढ़ किया गया है । जिला स्तर पर न केवल स्वास्थ्य और परिवार नियोजन की योजना एवं कार्यान्वयन और जाँच का कार्य होता है प्रत्युत परिधी अर्थात् प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, समुदाय स्वास्थ्य केन्द्रों, तालुका अस्पतालों की सभी संदर्भ सेवाओं की ओर संतोषजनक रूप से ध्यान दिया जाता है । आयुर्विज्ञान की सभी प्रमुख विधाशाखाओं की विशेषज्ञ सेवाएं मुहैया कराई गई हैं । भारत में स्वास्थ्य सेवा वितरण प्रणाली का सारांश चित्र 20.5 में दिया गया है ।

ऊपर आपने सरकार द्वारा विभिन्न स्तरों पर प्रदान की गई स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में पढ़ा ।

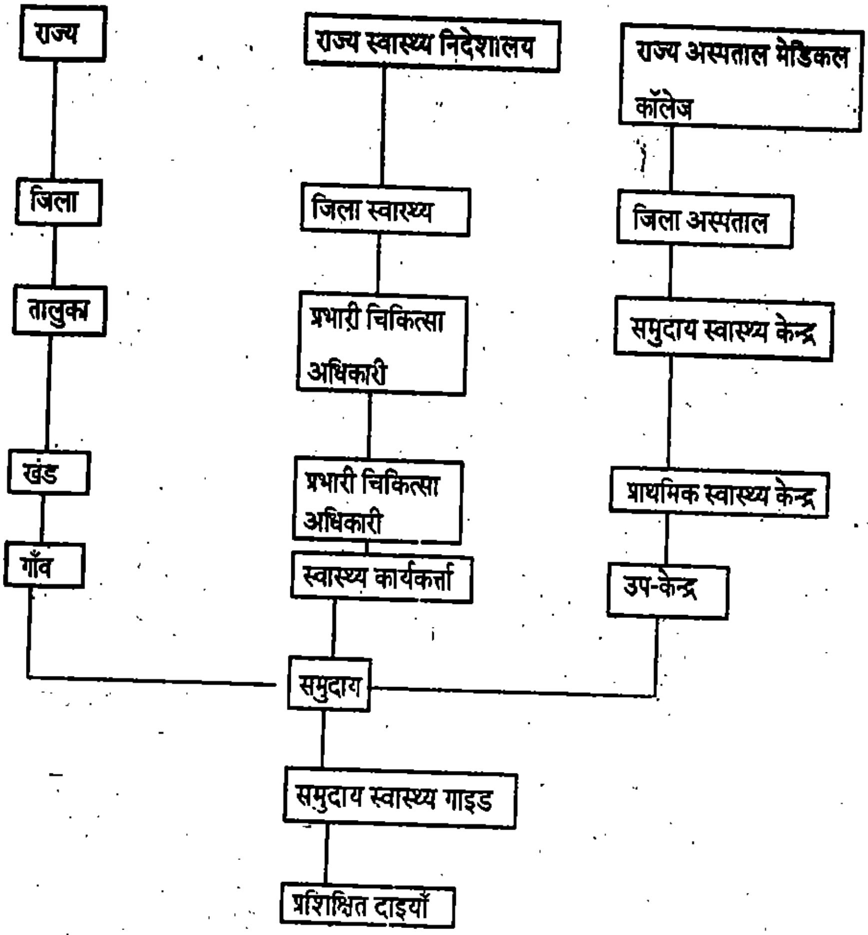

चित्र 20.5 : स्वास्थ्य सेवा वितरण प्रणाली

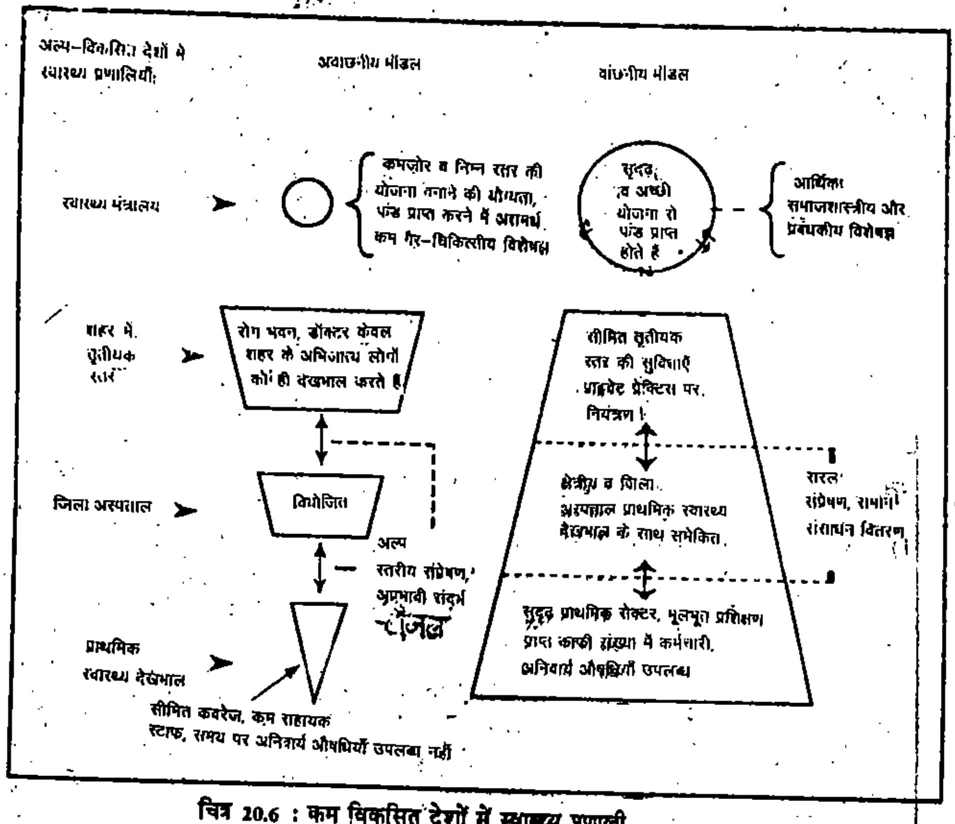

चित्र 20.6 : कम विकसित देशों में स्वास्थ्य प्रणाली

20.5 सन् 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य के लक्ष्य

भारत सरकार द्वारा सन् 2000 तक स्वास्थ्य के लिए प्राप्त किए जाने वाले लक्ष्य निम्नलिखित हैं।

क्रम सं.	सूचक	सन् 2000 राष्ट्रीय लक्ष्य
1)	संशोधित मृत्यु दर	9
2)	शिशु मृत्यु दर	60 से नीचे
3)	प्रसवकालीन मृत्यु दर	30 - 35
4)	स्कूल-पूर्व मृत्यु दर (1 - 5 वर्ष)	10
5)	मातृक मृत्यु दर	2 से नीचे
6)	जन्म के समय जीवन प्रत्याशा	64 वर्ष
7)	2500 ग्राम से कम वजन	10 प्रतिशत
8)	संशोधित जन्म दर	21.0
9)	प्रभावी दम्पत्ति संरक्षण का प्रतिशत	60.0
10)	निविल प्रजनन दर	1.0
11)	प्राकृतिक प्रजनन दर	1.20
12)	परिवार का आकार	2.3
13)	प्रसव देखभाल प्राप्त कर रही गर्भवती महिलाओं का प्रतिशत	100.0
14)	प्रशिक्षित दाइयों द्वारा प्रसूति का प्रतिशत	100.0
15)	सुरक्षित जल आपूर्ति वाली आबादी का प्रतिशत	100.0
16)	गर्भवती महिलाओं और शिशुओं के टीकाकरण का प्रतिशत	100.0

स्रोत : राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति : भारत सरकार 1983

प्रत्येक सूचक की संक्षिप्त परिभाषा / विवरण बाक्स 20.1 में दिया गया है । इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए और संकल्पना को समझिए ।

बाक्स 20.1 तकनीकी शब्दों को जानना

स्वास्थ्य स्तर का मूल्यांकन करने के लिए प्रयुक्त होने वाले सूचकों की सरल परिभाषा नीचे दी गई है :

1) संशोधित मृत्यु दर : निश्चित विशिष्ट अवधि में मरने वाली जनसंख्या के अनुपात का प्राक्कलन । इस अवधि के दौरान मरने वाले की संख्या अंश (numerator) के अन्तर्गत आती है, मध्य - वर्ष जनसंख्या के रूप में प्राक्कलित जनसंख्या का आधार आमतौर पर हर (denominator) के अन्तर्गत आता है। मृत्यु दर की गणना निम्नलिखित फार्मूले के अनुसार होती है ।

$$\frac{\text{विशिष्ट अवधि में मरने वालों की संख्या}}{\text{इस अवधि में उन लोगों की संख्या जिनके मरने का खतरा है}} \times 10^n$$

2)	प्रसवकालीन मृत्यु दर	:	प्रसवकालीन मृत्यु का शब्दश: अर्थ है जन्म के आसपास मृत्यु (अर्थात् जन्म के बिल्कुल पहले या एकदम बाद) $\frac{\text{गर्भावस्था की अंतिम अवस्था में भ्रूण की मृत्यु (गर्भावस्था के 28वें सप्ताह या उसके बाद) + प्रसवोत्तर मृत्यु (प्रथम सप्ताह)}}{\text{एक वर्ष में हुए जन्म}} \times 100$
3)	जन्म दर	:	निर्धारित अवधि में प्राय: एक वर्ष जनसंख्या में जीवित जन्मों की संख्या पर आधारित संक्षिप्त दर $\frac{\text{कैलेंडर वर्ष में एक क्षेत्र के निवासियों में जीवित जन्मों की संख्या}}{\text{उस वर्ष में उसी क्षेत्र में औसत या मध्य वर्ष जनसंख्या}} \times 100$
4)	प्राकृतिक प्रजनन दर	:	यह स्थिर परिस्थितियों में एक से दूसरी पीढ़ी में जनसंख्या वृद्धि का माप है ।
5)	सकल प्रजनन दर	:	15 से 49 वर्ष के आयु समूह में वर्तमान प्रजनन-शक्ति और मर्त्यता पद्धति के अंतर्गत किसी भी महिला के जीवित मादा बच्चे पैदा होने की औसत संख्या ।
6)	मातृक मृत्यु दर	:	बच्चे के जन्म से संबद्ध कारणों से मरने का खतरा मातृक मृत्यु दर द्वारा मापा जाता है । $\frac{\text{प्रसवोत्तर कारणों से मरने वालों की संख्या (प्रसूति के दौरान और / या कारणों से, गर्भावस्था की जटिलताओं, बच्चे के जन्म के समय होने वाली मृत्यु) निर्धारित वर्ष में निर्धारित भौगोलिक क्षेत्र में}}{\text{एक निर्धारित वर्ष में निर्धारित भौगोलिक क्षेत्र में उस समुदाय में जीवित जन्मों की संख्या}} \times 1000$
7)	शिशु मृत्यु दर	:	एक वर्ष से कम आयु के बच्चों में मृत्यु की वार्षिक दर का माप $\frac{\text{एक वर्ष से कम आयु के बच्चों में मृत्यु की संख्या}}{\text{उसी वर्ष में जीवित जन्मों की संख्या}} \times 1000$
8)	स्कूल पूर्व मृत्यु दर	:	निर्धारित वर्ष में 1 - 5 वर्ष की आयु समूह के प्रति 1000 बच्चों में मरने वाले बच्चों की संख्या
9)	जन्म के समय	:	यदि वर्तमान मर्त्यता प्रवृत्तियाँ जारी रहती है तो उन वर्षों की जीवन प्रत्याशा औसत संख्या जब नवजात शिशु के जीवित रहने की संभावना हो ।

बोध प्रश्न - 2

1) निम्नलिखित पर कौन सी सुविधाएं उपलब्ध होती हैं ?

क) उप - केन्द्र

....

....

....

ख) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र

....

....

....

ग) ग्राम स्तर

....

....

....

2) जिला अस्पताल के स्तर तक संदर्भ स्वास्थ्य संस्थाओं की सूची बनाइए।

....

....

....

....

....

....

20.5.1 भारत में स्वास्थ्य अवसंरचना (Health Infrastructure) का स्तर

हमारे देश में (31.3.91 को) स्वास्थ्य अवसंरचना का स्तर निम्न प्रकार से था :

भारत में स्वास्थ्य अवसंरचना

पैरामीटर		राष्ट्रीय मूल्य	उपलब्धि (देश के लिए औसत)
1)	एक उप-केन्द्र के अन्तर्गत आने वाली जनसंख्या	3000-5000	4,577
2)	एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के अन्तर्गत आने वाली जनसंख्या	20,000-30,000	27,700
3)	एक समुदाय स्वास्थ्य केन्द्र के अन्तर्गत आने वाली जनसंख्या	1,00,000	3,13,000
4)	स्वास्थ्य गाइड	प्रति गाँव एक (1000 जनसंख्या)	प्रति 1.42 गाँव एक (1,442 जनसंख्या)
5)	प्रशिक्षित दाई	प्रति गाँव एक	प्रति गाँव एक

स्रोत : राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना, भारत सरकार, 1983

स्वास्थ्य देखभाल की गुणवत्ता को सुधारने के लिए सरकार द्वारा निम्नलिखित राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम चलाए गए। इन कार्यक्रमों की विस्तृत समीक्षा इकाई 22 में प्रस्तुत की गई है।

1) राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम
2) राष्ट्रीय प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम
3) राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम
4) राष्ट्रीय क्षय रोग नियंत्रण कार्यक्रम
5) राष्ट्रीय कुष्ठ रोग उन्मूलन कार्यक्रम
6) राष्ट्रीय फाइलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम
7) एनीमिया और विटामिन-ए की कमी से होने वाली विसंगतियों की रोकथाम के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम
8) राष्ट्रीय अंधता नियंत्रण कार्यक्रम
9) राष्ट्रीय एड्स कार्यक्रम

20.6 सारांश

इस इकाई में हमने भारत में वैदिक समय से चली आ रही प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की संकल्पना को जाना। हालांकि बार-बार होने वाले विदेशी आक्रमणों के कारण परम्परागत आयुर्वेदिक पद्धति सापेक्षिक रूप से उपेक्षणीय हो रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण जनसंख्या को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के माध्यम से आधुनिक स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के प्रयास किए गए। इसके लिए 1983 में संसद द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति पारित की गई जिसके अन्तर्गत प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल उपागम के आधार स्वास्थ्य देखभाल वितरण प्रणाली को पुन: संगठित व दिशा प्रदान करने के लिए अनिवार्य राजनैतिक प्रतिबद्धता प्रदान की गई। हमारे देश की स्वास्थ्य देखभाल वितरण प्रणाली के अंतर्गत जो प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल कार्यकर्त्ता आते हैं वे हैं, प्रशिक्षित दाइयाँ और समुदाय स्वास्थ्य गाइड, जो स्थानीय जनसमुदाय में से और प्रशिक्षण कार्य के पश्चात् माननीय समुदाय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं के रूप में चुने जाते हैं। इन्हें सरकारी स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता, बहु-उद्देशीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष और महिला) सहायता करते हैं। प्राथमिक सहायता केन्द्र, समुदाय स्वास्थ्य केन्द्र, तालुका जिला और राज्य अस्पताल संदर्भ सहायता प्रदान करने के लिए बनाए गए हैं।

20.7 शब्दावली

स्वास्थ्य देखभाल केन्द्र	:	30 बिस्तर वाली सरकारी स्वास्थ्य संस्था जहाँ प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को संदर्भ सहायता प्रदान करने के लिए विशिष्ट सेवाएं उपलब्ध होती हैं।
स्वास्थ्य सहायक (पुरुष और महिला)	:	बहु-उद्देशीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं को सहायता प्रदान करने के लिए स्वास्थ्य कार्मिक का पर्यवेक्षण संवर्ग।
स्वास्थ्य गाइड	:	समुदाय का स्वयंसेवी, जिसे समुदाय स्तर कार्यकर्त्ता का कार्य करने हेतु स्वास्थ्य में अभिविन्यास प्रशिक्षण दिया जाता है।
बहु-उद्देशीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता	:	उपकेन्द्रों के माध्यम से निरोधक, संवर्धक अनिवार्य सेवाएं प्रदान करने वाले परिधीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता।
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	:	सरकारी स्वास्थ्य संस्था जो ग्रामीण जनसंख्या को निरोधक, कार्यकर्त्ता संवर्धक, और अनिवार्य सेवाएं प्रदान करती है। इसके लिए राष्ट्रीय मानक है। 20,000 - 30,000 जनसंख्या के लिए एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र।

20.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1) निम्नलिखित में से कोई पाँच : चिकित्सा देखभाल, माँ और बच्चे की देखभाल, परिवार नियोजन, सुरक्षित जल की व्यवस्था, स्थानीय रूप से व्याप्त रोगों की रोकथाम व नियंत्रण, जन्म - मृत्यु के आंकड़े एकत्रित करना, स्वास्थ्य के बारे में शिक्षा, संदर्भ सेवाएं, स्वास्थ्य गाइड का प्रशिक्षण, राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम ।

2) निम्नलिखित में से कोई पांच :

   i) ज्वर संबंधी मामलों का पता लगाना और सभी मामलों में खून की स्लाइड बनाना
   ii) कुओं का क्लोरीनीकरण
   iii) समुदाय को स्वास्थ्य शिक्षा
   iv) परिवार नियोजन शिक्षा और निरोध का वितरण
   v) आपातकालों में प्राथमिक सहायता और सामान्य बीमारियों का उपचार
   vi) अपने क्षेत्र की गर्भवती महिलाओं को उप-केन्द्र में पंजीकृत करना
   vii) प्रसव के दौरान स्वच्छता सुनिश्चित करना
   viii) कठिन प्रसव परिस्थितियों में प्राथमिक सहायता प्रदान करना
   ix) परिवार नियोजन शिक्षा और स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करना

3) निम्नलिखित में से कोई पांच :

   - छोटी - मोटी बीमारियों का उपचार
   - आपातकालों और दुर्घटनाओं के दौरान प्राथमिक सहायता
   - स्वास्थ्य शिक्षा गतिविधियाँ
   - जल स्रोतों का क्लोरीनीकरण
   - निरोधक, संवर्धक, स्वास्थ्य सेवाओं में सहायता करना
   - एम.सी.एच. और परिवार नियोजन में सहायता करना
   - पर्यावरणीय स्वच्छता

4) निम्नलिखित में से कोई पाँच :

प्रत्येक गर्भवती महिला से संपर्क स्थापित कर उसे पंजीकरण कराएं, साप्ताहिक प्रसव-पूर्व चिकित्सालय जाएं, टिटेनस के टीकाकरण में सहायता करें, लौह तत्व और फोलिक अम्ल की गोलियाँ वितरित करें, जटिल मामलों को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में भेजें, माँ व रिश्तेदारों को निर्देश दें कि कब उसे बुलाना चाहिए, प्रसवोत्तर दौरों के लिए तत्काल जाएं, शिशुओं के टीकाकरण में सहायता करें, योग्य दम्पत्तियों को परिवार नियोजन अपनाने के लिए प्रेरित करें, निरोध, फोम की गोलियाँ और जैली वितरित करें, अपने क्षेत्र में हुए सभी जन्म व मृत्यु की सूचना दें ।

बोध प्रश्न - 2

1) क) छोटी - मोटी बीमारियों का उपचार

   - दुर्घटनाओं या आपातकालों के लिए प्राथमिक सहायता
   - स्वास्थ्य शिक्षा गतिविधियां
   - जल स्रोतों का क्लोरिनीकरण
   - निरोधक, संवर्धक, स्वास्थ्य सेवाओं में सहायता करना

- राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों का कार्यान्वयन
- टीकाकरण और परिवार नियोजन सेवाएं

ख) निरोधक, संवर्धक, स्वास्थ्य सेवाओं का अनुरक्षण, मार्गदर्शन और पर्यवेक्षण करना।

- चिकित्सा और शल्य कार्य का दायित्व लेना
- संदर्भ केन्द्र के रूप में कार्य करना

ग) छोटी-मोटी बीमारियों का उपचार

- एम.सी.एच. और परिवार नियोजन
- पर्यावरणी स्वच्छता

2) i) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र

ii) समुदाय स्वास्थ्य केन्द्र

iii) तालुका अस्पताल

iv) जिला अस्पताल

इकाई 21 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल–III : सेवाओं का वितरण

इकाई की रूपरेखा

21.1 प्रस्तावना
21.2 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के अनिवार्य घटक
21.2.1 प्रचलित स्वास्थ्य समस्याओं और उनकी रोकथाम और नियंत्रण के उपाय के बारे में लोगों को शिक्षित करना
21.2.2 खाद्य आपूर्ति और पर्याप्त पोषण का संवर्धन
21.2.3 सुरक्षित जल की पर्याप्त आपूर्ति और मूलभूत स्वच्छता उपाय
21.2.4 मातृ-शिशु स्वास्थ्य देखभाल और परिवार नियोजन
21.2.5 प्रमुख संक्रामक रोगों के प्रति टीकाकरण
21.2.6 स्थानिक रोगों की रोकथाम और नियंत्रण
21.2.7 सामान्य रोगों और चोटों का समुचित उपचार
21.2.8 अनिवार्य औषधियों का प्रावधान
21.3 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की सफलता के लिए अपेक्षित सहायक गतिविधियाँ
21.4 सारांश
21.5 शब्दावली
21.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

21.1 प्रस्तावना

इकाई 19 में आपने प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की संकल्पना और व्यवस्था के बारे में पढ़ा । इस इकाई में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के विविध घटकों और भारत में उनकी उपलब्धि के वर्तमान स्तरों के बारे में बताया जाएगा । इस इकाई में उन सहायक गतिविधियों पर भी प्रकाश डाला गया है जिन्हें प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल संकल्पना के कार्यान्वयन के साथ-साथ लिया जाना चाहिए ।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के विविध घटकों की सूची बना सकेंगे
- प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के घटकों के उपलब्धि-स्तर और उपलब्धियों को बढ़ावा देने वाले संभावित उपायों का वर्णन कर सकेंगे, और
- प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के सफलतापूर्वक कार्यान्वयन के लिए अनिवार्य सहायक गतिविधियों की विवेचना कर सकेंगे।

21.2 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के अनिवार्य घटक

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल, अनिवार्य स्वास्थ्य देखभाल है जो सभी लोगों तक सुलभ होनी चाहिए । अलमा अता घोषणा में कहा गया है कि कम से कम निम्नलिखित घटकों को प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल में अवश्य शामिल करना चाहिए (चित्र 21.1) ।

i) प्रचलित स्वास्थ्य समस्याओं और उनकी रोकथाम व नियंत्रण के उपायों के बारे में लोगों को शिक्षित करना

ii) खाद्य आपूर्ति और उचित पोषण को बढ़ावा

iii) सुरक्षित जल की पर्याप्त आपूर्ति और मूलभूत स्वच्छता

iv) मातृ-शिशु स्वास्थ्य देखभाल और परिवार नियोजन

v) प्रमुख संक्रामक रोगों के लिए टीकाकरण

vi) स्थानीय रूप से व्याप्त रोगों की रोकथाम और नियंत्रण

vii) सामान्य रोगों और चोटों का समुचित उपचार

viii) अनिवार्य औषधियों का प्रावधान

भारत में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के विभिन्न घटकों पर और उनके क्रियाकलापों की संक्षिप्त चर्चा निम्नलिखित उप-भाग में प्रस्तुत की गई है। इस इकाई में उन उपचारी उपायों का विस्तृत विवरण भी प्रस्तुत किया गया है जिन्हें प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के घटकों को सुधारने हेतु अपनाना अनिवार्य है या जो अपनाए जा रहे हैं। आइए, चर्चा का प्रारंभ प्रथम घटक – प्रचलित स्वास्थ्य समस्याओं के बारे में लोगों को शिक्षित करना से करें।

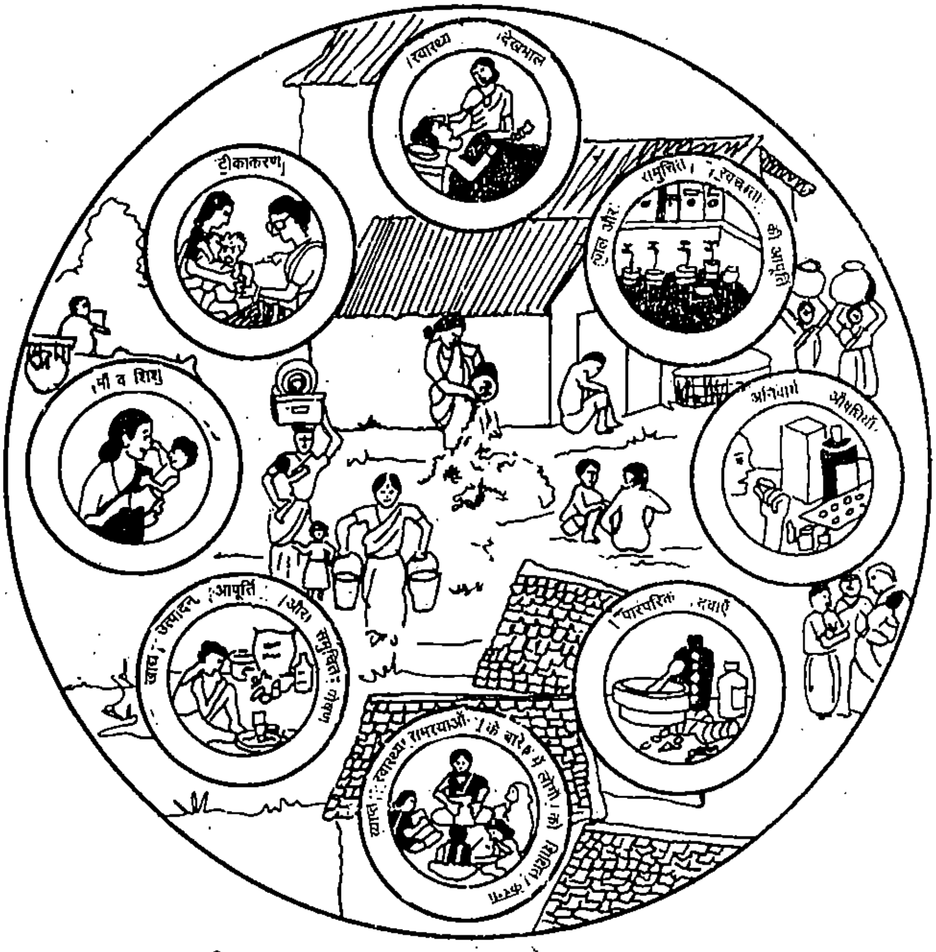

चित्र 21.1 : प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के घटक

21.2.1 प्रचलित स्वास्थ्य समस्याओं और उनकी रोकथाम और नियंत्रण के उपाय के बारे में लोगों को शिक्षित करना

ामान्यत: लोगों, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी स्लम में रहने वाले समुदाय में प्रचलित स्वास्थ्य मस्याएं और उनकी रोकथाम व नियंत्रण कैसे करें; स्वास्थ्य के संवर्धन और रखरखाव के लिए क्या ावश्यक है; उपलब्ध संसाधन कौन-से और इन्हें कैसे व कब प्रयोग करें इत्यादि, जैसे स्वास्थ्य संबंधी तथ्यों ी जानकारी नहीं होती। सामाजिक-आर्थिक पिछडापन, अज्ञानता, परम्पराएं और अंध-विश्वास प्रगतिशील चारशक्ति और सकारात्मक स्वास्थ्य की संकल्पना के विकास में बाधा डालते हैं। अत: प्रचलित स्वास्थ्य मस्याओं और उनकी रोकथाम व नियंत्रण के उपायों के बारे में लोगों को शिक्षित करना प्राथमिक स्वास्थ्य न्द्र के कार्यकर्त्ताओं (स्वास्थ्य गाइड, प्रशिक्षित दाइयाँ और बहु-उद्देशीय कार्यकर्त्ता) के प्रमुख कार्यों में से क कार्य है। सरकार ने महिलाओं के लिए सूचना (Information - I) शिक्षा (Education -E) और संचार ommunication - C) कार्यक्रम अर्थात् आई.ई.सी. कार्यक्रम प्रारंभ किया। यह कार्यक्रम उत्तर प्रदेश,

बिहार और राजस्थान के राज्यों में चालू है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत स्थानीय समुदाय से महिला स्वयं सेविकाएं जिन्हें सूत्र-महिला (Link-women) के नाम से जाना जाता है, गाँव की अन्य महिलाओं को स्वास्थ्य शिक्षा के संदेश पहुँचाती है। स्वास्थ्य शिक्षा कार्यकलाप दैनिक स्वास्थ्य देखभाल वितरण प्रणाली के अभिन्न हिस्से के रूप में संचालित किए जाते हैं।

स्वास्थ्य शिक्षा और जनसंख्या शिक्षा विषयों को स्कूली बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों में स्थान दिया जा रहा है।

सरकार द्वारा किए अथक प्रयासों के बावजूद स्वास्थ्य शिक्षा प्रयास अत्यंत अपर्याप्त ही है। निरक्षरता, विशेष रूप से महिलाओं में; स्वास्थ्य और उससे संबद्ध विषयों के संप्रेषण में बाधक है। अत: स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता स्वीकार्य और सस्ती सेवाओं को प्रदान नहीं कर सकते।

उपचारी उपाय : लोगों के विभिन्न समूहों के लिए समुचित शैक्षिक कार्यक्रम संगठित करने होंगे। समुदाय को स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करना स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं और ग्राम-स्तरीय कार्यकर्त्ताओ का प्रमुख कार्य होना चाहिए। इस प्रयास में सामाजिक और महिला के खानपान, शिक्षा, कृषि और पशु-पालन जैसे अन्य सेक्टरों के कार्यकर्त्ता, पंचायतें और महिला मंडल और युवा क्लबों जैसी स्वयंसेवी संस्थाएं महत्वपूर्ण रूप से योगदान दे सकती है। स्कूलों और प्रौढ़ शिक्षा सत्रों में दी जाने वाली स्वास्थ्य शिक्षा में विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं और उनकी रोकथाम व नियंत्रण के विषयों को शामिल करना चाहिए।

21.2.2 खाद्य आपूर्ति और पर्याप्त पोषण का संवर्धन

समन्वित बाल विकास सेवाएं (आई.सी.डी.एस.) योजना, उन बड़े कार्यक्रमों में से एक है जिनमें गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं और छ: वर्ष से कम आयु वाले बच्चों (विशेष रूप से समाज के अल्प-सुविधा प्राप्त में रहने वाले बच्चों) के पोषण स्तर को सुधारने के प्रयास किए जाते हैं (विस्तृत ब्यौरे के लिए इकाई 22 देखें)।

विटामिन ए और अरक्तता रोधक कार्यक्रम के अन्तर्गत विटामिन-ए का घोल और फोलिफर की गोलियाँ दी जाती हैं (देखें इकाई 22)। खाद्य आपूर्ति और उचित पोषण के संवर्धन के लिए सरकार द्वारा समेकित ग्राम विकास कार्यक्रम और जवाहर रोज़गार योजना जैसे अन्य महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्यक्रम चलाए गए।

इन सभी प्रयासों के बावजूद पोषणात्मक विसंगतियों की स्थिति जैसे प्रोटीन-ऊर्जा कुपोषण, विटामिन-ए और आयोडीन की कमी और पोषणात्मक एनीमिया जनसंख्या के व्यापक वर्ग में अभी भी भिन्न-भिन्न रूपों में व्याप्त है। पोषणात्मक विसंगतियाँ गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं और शिशुओं व बच्चों में विशेष रूप से देखी जाती है। उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि ० से 5 वर्ष के आयु वर्ग में होने वाली मौतों में 7 प्रतिशत मौतें कुपोषण के कारण होती है और अन्य 46% मामलों में यह संबद्ध कारणों से होती है।

उपचारी उपाय : समुदाय और स्कूलों में पोषण शिक्षा कार्यक्रमों को आयोजित करके, लोगों को शाक वाटिका और समुदाय वाटिका बनाने के लिए प्रोत्साहित करके, लोगों को खाद्य स्वच्छता संबंधी शिक्षा दे कर इस निराशापूर्ण स्थिति को व्यावहारिक रूप से सुधारा जा सकता है। स्थानीय पोषण आहारों और अनाजों, दालों, सब्जियों को उगाने, सहकारी समितियों के माध्यम से दूध, मछली और पोल्ट्री उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए और लोगों तक इन्हें आसानी से उचित दामों पर सुलभ कराने के प्रयास किए जाने चाहिए। इसके साथ ही साथ आय-सृजन करने वाले विभिन्न योजनाओं के माध्यम से परिवारों की खरीददारी करने की क्षमता को भी सुधारा जा सकता है। इसके अतिरिक्त सीमित और गंभीर रूप से कुपोषित समूहों के लिए पूरक पोषक कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है।

इन प्रयासों में कृषि, पशु-पालन, सिंचाई, बैंकों और सहकारी, सामाजिक और महिला कल्याण जैसे अन्य सैक्टरों के कार्यकर्त्ता, पंचायत, स्वयंसेवी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

21.2.3 सुरक्षित जल की पर्याप्त आपूर्ति और मूलभूत स्वच्छता उपाय

सुरक्षित जल की पर्याप्त आपूर्ति प्रदान करना और मूलभूत स्वच्छता उपायों के बारे में जानकारी देना प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के प्रमुख घटकों में से एक घटक है। सरकार द्वारा राष्ट्रीय जल आपूर्ति और स्वच्छता

कार्यक्रम चलाए गए जिनका लक्ष्य ग्रामीण और शहरी लोगों (आबादी) के लिए सुरक्षित पेय जल और स्वच्छता सुविधाएं प्रदान करना है।

कई स्वास्थ्य समस्याओं का मूल कारण समुदाय के जीवन के विभिन्न पहलुओं में निहित होता है। इसे चिकित्सा या स्वास्थ्य अंत: क्षेप द्वारा प्रभावित नहीं किया जा सकता। जनसंख्या के अधिकांश वर्गों को सुरक्षित पेय जल उपलब्ध नहीं होता। देश में व्याप्त कई जल-वाहित रोगों की रोकथाम हो सकती है लेकिन व्यक्तिगत स्वच्छता और सुरक्षित जल के प्रयोग की महत्ता के बारे में लोगों को सही ढंग से बताया नहीं जाता। पर्यावरणी स्वच्छता ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी स्लमों में विशेष रूप से काफी खराब है। अधिकांश स्थानों पर, मानव और पशु अपशिष्ट, वाहित-मल, कूड़ा-करकट इत्यादि के निपटान की समुचित व्यवस्था नहीं है।

उपचारी उपाय : सुरक्षित जल के स्रोतों का सर्वेक्षण और पता लगाने व जल के समुचित विश्लेषण के लिए व्यवस्थित उपागम बनाने चाहिए जबकि पीने व खाना पकाने में प्रयोग करने से पूर्व क्लोरीनित के माध्यम से जल के नियमित उपचार की व्यवस्थाएं होनी चाहिए। जल संसाधनों की उचित देखभाल (रख-रखाव), जल के उपचार की सरल-विधि और सुरक्षित जल के प्रयोग की महत्ता के बारे में ग्रामीण नेताओं, महिलाओं और स्कूलों के सभी बच्चों सहित, सब स्तरों के व्यक्तियों को शिक्षित (निरंतरता के आधार पर) करना चाहिए। घरेलू और समुदाय शौचालयों के निर्माण और मानव और पशु अपशिष्ट को एकत्रित करके उसके निपटान हेतु लोगों और संसाधनों को संगठित करना भी महत्वपूर्ण होगा। अपशिष्ट जल का समुचित निपटान करना भी महत्वपूर्ण है।

सिक्तन गर्त (Soakage Pits) के निर्माण और कुछ अपशिष्ट जल के शाक वाटिका में प्रयुक्त करने हेतु लोगों को प्रोत्साहित करने के साथ उनकी मदद करनी चाहिए। जल स्रोतों के उचित रख-रखाव और शाक-वाटिका की महत्ता के बारे में महिलाओं को शिक्षित करना भी लाभप्रद होगा। बच्चों, युवाओं, वयस्कों और माताओं के लिए इन सभी पहलुओं पर व्यवस्थित ढंग से उचित शैक्षिक कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए।

इन कार्यक्रमों में सिंचाई, इंजीनियरी विभाग, ग्राम उद्योगों, कृषि शिक्षा और सामाजिक और महिला कल्याण, ग्राम विकास, पंचायत और सहकारी जैसे अन्य सैक्टरों के कार्यकर्त्ताओं का सहयोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

21.2.4 मातृ-शिशु स्वास्थ्य देखभाल और परिवार नियोजन

ग्रामीण स्वास्थ्य देखभाल के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों का मातृ-शिशु स्वास्थ्य देखभाल का प्रावधान अन्य महत्वपूर्ण घटक है। इस प्रावधान के अन्तर्गत मातृक देखभाल, शिशु देखभाल, युवा बच्चों के मामलों और परिवार नियोजन सेवाएं प्रदान की जाती हैं। इन सभी सेवाओं के बावजूद भी महिलाओं और बच्चों को स्वास्थ्य का स्तर अपेक्षाकृत निम्न है। इसका क्या कारण है ? इन सेवाओं के सुधार के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए निम्नलिखित चर्चा को पढ़िए।

क) **मातृक देखभाल :** विकसित देशों और कुछ विकासशील देशों की तुलना में, भारत में 1000 प्रति जीवित जन्मों में 4 से 5 की वर्तमान मातृक दर उच्च है। माताओं के रुग्णता आंकड़ों की वैध सूचना उपलब्ध नहीं हैं। ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी स्लमों में मातृक देखभाल–प्रसव पूर्व, प्रसवकालीन, प्रसवोत्तर, – पूर्णत: अपर्याप्त हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में, अधिकांश (लगभग 80%) जन्म संस्थाओं से बाहर अर्थात् घर पर ही होते है और वे भी अप्रशिक्षित जन्म परिचरों द्वारा कराए जाते हैं। संक्रमण, रक्तस्राव, विषरक्तता, अवैध गर्भपात और कुपोषण मातृक मृत्यु दर के कुछ महत्वपूर्ण कारणों में से है। अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में अयोग्य व्यक्तियों द्वारा कराया गया प्रेरित गर्भपात मातृक मृत्यु दर और रुग्णता दर को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित करती है। इस तथ्य का ज्ञान होने के परिणामस्वरूप 1971 में गर्भपात कानून का उदारीकरण किया गया और चिकित्सीय गर्भपात की अधिनियम का अधिनियमन किया गया।

उपचारी उपाय : प्रसवपूर्व पंजीकरण और गर्भवती महिलाओं की देखभाल के वर्तमान 35% स्तर को 100% तक उत्तरोत्तर अभिवृद्ध करने के व्यवस्थित प्रयास किए जा रहे हैं। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि क्रमिक रूप से सभी प्रसव आपूर्तित परिस्थितियों में प्रशिक्षित स्वास्थ्य कार्मिकों द्वारा अर्थात् दाइयों या महिला बहु-उद्देशीय कार्यकर्त्ताओं द्वारा किए जाए। गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को टिटेनस

टॉक्साइड की रोगरोधक खुराकें और लौह तत्व और फॉलिक अम्ल के पूरक दिए जाने चाहिए । प्रसवोत्तर जाँच के दौरान महिलाओं को स्तनपान कराने, वृद्धि अनुवीक्षण, पूरक आहार, टीकाकरण करने और आहार स्वच्छता और परिवार नियोजन की जानकारी देनी चाहिए ।

ख) शिशु देखभाल : भारत में शिशु मृत्यु दर (आई.एम.आर.) प्रति 1000 जीवित बच्चों में 77 (1992 में एस.आर.एस. के अनुमान के अनुसार) है, जो कि बहुत उच्च है और यह आंकड़े ग्रामीण क्षेत्रों में इससे भी कहीं ज्यादा है । इनमें से 50-60% की नवजात अवधि (0-28 दिन), तथा विशेष रूप से जन्म के प्रथम सप्ताह में ही मृत्यु हो जाती है ।

मर्त्यता (Mortality) में कई अन्य कारकों का भी योगदान है जिनमें गर्भधारण के दौरान निम्न स्तरीय मातृक स्वास्थ्य, बार-बार बच्चों का जन्म, जोखम ग्रस्त महिलाओं (at risk mothers) की अपर्याप्त देखभाल, निम्न संरचनात्मक सुविधाएं, जन्म के समय नवजात की देखभाल में कमी, और व्यावहारिक रूप से प्राथमिक से लेकर तृतीय स्तरों तक नवजात के देखभाल के लिए सुविधाओं का उपलब्ध न होना शामिल है। कम मातृक वजन और बार-बार गर्भधारण करना, मातृक कुपोषण और एनीमिया, चिरकालिक मातृक रोग और गर्भावस्था की जटिलताओं जैसे कारकों के फलस्वरूप या तो समय-पूर्व जन्म के कारण या अन्तरा गर्भाशय की वृद्धि अवरोधन के कारण कम वज़न वाले बच्चे पैदा होते हैं । जन्म के समय कम भार यदि विशेष रूप से काल पूर्व जन्म से संबद्ध होता है, तो यह नवजात या शिशु मृत्यु दर का प्रमुख आधारभूत (मूल) कारण है ।

उपचारी उपाय : इस समस्याओं से निपटने के लिए, अधिक खतरे वाले उपागम को अपनाते हुए प्रसवकालीन और नवजात देखभाल में दाइयों और महिला स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं और स्वास्थ्य सहायक को समुचित रूप से प्रशिक्षित करना होगा । संदर्भ से द्वितीयक और तृतीयक स्तरों के लिए समुचित सुविधाओं को विकसित व संगठित करना होगा । समुदाय के लोगों को प्रसवपूर्व और नवजात देखभाल की महत्ता के बारे में उचित रूप से शिक्षित करना होगा और लोगों को इन कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से योगदान देने के लिए प्रोत्साहित करना होगा ।

ग) छोटे बच्चों की देखभाल : 0-5 वर्ष की आयु के बच्चों में (स्कूल पूर्व बच्चे) रुग्णता और मर्त्यता प्रमुख रूप से कुपोषण, अतिसारी रोगों, श्वसन संबंधी संक्रमणों और अन्य निरोधक संक्रमणों के कारण होता है । कुपोषण बच्चों को संक्रमण के प्रति पहले से ही अनुकूल बना देता है (कुपोषित बच्चों में रुग्णता दर तीन गुणा ज्यादा है)।

उपचारी उपाय : दो प्रकार के अंतःक्षेप कार्यक्रमों की आवश्यकता होगी (क) कुपोषण की रोकथाम और उपचार, और (ख) अतिसार, श्वसनी संक्रमणों और टीकाकरण द्वारा रोकथाम किए जाने योग्य अन्य संक्रमणों के कारण होने वाली मर्त्यता को टीकाकरण द्वारा कम करना । स्कूल-पूर्व बच्चों में कुपोषण की व्याप्ति दर को कम करने के लिए कार्यनीति इस प्रकार होगी (क) महिलाओं को पोषण शिक्षा प्रदान करना; (ख) कुपोषण के मामलों का पता लगाना और उसकी कोटि निर्धारित करना; (ग) घरेलू संसाधनों से पूरक आहारों द्वारा कोटि I और II के मामलों में रोगी को पुन: स्वास्थ्यप्रद स्थिति में लाना; (घ) कोटि III और IV के मामलों में स्वास्थ्य संस्थाओं में पूरक आहार देना; और (ङ) अतिसार या द्वितीयक स्तर के संक्रमण की देखभाल अर्थात् समुदाय स्वास्थ्य केन्द्रों या जिला या तालुक स्तरों के अस्पताल से संबद्ध ग्रेड III के मामलों को भेजना ।

अतिसारी रोगों और श्वसन संबंधी संक्रमणों के कारण शिशु में होने वाली मर्त्यता को कम करने के लिए कार्यनीति होगी : (क) अतिसारी और श्वसनी रोगों की रोकथाम और उपचार कैसे किया जाए, इस संबंध में महिलाओं को शिक्षित करना; (ख) इन विसंगतियों की पहचान और उपचार कैसे करें इसके बारे में स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित करना और जिन रोगियों को उच्चतर स्तरों की स्वास्थ्य सेवाओं की आवश्यकता होगी, इसका पता लगाना; (ग) संदर्भ मामलों में सुविधाएं या द्वितीयक स्तर की देखभाल सुविधाएं निर्मित करना; और (घ) औषधियां, जीवन रक्षक घोल और अन्य सहायक उपाय प्रदान करना । सभी बच्चों को, अधिमान्यत: एक वर्ष से कम आयु के बच्चों को, टी.बी, पोलियो, डिफ्थीरिया, टिटेनस, काली खाँसी और खसरे का टीका अवश्य लगवाना चाहिए ।

(घ) परिवार नियोजन : 1952 में परिवार नियोजन को सरकारी कार्यक्रम के रूप में अपनाने वाला हालांकि भारत पहला देश है, फिर भी पिछले 40 वर्षों में हुई उपलब्धियाँ इतनी वांछनीय नहीं है।

वर्तमान अशोधित जन्म दर प्रति 1000 जनसंख्या में 30 के लगभग है । इस दर को कम करके 25 तक लाने के लिए और सन् 2000 तक एक की निविल प्रजनन दर की प्राप्ति हेतु प्रजनन वर्ग के अन्तर्गत आने वाले 60 प्रतिशत पात्र दम्पत्तियों को गर्भ निरोधक विधि के माध्यम से प्रभावी सुरक्षा प्रदान करनी होगी । हाल ही में यह अनुमान लगाया गया है कि प्रजनन आयु वर्ग के लगभग 32% दम्पत्तियों के गर्भ निरोधक उपायों द्वारा सुरक्षित किया जा चुका है । इनमें से लगभग 27% को केवल नसबंदी/ बंध्यकरण द्वारा और केवल 5% को अन्तराल उपायों द्वारा सुरक्षित किया गया । नसबंदी / बंध्यकरण को स्वीकार करने वालों में से 80% से ज्यादा के तीन या तीन से अधिक जीवित बच्चें हैं। स्पष्टत: ऐसे गर्भ निरोधक उपायों से हमें वांछित जनसांखिकीय लाभ की आशा नहीं करनी चाहिए ।

उपचारी उपाय : कम बच्चों वाले छोटी आयु के दम्पत्तियों की ओर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है अर्थात् नवविवाहित दम्पत्तियों को अन्तराल उपायों की शिक्षा देने और एक बच्चे और दो बच्चे वाले दम्पत्तियों के लिए स्थायी उपायों द्वारा गर्भ निरोधक संरक्षण प्रदान करने की आवश्यकता है ।

गर्भ निरोधकों की स्वीकार्यता और निरंतर प्रयोग कई कारकों से प्रभावित होती है जैसे उपाय की विशेषताएं उसके लाभ व हानियाँ, व्यक्तिगत और सामाजिक स्वीकार्यता, प्रदान करने वाले का ज्ञान, कौशल और अभिरुचि, प्रभावी संप्रेषण, उत्प्रेरण और सलाह, आपूर्ति, संभार तंत्र (logistics) और अनुवर्ती देखभाल और लागत सहित वितरण सेवाओं की प्रकृति और गुणवत्ता ।

इस लक्ष्य के लिए छोटे परिवार को मूल्य जीवन का एक तरीका बनना पड़ेगा, स्कूलों, कालेजों और प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में जनसंख्या शिक्षा का संगठन अधिक महत्वपूर्ण होगा ।

अनुकूल वातावरण के सृजन के लिए परिवार नियोजन मूल्य को अपनाने, प्रभावी गर्भ निरोधक की स्वीकार्यता और प्रचलन के लिए अनुकूल वातावरण का सृजन करने हेतु निम्नलिखित उपागमों को अपनाया जा सकता है ।

i) समुदाय, परिवार और व्यक्तिगत दम्पत्तियों को शिक्षित करने के लिए जनसंचार का व्यवस्थित और समन्वित प्रयोग, समूह उन्मुख और अन्त: व्यक्तिगत संचार महत्वपूर्ण होगा । परिवार कल्याण कार्यकर्त्ताओं का लक्ष्य होगा कि (क) शिक्षा और उत्प्रेरण के लिए आवश्यक सूचना प्रदान करना; (ख) गर्भ निरोधक संबंधी सूचना और सेवाओं के मूल्यांकन के लिए प्रयोक्ता की सहायता करना; और इनके बारे में सूचित विकल्प और निर्णय लेना; और (ग) उन्हें गर्भ निरोधकों के निरंतर प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना।

ii) भावी प्रयोक्ताओं को शिक्षित और उत्प्रेरित करने के लिए स्वास्थ्य कार्मिकों के ज्ञान और कौशलों को सुदृढ़ करने को ध्यान में रख, उन्हें समुनित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए; इसके साथ ही साथ उनके कार्यक्रम में विश्वास और अभिवृत्ति विकसित करनी चाहिए ।

iii) गर्भ निरोधक सेवाओं के प्रभावी कार्यान्वयन, अनुविदान और मूल्यांकन के लिए सेवा एजेंसियों को समुचित रूप से तैयार करना चाहिए और गर्भ निरोधकों की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करनी चाहिए।

iv) छोटे परिवार मूल के संवर्धन के लिए लोगों के घरों में ही जाकर गर्भ निरोधक सेवाओं का प्रभावी वितरण एक महत्वपूर्ण उपाय माना गया है ।

v) परिवार नियोजन की स्वीकृति को संवर्धित करने के लिए शिशु मृत्यु-दर को तीव्र गति से नीचे लाना होगा और बच्चे की उत्तरजीविता के अवसरों को स्थायी रूप से सुधारना होगा ।

vi) सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा का प्रवर्तन और बीच में ही स्कूल छोड़ने (drop-out) की रोकथाम, छोटे परिवार मूल्य की स्वीकृति की ओर एक महत्वपूर्ण क़दम होगा; लड़कियों और महिलाओं को शिक्षा देने की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ।

vii) प्रजनन निष्कर्षों के लिए महिलाओं की अनुकूलतम आयु 20 से 30 के बीच होती है । अत: विवाह की न्यूनतम आयु के साथ-साथ महिलाओं की 20 वर्ष की आयु से पूर्व बच्चों को जन्म न देने की सलाह देने पर कानून का प्रवर्तन एक महत्वपूर्ण कार्यनीति होगी; और

viii) चूँकि सामाजिक परिवर्तन लाने में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है, अत: महिलाओं के सामाजिक स्तर को ऊपर उठाना और परिवार नियोजन सहित विभिन्न कल्याण कार्यों में उन्हें शामिल करना महत्वपूर्ण होगा ।

बोध प्रश्न - 1

1) प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के आठ महत्वपूर्ण घटकों की सूची बनाइए ।

....

....

....

....

....

2) देश में व्याप्त स्वास्थ्य समस्याओं के बारे में महिलाओं को शिक्षित करने हेतु सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए कार्यक्रम का नाम बताइए। उन्हें ये संदेश कैसे संप्रेषित किया जाता है ? इसे लेखाचित्र रूप में प्रस्तुत कीजिए।

3) खाद्य आपूर्ति और समुचित पोषण के संवर्धन को सुनिश्चित करने के लिए अपनाए जा सकने वाले किन्हीं तीन उपचारी उपायों की सूची बनाइए ।

....

....

....

....

4) मातृ-शिशु स्वास्थ्य देखभाल के अन्तर्गत कौन-कौन सी सेवाएं प्रदान की जाती हैं ?

....

....

....

....

....

....

5) स्कूल-पूर्व बच्चों के स्वास्थ्य स्तरों को सुधारने के लिए अनिवार्य दो अंतःक्षेप कार्यक्रमों की सूची बनाइए।

....

....

....

....

....

....

21.2.5 प्रमुख संक्रामक रोगों के प्रति टीकाकरण

भारत में टीकाकरण कार्यक्रमों का लम्बा इतिहास है। सातवें दशक में चेचक और क्षयरोग के लिए टीकों की शुरूआत की गई और आठवें दशक के मध्य (1975) में डिफ्थीरिया, काली खाँसी और टिटेनस के लिए टीके लगाने आरंभ किए गए। पोलियो वैक्सीन 1980 में, खसरे का टीका 1985 में एक सीमित पैमाने पर प्रारंभ किया गया। आजकल शिशु के लिए टीकाकरण सेवाओं के पैकेज में क्षयरोग, डिफ्थीरिया, काली खाँसी, टिटेनस, पोलियो और खसरे का टीका शामिल है। गर्भवती महिलाओं को टिटेनस टॉक्साइड की दो खुराकें या एक बूस्टर खुराक दी जानी चाहिए।

1990 से नए चलाए गए सार्वभौमिक टीकाकरण के तहत (जो स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गाँधी को समर्पित है) 85% शिशु और 100% गर्भवती महिलाओं को टीका लगाने की योजना है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ऐसा अनुमान लगाया गया है कि एक वर्ष में लगभग 220 लाख शिशु और 240 लाख गर्भवती महिलाएं इस कार्यक्रम का लाभ उठा सकें। वर्तमान स्थिति में शिशुओं और महिलाओं तक यह सुविधा समुचित नहीं पहुँच पाई और कुछ प्रमुख प्रदेश इसमें काफी पीछे हैं। इसके अतिरिक्त जिन्हें टीके लगाए भी जा रहे हैं वे नियमित रूप से टीके नहीं लगवाते हैं और काफी बच्चे बहु-खुराक अनुसूचियों को पूरा नहीं करते।

उपचारी उपाय : सफल टीकाकरण कार्यक्रम के लिए वैक्सीन की नियमित आपूर्ति और सही भंडारण के साथ वैक्सीन की शक्ति (Potency) को परिरक्षित रखने के लिए शीतागार शृंखलाओं का प्रभावोत्पादक रखरखाव भी सुनिश्चित करना होगा। स्थानीय रूप से प्रबल परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समुचित संभार तंत्र (logistics) और आपूर्ति व्यवस्था अपनाने के लिए यथेष्ट पटुता और नवीकृत उपागमों की आवश्यकता है। समुचित कवरेज और टीके में अनियमितता की रोकथाम के लिए लोगों को विशेष रूप से महिलाओं को, शिक्षित करने की आवश्यकता है; इसके साथ ही साथ समुदाय की सक्रिय सहभागिता को उत्प्रेरित करने की भी आवश्यकता है।

समुचित शैक्षिक गतिविधियों के संगठन के साथ-साथ अनुवर्ती सहायता और देखभाल सेवाएं प्रदान करने के लिए अन्य सेक्टरों जैसे शिक्षा, सामाजिक और महिला कल्याण, पंचायती और स्वयंसेवी संगठनों का सहयोग लेना मूल्यवान होगा।

21.2.6 स्थानिक रोगों की रोकथाम और नियंत्रण

यद्यपि स्थानिक रोगों की व्यापकता प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग है, तथापि हमारे देश में व्याप्त कुछ महत्वपूर्ण रोग (क्षयरोग, मलेरिया, कोढ़, फाइलेरिया, आयोडीन की कमी से होने वाली विसंगतियाँ इत्यादि) हैं। इनसे स्थानिक विसंगतियों के नियंत्रण या उन्मूलन के उद्देश्य से सरकार ने विविध राष्ट्रीय कार्यक्रम चलाए हैं। इनमें से कुछ हैं कोढ़ उन्मूलन कार्यक्रम, क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम, अन्धता के नियंत्रण के लिए कार्यक्रम। इकाई 22 में इन कार्यक्रमों पर विस्तार से चर्चा की गई है। इन मामलों की शीघ्र उपचार करने और अनुवर्ती देखभाल के लिए लोगों को प्रशिक्षित किया जा रहा है। हालांकि स्थानिक रूप से व्याप्त स्थानिक रोगों की व्याप्ति के सही आंकड़े उपलब्ध नहीं है अत: निर्णय-कर्त्ता (decision-maker) विवेक सम्मत निर्णय नहीं ले सकते।

उपचारी उपाय : इसके लिए सूचना पद्धति विकसित करने की आवश्यकता है जिसमें भिन्न-भिन्न स्थानीय रूप से व्याप्त स्थानीक रोगों की देखरेख पर बल दिया जाए । यह डाटा जिला स्तर पर उपलब्ध होना चाहिए और इसकी प्रतिपुष्टि जिले की प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल इकाईयों को दी जानी चाहिए । लोगों को प्रत्येक रोग, उसकी रोकथाम के सरल उपायों और उन्हें स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से नियंत्रित करने के बारे में शिक्षित करना चाहिए । समुदाय के सदस्यों को सरकार द्वारा क्रियान्वित विविध स्वास्थ्य कार्यक्रमों की सेवाओं के सदुपयोग के लिए प्रेरित करमा चाहिए ।

21.2.7 सामान्य रोगों और चोटों का समुचित उपचार

सरकार ने प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल स्तर पर उपकेन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र; द्वितीयक स्तर पर जिला / जोन अस्पताल, और तृतीयक स्तर पर राज्य अस्पताल/ चिकित्सा कालेज अस्पताल, संस्थान स्थापित किए हैं। प्रत्येक स्वास्थ्य इकाई में सम्यक रूप से प्रशिक्षित स्टाफ होता है तथापि संदर्भ पद्धति के संतोषजनक न होने के कारण काफी अव्यवस्था है, स्वास्थ्य देखभाल का ह्रास हो रहा है और दोहरे प्रयास हो रहें हैं । 80 प्रतिशत बीमारियों का गाँव स्तर पर प्रशिक्षित परा-चिकित्सा कार्यकर्त्ताओं द्वारा ही नियंत्रण किया जा सकता है। परिधीय स्तर पर इन सामान्य रोगों की व्यवस्था से उन संदर्भ संस्थाओं के काम का बोझ थोड़ा कम होता है जहाँ अपेक्षाकृत ज्यादा गंभीर व्यक्तियों को विशेष स्वास्थ्य देखभाल प्रदान की जाती है । आजकल सभी व्यक्ति चाहे वे छोटी स्वास्थ्य समस्या से पीड़ित हों या प्रमुख स्वास्थ्य रोग से पीड़ित हों, प्राथमिक, द्वितीयक या तृतीयक स्तर के अस्पतालों में जाते हैं जिससे विशिष्ट आयु वर्ग के लाभार्थ बनाए गए स्वास्थ्य देखभाल का ह्रास हो रहा है ।

उपचारी उपाय : छोटे-मोटे रोगों का उपचार या प्राथमिक सहायता गाँव के स्तर पर दी जा सकती है। सामान्य रोगों और चोटों का उपचार उपकेन्द्रों और प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल केन्द्रों पर ही किया जाना चाहिए और समुचित संदर्भ सेवाओं को संगठित किया जाना चाहिए । लोगों को स्थानीय इलाज और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपलब्ध सुविधाओं के बारे में शिक्षित करने की जरूरत है । शिक्षा, सामाजिक और महिला कल्याण, पंचायत, स्वयंसेवी संगठन जैसे अन्य सेक्टर लोगों, और स्कूल अध्यापकों इत्यादि को शिक्षित करने और संसाधनों को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं ।

21.2.8 अनिवार्य औषधियों का प्रावधान

सरकार ने स्वास्थ्य देखभाल के प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक स्तर पर उपलब्ध दवाओं की एक सूची तैयार की है । प्राथमिक देखभाल कार्यकर्त्ताओं को इन दवाओं की पुन:पूर्ति एक महीने के अन्तराल पर की जाती है । चूँकि स्वास्थ्य राज्य का विषय है अत: कई बार पुन: पूर्ति में बाधा के कारण स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं का क्रम-भंग हो जाता है । जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि लगभग 80% बीमारियों को उपलब्ध साधारण दवाइयों से परिधीय स्तर पर प्रशिक्षित स्टाफ नियंत्रित कर सकते हैं । कार्यकर्त्ताओं को ये दवाइयाँ समुचित मात्रा में दी जानी चाहिए और इनकी आवधिक रूप से पुन:पूर्ति होनी चाहिए । आजकल बजट का 90% उन रोगों की औषधियों के लिए खर्च किया जाता है जिन रोगों से शहरी क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या के मात्र 10% लोग ही प्रभावित होते हैं ।

उपचारी उपाय : स्थानीय स्वास्थ्य देखभाल और सामान्य रोगों और विसंगतियों के इलाज की कम से कम 20 औषधियाँ मात्र इतनी दूरी पर उपलब्ध होनी चाहिए जिस दूरी को एक घंटे में पैदल तय किया जा सके। स्थानीय रूप से उपलब्ध इलाजों और आयुर्विज्ञान की स्वदेशी पद्धति का प्रयोग किया जाना चाहिए । सरकारी संसाधनों की वित्तीय सीमा को ध्यान में रखते हुए सहकारी निधियन के माध्यम से समुदाय की सहभागिता को बढ़ावा दिया जा सकता है ।

बोध प्रश्न - 2

1) प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल में शिशुओं के लिए टीकाकरण सेवाओं में शामिल पैकेज की सूची बनाइए।

....

....

....

....

....

....

2) स्थानिक विसंगतियों के नियंत्रण या उन्मूलन के लिए अपनाए जाने वाले दो उपचारी उपायों की सूची बनाइए ।

....

....

....

....

....

....

3) सरकार द्वारा निम्नलिखित स्तरों पर स्थापित स्वास्थ्य संस्थाओं की सूची बनाइए :

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल ....

द्वितीयक स्वास्थ्य देखभाल ....

तृतीयक स्वास्थ्य देखभाल ....

21.3 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की सफलता के लिए अपेक्षित सहायक गतिविधियाँ

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के सफलतापूर्वक कार्यान्वयन के लिए अनिवार्य कई सहायक सेवाओं का पता लगाया है, जो निम्नलिखित हैं :

i) समुदाय को शामिल करना और उनकी सहभागिता

ii) अन्तरा और अन्त: क्षेत्रीग समन्वय

iii) प्रभावी संदर्भ सहायता (referral support) का विकास

iv) संसाधन जुटाने का विकास

v) प्रबंधकीय प्रक्रियाओं को शामिल करना

vi) स्वास्थ्य जनशक्ति विकास

vii) नवीकृत उपागमों सहित चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाएं अनुसंधान

viii) समुचित प्रौद्योगिकी का विकास और अनुप्रयोग

उपर्युक्त प्रत्येक पर संक्षिप्त चर्चा आगे की गई है ।

समुदाय को शामिल करना और उनकी सहभागिता

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की सफलता के लिए, समुदाय को शामिल करना और सहभागी बनाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण और अनिवार्य है । देश के कुछ क्षेत्रों में जहाँ गाँव पंचायतें और स्वयंसेवी एजेंसियां इनमें रुचि ले रही हैं उन क्षेत्रों को छोड़कर कुल मिलाकर अभी तक विभिन्न कार्यक्रमों में समुदाय की सहभागिता का काफी अभाव दृष्टिगत होता है ।

सहभागिता का अर्थ है कि लोगों को उनकी स्वास्थ्य समस्याओं की जानकारी होनी चाहिए; वे अपनी जरूरतों को पहचानें, प्राथमिकता उपलब्ध संसाधनों के अनुसार योजना कार्य बनाए, कार्यक्रमों को संगठित और कार्यान्वित करने, प्रगति को देखने और उसका नियंत्रण, आवधिक रूप से उनका मूल्यांकन करने और उनका पुनर्प्रोग्रामन करने । शुरू-शुरू में समुदाय की सहभागिता निष्क्रिय एवं उदासीन हो सकती है जिसे क्रमिक रूप से धीरे-धीरे और ज्यादा सक्रिय बनाना होगा । हाल ही में कुछ विकास, स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रम के प्रति समुदाय सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए प्रेरक होंगे ।

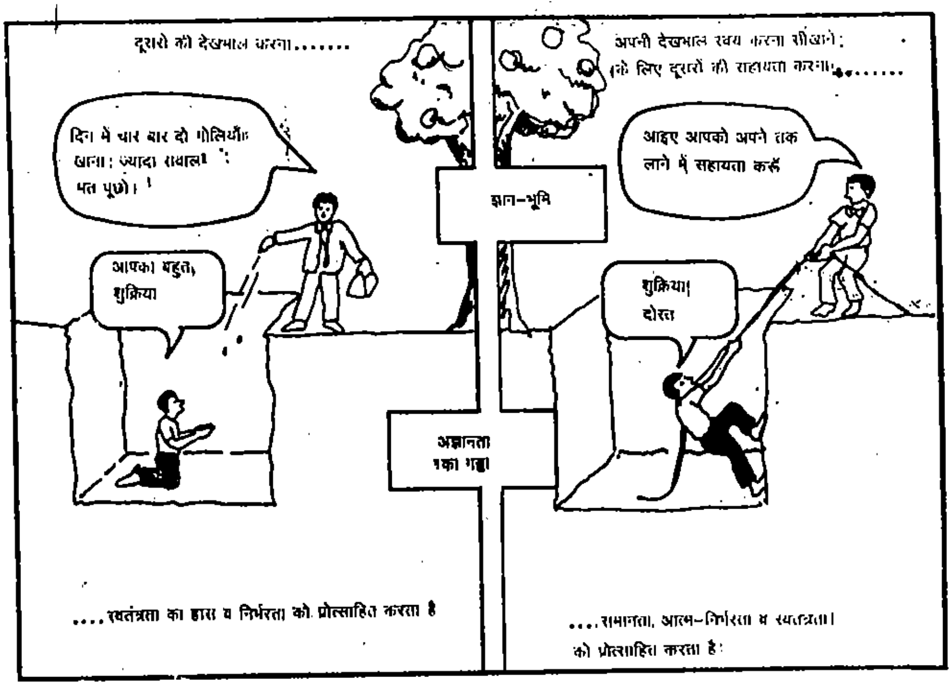

स्वास्थ्य गाइड और प्रशिक्षित दाइयाँ स्थानीय लोग होते हैं । ग्राम स्वास्थ्य समितियों, महिला मंडलों, युवा क्लबों इत्यादि की सक्रियता से समुदाय की ओर ज्यादा सक्रिय सहभागिता संभव हो सकती है । समुदाय को संसाधनों को जुटाने योग्य होना चाहिए और धीरे-धीरे स्वास्थ्य विकास की भावना में स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के मामलों में आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करना चाहिए । समुदाय में काम कर रहे स्वास्थ्य और परिवार कल्याण कार्मिकों को लोगों में विश्वसनीयता विकसित करनी होगी और उत्प्रेरणात्मक अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करना होगा । हालांकि प्राथमिक देखभाल उपागम में स्वास्थ्य देखभाल के निरोधक सेवाएं, (जो समुदाय की अनुभूत आवश्यकता है) संतोषजनक होनी चाहिए क्योंकि ये सेवाएं स्वास्थ्य कार्मिकों की विश्वसनीय को स्थापित करने के लिए प्रवेश द्वार हैं ।

समुदाय की सहभागिता के कुछ क्षेत्र जिन पर विशेष बल दिया जाना चाहिए, वे इस प्रकार हैं :

i) यह सामान्य विकास, विशेष रूप से स्वास्थ्य विकास को लाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है ।

ii) यह स्वास्थ्य प्रबंधन (व्यवस्था) में प्रयोक्ता- परिप्रेक्ष्य की जानकारी को अभिवृद्ध करता है । इससे लोगों तक सेवाएं ज्यादा आसानी से पहुँचती हैं और उन्हें स्वीकार्यता भी मिलती है ।

iii) यह स्वास्थ्य सेवाओं के वितरण संबंधी मामलों में आत्म-निर्भरता को संबंधित और सुदृढ करती है । सहभागिता स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रमों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करती है ।

iv) यह स्वास्थ्य देखभाल की लागत को भी घटाता है चूँकि सहभागिता के कारण समुदाय के लोग स्वदेशी ज्ञान और स्थानीय संसाधनों का प्रयोग करते हैं ।

v) प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के लिए निरोधक और संवर्धक पहलुओं के लिए समुदाय के लोगों को प्रमुख भूमिका अदा करनी होगी ।

vi) यह समझना महत्वपूर्ण है कि विभिन्न क्षेत्रीय कार्यों में एकीकरण और समन्वय (स्वास्थ्य पर पर्याप्त और दीर्घकालिक प्रभाव बनाने के लिए अनिवार्य) केवल समुदाय स्तर पर और समुदाय के क्रियाओं और संगठन से ही संपादित किया जा सकता है ।

II) अंतरा-क्षेत्रीय समन्वय (Intra–Sectoral Co-ordination)

राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रणाली के अतिरिक्त स्वास्थ्य क्षेत्र में ही कई गैर-सरकारी एजेन्सियां भी इस क्षेत्र में काम कर रही हैं और जनसंख्या के एक बड़े अनुपात की स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों को पूरा कर रही है । इन एजेंसियों

में स्वयंसेवी संगठन, गैर-सरकारी संगठन, व्यावसायिक निकाय, आधुनिक आयुर्विज्ञान और आयुर्विज्ञान की स्वदेशी पद्धति के निजी व्यावसायिक व्यक्ति शामिल हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में 60-70 प्रतिशत स्वास्थ्य देखभाल ऐसी ही गैर-सरकारी एजेंसियाँ प्रदान कर रही हैं। दुर्भाग्यवश, इन गैर-सरकारी एजेंसियों के उचित संयोजन और समन्वय स्थापित करने के लिए किसी भी प्रकार के व्यवस्थित प्रयास नहीं किए गए हैं। राष्ट्रीय स्वास्थ्य देखभाल वितरण प्रणाली के प्रयासों और कार्यकलापों को प्रभावशाली रूप से एक दूसरे से जोड़ने के लिए प्रक्रियाओं को विकसित करने की अविलंब आवश्यकता है ताकि प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के माध्यम से ये जनसंख्या के सभी वर्गों तक पहुँच सकें (चित्र 21.2)।

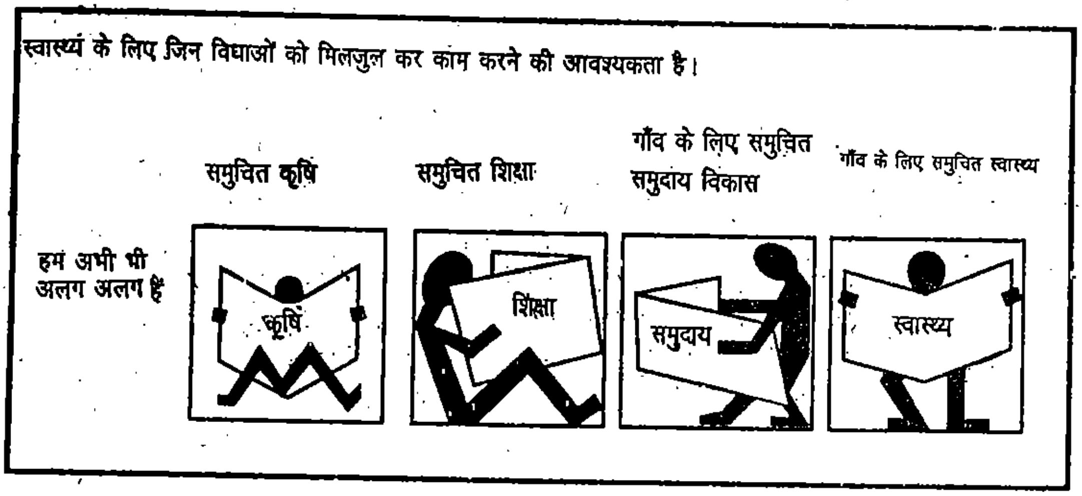

चित्र 21.2 : स्वास्थ्य के लिए जिन विधाओं को एक साथ मिलकर कार्य करने की आवश्यकता है

यहाँ तक की वर्तमान स्वास्थ्य प्रणाली में ही एकीकृत और समन्वित प्रयासों के काफी अवसर हैं। कई परिस्थितियों में ऐसा देखा गया है कि कई अलग-अलग कार्यक्रम चालू हैं जिनमें परस्पर कोई संबंध नहीं है। कुछ स्थानों में तो बिना किसी समन्वय के स्वास्थ्य और परिवार कल्याण कार्यक्रम स्वतंत्र रूप से चलाए जा रहे हैं।

III) प्रभावी संदर्भ सहायता (Referral Support) का विकास

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की सफलता के लिए अनिवार्य पूर्वापेक्षाएं में से एक होगी – द्वितीयक और तृतीयक स्तरों पर उचित संदर्भ सहायता का विकास। यह सब एक व्यवस्थित ढंग से करना होगा। पर्याप्त दो-तरफा संदर्भ सहायता प्रदान करनी होगी। इसके लिए विभिन्न प्रासंगिक संस्थाओं में संयोजन के लिए एक प्रणाली बनाने की आवश्यकता है, जिसकी शुरुआत छोटे समुदायों में व्यक्तिगत और सरलतम स्वास्थ्य संस्था से होगी जो धीरे-धीरे एक जटिल संस्था से दूसरे संस्था तक चलती जाएगी।

उन संस्थानों की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है जो प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल को प्रत्यक्ष सहायता प्रदान करते हैं। सही और प्रभावी संदर्भ प्रणाली को संगठित करने के लिए कार्यों, कर्मचारी भर्ती, योजना डिजाइन, उपलब्ध उपकरणों, संगठन और स्वास्थ्य केन्द्रों की व्यवस्था और जिला अस्पतालों की समीक्षा करना उपयोगी होगा ताकि इन्हें प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के समर्थन में व्यापक कार्य करने के लिए तैयार किया जा सके।

IV) संसाधनों का विकास और उन्हें जुटाना

स्वास्थ्य विकास कार्यक्रमों के लिए संसाधनों से सापेक्षिक रूप से ज्यादा निवेश प्राप्त करने के लिए दृढ़ राजनैयिक वचनबद्धता अनिवार्य है (चित्र 21.3)। प्राय: ऐसा देखा गया है कि ज्ञान के अभाव और परस्पर विरोधी प्रयासों के फलस्वरूप कई विकास परियोजनाओं के लिए उपलब्ध विधि का प्रयोग नहीं हो पाता। इसके अलावा, समुदाय से ही स्थायी वित्तीय और मानव संसाधन जुटाए जा सकते हैं। इनमें से कुछ जैसे कि युवाओं और महिलाओं का समुदाय में कार्य करने के लिए उत्साह व स्फूर्ति एवं शक्ति अनुपयुक्त रह सकते हैं।

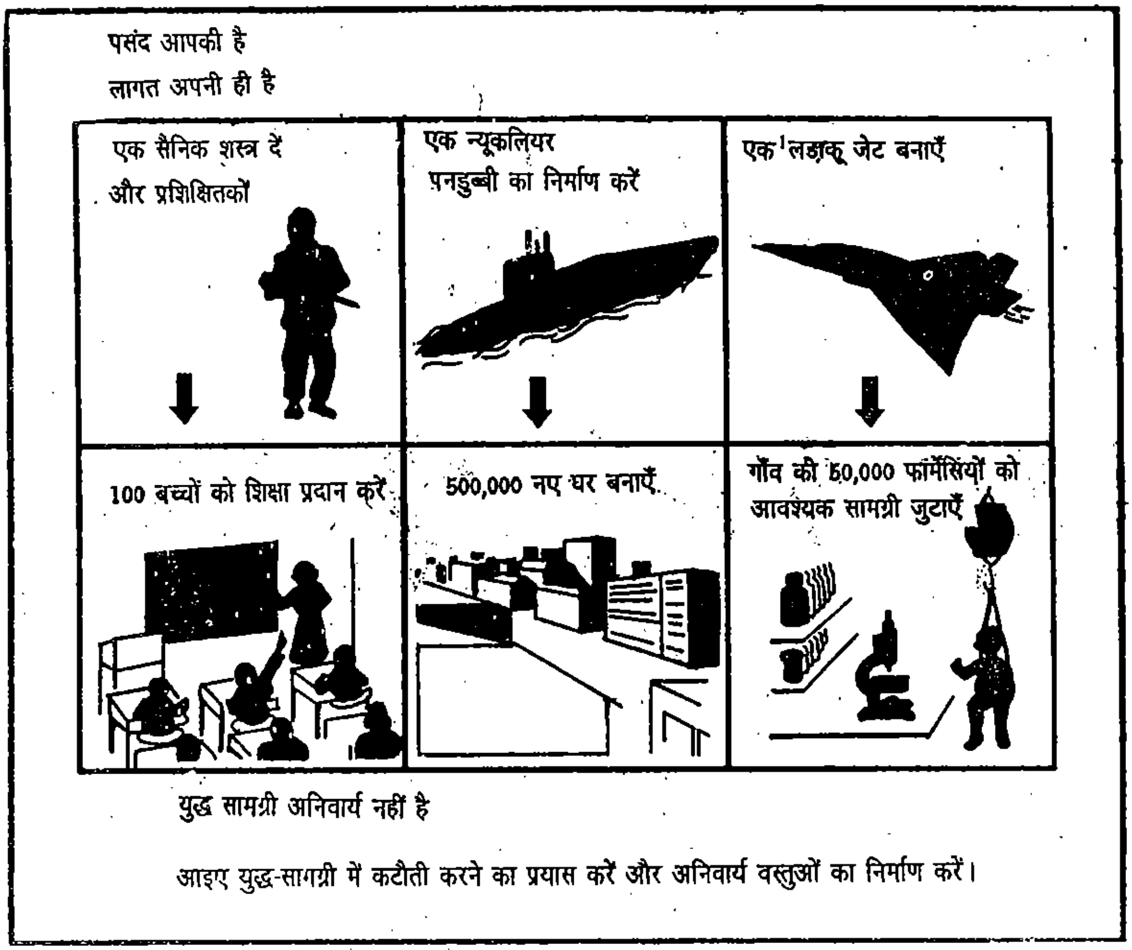

चित्र 21.3 : स्वास्थ्य के लिए राष्ट्रीय संसाधन

समुदाय के लिए व्यक्तिगत या स्वयंसेवी योगदान पर निर्भर रहने की अपेक्षा संस्थागत गठन जैसे कि स्थानीय निकाय या परिषद / सहकारी समितियाँ इत्यादि आसानी से संसाधन जुटा सकते हैं । कुछ स्वयंसेवी परियोजनाओं में ग्रामीण परिवारों द्वारा दिए जाने वाले लघु नियमित अंशदान सामूहिक बीमा योजना के रूप में उपयोगी हुए हैं और समुदाय में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की लागत को पूरा किया है । ऐसी उपागम ग्रामीण लोगों में स्वास्थ्य देखभाल की गुणवत्ता में आमूल सुधार ला सकते हैं ।

V) प्रबंधकीय प्रक्रियाओं को शामिल करना

प्रबंधन पूर्व-निर्धारित प्रभावोत्पादक और उद्देश्यों को निष्पादित करने हेतु संसाधनों, जनशक्ति, सामग्री और धन की प्रभावोत्पादक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है । प्रबंधकीय प्रक्रिया के अन्तर्गत निम्नलिखित चरण आते हैं :

(i) परिस्थिति विश्लेषण; (ii) नीति निरूपण; (iii) लक्ष्य / उद्देश्य / प्रयोजन निर्धारित करना; (iv) कार्य-नीति की योजना बनाना; (v) कार्य योजना बनाना; (vi) व्यापक प्रोग्रामिंग; (vii) बजट बनाना; (viii) विस्तृत कार्यक्रम बनाना; (ix) संसाधनों का कार्यान्वयन संगठन, कार्यों का प्रारंभ और निर्देशन; (x) अनुवीक्षण और नियंत्रण; (xi) मूल्यांकन और प्रतिपुष्टि; और (xii) पुनः कार्यक्रम बनाना। इन सभी चरणों के लिए पर्याप्त सूचना होना अनिवार्य है ।

राष्ट्रीय देखभाल वितरण प्रणाली के संगठन और विकास में उपर्युक्त वर्णित प्रबंधकीय प्रक्रियाओं के भिन्न-भिन्न घटकों के अनुप्रयोग विभिन्न स्तरों पर कार्यरत विभिन्न श्रेणियों के कार्मिकों में भिन्न-भिम्न होंगे । विभिन्न स्तरों पर कार्य करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की मिली-जुली प्रबंधकीय और तकनीकी कौशलों की आवश्यकता होगी । संगठन का स्तर जितना ऊंचा होगा प्रबंधकीय कार्य भी उतने ही आवश्यक होंगे और उनकी तकनीकी कौशलों की आवश्यकता उतनी ही कम होगी । इसके विपरीत, संगठन का स्तर जितना निम्न होगा उतने ही कम प्रबंधकीय कार्य की आवश्यकता होगी और तकनीकी कौशलों के अनुप्रयोग की

अधिक आवश्यकता होगी । तथापि, कार्यक्रम के समुचित प्रबंधन के लिए आधारिक स्तर पर कार्मिकों के विभिन्न श्रेणियों द्वारा कार्य करने की व्यवस्थित शैली और सुनियोजित विकास का होना बहुत महत्वपूर्ण है । इसके अतिरिक्त सहभागी प्रबंधन में, प्रबंधकीय प्रक्रियाओं के सिद्धांतों और विभिन्न घटकों के बारे में सभी को अच्छी समझ होनी चाहिए ।

यह अनुभव किया जा रहा है कि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वास्थ्य कार्मिकों के लिए मात्र प्रबंधक की प्रशिक्षण ही पर्याप्त नहीं है और इसके लिए प्रबंधन विकास की आवश्यकता है । प्रबंधक की प्रबंधकीय क्षमताओं को सुधारने के अतिरिक्त इस संकल्पना के अनुसार, प्रबंधन प्रणाली या संगठन की प्रबंधन परंपराओं और संस्कृति को भी परिवर्तित व संशोधित करना होगा ।

VI) स्वास्थ्य जन-शक्ति विकास

कार्य योजनाओं का निर्माण और कार्यान्वयन के लिए अपेक्षित उचित संख्या के समुचित स्वास्थ्य कार्मिक की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिए सक्रिय कदम उठाना होगा । इसके लिए वर्तमान स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं के पुन: अभिविन्यास, स्वास्थ्य और संबद्ध सेक्टरों में कार्यकर्त्ताओं की नई श्रेणियों का विकास और समुदाय में काम करने के लिए सारी जन-शक्ति को प्रेरित और प्रशिक्षित करना होगा । लोगों की सहायता करने और उनके तकनीकी कौशलों को सुधारने हेतु स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं की सभी श्रेणियों के सामाजिक अभिविन्यास के लिए शिक्षा मंत्रालय और सभी शैक्षणिक और प्रशिक्षण संस्थानों का सहयोग लेना होगा । इसके लिए शैक्षणिक पाठ्यचर्चा और कार्यक्रमों में सुधार की आवश्यकता है ।

जन-शक्ति के साथ कार्य करते समय परंपरागत पेशेवर डॉक्टरों, जन्म परिचारक (birth attendants) और यहाँ तक कि परिवार के सदस्यों की उपयोगी भूमिका की आवश्यकता पर विचार करना चाहिए । स्व-देखभाल के नज़रिए से प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल केन्द्र के एक भाग के रूप में अंतिम श्रेणी को विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना गया है (अर्थात् निजी स्वास्थ्य देखभाल के लिए व्यक्तियों और परिवारों का उत्तरदायित्व लेना)। उपर्युक्त प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए तीन प्रमुख प्रकार के उपागम बनाने होंगे :

i) सतत् शिक्षा के एक हिस्से के रूप में क्रमश: नए भर्ती और वर्तमान स्वास्थ्य और परिवार कल्याण कार्मिकों का सेवा-पूर्व और सेवा के दौरान प्रशिक्षण;

ii) शैक्षणिक पाठ्यचर्चा की समकालीन जरूरतों में सुधार को ध्यान में रखते हुए चिकित्सा परिचर्या और अन्य परा-चिकित्सा कार्मिकों को समुचित मूलभूत व्यावसायिक प्रशिक्षण अनिवार्य बनाया जा सकता है;

iii) स्वास्थ्य गाइडों, समुदाय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं इत्यादि के दृष्टांत देखकर कार्यकर्त्ताओं की नयी श्रेणियों का विकास ।

सतत् शिक्षा व्यक्तिगत एवं संगठन की दक्षता को अभिवृद्ध करने के उद्देश्य से कार्यकर्त्ताओं को वर्तमान और आगामी कार्यों में सक्षमता से कार्य-निष्पादन हेतु साधन प्रदान करती है । यह कार्यरत होने पर भी ज्ञान के लिए योजनाबद्ध प्रावधान है और व्यक्तिगत और संगठनात्मक विकास का अनिवार्य अवयव है । स्वास्थ्य अनुरक्षण और संवर्धन, रोगों की नई पद्धति, अक्षमताओं इत्यादि; नए बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं के लिए नई सामाजिक नीतियाँ, अपेक्षाएं और कार्यक्रमों की उपलब्धि के लिए व्यक्ति और संगठन में वह योग्यता होनी चाहिए कि वे उन्नतिशील प्रौद्योगिकी में होने वाले परिवर्तनों को मान्यता दे और अनुक्रिया कर सकें । सन् 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह महत्वपूर्ण कारक होगा ।

सतत् शिक्षा के लिए उचित अभिवृत्ति का विकास, समुदाय की प्रमुख समस्याओं के समाधान / टीम के सदस्य के रूप में प्रभावी रूप से कार्य-निष्पादन कर पाने का सामर्थ्य, मानव व्यवहारों, घटनाओं और पर्यावरण का यथार्थ रूप से अवलोकन, विश्लेषण, व्याख्या करना और बुद्धिमता से अनुक्रिया कर पाने के लिए विभिन्न स्तरों पर नई क्षमताओं को विकसित करना होगा । शिक्षा की इस दीर्घकालिक संकल्पना को मूल-शिक्षा का अनिवार्य सम्पूरक कर उसे स्वीकार किया जा रहा है। हालांकि देश में सतत् शिक्षा के कुछ कार्यक्रम है किन्तु ये अपूर्ण, अधिकांशत: अप्रभावी और कभी-कभी अपर्याप्त होते हैं ।

सक्षमता और निष्पादन के उच्च स्तर को बनाए रखने के लिए और प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल द्वारा सन् 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय आत्मबल को सुदृढ़ बनाने के लिए सतत् शिक्षा की पर्याप्त प्रणाली विशेषत: करनी होगी और इसे सभी स्तरों पर पर्यवेक्षक के साथ समन्वित करना, समुचित स्वास्थ्य जन-शक्ति विकास के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण होगा । ऐसी शिक्षा या प्रणालियाँ

समुदाय की पता लगाई गई वास्तविक समस्याओं और जरूरतों; किए जाने योग्य कार्य, विधियाँ, तकनीकें और प्रयुक्त किए जाने वाले उपकरणों पर आधारित होगी और सतत् शिक्षा सभी स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं और उनके पर्यवेक्षकों को दी जानी चाहिए । सक्षमता आधारित सतत् शिक्षा प्रदान करने का स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली के व्यक्तियों, शैक्षिक संस्थानों/प्रणाली और व्यावसायिक निकायों का सांझा उत्तरदायित्व होना चाहिए।

VII) चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाएं अनुसंधान

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल उपागम पर आधारित व्यापक स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली का नेटवर्क और निरोधक, निर्वाय, संवर्धक और पुनर्वास को एकीकृत करने वाले पहलुओं का विकास करना होगा जिसमें जनसंख्या के सभी वर्ग शामिल होंगे । हालांकि प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल उपागम के सभी घटकों और सिद्धांतों के सफलतापूर्वक कार्यान्वियन के कुछ लघुस्तरीय अनुभव हैं, जिन्हें स्वास्थ्य पद्धति में न व्यवस्थाबद्ध रूप से विकसित नहीं किया गया है और न ही जिलों या राज्य स्तर के बड़े क्षेत्रों तक आगे विस्तृत किया गया है । आज समुचित आपरेशन अनुसंधान कार्यक्रमों के जरिए उन पुन:उत्पादित और जीवनदाय मॉडलों को विकसित करने की आवश्यकता है जिन्हें एक व्यवस्थित तरीके से स्वास्थ्य प्रणाली के अनुकूल बनाया जा सके ।

स्वास्थ्य सेवाओं की आधारिक संरचना विस्तृत है और इन्हें और ज्यादा विस्तृत भी किया जा रहा है और जन-शक्ति को स्वैच्छिक आधार पर कार्यरत किया जा रहा है । पद के अनुसार कार्य, स्टाफ भर्ती का स्वरूप इत्यादि निर्धारित करने के हेतु ज्यादा तर्कसंगत आधार को विकसित करने के लिए विभिन्न स्तरों जैसे कि उप-केन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, समुदाय स्वास्थ्य केन्द्र, इत्यादि पर अविलंब रूप से कार्य का अध्ययन करने की जरूरत है ।

स्वास्थ्य सेवाओं के अधीन कई वर्तमान कार्यक्रम उचित रूप से आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं । आवश्यक वर्तमान मॉडलों को सुधारने या विकल्प मॉडल बनाने के उद्देश्य से इन कार्यक्रमों का व्यवस्थित रूप से मूल्यांकन करने की जरूरत है ।

VIII) स्वास्थ्य के लिए समुचित प्रौद्योगिकी का विकास और अनुप्रयोग

कार्यनीतियों और कार्यक्रमों को बनाते समय और सेवाओं को डिजाइन करते समय वर्तमान प्रौद्योगिकियों की समीक्षा करना और उन्हें पहचानना और अनुचित प्रौद्योगिकी को प्रतिस्थापित करने के लिए विकल्प विकसित करने हेतु अनुसंधान प्रकारों को सूचित व संबंधित करना सहायक होगा ।

इस उद्यम में सरकारी विभागों, अनुसंधान और शैक्षिक संस्थाओं, उद्योग और गैर-सरकारी संगठनों दोनों में स्वास्थ्य और स्वास्थ्य संबंधी सेक्टरों की सहभागिता को बढ़ावा देना उपयोगी होगा ।

बोध प्रश्न - 3

1) प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल में सुधार लाने से समुदाय सहभागिता किस प्रकार से सहायक हो सकती है ? किन्हीं दो के बारे में बताइए ।

....

....

....

....

....

....

2) प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल संकल्पना के सफल कार्यान्वयन के लिए सहायक गतिविधियों की सूची बनाइए ।

....

....

....

....

....

21.4 सारांश

इस इकाई में आपने प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के आठ अनिवार्य घटकों के बारे में पढ़ा । इसमें इन पहलुओं में अच्छी उपलब्धियाँ न हो पाने के विभिन्न कारणों का वर्णन भी किया गया है । इस इकाई में उन आठ सहायक गतिविधियों का भी वर्णन किया गया है जो प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के सफल कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है ।

21.5 शब्दावली

मूलभूत स्वच्छता : मानव और घरेलू अपिशष्टों का सुरक्षित निपटान ।

स्थानिक रोग : वे रोग जो एक क्षेत्र में निरंतर पाए जाते हैं ।

अनिवार्य औषधियाँ : विश्व स्वास्थ्य संगठन की विशेषज्ञ समिति ने कुछ ऐसी दवाओं की पहचान की जिनका उपकेन्द्र और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर उपलब्ध होना अनिवार्य है ।

संसाधनों को जुटाना : संसाधनों का पुन: आवंटन और पुन: संगठन ताकि संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग हो सके ।

सुरक्षित पेय जल : पीने और खाना पकाने के लिए स्वास्थ्य जल का प्रावधान ।

स्वास्थ्य जन शक्ति विकास : संपूर्ण संभावित सीमा तक स्वास्थ्य कार्मिकों की कार्य करने की संभावनाओं का विकास ।

21.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1) i) स्वास्थ्य शिक्षा

ii) पोषण का संवर्धन

iii) सुरक्षित जल-आपूर्ति और मूलभूत स्वच्छता

iv) मातृ-शिशु स्वास्थ्य और परिवार नियोजन

v) टीकाकरण

vi) स्थानीय रूप से व्याप्त स्थानिक रोगों की रोकथाम और नियंत्रण

vii) सामान्य रोगों की व्यवस्था

viii) अनिवार्य औषधियों का प्रावधान

2) सूचना, शिक्षा और संचार कार्यक्रम महिलाओं को दूसरी महिलाओं से जोड़ते हैं।

3) क) समुदाय और स्कूल में पोषण, शिक्षा के कार्यक्रम संचालित व आयोजित करना।

ख) लोगों को घरेलू बागवानी और समुदाय बागवानी के लिए प्रोत्साहित करना।

ग) विभिन्न आय-सृजन योजनाओं के माध्यम से परिवारों की खरीददारी की क्षमता में सुधार करना।

4) मातृ-देखभाल, शिशु देखभाल, छोटे बच्चों की देखभाल और परिवार कल्याण।

5)
- कुपोषण की रोकथाम और उपचार
- अतिसार या अन्य संक्रमणों के कारण मर्त्यता में कमी।

बोध प्रश्न - 2

1) क्षयरोग, डिफ्थीरिया, काली खाँसी, टिटेनस, पोलियो, खसरे का टीका।

2)
- ऐसी सूचना प्रणाली का विकास जिसमें विभिन्न स्थानीय रूप से व्याप्त स्थानिक रोगों पर नज़र रखने पर बल दिया जाए।
- स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से स्थानिक रोगों की महत्ता, संवर्धन और नियंत्रण के बारे में लोगों को शिक्षित करना।

3)
- उप-केन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल केन्द्र।
- जिला/जोनल अस्पताल
- राज्य अस्पताल/ आयुर्विज्ञान कालेज अस्पताल

बोध प्रश्न - 3

1) क) स्वास्थ्य प्रबंधन में प्रयोक्त परिप्रेक्ष्य की जानकारी को अभिव्यक्त करता है और लोगों को ज्यादा सुलभ और स्वीकार्य सेवाएं प्रदान करता है।

ख) यह स्वदेशी जानकारी और स्थानीय संसाधनों के उपयोग में सहायता करता है जिससे स्वास्थ्य देखभाल पर लागत में कटौती होती है।

2) i) समुदाय सहभागिता

ii) अन्त: और अन्तरा क्षेत्रीय समन्वय

iii) प्रभावी संदर्भ पद्धति

iv) संसाधनों को जुटाना

v) प्रबंधकीय प्रक्रियाओं को बेहतर बनाना

vi) स्वास्थ्य जनशक्ति विकास

इकाई 22 स्वास्थ्य कार्यक्रम

इकाई की रूपरेखा

22.1 प्रस्तावना

22.2 स्वास्थ्य कार्यक्रम

- 22.2.1 राष्ट्रीय प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम
- 22.2.2 राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम (National Family Welfare Programme)
- 22.2.3 विटामिन-ए की कमी के कारण होने वाली पोषणज अन्धता की रोकथाम संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रम
- 22.2.4 राष्ट्रीय पोषणात्मक अरक्तता रोगरोधक निरोधक कार्यक्रम (National Nutritional Anaemia Prophylasis Programme - एन.एन.ए.पी.पी.)
- 22.2.5 आयोडिन की कमी पर नियंत्रण संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रम
- 22.2.6 राष्ट्रीय फाइलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम
- 22.2.7 राष्ट्रीय कुष्ठरोग उन्मूलन कार्यक्रम (National Leprosy Eradication Programme)
- 22.2.8 राष्ट्रीय अन्धता नियंत्रण कार्यक्रम (National Programme for Control of Blindness -एन.पी.सी.बी.)
- 22.2.9 राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम (National Aids Control Programme)
- 22.2.10 राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (National Mental Health Programme)
- 22.2.11 राष्ट्रीय मधुमेह नियंत्रण कार्यक्रम (National Diabetes Control Programme)
- 22.2.12 राष्ट्रीय क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम (National Tuberculosis Control Programme)
- 22.2.13 राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम (National Malaria Eradication Programme)
- 22.2.14 शिशु उत्तरजीविता तथा सुरक्षित मातृत्व कार्यक्रम (Child Survival and Safe Motherhood Programme-सी.एस.एस.एम.पी)

22.3 मातृ-शिशु स्वास्थ्य तथा पोषणात्मक स्तर के विकास हेतु अन्य कार्यक्रम

- 22.3.1 समन्वित बाल विकास सेवाएं (आई.सी.डी.एस.)
- 22.3.2 मध्याह्न पोषण कार्यक्रम (एम.डी.एम.)
- 22.3.3 विशेष पोषण कार्यक्रम
- 22.3.4 व्यावहारिक पोषण कार्यक्रम (ए.एन.पी.)
- 22.3.5 गेहूँ आधृत पूरक पोषण कार्यक्रम (डब्ल्यू.एन.पी.)
- 22.3.6 बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम (बी.एन.पी.)

22.4 सारांश

22.5 शब्दावली

22.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

22.1 प्रस्तावना

इस इकाई में देश में संभावित स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य संबंधी कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रमों पर चर्चा की गई है। इस इकाई में राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों के संदर्भ में कार्यक्रम के संगठनात्मक ढाँचें तथा गतिविधियों की समीक्षा की गई है। कार्यक्रम की कार्य प्रणाली का विवेचनात्मक ढंग से विश्लेषण करने का भी इसमें प्रयास किया गया है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- देश में संभावित राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों को सूचीबद्ध कर सकेंगे, और
- विभिन्न राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों के अर्न्तगत उपलब्ध सेवाओं तथा इनसे सम्बद्ध महत्वपूर्ण गतिविधियों की विवेचना कर सकेंगे।

22.2 स्वास्थ्य कार्यक्रम

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पिछले चार दशकों में जनता के स्वास्थ्य स्तर में सुधार लाने की दिशा में भारत ने महत्वपूर्ण प्रगति की है। आप जानते ही हैं कि चेचक का पूरी तरह से उन्मूलन किया जा चुका है। प्लेग भी अब पहले जैसी कोई समस्या नहीं है और व्यक्ति की आयु में भी वृद्धि हुई है। यह प्रगति राष्ट्रीय सरकार द्वारा किए गए विभिन्न प्रयासों का परिणाम है। इन प्रयासों में से एक प्रयास है विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रमों को लागू करना। आम तौर पर इन्हीं कार्यक्रमों को राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम कहा जाता है। इस कार्यक्रमों के संचालन के लिए वित्तपोषण की व्यवस्था भारत सरकार द्वारा की जाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा यूनीसेफ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठनों द्वारा भी अनेक कार्यक्रमों के संचालन के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। आगामी अनुच्छेदों में प्रमुख स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर संक्षेप मे चर्चा की गई है।

22.2.1 राष्ट्रीय प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम

संक्रामक रोग, बच्चों में बीमारी तथा मृत्यु का प्रमुख कारण बने हुए हैं। इन रोगों से बीमार होने वाले तथा मरने वालों के अतिरिक्त कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं जो इन बीमारियों के कारण जीवनभर के लिए विकलांग हो जाते हैं। देश के विभिन्न भागों, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में नवजात शिशुओं की मृत्यु का प्रमुख कारण टिटेनस ही है। इसी प्रकार पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों में लंगड़ापन हो जाने का प्रमुख कारण पोलियो है। प्रति वर्ष डिप्थीरिया, काली खाँसी (pertusis),टिटेनस, क्षयरोग तथा टाइफाइड की असंख्यक घटनाएं होती हैं। प्रतिरक्षीकरण द्वारा निर्वाय हो सकने वाले इन रोगों के कारण प्रतिवर्ष भारत में 13 लाख बच्चे अकाल मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। प्रतिरक्षीकरण की पूरी खुराक देकर (जिस पर बहुत ही कम लागत आती है) बच्चे को खसरा, डिप्थीरिया, काली खाँसी, टिटेनस, क्षयरोग तथा पोलियो जैसी घातक बीमारियों से सुरक्षा प्रदान की जा सकती हैं। परन्तु विकासशील देशों में अभी भी, सही समय पर प्रतिरक्षीकरण देकर, टीके के माध्यम से रोकी जा सकने वाली इन बीमारियों के कारण विकासशील देशों में अभी भी प्रतिवर्ष 30 लाख बच्चों की अकाल मृत्यु हो जाती है और 50 लाख बच्चे विकलांग हो जाते हैं।

संगठनात्मक ढाँचा : भारत सरकार द्वारा 1986 में सार्वजनिक प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम (Universal Immunisation Programme - यू.आई.पी.) लागू किया गया था, जिसका उद्देश्य सन् 2000 तक सभी पात्र बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं को प्रतिरक्षीकरण के माध्यम से सामान्य तथा गंभीर संक्रामक रोगों से सुरक्षा प्रदान करके रुगणता दर और मर्त्यता दर को कम करना है। इस कार्यक्रम को ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के माध्यम से लागू किया जा रहा है तथा इस कार्यक्रम को क्रियान्वित कराने हेतु बहु-द्देशीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं (multipurpose health workers), प्रशिक्षित दाइयों और स्वास्थ्य गाइडों (Health guides) की सेवाओं को उपयोग में लाया जा रहा है। इस कार्यक्रम हेतु दवाईयों, टीकों तथा उपकरणों आदि की आपूर्ति जिला स्वास्थ्य प्रशासन (District Health Authoritics) द्वारा की जाती है।

गतिविधियाँ : प्रतिरक्षीकरण के रूप में मुख्यत: टीके लगाकर रोगरोधक शक्ति में वृद्धि की जाती है, ताकि समुदाय में रोगों को कम किया जा सके। इस कार्यक्रम को व्यावहारिक रूप देने के लिए समुदाय में वृहत स्तर पर कार्य करना होता है, पहले टीकों तथा दवाईयों की सप्लाई की योजना बनानी होती है, तत्पश्चात् उनके भण्डारण तथा वितरण की व्यवस्था करने के साथ-साथ सूचना प्रणाली का विकास करना और पुनर्निवेशन (Feedback) प्राप्त करना होता है।

कार्यक्रम के संचालन संबंधी कार्यनीतियाँ : यह कार्यक्रम प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल का एक अंग है तथा कार्यक्रम संबंधी सेवाएं विद्यमान स्वास्थ्य ढाँचें के माध्यम से ही उपलब्ध कराई जाती हैं। इसके लिए अलग से स्टाफ भर्ती नहीं किया गया है। चूँकि यह एक दीर्घकालिक कार्यक्रम है, इसलिए क्षेत्र विशेष में रोग का प्रसार न होने की स्थिति में भी सेवाएं प्रदान करना जारी रखा जाता है। अगामी वर्षों में प्रतिरक्षीकरण सेवाओं को और व्यापक बनाने का लक्ष्य प्राप्त किया जाएगा। राष्ट्रीय स्तर पर अपनाई गई प्रतिरक्षीकरण अनुसूची तालिका 22.1 में नीचे प्रस्तुत की गई है।

तालिका 22.1 : राष्ट्रीय प्रतिरक्षीकरण अनुसूची

किसके लिए	कब	टीका	संख्या	कैसे (मार्ग)
महिलाएं	गर्भावस्था	टी.टी.	2*	मांसपेशियों में (Intra muscular)
शिशु	6 सप्ताह से 12 माह	डी.पी.टी.	3	मांसपेशियों में
		पोलियो	3	मुख द्वारा
	जन्म से 12 माह तक	बी.सी.जी.	1	त्वचा के नीचे (Intra-dermal)
	9 से 12 माह	खसरा	1	त्वचा के नीचे
	16से 20 माह	डी.पी.टी.	1**	मांसपेशियों में
		ओ.पी.वी.	1*	मुख द्वारा
बच्चे	5 वर्ष	डी.टी..	2*	मांसपेशियों में
	5 वर्ष	टाइफाइड	2	उपत्वचीय (Sub-cutaneous)
	10 वर्ष	टी.टी	2*	मांसपेशियों में
	16 वर्ष	टी.टी.	2*	मांसपेशियों में

* यदि पहले टीका लग चुका हो तो एक डोज़ दें ।

** बूस्टर डोज़

गाँवों में स्थापित केन्द्रों में टीके ले जाकर वहाँ से जनता को प्रतिरक्षीकरण सेवाएं प्रदान की जाती हैं । दूरवर्ती क्षेत्रों में विशेष टीके भेजकर बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं को प्रतिरक्षीकरण सेवाएं प्रदान की जाती हैं। सदुर्लभता तथा सुविधाओं की उत्पादकता के आधार पर विभिन्न कार्यनीतियाँ तैयार की जाती हैं । कैसी भी कार्यनीति क्यों न अपनाई जाए, किन्तु मुख्य लक्ष्य गर्भवती महिलाओं और एक वर्ष से कम आयु के बच्चों को प्रतिरक्षीकरण प्रदान किया जाता है ।

टीकाकरण सत्रों का आयोजन लाभानुभोगियों की उपस्थिति के अनुसार दैनिक आधार पर, सप्ताह में दो बार, पन्द्रह दिन में अथवा मासिक आधार पर किया जाता है । प्रत्येक केन्द्र पर प्रतिरक्षीकरण संबंधी सभी प्रकार के टीके उपलब्ध कराये जाते हैं, ताकि लाभानुभोगियों को विभिन्न टीके लगवाने के लिए अलग-अलग केन्द्रों पर न जाना पड़े । टीकाकरण के दिन तथा समय निर्धारित करके, उसके बारे में प्रमुख स्थानों पर प्रचार किया जाता है । टीकाकरण सत्र का निर्धारित अनुसूची के अनुसार नियमित रूप से अनुसरण किया जाता है ।

भारत सरकार ने सन् 2000 तक प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम के अन्तर्गत 85 प्रतिशत शिशुओं को संरक्षण प्रदान करने का लक्ष्य रखा है । किन्तु शताब्दी के अंत तक शत-प्रतिशत गर्भवती महिलाओं को टिटेनस टॉक्सायड का प्रतिरक्षीकरण देकर कार्यक्रम की पहुँच में लाया जायेगा । अभी, 50 - 60 प्रतिशत शिशुओं को ही प्रतिरक्षीकरण प्रदान किया गया है । इतने कम कवरेज (सेवाओं की पहुँच/प्रसार) होने का क्या कारण हो सकता है? आइए, इस विषय पर चर्चा करते हैं ।

सेवाओं के अल्प कवरेज के कारण

1) *सेवाओं तक पहुँच का अभाव :* सेवाओं के अल्प प्रसार का एक प्रमुख कारण यह है कि संचार तथा परिवहन सुविधाओं के अभाव में ग्रामीण क्षेत्रों की जनता इन सुविधा केन्द्रों की पहुँच से बाहर रह जाती है । ऐसी स्थितियों में टीकों तथा अन्य सामग्री को गाँवों तक पहुँचाने की व्यवस्था करने की आवश्यकता होती है तथा सेवा-स्थल पर ही प्रतिरक्षीकरण सेवाओं के सत्र आयोजित किए जाते हैं । इस कार्यक्रम की सफलता के लिए ग्रामीण स्वास्थ्य गाइडों,

आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ताओं तथा अन्य क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओं की सेवाओं की आवश्यकता होती हैं। गाँव के लीडरों, बड़े-बूढ़ों, शिक्षकों तथा दूसरे लोगों को प्रोत्साहित किया जाए कि वह टीकाकरण के लिए बच्चों को अधिक से अधिक संख्या में निर्धारित केन्द्र पर लाने में सहायता करें। प्रतिरक्षीकरण संबंधी अगला सत्र 4 - 8 सप्ताह के अन्तराल पर किया जाना चाहिए।

2) *सामुदायिक भागीदारी का अभाव :* ऐसा अनेक कारणों से हो सकता है, जैसे प्रतिरक्षीकरण के माध्यम से रोकी जा सकने वाली बीमारियों के बारे में जन समुदाय को जानकारी का अभाव; सांस्कृतिक विश्वास, जो इसकी स्वीकार्यता में बाधक हैं अथवा प्रतिरक्षीकरण संबंधी हुई किसी समस्या के कारण विगत में हुआ कटु अनुभव। कई बार माताओं के प्रतिरक्षीकरण सत्र के समय, स्थान अथवा दिन के बारे में जानकारी नहीं होती अथवा प्रतिरक्षीकरण के लिए जो समय निर्धारित किया जाता है उसी समय वह घरेलू कामों या खेती के कामों में व्यस्त रहती है। इसलिए टीकाकरण अभियान में समुदाय की भागीदारी का अभाव रह जाता है। टीकाकरण अभियान की सफलता के लिए कार्यक्रम में सामुदायिक भागीदारी एक महत्वपूर्ण पक्ष है, इसलिए इसे प्राप्त करने के हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। गर्भवती महिलाओं तथा बच्चों को प्रतिरक्षीकरण प्रदान करने की वरीयता के बारे में सामुदायिक लीडरों को समझाया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कार्यकर्त्ताओं को लाभानुभोगियों को यथा समय पूर्व सूचित किया जाना चाहिए, स्वास्थ्य शिक्षा तथा सामूहिक चर्चाओं का आयोजन करके उनके भय तथा शंकाओं को दूर किया जाना चाहिए। कभी-कभी कार्यक्रम की सफलता के लिए स्थानीय लीडरों तथा महिला मण्डलों आदि को शामिल कर लेना भी उपयोगी होता है।

3) *दोषपूर्ण रिकार्डिंग प्रणाली (Inadequate Recording System) :* यह प्रयास किया जाना चाहिए कि प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम में शामिल कार्यकर्त्ता के साथ टीकाकरण संबंधी एक रजिस्टर रखवाया जाए, जिसमें बच्चे तथा गर्भवती महिला का नाम आदि लिखा जाना चाहिए तथा इसका प्रतिमाह अद्‌भतन किया जाना चाहिए। कार्यकर्त्ता द्वारा प्रतिरक्षीकरण प्रदान करने की सही तिथि रजिस्टर में लिखी जानी चाहिए। माताओं के पास भी प्रतिरक्षीकरण संबंधी रिकार्ड रहना चाहिए तथा उन्हें प्रतिरक्षीकरण कार्ड दिया जाना चाहिए।

4) *प्रतिरक्षीकरण उपकरणों का अभाव :* प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम की सफलता के लिए पर्याप्त मात्रा में सिरीन्जों, सुइयों, जीवाणुनाशन (Sterilisation) निर्जीवाणुकरण संबंधी उपकरणों आदि की सप्लाई पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना बहुत महत्वपूर्ण होता है। उपकरणों आदि के अभाव में कार्यकर्त्ता कार्यक्रम को और अधिक नुकसान ही पहुँचाता है। इन्जेक्शनों को कीटाणुहीन न करने से समस्या बढ़ सकती है।

22.2.2 राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम (National Family Welfare Programme)

1981 की जनगणना के आधार पर भारत की जनसंख्या 68 करोड़ 40 लाख थी। भारत देश जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में चीन के पश्चात् सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। भारत का भूमि क्षेत्र विश्व के कुल भूमि क्षेत्र का 2.4 प्रतिशत है तथा यह देश विश्व की 15 प्रतिशत जनसंख्या का पोषण करता है। भारत की जनसंख्या में प्रतिवर्ष लगभग 15 लाख की वृद्धि हो जाती है। यदि वर्तमान वृद्धि दर पर कोई रोक न लगाई गई तो शताब्दी के अंत तक भारत की जनसंख्या 100 करोड़ तक पहुँच सकती है। इस समय भारत जनसंख्या विस्फोट (population explosion) का सामना कर रहा है।

संगठनात्मक ढाँचा : भारत उन कुछ एक देशों में से है, जिन्होंने सबसे पहले परिवार नियोजन को अपनी राष्ट्रीय नीति के रूप में अपनाया था। परिवार नियोजन कार्यक्रम को 1953 में प्रारम्भ किया गया था। वर्ष 1972 में चिकित्सीय गर्भसमापन अधिनियम (Medical Termination of Pregnancy Act) के तहत गर्भसमापन की प्रक्रिया को उदार बनाया गया था।

इस कार्यक्रम को विद्यमान स्वास्थ्य ढाँचे द्वारा क्रियान्वित कराया जा रहा है। ग्रामीण स्तर पर स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता जनता को इस संबंध में सेवाएं प्रदान करते हैं।

गतिविधियाँ : कार्यकर्त्ताओं द्वारा पात्र दम्पत्ति (Eligible Couple) रजिस्टर तैयार करने तथा उनका रखरखाव करने का काम किया जाता है, गर्भ निरोधकों आदि का वितरण किया जाता है, अन्तरा गर्भशिय गर्भनिरोधक (आई.यू.सी.डी.) लगाए जाते हैं तथा उनकी और नसबन्दी केसों की अनुवर्ती जाँच की जाती है। पात्र दम्पत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए सहज और अनौपचारिक तरीके अपनाये जाते हैं, जिनके अन्तर्गत परिवार नियोजन की विधि का चयन स्वयं दम्पत्ति द्वारा किया जाता है। (इसे कैफेटेरिया अपरोच भी कहा जाता है।)

राष्ट्रीय परिवार नियोजन संबंधी गतिविधियाँ, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति पर आधारित होती है। इस नीति की मुख्य विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं :

1) कानूनी तौर पर लड़कियों की विवाह आयु को बढ़ाकर कम से कम अठारह वर्ष तथा लड़कों की 21 वर्ष करना।

2) परिवार नियोजन विधियों की स्वीकार्यता को पूर्ण रूप से स्वैच्छिक बनाना तथा इनके प्रयोग को लेकर किसी प्रकार का बल प्रयोग न करना।

3) संसद में प्रतिनिधित्व के मामले में 1971 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या का स्थिरीकरण।

4) राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय योजना सहायता अनुदान राशि के एक हिस्से को राज्यों की परिवार नियोजन लक्ष्यों की प्राप्ति के साथ जोड़ना।

5) परिवार कल्याण कार्यक्रम के लिए अन्त:क्षेत्रीय समन्वय (Inter-sectoral Coordination) प्राप्त करना।

6) परिवार कल्याण कार्यक्रम में गैर-सरकारी संगठनों को भागीदार बनाना।

7) महिलाओं के शैक्षिक स्तर को ऊंचा उठाना।

22.2.3 विटामिन "ए" की कमी के कारण होने वाली पोषणज अन्धता की रोकथाम संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रम

देश में स्कूल-पूर्व आयु वर्ग के बच्चों में विटामिन-ए की कमी देश में एक मुख्य लोक स्वास्थ्य समस्या बनी हुई है। विटामिन-ए की कमी से होने वाली पोषणज अन्धता की रोकथाम संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रम को 1970 में लागू किया गया था तथा इस समय 3 करोड़ लाभानुभोगियों को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सेवाएं दी जा रही है। एक अशोधित अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष तीस से चालीस हजार बच्चे पोषणज अन्धता का शिकार हो जाते हैं। (स्रोत : प्रीवेन्टिव एण्ड सोशल मेडिसिन - बी.के.महाजन तथा एम.सी.गुप्ता की पाठ्य पुस्तक, 1991)। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत दीर्घकालिक तथा अल्पकालिक (long-term and short-term), दोनों प्रकार की कार्यनीतियाँ अपनाई गई हैं। अल्पकालिक अंत:क्षेप (intervention) के अन्तर्गत समय-समय पर विटामिन-ए की मैगा-डोज देने पर बल दिया गया है, जबकि दीर्घकालिक अंत:क्षेप के अन्तर्गत विटामिन-ए युक्त आहार लेने पर बल दिया जाता है।

उद्देश्य : इस कार्यक्रम का विशिष्ट उद्देश्य विटामिन-ए की कमी को दूर करके इससे होने वाली अन्धता की रोकथाम करना है।

गतिविधियाँ : छ: माह से पाँच वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों को प्रत्येक छ:माही के अन्तराल पर विटामिन-ए की बड़ी डोज़ दी जाती है। इस योजना के अन्तर्गत 6 माह से 3 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों को वरीयता प्रदान की जाती है, क्योंकि इस वर्ग के बच्चों में विटामिन-ए की कमी होने के सबसे अधिक प्रमाण मिले हैं।

शिशुओं को विटामिन-ए की निम्नलिखित मेगा-डोज देने की सलाह दी गई है :

6 - 11 माह	:	1,00,000 आई.यू. की एक ड़ोज
1 - 5 वर्ष	:	प्रत्येक छ: माह पश्चात् 2,00,000 आई.यू.की ड़ोज़

प्रत्येक बच्चे को पाँचवें जन्मदिन तक विटामिन-ए की कुल 10 ड़ोज मिलनी अपेक्षित होती हैं।

नियमित रूप से दीर्घकालिक कार्यनीति के अन्तर्गत बच्चों को विटामिन-ए युक्त आहार देने पर बल दिया जाता है, जैसे हरी पत्तेदार सब्जियाँ, पीली सब्जियाँ तथा फल, दूध व दूध से बने खाद्य पदार्थ और इसके साथ-साथ बच्चों को स्तनपान कराने पर भी बल दिया जाता है।

संगठनात्मक ढाँचा : इस कार्यक्रम को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा उपकेन्द्रों के नेटवर्क के माध्यम से लागू किया जाता है। बच्चों को विटामिन-ए की खुराक देने तथा महिलाओं को पोषण संबंधी शिक्षा देने का कार्य महिला बहुउद्देशीय कार्यकर्त्ताओं तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के अन्य पैरामेडिकल कार्यकर्त्ताओं द्वारा किया जाता है। इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए समन्वित बाल विकास योजना के कार्मिकों की सेवाओं का भी उपयोग किया जाता है।

22.2.4 राष्ट्रीय पोषणात्मक अरक्तता रोगरोधक कार्यक्रम (National Nutritional Anaemia Prophylasis Programme— एन.एन.ए.पी.पी.)

पाठ्यक्रम 1 की इकाई 23, खंड 5 में पोषणज एनीमिया नियंत्रण संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रम शीर्षक के अन्तर्गत आप इस कार्यक्रम के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। यह राष्ट्रीय पोषणात्मक रक्ताल्पता रोगरोधक कार्यक्रम के नाम से भी जाना जाता है। पोषणात्मक एनीमिया की समस्या भारत की एक प्रमुख लोक स्वास्थ्य समस्या है। राष्ट्रीय पोषणात्मक रक्ताल्पता रोगरोधक कार्यक्रम का सूत्रपात 1970 में किया गया था। यह कार्यक्रम एक केन्द्रीय प्रायोजित योजना है। एनीमिया (खून की कमी), विशेष रूप से प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं तथा छोटे बच्चों को अधिक प्रभावित करता है। अनुमान है कि 50 प्रतिशत से अधिक गर्भवती महिलाएं इस रोग से प्रभावित होती हैं। पोषणात्मक एनीमिया (जिसका संबंध लौह तत्व तथा फोलिक एसिड से है) प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मातृत्व काल में होने वाली 20 प्रतिशत मौतों के लिए उत्तरदायी है। समय पूर्व शिशु का जन्म हो जाना, जन्म के समय वजन की कमी होना तथा प्रसवकालीन मौतों संबंधी अधिकांश घटनाओं का कारण भी एनीमिया ही है। वर्तमान में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 2.2 करोड़ वयस्कों तथा 3 करोड़ शिशु लाभानुभोगियों को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत संरक्षण प्रदान किया जा रहा है। (राष्ट्रीय पोषणात्मक रक्ताल्पत रोगरोधक कार्यक्रम संबंधी गाइडलाइन्स, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 1990)।

उद्देश्य : इस कार्यक्रम का उद्देश्य एनीमिया की व्याप्ति (prevalence) दर को तथा इसके कारण जिन आयु वर्ग की महिलाओं, विशेष रूप से गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली महिलाओं तथा शिशुओं में होने वाली घटनाओं की रोकथाम करना है।

कार्यक्रम के विशिष्ट उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं :

- माताओं तथा छोटे बच्चों में हीमोग्लोबिन स्तरों का आकलन करके पोषणात्मक अरक्तता (एनीमिया) सम्बन्धी व्याप्ति दर के बारे में अनुमान लगाना।
- अल्प हीमोग्लोबिन स्तर वाली माताओं तथा बच्चों (जिनका स्तर क्रमश: 10 ग्राम तथा 8 ग्राम से कम हो), को "एनीमिया रोको" (anti-anaemia) उपचार प्रदान करना।
- 100 मि.ली. रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा 10 ग्राम से अधिक होने पर महिलाओं को; 100 मि.ली. रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा 8 ग्राम से अधिक होने पर बच्चों को रोगरोधक (प्रोफिलेक्सिस) कार्यक्रम के अन्तर्गत रखना।
- पूरक पोषण वाली गोलियों की क्वालिटी, वितरण तथा गोलियों के उपयोग के बारे में निरन्तर रूप से प्रबोधन करना।
- लाभार्थियों के हीमोग्लोबिन स्तर का समय-समय पर अनुमान लगाना।
- पोषण शिक्षा के माध्यम से पोषण पूरक गोलियों का सेवन करने (तथा बच्चों को भी गोलियाँ खिलाने के बारे में) हेतु माताओं को प्रेरित करना।

लाभानुभोगी : इस योजना के अन्तर्गत आने वाले लाभानुभोगियों में 1 से 5 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चे, गर्भवती महिलाएं, स्तनपान कराने वाली महिलाएं, परिवार नियोजन की स्थायी विधियों को स्वीकार करने वाली तथा आई.यू.डी. लगवाने वाली महिलाएं शामिल होती हैं। इस योजना के अन्तर्गत लक्षित लाभानुभोगी वर्ग में कुल गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली 50 प्रतिशत माताएं तथा परिवार नियोजन की स्थायी विधियाँ अपनाने वाली और आई.यू.डी. लगवाने वाली 25 प्रतिशत महिलाएं शामिल होती हैं। इसी प्रकार 1-5 वर्ष के आयु वर्ग के कुल बच्चों में से 50 प्रतिशत बच्चे भी इसके अन्तर्गत लक्षित लाभानुभोगी वर्ग में शामिल होते हैं।

गतिविधियाँ : कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित गतिविधियों को प्रमुखता दी जाती है :

1) लौह तत्व-युक्त भोजन के नियमित उपयोग पर जोर देना।

2) लक्षित समूह को लौह तत्व तथा फॉलेट-युक्त पोषणपूरक गोलियाँ (फॉलीफर गोलियाँ) की आपूर्ति करना।

3) एनीमिया संबंधी गंभीर केसों की पहचान करना तथा उनका उपचार करना। लौह तत्व तथा फॉलिक एसिड की गोलियों की निम्नलिखित दैनिक खुराक देने की सलाह दी जाती है :

व्यस्क महिलाएं : 60 मि.ग्रा. ऐलीमेण्टल आयरन + 0.5 मि.ग्रा. फॉलिक एसिड

बच्चें (1-5वर्ष) : 20 मि.ग्रा. ऐलीमेण्टल आयरन + 0.1 मि.ग्रा. फॉलिक एसिड

छोटे बच्चे, जो गोलियाँ न निगल पाते हों, उनके लिए उपरोक्त मात्रा वाला लौह तत्व तथा फॉलिक एसिड का शर्बत (एक बार 2 मि.लि.) दिया जाता था। 1991 में इसे बन्द कर दिया गया।

संगठनात्मक ढाँचा : इस कार्यक्रम को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों तथा उपकेन्द्रों के माध्यम से लागू किया जाता है। लाभानुभोगियों को लौह तत्व तथा फॉलिक एसिड की गोलियाँ (वयस्कों तथा शिशुओं, दोनों के लिए) के वितरण का दायित्व बहुउद्देशीय महिला स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के अन्य पैरामेडिकल स्टाफ पर है। इस कार्यक्रम को लागू करने में समन्वित बाल विकास योजना के कार्मिक भी सहायता प्रदान करते हैं।

22.2.5 आयोडीन की कमी पर नियंत्रण संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रम

पाठ्यक्रम 1 की इकाई 23 में आयोडीन रोग निरोधक कार्यक्रम शीर्षक के अन्तर्गत आपने इस कार्यक्रम के बारे में पढ़ा होगा। यह कार्यक्रम आयोडीन की कमी पर नियंत्रण संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रम के नाम से भी जाना जाता है। आज भारत में लगभग 15 करोड़ लोग आयोडिन की कमी से होने वाली विसंगतियों से ग्रस्त हैं तथा आशंका है कि शताब्दी के अंत तक यह संख्या बढ़कर 20 करोड़ हो जायेगी। आयोडीन की कमी से होने वाली विसंगतियों की समस्या निरंतर बनी हुई है, विशेष रूप से उप-हिमालय क्षेत्र में। किन्तु हाल ही में किए गए अनुसंधानों से पता चला है कि यह समस्या देश के कुछ अन्य भागों में भी व्याप्त है। कुल मिलाकर 1991 तक देश में 204 जिलों का सर्वेक्षण किया गया था तथा उनमें से 182 जिलों में आयोडीन की कमी संबंधी विसंगतियों की व्याप्ति पाई गई थी। इस समस्या की गंभीरता को देखते हुए भारत सरकार द्वारा 1962 में राष्ट्रीय गलगण्ड (Goitre) नियंत्रण कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। अब इस कार्यक्रम को आयोडिन की कमी पर नियंत्रण संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रम का नाम दिया गया है।

उद्देश्य : इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार से है :

- आयोडिन की कमी संबंधी विसंगतियों की गहनता का अनुमान लगाने के लिए आधारभूत सर्वेक्षणों का संचालन करना तथा पूरे देश में आम नमक के स्थान पर आयोडिन युक्त नमक की आपूर्ति सुनिश्चित करना।
- पाँच वर्ष के पश्चात् आयोडिन युक्त नमक के सेवन से पड़ने वाले प्रभावों के बारे में पुन:सर्वेक्षण करना।

लाभानुभोगी : आयोडिन की कमी से होने वाले विकारों से प्रभावित तथा अप्रभावित दोनों क्षेत्रों में रहने वाले सभी लोग। प्रभावित क्षेत्रों को कार्यक्रम के अन्तर्गत वरीयता प्रदान की जानी है।

गतिविधियाँ : इस योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित गतिविधियों का संचालन किया जाता है।

1) *नमक का आयोडिनीकरण (Iodisation of Salt)* : आयोडिन की कमी से होने वाले विसंगतियों की समस्या पर नियंत्रण पाने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा 1.4.1986 से खाने के नमक को सार्वजनिक स्तर पर आयोडिन युक्त बनाने के बारे में चरणबद्ध कार्यवाही प्रारम्भ की गई थी, जो वर्ष 1995 तक पूरी होनी थी।

प्रभावित क्षेत्रों में आयोडिन युक्त नमक की आवश्यकता को पूरा करने के उद्देश्य से प्रारंभ में बारह आयोडिनीकरण संयंत्र (plants) स्थापित किए गए थे। प्रतिवर्ष 8-10 लाख मेगा टन की संभावित उत्पादन क्षमता के स्थान पर वास्तविक उत्पादन केवल 2.0 लाख मेगा टन ही हुआ था। 1986 में भारत सरकार द्वारा लगभग 500 उत्पादन इकाईयों को आयोडिन युक्त नमक का उत्पादन करने के

लाइसेंस दिए गए । 1991 तक 368 इकाईयों ने काम करना शुरू कर दिया था तथा उनकी उत्पादन क्षमता 33 लाख मेगाटन हो गई थी । सभी प्रभावित क्षेत्रों में आयोडिन युक्त नमक का प्रबन्ध किया जाए व अनुमानित वार्षिक आवश्यकता लगभग 50 लाख मेगाटन है ।

2) *गैर-आयोडिनयुक्त नमक के प्रयोग पर रोक लगाने संबंधी अधिसूचना:* अठारह राज्यों में पूरी तरह से तथा छ: राज्यों में आंशिक रूप से गैर-आयोडिनयुक्त नमक की बिक्री पर रोक लगाई जा चुकी है । भारत सरकार सार्वजनिक स्तर पर आयोडिनयुक्त नमक उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध है।

3) *गलगण्ड प्रकोष्ठ (Goitre Cell) की स्थापना :* राष्ट्रीय गलगण्ड नियंत्रण कार्यक्रम के पर्याप्त ढंग से प्रबोधन तथा क्रियान्वयन के लिए 17 राज्यों तथा 3 संघ राज्यों द्वारा अपने राज्यों के स्वास्थ्य निदेशालयों में गलगण्ड प्रकोष्ठों की स्थापना की गई है ।

4) *सूचना, शिक्षा तथा संचार संबंधी गतिविधियाँ :* आयोडिन की कमी से होने वाले विसंगतियों हेतु सर्वेक्षणों का संचालन करने; स्वास्थ्य शिक्षा संबंधी सामग्री का उत्पादन करने तथा स्वास्थ्य शिक्षा संबंधी गतिविधियों का संचालन करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों और संघ राज्यों को नकद अनुदान राशियाँ प्रदान की गई हैं ।

5) *अन्तर-क्षेत्रीय (inter - sectoral) समन्वयन :* यह महसूस किया गया कि राष्ट्रीय गलगण्ड नियंत्रण कार्यक्रम संबंधी गतिविधियों के संचालन के लिए विभिन्न एजेन्सियों जैसे उद्योग, रेल विभाग, स्वास्थ्य विभाग आदि द्वारा समन्वित प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय गलगण्ड नियंत्रण कार्यक्रम संबंधी गतिविधियों का फोकस अब स्वास्थ्य विभाग से हटाकर बहुअनुशासनिक तथा अन्तर अनुशासनिक सहभागिता (interdisciplinary participation) पर केन्द्रित कर दिया गया है ।

बोध प्रश्न - 1

1) राष्ट्रीय पोषणात्मक रक्ताल्पता रोग निरोधक कार्यक्रम के लाभानुभोगी कौन-कौन हैं ?

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित आयु वर्ग के बच्चों को विटामिन-ए की रोगरोधक कितनी डोज़ दी जानी चाहिए ?

1) 6 माह से 1 वर्ष तक ....

2) 1 वर्ष से 5 वर्ष तक ....

3) परिवार नियोजन कार्यक्रम की दो प्रमुख गतिविधियों को सूचीबद्ध करें।

....

....

....

4) ऐसे चार रोगों का नाम लिखें, जिनके लिए राष्ट्रीय प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रतिरक्षीकरण प्रदान किया जाता है।

....

....

....

....

....

22.2.6 राष्ट्रीय फाइलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम

फाइलेरिया भारत की एक प्रमुख लोक स्वास्थ्य समस्या है। फाइलेरिया रोग लसिका नलिका (lymph vessels) में परजीवी कृमि की उपस्थिति के कारण होता है। जब रोग पुराना हो जाता है तो इसका उपचार संभव नहीं होता। जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, मिज़ोरम, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर, राजस्थान, अरुणाचल प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, सिक्किम और नागालैण्ड को छोड़कर यह रोग पूरे भारत में व्याप्त है। वर्तमान अनुमानों से पता चलता है कि लगभग 38.1 करोड़ लोग 176 जिलों में रहते हैं, जहाँ फाइलेरिया स्थानिक रोग है। उनमे से 10.1 करोड़ लोग शहरी क्षेत्रों में तथा शेष ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। (स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, 1992)।

फाइलेरिया रोग पर नियंत्रण पाने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा 1955 में राष्ट्रीय फाइलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम लागू किया था। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित गतिविधियाँ संचालित की जाती है :

1) सर्वेक्षित क्षेत्रों में पाई गई समस्याओं को असर्वेक्षित क्षेत्रों के लिए परिभाषित करना; तथा

2) निम्नलिखित के माध्यम से शहरी क्षेत्रों में रोग पर नियंत्रण के उपाय करना :

   क) पुनरावर्तक लारवा रोधक (anti-larval) उपाय करना; तथा

   ख) परजीवी-कृमि नाशक उपाय करना।

इस समय 204 नियंत्रण यूनिटों द्वारा लारवा रोधक उपाय करके शहरी क्षेत्रों में लगभग 4 करोड़, 20 लाख, 60 हजार लोगों को संरक्षण प्रदान किया जा रहा है। 192 क्लिनिक ऐसे हैं जो क्लिनिकल केसों तथा माइक्रोफाइलेरिया वाहकों संबंधी उपचार सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। यह पता चला है कि गत पाँच वर्षों से जहाँ निवारक उपाय किए जा रहे हैं उन 90 प्रतिशत कस्बों में माइक्रोफाइलेरिया के केसों में उल्लेखनीय कमी आई है।

22.2.7 राष्ट्रीय कुष्ठरोग उन्मूलन कार्यक्रम (National Leprosy Eradication Programme)

हमारे देश में कुष्ठ रोगियों की अनुमानित संख्या 40 लाख है। यह संख्या विश्व भर के कुष्ठ रोगियों की एक तिहाई के बराबर है। कुष्ठ रोग की दर (leprosy rate) विभिन्न क्षेत्रों में 10 प्रतिशत से 25 प्रतिशत के बीच है। विरुपांगता दर (deformity rate) लगभग 10 से 15 प्रतिशत है। कुल रोगियों में से लगभग 15 प्रतिशत बच्चे हैं। देश के 445 जिलों में से 196 जिलों में इस रोग की व्याप्ति दर 5 प्रति हजार से अधिक है। लगभग 43.5 करोड़ लोग, रोग से प्रभावित इन 196 जिलों में रहते हैं। अक्तूबर 1990 के अंत तक देश में 25 लाख कुष्ठ रोग के पंजीकृत केस थे, जिनमें वर्ष 1989-90 में निदान किए गए 4 लाख 70 हजार नए केस भी शामिल थे। (स्रोत : स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की 1991-92 वार्षिक रिपोर्ट, 1992)।

यद्यपि यह रोग पूरे भारत वर्ष में व्याप्त है, किन्तु सभी भागों में इसकी व्याप्ति दर समान नहीं है। इस रोग के व्याप्ति दर में व्यापक भिन्नताएं हैं। रोग से कम प्रभावित क्षेत्रों में भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ इस रोग की व्याप्ति दर अपेक्षाकृत बहुत उच्च है।

उच्च व्याप्ति दर वाले क्षेत्रों में, देश के दक्षिण-पूर्वी भाग सम्मिलित हैं, जिनमें तमिलनाडु, उड़ीसा, बिहार, पाण्डिचेरी तथा अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह प्रमुखतया प्रभावित क्षेत्र हैं। सामान्य व्याप्ति दर वाले प्रभावित क्षेत्रों में अधिकांश देश के मध्य तथा दक्षिण-पश्चिमी भाग और हिमालय के तराई वाले क्षेत्र सम्मिलित हैं। कम व्याप्ति दर वाले क्षेत्रों में मुख्यतया देश के उत्तर-पश्चिमी भाग शामिल होते हैं।

गतिविधियाँ : राष्ट्रीय कुष्ठरोग उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत संचालित प्रमुख गतिविधियों में घरों, स्कूलों तथा स्लम क्षेत्रों का सर्वेक्षण करके कुष्ठरोग संबंधी केसों का पता लगाकर रोगियों को उनके घरों के यथासंभव निकट उपचार देने की व्यवस्था करना शामिल है। कार्यक्रम के अन्तर्गत कुष्ठ रोगियों को उनके परिवारों तथा समुदाय के लोगों को इस रोग संबंधी सही तथ्यों तथा इसका उपचार हो सकने के बारे में शिक्षित करने पर बल दिया जाता है।

संगठनात्मक ढाँचा : देश में इस रोग के प्रसार तथा रोगियों की अत्याधिक संख्या को देखते हुए कुष्ठरोग संबंधी सेवाएं प्रदान करने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित स्टाफ भर्ती करने की आवश्यकता थी। कुष्ठ रोग से प्रभावित प्रत्येक क्षेत्र में एक कुष्ठरोग नियंत्रण यूनिट (एल.सी.यू.) 4 से 5 लाख ग्रामीण जनता को सेवा प्रदान करता है तथा प्रत्येक यूनिट में चार गैर-चिकित्सकीय सुपरवाइजर और 20 पैरा-मेडिकल कार्यकर्ता होते हैं, जो 50,000 शहरी जनसंख्या को सेवा प्रदान करते हैं। जिला स्तर पर जिला कुष्ठरोग अधिकारी का कार्यालय स्थापित किया गया है तथा इस समय इस प्रकार के 244 यूनिट कार्य कर रहे हैं। इस कार्यक्रम संबंधी गतिविधियों का संचालन करने हेतु अपेक्षित जनशक्ति को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए 49 कुष्ठरोग प्रशिक्षण केन्द्र प्रशिक्षण कार्य में लगे हुए हैं। इसलिए कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रदान की जाने वाली प्रमुख सेवाओं में कुष्ठरोग केसों का निदान तथा उपचार करना; स्वास्थ्य शिक्षा देना; सामुदायिक भागीदारी आवश्यक रिकार्ड तैयार करना; प्रशिक्षण, प्रबंधन तथा पुनर्वास और मल्टी ड्रग्स उपचार देना आदि शामिल हैं।

22.2.8 राष्ट्रीय अन्धता नियंत्रण कार्यक्रम (National Programme for Control of Blindness – एन.पी.सी.बी.)

अन्धता हमारे देश की सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या है। अनुमान है कि पूरे विश्व में लगभग 3 करोड़ व्यक्ति ऐसे हैं जो पूर्ण अन्धता के शिकार हैं। अकेले भारत देश में ही इनकी संख्या 1.2 करोड़ है (जो दोनों आँखों से दृष्टिहीन है) तथा लगभग 80 लाख लोग आंशिक रूप से (एक आँख से) दृष्टिहीन हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत में लगभग 3.2 करोड़ नेत्र दृष्टिहीन हैं, जिसके लिए कॉर्निया निरोपण अर्थात् कॉर्निया इम्पलांटेशन करने की आवश्यकता है *(स्रोत : स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की वर्ष 1991-92 की वार्षिक रिपोर्ट, 1992)*।

हाल ही मे किए गए अध्ययनों से पता चला है कि 81 प्रतिशत अन्धता मोतिया बिन्द (cataract) (आँख के लेंस के फुल्ली या अपारदर्शिता होने के कारण दृष्टि में धुंधलापन आ जाना) के कारण होती है, जिसका उपचार शल्यचिकित्सा द्वारा (सर्जरी) करके किया जा सकता है।

इस समय 2.2 करोड़ मोतिया बिन्द के ऐसे केस हैं जिनका उपचार नहीं हो पाया है तथा प्रतिवर्ष 20 लाख और केस इसमें जुड़ जाते हैं। वर्तमान में प्रतिवर्ष मोतिया बिन्द के 12 लाख केसों का आपरेशन किया जाता है, जिसका परिणाम यह निकला है कि प्रतिवर्ष 8 लाख केस और इसमें जुड़ जाते हैं। इस प्रकार बैक-लॉग (पिछले बचे हुए केस) को पूरा करने के लिए देश में प्रतिवर्ष 27 लाख मोतिया बिन्द के आपरेशन करने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय अन्धता नियंत्रण कार्यक्रम को प्रभावी ढंग से क्रियान्वित कराने की दिशा में तकनीकी जनशक्ति के महत्व को ध्यान में रखते हुए जनशक्ति विकास को प्राथमिकता दी जा रही है। कुछ एक महत्वपूर्ण प्रशिक्षण कार्यक्रम निम्न प्रकार से हैं :

- नेत्र उपचर्या में सहायक पैरा-मेडिकल स्टाफ का प्रशिक्षण
- राष्ट्रीय अन्धता नियंत्रण कार्यक्रम की आवश्यकताओं के अनुसार मेडिकल-स्नातकों तथा नेत्र वैज्ञानिकों को प्रशिक्षण
- प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों / अस्पतालों के चिकित्सा अधिकारियों को पुनराभ्यास प्रशिक्षण (Orientation) / पुनश्चर्या प्रशिक्षण (Refresher training)।
- नेत्र विशेषज्ञों के लिए सतत् मेडिकल शिक्षा।

पैरा-मेडिकल नेत्र उपचर्या सहायकों को चुने हुए मेडिकल कालेजों/ क्षेत्रीय संस्थानों / राष्ट्रीय संस्थानों के साथ सम्बद्ध 37 प्रशिक्षण स्कूलों में प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है । प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के चिकित्सा अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण गतिविधियों (7 से 15 दिन) का संचालन मेडिकल कालेजों / जिला अस्पतालों / चुने हुए नेत्र अस्पतालों आदि में किया जाता है, ताकि उन्हें नेत्र स्वास्थ्य उपचर्या को समेलित स्वास्थ्य परिचर्या वितरण सेवाओं के साथ समन्वित करने के लिए तैयार किया जा सके और वह नेत्र उपचर्या सहायक के कार्य का पर्यवेक्षण तथा मार्गदर्शन कर सकें । यह प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने के पश्चात् प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के चिकित्सा अधिकारियों द्वारा केन्द्र के स्टाफ के लिए अभिविन्यास प्रशिक्षणों का संचालन किया जाता हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि स्टाफ इस बारे में अपनी भूमिका तथा दायित्वों का भली-भाँति निर्वाह कर सके।

22.2.9 राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम (National AIDS Control Programme)

एड्स (अर्थात् शरीर की प्रतिरोधी क्षमता को जीर्ण करने वाला सिन्ड्रोम) एक ऐसा रोग है जिसमें कुछ T-लसिका कोशिकाओं (T-lymphocyte) की संख्या में कमी हो जाने के परिणामस्वरूप कोशिकाओं के माध्यम से होने वाली प्रतिरोधी अनुक्रिया जीर्ण अथवा समाप्त हो जाती है । ऐसा किस संलक्षण (या विषाणु) के कारण होता है, उसकी अभी पहचान नहीं हो पाई है, किन्तु यह रोग विषाणुजनित रोग है।
राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम को 1986 में लागू किया गया था। इस कार्यक्रम के तीन प्रमुख घटक निम्न प्रकार से हैं :

1. निगरानी (Surveillance)
2. रक्त सुरक्षा के लिए रक्त तथा रक्त उत्पादों की जाँच, और
3. सूचना, शिक्षा तथा संचार ।

उद्देश्य : इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य असँयमित सम्भोग करने वाले व्यक्तियों में संक्रमण की गति को रोकने के लिए (निगरानी सर्वेक्षण करके) गतिविधियों का संचालन करना है तथा स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से सामाजिक चेतना पैदा करना है । इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं :

1) भारत में एच.आई.वी. (मानवीण रोग प्रतिरोधकहीनता विषाणु) संक्रमण के प्रसार को रोकना ।
2) एच.आई.वी. संक्रमण से सम्बद्ध रुग्णता दर तथा मृत्यु दर में कमी लाना और एच.आई.वी. संक्रमण के परिणामस्वरूप पड़ने वाले सामाजिक-आर्थिक प्रभाव को कम करना ।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं :

क) उच्च जोखिमपूर्ण व्यवहार (high risk behaviour) करने वाले समूहों तथा जनसामान्य के लिए सूचना, शिक्षा तथा संचार गतिविधियाँ संचालित करना

ख) यौन संक्रमित रोगों की रोकथाम तथा उपचार करना

ग) नसों के माध्यम से ड्रग्स का (इन्जेक्शन लेने वाले) दुरुपयोग करने वाले लोगों में संक्रमण के प्रसार की रोकथाम तथा उपचार करना

घ) रक्त तथा रक्त उत्पादों के माध्यम से होने वाले संक्रमण को रोकना

च) क्लिनिक की व्यवस्था सुविधाओं को सुदृढ़ करना; और

छ) कार्यक्रम की प्रबन्ध व्यवस्था करना ।

भारत सरकार द्वारा सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में जोखिमपूर्ण व्यवहार करने वाले व्यक्तियों की जाँच करने के लिए देश के चार महानगरों - अर्थात् बम्बई, मद्रास, कलकत्ता और दिल्ली - में 62 निगरानी केन्द्र स्थापित किए गए तथा 29 ज़ोनल रक्त परीक्षण केन्द्र स्थापित किए गए और इसके अतिरिक्त एच.आई.वी. संक्रमण के बारे में सभी प्रकार के संग्रहीत प्लाजमा की जाँच करने के लिए इन राज्यों की राजधानियों / बड़े नगरों में 81 रक्त परीक्षण केन्द्र स्थापित किए गए ।

भारत सरकार ने सावधानीवश रक्त तथा रक्त उत्पादों का निर्माण करने वालों को बड़े कड़े निर्देश जारी करके उनका सख्ती से पालन करने का निर्देश दिया हैं। रक्त बैंकों को यह निर्देश भी जारी किए गए हैं कि संचित प्लाजमा की एच.आई.वी., आतशक (सिफलिस), यकृतशोथ तथा मलेरिया के लिए अनिवार्य रूप से जाँच की जाए तथा रक्त सैंपल में यदि विषाणु की कोई स्थिति पाई जाए तो उसे प्रयोग के लिए तत्काल अयोग्द करार दे दिया जाए। अस्पतालों / संस्थाओं आदि में इस संक्रमण की रोकथाम के बारे में भी कड़े निर्देश जारी किए जा चुके हैं।

बोध प्रश्न - 2

1) राष्ट्रीय कुष्ठरोग नियंत्रण कार्यक्रम संबंधी तीन गतिविधियों का उल्लेख करें।

....

....

....

2) राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के प्रमुख तीन घटक कौन-कौन से हैं ?

....

....

....

....

....

....

22.2.10 राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (National Mental Health Programme)

भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में प्रारम्भ किया गया था। इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :

- न्यूनतम मानसिक स्वास्थ्य परिचर्या सेवा की उपलब्धता सुनिश्चित करना,
- सामान्य स्वास्थ्य देखभाल में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान का अनुप्रयोग करने के लिए प्रेरित करना,
- कार्यक्रम में सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देना, और
- समुदाय को स्वावलम्बी बनाने हेतु प्रयोगों को तेज़ करना।

राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के सचिव की अध्यक्षता में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी एक राष्ट्रीय सलाहकार ग्रुप का गठन किया गया है।

इस योजना को लागू कराने के लिए इस वर्ष 25 लाख रुपए का प्रावधान किया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वास्थ्य कार्मिकों को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए ग्यारह संस्थानों की पहचान की गई है।

11 मेडिकल कालेज, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के फिजीशियनों तथा पैरा-मेडिकल कार्मिकों को मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में बुनियादी जानकारी तथा कौशल प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण देंगे। यह केन्द्र अन्य क्षेत्रों में संचालित विभिन्न प्रकार की मानसिक स्वास्थ्य संबंधी गतिविधियों में भी समन्वयन प्रदान करेंगे तथा अन्य प्रशिक्षण केन्द्रों को उनके क्षेत्र में स्वास्थ्य शिक्षा सामग्री की सप्लाई भी करेंगे तथा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के लाभ भी समन्वय करेंगे।

22.2.11 राष्ट्रीय मधुमेह नियंत्रण कार्यक्रम (National Diabetes Control Programme)

राष्ट्रीय मधुमेह नियंत्रण कार्यक्रम को सातवीं पंचवर्षीय योजना में एक केन्द्रीय स्वास्थ्य सेक्टर कार्यक्रम के रूप में सम्मिलित किया गया था तथा जिला मधुमेह नियंत्रण कार्यक्रम प्रारंभ करने के लिए रु. 25 लाख की राशि निर्धारित की गई थी। तमिलनाडु तथा जम्मू कश्मीर में विकसित कार्यक्रम के आधार या एकीकरण के लिए एक ऐसा मॉडल सामने आया है जिसको प्रतिरूप मानकर मधुमेह परिचर्या को प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या कार्यक्रम के साथ एकीकृत किया जा सकता है।

उद्देश्य : इस कार्यक्रम के उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं :

क) रोग के प्रारम्भिक चरणों में ही जोखिमपूर्ण केसों की पहचान करना तथा मधुमेह की बुनियादी रोकथाम पर जोर देते हुए उचित स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करना.

ख) रोग का शीघ्र निदान करना तथा रुग्णता और मृत्यु दर (द्वितीयक) को कम करने के लिए संस्कारात उपचार के समुचित उपाय करने के साथ संवेदनशील प्रसवकालीन मधुमेह वर्गों जैसे रोगियों पर ध्यान केन्द्रित करना

ग) गंभीर प्रकार की चयापचयी समस्याओं की रोकथाम अथवा समस्या को कम करने के साथ-साथ गंभीर हृदयवाहिका - वृक्क संबंधी समस्याओं की रोकथाम करना

घ) बौद्धिक तथा मौलिक प्राप्ति के लिए समान अवसरों का प्रावधान करना तथा सामाजिक मादात्मक स्थिति अनुकूल बनाना ताकि रोगी अच्छे स्तर का जीवनयापन कर सकें; और

ङ) रोग के प्रभाव से आंशिक अथवा पूर्ण रूप से हुए विकलांग रोगियों की पहचान करना तथा उन्हें शारीरिक रूप से अधिक से अधिक सक्रिय बनाकर उनके पुनर्वास को सुनिश्चित करना।

22.2.12 राष्ट्रीय क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम (National Tuberculosis Control Programme)

क्षयरोग एक संक्रामक, जीवाणु से होने वाला रोग है, जिसके परिणामस्वरूप टी.बी. बेसीलस से संक्रमण होता है।

क्षयरोग हमारे देश की एक प्रमुख लोक स्वास्थ्य समस्या है। भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा 1955-58 में संचालित एक राष्ट्रीय क्षयरोग नमूना सर्वेक्षण के अनुमानों के अनुसार कुल जनसंख्या का लगभग 1.5 प्रतिशत भाग फ़ेफड़ों के क्षयरोग से ग्रस्त था, जिनमें से एक चौथाई लोगों का यह रोग संक्रामक स्वरूप का था। शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में इस रोग की व्याप्ति दर समान पाई गई है। प्रति वर्ष इस रोग से लगभग चार लाख व्यक्ति मर जाते हैं। यह अनुमान है कि क्षयरोग के लगभग 80 प्रतिशत रोगी ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। *(स्रोत स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की वर्ष 1991 - 92 की वार्षिक रिपोर्ट, 1992).*

संगठनात्मक ढाँचा: राष्ट्रीय क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम को 1962 से क्रियान्वित कराया जा रहा है तथा जिला क्षयरोग केन्द्र इकाई के रूप में,कार्य करते हैं। जिला स्तर पर जिला क्षयरोग अधिकारी कार्यक्रम का समग्र प्रभारी होता है। उसके सहयोग के लिए उसके अन्तर्गत प्रयोगशाला तकनीशियन, एक्स-रे तकनीशियन, उपमान आयोजक तथा सांख्यिकीय सहायक की टीम कार्य करती है। जिले के अन्य सभी स्वास्थ्य संस्थान इस कार्यक्रम को लागू कराने में सहायता प्रदान करते हैं।

केसों का पता लगाना : खांसी, बुखार, खून की उल्टी तथा छाती में दर्द की शिकायत लेकर परिक्षेत्रीय स्वास्थ्य संस्थानों में आने वाले सभी रोगियों की थूक की जांच की जाती है। तथा इसे नकारात्मक (Negative) पाया जाता है तो उसे निगरानी में रखा जाता है तथा उसके थूक की पुन: जांच की जाती है अथवा उसे एक्स-रे कराने के लिए भेजा जाता है। इस कार्यक्रम को ग्रामस्तर पर और अधिक प्रभावी बनाने के लिए बहुउद्देशीय कार्यकर्त्ताओं को 5,000 जनसंख्या में से प्रतिदिन थूक के दस स्मीयर लाने के लिए कहा जाता है।

उपचार : सभी रोगियों को परिक्षेत्रीय स्वास्थ्य संस्थान में उपचार दिया जाता है। इस रोग का उपचार घर पर किया जा सकता है तथा रोगी को मासिक आधार पर दवाएं दी जाती है, जिनका सेवन उसे स्वयं करना होता है।

केस की देखभाल : यदि रोगी दवा लेने के लिए अस्पताल नहीं पहुंचता है तो पहली कार्यवाही के रूप में उसके घर पर पत्र भेजा जाता है (I-कार्यवाही)। फिर भी सात दिन तक कोई उत्तर न मिलने पर स्वास्थ्य केन्द्र के सहायक द्वारा उनके घर का दौरा (II-कार्यवाही) किया जाता है ।

प्रबोधन तथा पर्यवेक्षण : जिला क्षयरोग केन्द्र के मार्गदर्शन में इसका कार्यक्रम का प्रबोधन तथा क्रियान्वयन प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के माध्यम से किया जाता है ।

22.2.13 राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम (National Malaria Eradication Programme)

वर्ष 1965 में राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम के लागू होने के परिणामस्वरूप मलेरिया घटनाओं की वार्षिक दर 7.5 करोड से घटकर 1 लाख रह गई थी । किन्तु कुछ एक कारणों से 1976 में मलेरिया का प्रकोप पुन: बढ़ गया तथा 64.7 लाख मलेरिया केसों की रिपोर्ट मिली । अप्रैल 1977 से संशोधित कार्य योजना लागू करने के पश्चात 1982 में इन घटनाओं की संख्या घटकर 21 लाख तक आ गई । *(स्रोत : स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की वर्ष 1991 - 92 की वार्षिक रिपोर्ट, 1992)* ।

संगठनात्मक ढाँचा : ग्रामीण क्षेत्र में इस कार्यक्रम को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के बहुदेशीय स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के माध्यम से लागू कराया जा रहा है । जिन क्षेत्रों में संचार के साधनों की कमी है अथवा जहां समस्या विकट है, वहां ड्रग वितरण केन्द्र तथा ज्वर उपचार केन्द्र (Fever treatment depot) चलाए गए हैं। मलेरिया नियंत्रण संबंधी गतिविधियों का प्रबोधन तथा सुपरविजन जिला मलेरिया अधिकारी द्वारा सहायक मलेरिया अधिकारी, सहायक यूनिट अधिकारी, वरिष्ठ प्रयोगशाला तकनीशियन तथा सांख्यिकीय सहायक के सहयोग से किया जाता है ।

गतिविधियां : मलेरिया की घटनाओं को रोकने के लिए निम्नलिखित गतिविधियों का संचालन किया जाता है:

क) परजीवी नाशक उपाय (Anti-parasite Measures) : इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य कार्मिकों द्वारा घरों का दौरा करके जनसंख्या में निगरानी करने का कार्य किया जाता है । (इसे सक्रिय निगरानी कहा जाता है)। निष्क्रिय निगरानी (passive surveillance) के अन्तर्गत मलेरिया क्लिनिकों द्वारा दी जाने वाली सेवाएं, ज्वर उपचार केन्द्रों तथा ड्रग वितरण केन्द्रों द्वारा दी जाने वाली सेवा शामिल होती हैं । परजीवी ज्वर (प्रकोप) को कम करने के लिए सभी रोगियों को उपचार दिया जाता है ।

ख) मच्छर नाशक उपाय (Anti-mosquito Measures): जहां संक्रमण दर उच्च पाई जाती है उन क्षेत्रों में कीटनाशी दवाओं का छिड़काव किया जाता है । समुदाय में मलेरिया के प्रसार को रोकने के लिए तथा रोगाणु फैलाने वाले मच्छरों को कम करने के लिए उचित कीटनाशी दवाओं का छिड़काव किया जाता है ।

ग) लारवा नाशक उपाय (Anti-larval Measures): यह उपाय शहरी क्षेत्रों में लारवा नाशक तेल छिड़क कर रोगाणु फैलाने वाले मच्छरों की संख्या में कमी करने के उद्देश्य से किया जाता है।

बोध प्रश्न - 3

1) राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के उद्देश्यों को सूनीबद्ध करें ।

....

....

....

....

....

....

2) राष्ट्रीय क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम के अन्तर्गत तीन प्रमुख गतिविधियों का उल्लेख करें।

....

....

....

....

....

....

3) राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत कौन-कौन सी तीन प्रमुख गतिविधियाँ संचालित की जाती है ?

....

....

....

....

....

22.2.14 शिशु उत्तरजीविता तथा सुरक्षित मातृत्व कार्यक्रम (Child Survival and Safe Motherhood Programme– सी.एस.एस.एम.पी.)

भारत में मातृ मृत्यु दर (5 प्रति हजार जीवित जन्म) तथा शिशु मृत्यु दर (80 प्रति हजार जीवित जन्म) बहुत ऊंची है। यह दर विकसित देशों की तुलना में लगभग दस गुणा अधिक है। एक राज्य से दूसरे राज्य में तथा एक जिले से दूसरे जिले में इन आंकड़ों में बहुत भिन्नता है। उच्च मातृ मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर का कारण सेवाओं का अल्प उपयोग, उपलब्ध सुविधाओं के बारे में जानकारी का अभाव,सेवाओं का पहुंच में न होना, उपचार के पारम्परिक तरीकों में विश्वास, महिलाओं का अल्प शिक्षा स्तर तथा स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के साथ उचित सम्पर्क न होना है। हमारी स्वास्थ्य प्रणाली में अभी तक कार्यक्रम विशेष पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है न कि माताओं तथा बच्चों की समुचित आवश्यकताओं पर। सी.एस.एस.एम. कार्यक्रम का उद्देश्य माताओं तथा शिशुओं की स्वास्थ्य और बीमारियों संबंधी समग्र आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर एक पैकेज के रूप में मातृ - शिशु स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करना है। इस कार्यक्रम को 1991 में देश के 100 जिलों में प्रारम्भ किया गया था, जिसमें उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश राज्यों को कवर किया गया।

उद्देश्य : कार्यक्रम के सामान्य उद्देश्य निम्न प्रकार से है: मातृ मृत्यु दर को 2 तथा शिशु मृत्यु दर को 50 प्रति हजार जीवित जन्म से नीचे लाना, तथा बाल मृत्यु दर (एक से चार वर्ष की आयु वर्ग के बच्चे) को सन् 2000 तक 10 प्रति हजार से नीचे लाना। यह लक्ष्य ग्रामीण स्तर पर उप केन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों के स्तर पर मातृ - शिशु स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार तथा विस्तार करके तथा उच्च शिशु मृत्यु दर वाले जिलों पर अधिक ध्यान देकर और प्रशिक्षण, आपूर्ति, संभार, प्रबोधन तथा मूल्यांकन आदि सेवाओं का समर्थन प्रदान करके प्राप्त किए जा सकता है।

कार्यक्रम के विशिष्ट उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं :

1) सन् 1995 तक शिशु मृत्यु दर को 80 से घटकर 75 तक लाना और सन् 2000 तक 50 पर लाना
2) बाल (1 से 4 वर्ष की आयु के बच्चे) मृत्यु दर को 41.2 से कम करके 10 पर लाना
3) मातृ मृत्यु दर को 5 प्रति हजार जीवित जन्म से 2 प्रति हजार जीवित जन्म पर जाना
4) सन् 2000 तक पोलियो का उन्मूलन करना

5) सन् 1995 तक नवजात शिशुओं में होने वाले टिटेनस को समाप्त करना

6) सन् 1995 तक खसरा रोग से होने वाली 95 प्रतिशत मौतों की रोकथाम करना तथा 90 प्रतिशत खसरा केसों को कम करना

7) अतिसार रोग से होने वाली 70 प्रतिशत मौतों को रोकना तथा अतिसार के 25 प्रतिशत केस कम करना

8) गंभीर श्वसन संक्रमण से होने वाली 40 प्रतिशत मौतों की रोकथाम करना *(स्रोत: शिशु उत्तरजीविता तथा सुरक्षित मातृत्व संबंधी दिशा-निर्देश, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 1992)*

शिशु उत्तरजीविता और सुरक्षित मातृत्व कार्यक्रम के अन्तर्गत सेवाओं का पैकेज : बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं को निम्नलिखित सेवाएं प्रदान की जाती हैं :

बच्चों के लिए

1) घर पर नवजात शिशु की परिचर्या

2) बारह माह तक प्राथमिक प्रतिरक्षीकरण (100 प्रतिशत कवरेज)

3) विटामिन-ए संबंधी रोग रोधक उपाय (9 माह से 3 वर्ष तक) (100 प्रतिशत कवरेज)

4) घर पर / स्वास्थ्य केन्द्र में निमोनिया की उपचार व्यवस्था

5) घर पर ओरल रीहाड्रेशन थिरेपी / स्वास्थ्य सुविधा : अतिसार रोग के उपचार हेतु प्रत्येक गांव के लिए ओ आर एस (जीवन रक्षक घोल) की व्यवस्था ।

गर्भवती महिलाओं के लिए

1) अरक्तता (एनीमिया) संबंधी रोगरोधक उपचार (100 प्रतिशत कवरेज)

2) प्रसव पूर्व जांच, कम से कम तीन बार जांच (100 प्रतिशत कवरेज)

3) उच्च जोखिम तथा समस्याओं वाले केसों को रैफर करना

4) बच्चे के जन्म के समय उपचर्या तथा स्वच्छ प्रसव को बढ़ावा देना

5) जन्म के समय और जन्म अन्तराल

भारत के मातृ -मृत्यु का प्रमुख कारण अरक्तता, प्रसूति-पूतिता (प्रसव के बाद माताओं में संक्रमण) रक्तस्राव (haemmorhage), गर्भ में भ्रूण की असामान्य स्थिति, रक्तविवाक्तता: तथा गर्भपात - है । मातृ मृत्यु दर को काफी हद तक कम किया जा सकता है, बशर्ते कि महिला को गर्भावस्था तथा प्रसव के दौरान पर्याप्त परिचर्या प्रदान की जाए । इस कार्य में स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

22.3 मातृ - शिशु स्वास्थ्य और उनके पोषणात्मक स्तर के विकास हेतु अन्य कार्यक्रम

महिलाएं तथा बच्चे हमारे समाज का एक ऐसा हिस्सा हैं जो रोगों आदि की दृष्टि से बहुत संवेदनशील वर्ग है । इस वर्ग को बीमारी तथा संक्रमण बहुत जल्दी ही अपनी लपेट में ले लेते हैं जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाती है । इन समस्याओं पर काबू पाने के लिए भारत सरकार, द्वारा अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए है, जिनका समग्र उद्देश्य उनके पोषणात्मक तथा स्वास्थ्य स्तर में सुधार लाना है । आपको सम्भवतया याद होगा कि आपने पिछले पाठ्यक्रम में ऐसे कुछ एक कार्यक्रमों के बारे में पढ़ा था । क्या आप उन्हें सूचीबद्ध कर सकते हैं ? आपके संदर्भ हेतु यहां उन कार्यक्रमों की सूची दी गई है, जिनका संबंध महिलाओं तथा बच्चों से है। ये कार्यक्रम इस प्रकार है : समन्वित बाल विकास सेवा कार्यक्रम, मध्याह्न पोषण कार्यक्रम, विशेष पोषण कार्यक्रम, व्यवहारिक पोषण कार्यक्रम (Applied Nutrition programme), गेहूं आधृत पूरक पोषण कार्यक्रम (Wheat based Supplementary Nutrition Programme) तथा बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम । चूंकि आप समन्वित बाल विकास योजना और मध्याह्न भोजन कार्यक्रम के बारे में पाठ्यक्रम - 1 के ब्लाक 6, यूनिट - 24 में पढ़ चुके हैं, इसलिए हम इस पर और अधिक चर्चा नहीं करेंगे। हमारा आपसे सुझाव है कि आप पाठ्यक्रम - 1 को दोबारा पढ़े । यहां हम अन्य कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान केन्द्रित करेंगे । किन्तु हम यहां अपनी चर्चा समन्वित बाल विकास सेवा योजना की संक्षिप्त समीक्षा से प्रारम्भ करते हैं ।

22.3.1 समन्वित बाल विकास सेवा योजना (आई.सी.डी.एस.)

बच्चों के सम्बन्ध में अपनायी गई राष्ट्रीय नीति का अनुसरण करते हुए समन्वित बाल विकास सेवा योजना 2 अक्टूबर, 1975 को 33 विकास खण्डों में प्रयोगात्मक आकार पर प्रारम्भ की गई थी। इस योजना की सफलता को देखते हुए मार्च 1991 के अन्त तक इस योजना का व्यापक विस्तार हुआ तथा इसके अन्तर्गत संभावित परियोजनाओं की संख्या 2400 हो गई। वर्ष 1991 - 92 में 75 नई परियोजनाएं प्रारम्भ की गई। भारत सरकार द्वारा क्रियान्वित यह सबसे बड़ा पोषण कार्यक्रम है। इस समय 1.85 लाख आंगवाड़ियां, 142.52 लाख बच्चों, गर्भवती महिलाओं तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं को पूरक पोषण प्रदान करने के कार्य में लगी हुई हैं।

लाभार्थी : इस कार्यक्रम के लाभार्थी - छः वर्ष से कम आयु के बच्चे, 15 से 44 वर्ष - आयु वर्ग की महिलाएं, गर्भवती महिलाएं तथा स्तनपान कराने वाली महिलाएं हैं।

उद्देश्य : इस योजना के उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं :

- छः वर्ष से कम आयु के बच्चों के पोषणात्मक स्तर तथा स्वास्थ्य स्तर में सुधार लाना
- बच्चों के मनोवैज्ञानिक, शारीरिक तथा सामाजिक विकास के लिए समुचित आधार तैयार करना
- बच्चों में मृत्यु, रुग्णता तथा कुपोषण की घटनाओं को रोकना तथा विद्यालयों में अनुपस्थिति को कम करना
- बाल विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न विभागों में नीति तथा क्रियान्वयन संबंधी समन्वयन प्रक्रिया को प्रभावी बनाना, और
- बच्चे के सामान्य स्वास्थ्य और पोषणात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति के बारे में महिलाओं को समुचित पोषण तथा स्वास्थ शिक्षा देकर उनकी क्षमताओं को बढ़ावा देना।

गतिविधियां : कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित सेवाएं प्रदान की जाती है :

- पूरक पोषण
- प्रतिरक्षीकरण (टीकाकरण)
- स्वास्थ्य संबंधी जांच
- रैफरल सेवा / संदर्भ सेवाएं (referral services)
- छोटी बीमारियों का उपचार
- महिलाओं को पोषण तथा स्वास्थ्य शिक्षा
- 3 से 6 वर्ष के बच्चों को स्कूल पूर्व शिक्षा
- जल आपूर्ति, स्वच्छता आदि जैसी अन्य समर्थक सेवाएं

पूरक पोषण वर्ष में 300 दिन प्रदान किया जाता है। आंगनवाडी में ही बच्चे को भोजन खिलाने का यथासंभव प्रयास किया जाता है। सभी पात्र लाभार्थी बच्चों को प्रतिदिन 300 कैलोरी तथा 8 से 10 ग्राम प्रोटीन, राशन के रूप में मिलता है। गंभीर रूप से कुपोषणग्रस्त बच्चों, गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं को प्रतिदिन पूरक आहार के रूप में 600 कैलोरी तथा 18 - 20 ग्राम प्रोटीन प्राप्त होता है।

पात्र लाभार्थी को आयरन (लौह तत्व) तथा फॉलिक एसिड की गोलियां और विटामिन ए की बृहद खुराक समन्वित बाल विकास सेवा योजना के परियोजना क्षेत्र के विद्यमान ढांचे के माध्यम से प्रदान की जाती है। प्रदत्त पूरक - पोषण की लागत निम्न प्रकार से है :

1)	बच्चे (छः मास से 72 मास) (ग्रेड 1 तथा 2 में आने वाले शिशु)	75 पैसे प्रति बच्चा प्रतिदिन
2)	गंभीर रूप से कुपोषित बच्चे (छः मास से 72 मास)	1 रुपया 25 पैसे प्रति बच्चा प्रतिदिन
3)	गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली महिलाएं	105 पैसे प्रति महिला प्रति दिन

(स्रोत: केन्द्रीय तकनीकी समिति, कल्याण मंत्रालय, 1991)

संगठनात्मक ढांचा : समन्वित बाल विकास सेवा योजना बहु-सेक्टरल कार्यक्रम है जिसमें अनेक सरकारी विभाग शामिल हैं तथा उनकी सेवाओं को ग्राम, ब्लाक, जिला, राज्य तथा केन्द्रीय स्तर पर समन्वित किया जाता है। इस कार्यक्रम को लागू कराने का बुनियादी दायित्व केन्द्र सरकार के महिला तथा बाल विकास विभाग, कल्याण मंत्रालय पर है तथा राज्यों में नोडल विभाग पर है। राज्यों में यह नोडल विभाग समाज कल्याण, ग्रामीण विकास, आदिवासी कल्याण अथवा स्वास्थ्य विभाग कोई भी हो सकता है। इस योजना में परिक्षेत्रीय स्तर पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ता होता है जो गांव / समुदाय स्तर पर कार्यक्रम को लागू कराने / सेवाएं प्रदान करने में मदद करता है।

22.3.2 मध्याह्न भोजन कार्यक्रम (एम.डी.एम.)

मध्याह्न भोजन कार्यक्रम को दोपहर का भोजन कार्यक्रम भी कहा जाता है। यह कार्यक्रम 1962 - 63 में प्रारम्भ किया गया तथा बाद में इस कार्यक्रम का विस्तार पूरे देश में कर दिया गया। यह कार्यक्रम प्रारम्भ में "केन्द्रीय प्रायोजिक" योजना के रूप में भारत सरकार द्वारा प्रारम्भ किया गया। अब इस कार्यक्रम का संचालन राज्य सरकारों द्वारा किया जा रहा है, किन्तु इस कार्यक्रम के लिए वित्तीय अनुदान केन्द्र द्वारा दिया जा रहा है।

इस समय इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 2.11 करोड़ लाभार्थियों को कवर किया जा रहा है।

(स्रोत : वार्षिक योजना 1990 - 91, योजना आयोग, भारत सरकार, 1992)

उद्देश्य : इस कार्यक्रम के उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं :

- प्राथमिक स्कूल के बच्चों, विशेष रूप से सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के बच्चों, के पोषणात्मक स्तर में सुधार लाना
- स्कूलों में बच्चों की भर्ती तथा उपस्थिति में सुधार लाना
- प्राथमिक स्कूल स्तर पर पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों को पढ़ाई छोड़ने से रोकना।

लाभार्थी : यह कार्यक्रम 6 से 11 वर्ष के आयु वर्ग के प्राथमिक स्कूल के बच्चों के लिए है। पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजाति परिवारों के बच्चों को कार्यक्रम में वरीयता प्रदान की जाती है।

गतिविधियाँ : प्रत्येक लाभार्थी को प्रतिदिन पूरक पोषण प्रदान किया जाता है, जिसमें 300 कैलोरी तथा 8 से 12 ग्राम प्रोटीन की मात्रा होती है। प्रतिवर्ष 200 दिन पोषक आहार प्रदान किया जाता है, किन्तु एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्नता हो सकती है।

पूरक पोषण पर व्यय की जाने वाली प्रति इकाई राशि में समन्वित बाल विकास सेवा योजना के पैट्रन पर हाल ही में संशोधन किया गया है।

संगठनात्मक ढांचा : यह कार्यक्रम स्कूलों के माध्यम से लागू किया जाता है तथा एक शिक्षक को आयोजक बनाकर भोजन के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायित्व उसे सौंपा जाता है।

22.3.3 विशेष पोषण कार्यक्रम

भारत सरकार के समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा विशेष पोषण कार्यक्रम (Special Nutrition Programme) 1970-71 में चालू किया गया। मूलत: इस कार्यक्रम को केन्द्रीय कार्यक्रम के रूप में चलाया गया किन्तु पांचवी पंचवर्षीय योजना में इसे राज्य सेक्टर में स्थानान्तरित कर दिया गया। छठी तथा सातवीं पंचवर्षीय योजनाओं में इस कार्यक्रम को समन्वित बाल विकास सेवा योजना की शैली में परिवर्तित करके तथा इसमें स्वास्थ्य और अन्य पक्ष जोड़ कर इसे सुदृढ़ बनाने के लिए कदम उठाए गए। इस समय कार्यक्रम के अन्तर्गत 2.87 करोड़ लाभार्थियों को कवर किया गया है। 1991-92 के अंत तक 3.09 करोड़ लाभार्थियों को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लाने की योजना है।

(स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट 1990-91, भोजन आयोग, भारत सरकार, 1992)

उद्देश्य : इस कार्यक्रम का उद्देश्य शहरी स्लम क्षेत्रों, आदिवासी क्षेत्रों तथा सूखे वाले ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर की गर्भवती महिलाओं, स्तनपान कराने वाली महिलाओं और स्कूल पूर्व आयु के बच्चों के पोषणात्मक स्तर में सुधार लाना है।

लाभार्थी : इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित वर्गों को सेवाएं प्रदान की जाती हैं :

1) स्कूल पूर्व आयु के बच्चे

2) गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली महिलाएं

लाभार्थियों का चयन उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर किया जाता है । गर्भवती महिलाओं की पिछले तीन महीनों में तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं को पहले चार माह तक वरीयता प्रदान की जाती है । कुपोषणग्रस्त बच्चों को भी वरीयता दी जाती है ।
गतिविधियाँ : कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित गतिविधियां संचालित की जाती हैं :

- पूरक पोषण प्रदान करना
- विटामिन-ए का घोल तथा आयरन और फॉलिक एसिड की गोलियों के साथ स्वास्थ्य परिचर्या सेवाएं प्रदान करना (यह प्रावधान छठी पंचवर्षीय योजना में किया गया था)।

पूरक पोषण 6 माह से 72 माह की आयु के बच्चों को दिया जाता है, जिसमें प्रतिदिन 300 कैलोरी तथा 10 ग्राम प्रोटीन प्रत्येक बच्चे को दिया जाता है । गंभीर रूप से कुपोषणग्रस्त बच्चों को प्रतिदिन 600 कैलोरी तथा 20 ग्राम प्रोटीन दिया जाता है । विटामिन-ए घोल तथा आयरन और फॉलिक एसिड की गोलियां भी दी जाती हैं । गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को पूरक पोषण के रूप में प्रतिदिन 600 कैलोरी तथा 20 ग्राम प्रोटीन युक्त आहार दिया जाता है । उन्हें आयरन और फॉलिक एसिड की गोलियां भी दी जाती हैं। पूरक पोषण पर होने वाली प्रति इकाई लागत भी समन्वित बाल विकास सेवा योजन के समान ही है ।

संगठनात्मक ढांचा : यह कार्यक्रम ग्राम / समुदाय स्तर पर स्थापित बालवाड़ियों के माध्यम से चलाया जाता है । इस योजना मे सबसे निचले स्तर पर बालवाड़ी कार्यकर्त्ता तथा परिचर (helper) काम करते हैं ।

22.3.4 व्यावहारिक पोषण कार्यक्रम (ए.एन.पी.)

व्यावहारिक पोषण कार्यक्रम शुरू में वर्ष 1962 में उड़ीसा तथा आंध्र प्रदेश में लागू किया गया । 1973 तक यह योजना पूरे देश में लागू कर दी गई । इस कार्यक्रम को आज तक का सबसे उत्तम पोषण कार्यक्रम माना जाता है, किन्तु प्रबन्धकीय असफलताओं के कारण इस कार्यक्रम से वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सके। यह कार्यक्रम प्रारम्भ से केन्द्रीय प्रायोजित योजना के रूप में चलाया गया, किन्तु अब इसका क्रियान्वयन राज्यों द्वारा किया जा रहा है । हाल ही के वर्षों में धारणा परिवर्तन के कारण अब यह कार्यक्रम विस्तार करने योग्य नहीं रह गया है तथा राज्यों द्वारा चलाए जा रहे अन्य कार्यक्रमों की तुलना में यह कार्यक्रम निम्न वरीयता का कार्यक्रम बन गया है । *(स्रोत : इण्डियन पेडियट्रिक्स, 1992, 29 : 1601-1613)*

उद्देश्य : इस कार्यक्रम के उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं :

- लोगों में अपने पोषणात्मक स्तर के बारे में चेतना पैदा करना
- पोषक खाद्यान्नों के उत्पादन तथा उपयोग को बढ़ावा देना, और
- खाद्यान्नों के स्थानीय उत्पादन के माध्यम से प्रभावित समूहों को पूरक पोषण प्रदान करना ।

इस कार्यक्रम का लक्ष्य समुदाय तथा व्यक्ति स्तर पर उन्हें इस बारे में आत्म-निर्भर बनाना है ।
लाभार्थी: कार्यक्रम निम्नलिखित वर्गों के लिए है :

- 3 - 6 वर्ष की आयु के बच्चे;
- गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली महिलाएं ।

गतिविधियाँ : व्यावहारिक पोषण कार्यक्रम में यह संकल्पना की गई है कि लोगों को अपने पोषणात्मक स्तर में सुधार के लिए पोषक भोजन का उत्पादन करने के लिए आत्मनिर्भर बनाया जाए तथा वह अपने भोजन का उपयोग भी स्वयं करें । मुर्गीपालन, बागवानी, मधुमक्खी पालन तथा गृह-वाटिका तथा पोषण शिक्षा आदि इस कार्यक्रम की प्रमुख गतिविधियाँ हैं।

संगठनात्मक ढाँचा : यह कार्यक्रम विकास खण्ड अधिकारी के सुपरविज़न में चलाया जाता है । ग्राम / समुदाय स्तर पर कार्यक्रम संबंधी गतिविधियों का संचालन परिचर की सहायता से बालवाड़ियों द्वारा किया जाता है ।

22.3.5 गेहूं आधृत पूरक पोषण कार्यक्रम (डब्ल्यू.एन.पी.)

गेहूं आधृत पूरक पोषण कार्यक्रम एक केन्द्रीय प्रायोजित योजना है, जिसको वर्ष 1986 में लागू किया गया। यह योजना, विद्यमान पोषण कार्यक्रमों का विस्तार करके अतिरिक्त लाभार्थियों को कवर करने के उद्देश्य से प्रारम्भ की गई, जिसमें आदिवासी क्षेत्रों, शहरी स्लम क्षेत्रों तथा पिछड़े क्षेत्रों के बच्चों, गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को शामिल किया गया। प्रारम्भ में इस कार्यक्रम में उन अतिरिक्त लाभानुभोगियों को कवर करने की योजना थी, जिन्हें समन्वित बाल विकास सेवा योजना के पूरक पोषण कार्यक्रम में कवर नहीं किया गया था। इस समय 16 राज्यों तथा 6 संघ राज्यों द्वारा इस योजना को लागू किया जा रहा है, जिसमें तीस लाख लाभार्थियों को कवर करने का लक्ष्य है।

(स्रोत : इण्डियन पेडियाऐट्रिक्स 1992, 29:1601-1613)।

उद्देश्य : इस कार्यक्रम का उद्देश्य विद्यमान पोषण कार्यक्रमों का विस्तार करके गेहूं आधृत पूरक पोषण के माध्यम से इस योजना में अतिरिक्त लाभार्थियों, अर्थात् स्कूल बच्चों तथा गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को कवर करना है।

लाभार्थी : उच्च मृत्यु दर वाले तथा पिछड़े क्षेत्रों, शहरी स्लम क्षेत्रों तथा पिछड़े ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में रह रहे अनुसूचित जाति समुदाय के स्कूल-पूर्व बच्चों, गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली महिलाएं इस कार्यक्रम के लाभार्थी हैं।

गतिविधियाँ : इस कार्यक्रम के अन्तर्गत स्कूल-पूर्व बच्चों, गर्भवती महिलाओं को पूरक पोषण प्रदान किया जाता है। इस योजना के दो घटक हैं, अर्थात् केन्द्र द्वारा वित्तपोषित घटक तथा राज्य द्वारा वित्तपोषित घटक।

1) **केन्द्र द्वारा वित्तपोषित घटक :** केन्द्र द्वारा प्रायोजित गेहूं आधृत पोषण कार्यक्रम के अन्तर्गत बच्चों को पूरक आहार में 300 कैलोरी तथा 10 ग्राम प्रोटीन दिया जाता है और गर्भवती महिलाओं तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं को आहार में 500 कैलोरी और 20 ग्राम प्रोटीन दिया जाता है। एक माह की अवधि में 25 दिन के लिए प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 75 पैसे की दर से सहायता अनुदान राशि दी जाती है। 75 पैसे में से 50 पैसे भारत सरकार द्वारा तथा 25 पैसे की राशि का वहन स्वयं राज्य सरकार द्वारा किया जाता है।

2) **राज्य सरकार द्वारा वित्तपोषित घटक :** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रारम्भ में राज्य सरकारों को रु.700 प्रति मेगाटन की रियायती दरों पर गेहूं उपलब्ध कराया जाता था, ताकि राज्य द्वारा कवर किए गए लाभार्थियों को पोषण कार्यक्रम के अन्तर्गत पूरक पोषण दिया जा सके। 1989 से राज्य सरकारों को कोई सहायता अनुदान नहीं दी जा रही है। किन्तु अब राज्यों को लोक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत रियायती दरों पर गेहूं दिया जाता है।

22.3.6 बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम (बी.एन.पी.)

बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम 1970-71 में प्रारम्भ किया गया। इसका संचालन पाँच राष्ट्रीय स्वैच्छिक संगठनों द्वारा संचालित बालवाड़ियों तथा डे-केयर केन्द्रों (day-care centres) द्वारा किया जाता है। इस कार्यक्रम को लगभग 5000 बालवाड़ियाँ चला रहीं हैं। यह कार्यक्रम भारत सरकार की गैर-योजना गतिविधि हैं तथा इसका विस्तार नहीं किया जा सकता। इस समय योजना के अन्तर्गत 2.29 लाख लाभानुभोगी लाभान्वित हो रहे हैं। *(स्रोत : इण्डियन पेडियाऐट्रिक्स 1992, 29:1601-1613)*।

उद्देश्य : इस कार्यक्रम का उद्देश्य स्कूल-पूर्व बच्चों के पोषणात्मक तथा स्वास्थ्य स्तर में सुधार हेतु उसकी आवश्यकताओं के अनुसार एक तिहाई कैलोरी तथा आधा हिस्सा प्रोटीन उपलब्ध कराना है।

लाभानुभोगी : तीन से पाँच वर्ष की आयु के बच्चे इस योजना से लाभान्वित होते हैं। निम्न आय वर्ग के बच्चों को प्राथमिकता दी जाती है।

गतिविधियाँ : कार्यक्रम के अन्तर्गत दिए जाने वाले पूरक पोषण आहार में 300 कैलोरी तथा 10 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन दिया जाता है। यह आहार पूरे वर्ष में 270 दिन दिया जाता है। पूरक पोषण देने के अतिरिक्त बच्चों का सामाजिक तथा भावनात्मक विकास संबंधी गतिविधियों का संचालन भी किया जाता है।

संगठनात्मक ढांचा : ग्राम / समुदाय स्तर पर इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए सबसे निचले स्तर पर बालवाड़ी कार्यकर्त्ता काम करते हैं।

बोध प्रश्न - 4

1) बच्चों को पूरक पोषण सेवाएं प्रदान करने वाले तीन कार्यक्रमों के नाम लिखें ।

....

....

2) निम्नलिखित कार्यक्रमों के अन्तर्गत वर्ष में कितने दिन पूरक पोषण आहार वितरित किया जाता है।

1) समन्वित बाल विकास सेवा योजना।

....

....

2) बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम।

....

....

22.4 सारांश

इस इकाई में आपने सभी राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों तथा माताओं और शिशुओं के विकास संबंधी अन्य कार्यक्रमों के बारे में सीखा है। आपने संगठन की गतिविधियों तथा प्रत्येक कार्यक्रम को लागू कराने वाले कार्मिकों के बारे में जानकारी प्राप्त की हैं। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि सामान्य बीमारियों पर प्रभावकारी ढंग से कैसे नियंत्रण पाया जा सकता है तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों के सफल संचालन के लिए किस प्रकार के समर्थन की आवश्यकता होती है।

22.5 शब्दावली

ड्रग वितरण केन्द्र : ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ मलेरिया का प्रकोप अधिक होता है तथा स्वास्थ्य स्टाफ की कमी होती है, वहाँ स्कूल के शिक्षक अथवा अन्य किसी ग्रामीण लीडर को मलेरिया की दवाई देने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। इन्हें ड्रग वितरण केन्द्र कहा जाता है।

टीके से उपचार योग्य रोग : डिप्थीरिया, काली खाँसी, टिटेनस, क्षयरोग, पोलियो तथा खसरे जैसे रोग, जिनकी रोकथाम टीका (वेक्सीन) लगाकर की जा सकती है।

शीतागार शृंखलाएं (कोल्ड चेन) : टीकों के उत्पादन होने से लेकर उनका प्रयोग किए जाने तक कम तापमान में रखना पड़ता है। इस पूरी अवधि में कोल्ड चेन प्रणाली (निरन्तर शीत व्यवस्था) के माध्यम से तापमान को कम बनाये रखा जाता है।

स्वास्थ्य जनशक्ति विकास : स्वास्थ्य कार्मिकों की कार्यक्षमताओं को यथासंभव अधिक से अधिक विकसित करना।

सामुदायिक भागीदारी : यह वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र में रहने वाले लोग आवश्यकता के अनुसार लक्ष्यों का पता लगाने, कार्यक्रम की योजना बनाने तथा योजना को क्रियान्वित कर स्वयं अपेक्षित लक्ष्य प्राप्त करते हैं।

22.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1) एक से पाँच वर्ष की आयु के बच्चे, गर्भवती महिलाएं, स्तनपान कराने वाली महिलाएं, परिवार नियोजन की स्थायी विधियों को स्वीकार करने तथा आई.यू.डी. लगवाने वाली महिलाएं ।

2) 1) छः मास से एक वर्ष के बीच 1,00,000 आई. यू. विटामिन-ए ।

   2) एक से पाँच वर्ष की आयु तक प्रत्येक छमाही में 2,00,000 आई.यू. विटामिन ए ।

3) निम्नलिखित में से कोई भी दो :

   1) अपर्याप्त सामुदायिक भागीदारी
   2) अनुपयुक्त रिकार्डिंग प्रणाली
   3) प्रतिरक्षण संबंधी अपर्याप्त उपकरण
   4) पहुँच का अभाव

4) निम्नलिखित में से कोई भी चार :

   1) क्षयरोग
   2) पोलियो
   3) काली खाँसी
   4) डिप्थीरिया
   5) खसरा
   6) टिटेनस

बोध प्रश्न - 2

1) निम्नलिखित में से कोई भी तीन :

   1) केसों का शीघ्र निदान
   2) गैर-सरकारी संगठनों को भागीदारी हेतु प्रोत्साहन
   3) केसों का उपचार
   4) कार्मिकों को प्रशिक्षण
   5) रोगियों का पुनर्वास

2) निम्नलिखित में से कोई भी तीन :

   1) रोग की निगरानी
   2) रक्त तथा रक्त उत्पादों की जाँच
   3) सूचनाओं का पुन: प्रसारण
   4) खाद्य पदार्थों के उत्पादन संबंधी दिशा-निर्देश
   5) रक्त बैंकों में रक्त की जाँच

बोध प्रश्न - 3

1) न्यूनतम मानसिक स्वास्थ्य परिचर्या की उपलब्धता सुनिश्चित करना; सामान्य स्वास्थ्य परिचर्या के लिए मानसिक, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी का अनुप्रयोग; सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देना, समुदाय को आत्मनिर्भर बनाने हेतु प्रेरित करना ।

2) निम्नलिखित में से कोई भी तीन :

   1) केसों का पता लगाना,
   2) उपचार तथा केस पर अनवर्ती कार्यवाही,
   3) स्वास्थ्य शिक्षा,
   4) बी.सी.जी. का टीका ।

3) 1) परजीवी नाशक उपाय,
   2) मच्छर नाशक उपाय,
   3) लारवा नाशक उपाय ।

बोध प्रश्न - 4

1) निम्नलिखित में से कोई भी तीन :

   1) समन्वित बाल विकास सेवा योजना
   2) मध्याह्न भोजन कार्यक्रम
   3) बालवाड़ी योजना कार्यक्रम
   4) गेहूं आधृत पोषण कार्यक्रम
   5) व्यावहारिक पोषण कार्यक्रम
   6) विशेष पोषण कार्यक्रम

2) समन्वित बाल विकास योजना : 300 दिन / प्रतिवर्ष

   बालवाड़ी पोषण कार्यक्रप : 200 दिन / प्रतिवर्ष

इकाई 23 आय सृजन संबंधी कार्यक्रम

इकाई की रूपरेखा

23.1 प्रस्तावना

23.2 विशेष कार्यक्रमों का क्रम विकास

- 23.2.1 कार्यक्रमों के प्रकार
- 23.2.2 आय सृजन कार्यक्रम से पूर्व अवधि
- 23.2.3 चिंतन में परिवर्तन तथा आय सृजन कार्यक्रमों का प्रादुर्भाव

23.3 न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (Minimum Needs Programme)

- 23.3.1 न्यूनतम आवश्यकताओं तथा बुनियादी आवश्यकताओं संबंधी अवधारणा
- 23.3.2 न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों का प्रादुर्भाव

23.4 क्षेत्र विकास कार्यक्रम (Area Development Programme)

- 23.4.1 कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम (Command Area Development Programme)
- 23.4.2 सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम
- 23.4.3 मरुस्थल विकास कार्यक्रम (Desert Development Programme)
- 23.4.4 पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम (Hill Area Development Programme)

23.5 रोजगार सृजन कार्यक्रम (Employment Generation Programmes)

- 23.5.1 छठी पंचवर्षीय योजना से पूर्व की रोज़गार सृजन योजनाएं
- 23.5.2 राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme)
- 23.5.3 ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (Rural landless Employment Generation Programme)
- 23.5.4 जवाहर रोजगार योजना

23.6 ग्रामीण निधर्नों के लिए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम

- 23.6.1 छठी पंचवर्षीय योजना से पूर्व के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम
- 23.6.2 समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme)
- 23.6.3 ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम (डवाकरा)
- 23.6.4 ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राइसेम)

23.7 सारांश

23.8 शब्दावली

23.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

23.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में आपको देश में संचालित स्वास्थ्य कार्यक्रमों के साथ-साथ पोषण कार्यक्रमों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई होगी। व्यक्ति का जीवन स्तर उसकी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। भोजन, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता आदि कुछ ऐसे पक्ष हैं जो व्यक्ति के जीवन स्तर को सुनिश्चित करते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा प्रदत्त कुछ अथवा अधिकांश सेवाएं, सामग्री तथा सेवाएं खरीदने की लोगों की क्षमता आदि पक्ष भी महत्वपूर्ण है, जो वस्तुओं तथा सेवाओं पर व्यक्ति की कमान का निर्धारण करते है। इस प्रकार लोगों की क्रय - क्षमता का अनुमान लगाने के लिए आय एक प्रकार से क्रय का सूचकांक बन जाती है। इस प्रकार सरकार को सबसे अधिक गरीब लोगों पर ध्यान केन्द्रित करना होता है तथा अधिकांश निर्धन जनता गाँवों में रहती है।

व्यक्ति के जीवित रहने के लिए भोजन तथा पोषण उसकी बुनियादी आवश्यकताएं हैं। व्यक्ति द्वारा भोजन तथा अन्य वस्तुएं और सेवाएं जैसे शिक्षा, आवास आदि, प्राप्त करने के लिए कई तरीके हैं। व्यक्ति या तो इनको स्वयं खरीद सकता है और संभवतया सरकार ये सुविधाएं प्रदान कर सकती है। आमतौर पर एक गह से दूसरी राह निकलती है। उदाहरण के लिए, सूखाग्रस्त अथवा अकाल की स्थिति में क्रय - विक्रय की निजी प्रक्रियाएं असफल हो जाती हैं और प्रभावित लोगों को भोजन आदि प्रदान करने के लिए सरकार को क़दम उठाने पड़ते हैं। व्यक्ति किसी भी प्रकार भोजन तथा अपनी अन्य बुनियादी आवश्यकताएं जैसे शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाएं, पूरी करे, किन्तु इस रूप को नाकारा नहीं जा सकता। ये सभी चीजें उसके व्यक्तित्व तथा सामाजिक विकास और उसकी क्षमताओं के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं।

भोजन तथा स्वास्थ्य सेवाओं को प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण तरीका यह है कि व्यक्ति अपनी आय में से कुछ धनराशि देकर बदले में इसे प्राप्त कर ले। इस प्रकार आय के स्रोत का होना बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। लोग सम्पत्ति के मापन से, अथवा अपने लिए काम करके अथवा दूसरों के लिए काम करके, अथवा दूसरों की श्रमशक्ति को अन्य लोगों को किराये पर देकर आय अर्जित कर सकते है।

गरीब लोग, जिनके पास अपनी सम्पत्ति बहुत कम होती है अथवा बिल्कुल नहीं होती, उनके लिए रोज़गार के अवसर ही उनकी आय के एकमात्र स्रोत हो सकते हैं। किन्तु रोजगार सदा उपलब्ध नहीं होता। कई बार मजदूरों की माँग बहुत कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त रोजगार मौसम के हिसाब से मिलता है। रोजगार अवसरों संबंधी इन अस्थिर स्थितियों के कारण लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए सरकार को कदम उठाने पड़ते है तथा सरकार द्वारा गरीबी कम करने के प्रयास किए जाते हैं।

देश में रोजगार के सर्वाधिक अवसर प्रदान करने वालों में सरकारी उपक्रम तथा सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियां है। उदाहरण के लिए, भारतीय रेलवे रोजगार के सबसे अधिक अवसर प्रदान करने वाली संस्था है। किन्तु गांवों में न तो सरकारी कम्पनियां ही है और न ही विभागीय उपक्रम काम करते हैं। इसलिए ऐसे कार्यक्रम तथा योजनाएं बनाने की आवश्यकता होती है जिनके माध्यम से ग्रामीण निर्धनों को रोजगार देने में सहायता मिल सके तथा गांवों में गरीबी को कम किया जा सके। यही स्कीमें इस इकाई में चर्चा का विषय हैं। इस इकाई की पाठ्यसामग्री में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों के अर्थ ब्लाक के अन्त में परिशिष्ट - । में स्पष्ट किए गए हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- भारत सरकार द्वारा प्रारम्भ किए गए आय सृजन तथा रोजगार कार्यक्रमों की विवेचना कर सकेंगे
- भारत में गरीबी - उन्मूलन राजनीतियों के विकास तथा विकास क्रम संबंधी विवेचना कर सकेंगे
- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम आवश्यकता तथा क्षेत्र आधारित विकास कार्यक्रमों की विवेचना कर सकेंगे, और
- इन कार्यक्रमों की कार्यप्रणाली का मूल्यांकन तथा आंकलन कर सकेंगे।

23.2 विशेष कार्यक्रमों का क्रम विकास

जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है ग्रामीण निर्धनों तथा बेरोजगारों के लिए अनेक कार्यक्रम हैं। कुछ ऐसे कार्यक्रम भी हैं जो भौगोलिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों के लिए हैं। किन्तु यह कार्यक्रम उस समय अस्तित्व में नहीं थे जब भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। इनका विकास कैसे हुआ ? ऐसी कौन सी नीति अथवा सिद्धांत थे, जिसके माध्यम से इन कार्यक्रमों का विकास हुआ ? ऐसे कई प्रश्न है जिनके बारे में हम इस अनुच्छेद में चर्चा करेंगे ?

23.2.1 कार्यक्रमों के प्रकार

कई प्रकार के आर्थिक तथा सामाजिक कार्यक्रम हैं । कुछ पूरी तरह से सामाजिक कार्यक्रम हैं, जो उपभोग-उन्मुखी है तथा जिनका लक्ष्य उत्पादन को बढ़ाना नहीं है । उदाहरण के लिए, समन्वित बाल विकास सेवा योजना एक ऐसा ही कार्यक्रम है । स्वास्थ्य कार्यक्रम, प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम तथा पोषण कार्यक्रम भी इसी श्रेणी में आते हैं ।

कुछ अन्य प्रकार के कार्यक्रम है, जिनका सम्बन्ध उत्पादन में वृद्धि करने से है । इनका उद्देश्य भूमि, श्रमिकों तथा किसानों को और अधिक उत्पादनशील बनाना है । सिंचाई संबंधी कार्यक्रम, इस वर्ग में आते हैं। कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए 1960 के दशक में चालू किया गया समन्वित क्षेत्र विकास कार्यक्रम भी इसी वर्ग में आता है । यह कार्यक्रम हरित क्रांति (Green Revolution) का पूर्वगामी कार्यक्रम था, जो 1960 के दशक के मध्य में बृहद स्तर पर चलाया गया तथा जिसमें उच्च उत्पादन क्षमता वाले बीज, नाइट्रोजन युक्त उर्वरक तथा सिंचाई के लिए अधिक जल उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया । तीसरे प्रकार के कार्यक्र को संस्था उन्मुखी कार्यक्रम (institution oriented programme) भी कहा जा सकता है। इन कार्यक्रमों उद्देश्य संस्थागत शैली तथा प्रबन्धों में परिवर्तन तथा सुधार लाना है । सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पंचायती राज व्यवस्था आदि इस प्रकार के कार्यक्रमों के उदाहरण हैं। भूमि सुधार संबंधी कार्यक्रम, जिससे भू के स्वामित्व संबंधी शैली में भी परिवर्तन करने की बात है, भी इसी प्रकार का कार्यक्रम है ।

कुछ कार्यक्रम ऐसे होते है जिन्हें इनमें से किसी भी श्रेणी में नहीं रखा जा सकता । उदाहरण के लिए, हम प्राय: यह सोचते है कि पोषण कार्यक्रम एक प्रकार का "उपभोग" कार्यक्रम है । किन्तु जहां तक पर्याप्त पोषण से श्रमिकों की उत्पादन क्षमता में सुधार आने का सम्बन्ध है, उस दृष्टि से इस कार्यक्रम को "उत्पादन" कार्यक्रम भी समझा जा सकता है । इसी प्रकार भूमि सुधार कार्यक्रम, जो संस्थागत कार्यक्रम है, से भूमि की समग्र उत्पादक क्षमता में सुधार हो सकता है इसलिए इसे उत्पादकता कार्यक्रमों की श्रेणी में भी रखा जा सकता है ।

जिन कार्यक्रमों के बारे में हम इस इकाई में चर्चा करेंगे वह कार्यक्रम मुख्यतया उस स्थिति तक "उपभोग" कार्यक्रम की श्रेणी में आते हैं जहां तक वह पोषण स्तर, उपभोग, शिक्षा तथा स्वास्थ्य स्तरों को ऊंचा उठाने में मदद करते हैं । किन्तु मूलत: यह उत्पादकता कार्यक्रम है, क्योंकि इनका उद्देश्य संपदा तथा रोजगार प्रदान करके उत्पादकता में वृद्धि करना है तथा आय - सृजन करना है । जिन कार्यक्रमों को हम क्षेत्र आधारित कार्यक्रम समझते हैं, उन कार्यक्रमों का उद्देश्य भौगोलिक रूप से पिछड़े भूमि क्षेत्रों में उत्पादन की वृद्धि करना है ।

23.2.2 आय सृजन कार्यक्रमों से पूर्व अवधि

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तत्काल पश्चात देश में कोई आय सृजन कार्यक्रम लागू नहीं था । जो कार्यक्रम उस समय लागू थे वह मुख्यतया खाद्यान्नों तथा सिंचाई संबंधी थे, जिनको गरीबी हटाने तथा रोजगार के अवसर जुटाने की अपेक्षा उत्पादन में वृद्धि करने पर अधिक केन्द्रित किया गया था । 1950 में पहली पंचवर्षीय योजना में दो महत्वपूर्ण काम किए गए । इस योजना में एक लक्ष्य "अधिक अन्न उपजाओ अभियान" (Grow more food Campaign) रखा गया था । यह अभियान मूलत: दूसरे विश्व युद्ध के समय खादयान्नों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए चलाया गया। दूसरा महत्वपूर्ण संस्थागत कार्यक्रम के रूप में, जिसे 1952 में संचालित किया गया तथा इसे सामुदायिक विकास कार्यक्रम कहा गया । यह कार्यक्रम पुरोगामी प्रयासों का प्रतिफलन ही था, जिनमें टैगोर की सिरीनिकेतन परियोजना अथवा स्पेंसर हेच (Spencer Hatch) द्वारा प्रारम्भ की गई मारथण्डम (Marthandam) परियोजना जैसे ग्राम विकास कार्यक्रम सम्मिलित थे। दूसरी पंचवर्षीय योजना में एक और महत्वपूर्ण; संस्थागत कार्यक्रम चलाया गया । यह पंचायती राज संस्था थी । पंचायती राज कार्यक्रम तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रम सिर्फ उपभोग तथा उत्पादन स्तर को बढ़ाने के लिए तैयार नहीं किया गया, जिसमें सूचना, ज्ञान, बीज, ऋण आदि संबंधी समन्वित पैकेज का प्रावधान किया गया । यह कार्यक्रम किसानों के लिए था जिसका उद्देश्य कृषि के क्षेत्र में हुए अनुसंधान को किसानों तक पहुंचा कर उन्हें लाभान्वित किया जाए । यह प्रयोगशाला से भूमि तक (Lab-to-land) कार्यक्रम था । यह कार्यक्रम उत्पादकता कार्यक्रम था । किन्तु इसका सीधा सम्बन्ध उपभोग को बढ़ावा देने तथा आय सृजन से नहीं था। ऐसा कार्यक्रम बाद में प्रारम्भ किया गया ।

ग्रामीण क्षेत्रों में असमानता दूर करने का मुख्य प्रयास भूमि सुधारों के माध्यम से हुआ जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ भूमि के स्वामित्व में परिवर्तन लाने तथा पट्टे की अवधि में सुरक्षा प्रदान करने जैसे प्रयास किए गए। किन्तु उस स्थिति तक गरीबी दूर करने अथवा गांवों में बेरोजगारी दूर करने या भूमि के पुन: वितरण आदि पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया ।

योजना प्रक्रिया के प्रारम्भ में वृद्धि तथा वितरण संबंधी विभिन्न संभावनाओं पर विचार किया गया, पुन:वितरण से वृद्धि हो सकती है, तथा पुन:वितरण से पहले ही वृद्धि करना संभव है । किन्तु बाद वाली संभावना को ही चुना गया । अब महसूस किया गया की गरीब देश में केवल गरीबी का ही पुन: वितरण किया जा सकता है । लाभ का वितरण करने से पहले लाभ को बढ़ाना होगा । इसलिए आय के स्रोतों का पुनर्विभाजन करने से पहले यह आवश्यक समझा गया कि देश की पूरी अर्थव्यवस्था का पुन:वितरण का विकास किया जाए ।

यह कार्यनीति पहली दोनों योजनाओं, की कार्यनीतियों, विशेषकर दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं में, स्पष्ट की गई। इस योजना में भारी उद्योगों पर ध्यान केन्द्रित किया गया । इसके अतिरिक्त इनमें यह संकल्पना भी की गई कि सरकार इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाए और इसके संगठनात्मक ढाँचे जैसे महत्वपूर्ण सेक्टर पर नियंत्रण करे ।

इसके पीछे यह संभावना व्यक्त की गई कि इससे वृद्धि के लाभ स्वत: जनता के गरीब वर्गों तक पहुंचने आरम्भ हो जायेंगे । एक बार तो ऐसा लगा कि देश में वृद्धि बढ़ने से सभी को इसका लाभ मिलने लगेगा किन्तु ऐसा हुआ नहीं । इस कार्यनीति की दरारें 1960 के ही दशक में सामने आने लगी । 1963 - 64 तथा 1964 - 65 के वर्षों में लगातार दो बार सूखा पड़ा । इससे खाद्यान्नों के उत्पादन में गिरावट आई । भारी स्तर पर अनाज विदेशों से आयात करना पड़ा । औद्योगिक क्षेत्र में यह अनुभव किया गया कि अपनायी गई औद्योगिक नीति का परिणाम यह हुआ है कि आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण अकुशल लोगों के हाथों में होने लगा तथा सरकारी निवेश में शिथिलता आने लगी। कृषि उत्पादन में आई इस कमी के परिणामस्वरूप 1966 -67 में हरित क्रांति लाने की कार्यनीति अपनाई गई । जैसा कि हमने उल्लेख किया है हरित क्रांति एक उत्पादन - उन्मुखि कार्यनीति थी । दशक की समाप्ति के आस-पास कुछ ऐसी स्थितियां आई जिन्होंने सरकारी क्षेत्र के विचार को बदल दिया तथा यही से आय सृजन और रोजगार के अवसर प्रदान करने वाले कार्यक्रमों की दिशा में प्रयास प्रारम्भ हुआ ।

23.2.3 चिंतन में परिवर्तन और आय सृजन कार्यक्रमों का प्रादुर्भाव

1960 के दशक के अन्त में यह स्पष्ट हो गया कि हरित क्रांति का लाभ भी गांवों में सभी तक सही पहुंच सका है। हरित क्रान्ति से देश को खाद्यान्नों के मामले में यद्यपि आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सफलता तो मिली किन्तु अभी भी ऐसे गरीब किसानों / मजदूरों की बहुत बड़ी तादाद शेष थी जिनके पास खाद्यान्न खरीदने की क्षमता नहीं थी। रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करने के बारे में भी हरित क्रान्ति से कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा । इसके अतिरिक्त मशीनीकरण की प्रक्रिया भी अभी तक खेतों तक नहीं पहुंची ।

1970 के दशक के प्रारम्भ में ही गरीबी की गहनता का अनुमान लगाने के लिए सांख्यिकीय प्रयास किए गए, जिससे गरीबी की एक रेखा निश्चित की जा सके तथा गांवों में गरीबी किस प्रकार की है उसका पता लगाया जा सके । यह प्रयास अवधि 1961 दशक के अंत में प्रारम्भ हो गए थे किन्तु सक्रिय प्रयास 70 के दशक के प्रारम्भ में ही हुए । अलग-अलग अनुमानों संबंधी विवरणों में यद्यपि परस्पर अन्तर था, किन्तु सभी आंकलनकर्ता इस बात पर सहमत थे कि गांवों में रहने वाली अधिकांश जनसंख्या किसी भी सुपरिभाषित गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही है । अधिकतर विशेषज्ञों का मत था कि गरीबी रेखा को व्यक्ति अथवा परिवार के लिए अपेक्षित न्यूनतम पोषण स्तर तथा उस पर होने वाले व्यय के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया जाना चाहिए । गरीबी रेखा के आंकलन संबंधी किए गए ये प्रयास, गरीबी के बारे में देश की चिन्ता के द्योतक थे।

एक और स्रोत जहाँ एक साथ चिंतन परिवर्तन प्रारम्भ हुआ वह विकासात्मक आर्थिक (Development Economics) और विकासात्मक अध्ययनों (Development Studies) का क्षेत्र था । तीनो बातों पर जोर दिया गया । पहला यह कि अमरीका तथा ब्रिटेन जैसे विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों (अथवा भारत जैसे विकासशील देश) के पिछड़ेपन के विकास पर सीधे-सीधे ध्यान केन्द्रित करने की बजाय देश के भीतर, विशेषतया भारत जैसे देश के भीतर व्याप्त असमानताओं तथा गरीबी पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए । दूसरे वृद्धि तथा विकास में अन्तर करने की आवश्यकता पर बल दिया गया –''वृद्धि'' में पूरा ध्यान सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी.) तथा इसके आकार पर होता है, जबकि ''विकास'' को वृद्धि के साथ-साथ परिवर्तन : धारणाओं में परिवर्तन, संस्थाओं में परिवर्तन, आय के वितरण तथा जीवन-स्तर में परिवर्तन के संदर्भ में भी देखा जाता है । तीसरे, स्वास्थ्य, शिक्षा, मृत्यु दर आदि गैर-आर्थिक संकेतकों को विकास के संकेतक के रूप में समझा जाना चाहिए तथा व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताओं पर बल दिया जाना चाहिए ।

अंतिम मुद्दे में जीवनयापन के न्यूनतम स्तर तथा गरीबी के पूर्ण स्तर को स्पष्ट करने पर बल दिया गया है । अन्य विकासशील देशों की भाँति भारत में भी इन विचारों को बल मिला । आगामी अनुच्छेद में हम न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, गरीबी निर्धारण कार्यक्रम, रोजगार कार्यक्रम तथा क्षेत्र आधारित कार्यक्रमों आदि का एक-एक करके वर्णन करेंगे । यह सब कार्यक्रमों का उद्देश्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से लोगों की आय सृजन की क्षमता में वृद्धि करना है। अपनी भी पूरी चर्चा में हम ग्रामीण क्षेत्रों पर विशेष रूप से बल देंगे ।

23.3 न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (Minimum Needs Programme)

भारत की विकासात्मक नीति का प्रमुख लक्ष्य अभी तक सामाजिक न्याय पर आधारित वृद्धि रहा है । जिस स्रोत के माध्यम से इस लक्ष्य को प्राप्त किया गया है वह स्रोत क्रमिक पंचवर्षीय योजनाएं हैं । 1960 तथा 1970 के दशक में यह महसूस किया गया कि वृद्धि के लाभ पूरी तरह से समाज के गरीब वर्गों तक नहीं पहुँच पाए हैं । 1970 के दशक के प्रारम्भ में जब पाँचवी पंचवर्षीय योजना तैयार की जा रही थी उस समय ग्रामीण क्षेत्रों की आधी जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे रहकर जीवनयापन कर रही थी । इस प्रकार ''न्यूनतम आवश्यकताओं की अवधारणा'' को इस योजना में औपचारिक स्वरूप प्रदान किया गया । इसे ग्रामीण विकास का महत्वपूर्ण साधन समझा गया ।

23.3.1 न्यूनतम आवश्यकताओं तथा बुनियादी आवश्यकताओं संबंधी अवधारणा

न्यूनतम आवश्यकताओं संबंधी अवधारणा को यद्यपि औपचारिक रूप से पाँचवी पंचवर्षीय योजना में स्पष्ट किया गया, किन्तु तब यह अवधारण कोई नई नहीं थी । 1957 में पन्द्रहवें भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा यह सिफारिश की गई कि न्यूनतम मजदूरी (Minimum wages) को आवश्यकता पर आधारित किया जाए। 1962 में पीताम्बर पंत के निर्देश पर योजना आयोग द्वारा एक दस्तावेज तैयार किया गया, जिसमें वृद्धि की न्यूनतम दर पर पहुँचने के लिए उपभोग के न्यूनतम स्तर संबंधी अपेक्षाओं को निश्चित किया गया । इस दस्तावेज में जीवन के न्यूनतम स्तर अथवा न्यूनतम आवश्यकताओं संबंधी एप्रोच को भी परिभाषित किया गया ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (आई.एल.ओ.) द्वारा 1976 में ''रोजगार, आय वितरण तथा नागरिक प्रगति'' विषय पर आयोजित त्रिपक्षीय विश्व सम्मेलन में औपचारिक रूप में बुनियादी आवश्यकताओं संबंधी अवधारणा प्रस्तुत की गई । ''रोजगार, वृद्धि तथा बुनियादी आवश्यकताएं'' विषय पर 1977 में प्रकाशित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के दस्तावेज में भी बुनियादी आवश्यकताओं की संकल्पना को स्पष्ट किया गया है । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार बुनियादी आवश्यकताओं की संतुष्टि के साथ निम्नलिखित दो कारक जुड़े हुए हैं :

- परिवार के निजी उपभोग हेतु भोजन, आवास तथा वस्त्रों संबंधी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति होना, जिनमें कुछ घरेलू साज-सामान भी सम्मिलित हैं
- सामाजिक उपभोग की आवश्यक सेवाओं तक पहुँच होना, जैसे सुरक्षित पेय जल, स्वच्छता, सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था, स्वास्थ्य और शिक्षा

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार बुनियादी आवश्यकताओं के अन्य प्रमुख घटकों में निम्नलिखित घटक शामिल होते हैं : निर्णायक प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी, बुनियादी आवश्यकताओं को ''बुनियादी मानव अधिकारों'' के फ्रेमवर्क में सम्मिलित करना, पूर्ण रोजगार, आर्थिक वृद्धि की तीव्र गति दर, रोजगार की क्वालिटी तथा काम करने की शर्तों में सुधार तथा सामाजिक न्याय के स्रोतों का पुन:वितरण ।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना के लिए प्रस्तुत प्रस्ताव-पत्र में यह कहा गया है कि गरीबी उत्थान के लिए बहुआयामी अभिगम की तथा न्यूनतम आवश्यकताओं संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है । इसमें यह प्रेक्षण किया गया है कि गरीबों को रोजगार प्रदान कर देने मात्र से ''न्यूनतम जीवन स्तर'' के लिए अपेक्षित अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुओं को खरीद पाने की उनकी क्षमता ही पर्याप्त नहीं है । इसलिए रोजगार तथा आय सृजन उपायों को सामाजिक उपभोग की तथा निवेश का समर्थन प्रदान करना होगा, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, पेय जल, आवास, संचार तथा बिजली ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा दिया गया बुनियादी आवश्यकताओं संबंधी कार्यक्रम काफी व्यापक है जिसमें सामाजिक तथा प्राइवेट उपभोग के साथ-साथ मानव अधिकारों, कार्यक्रम में लोगों की भागीदारी, रोजगार तथा न्यायपूर्ण आर्थिक वृद्धि की बात कही गई है । न्यूनतम आवश्यकताओं संबंधी कार्यक्रम में सामाजिक उपभोग पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है ।

23.3.2 न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों का प्रादुर्भाव

ऊपर हमने यह पढ़ा कि न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का आधार क्या है तथा भारत में इसे किस प्रकार क्रियान्वित कराया गया । वस्तुत: ''न्यूनतम आवश्यकता'' एक संकल्पना है जिसे विभिन्न उद्देश्यों, कार्यनीतियों तथा लक्ष्यों को समन्वित कर एक औपचारिक स्वरूप प्रदान किया गया है । न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (एम.एम.पी.), अनेक अन्य कार्यक्रमों का हिस्सा है तथा इस कार्यक्रम के लिए कोई अतिरिक्त व्यय का प्रावधान नहीं किया जाता है ।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को निम्नलिखित पक्षों पर केन्द्रित किया गया है :

1) चौदह वर्ष की आयु के बच्चों को उनके घर के निकट प्रारम्भिक शिक्षा संबंधी सार्वजनिक सुविधाएं प्रदान करना।

2) सभी क्षेत्रों में समान रूप से ग्रामीण स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराना, जिनमें औषधियों, परिवार नियोजन, पोषण, बीमारियों का शीघ्र निदान तथा रैफरल (संदर्भ) सेवाएं सम्मिलित हैं।

3) सुरक्षित पेय जल के अभाव से ग्रस्त गाँवों में पेय जल की आपूर्ति सुनिश्चित करना ।

4) 1,500 अथवा अधिक आबादी वाले प्रत्येक गाँव में पक्की सड़कों की व्यवस्था करना ।

5) ग्रामीण क्षेत्रों के भूमिहीन मजदूरों को मकान हेतु विकसित स्थान उपलब्ध कराना ।

6) शहरी मलिन बस्तियों में पंजीकरण संबंधी सुधार करना ।

7) 30-40 प्रतिशत ग्रामीण जनता को सम्मिलित करते हुए ग्रामीण क्षेत्रों का विद्युतीकरण करना।

पंचवर्षीय योजना के मसौदे में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के लिए रु.2,803 करोड़ की राशि का प्रावधान किया गया । इसमें सम्मिलित घटकों में से सात का संबंध ग्रामीण जनसंख्या से, प्रारम्भिक शिक्षा का प्रावधान ग्रामीण तथा शहरी, दोनों के लिए किया गया । मूलत: यह कार्यक्रम ग्रामीण जनता के लिए था और स्लम क्षेत्रों में सुधार का कार्यक्रम शहरी क्षेत्रों के लिए था ।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में न्यूनतम आवश्यकताओं का संकल्पना को साकार रूप मिला तथा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को मानव संसाधन विकास के क्षेत्र में अनिवार्य निर्देश समझा गया । इस योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के माध्यम से गरीबों के उपभोग स्तर को ऊंचा उठाया गया जिससे मजदूरों या कामगारों की उत्पादन क्षमता में सुधार हुआ। इस प्रकार न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को उपभोग कार्यक्रम के साथ-साथ अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादक कार्यक्रम भी कहा जा सकता है । छठी पंचवर्षीय योजना में उन सभी घटकों को शामिल किया गया जो पाँचवी योजना में शामिल थे, किन्तु पोषण कार्यक्रम को अलग

पहचान दी गई। इस प्रकार पोषण कार्यक्रम एक अलग घटक बन गया। इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में वितरण करके इसमें प्रौढ़ शिक्षा को भी शामिल किया गया तथा प्रौढ़ शिक्षा के लिए अलग से बजट निर्धारित किया गया। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के लिए छठी पंचवर्षीय योजना में कुल रु .5,807 करोड़ की राशि का प्रावधान किया गया, जिसमें से रु. 4,907 करोड़ की राशि राज्यों की योजनाओं में तथा रु. 833 करोड़ की राशि केन्द्रीय योजना के लिए रखी गई।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत तीन और घटकों को जोड़ दिया गया। ये घटक इस प्रकार थे: ग्रामीण घरेलू खाना पकाने की ऊर्जा (Rural domestic Cooking energy), जन वितरण प्रणाली तथा ग्रामीण स्वच्छता। सातवीं पंचवर्षीय योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के लिए मूलतः रु. 11,546 करोड़ की राशि का प्रावधान किया गया, जिसमें से रु.164 करोड़ की राशि केन्द्रीय योजना के लिए थी। बाद में जोड़े गए इन तीनों घटकों के लिए वार्षिक आधार पर व्यय राशि का प्रावधान किया गया।

बोध प्रश्न - 2

1) न्यूनतम आवश्यकताओं की संकल्पना, बुनियादी आवश्यकताओं की संकल्पना से किस प्रकार भिन्न हैं।

....

....

....

....

....

....

2) सातवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण क्षेत्रों के लिए न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित घटकों की सूची बनाएं। पाँचवी योजना में कौन कौन से घटक शामिल किए गए ?

....

....

....

....

....

23.4 क्षेत्र विकास कार्यक्रम (Area Development Programme)

1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम (सी.डी.पी.) प्रारम्भ किया गया था। 1960 के अंत तक यह महसूस किया जाने लगा कि जिन उद्देश्यों से यह बहु-उद्देशीय कार्यक्रम चालू किया गया, वह उद्देश्य पूरे नहीं हुए हैं। इसलिए अन्य कार्यक्रमों के साथ-साथ 1970 के दशक में कुछ क्षेत्र विकास कार्यक्रम भी प्रारम्भ किए गए। यही वह क्षेत्र विकास कार्यक्रम हैं जिनके बारे मे हम इस अनुच्छेद में चर्चा करेंगे।

23.4.1 कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम (Command Area Development Programme)

कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए जल एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, इसलिए जल का प्रभावी तथा कुशल

ढंग से उपयोग सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम (सी.ए.डी.पी.) प्रारम्भ किया गया। पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए कार्यक्रम अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम 1975 में तेरह राज्यों में 50 सिंचाई परियोजनाएं चला कर केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीम के रूप में प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य अधिक सिंचाई वाला तथा मध्यम सिंचाई की आवश्यकता वाले चुने हुए क्षेत्रों में सिंचाई संबंधी उपलब्ध स्रोतों की उपयोगिता में सुधार लाकर कृषि उत्पादन को बढ़ावा देना था। अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने के लिए सभी जगह समान रूपों में अपनाये जाने की आवश्यकता थी, इसलिए राज्यों से कहा गया कि वह संबंधित परियोजना के लिए निर्देशित क्षेत्र विकास अधिकारियों की नियुक्ति करें। राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा 1976 में अपनी रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया कि सभी कमान क्षेत्रों में एकीकृत ढंग से भूमि का विकास किया जाना चाहिए।

कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार से थे :

1) सिंचाई परियोजना से जुड़े निर्देशित क्षेत्रों से जहाँ भूमि तथा जल के संभावित प्रयोग और वास्तविक प्रयोग में अन्तराल है, वहाँ भूमि प्रबन्धन तथा जल प्रबन्धन की स्थिति को बेहतर बनाकर कृषि उत्पादन को अधिकतम करना।

2) यह सुनिश्चित करना कि उत्पादन वृद्धि के लिए अपेक्षित आवामों (inputs) की आपूर्ति सुनिश्चित करना, और

3) किसानों को संस्थागत वित्तीय सहायता प्रदान करना।

इस कार्यक्रम में जिन मदों को शामिल किया गया है वह इस प्रकार है : खेत विकास संबंधी निर्माण कार्य जैसे खेत में सिंचाई के लिए चैनलों का निर्माण, नालियों का निर्माण, भूमि को समतल करना, जल आपूर्ति के एक ही मुहाने से बारी के आधार पर जल वितरण की व्यवस्था करना, उपयुक्त प्रकार की फसल शैली अपनाना, कृषि प्रसार सेवाओं का विस्तार; जल निकासी व्यवस्था का प्रावधान, भूमिगत पानी का विकास; ऋण तथा कृषि संबंधी अन्य आवामों की आपूर्ति संबंधी व्यवस्था करना तथा संरचनात्मक ढाँचे का विकास करना, जैसे कमान क्षेत्र में सड़कों, बाजार तथा खाद्यान्न भण्डारों का विकास करना।

कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम के लिए वित्तीय व्यवस्था केन्द्र द्वारा राज्यों को दिए जाने वाले द्वितीय अनुदान से की जाती है तथा कुछ चुनी हुई मदों के लिए राज्य सरकार को अपने स्रोतों से बराबरी का हिस्सा देना होता है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में परियोजना के अन्तर्गत केन्द्र सरकार की ओर से दी जाने वाली वित्तीय सहायता के वितरण के लिए पिछड़े क्षेत्रों को प्राथमिकता प्रदान की गई है। पाँचवी पंचवर्षीय योजना में सेन्ट्रल सेक्टर से रु.66.5 करोड़ तथा राज्य सेक्टर से रु.56 करोड़ और संस्थागत स्रोतों के माध्यम से रु.8.2 करोड़ की राशि व्यय की गई। छठी पंचवर्षीय योजना में केन्द्र सेक्टर से रु.287 करोड़ तथा राज्य सेक्टर से रु.560 करोड़ व्यय किए गए।

कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम काफी सफल कार्यक्रम रहा है, विशेष रूप से सिंचाई के अनप्रयुक्त साधनों की उपयोगिता को बढ़ाने के लिए। 1979-80 में संभावित क्षमता की उपयोगिता 6.98 मिलियन हेक्टर से बढ़कर 1986-87 से 10.19 मिलियन हेक्टर हो गई। कुल सिंचित क्षेत्र (Gross irrigated area) में भी महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। जल की मात्रा की उपलब्धता तथा जल वितरण में भी वृद्धि हुई। सिंचाई की पारम्परिक प्रणाली के आधुनिकीकरण पर बल दिया गया।

कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम में अनेक कमियां भी रह गई है जैसे कार्यक्रम का धीमी गति से लागू होना, वित्तीय तथा संगठनात्मक समर्थन का पर्याप्त न होना, प्रोत्साहन की कमी, निर्देशित क्षेत्र विकास कार्यों के लिए भूमि उपलब्ध कराने के बारे में किसानों की अनिच्छा, भूमि की चकबंदी की धीमी प्रगति, जिसके अन्तर्गत खेतों में जल आपूर्ति व्यवस्था का निर्माण किया जाना था, प्रसार समर्थन का अभाव तथा सिंचाई के लिए जल की आपूर्ति संबंधी अनिश्चितता।

23.4.2 सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम

भारत में सूखा पड़ना कोई नई बात नहीं है। जिन क्षेत्रों में सूखा पड़ता है अथवा जहाँ मरुस्थल जैसी स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं, उन स्थितियों का मुख्य कारण भूमि का कटाव होने तथा पर्यावरण असंतुलन होने जैसी समस्याएं हैं। भारत के मौसम विभाग द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार देश के किसी भाग में सूखे की स्थिति तब मानी जाती है जब वहाँ वर्ष में सामान्य से 75 प्रतिशत कम बारिश होती है। यदि बारिश सामान्य से 25-30 प्रतिशत कम होती है तो उस स्थिति को सूखे की सामान्य स्थिति माना जाता है। किन्तु

यदि वर्षा 50 प्रतिशत से कम होती है तो इसे सूखे की गंभीर स्थिति माना जाता है। सूखे की स्थिति की गंभीरता शुष्कता अथवा आद्रता (नमी) के अभाव, शुष्कता की अवधि तथा प्रभावित क्षेत्र के आकार पर निर्भर करती है।

सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (Drought Prone Area programme–डी.पी.ए.पी.) 1973 में पाँचवी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत एक समन्वित क्षेत्र कार्यक्रम के रूप में प्रारम्भ किया गया। इस प्रकार के कार्यक्रम को बनाया जाना इसलिए आवश्यक समझा गया, क्योंकि देश का लगभग 19 प्रतिशत क्षेत्र सूखाग्रस्त है तथा देश की बारह प्रतिशत जनता इन क्षेत्रों में रहती है।

सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं :

- जल स्रोतों तथा कृषि जलवायु घटकों द्वारा उपयुक्त प्रकार की फसल शैली धारण करके असिंचित कृषि भूमि को और अधिक उपजाऊ बनाना
- संबंधित क्षेत्र के जल स्रोतों का उत्पादकता वर्धक प्रयोग सुनिश्चित करना, भूमि तथा आद्रता संरक्षण के साथ-साथ जलीय पैदावार और भूमि के उचित उपयोग को उन्नत बनाना
- वनरोपण तथा फार्म वनरोपण को बढ़ावा देना
- पशुधन के साथ-साथ चारागाहों और चारा स्रोतों का विकास करना; और
- बागवानी, रेशम उत्पादन, मछली पालन आदि जैसी विभिन्न गतिविधियों का विकास करना।

इस कार्यक्रम के प्रमुख घटक निम्न प्रकार से हैं :

- भूमि तथा जल संरक्षण और भूमि को समतल बनाना
- वनरोपण तथा चारागाहों का विकास
- जल संसाधनों का विकास

प्रतिवर्ष निर्धारित की जाने वाली कुल राशि का 75 प्रतिशत भाग कार्यक्रम के प्रमुख घटकों के लिए निर्धारित किया जाता है। (30 प्रतिशत भाग भूमि को समतल बनाने तथा भूमि संरक्षण हेतु, 25 प्रतिशत भाग वनरोपण तथा चारागाह विकास हेतु, तथा 20 प्रतिशत राशि जल संसाधनों के विकास के लिए निर्धारित की जाती है)।

चौथी पंचवर्षीय योजना में सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम देश के तेरह राज्यों के 53 जिलों में लागू कराया जा रहा था। छठी योजना में इस कार्यक्रम के लिए रु. 360 करोड़ की राशि निर्धारित की गई, जिसमे से 88 प्रतिशत अर्थात् रु. 310 करोड़ की राशि खर्च की गई। सातवीं योजना में उन्हीं समितियों को चालू रखने की सिफारिश की गई जो छठी योजना में अपनायी गई थी तथा पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने वाली प्रत्यक्ष गतिविधियों पर बल दिया जाता रहा और समन्वित क्षेत्र कार्यक्रम के रूप में इसको क्रियान्वित कराया गया। कार्यक्रम संबंधी योजना का अभाव तथा राज्यों द्वारा संभावित योजनाओं के साथ कार्यक्रम को सम्बद्ध न किया जाना, इस कार्यक्रम की प्रमुख कमियां है। कई बार ऐसा भी हुआ है कि योजना को लागू करने से पहले संरचनात्मक ढांचे की उपलब्धता के बारे में जाँच नहीं की गई।

23.4.3 मरुस्थल विकास कार्यक्रम (Desert Development Programme)

पश्चिमी राजस्थान तथा इससे जुड़े गुजरात और हरियाणा के लगभग 2,18,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को भारत का भयंकर मरुस्थल कहा जाता है। इसे शुष्ण कटिबंध कहा जाता है। इसके अतिरिक्त देश के उत्तरी भागों मे (लद्दाख और हिमाचल प्रदेश के भाग) में शीत मरुस्थलीय कटिबंध भी हैं। मरुस्थलीय कटिबंधों में भूमि का पानी खारा होता है तथा पीने अथवा खेती के लिए उपयुक्त नहीं होता। प्राय: देखा गया है कि पर्वतीय माला क्षेत्र को अत्याधिक चरा दिया जाता है जिससे मिट्टी की ऊपरी परत खोखली हो जाती है और इससे मिट्टी के कटाव की गंभीर समस्या पैदा हो जाती है। मरुस्थलीय कटिबंधों के विकास के लिए 1951-52 में जोधपुर में एक मरुस्थलीय वनरोपण केन्द्र की स्थापना की गई। 1957 में इसका नाम बदलकर मरुस्थलीय वनरोपण तथा मृदा संरक्षण केन्द्र (Desert Afforestation and Conservation Centre) कर दिया गया। बाद में केन्द्रीय शुष्क कटिबंधीय अनुसंधान संस्थान (Central Arid Zone Research Institute) की स्थापना की गई। 1966 में मरुस्थल विकास बोर्ड का गठन किया गया तथा राजस्थान, गुजरात और हरियाणा राज्य के चार जिलों में अनेक प्रायोजित परियोजनाएं प्रारम्भ की गई।

1974 में प्रस्तुत अपनी अंतरिम रिपोर्ट में राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा कहा गया कि मरुस्थलीय क्षेत्रों की समस्याएं अर्ध शुष्क क्षेत्रों तथा नमी वाले शुष्क क्षेत्रों की तुलना में भिन्न होती हैं, इसलिए इन क्षेत्रों के लिए अलग उपाय सुझाए गए। राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिश पर 1977-78 में मरुस्थल विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। मरुस्थल विकास कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं :

- मरुस्थलीय प्रक्रिया पर नियंत्रण करना
- कुछ मरुस्थलीय तथा अर्ध मरुस्थलीय क्षेत्रों में पारितंत्रीय संतुलन (ecological balance) को बहाल करना
- उत्पादन तथा आय के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए स्थितियां पैदा करना; और
- भूमि की उत्पादकता, जल, पशुधन और मानव संसाधनों में वृद्धि करके इन क्षेत्रों के लोगों को रोजगार प्रदान करना।

वनरोपण, चरवाहित भूमि का विकास, रेत के टीले बनने से रोकना, भूमिगत जल का अधिकतम प्रयोग तथा संरक्षण करना, जलीय फसलों के लिए ढाँचे का निर्माण; ट्यूब-वैलों तथा पम्प-सेटों को चलाने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों का विद्युतीकरण; कृषि, बागवानी तथा पशुपालन का विकास, आदि इस कार्यक्रम के प्रमुख घटक हैं। 1989-90 में यह कार्यक्रम देश के पाँच राज्यों के 21 जिलों के अन्तर्गत 132 विकास खण्डों में लागू किया जा रहा था। इस कार्यक्रम में 0.36 मिलीयन वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को तथा इसमें रहने वाली 1.5 करोड़ जनसंख्या को सम्मिलित किया गया। इस कार्यक्रम को केन्द्रीय सेक्टर की योजना के रूप में प्रारम्भ किया गया तथा 1978-79 तक इसकी वित्तीय व्यवस्था का पूरा बोझ केन्द्र सरकार द्वारा उठाया गया था। छठी पंचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम पर होने वाले व्यय का वजन केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार द्वारा बराबर किया जाने लगा।

पहले दो वर्षों में बजट निर्धारण मुख्यतया तदर्थ आधार पर किया जाता रहा। वर्ष 1979-80 से प्रतिवर्ष प्रत्येक विकास खण्ड के लिए रु. 15 लाख की राशि निर्धारित की जाने लगी, जिसमें रु. 7.5 लाख केन्द्र सरकार तथा शेष 7.5 लाख राज्य सरकार द्वारा दिया जाता था। राजस्थान द्वारा इस राशि का केवल 67 प्रतिशत भाग ही व्यय किया जा सका।

23.4.4 पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम (Hill Area Development Programme)

हमारे देश के कुल क्षेत्रफल का 21 प्रतिशत भाग पहाड़ी क्षेत्र हैं, जहाँ देश की 9 प्रतिशत जनता निवास करती है। इन क्षेत्रों का पारितन्त्र बहुत नाजुक है। इस क्षेत्र के पारितन्त्र सुरक्षा करने हेतु तथा प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध कराने वाले बुनियादी जीवन का पोषण करने के उद्देश्य से पाँचवी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 1974-75 में पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम (एच.ए.डी.पी.) प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम के माध्यम से मैदानी क्षेत्रों की जनता की तुलना में उपेक्षित पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया।

पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम के बुनियादी उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं :

- देश के पर्वतीय क्षेत्रों में पारितन्त्र को बहाल करना, संरक्षण तथा विकास करना
- पर्वतीय भू-प्रदेशों संबंधी समस्याओं तथा कृष्य मौसम संबंधी स्थितियों में परिवर्तन होने के कारण उत्पन्न होने वाली विशेष समस्याओं पर नियंत्रण करना
- पर्वतीय क्षेत्रों में संरचनात्मक सुविधाओं में निवेश करना; और
- राज्य सरकारों द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों के विकास की दिशा में किए जा रहे प्रयासों में सहयोग देना।

जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश तथा मिज़ोरम भौगोलिक दृष्टि से यह सभी राज्य पर्वतीय क्षेत्र हैं (तथा इन्हें विशेष वर्ग के राज्य कहा जाता है) और इन राज्यों से सम्बद्ध योजना में तैयार करते समय पहाड़ी क्षेत्रों के विकास के लिए इन राज्यों को अलग से फण्ड निर्धारित किया जाता है। जिन राज्यों के केवल कुछ ही भाग पहाड़ी क्षेत्र है उन राज्यों की उपयोजनाओं के अन्तर्गत पहाड़ी क्षेत्रों के विकास के लिए व्यय राशि अलग से निर्धारित की जाती है। केन्द्र सरकार द्वारा पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत पहाड़ी क्षेत्रों के विकास की दिशा में राज्य सरकारों द्वारा किए जा रहे प्रयासों में वित्तीय सहायोग दिया जाता है।

महाराष्ट्र, कर्नाटक, गोवा, केरल, तमिलनाडु आदि राज्यों में अनेक तालुकाएं (छोटी प्रशासनिक इकाईयाँ) पश्चिमी घाट विकास कार्यक्रम (Western Ghats Development Programmes) (डब्ल्यू.जी.डी.पी.) के अन्तर्गत लाभान्वित हो रहे हैं ।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम हेतु रु.170 करोड़ की राशि निर्धारित की गई, जिसमें रु.20 करोड़ की राशि पश्चिमी घाट विकास कार्यक्रम के लिए थी । छठी पंचवर्षीय योजना में यह राशि बढ़ाकर रु.560 करोड़ कर दी गई तथा सातवीं पंचवर्षीय योजना में यह राशि रु.870 करोड़ थी (जिसमें पश्चिमी घाट विकास कार्यक्रम हेतु क्रमश: दोनों योजनाओं के लिए रु. 75 करोड़ तथा रु.116 करोड़ की राशि भी शामिल थी)। पहाड़ी क्षेत्र कार्यक्रम के अन्तर्गत पारितंत्र असंतुलन स्थानान्तरित कृषि (जिसे उत्तर पूर्वी राज्यों मे झूम कहा जाता है) के प्रचलन, मृदा अपरदन तथा वनों का कटाव, ईंधन की लकड़ी के लिए वनों के अभाव आदि की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है । इसलिए यह आवश्यक समझा गया है कि ऊर्जा कार्यक्रमों तथा पशुधन विकास कार्यक्रमों का समाजन करके पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम को समर्थन प्रदान किया जाए ।

पर्वतीय क्षेत्रों का पारितन्त्र चूंकि परिवर्तनशील होता है, इसलिए यह आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में कार्यक्रमों का संचालन बड़ी सावधानीपूर्वक किया जाए । बागवानी तथा खाद्य फसलें इन क्षेत्रों में सुदृढ़ पर्यावरण का विकास कर सकती हैं और इन फसलों का संबंध चूंकि खाद्य संसाधन से होता है इसलिए आय सृजन में सहायक हो सकती है । एक अन्य बात ध्यान में रखने योग्य है कि इन क्षेत्रों में परिवहन तथा संरचनात्मक ढाँचे संबंधी ऐसी सुविधाओं का विकास किया जाना चाहिए, जो पर्यावरण के अनुकूल हो तो पर्यावरण का संतुलन बिगड़ने न दें ।

बोध प्रश्न - 3

1) कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम (सी.ए.डी.पी.) के कार्यान्वयन में रुकावट डालने वाली कौन-कौन सी प्रमुख समस्याएं हैं ?

....

....

....

....

....

....

....

2) सूखा प्रवण क्षेत्र विकास कार्यक्रम (डी.पी.ए.पी.) के मुख्य उद्देश्य क्या हैं ?

....

....

....

....

....

....

3) मरुस्थल विकास कार्यक्रम (डी.डी.पी.) के उद्देश्यों की सूची बनाइए।

....

....

....

....

....

....

4) पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम (एच.ए.डी.पी.) के मूल उद्देश्य क्या हैं ?

....

....

....

....

....

....

23.5 रोजगार सृजन कार्यक्रम (Employment Greneration Programme)

हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या गरीब है। मजदूर चूंकि असीमित संख्या मे उपलब्ध हैं तथा रोजगार के अवसरों की अत्याधिक कमी है, इसलिए बेरोजगारी बहुत अधिक है। ग्रामीण क्षेत्र में तो मजदूरी भी अपेक्षाकृत कम मिलती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से श्रमिक शक्ति में इतनी अधिक वृद्धि हुई है कि उसकी तुलना में आज तक रोजगार अवसरों में जो कुछ वृद्धि भी हुई, वह भी दिखाई नहीं देती है। इसलिए भारत सरकार ने इस दिशा में कार्यक्रम बनाने तथा लागू करने प्रारम्भ किए, जिन से रोजगार के अवसर बढ़ सकें। उच्च वेतन देकर लोगों को गरीबी से छुटकारा दिलाया जा सकता है। इस अनुच्छेद में इस प्रकार के कार्यक्रमों पर चर्चा की गई है।

23.5.1 छठी पंचवर्षीय योजना से पूर्व की रोजगार सृजन योजनाएं

तीसरी पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण जनशक्ति विकास कार्यक्रम चालू किया गया, जिसके उद्देश्य लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना था। 1964-65 के अंत तक 1000 सामुदायिक विकास खण्डों को इसके अन्तर्गत कवर किया गया। चौथी योजना में सरकार द्वारा रोजगार के अवसर प्रदान करने हेतु एक विशेष स्कीम चालू की गई, जिसमें ग्रामीण रोजगार हेतु क्रेश स्कीम (Crash Scheme for Rural Employment) (सी.एस.आर.ई.) कहा गया। इसे निम्नलिखित उद्देश्यों से गैर-योजना कार्यक्रम के रूप में प्रारम्भ किया गया:

- प्रत्येक जिले में प्रतिवर्ष औसतन 1000 व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करना; तथा
- स्थानीय विकास योजनाओं के संदर्भ में निरस्थायी तथा उत्पादक परिसंगतियां सृजित करना।

ग्रामीण रोजगार हेतु क्रेश स्कीम चौथी योजना के वर्ष 1972-73 तथा 1973-74 के लिए लागू की गई तथा प्रत्येक वर्ष के लिए रु. 50 करोड़ की परिव्यय राशि रखी गई। इस स्कीम के हिस्से के रूप में एक प्रायोगिक गहन ग्रामीण रोजगार परियोजना (पी.आई.आर.ई.पी.) प्रारम्भ की गई। इस परियोजना का उद्देश्य ग्रामीण रोजगार हेतु क्रेश स्कीम के विविध आयामों के बारे में आंकड़े एकत्र करके यह पता लगाया जाना था कि क्या यह रोजगार योजना काम करने के लिए इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार उपलब्ध कराने में समर्थ हो सकती है ? इस स्कीम को तीन वर्ष तक चलाया गया, जिसमें पाँचवी योजना के पहले वर्ष में भी योजना लागू रही। इस स्कीम में सबसे बड़ी कमी यह थी कि इसके संसाधन छोटी-छोटी अनेक परियोजनाओं, तथा निर्माण परियोजनाओं में बँटे हुए थे तथा एक जगह संकेद्रित नहीं थे।

1977 में एक और नया कार्यक्रम "काम के बदले अनाज" (Food for Work) (एफ.एफ.डबल्यू.) प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण निर्धनों को निर्माण तथा ढाँचे के विकास के लिए और समुदाय के लिए चिरस्थायी परिसम्पत्ति का निर्माण करने के बदले दिहाड़ी दी जाती थी। यह गैर-योजना स्कीम, जिसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को ग्रामीण लोक निर्माण कार्यों के रखरखाव के लिए फण्ड में वृद्धि करने हेतु मदद दी जाती है। इन निर्माण कार्यों में सिंचाई संबंधी छोटे-मोटे निर्माण कार्य, भूमि तथा जल संरक्षण, राजमार्गों पर वनरोपण, नालियों आदि का रखरखाव शामिल है।

23.5.2 राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme)

गाँवों में रोजगार के अवसर बढ़ाने के उद्देश्य से 1980 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.) लागू किया गया। इस प्रक्रिया का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में आय तथा उपभोग का पुनर्वितरण करना था। इसे गरीबों के उत्थान की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना गया। 1981 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम ने "काम के बदले अनाज" कार्यक्रम का स्थान ले लिया तथा इसे छठी योजना का हिस्सा बनाया गया।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के उद्देश्य निम्न प्रकार से थे :

- ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारों तथा अल्परोजगार प्राप्त लोगों (पुरुष तथा महिलाएं, दोनों के लिए) को लाभकारी रोजगार देने के लिए अतिरिक्त अवसरों का सृजन करना
- गरीब जनता के प्रत्यक्ष तथा निरन्तर उपभोग हेतु समुदाय के लिए आम उपार्जक परिसंपत्तियों का सृजन करना तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सामाजिक ढाँचें का सुदृढ़ीकरण करना, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार हो सके और ग्रामीण निर्धनों की आय में वृद्धि हो सके, और
- गाँवों में लोगों के जीवन स्तर में समग्र रूप से सुधार लाना।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत भूमिहीन मजदूरों को प्राथमिकता दी जाती है तथा उनमें भी अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के मजदूरों को वरीयता दी जाती है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सामुदायिक तथा व्यक्तिगत, दोनों प्रकार के कार्य वर्ष में किसी भी समय संचालित करने की व्यवस्था है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ठेके पर काम कराने की व्यवस्था का कोई प्रावधान नहीं है। बिचौलियों को इसमें सम्मिलित करने के लिए कोई स्थान नहीं है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत मजदूरी के रूप में नगद राशि के अतिरिक्त प्रतिदिन मजदूरी का कुछ भाग अनाज (एक से दो किलो प्रति व्यक्ति प्रतिदिन) के रूप में दिया जाता। मजदूरी के रूप में उन्हें अनाज देने का अभिप्राय यह है कि मजदूरों पर अनाज के भाव में होने वाली बढ़त-घटत का प्रभाव न पड़े। इसका एक अन्य लाभ यह है कि उन्हें जो अनाज वितरित किया जाता है उसकी क्वालिटी पर भी कुछ नियंत्रण रख पाना संभव है। खाद्यान्नों के अपेक्षित स्टाक से अतिरिक्त स्टाक का उपभोग करने का भी यह एक अच्छा तरीका है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत दी जाने वाली मजदूरी "न्यूनतम मजदूरी अधिनियम" (Minimum Wages Act) के अनुसार दी जाती है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों (डी.आर.डी.ए.) द्वारा लागू कराया जाता है। पंचायती राज संस्थाओं और स्वैच्छिक संगठनों को भी इस कार्यक्रम में शामिल किया गया है। राज्य स्तर पर इस कार्यक्रम की योजना क्रियान्वयन और प्रबन्धन राज्य स्तरीय समन्वयन समितियों (State level Coordination Committees) (एस.एल.सी.बी.) द्वारा किया जाता है। केन्द्र स्तर पर इस कार्यक्रम के लिए एक समिति बनायी गई है, जो व्यापक मार्गदर्शन प्रदान करती है तथा दिशा-निर्देश जारी करती है और कार्यक्रम का निरन्तर प्रबोधन करती है। यह कार्यक्रम केन्द्र द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम है तथा इसमे केन्द्र और राज्य सरकार दोनों व्यय का वहन बराबर-बराबर करते हैं। केन्द्र के हिस्से की राशि दो बराबर-बराबर किश्तों में जारी की गई है। राज्य सरकारों द्वारा केन्द्रीय सहायता अनुदान की पूरी राशि जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों को जारी कर दी गई है। इसमें राज्य सरकारों का हिस्सा भी जोड़ दिया गया है। केन्द्र राज्य तथा विकास खण्ड स्तरों पर प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान की गई हैं। प्रशिक्षण प्रदान करने के कार्य में लोक कार्य विकास तथा ग्रामीण प्रौद्योगिकी परिषद (Council for Advancement of People's Action and Rural Technology) (कपार्ट) जैसे राज्य स्तरीय संस्थान तथा राष्ट्रीय निर्माण संगठन (National Building Organization) (एन.बी.ओ.) को शामिल किया गया है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के मिश्रित परिणाम प्राप्त हुए हैं। इस कार्यक्रम से जो प्रत्यक्ष लाभ हुए है उनमें ग्रामीण क्षेत्रों में निश्चित दैनिक मजदूरी तथा खाद्यानों की कीमत में स्थिरीकरण, समुदाय के लिए विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियाँ तैयार करना तथा ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना आदि शामिल है। इस कार्यक्रम से दैनिक मजदूरी बढ़ाने तथा गाँवों में संरचनात्मक आफर को सुदृढ़ करने में भी सहायता मिली है। अधिकांश मामलों में (लगभग 90 प्रतिशत) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना के अन्तर्गत कार्यों का संचालन ग्राम पंचायतों द्वारा किया जाता है। लगभग 8 प्रतिशत कार्य स्वैच्छिक संगठनों तथा ब्लाक संगठनों द्वारा निष्पादित किया गया।

किन्तु राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत श्रमिकों का उपयोग उत्पादकता बढ़ाने की दिशा में अधिक नहीं बढ़ाया जा सका है। योजनाबद्ध तरीके से काम करने की कमी तथा विभिन्न एजेन्सियों में परस्पर समन्वयन का भी अभाव महसूस किया गया है। चलाई गई परियोजनाओं तथा नियुक्त कार्मिकों में भी परस्पर कार्यात्मक समानता नहीं है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत बनाई गई अधिकतर सड़कें कच्ची हैं। कार्यक्रम को लोकप्रियता भी नहीं मिली है।

23.5.3 ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (Rural Landless Employment Guarantee Programme– आर.एल.ई.जी.पी.)

यह कार्यक्रम 1983 में निम्नलिखित तीन बुनियादी लक्ष्यों के साथ प्रारम्भ किया गया :

- ग्रामीण लोगों, विशेषकर भूमिहीन मजदूरों के लिए रोजगार के अवसरों में सुधार तथा विस्तार करना ताकि भूमिहीन परिवार के एक सदस्य के लिए वर्ष में कम से कम 100 दिन रोजगार उपलब्ध कराने की गारंटी दी जा सके
- ग्रामीण निर्धनों के प्रत्यक्ष लाभ के लिए उत्पादक तथा चिरस्थायी परिसंपत्तियों का सृजन करना ताकि गाँवों का आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचा सुदृढ़ हो सके जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण अर्थव्यवस्था की गति बढ़ सके, रोजगार के अवसर बढ़ सके और निर्धनों का आय-स्तर ऊंचा उठ सके; तथा
- ग्रामीण क्षेत्रों से जीवन स्तर की क्वालिटी में समग्र सुधार।

इस कार्यक्रम में भूमिहीन ग्रामीण परिवारों को प्राथमिकता प्रदान की गई है। उनमें से भी महिलाओं, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को वरीयता प्रदान की गई है। श्रमिकोन्मुखी परियोजनाओं (Labour Intensive Projects) को बल दिया गया है, विशेष रूप से कृषि संबंधी क्षीण मौसमों में। इस कार्यक्रम का उद्देश्य प्रत्येक भूमिहीन श्रमिक परिवार के एक सदस्य को रोजगार की गारंटी देकर कृषि मजदूरों की सप्लाई में स्थिरता लाना है।

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अन्तर्गत वह कार्य लिए जाते है, जो न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम तथा 20 सूत्री कार्यक्रम के प्रासंगिक है जैसे गाँवों में सम्पर्क सड़कों का निर्माण, ऊसर भूमि का सुधार तथा विकास, शौचालयों का निर्भाण । इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम के अन्तर्गत इन्दिरा आवास योजना जैसें कार्यक्रम के लिए छोटे स्तर पर मकानों के निर्माण संबंधी कार्यों को भी लिया जा सकता है ।

इस कार्यक्रम के लिए वित्तीय व्यवस्था पूरी तरह से केन्द्र सरकार द्वारा की जाती है । इस कार्यक्रम से संबंधित धनराशि दो छमाही किश्तों में जारी की गई । किन्तु सामाजिक-वाणिज्यिक संबंधी पूरी राशि पहली ही किश्त में जारी कर दी गई । कार्यक्रम संबंधी राशि केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों को दी गई तथा राज्य सरकारों द्वारा राशि प्राप्त करने के एक माह के भीतर यह राशि ग्रामीण विकास एजेन्सियों को उपलब्ध करा दी गई । जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों, जिला स्तरीय एजेन्सियाँ है जो रोजगारोन्मुखी कार्यक्रमों को लागू कराने तथा गरीबों के उत्थान संबंधी कार्यक्रमों को लागू कराने में सहायता करती हैं ।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत भी मजदूरी, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार दी जाती है । इसके अलावा मजदूरी आंशिक रूप से खाद्यान्न के रूप में भी दी जाती है । इस कार्यक्रम के लिए राज्यों को संसाधनों का निर्धारण केन्द्र सरकार द्वारा इस आधार पर किया गया है कि कार्यक्रम के 50 प्रतिशत वरीयता कृषि मजदूरों, भूमिहीन मजदूरों तथा छोटे किसानों को तथा 50 प्रतिशत प्राथमिकता गरीबी के आधार पर अन्य लोगों को दी जाएगी । इस कार्यक्रम को क्रियान्वित कराने तथा प्रबन्धन का मुख्य दायित्व जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों को सौंपा गया है । इसके अतिरिक्त पंचायती राज्य संस्थाओं तथा स्वैच्छिक संगठनों को भी कार्यक्रम में शामिल किया गया है। राज्य स्तर पर इस कार्यक्रम के संचालन का भार जिला स्तरीय समन्वयन समिति को सौंपा गया तथा केन्द्र स्तर पर राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीनों संबंधी रोजगार गारंटी कार्यक्रम के संचालन का प्रमुख दायित्व एक केन्द्रीय समिति को सौंपा गया ।

आइए, अब हम यह पता लगायें कि राष्ट्रीय ग्रामीण योजना कार्यक्रम में और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी योजना कार्यक्रम में कौन-कौन सी समानताएं और असमानताएं हैं । दोनों कार्यक्रमों में यह समानता हैं कि दोनों कार्यक्रमों का लक्ष्य ग्रामीण निर्धनों के लिए रोजगारोन्मुखी कार्यक्रमों का संचालन करना है, दोनों कार्यक्रमों का लक्ष्य समुदाय के लिए चिरस्थायी लाभार्थियों का सृजन करना है; दोनों कार्यक्रमों में आंशिक मजदूरी खाद्यान्नों के रूप में दी जाती है; दोनों कार्यक्रमों में सार्वाधिक रूप से निश्चित मजदूरी दी जाती है जो मजदूरी के भुगतान का तरीका भी समान है; दोनों कार्यक्रमों को जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है; दोनों कार्यक्रमों में ठेकेदारों को शामिल करने की अनुमति नहीं है; तथा दोनों कार्यक्रमों में पंचायती राज संस्थाओं और स्वैच्छिक संगठनों को शामिल किया गया है । दोनों कार्यक्रमों में भिन्नताएं इस प्रकार हैं : ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम मूलत: भूमिहीनों पर केन्द्रित है; राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के विपरीत ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम पूरी तरह से केन्द्र सरकार द्वारा वित्त पोषित है; रोजगार गारंटी कार्यक्रम भूमिहीन ग्रामीण परिवारों में से प्रत्येक परिवार के एक सदस्य को वर्ष में 100 दिन तक रोजगार देने की गारंटी का प्रावधान है, जबकि राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम में इस प्रकार की कोई गारंटी नहीं दी गई है ।

यदि हम रोजगार गारंटी कार्यक्रम की निष्पादकता पर ध्यान दें तो पहली बात सामने यह आती है कि संसाधनों की कमी के कारण इस कार्यक्रम के गारंटी पक्ष को मूलरूप नहीं दिया जा सका । रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अन्तर्गत इन्दिरा आवास योजना के लिए अनुसूचित जातियों / अनुसूचित जनजातियों के लिए छोटे-छोटे मकान बनाये जाने का लक्ष्य काफी सफल रहा । सातवीं योजना में ऐसे 10 लाख आवासों का निर्माण करने की योजना है । रोजगार गारंटी कार्यक्रम का दूसरा महत्वपूर्ण घटक सामाजिक वाणिकी हैं । 1985-86 की अवधि में 20 प्रतिशत राशि इस कार्य हेतु निर्धारित की गई तथा अनुवर्ती वर्षों में इस राशि को बढ़ाकर 25 प्रतिशत कर दिया गया । इस कार्यक्रम का एक और महत्वपूर्ण पक्ष 10 लाख कुओं के निर्माण संबंधी योजना (Million Wells Scheme) से है । यह योजना 1988-89 में प्रारम्भ की गई थी तथा इस योजना के अन्तर्गत छोटे किसानों अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के किसानों, मुक्त कराये गए बंधुआ मजदूरों को निशुल्क सिंचाई के लिए कुएं उपलब्ध कराये गए । उस वर्ष के लिए 95,930 कुएें बनाने का लक्ष्य रखा गया । इस कार्य के लिए उस वर्ष रु. 154 करोड़ की राशि का निवेश किया गया ।

1983 में जब यह कार्यक्रम चलाया गया तो उस समय इस उद्देश्य हेतु रु.500 करोड़ की परिव्यय राशि निर्धारित की गयी। वर्ष 1983 से 1985 की अवधि में 36 करोड़ दिहाड़िया रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया किन्तु 26.01 करोड़ दिहाड़ियां रोजगार सृजित किए जा सके। सातवीं पंचवर्षीय योजना में भूमिहीन मजदूरों को 80 से 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराने की सीमित गारंटी दी गई। सातवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण भूमिहीनों संबंधी रोजगार गारंटी कार्यक्रम के लिए रु. 1,774 की परिव्यय राशि प्रदान की गई। मजदूरी सामग्री अनुपात 50:50 मानते हुए यह परिकल्पना की गई कि इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 101.3 करोड़ दिहाड़िया रोजगार सृजित किए जायेंगे।

23.5.4 जवाहर रोजगार योजना

अब तक हमने छठी पंचवर्षीय योजना से पहले की रोजगार योजनाओं के बारे में चर्चा की है। साथ ही साथ छठी पंचवर्षीय योजना में संचालित दो महत्वपूर्ण रोजगारोन्मुखी कार्यक्रमों, अर्थात् राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम, और ग्रामीण भूमिहीनों संबंधी रोजगार गारंटी कार्यक्रम पर भी हमने चर्चा की है। इस अनुच्छेद में हम सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में किए गए नए रोजगारोन्मुखी कार्यक्रम के बारे में चर्चा करेंगे।

काम के बदले अनाज कार्यक्रम को संशोधित करके चलाए गए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम में भी आंशिक मजदूरी अनाज के रूप में दी जाती है तथा यह इस कार्यक्रम का एक प्रमुख घटक है। ग्रामीण भूमिहीनों संबंधी रोजगार गारंटी कार्यक्रम में भूमिहीनों को रोजगार देने पर जोर दिया जाता है। इस कार्यक्रम का लक्ष्य प्रत्येक ग्रामीण मजदूर परिवार के कम से कम एक सदस्य को वर्ष में 100 दिन रोजगार उपलब्ध कराना है। किन्तु यह आवश्यकता महसूस की जाने लगी कि एक ऐसा नया कार्यक्रम प्रारम्भ किया जाना चाहिए, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों या पिछड़े क्षेत्रों में अधिकाधिक संख्या में रोजगार उपलब्ध कराये जा सकें। इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि जो गाँव आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं उन क्षेत्रों में बेरोजगारी को समाप्त करने के हर संभव प्रयास किए जायें।

1989-90 में तत्कालीन वित्त मंत्री द्वारा रोजगार के अवसर बढ़ाने के बारे में एक नई स्कीम की घोषणा की गई। इस नई स्कीम को जवाहर रोजगार योजना का नाम दिया गया। इस योजना के लिए उस वर्ष रु. 500 करोड़ की राशि का प्रावधान किया गया। इस योजना के लिए जो राशि निर्धारित की गई वह राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीनों संबंधी रोजगार गारंटी कार्यक्रम के लिए निर्धारित राशि से अतिरिक्त थी। इस घोषणा में एक और बात यह कही गई कि इन दोनों कार्यक्रमों को एकीकृत करके इसे केन्द्र प्रायोजित स्कीम के रूप में लागू कराया जाएगा तथा इसमें वित्तीय भार का वहन 75:25 के अनुपात में केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा किया जाएगा।

तत्पश्चात् इस विषय पर पुनर्विचार किया गया। जवाहर लाल नेहरु रोजगार योजना के लाभ उपर्युक्त दोनों कार्यक्रमों को मिलाकर "नेहरु रोजगार योजना" के नाम से एक ही कार्यक्रम चलाया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वित्तीय भाग का 80:20 के अनुपात से केन्द्र तथा राज्य सरकारों को वहन करना होता है। केन्द्र के हिस्से की राशि जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों को सीधे जारी कर दी जाती है, जो जिला स्तर पर इस कार्यक्रम को लागू कराने के लिए जिम्मेदार हैं। जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों द्वारा प्राप्त अनुदान की कम से कम 80 प्रतिशत राशि ग्राम पंचायतों को जारी की जाएगी।

आइए, अब हम इस कार्यक्रम पर विस्तारपूर्वक चर्चा करते हैं। इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार तथा अल्प-रोजगार प्राप्त लोगों के लिए रोजगार के अतिरिक्त अवसर प्रदान करना है। इसका एक और उद्देश्य यह है कि समुदाय के लिए उत्पादक परिसंगतियों का निर्माण करना है ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में संरचनात्मक ढाँचों को सुदृढ़ किया जा सके जिससे ग्रामीणों के जीवन स्तर में व्यापक सुधार आ सके। इस कार्यक्रम में उन लोगों को कवर किया जाता है जो गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहें हैं तथा इसके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के निर्धनों को वरीयता प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम में 30 प्रतितशत महिला लाभानुभोगियों को भी समर्थन प्रदान किया जाता है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ऐसे सभी कार्य चलाए जा सकते हैं जो समुदाय के लिए चिरस्थायी परिसम्पत्तियों का सृजन करने के लिए हो तथा जिनसे गरीबों को मदद मिल सके और जिनका उपयोग गरीबी दूर करने के लिए किया जा सके। इन्दिरा आवास योजना तथा दस लाख कुओं के निर्माण संबंधी योजना को भी जवाहर रोजगार योजना में शामिल किया गया है। सामाजिक वाणिकी के लिए गैर-सरकारी संगठनों की भागीदारी का प्रावधान भी है।

जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत आंशिक रूप से मजदूरी खाद्यान्नों के रूप में दी जा सकती है । किन्तु प्रति दिहाड़ी 1.5 किलो से अधिक अनाज मजदूरी के रूप में नही दिया जाएगा । जहाँ तक संभव होगा मजदूरी का भुगतान न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार किया जाएगा ।

जवाहर रोजगार योजना का वित्तीय भार 4:1 के अनुपात में क्रमश: केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों को वहन करना होता है । केन्द्रीय सहायता अनुदान देश में ग्रामीण निर्धनों की कुल संख्या में से राज्य/ संघ राज्य में रह रही गरीब जनसंख्या की प्रतिशतता के आधार पर किया जाता है । राज्यों द्वारा जिलों को अपने हिस्से के अनुदान का निर्धारण क्षेत्र के पिछड़ेपन के सूचकांक के आधार पर किया जाता है । सूचकांक का निर्धारण ग्रामीण क्षेत्रों में कुल मुख्य कर्मियों में से कृषि मजदूरों की प्रतिशतता के आधार पर किया जाता है, जिसमे पूरे क्षेत्र की जनसंख्या में से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा कृषि उत्पादन से सीधे न जुड़े लोगों की प्रतिशतता भी शामिल होती है ।

जिला स्तर पर जवाहर रोजगार योजना का क्रियान्वित करने का मुख्य दायित्व जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों तथा जिला परिषदों पर है और ग्राम स्तर पर यह दायित्व ग्राम पंचायतों का है । इस प्रकार जवाहर रोजगार योजना को क्रियान्वित करने के लिए पंचायती राज संस्थाओं को सीधे इस प्रक्रिया में शमिल किया गया है ।

केन्द्र द्वारा जारी अनुदान राशि सीधे जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों अथवा जिला परिषदों को दी जाती है । यह राशि दो किश्तों में दी जाती है । पहली किश्त में इन्दिरा आवास योजना तथा सामाजिक वाणिकी संबंधी पूरी राशि तथा दूसरी किश्त में शेष 50 प्रतिशत राशि जारी की जाती है । राशि की दूसरी किश्त जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी / जिला परिषद द्वारा निम्नलिखित शर्तें पूरी करने के पश्चात् जारी की जाती है :

- उपलब्ध कराई गई राशि का 50 प्रतिशत जिला विकास के लिए उपभोग किया जा चुका हो
- संबंधित राशि के लिए निर्धारित राशि का कम से कम 25 प्रतिशत जिले के पास आदि शेष के रूप में उपलब्ध होना चाहिए; तथा
- जिले संबंधी लेखा परीक्षा रिपोर्ट तथा प्रगति रिपोर्ट सीधे भेज दी जानी चाहिए ।

राज्य सरकारों से यह अपेक्षित है कि केन्द्र द्वारा जारी अनुदान राशि का हिस्सा प्राप्त हो जाने के एक माह के भीतर जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी/ जिला परिषद को अपने हिस्से की अनुदान राशि जारी कर दें।

बोध प्रश्न - 4

1) ग्रामीण रोजगार संबंधी क्रैश स्कीम प्रारम्भ करने के क्या उद्देश्य है ?

....

....

....

....

....

....

....

2) "काम के बदले अनाज" योजना [illegible] इसकी प्रमुख विशेषता

....

....

....

....

....

....

....

3) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के क्या उद्देश्य है ? कार्यक्रम के अन्तर्गत आंशिक रूप से मजदूरी के रूप में अनाज देने के क्या-क्या प्रमुख लाभ हैं ?

....

....

....

....

....

....

....

4) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम में प्रमुख तीन भिन्नताओं की विवेचना करें।

....

....

....

....

....

....

5) जवाहर रोजगार योजना की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना करें।

....

....

....

....

....

....

23.6 ग्रामीण निर्धनों के लिए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत हमने अब तक क्षेत्र आधारित कार्यक्रमों तथा रोजगारोन्मुखी कार्यक्रमों के बारे में चर्चा की है। अब हम गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के बारे में चर्चा करेंगे।

भारत में योजना के प्रारम्भिक चरण से लेकर साठ के दशक के मध्य तक यह माना जाता रहा है कि आर्थिक वृद्धि के लाभ देश की सबसे गरीब जनता तक भी पहुँचेंगे। किन्तु वास्तविक अनुभव इस अपेक्षा के अनुकूल नहीं थे। इनके अतिरिक्त 60 के दशक की समाप्ति पर यह देखा जाने लगा कि हरित क्रांति (Green Revolution) के लाभ वस्तुत: गरीब जनता तक नहीं पहुँच पाये थे। भूमिहीनों, छोटे तथा सीमान्त किसानों तथा कृषि मजदूरों की संख्या में 60 के पूरे दशक में वृद्धि होती देखी गई।

गरीबी निवारण के लिए सीधी कार्यवाही की जरूरत को अन्य घटकों से भी बल मिला। पहला पक्ष था देश के विभिन्न भागों में मजदूरों तथा किसानों द्वारा चलाया गया प्रतिरोध अभियान। दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी यह विचार सामने आया कि विकासशील देशों द्वारा उन क्षेत्रों का विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, जहाँ गरीबी अत्याधिक है तथा इसे दूर करने के सीधे प्रयास किए जाने चाहिए।

1970 के दशक के प्रारम्भ में गरीबी को दूर करने के लिए सीधे प्रयास किए जाने प्रारम्भ हुए। 1971 में गरीबी हटाओ का नारा बुलन्द हुआ। गरीबी हटाने के लिए जो प्रमुख कार्यक्रम चलाया गया वह समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम था। इससे पहले कि हम समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम पर चर्चा करे, उससे पहले हम इस कार्यक्रम से पूर्व संचालित कुछ गरीबी निवारक कार्यक्रमों पर चर्चा करेंगे।

23.6.1 छठी पंचवर्षीय योजना से पूर्व के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम

चौथी और पाँचवी पंचवर्षीय योजनाओं में प्रमुख कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए। अखिल भारतीय ऋण समीक्षा समिति (All India Credit Review Committee) की रिपोर्ट में 1960 में यह विचार व्यक्त किया गया कि विकास कार्यों के लाभ ग्रामीण जनता के गरीब वर्गों तक नहीं पहुँचे हैं। चौथी पंचवर्षीय योजना में दो प्रकार के कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए : पहला कार्यक्रम छोटे किसानों के लिए तथा दूसरा कार्यक्रम सीमान्त किसानों (marginal farmers) और कृषि मजदूरों (agricultural labourers) के लिए।

इन कार्यक्रमों के संचालन के लिए सोसाइटिज रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1860 के अन्तर्गत पंजीकृत विशेष एजेन्सियों की स्थापना की गई - छोटे किसानों के विकास संबंधी एजेन्सियाँ (Small Farmers Development Agencies) (एल.एफ.डी.ए.) और सीमान्त किसान तथा कृषि मजदूर विकास एजेन्सियाँ (एम.एफ.ए.एल.), जो सीमान्त किसानों तथा कृषि मजदूरों के लिए बनायी गई। प्रत्येक एजेन्सी में सदस्यता कम ही रखी गई जिसमें संस्थागत एजेन्सियों तथा जिला प्रशासक के प्रतिनिधि शामिल किए गए और इसके अध्यक्ष कलैक्टर या उपायुक्त होते थे। चौथी पंचवर्षीय योजना में छोटे किसानों के विकास संबंधी 46 एजेन्सियाँ प्रारम्भ की गई।

छोटे किसानों के विकास संबंधी एजेन्सियों के उद्देश्य निम्न प्रकार से थे :

- लक्षित वर्गों के लाभानुभोगियों अर्थात् छोटे किसानों की पहचान करना
- उनकी समस्या का पता लगाना तथा उनके बारे में अध्ययन करना
- उनके लिए उपयुक्त स्कीमें बनाना
- संस्थागत समर्थन प्राप्त करना तथा किसानों को ऋण देने के लिए ऋण स्रोतों को सुदृढ़ करना; तथा
- विस्तार सेवाओं तथा आपूर्तियों की व्यवस्था करना।

इसका बुनियादी उद्देश्य ग्रामीण निर्धनों की आय बढ़ाने के बारे में उनकी मदद करना है। उनकी आय में वृद्धि कराने के लिए प्रयुक्त तरीकों में, उन्हें उन्नत टेक्नालॉजी का प्रयोग करने में सहायता प्रदान करना; सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध कराना तथा डेरी, पशुपालन और बागवानी आदि के लिए सहायता अनुदान देकर उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार लाना आदि तरीके शामिल है।

सीमांत किसान तथा कृषि मजदूर विकास एजेन्सियों को भी छोटे किसानों के विकास हेतु एजेन्सियों की प्रक्रियानुसार ही प्रारम्भ किया गया। चौथी पंचवर्षीय योजना में ऐसी 41 एजेन्सियां प्रायोगिक आधार पर प्रारम्भ की गई। इन एजेन्सियों को प्रारम्भ करने का प्रमुख उद्देश्य छोटे तथा सीमांत किसानों की पहचान करना और उनकी समस्याओं को समझकर उनके लिए उपयुक्त प्रकार के आर्थिक कार्यक्रम तैयार करना; उत्पादों को संसाधित भण्डार करने तथा उनका विपणन करने के लिए सार्वजनिक सुविधाओं का सृजन करना, और इन कार्यक्रमों को क्रियान्वित कराने के लिए संस्थागत, वित्तीय तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं को पर्याप्त मात्रा उपलब्ध कराना था।

ये दोनों प्रकार की एजेन्सियां प्रेरक की भूमिका निभाने के लिए बनाई गई न कि इनके द्वारा किसी आर्थिक कार्यक्रम का सीधे संचालन किया जाना था। इन एजेन्सियों द्वारा प्रायोजित संस्थानों द्वारा यह कार्यक्रम चलाये जाने थे। छोटे किसानों के विकास संबंधी एजेन्सियां 1969 में स्थापित की गई। छोटे किसानों के विकास संबंधी एजेन्सियाँ और सीमान्त किसान तथा कृषि मजदूर विकास एजेन्सियां 1971-72 तक पूरी तरह सक्रिय हो चुकी थी। राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिश (1976) पर दोनों प्रकार की इन एजेन्सियों का परस्पर विलय कर दिया गया तथा इसे छोटे किसानों के विकास संबंधी एजेन्सियां (एस.एफ.डी.ए.) कहा जाने लगा। 1980 में जब छठी पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ हुई, उस समय 1818 विकास खण्डों मे यह एजेन्सियां अस्तित्व में आ चुकी थी तथा इन्हें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) के साथ एकीकृत कर दिया गया। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के बारे में आप अगले अनुच्छेद में पढेंगे।

रोजगार के अवसर बढ़ाने में यद्यपि इन दोनों कार्यक्रमों को कुछ सफलता मिली (अधिकांश रोजगार सड़क निर्माण कार्यों से सम्बद्ध थे), किन्तु इन कार्यक्रमों मे कुछ कमियां भी देखी गई। पहली कमी यह थी कि इन कार्यक्रमों के फण्ड सीमित मात्रा में होना। दूसरे लाभानुभोगियों की पहचान करने की प्रक्रिया बहुत धीमी थी। कृषि मजदूरों की पहचान करने पर बहुत कम ध्यान दिया गया। तीसरी कमी यह देखी गई कि आवश्यक मदों की सप्लाई के लिए कोई विशेष परियोजना तैयार नही की गई। चौथे दिए गए ऋण का प्रायः दुरुपयोग किया गया। पाँचवें अनेक क्षेत्रों में सहकारी ढाँचा प्रायः कमज़ोर बना रहा।

23.6.2 समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme)

ग्रामीण निर्धनों के लाभ के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) एक प्रमुख गरीबी निवारक कार्यक्रम माना गया है। अब हम इस कार्यक्रम के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे। सबसे पहले हम "समन्वित" शब्द को स्पष्ट करना चाहेंगे। इस शब्द का मूलभूत अर्थ है ऐसी अन्तरसम्बद्ध परियोजनाओं के पैकेज का प्रावधान करना जो एक दूसरे का समर्थन करती हो, एक दूसरे को सुदृढ़ करती हो, ताकि एक-आयामी एप्रोचा (One-dimensional approach) से बचा जा सके।

छठी योजना (1978-83) के मसौदे में चार पक्षों के समन्वयन पर जोर दिया गया है : सेक्टरल कार्यक्रमों का समन्वयन, स्थानिक एकीकरण, सामाजिक तथा आर्थिक प्रक्रिया का समन्वयन, वृद्धि, रोजगारों का सृजन तथा गरीबी उत्थान में बेहतर समन्वयन स्थापित करने हेतु नीतियों का समन्वयन।

समन्वयन की अवधारणा सेक्टरल एप्रोच से ऊपर उठाने के रूप में देखा गया है। इसके अन्तर्गत लक्षित समूह पर सीधा ध्यान केन्द्रित किया जाता है। लक्षित समूह में छोटे और सीमान्त किसान, कृषि मजदूर तथा अन्य मजदूरों के छोटे-छोटे समूह बनाकर उन पर सीधे ध्यान केन्द्रित किया जाता है। समन्वित ग्रामीण विकास को क्षेत्र विशेष के संदर्भ मे देखा गया, क्योंकि देश के विभिन्न भागों में गरीबी तथा रोजगार की स्थितियों में भिन्नता है। इस कार्यक्रम में पारितंत्र तथा पर्यावरण संबंधी संतुलन को भी लक्ष्य के रूप में रखा गया है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में अनेक प्रकार के कार्यक्रमों को सम्मिलित करने का प्रस्ताव किया गया है, जैसे कृषि विकास संबंधी कार्यक्रम, जिनमें भूमि तथा जल संसाधनों के कुशलतापूर्वक प्रयोग करना भी शामिल है; पशुपालन तथा छोटे और सीमान्त किसानों के लिए अन्य सहायक व्यवस्थाओं संबंधी कार्यक्रम; मछली पालन संबंधी कार्यक्रम, सामाजिक वाणिकी तथा फार्म वाणिकी कार्यक्रम, ग्रामीण तथा कुटीर उद्योग कार्यक्रम, गाँवों मे सेवा सेक्टरों के विकास संबंधी कार्यक्रम तथा कौशल विकास और मजदूरों को गतिशील बनाने संबंधी कार्यक्रम।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में विकास खण्ड स्तर की परिक्षेत्रीय योजनाओं पर बल दिया गया है, जिन्हें जिला तथा राज्य स्तरीय योजनाओं से जोड़ दिया जाएगा। स्वैच्छिक संलक्षणों के समान जन भागीदारी को भी कार्यक्रम में सक्रिय रूप से स्थान देने का प्रावधान किया गया है। समन्वित ग्रामीण विकास की अवधारणा को 1976 में प्राथमिक आधार पर चुने गये बीस विकास खण्डों में लागू कराया गया। इस कार्यक्रम में कुछ संशोधन करने के पश्चात इसे 1978 - 79 में 2300 विकास खण्डों में लागू किया गया, जिनमें से 800 विकास खण्डों में यह कार्यक्रम एस.एफ.डी.ए., डी.पी.ए.सी. तथा सी.ए.डी.पी. कार्यक्रम की अवधि की समाप्ति के साथ ही समाप्त होना था। 1979 - 80 में इस कार्यक्रम में 300 विकास खण्ड और जोड़ दिए गए तथा 31 मार्च, 1980 तक यह कार्यक्रम 2600 विकास खण्डों में लागू हो गया। 2 अक्टूबर, 1980 को इस कार्यक्रम को देश के सभी विकास खण्डों में लागू कर दिया गया। साथ ही साथ छोटे किसानों के विकास संबंधी एजेन्सियों (एस.एफ.डी.ए.) का समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में विलय कर दिया गया।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य चुने गए परिवारों की आय सृजन परिसम्पत्ति में सहायता (अनुदान तथा संस्थागत ऋण से) करना, ताकि उन्हें स्व-रोजगार प्रदान करके उनकी आय को बढ़ाया जा सके और उन्हें गरीबी रेखा से ऊपर उठाया जा सके। उन परिवारों को गरीब परिवार माना गया, जिनकी वार्षिक आय रु.6400/- से कम थी। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम अंतोदय के सिद्धान्त (अर्थात् गरीबों में से सबसे गरीब को प्राथमिकता) पर आधारित है, इसलिए इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उन परिवारों को सहायता दी जाती है जिनकी वार्षिक आय रु.4800/- अथवा इससे कम है।

इसके अतिरिक्त उन परिवारों को पहले सहायता प्रदान की जाती है जिनकी वार्षिक आय रु.3500/- से कम है। इस कार्यक्रम में जिन गरीब वर्गों को शामिल किया जाता है उनमें छोटे तथा सीमान्त किसान, कृषि मजदूर और ग्रामीण दस्तकार आदि आते हैं। इन शर्तों के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य मार्गदर्शी सिद्धान्त भी अपनाये गये हैं।

इस कार्यक्रम में कम से कम 30 प्रतिशत अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति परिवारों को सहायता दी जाएगी। यह शर्त जिला तथा राज्य स्तर पर संचालित कार्यक्रमों पर भी लागू होती है। कम से कम 30 प्रतिशत लाभानुभोगी महिलाएं होनी चाहिए इनमें से जिन परिवारों की मुखिया महिलाएं है, उन परिवारों को प्राथमिकता दी जाएगी।

जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है इस कार्यक्रम के देशभर में लागू होने के साथ-साथ ही छोटे किसानों के विकास संबंधी एजेन्सियों का समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में विलय कर दिया गया। इसके अतिरिक्त विभिन्न कार्यक्रमों को संचालित करने वाली एजेन्सियों (एस.एफ.डी.ए., डी.पी.ए.पी., डी.डी.पी. आदि) का विलय भी कर दिया गया और जिला स्तर पर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई. आर. डी. पी.), सूखा क्षेत्र कार्यक्रम (डी. पी. ए. बी.) तथा मरुस्थल विकास कार्यक्रम (डी.डी.पी.) को संचालित करने हेतु जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी (डी.आई.डी.ए.) की स्थापना की गई।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम केन्द्र आयोजित स्कीम के रूप में प्रारम्भ किया गया जिसमें वित्तीय भार केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा समान रूप से वहन किया जाना था। कार्यक्रम के मार्गदर्शन, नीति-निर्माण तथा प्रबोधन के मामलों में ग्रामीण विकास मंत्रालय को शीर्ष स्तर एजेन्सी के रूप में स्वामित्व सौंपा गया है। राज्य स्तर पर कार्यक्रम का प्रबोधन जिला स्तरीय समन्वयन समिति द्वारा किया जाता है। जिला स्तर पर जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियां काम करती हैं, जो सोसाइटी रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत सोसाइटी के रूप में है।

परीक्षेत्रीय स्तर पर कार्यक्रम के क्रियान्वयन का दायित्व विकास खण्ड स्तर पर विकास खण्ड अधिकारी (Block Development Officer) (बी.डी.ओ.) मुख्य समन्वयकर्त्ता होता है तथा प्रसार अधिकारी इस कार्य में उसकी सहायता करते हैं। ग्राम स्तर पर विकास खण्ड अधिकारी के तहत ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ता (Village level worker) (बी.एल.डब्ल्यू.) काम करता है। ग्रामीण विकास कार्यों से सम्बद्ध सामाजिक आर्थिक गतिविधियों का संचालन करने वाले स्वैच्छिक संगठनों तथा अन्य कार्य-समूहों को भी कार्यक्रम से सम्बद्ध किया जाता है। स्वैच्छिक संगठनों को दी जाने वाली अनुदान राशि जन कार्य तथा ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (सी.ए.पी.ए.आर.टी.) के माध्यम से दी जाती है।

ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ता / विकास खण्ड स्तरीय स्टाफ द्वारा लाभानुभोगियों की सूची तैयार की जाती है। जिन परिवारों की वार्षिक आय रु. 3500 से कम होती है पहले उन्हें सहायता प्रदान की जाती है। तत्पश्चात परिवार की कार्यक्षमताओं, वरीयता तथा कार्य के प्रति सम्मान को ध्यान में रखते हुए उनके लिए विभिन्न परियोजनाओं का चुनाव किया जाता है। विभिन्न गतिविधियों तथा विभिन्न लाभानुभोगियों को दी जाने वाली सहायता अनुदान की दरें भी अलग-अलग है, जो 25 प्रतिशत से लेकर 66.66 प्रतिशत तक है। सहायता राशि को ऋण से जोड़ दिया जाता है तथा आर्थिक रूप से जीवनदी (Viable) परियोजनाओं के लिए यह राशि परिवार को सामग्री के रूप में दी जाती है। प्राय: यह सुनिश्चित किया जाता है कि सहायता राशि तथा ऋण का अनुपात क्रमश: 1:2 का हो। ऋण राशि मुख्यतया वित्तीय संस्थानों के माध्यम से दिलाई जाती है। ऋण राशि 10 प्रतिशत की रियायती ब्याज दरों पर उपलब्ध कराई जाती है। ऋण संबंधी आवेदन विकास खण्ड अधिकारी द्वारा प्रयोजित किए जाते हैं।

इस आधार पर बैंक प्रबन्धक आवेदन पर कार्यवाही करके ऋणों की स्वीकृति प्रदान करते हैं। अप्रैल 1988 में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लाभानुभोगियों के लिए एक सामूहिक बीमा योजना प्रारम्भ की गई, जो 18 से 60 वर्ष की आयु के लाभानुभोगियों के लिए थी। बीमा कवर उस दिन से लागू होता है जिस तिथि को लाभानुभोगी को ऋण राशि दी जाती है तथा बीमा तब तक लागू रहता है जब तक लाभानुभोगी की आयु 60 वर्ष नहीं हो जाती अथवा परिसम्पत्तियां वितरित करने की तिथि से तीन वर्ष के भीतर, जो भी पूर्वव्याप्त हो। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत लाभानुभोगियों को ऋण तथा सहायता राशि का एक पैकेज उपलब्ध कराया जाता है। सहायता राशि सरकार द्वारा दी जाती है (केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा बराबर-बराबर हिस्सों में)। ऋण राशि बैंकों के माध्यम से दी जाती है जिनमें व्यावसायिक बैंक, सहकारी बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक शामिल होते हैं।

आइए, अब हम समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के निष्पादन (performance) के बारे में चर्चा करते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि छठी पंचवर्षीय योजना में आबंटन, व्यय, ऋण तथा निवेश आदि संबंधी उपलब्धियां, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लाभानुभोगियों की संख्या योजना अवधि में निर्धारित लक्ष्यों से आधिक नहीं है। प्रति व्यक्ति ऋण राशि तथा जमा राशि के अनुपात आदि जैसे अन्य क्षेत्रों में गिरावट आई है।

अनेक मूल्यांकन अध्ययनों से पता चला है कि लगभग 40 प्रतिशत लोग रु. 3500/- के आय स्तर से ऊपर पहुंच चुके है तथा 55 से 90 प्रतिशत लोग (अलग-अलग अध्ययनों के आधार पर) ऐसे है जिनकी आय में कुछ न कुछ वृद्धि अवश्य हुई है। परिवारों की गलत पहचान करने की संख्या लगभग 15 से 20 प्रतिशत पाई गई, ऐसे परिवारों की संख्या काफी अधिक थी जो गरीबी रेखा से ऊपर है। प्रत्येक ब्लाक के लिए वित्त निर्धारण तथा भौतिक सुविधाओं का निर्धारण समान रूप से किया गया, जिसके परिणामस्वरूप कई मामलों में ऐसे परिवारों का चयन हो गया जो लाभ प्राप्त करने के पात्र नहीं है। इसके अतिरिक्त भ्रष्ट तथा गलत तरीकों से भी ऋण प्राप्त करने की शिकायतें मिली। इसके अतिरिक्त परियोजनाओं का चुनाव करने में भी पक्षपात दिखाया गया तथा पशुपालन, विशेष रूप से दुधारन पशुओं के लिए अधिक राशि वितरित की गई। कच्चे माल की सप्लाई संबंधी संस्थागत समर्थन भी बहुत कम मात्रा में दिया गया और माल की बिक्री के लिए बाजार की सुविधाएं भी कम उपलब्ध कराई गई। कई क्षेत्रों में बैंक सुविधाएं अपर्याप्त पाई गई। कई मामलों में स्टाफ प्रशिक्षित नहीं था तथा विभिन्न विभागों में परस्पर समन्वयन तथा एकीकरण का अभाव भी देखा गया।

छठी योजना से प्राप्त अनुभवों के आधार पर सातवीं पंचवर्षीय योजना में कुछ परिवर्तन किए गए। इनमें से एक परिवर्तन यह किया गया कि गरीबों की अल्प-निवेश क्षमता को ध्यान में रखते हुए समूह (ग्रुप) एप्रोच के स्थान पर परिवार एप्रोच धारण किया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि चुने हुए परिवारों को न केवल पूरे पैकेज के लाभ प्रदान किए जायेंगे, बल्कि एक ही परिवार के विभिन्न सदस्यों को परिसम्पत्ति निर्माण के लिए एक से अधिक परियोजना देकर उनकी सहायता भी की जाएगी। इससे उनमें उत्पादक निवेश क्षमता बढ़ाने में तथा उनकी आय में वृद्धि करने में मदद मिलेगी। सातवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक सेवाओं तथा व्यवसाय (Industries Services and Business) (आई.एस.बी.) सेक्टर की गतिविधियों को तेज करने की परिकल्पना भी की गई।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लिए रु.2643/- करोड़ की परिव्यय राशि निर्धारित की गई। 2 करोड़ लाभानुभोगियों (एक करोड़ विद्यमान तथा एक करोड़ नए लाभानुभोगी) को कार्यक्रम के अन्तर्गत कवर करने का लक्ष्य रखा गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में विकास खण्डों के लिए समान आधार पर वित्तीय निर्धारण की प्रक्रिया बंद कर दी गई तथा इसके स्थान पर विकास खण्ड विशेष में व्याप्त गरीबी के आधार पर वित्तीय राशि निर्धारित करने की प्रक्रिया अपनाई गई।

सातवीं योजना में रखे गए वित्तीय तथा भौतिक लक्ष्य लगभग प्राप्त कर लिए गए। इसके अतिरिक्त गतिविधियों में दिशा परिवर्तन भी हुआ। अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति के बारे में निर्धारित लक्ष्यों से अधिक परिणाम प्राप्त हुए। जहाँ तक महिलाओं का प्रश्न था गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु, पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल राज्यों में 30 प्रतिशत का लक्ष्य पूरा किया गया।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के बारे में प्रमुख आलोचना यह की जाती है कि समन्वयन की अवधारणा, जो इस कार्यक्रम के लिए धारण की गई, उसे क्रियान्वयन के समय छोड़ दिया गया। एक और आलोचना यह भी की जाती है कि इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उन लाभानुभोगियों की भी सहायता की गई जो इसके लिए पात्र नहीं थे। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लाभानुभोगियों की वितरित ऋण के बारे में भी कुछ कमियां देखी गई। गरीबी की समस्या की गहनता के अनुरूप ऋण के रूप में दी गई राशि की मात्रा भी अपेक्षाकृत कम समझी गई है। ऋण देने में देरी करने की शिकायतें भी की गई है। इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम में कुछ ऐसे बिचौलियों के होने की बात भी की गई है जो ऋण में दी जा रही राशि का कुछ हिस्सा स्वयं हड़प जाते हैं। ऋण की वसूली के बारे में भी कुछ समस्यायें सामने आई हैं। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के संगठनात्मक ढांचे में भी कुछ कमियां पाई गई हैं।

जहाँ समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम से गरीब से गरीब लोगों को मदद मिली है, वहीं गरीब वर्गों को गरीबी रेखा से ऊपर उठ सकने हेतु निवेश पर्याप्त है। जहाँ पूरक सम्पर्क उपलब्ध नहीं कराये गए हैं और जहाँ कार्यक्रम के अन्तर्गत दिए गए ऋण से बनाई गई परिसम्पत्तियाँ है तथा सहायता राशि पर्याप्त नहीं है उन मामलों में यह कार्यक्रम अधिक कारगर नहीं रहा है। उदाहरण के लिए, अनेक मामलों में गरीबों को घटिया नसल के दुधारु पशु दिए गए, जिनका पालन-पोषण इतना महंगा था कि गरीब ग्रामीण को वह पशु बेचने पर मजबूर होना पड़ा। विभिन्न विभागों में कमजोर आपसी सहयोग, नौकरशाही की निष्क्रियता तथा संरचनात्मक ढांचे का अभाव आदि ऐसी कई अन्य समस्याएं आई, जिनके कारण कार्यक्रम को अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी।

23.6.3 ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम (डवाकरा)

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम लागू होने के कुछ वर्ष पश्चात यह महसूस होने लगा कि महिलाओं को कार्यक्रम से उतना लाभ नहीं हुआ है जितना अपेक्षित था। इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रम तैयार किया जाए। इसके पीछे बुनियादी धारणा यह रही कि महिलाओं को कौशल तथा प्रशिक्षण प्रदान करके उनकी आय सृजन क्षमता को बढ़ाया जाए। उच्च आय से यह अपेक्षा की जाती है कि उनका पोषण स्तर बेहतर हो सकेगा और महिलाओं की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो सकेगी।

इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं तथा बच्चों के विकास संबंधी इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को परिसंम्पत्तियां तथा ऋण देकर उनके कौशल में विकास करना है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य महिलाओं को संगठनात्मक समर्थन प्रदान करना भी है ताकि महिलाओं को वस्तुओं का उत्पादन करने में सहायता मिल सके। इस कार्यक्रम में लक्षित वर्ग समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के समान ही है, किन्तु यहाँ महिला - समूहों को, न कि परिवारों को सहायता देने का प्रावधान है। इस कार्यक्रम में यह परिकल्पना की गई है कि 15 से 20 महिलाओं का एक समूह बनाया जाएगा तथा यह समूह परस्पर हितों वाली गतिविधियों का संचालन करेगा। इस समूह को रु.15000/- की राशि की एक किश्त उपलब्ध कराई जाएगी। यह राशि केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा युनीसेफ द्वारा समान अनुपात में दी जाएगी। इस राशि का उपयोग ऐसे उद्देश्यों के लिए पूंजी के रूप में किया जाएगा जिनका सम्बन्ध परम्परागत उत्पाद तथा शिशु देखभाल सुविधाओं से हो। समूह आयोजक को यात्रा भत्ते के रूप में प्रतिवर्ष रु.2000/- की राशि भी मिलती है।

यह कार्यक्रम 1982-83 में प्रायोगिक आधार पर 50 जिलों में प्रारम्भ किया गया। इन जिलों का चुनाव, उच्च शिशु - मृत्यदर तथा महिलाओं के अल्प-साक्षरता स्तर के आधार पर किया गया। 1989 - 90 तक यह कार्यक्रम देश के 106 जिलों में चलाया जा रहा था। यह कार्यक्रम आर्थिक लाभ देने तक ही सीमित नहीं है। इसमें समर्थनकारी सेवाओं को भी शामिल किया गया है जैसे मातृ - शिशु देखभाल, प्रौढ़ शिक्षा, प्रतिरक्षीकरण आदि। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण तथा महिला एवं बाल विकास विभागों के साथ समन्वयन किया जाता है।

राज्य स्तर पर उचसचिव स्तर की महिला अधिकारी इस कार्यक्रम की प्रभारी अधिकारी होती है। जिला स्तर पर किसी महिला अधिकारी को सहायक परियोजना अधिकारी (Assistant Project Officer) (ए.पी.ओ.) (महिला विकास) के रूप में नियुक्त किया जा सकता है जो जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी के परियोजना अधिकारी की सहायता करती है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत खण्ड स्तर पर एक महिला खण्ड विकास अधिकारी (मुख्य सेविका), वह ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ता (ग्राम सेविका) तथा एक ग्राम सेविका की टीम होती है। इस कार्यक्रम के लिए वित्तीय सहायता मुख्य रूप से केन्द्र सरकार द्वारा दी जाती है। केन्द्र सरकार द्वारा अपने तथा यूनीसेफ के हिस्से की राशि जारी की जाती है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न एजेन्सियों द्वारा कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त ग्राम सेविकाएं, मुख्य सेविकाएं तथा सहायक परियोजना अधिकारी समूह द्वारा संचालन के लिए गतिविधियों तथा परियोजनाओं का चुनाव करने में सहायता प्रदान करती है। इस कार्यक्रम में लगभग सभी स्तरों पर कार्मिकों का अभाव देखा गया है, ढाँचागत सुविधाओं का आभाव रहा है, परियोजनाओं के चुनाव को लेकर ऋण संबंधी समस्याएं रही हैं तथा ग्रुप को अपनी भूमिका स्पष्ट नहीं हुई है तथा ग्रुप के सदस्यों में प्रेरणा का अभाव रहा है।

23.6.4 ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राइसेम)

यह कार्यक्रम ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से एक अलग स्कीम के रूप में 1979 में प्रारम्भ किया गया, ताकि बेरोजगार ग्रामीण युवकों (18-35 वर्ष की आयु के) को प्रशिक्षण तथा तकनीकी कौशल प्रदान करके उन्हें एक रोजगार के लिए समर्थ बनाया जा सके। प्रत्येक विकास खण्ड से 40 ग्रामीण युवकों को चुना गया तथा उन्हें कौशल विकास और उद्यमी के रूप में तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान किया गया। तकनीकी प्रशिक्षण न केवल उनके कौशल विकास के लिए ही दिया गया बल्कि उनकी धारणाओं में परिवर्तन लाने और उन्हें स्वरोजगार हेतु प्रेरित करने के लिए भी दिया गया। स्वरोजगार का अर्थ है पूर्णकालिक तथा आय सृजन रोजगार, जिनसे संबधित युवक के परिवार को पर्याप्त आय हो सके तथा वह गरीबी रेखा से ऊपर उठ सके। 1980 में जब समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम देश के सभी खण्डों में लागू किया गया तो यह कार्यक्रम युवकों को स्व-रोजगार के लिए प्रेरित करने हेतु समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का हिस्सा बन गया। 1981 - 82 से इस कार्यक्रम के लिए अलग से बजट प्रावधान करने की प्रक्रिया समाप्त कर दी गई।

इस कार्यक्रम के लिए चुने गए युवक को या तो मास्टर क्राफ्टमैन (मुख्य शिल्पी) के तहत रखकर या फिर किसी प्रशिक्षण संस्थान से प्रशिक्षण दिलाया जाता है। इस कार्यक्रम के प्रशिक्षणार्थियों को छात्रवृत्ति तथा औजारों की किट दी जाती है। सफलतापूर्वक प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने पर वह सहायता राशि / ऋण / आय उपार्जन सम्पत्ति प्राप्त करने के पात्र हो जाते है तथा यह सुविधाएं उन्हें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत उपलब्ध कराई जाती हैं।

ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम के उद्देश्यों में कुछ विशेष परियोजनाओं के माध्यम से दिहाड़ी रोजगार (1982 - 83) प्रदान करना शामिल है। राज्य स्तरीय समन्वयन समिति द्वारा चुने गई इन परियोजनाओं को कुछ शर्तें पूरी करनी होती है जैसे यह परियोजनाएं समन्वित स्वरूप की हो तथा इसके लाभानुभोगी समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत लक्षित वर्गों के हों।

पात्र युवकों का चुनाव खण्ड अधिकारी द्वारा लक्षित वर्ग में से ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ता की सहायता से किया जाता है। व्यवसायों की पहचान विभिन्न योजनाओं को ध्यान में रखकर तथा विभिन्न विभागों के जिला स्तरीय अधिकारियों से सलाह करके जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी द्वारा किया जाता है। इसके पश्चात जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी द्वारा प्रशिक्षण प्रदान करने वाले संस्थानों की सूची तैयार की जाती है, जैसे औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, पोलीटेकनिक संस्थान, खादी तथा ग्रामीण उद्योग संस्थान, कृषि विज्ञान केन्द्र आदि। प्रशिक्षणार्थियों के लिए कोई शैक्षिक योग्यता निर्धारित नहीं की जाती है। प्रशिक्षण पाठ्यचर्या में

कार्यकौशल संवंधी प्रशिक्षण तथा प्रबन्धकीय कौशल प्रशिक्षण को शामिल किया जाता है। ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम को लागू कराने का दायित्व जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी पर होता है। सहायक परियोजना अधिकारी तथा प्रसार अधिकारी (Extension Officer), अपने दैनिक दायित्वों के अतिरिक्त इस कार्यक्रम को प्रसार सेवा में प्रदान करने के लिए भी उत्तरदायी होते हैं। राज्य स्तर पर इस कार्यक्रम के लिए जिला स्तरीय समन्वयन समिति की एक उपसमिति भी होती है। शीर्षस्थ स्तर (apex level) पर इस कार्यक्रम का नीतिगत मार्गदर्शन तथा प्रबोधन केन्द्र सरकार द्वारा समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा अन्य कार्यक्रमों के लिए गठित केन्द्रीय समिति द्वारा किया जाता है। इस समिति की अध्यक्षता ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा की जाती है।

एक बार प्रशिक्षण पूरा कर लेने के पश्चात युवक स्वरोजगार के लिए पात्र हो जाता है। उस स्थिति में बुनियादी सहायक प्रणालियों ढाँचागत सुविधाओं तथा पूर्व तथा भावी सम्पर्कों का महत्व और बढ़ जाता है। पूर्व सम्पर्कों (Backward linkages) से अभिप्राय शिक्षार्थियों को सहायता तथा इनपुट और ढाँचागत सुविधाएं प्रदान करने से है तथा भावी सम्पर्कों (Forward linkages) का सम्बन्ध प्रशिक्षार्थी द्वारा उत्पादित वस्तुओं की मांग तथा विपणन व्यवस्था से है। प्रशिक्षार्थियों के लिए इन सम्पर्कों का प्राक्कलन करने का दायित्व जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी पर होता है। प्रशिक्षण के लिए ढांचागत सुविधाएं राष्ट्रीय / राज्य स्तरीय इस संगठनों के नेटवर्क द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। जिनमें हैदराबाद स्थित राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान (एन.आई.आर.टी.), तथा गुवाहाटी स्थित उसका क्षेत्रीय उपकेन्द्र, राजकीय ग्रामीण विकास संस्थान (एस.आर.आई.टी.), प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र (ई.टी.सी.) तथा प्रबन्धक विकास और ग्रामीण प्रबन्धन आदि अन्य संस्थान शामिल है। यह संस्थान मुख्यतया प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान करते है तथा वह इन कार्यक्रम के प्रशिक्षार्थियों को प्रशिक्षण देने के साथ-साथ ग्रामीण विकास के विभिन्न क्षेत्रों में सहायता प्रदान करते हैं।

जब हम युवकों के प्रशिक्षण संबंधी इस कार्यक्रम के निष्पादन की समीक्षा करते हैं तो हमें इसके दो पक्षों पर अवश्य ध्यान केन्द्रित करना चाहिए : कार्यक्रम के अन्तर्गत कितनी संख्या में युवकों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य रखा गया तथा कितना वित्तीय भत्ता वसूल किया गया। दूसरा यंत्र यह है कि कितने प्रशिक्षित युवक स्वरोजगार के अवसर आसानी से प्राप्त करने में समर्थ हो सके। दूसरे पक्ष के तहत हमें यह समीक्षा भी करनी चाहिए कि स्वरोजगार से युवकों के परिवारों को गरीबी रेखा से उपर उठाने में कितनी सहायता मिली है।

छठी पंचवर्षीय योजना के अन्तिम चार वर्षों में लक्ष्यों (भौतिक तथा वित्तीय) में वृद्धि हुई है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में प्रशिक्षित युवकों की संख्या निर्धारित नहीं की गई। छठी पंचवर्षीय योजना में प्रशिक्षित युवकों में से 47.1 प्रतिशत ने स्वरोजगार प्राप्त किया तथा सातवीं योजना में यह संख्या 46.6 प्रतिशत रही। 1982 - 83 से दिहाड़ी रोजगार को भी इस योजना में शामिल कर लिया गया। कुल प्रशिक्षित युवकों में से दिहाड़ी रोजगार प्राप्त करने वालों की संख्या क्रमश: 9 तथा 17 प्रतिशत रही। यद्यपि इस कार्यक्रम की परिकल्पना स्व:रोजगार हेतु की गई, किन्तु दिहाड़ी रोजगार के परिणामस्वरूप प्रशिक्षित युवकों को रोजगार उपलब्ध कराने संबंधी अवसरों में काफी वृद्धि हुई। कुल प्रशिक्षित युवकों में से रोजगार प्राप्त युवकों का प्रतिशत कभी भी 71 प्रतिशत से अधिक नहीं रहा। कुल प्रशिक्षित युवकों में से अनुसूचित जाति /अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं की प्रतिशतता में वृद्धि होने की प्रवृत्ति देखी गई है।

ग्रामीण युवकों के स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनेक कमियां भी देखी गई, जिनमें से कुछेक कमियां निम्न प्रकार से हैं :

- विभिन्न क्षेत्रों में कार्यक्रम का क्रियान्वयन समान रूप से नहीं हुआ है
- यद्यपि कार्यक्रम में प्रशिक्षण प्रदान किया गया है, किन्तु कई मामलों में देखा गया कि स्वरोजगार चलाने के बारे में प्रशिक्षार्थियों में विश्वास की भावना नहीं जगाई गई
- पैकेज के अन्तर्गत दिए गए प्रशिक्षण में उपयुक्त टेक्नोलॉजी का अभाव देखा गया है
- विभिन्न प्रशिक्षण संस्थानों की प्रशिक्षण व्यवस्थाओं में तथा उन द्वारा निर्धारित पाठ्यचर्या में कमियां देखी गई हैं

- व्यवसायों के चुनाव के मामले में स्वरोजगार की संभावनाओं तथा वित्तीय वहनीयता के बारे में पर्याप्त ढंग से पूर्वानुमान नहीं लगाया गया
- कच्चा माल उपलब्ध कराने तथा विपणन कार्य में सहायता सुविधाओं का अभाव देखा गया है
- इस कार्यक्रम के लिए सभी जिलों में प्रशिक्षण केन्द्र उपलब्ध नही है
- अनेक मामलों में इस कार्यक्रम के प्रशिक्षणार्थियों को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के माध्यम से उनकी परियोजनाओं के लिए उपलब्ध कराई गई सहायता उन्हें प्रदत्त प्रशिक्षण के अनुरूप नहीं है ।

बोध प्रश्न - 5

1) छोटे किसानों के विकास संबंधी एजेन्सियों (एस.एफ.डी.ए.) तथा सीमान्त किसान एवं कृषि मजदूर विकास एजेन्सियों (एम.एफ.ए.एल.) की स्थापना क्यों की गई ?

....

....

....

....

....

2) समन्वित ग्रामीण विकास में समन्वित शब्द पद का क्या अभिप्राय है ?

....

....

....

....

....

3) समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लाभानुभोगियों का लक्षित वर्ग कौन-सा है ?

....

....

....

....

4) समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की दो प्रमुख कमियों का उल्लेख करें ।

....

....

....

....

....

5) ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम के बारे में चार सकारात्मक घटकों का उल्लेख करें।

....

....

....

....

....

6) ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं तथा बच्चों के विकास संबंधी कार्यक्रम की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना करें।

....

....

....

23.7 सारांश

इस इकाई का उद्देश्य ग्रामीण निर्धनों के लिए चलाए गए विभिन्न आय-सृजन कार्यक्रमों से आपको परिचित कराना था। हमने मुख्य रूप से तीन प्रकार के कार्यक्रमों पर चर्चा की है। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (एम.एन.पी.), क्षेत्र आधारित कार्यक्रम; तथा लक्षित लाभानुभोगी वर्गों संबंधी कार्यक्रम।

इस इकाई का प्रारम्भ हमने जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए अपेक्षित आधारभूत आवश्यकताओं, विशेष रूप से सामाजिक आवश्यकताओं, की चर्चा से किया है। जैसा कि हमने पढ़ा "आय" लोगों की उन वस्तुओं की क्रयशक्ति का द्योतक है जो जीवन स्तर का निर्धारण करती है। इस उद्देश्य से हमने ग्रामीण निर्धनों पर ध्यान केन्द्रित किया। इसमें हमने देखा कि रोजगार अवसरों के सीमित होने के कारण आय में किस प्रकार उतार-चढ़ाव आता है। ग्रामीण क्षेत्रों में चूंकि रोजगार प्रदाताओं की संख्या बहुत कम है, और मौसम के अनुसार ही ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों को रोजगार मिलना निर्भर करता है, इसलिए रोजगार के अवसर प्रदान करने हेतु सरकार को कदम उठाने पड़े। हमने तीन प्रकार के कार्यक्रमों के बारे मे चर्चा की है उपभोग, उत्पादन तथा संस्थागत कार्यक्रम। इस इकाई में हमने उपभोग स्वरूप कार्यक्रमों तथा कुछ उत्पादकता स्वरूप के कार्यक्रमों पर ध्यान केन्द्रित किया है। हमने इस इकाई में गरीबी निवारक तथा आय सृजन कार्यक्रमों संबंधी विचारण के विकास क्रम तथा राजनीतियों के बारे में भी प्रकाश डाला है।

इस इकाई में हमने चार प्रकार के कार्यक्रमों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की है : न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, क्षेत्र आधारित कार्यक्रम, आय सृजन कार्यक्रम और गरीबी निवारक कार्यक्रम। जिन क्षेत्र आधारित कार्यक्रमों पर हमने चर्चा की उनमें सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम, कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम, मरुस्थल विकास कार्यक्रम तथा पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम शामिल हैं। आय उपार्जन कार्यक्रमों में हमने प्रायोगिक गहन ग्रामीण रोजगार परियोजना (पी.आई.आर.ई.पी.), ग्रामीण रोजगार संबंधी क्रैश स्कीम (सी.ए.आर.ई.) तथा काम के बदले अनाज कार्यक्रम जैसी पहले से चल रही स्कीमों तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.); ग्रामीण भूमिहीनों संबंधी रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.) तथा जवाहर रोजगार योजना आदि के बारे में चर्चा की है। गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के अन्तर्गत छोटे किसानों के विकास संबंधी एजेन्सियों (एस.एफ.डी.ए.) तथा सीमान्त किसान एवं कृषि मजदूर विकास एजेन्सियों (एम.एफ.ए.एल.) की स्थापना के बारे में चर्चा करने के पश्चात् हमने समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवकों के स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं तथा बच्चों के विकास संबंधी कार्यक्रम पर भी विस्तारपूर्वक चर्चा की है।

23.8 शब्दावली

वनरोपण	:	वन उगाने के लिए पौधे लगाने की प्रक्रिया ।
सहायता राशि	:	बाजार कीमत तथा लाभानुभोगी उपभोक्ता द्वारा की गई कम कीमत का अन्तर । यह अन्तर सरकार द्वारा पूरा किया जाता है ।
प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन लागत	:	एक दिहाड़ी की मजदूरी पर होने वाली लागत।
दिहाड़ी-सामग्री	:	दैनिक मजदूरी पर लाभ की गई कुल राशि ।
अनुपात	:	गैर-मजदूरी सामग्री पर व्यय की गई कुल राशि का अनुपात ।

23.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1) उपभोक्ता स्वरुप के, उत्पादक स्वरूप के तथा संस्थागत प्रकार के । रोजगार सृजन कार्यक्रम उपभोगक्ता तथा उत्पादकता स्वरूप के मिश्रित कार्यक्रम होंगे ।

2) 1) हरित क्रांति के प्रयासों का फल गरीबों तक नहीं पहुँच पाया ।
   2) गरीबी की गंभीरता को मापने के प्रयास ।
   3) विकास अर्थव्यवस्था में परिवर्तन - अत्यन्त गरीबी पर तथा न्याय वितरण पर जोर देना ।

बोध प्रश्न - 2

1) बुनियादी आवश्यकता की अवधारणा में व्यक्तिगत तथा सामाजिक उपभोग की वस्तुएँ, मानवीय अधिकार, जन भागीदारी आदि पक्षों का समावेश होता है, जो इस अवधारणा के वृहतर फ्रेमवर्क प्रदान करता है । दूसरी ओर न्यूनतम आवश्यकताओं संबंधी अवधारणा में केवल सामाजिक उपभोग की वस्तुएं ही शामिल होती है तथा उपभोग संबंधी अन्य बातें योजना रणनीतियों के माध्यम से कवर होती है ।

2) सातवीं योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र से संबंधित ग्यारह घटकों का समावेश किया गया है जो इस प्रकार है :
   - बुनियादी शिक्षा
   - ग्रामीण स्वास्थ्य
   - ग्रामीण जल आपूर्ति
   - ग्रामीण विद्युतीकरण
   - पोषण
   - ग्रामीण स्वच्छता

   निम्नलिखित तीन घटक पाँचवी योजना के पश्चात् जोड़े गए है :
   - गाँवों में खाना बनाने की ऊर्जा
   - ग्रामीण स्वच्छता; तथा
   - जन वितरण प्रणाली

बोध प्रश्न - 3

1) – क्रियान्वयन की धीमी गति ।
   – कार्मिकों के रखरखाव के लिए पर्याप्त वित्तीय सहायता तथा संगठनात्मक समर्थन का अभाव ।
2) – भूमि की चकबंदी की धीमी गति।
   – विस्तार सेवाओं संबंधी समर्थन का अभाव ।

इनकी प्रमुख उपलब्धियाँ निम्न प्रकार से थी :

क्षमताओं के उपभोग की सीमा में विस्तार, समस्त सिंचित क्षेत्र भूमि तथा सिंचाई की मात्रा में वृद्धि तथा जल वितरण और जल की उपलब्धता में सुधार ।

3) उप अनुच्छेद 23.4.3 पर आधारित उत्तर दें ।

4) उप अनुच्छेद 23.4.4 पर आधारित उत्तर दें ।

बोध प्रश्न - 4

1) प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार थे : ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार तथा अल्परोजगार प्राप्त पुरुषों तथा महिलाओं के लिए लाभप्रद रोजगार के अतिरिक्त, अवसर उपलब्ध कराना; ग्रामीण क्षेत्र में आय वृद्धि के लिए चिरस्थायी सामुदायिक सम्पत्तियों तथा सामाजिक ढाँचें का निर्माण; तथा ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन स्तर में व्यापक रूप से सुधार लाना ।

2) मजदूरी के आंशिक रूप से अनाज देने का प्रमुख लाभ यह है कि इससे खाद्यान्नों की कीमत में स्थिरता लाई जा सकती है, इससे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि मजदूरों को कम से कम अच्छी क्वालिटी का अनाज मिले तथा इससे सरपल्स स्टॉक का प्रभावकारी उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है ।

3) उप अनुच्छेद 23.5.1 पर आधारित उत्तर दें ।

4) ग्रामीण भूमिहीन मजदूरों के लिए रोजगार गारंटी कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम में निम्नलिखित भिन्नताएं है :

– रोजगार गारंटी कार्यक्रम में बेरोजगार भूमिहीन मजदूरों को प्राथमिकता दी गई ।

– इस कार्यक्रम में भूमिहीन परिवार के एक सदस्य को वर्ष में कम से कम 100 दिन रोजगार उपलब्ध कराने की गारंटी दी गई है ।

– राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के विपरीत इस कार्यक्रम की पूरी वित्तीय व्यवस्था केन्द्र द्वारा की जाती है ।

5) उप अनुच्छेद 23.5.4 पर आधारित उत्तर दें ।

बोध प्रश्न - 5

1) इन एजेन्सियों की स्थापना ग्रामीण निर्धनों को उन्नत टेक्नोलॉजी संबंधी सुविधाएं उपलब्ध कराकर, सिंचाई की बेहतर सुविधाएं देकर तथा उत्पादन बढ़ाने के उपाय करके (जैसे डेरी, बागवानी, रेशम उत्पादन आदि जैसी आर्थिक गतिविधियों को सुदृढ़ करके) उनकी आय में वृद्धि करना । इन एजेन्सियों का एक अन्य उद्देश्य किसानों को ऋण देने वाली सहकारी समितियों का सदस्य बनाकर उन्हें ऋण दिलाने में सहायता करना है ।

2) उप अनुच्छेद 23.6.2 पर आधारित उत्तर दें ।

3) उप अनुच्छेद 23.6.2 पर आधारित उत्तर दें ।

4) समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की दो प्रमुख कमियां थी : मूल रूप से प्रस्तुत की गई "एकीकरण" की अवधारणा को लागू नहीं किया गया तथा इसका सही अर्थों में उपयोग नहीं किया गया और ऐसे बहुत से लाभानुभोगी हैं जो इसके लिए पात्र नहीं हैं।

5) ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम की चार सकारात्मक विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं :

– ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार बढ़ाने में सहायता

– ग्रामीण युवकों में कौशल तथा उद्यम क्षमताओं का विकास करना

– गैर-औपचारिक स्थितियों में भी प्रशिक्षण प्रदान करना

– समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के साथ विलय कर लाभार्थियों को सहायता राशि, ऋण तथा आय सृजन परिसम्पत्तियों की उपलब्धता में सहायता करना ।

6) उप अनुच्छेद 23.6.3 पर आधारित उत्तर दें ।

इकाई 24 पर्यावरण प्रतिरक्षण

इकाई की रूपरेखा

24.1 प्रस्तावना

24.2 पर्यावरण की संकल्पना

24.3 मानव क्रियाओं का पर्यावरण पर प्रभाव

24.4 स्वास्थ्य एवं पर्यावरण

24.5 पर्यावरण का आर्थिक पहलू (Environmental Economics)

24.6 पर्यावरण संबंधी समस्याओं के समाधान के विभिन्न तरीके

24.7 पर्यावरण प्रतिरक्षण में आपकी भूमिका

24.8 सारांश

24.9 शब्दावली

24.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

24.1 प्रस्तावना

आपने इस प्रकार के मुख्य समाचार अपने दैनिक समाचार-पत्रों में देखे होंगे। क्या कभी आपने इनके या इनके जैसे अन्य मामलों का अपने व अपने परिवार के संदर्भ में अर्थ समझने का प्रयास किया है । यदि हाँ, तो आप पर्यावरण संरक्षण का महत्व अवश्य समझ गये होंगे ।

आज हम पर्यावरण की गंभीर निम्नीकरण (degradation) की समस्या का सामना कर रहे है । इधर कुछ समय से यह समझा गया है कि यदि हम उपयुक्त उपाय नहीं करेंगे तो हमारा स्वास्थ्य, तंदरुस्ती यहाँ तक कि हमारा जीवन भी खतरे में पड़ सकता है ।

हम इस इकाई का प्रारम्भ पर्यावरण की संकल्पना के विषय में चर्चा से कर रहें हैं । इसलिए हम उस प्रक्रिया का पता लगाने का प्रयास करेंगे जिससे मनुष्य ने पर्यावरण को बनाया और फिर धीरे-धीरे उसका विनाश करना प्रारम्भ किया । यह एक प्रमाणिक सत्य है कि पर्यावरण निम्नीकरण ने अब भयंकर रूप धारण कर लिया है । हमारे चारों तरफ विद्यमान वायु प्रदूषित है, जल पीने योग्य नहीं है तथा हमारे द्वारा खाए जाने वाले खाद्य पदार्थ रसायनों से संदूषित हैं जिसका परिणाम होता है – खराब सेहत । बढ़ती हुई आबादी के दबाव के कारण हमारे पहले से ही सीमित साधन और भी सीमित होते जा रहे हैं । यह स्पष्ट दर्शाता है कि किस प्रकार मनुष्य के बिना सोचे समझे प्रकृति के साथ अत्याधिक हस्तक्षेप करने से पर्यावरणीय निम्नीकरण होता है तथा किस प्रकार यह लगातार हमारे जीवन की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव डालता है ।

सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों तथा व्यक्तियों / समुदायों द्वारा किए गए प्रयत्न पर्यावरण के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। हमें आज कई प्रकार से इस समय घरेलू व व्यावसायिक रूप में संसाधनों के प्रयोग के तरीकों को चुनौती देनी है। जैसा कि हमें इस इकाई में पता लगेगा कि ऐसी प्रणालियाँ बहुत महत्वपूर्ण होती हैं जोकि कम से कम बेकार सामग्री निकालें व बेकार सामग्री को भी प्रयोग में ला सकें।

इससे हमें यह संदेश मिलता है कि हम इस सूचना को औरों तक पहुँचाकर उसके संबंध में जागृति लाएं तथा उसे अपनाने के लिए दबाव डालकर पर्यावरण को सुरक्षित रखने में अपना योगदान दे सकते हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- पर्यावरण व स्वास्थ्य के बीच संबंध बता सकेंगे
- भारत में पर्यावरण के अपकर्ष के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं का वर्णन कर सकेंगे
- पर्यावरण संबंधी कानून बनाने की आवश्यकता के संबंध में चर्चा कर सकेंगे
- सरकार द्वारा प्रारम्भ किए गए पर्यावरण की रक्षा संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों के विषय में बता सकेंगे
- पर्यावरण की रक्षा करने में गैर-सरकारी / स्वैच्छिक संगठनों द्वारा निभाई गई भूमिका के संबंध में बता सकेंगे
- सामान्य रूप से जन सामान्य में पर्यावरण के बचाव के प्रति जागरुकता की कमी के कारण बता सकेगें, और
- जन समुदाय के विभिन्न भागों में पर्यावरण संबंधी जानकारी प्रसारित करने के तरीकों के संबंध में सुझाव दे पाने के योग्य हो सकेंगे।

24.2 पर्यावरण की संकल्पना

हम जिस पर्यावरण में रहते हैं उससे हमारी उत्तरजीविता, सफलता, प्रगति, स्वास्थ्य तथा खुशियाँ आदि बहुत ही प्रगाढ़ रूप से जुड़ी हुई हैं।

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है "आसपास का वातावरण" परन्तु पर्यावरण संरक्षण से जुड़े समत तात्कालिक मुद्दों पर विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि आप पर्यावरण की अवधारणा को मोटे तौर पर समग्र रूप में समझ लें।

अत: आइए, सबसे पहले हम अपने पर्यावरण की प्रकृति को समझने की कोशिश करें।

पृथ्वी की सतह के ऊपर जो पतली परत है जहाँ जीवन विद्यमान है, उसे जीवमंडल (बायोस्फियर) कहते हैं। जीव मंडल में पर्यावरण के दो भाग हैं: (1) अजैव भौतिक वातावरण (जिसमें धरती, मिट्टी, पानी तथा वायु आदि सम्मिलित है,) से बना निर्जीव (जीवेतर) भाग तथा (2) जीवन्त (जीवीय) भाग या जैव वातावरण जिसमें सभी पौधे, पशु (मानव सहित) तथा सूक्ष्म जीव सम्मिलित हैं।

भौतिक तथा जैव पर्यावरण एक दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं। भौतिक पर्यावरण में आया अन्तर जैव पर्यावरण में भी परिवर्तन लाता है तथा इसी प्रकार जैव पर्यावरण का परिवर्तन भौतिक पर्यावरण को प्रभावित करता है। नीचे बताए गए तीन प्रकार के पारस्परिक प्रभाव जीवमंडल में पहचाने जा सकते हैं :

1) **जीविको के मध्य पारस्परिक क्रिया :** यह आहार, आवास, जीवन की अन्य आवश्यकताओं के लिए प्रतिस्पर्धा (competition) के परिणामस्वरूप होती हैं। पारस्परिक क्रिया मूल तत्वों और यौगिकों, जो कि जीव का आकार बनाते हैं व जिनके विषय में हम इस भाग में आगे बताएंगे, कि एक दूसरे पर परस्पर निर्भर रहने के कारण भी होती है।

2) **भौतिक एवं जैव पर्यावरण के बीच होने वाली पारस्परिक क्रिया :** भौतिक तत्व जैसे तापमान, पानी तथा धूप किसी जीव को अनुकूल रूप में या प्रतिकूल रूप में प्रभावित कर सकते हैं। जैन तत्व भी भौतिक पर्यावरण को प्रभावित करते हैं जैसे - लाइकेन (lichens) ऐसे अम्ल पैदा करता है जो कि चट्टान तथा रेता दोनों को संक्षारित करती है।

3) **भौतिक तत्वों में पारस्परिक क्रिया :** उदाहरणस्वरूप तापमान में अन्तर आने से जीवों के लिए पानी कम हो सकता है या बादलों का आवरण पौधों के लिए आने वाली धूप को कम कर सकता है।

> *किसी भी प्रकार का जीवन दूसरे से अलग होकर नहीं रह सकता, पर्यावरण के बिना किसी भी प्रकार का जीवन संभव नहीं है।*
>
> –लूइस ममफोर्ड

जीवमंडल में जीवों की उत्तरजीविता एवं वृद्धि पर्यावरण के विभिन्न घटक के बीच पदार्थ और ऊर्जा में स्थानान्तरित होते रहने के परिणामस्वरूप ही संभव होता है। पदार्थ मिट्टी तथा धरती और समुद्रों के पानी में मिलने वाले खनिजों के साथ-साथ वायुमंडल की निचली तहों में विद्यमान ऑक्सीजन तथा कार्बन डायऑक्साइड से प्राप्त होता है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा अजैव रसायनों का जैव पदार्थों में रूपातंरण संभव बनाती है। आप शायद जानते होंगे कि विभिन्न जैव रूप छोटे से अमीबा तथा जीवाणु से लेकर सबसे बड़े हाथी या व्हेल मछली तक मुख्यत: एक ही प्रकार के जैव पदार्थ, पानी तथा इनकी तुलना में कम मात्रा में खनिजों से मिलकर ही बने होते हैं। जैव पदार्थों के मुख्य अवयव होते हैं – कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉसफोरस तथा सल्फर। अन्य खनिज लवणों की सूक्ष्म मात्रा भी जीवन के लिए आवश्यक हैं।

सभी पदार्थ तथा पानी जीवों तथा उनके भौतिक पर्यावरण में पुनश्चक्रण (recycle) होते रहते हैं। वास्तव में बाहर से कोई भी नया रसायन (केवल उल्काओं (meteors) को छोड़कर) पृथ्वी पर नहीं आ सकते तथा हम पृथ्वी पर विद्यमान जोखिमपूर्ण रसायनों को पृथ्वी से बाहर निकाल कर (केवल अंतरिक्ष यानों को छोड़कर) उनसे छुटकारा नहीं पा सकते। फिर भी ऊर्जा में सूर्य के माध्यम से निरन्तर वृद्धि हो रही है। इस प्रकार रसायनों की दृष्टि से पृथ्वी एक बन्द प्रणाली तथा ऊर्जा की दृष्टि से एक मुक्त प्रणाली है।

आइए, अब पदार्थों के पुनश्चक्रण को जीव मंडल के एक छोटी इकाई - *पारितंत्र (ecosystem)* –पर विचार करके समझने का प्रयत्न करते हैं।

एक विशेष प्रकार के प्राकृतिक निवास स्थान जैसे पोखर, झील, खेत, जंगल या समुद्र में रहने वाले जीव अपने अजीव पर्यावरण, जिसके साथ वह परस्पर क्रियाशील रहते हैं, के साथ मिलकर एक पारितंत्र एक जल जीवशाला के समान छोटे से छोटा हो सकता है या एक जंगल या समुद्र के समान बड़ा हो सकता है। यहाँ पर पारितंत्र में नियंत्रित रूप में ऊर्जा हस्तांतरण तथा पोषक तत्वों का एक क्रमबद्ध नियंत्रित चक्रण होता रहता है। (चित्र 24.1)

एक पारिस्थितिक तंत्र में हरे पौधे सूर्य की ऊर्जा को काम में लाकर कार्बन डायऑक्साइड तथा पानी को स्टार्च तथा शर्करा में बदलते हैं। साथ ही कुछ सामग्री जैसे अपक्षय चट्टानों से निकले खनिज भी पौधों में मिल जाते हैं। इसलिए पौधों को पारितंत्र का निर्माता कहा जाता है। इसके उपरान्त रसायन शाकाहारियों (जो पौधे खाकर जीवित रहते हैं) में से उन माँसाहारियों – वह जानवरों में जो शाकाहारी जानवरों को खाकर जीवित रहते हैं – में जाते हैं। (पौधे → शाकाहारी → माँसाहारी)। माँसाहारी तथा जानवर पारितंत्रों के प्रयोगकर्त्ता कहलाते हैं। जब पौधे मर जाते हैं तो माइक्रोब मृत जैव, पदार्थ पर सक्रिय हो जाते हैं और उसका अपघटन करके उसे अजैव पदार्थ में बदल देते हैं। इस प्रकार जीवाणु एक पारितंत्र के अपघटक होते हैं। इस प्रकार से मूलतत्व फिर से मिट्टी तथा वातावरण में वापस चले जाते हैं और एक बार फिर अजैव पदार्थ जीवों से भौतिक पर्यावरण के चक्रण के लिए उपलब्ध हो जाता है। मूलतत्व ऑक्सीजन, कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन तथा सल्फर भी गैसीय चक्र (चित्र 24.2) में चलते हैं जबकि जैव रूप में विद्यमान अन्य तत्व पृथ्वी की सतह पर ही चलते हैं। इसको अवसादी चक्र (Sedementary Cycle) कहते हैं।

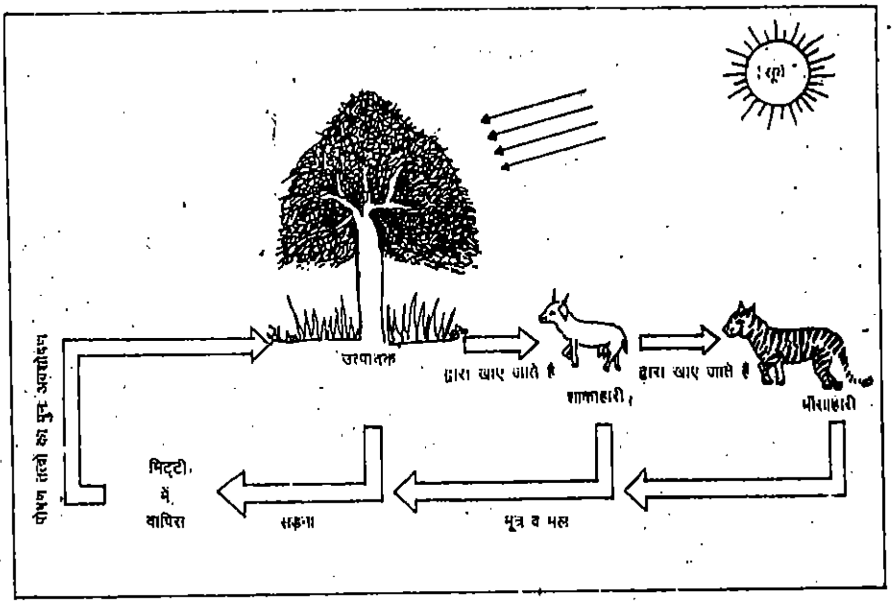

चित्र 24.1 : प्राकृतिक रूप में संतुलित पारितंत्र

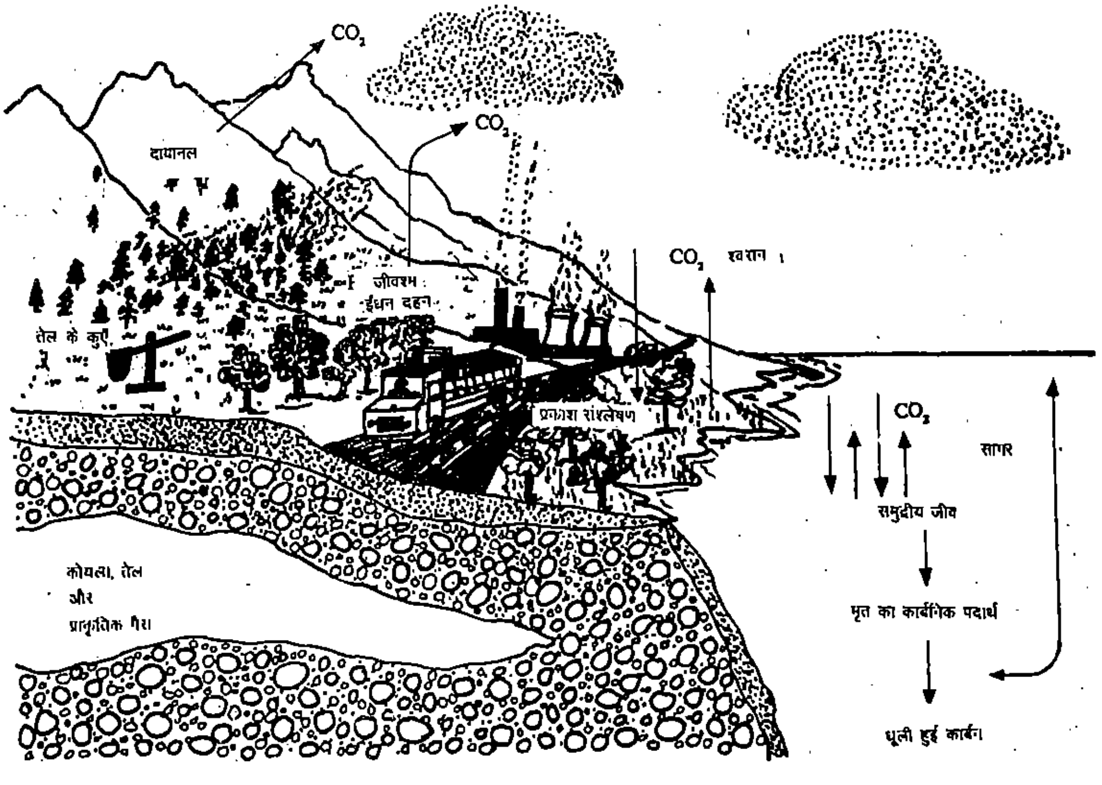

चित्र 24.2 : प्रकाश संश्लेषण तथा श्वसन की प्रक्रिया जीव मंडल में ऑक्सीजन व कार्बन का संतुलित चक्रण कराती है

जीवों तथा उनके पर्यावरण में एक बहुत ही नाजुक संतुलन होता है (यदि ज्वालामुखी फटने या बाढ़ आने जैसी कोई विपदा न आए तो) । केवल मानव ही एक जाति के रूप में पर्यावरण के इस नाज़ुक संतुलन में बाधा पहुँचा पाया है । अगले खण्ड में हम सांस्कृतिक विकास के प्रारम्भ से लेकर अब तक पर्यावरण में आए उन परिवर्तनों का पता लगाएँगे जो कि मनुष्य की क्रियाओं के परिणामस्वरूप आए हैं ।

बोध प्रश्न - 1

1) निम्नलिखित वाक्यों के लिए ब्रैकिट में दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनिए ।

   क) किसी पारिस्थितिक तंत्र के निर्जीव भाग ————— (जीवीय / अजैव) घटक कहलाते हैं ।

   ख) पृथ्वी का वह भाग जहाँ जीवन विद्यमान है, ————— कहलाता है । (वातावरण, जीवमंडल)

   ग) पर्यावरण के जीवित अवयव निर्जीव अवयवों को प्रभावित ————— । (करते हैं / नहीं करते हैं।)

   घ) एक पारिस्थितिक तंत्र में पर्यावरण के ————— (जीवित / निर्जीव / जीवित व निर्जीव दोनों) अवयव सम्मिलित होते हैं ।

2) पशु अपना भोजन पौधों से प्राप्त करते हैं । क्या वह पौधों को कुछ देते भी हैं ?

....

....

....

....

....

....

24.3 मानव क्रियाओं का पर्यावरण पर प्रभाव

हमारा आज का पर्यावरण प्रारम्भिक मानवों, जो कि 60,000 वर्ष पूर्व पृथ्वी पर रहते थे, के पर्यावरण से बहुत भिन्न है । अन्य जीवों की भाँति वह भी प्राकृतिक पर्यावरण में रहता था तथा पर्यावरण ही उसे प्रधानत: प्रभावित करता था । चूँकि मनुष्य के पास अन्य जीवों की तुलना में बुद्धि अधिक थी, अत: वह अपने पर्यावरण को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने तथा अपने जीवन को सुरक्षित रखने के लिए वह उसे धीरे-धीरे बदलता गया । अत: मनुष्य के विकास में एक नया चरण प्रारम्भ हुआ – सांस्कृतिक विकास का । तब से अब तक मनुष्य ने पर्यावरण को काफी हद तक बदल दिया है । वास्तव में यह खराब ही हुआ है तथा इसके परिणाम इतने डराने वाले हैं कि मनुष्य को भय है कि वह स्वयं अपने आप को ही पृथ्वी से समाप्त न कर दें ।

हम सोचते हैं कि यहाँ पर संक्षेप में यह समझ लेना उपयुक्त रहेगा कि मनुष्य की क्रियाओं का सांस्कृतिक विकास के प्रारम्भ से लेकर अब तक क्या प्रभाव पड़ा जिससे कि आप यह समझ सकें कि समस्या क्या है तथा उसके अनुसार सामुदायिक स्तर पर अपने कार्यों की योजना बना सकें । यह कर पाने के लिए हमें समय रहते पीछे की ओर देखना होगा – अपने अतीत में झाँकना होगा । आपको प्रारम्भिक समय से लेकर अब तक पर्यावरण में आये अन्तरों को ढूंढना रुचिकर लगेगा । जब आप पढ़ेंगे तो आपको तुरन्त यह पता लगेगा कि हमारी पर्यावरण को बदलने (अधिकतर नुकसान पहुँचाने) की क्षमता कितनी तीव्र हो गई है ।

सांस्कृतिक विकास निम्नलिखित तीन प्रमुख अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है :

1) आखेट-भोजन संग्रह (hunter-gatherer) अवस्था
2) कृषि का विकास
3) औद्योगिक क्रान्ति

आखेट-भोजन संग्रह अवस्था 60,000 वर्ष पहले प्रारम्भ हुई तथा इसका ह्रास कोई 20,000 से 15000 वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ । इसके ह्रास के मुख्य दो अनुमानित कारण हैं :

1) भोजन व वस्त्र की आवश्यकता हेतु अधिक जीवों को मारकर प्राकृतिक असंतुलन उत्पन्न कर देना, और

2) मनुष्यों की संख्या में एकदम से वृद्धि हो जाना ।

यह संभव है कि कृषि तथा पशुओं को पालतू बनाना खाद्य पदार्थों के अधिक भरोसेमंद स्रोत विकसित करने के परिणामस्वरूप प्रारंभ हुआ हो तथा इसी के साथ प्रारंभ हुई हो धात्विकी (metallurgy) जिससे कि कृषि के विकास के लिए अच्छे-अच्छे औज़ार बनाए जा सकें । धीरे-धीरे जनसंख्या में वृद्धि हुई और मानव बस्तियाँ नए-नए क्षेत्रों में फैलनी प्रारम्भ हो गई । मनुष्यों ने जंगलों को साफ करके तथा जमीन पर उगने वाली वनस्पति को जलाकर फसल पैदा करने के लिए ज़मीन साफ की । औजारों से उन्हें अपने घर (लकड़ी के) बनाने के लिए, पेड़ काटने में सहायता मिली । फिर भी वे उसी भूमि को बहुत लम्बे समय तक खेती के लिए प्रयोग में नहीं ला सके क्योंकि बार-बार उसी भूमि पर खेती करने से भूमि की फसल उगाने के लिए आवश्यक उर्वरक शक्ति कम होने लगी । इसलिए उन्होने उस जगह को छोड़ दिया और दूसरी जगह जाकर और नए-नए जंगल काटे । इसके परिणामस्वरूप खेती योग्य भूमि नष्ट होने लगी और रेगिस्तान बनने लगे । स्थानीय जंगलों को काटना और उसके बाद भूमि पर अधिक कृषि करना ही ऐतिहासिक समय में भारत में तथा अन्य स्थानों में रेगिस्तानों के विकास के लिए उत्तरदायी माना जाता है । इस तथ्य के अच्छे प्रमाण उपलब्ध हैं कि अफ्रीका में स्थित सहारा रेगिस्तान एक समय बहुत ही हरा भरा जंगल था जहाँ कि मिस्रवासियों के पूर्वज रहा करते थे । प्रारम्भिक सभ्यताओं का ह्रास – जैसे मैसोपोटामिया, इन्का तथा सिंधु घाटी आदि की सभ्यताओं का – बड़े पैमाने पर वनों को काटने के कारण ही हुआ माना जाता है । बाद में, मृदा अपरदन (soil erosion), बाढ़ तथा सिंचाई नहरों के तल में गाद भरने (silting) आदि के परिणामस्वरूप भुखमरी आई, लोग मरने लगे व गाँवों को छोड़ कर चले गए ।

पर्यावरण का सबसे उग्र तथा तीव्र निम्नीकरण पिछले 200 वर्षों में औद्योगिक क्रांति के दौरान हुआ । वर्तमान पीढ़ी इसके विनाशकारी प्रभावों की साक्षी है । औद्योगिक क्रान्ति के पहले विश्व की अधिकाँश जनसंख्या गाँवों में रहती थी तथा खेती-बाड़ी करती थी परन्तु औद्योगिक क्रान्ति आने से बड़ी संख्या में लोग गाँवों को छोड़कर शहरों में आकर बस गए जो कि उत्पादन तथा क्रय-विक्रय के बड़े-बड़े केन्द्र बन गये थे । मनुष्यों का यह गाँवों से शहरों में जाना आज तक निरन्तर चल रहा है ।

औद्योगिक क्रान्ति से एकदम से भूमि तथा अन्य संसाधनों पर दबाव बढ़ गया। इसका एक उदाहरण है – फॉसिल ईंधन – जिसका उपयोग बहुत तीव्र गति से किया जाने लगा । यह इस सीमा तक बढ़ गया है कि अब यह डर लगने लगा है कि यह अब 200 - 300 साल में समाप्त हो जाएगा। औद्योगिक क्रान्ति से विश्व भर में वायु, जल तथा पृथ्वी प्रदूषित हुई है ।

क्या अब आप सभ्यता के विकास के साथ आए उन परिवर्तनों की सूची बना सकते हैं, जिन्होंने पर्यावरण को प्रभावित किया है ? इनमें से कौन-सा पर्यावरण के तीव्रगामी कार्य ह्रास के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी है?

....

....

....

....

....

....

बोध प्रश्न - 2

1 से 6 तक के प्रश्नों का उत्तर नीचे दी जा रही जनसंख्या की वृद्धि रेखा द्वारा दी गई सूचना को प्रयोग करके दीजिए (रेखाचित्र 24.3)।

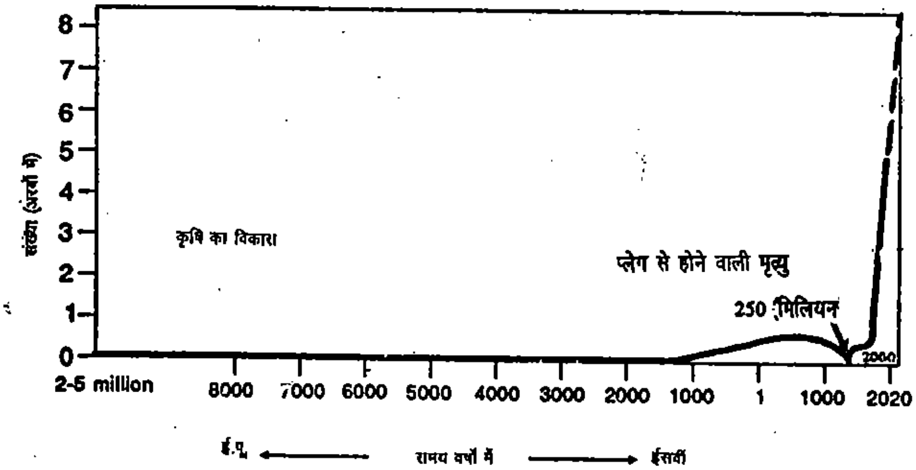

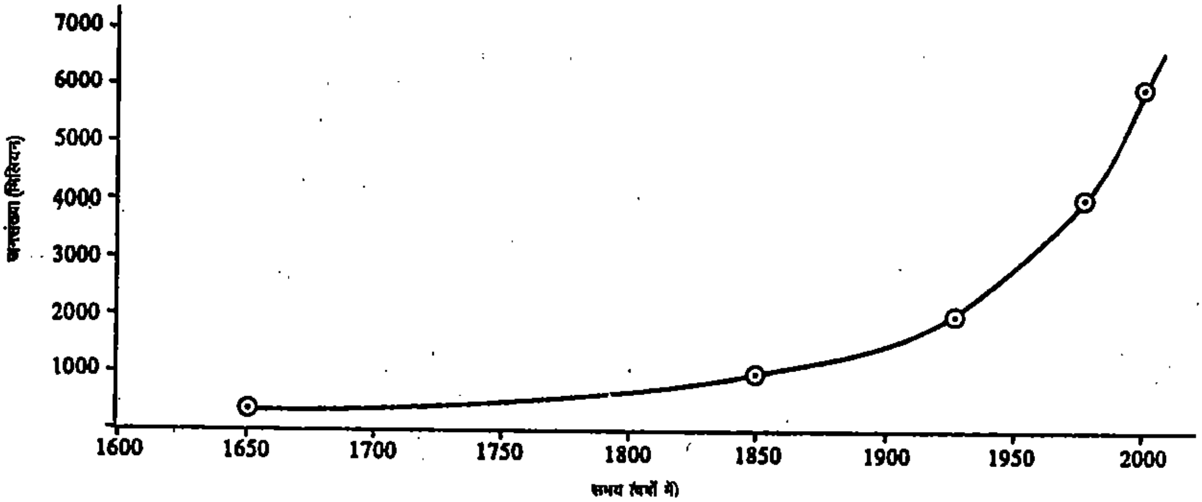

रेखाचित्र 24.3 : जनसंख्या की वृद्धि (क) पिछले पाँच लाख वर्षों में (ख)वर्ष 1960 से वर्ष 2000 तक

1) लगभग 11,000 वर्ष पूर्व जब पहली बार कृषि का विकास हुआ था तब विश्व की जनसंख्या कितनी थी?

....

....

....

2) कृषि के प्रारम्भ से लेकर पहली सदी तक जनसंख्या कितनी बढ़ी है ?

....

....

....

3) वर्ष 1650 तथा 1930 की जनसंख्याओं की तुलना कीजिए ।

....

....

....

4) वर्ष 1975 तक विश्व की जनसंख्या कितनी थी ?

....

....

....

5) पिछले 300 वर्षों में जनसंख्या में इतनी तेज़ी से वृद्धि होने के क्या कारण है ?

....

....

....

6) इस सदी के अन्त तक विश्व की जनसंख्या में कितनी वृद्धि होने की संभावना है ?

....

....

आइए, अब मनुष्यों के उन प्रमुख क्रियाओं को देखते हैं जिनके कारण हमारे पर्यावरण का ह्रास हुआ है। हम इसे वनोन्मूलन से प्रारम्भ करेंगे।

वनोन्मूलन

सभ्यता के विकास संबंधी अपनी चर्चा में हमने यह बताया कि किस प्रकार कृषि व पशु पालन के विकास के साथ वनोन्मूलन प्रारम्भ हुआ। यह प्रक्रिया आज भी जारी है परन्तु इसकी गति बहुत बढ़ गई है। वनोन्मूलन के अन्य कारण हैं – भारत के कुछ क्षेत्रों में अपनाई जाने वाली कृषि भूमि को परिवर्तित करते रहने की प्रथा, लकड़ी का ईंधन, कागज़ बनाने के लिए लुगदी के रूप में तथा वाणिज्यिक लकड़ी के रूपों में प्रयोग। बड़े पैमाने पर वनोन्मूलन नदियों पर बड़े-बड़े बाँध बनाने, जिनके लिए कई हैक्टेयर वनों को साफ करना पड़ता है, के परिणामस्वरूप भी हुआ है। उदाहरणस्वरूप लगाए गए अनुमान दर्शाते हैं कि हिमालय में टिहरी गढ़वाल जिले के पास बनाए जा रहे टिहरी बाँध के नीचे की ओर भगीरथी तथा गंगा नदियों का संगम लगभग 4000 हैक्टेयर भूमि को जलमग्न कर देगा।

इस प्रकार वनों का किस सीमा तक व कितना विनाश हुआ है? ऑकड़े दिखाते हैं कि विश्व का कुल वनक्षेत्र कम होकर इसी सदी के अन्दर 30 प्रतिशत से भी कम रह गया है। भारत में पूरे भौगोलिक क्षेत्र की केवल 19 प्रतिशत भूमि वनों के रूप में है जबकि ईसा से 3000 वर्ष पूर्व तक लगभग 80 प्रतिशत भारत वनभूमि के रूप में था। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक यह कम होकर कोई 23 प्रतिशत रह गया था। इसका प्रमुख कारण था – वनों का लकड़ी तथा ईंधन के लिए अंधाधुंध प्रयोग।

अब तक हमने केवल तीव्र गति, जिससे हमारे वन लुप्त हो रहे है, की चर्चा की है। परन्तु इसका प्रभाव क्या हुआ है ?

वनोन्मूलन से मिट्टी की संरचना खराब हो जाती है, मृद अपरदन होता है तथा मिट्टी के पोषक तत्व कम होते जाते हैं। एक बार जब पौधों का आवरण हट जाता है तब मिट्टी की ऊपरी सतह को बारिश, पानी के बहाव, वेगवान वायु तथा अस्थिर वायु तापमान को सीधे ही सहन करना पड़ता है। जब पानी ढलान पर तेज़ी से नीचे की ओर बहता है तब पूरी सतह से महीन मिट्टी के कण सतह से उतर कर उसके साथ चले जाते हैं। मृद अपरदन की यह प्रक्रिया भूमि की उर्वरक क्षमता को कम कर देती है तथा ज़मीन में ढलान, अवनालिकाएं तथा खड्डे बन जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में तो ज़मीन के मृद अपरदन के कारण बहने वाले जल की मात्रा बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप बाढ़ आ जाती है। मृद अपरदन से नदियों, झीलों, तथा बड़े-बड़े जलाशयों विशेष रूप से बाँधों के जलाशयों के तल में गाद भी बढ़ जाती है।

वनों के उन्मूलन से प्राकृतिक आवास भी नष्ट हो जाते हैं तथा जैव वैमिन्य (biodiversity) तथा वन्य जीवन विपरीत रूप में प्रभावित होता है। किसी एक पौधे या पशु जाति के नष्ट होने का वन में रहने वाले कई अन्य जीवों पर प्रभाव पड़ सकता है। आप जानते होंगे कि कई प्रकार के जानवरों को संकटग्रस्त जातियाँ (endangered species) घोषित किया जा चुका है तथा कुछ जातियाँ समाप्त भी हो चुकी हैं।

प्रदूषण

औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ से ही औद्योगिक गतिविधियों में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। कोयले, शैल रसायनों, उर्वरकों तथा कीट नाशकों के साथ-साथ ऊर्जा उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। इससे बड़ी मात्रा में गैसीय, तरल तथा ठोस उत्सर्ग उत्पन्न हुए हैं जिसने कि हमारी वायु, जल तथा पृथ्वी को प्रदूषित कर दिया है।

सबसे पहले हम वायु प्रदूषण के संबंध में चर्चा करेंगे।

वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण बहुत तेज़ी से बढ़ता जा रहा है विशेष रूप से दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास जैसे बड़े शहरों में क्योंकि यहाँ पर बड़ी संख्या में सवारी वाहन – कारों, बसों, ट्रकों तथा तिपहिए वाहनों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। सबसे अधिक ट्रैफिक होने के समय तो प्रदूषण इतना अधिक हो जाता है कि लोग अपने आपको बचाने के लिए अपने मुख पर रक्षात्मक आवरण लगाकर चलते हुए दिखाई देते हैं। ऐसे उद्योगों में जहाँ कि विषैले प्रदूषक बाहर निकलते हैं, वहाँ काम करने वाले भी वायु प्रदूषण का अनुभव करते हैं। आपको शायद पता होगा कि 1984 की भोपाल त्रासदी (tragedy) में हज़ारों लोग सोते हुए ही मर गए थे। इसमें भी यूनियन कारबाइड के एक कीटनाशक दवा का उत्पादन करने वाले संयंत्र (प्लांट) में से जहरीली गैस बाहर निकल गई थी। 1986 में सोवियत रूस में भी एक दुर्घटना हुई थी। यद्यपि विस्फोट के तुरन्त बाद केवल 31 व्यक्ति मरे थे परन्तु उसके बाद कुछ हज़ार से लेकर दस लाख तक लोगों के परमाणु विकिरण से प्रभावित होने की आशंका थी। विकिरण का यह दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव अभी भी आने वाली पीढ़ियों में दिखाई देगा। हम हिरोशिमा के अनुभव से जानते हैं कि यह प्रभाव अवश्य है, इससे बचा नहीं जा सकता।

दो उदाहरण जिनके बारे में हमने अभी बात की है हमें दर्शाते हैं कि वायु केवल गैसों से ही प्रदूषित नहीं होती है। यह परमाणु विकिरण से भी प्रदूषित हो सकती है।

वायु प्रदूषण का प्रमुख कारण गाड़ियों, उद्योगों तथा घरों में बड़ी मात्रा में शैल रसायनों – कोयला, पैट्रोल तथा गैस आदि का अत्याधिक मात्रा में प्रयोग है। गाड़ियों में से कार्बन डायऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन का ऑक्साइड, लेड (lead) तथा धुँआ निकलता है जिसमें कि बिना जला कार्बन होता है। आप में से कुछ लोगों को शायद अत्याधिक ट्रैफिक में फँस जाने पर चक्कर आने का अनुभव भी हुआ होगा। यह सब कार्बन मोनोऑक्साइड, जो कि एक विषैली गैस है तथा अधिक संकेन्द्रित होने पर घातक भी हो सकती है, के कारण होता है।

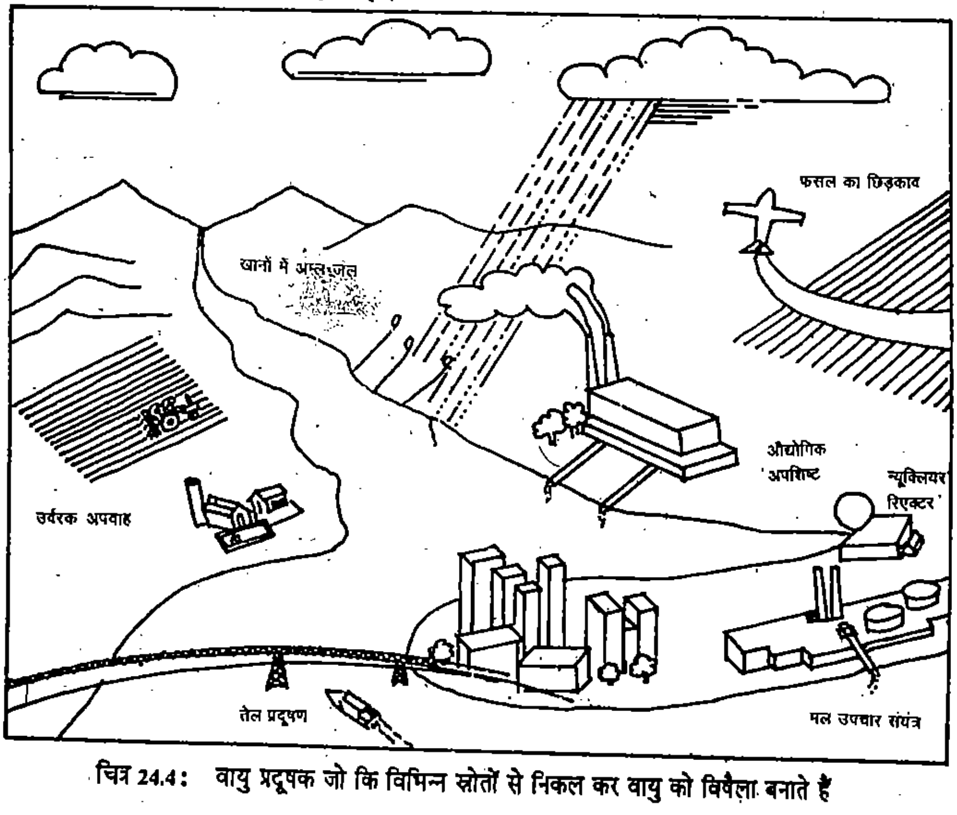

चित्र 24.4 : वायु प्रदूषक जो कि विभिन्न स्रोतों से निकल कर वायु को विषैला बनाते हैं

नाइट्रोजन का ऑक्साइड बहुत-सी बीमारियाँ उत्पन्न कर सकता है जैसे मसूड़ों की सूजन, आन्तरिक रक्त स्राव तथा फेफड़ों का कैंसर आदि। नाइट्रोजन का ऑक्साइड सूर्य के प्रकाश में वातावरण में उपस्थित हाइड्रोकार्बन के साथ प्रतिक्रिया होने पर प्रकाश रसायनिक धूम कुहरा (photochemical smog) तथा ओजोन भी उत्पन्न कर सकता है। प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा वायु में पीला भूरा, धुँधला-सा दिखाई देता है तथा यह पौधों के लिए विशेष रूप से हानिकारक होता है। ओजोन से श्वास क्रिया संबंधी तथा आँखों से पानी निकलने आदि की समस्याए होती है।

वातावरण में प्रलंबित विविक्त तत्वों (suspended particulate matter) में से कोयला, सीमेंट तथा सिलिका धूल आदि प्रमुख प्रदूषक हैं। कोयले पर आधारित पावर संयंत्र, फ्लाई एश जनित करते हैं जो कि भारत में एक वर्ष में लगभग 300 लाख टन होती है। देश की 10,000 पत्थर तोड़ने वाली मशीनें कुल मिलाकर 1000 टन धूल (पत्थरों की) पैदा करती हैं। इसके अतिरिक्त सवारी वाहन भी बड़ी मात्रा में धूल उड़ाते हैं। भारत के दस बड़े शहरों में मापी गई धूल विविक्तता (dust particulates) दर्शाती हैं कि मुम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर तथा हैदराबाद में इसका संकेन्द्रण अनुमानित सीमाओं से अधिक है। दिल्ली में कुल जोड़ा गया गाड़ियों द्वारा उत्पन्न प्रदूषण वर्ष 1986-87 में वर्ष 1980-81 की तुलना में दुगना हो गया था। परिणामस्वरूप श्वास क्रिया से संबंधित कठिनाईयाँ, विशेष रूप से बड़े शहरों में रहने वाले बच्चों में बढ़ती जा रही हैं।

वायु प्रदूषण का एक और बहुत कष्ट साध्य प्रभाव अम्ल वर्षा (acid rain) है, जिसका अर्थ वह वर्षा का जल है जो अपने साथ वातावरण में विद्यमान अम्लों को साथ लाता है। वास्तव में नाइट्रोजन और सल्फर के ऑक्साइड, जो कि वायु में क्रमश: गाड़ियों तथा उद्योगों द्वारा छोड़े जाते हैं, पानी के साथ प्रतिक्रिया होने पर सल्फ्यूरिक एवं नाइट्रिक एसिड बनाते हैं। यह अम्ल (एसिड) बारिश होने पर पानी के साथ नीचे आ जाते हैं। जैसा कि आप शायद समझते हों, यह अम्ल का पानी पृथ्वी पर रहने वाले जीवों के साथ-साथ फसल तथा अन्य वनस्पति के लिए बहुत हानिकर होता है। यदि एसिड का पानी झीलों या नदियों में पहुँच जाता है तो पानी में रहने वाले जीव मर जाते हैं। स्वीडन में ही 3000 झीलों में एसिड की वर्षा के परिणामस्वरूप जलजीव मृत हो चुके हैं। आइए, अब विश्वव्यापी स्तर की प्रदूषण समस्या पर विचार करते हैं। वायु प्रदूषण की कोई राजनीतिक सीमाएं नहीं होती। प्रदूषक वायु के साथ दूर-दराज के स्थानों तक पहुँच सकते हैं। इसी के कारण चैरनोवेल की दुर्घटना का प्रभाव स्विटज़रलैंड जैसी दूर जगह पर भी पाया गया था। विश्वव्यापी स्तर पर रोके जाने वाले दो प्रमुख प्रदूषक है –कार्बन डायऑक्साइड तथा क्लोरोफ्लोरो-कार्बनस (chloroflurocarbons)। गाड़ियों तथा उद्योगों को चलाने के लिए बड़ी मात्रा में प्रयुक्त फॉसिल फ्यूल के परिणामस्वरूप वातावरण में कार्बन डायऑक्साइड का स्तर बहुत तेज़ी से बढ़ा है।

आप जानते ही हैं कि कार्बन डायऑक्साइड एक विषैली गैस नहीं है। यह पौधों के लिए प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) करने हेतु आवश्यक है। पृथ्वी को गरम रखने व इसका तापमान बनाए रखने में भी इसकी विशेष भूमिका है। यह अंतरिक्ष में जाने वाली गरमी को बाहर जाने से रोकती है। यह "ग्रीन हाउस प्रभाव" (Green House effect) कहलाता है क्योंकि कार्बन डायऑक्साइड तथा कुछ अन्य गैसें ग्रीन हाउस के शीशे की दीवार के रूप में कार्य करती है। ग्रीन हाउस की ये शीशे की दीवारें सारी गर्मी को वातावरण में जाने से रोक लेती हैं।

यह अनुमान लगाया गया है कि विश्व का तापमान पिछले 100 वर्षों में 0.3 डिग्री सैंटीग्रेड से 0.7 डिग्री सैंटीग्रेड तक बढ़ गया है। यह आशा की जाती है कि यदि गैसों में वृद्धि की यही प्रवृत्ति चलती रही तो वर्ष 2050 तक पृथ्वी का तापमान 20 डि. सैंटीग्रेड से बढ़ जायगा। इसके कारण समुद्रों का तापीय प्रसार होगा तथा भूमि पर आधारित एन्टारक्टिक के प्लावी बर्फ पुँज तथा हिमनद पिघल जाऐंगे। परिणामस्वरूप समुद्रों का जल स्तर डेढ़ मीटर ऊपर हो जायगा। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि इसका क्या परिणाम निकलेगा?

....

....

....

यह प्राशुक्ति की गई हैं कि समुद्र का जलस्तर वर्ष 2073 तक औसतन 30 से 213 सैंटीमीटर के बीच तक ऊंचा हो जायेगा। पिछली सदी में समुद्र के विश्वव्यापी जलस्तर में औसतन इससे बहुत कम – लगभग 15 सैंटीमीटर – की बढ़ोतरी हुई थी। जलस्तर में डेढ़ मीटर की अनुमानित वृद्धि समुद्र तटीय क्षेत्रों को पानी में डुबो देगा, तट रेखा के कटाव को तीव्र कर देगा। ज्वारनदमुख (estuaries) को नुकसान पहुँचाएगा तथा पेयजल के जलमृतों की लवणता बढ़ा देगा। यह अनुमान लगाया गया है कि इससे बंग्लादेश के लगभग 11.5 प्रतिशत भूक्षेत्र तथा नाइल डैल्टा के कुछ क्षेत्र में पानी भर जाएगा। विश्व के कई तटीय क्षेत्रों का अमरीका की तटीय आर्द्र भूमि का 30 से 80 प्रतिशत भाग पानी में डूब जाएगा। इस बात की आशंका है कि माल्दीव द्वीप (Maldives Islands) अगले दस वर्षों के अन्दर ही पानी में डूब जाएगा।

तापमान की वृद्धि क्षेत्रीय जलवायु को प्रभावित करेगी, जलवायु संबंधी क्षेत्रों तथा वर्षा का स्थानान्तरण करेगी। इसके परिणामस्वरूप विश्व के कुछ क्षेत्रों का तापमान बढ़ जायेगा, जंगल नष्ट हो जाएँगे, चावल सहित प्रमुख अनाजों की फसलें हो ही नहीं पाएँगी या उनको नुकसान पहुँचेगा। भयंकर उष्मा लहरें उठेंगी तथा झीलें सूख जाएँगी।

आपने शायद सारे विश्व में ओज़ोन की परत के अवक्षय होने के संबंध में सुना होगा। वातावरण के ऊपर बनी ओज़ोन परत धरती के जीवों को सूर्य के हानिकर विकिरण प्रभाव से बचाती है। यह क्लोरोफ्लोरोकार्बनस या सी.एफ.सी. का प्रशीतकों (refrigerators), वायुविलयों (aerosols), कैन प्रोपेलेन्टों, विलयकों (solvents) तथा फोम प्लास्टिक जिसका प्रयोग कॉफी कप तथा शीघ्र तैयार होने वाले खाद्य पदार्थों के डिब्बे बनाने के लिए किया जाता है, आदि के रूप में प्रयोग करने के परिणामस्वरूप क्षतिग्रस्त होती जा रही है। यदि यह परिरक्षक परत क्षतिग्रस्त हो गई तो हानिकर विकिरण पृथ्वी पर आने लगेंगे जो घोर त्वचा कैंसर का कारण बनेंगे।

> **ओज़ोन होल (परत में ह्रास) :** *दक्षिणी ध्रुव पर ओज़ोन की एक पतली सी परत, लगभग केवल 60 प्रतिशत की वैज्ञानिकों द्वारा देखी गई थी। यह संयुक्त राज्य अमरीका के आकार के बराबर के क्षेत्र पर फैली हुई है। इसे ओज़ोन होल के रूप में लिया जाता है।*

जल प्रदूषण

सदियों से मनुष्यों की बस्तियों ने अपना वाहित मल तथा अन्य कूड़ा-करकट सरिताओं, झीलों, नदियों, समुद्रों तथा अन्य जलाशयों में डाला है। कुछ सीमित मात्रा में जैव निम्नीकरण अपशिष्ट कुछ समय में जीवों तथा पानी की क्रियाशीलता से अपघटित होकर अपने आप स्वच्छ हो जाता है। परन्तु यह अपने आप स्वच्छ होने की क्षमता बहुत ही सीमित है। जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप हमारी गंगा, यमुना, माही, नर्मदा तथा कई अन्य नदियों तथा झीलों जैसे कश्मीर की सुन्दर डल झील, आदि में पता नहीं कितना वाहित मल तथा अन्य अपशिष्ट डाला गया है। नदियों से ही घर में प्रयोग करने तथा पीने के लिए जल मिलता है। दूषित जल का प्रयोग करने से टायफायड, पेचिश या अन्य गैस की बीमारियाँ, जिनके बारे में आप इस पाठ्यक्रम में पहले पढ़ चुके हैं, हो जाती हैं।

जलाशयों की क्वालिटी और भी अवनत हो गई है क्योंकि उसमें कागज़ तथा स्टील मिलों, चीनी मिलों, चर्म संस्कार शालाओं, मद्य निर्माणशालाओं, डी.डी.टी. फैक्ट्रियों, स्वचालित वाहनों के वर्कशॉपों से निकलने वाले बहिस्राव को भी पानी में ही डाल दिया जाता है। अधिकांश औद्योगिक अपशिष्ट जैव ह्रास के माध्यम से शुद्ध नहीं होने वाला होता है। इसमें ज़हरीली धातुएें जैसे मरकरी, कैडमियम, आरसेनिक तथा डी.डी.टी. जैसे कीटनाशक आदि पानी में रहने वाले जीवों के शरीर में जाते रहते हैं तथा वहाँ उनमें संग्रहित होते रहते हैं तथा यही रसायन मनुष्यों में पहुँच जाते हैं, यदि वे इन ज़हरीली चीजों जैसे मछली को खाते हैं। जापान में मिनिमाता बीमारी एक विशेष प्रकार की मछली को खाने के परिणामस्वरूप ही हुई, जिन्हें कि ऐसी नदी से पकड़ा गया था जिसका जल मरकरी (mercury) से संदूषित था। रेखाचित्र 24.5 संक्षेप में जल प्रदूषण के स्रोतों को दर्शाता है।

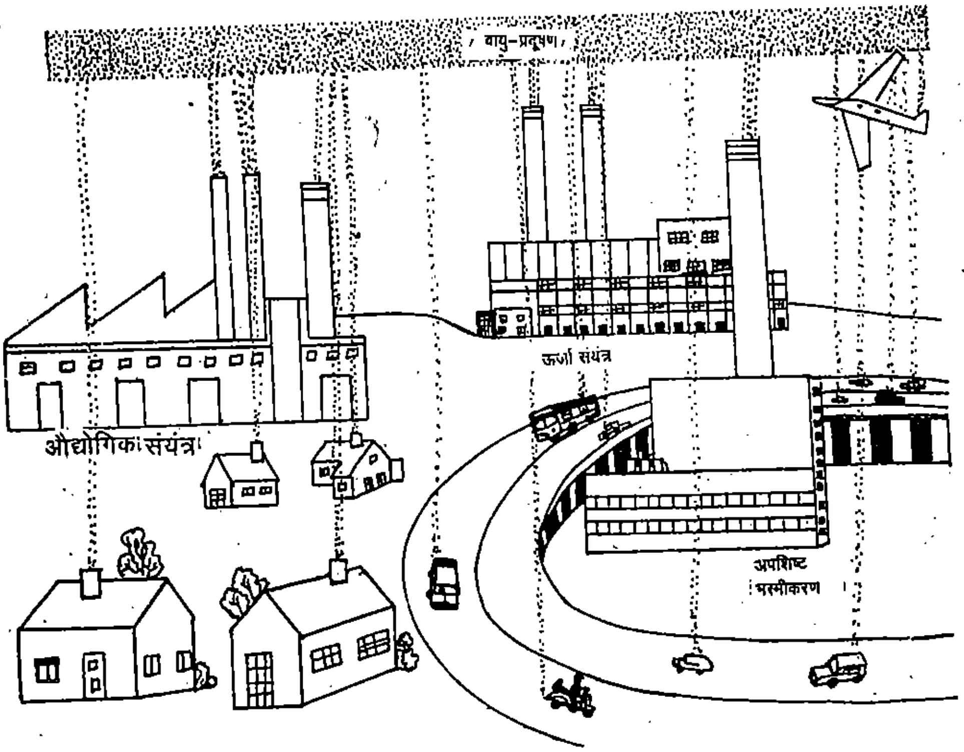

चित्र 24.5 : जल प्रदूषण के विभिन्न स्रोत

पीड़कनाशी, उर्वरक तथा अन्य रसायन भी, जिनका कृषि में प्रयोग होता है, अन्तत: पास के जलाशय में ही मिल जाता है। वह ज़मीन में धीरे-धीरे आगे या नीचे चलकर भूजल के स्रोत को संदूषित कर सकते हैं। भूजल का नदियों के जल की तरह शुद्धिकरण भी नहीं किया जा सकता है। हमारे भूजल के साधन नाइट्रेट से संदूषित हुए पाए गए हैं। नाइट्रेटस शरीर में जाकर नाइट्राइट में बदल जाते हैं और नाइट्राइट एक विशेष प्रकार के एनीमिया का कारण बनते हैं जो कि मैटहीमोग्लोबिनेमिया (methaemoglobinaemia) कहलाता है, तथा विशेष रूप से बोतल से दूध पीने वाले बच्चों को होता है। उल्लेखनीय - 1 हमें भारत में हुए भूजल के संदूषण के कुछ प्रमुख उदाहरणों के विषय में बताता है।

उल्लेखनीय - 1

भूजल संदूषण

राजस्थान के पाली स्थान में कम से कम 450 टैक्सटाइल यूनिट हैं जहां कि कपड़ों को रंगने और ब्लीच करने का काम किया जाता है। रंग मिला हुआ बहि:स्राव जिसमें सल्फ्यूरिक एसिड तथा विषाक्त कैन्सरजनी पदार्थ बिना कोई ध्यान दिए शहर के बड़े भाग पर ऐसे ही डाल दिए गए। मानसून के दौरान रसायन पानी के साथ ज़मीन में नीचे चले गए और उन्होंने भूजल को संदूषित कर दिया। इसी प्रकार पंजाब तथा हरियाणा के औद्योगिक क्षेत्रों में भूजल बड़ी मात्रा में संकेन्द्रित ज़हरीली धातुओं जैसे निकेल, ताँबा क्रोमियम के साथ-साथ साइनाइड से संदूषित हो गया है। यह साइकिल तथा ऊनी कपड़ों का निर्माण करने वाली अम्बाला, लुधियाना तथा सोनीपत स्थित इकाइयों से निकलने वाले बहि:स्राव के कारण हुआ।

घरेलू बहि:स्रावों में रोगाणुनाशी, साबुन, अपमार्जक आदि जैसे रसायन मिले होते हैं। इनमें बेकार भोजन भी मिला होता है। अपमार्जकों में फॉसफेट होता है जो कि पौधों का पोषक तत्व है। इस प्रकार वह जल जिसमें ये स्राव मिलते हैं उसमें पोषक तत्वों की बहुलता हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप काई (algae) उत्पन्न हो जाती है। काई बहुत बढ़ने से पानी में धुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप पानी में रहने वाले जीव वहां जीवित नहीं रह पाते।

हमारी चर्चा ने उन विभिन्न तरीकों को बताने का प्रयास किया है जिनसे कि जलाशय प्रदूषित हो जाते हैं। इस प्रकार से प्रदूषित नदियाँ उन्तत: सागरों में पहुँचती हैं और उन्हें भी प्रदूषित कर देती हैं। इसके

अतिरिक्त महासागर तटीय क्षेत्रों के वाहित मल तथा फैक्ट्रियों के औद्योगिक बहि:स्राव को समुद्र में डालने से भी प्रदूषित होते हैं। इसके अतिरिक्त कई बार टैंकरों में से तेल गिरने से भी समुद्र प्रदूषित होते हैं तथा वहाँ रहने वाले जल जीवों पर बुरा असर पड़ता है।

भूमि निम्नीकरण (Land Degradation)

हमने आपको बताया है कि किस प्रकार वनों का उन्मूलन मृद अपरदन (soil erosion) व मरुस्थलों के बनने (desertification) से जुड़ा हुआ है। गहन कृषि (Intensive cultivation), खनन तथा अन्य विकासात्मक क्रियाएं भी जमीन के अपरदन की गति को बढ़ाती हैं। दून घाटी (Doon Valley) में खनन के कारण नदियों में गाद (silt) बढ़ गई तथा भूमि असंतुलित हो गई। इसके अतिरिक्त खनन क्षेत्रों से निकलने वाला अपशिष्ट भूमि को किसी प्रयोग के लिए अनुपयुक्त कर देता है।

उद्योग भी बहुत सा अपशिष्ट उत्पन्न करते है। ये अपशिष्ट यदि जल्दी-जल्दी व ठीक से न निपटाएं जाएं तो यह एकत्रित होते रहते हैं। कुछ औद्योगिक अपशिष्ट खतरनाक होता है तथा निपटान से पूर्व उसके उपचार की आवश्यकता होती है। अन्यथा उनसे प्राकृतिक साधन गम्भीर रूप से संदूषित हो सकते हैं तथा तथा मनुष्यों के स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव डाल सकते हैं। बिना उपचार किए हुए खतरनाक अपशिष्ट ज़मीन में बनाए गए गड्ढों में भरे होने पर भी एक स्थाई खतरा बने रहते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में न्यागरा फाल के पास बनी "लव कैनाल" के विषय में उल्लेखनीय - 2 में चर्चा की गई है।

उल्लेखनीय - 2

लव कैनाल से सीख

कुछ दशक पहले न्यागरा फॉल, न्यूयॉर्क के पास परित्यक्त नहर में एक रासायनिक फैक्ट्री द्वारा लगभग 19,000 टन रासायनिक अपशिष्ट 55 गैलन के स्टील ड्रमों में भरकर डाल दिया गया था। उसके बाद वह जगह मिट्टी से ढक दी गई तथा उस पर एक प्राथमिक स्कूल तथा खेल का मैदान बना दिया गया। दो दशक बाद जब वहाँ बहुत बारिश हुई तो सारा क्षेत्र रासायनिक मिट्टी की चड़का दलदल बन गया क्योंकि भूजल का स्तर ऊंचा उठ गया था। ड्रमों में से जहरीले रसायन बाहर निकल आए और खेल के मैदान में फैल गए और घरों के भूतलों तक पहुँच गए। शीघ्र ही क्षेत्र के बच्चे तथा व्यस्कों को तेज़ सिर दर्द, त्वचा के ज़ख्मों, मल स्थान से रक्त स्राव, जिगर की शिकायतों तथा मिरगी आदि की बीमारियाँ होने लगी। बाद में गर्भपात तथा जन्म-जात कमियों की शिकायतें भी आई।

अपशिष्ट में सम्मिलित विषक्त रसायन धीरे-धीरे ज़मीन के अन्दर भी जा सकते हैं और भूजल को ज़हरीला बना सकते हैं। खुले हुए अपशिष्ट के ढेर अस्वच्छ परिवेश निर्मित करते हैं तथा क्षेत्र की बाह्याकृति को नष्ट कर देते हैं। परन्तु भारत में ठोस अपशिष्ट के प्रबन्ध को पारम्परिक रूप से नगर प्राधिकरणों द्वारा निम्न प्राथमिकता का क्षेत्र माना गया है। यद्यपि शहरों के विकास के साथ ठोस अपशिष्ट भी तुलनात्मक रूप में बड़ी मात्रा में बढ़ता जा रहा है।

साधनों का ह्रास

मनुष्यों की आबादी पिछले 50 वर्षों के दौरान दुगनी हो गई है। अत: साधनों जैसे भोजन, शैल ईंधन तथा स्थान की माँग भी बढ़ गई है तथा साधनों का तेज़ी से उपभोग किया जा रहा है। हमारे साधन दोनों प्रकार के हैं – जीवित तथा निर्जीव। कुछ साधनों को एक बार प्रयोग में लाने के बाद पुनर्योजित नहीं किया जा सकता। उदाहरणस्वरूप खनिज भंडार (mineral deposits) तथा शैल ईंधन (fossil fuels)। इनको *अनवीकरणीय साधन (non - renewable resources)* कहा जाता है। हमारे वन, चरागाह (pastures), वन्य जीवन, जल जीवन को पुनर्योजित किया जा सकता है अत: इन्हें *नवीकरणीय साधन (renewable resources)* कहा जाता है। फिर जनसंख्या के दबाव के कारण इन साधनों का उपयोग इतनी तेज़ी से किया जा रहा है कि इनका पुनर्योजन उसकी तेज़ रफ्तार से मेल नहीं रख पा रहा है जिससे कि ये नवीकरणीय साधन भी अनवीकरणीय बनते जा रहे हैं। भूमि का बनना एक बहुत ही धीमी तथा दीर्घकालीन प्रक्रिया है तथा इसमें हज़ारों वर्ष लग जाते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि विश्व प्रत्येक दशक में अपनी ऊपरी सतह का 7 प्रतिशत भाग खो रहा है। यदि समय से उपाय – जैसे वनरोपण आदि, नहीं

किए गए तो आशंका है कि कुछ दशकों में कृषि योग्य भूमि का ह्रास हो जाएगा । अनवीकरणीय साधनों का ह्रास तो और भी गंभीर है।

पर्यावरण का सामाजिक ह्रास

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से सिंचाई, रासायनिक उर्वरकों के उत्पादन, ऊर्जा जनन, स्टील आदि के लिए बड़े पैमाने की विकास परियोजनाओं की योजनाएं बनाई गई तथा इनमें से कई अब तक पूरी की जा चुकी हैं । सामान्यत: जहाँ भी एक विकास परियोजना प्रारम्भ की जाती है वहाँ उसके लिए कुछ कृषि व वन भूमि ली जाती है । वहाँ लोग (रहने वाले) विस्थापित होते हैं । प्रभावित व्यक्तियों को अपने घर तथा कारोबार छोड़ने पड़ते हैं तथा नई नौकरियाँ एवं रहने के लिए नई जगहें ढूँढनी पड़ती हैं । इनसे बहुत सारे लोगों के जीवन निर्वाह की पद्धति में रोजगार के स्वरूपों में तथा सामाजिक संगठनों में बहुत अन्तर आता है । जहाँ विकास परियोजनाओं में एक तरफ कुछ लोगों को बिजली, भोजन, पानी तथा रोजगार उपलब्ध कराए हैं वही दूसरी ओर इन्होंने लाखों लोगों को विस्थापित किया है तथा इनमें से अधिकतर शहरों में जाकर बस गए हैं । बड़े शहरों में पहले से ही आबादी अधिक है अत: बाहर से आए हुए लोग गन्दी बस्तियों में, सड़कों की पटरियों पर तथा झुग्गियों में बहुत ही अस्वस्थकर परिस्थितियों में रहते हैं जिससे उनके स्वास्थ्य को भी खतरा रहता है । यह अनुमान लगाया गया है कि 2000 ईसवी तक भारत में गन्दी बस्तियों की जनसंख्या बढ़कर 780 लाख हो जाएगी । ये बस्तियाँ सबसे बुरे प्रकार का पर्यावरणीय अपकर्ष प्रस्तुत करती हैं । यद्यपि हमारे देश के सर्वमुखी विकास के लिए ये विकास परियोजनाएं आवश्यक हैं परन्तु योजना ठीक से न बनाने तथा उपयुक्त व्यवस्था न करने के परिणामस्वरूप ये समस्याएं उत्पन्न हुई हैं ।

बोध प्रश्न - 3

1) वनों के उन्मूलन के कारणों की सूची बनाइए ।

क) ....

ख) ....

ग) ....

2) तीन प्रकार के नवीकरणीय व तीन प्रकार के अनवीकरणीय साधनों की सूची बनाइए ।

....

....

....

3) वर्तमान सदी में नवीकरणीय साधन संकट में क्यों है ?

....

....

....

4) वनों का उन्मूलन किस प्रकार बाढ़ों के लिये उत्तरदायी है ? वर्णन कीजिए ।

....

....

....

5) चार वायु प्रदूषकों के नाम बताइए।

....

....

....

6) अम्ल वर्षा के लिए उत्तरदायी प्रदूषकों के नाम बताइए। यह कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

....

....

7) जल प्रदूषण के स्रोतों की सूची बनाइए। इनमें किस प्रकार के प्रदूषक सम्मिलित होते हैं ?

....

....

....

24.4 स्वास्थ्य एवं पर्यावरण

हमने विस्तार से यह चर्चा की है कि किस प्रकार मनुष्य की विभिन्न क्रियाओं ने भूमि, वायु, जल तथा उनमें रहने वाले जीवों का किस प्रकार से अशोधनीय नुकसान किया है। मनुष्य बड़ी निर्दयता से अपने उपग्रह (जो कि उसे जीवन देता है, उसका पालन पोषण करता है, उसे बनाए रखता है) का शोषण कर रहा है। अब पर्यावरण की रक्षा करने की चिन्ता उसके प्रकृति के प्रति प्यार के कारण न होकर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने स्वास्थ्य, ठीक प्रकार से रहने, सुविधाएं प्राप्त करने तथा रोगों तथा बीमारियों से बचने के लिए है।

यद्यपि प्राचीन सभ्यताएं पर्यावरण को स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव को जानती थी परन्तु आधुनिक समय में पर्यावरण को स्वच्छ बनाये रखने का महत्व औद्योगिक क्रान्ति के बाद समझा गया। तब से ही बड़ी मात्रा में स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को समझने तथा उनका हल निकालने में काफी सफलता प्राप्त की गई है।

एक व्यक्ति का स्वास्थ्य उस पर पड़ने वाले अनेक प्रभावों का परिणाम होता है। यह प्रभाव तीन कोटियों में विभक्त किये जा सकते हैं : (1) आनुवांशिक (genetic), (2) व्यवहारात्मक (behavioural) तथा (3) पर्यावरण संबंधी। आनुवांशिक प्रभाव का संबंध व्यक्ति की अपने माता-पिता से प्राप्त विशेषताओं से है। जैसे – बाहरी रूपरेखा, बुद्धि तथा विसंगतियाँ या रोग। हीमोफीलिया, मॉंगोलिज़्म, दात्र कोशिका अरक्तता (sickle cell anaemia) तथा थाइलीसिमिया (thalassaemia) आदि आनुवांशिक बीमारियाँ हैं। किन्तु अलर्जी, अतितनाव, रिस्काज़ोफ्रेनिया, दमा तथा मधुमेह आदि रोग पूर्ण रूप से आनुवांशिक कारणों से नहीं होते क्योंकि ये पोषक तत्वों, तनाव, आवेग हॉरमोन, औषधियों या अन्य पर्यावरण संबंधी कारणों से भी प्रारम्भ हो सकते हैं। दूसरे शब्दों में, सामान्य रूप से यदि व्यक्ति पर्यावरण अनुकूल हो तो वह इनसे प्रभावित नहीं होंगे तथा व्यक्ति स्वस्थ रहेगा। व्यवहार संबंधी प्रभाव में आदतों का प्रभाव जैसे सिगरेट पीने का, ड्रग सेवन का, मद्यपान, तम्बाकू या पान मसाला चबाने का या आहार संबंधी व्यवहार आते हैं जो कि हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

पर्यावरण के विभिन्न अंग हमारे स्वास्थ्य पर अपना-अपना प्रभाव डालते हैं। ये अंग है – भौतिक, रासायनिक, जैवीय, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक। इन श्रेणियों के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न कारण / साधन चित्र 24.6 में दिखाए गए हैं।

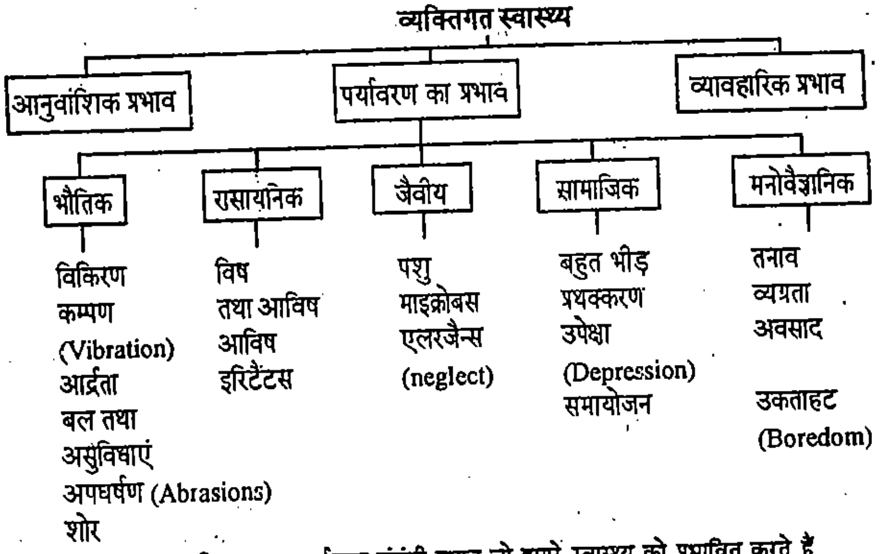

चित्र 24.6 : पर्यावरण संबंधी प्रभाव जो हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं

मनोवैज्ञानिक परिवेश मनुष्य का अपना बनाया हुआ एक अलग हीं प्रकार का वातारण है । सामाजिक एवं चिकित्सीय वैज्ञानिकों ने मनोवैज्ञानिक पर्यावरण एवं कुछ विशेष रोगों के होने में एक स्पष्ट संबंध स्थापित कर लिया है। उदाहरणस्वरूप यह स्पष्ट दिखाया गया है कि फेफड़ों का कैंसर रासायनिक तत्वों के कारण होता है परन्तु आदतन धूम्रपान का कारण अधिकतर मनो-सामाजिक होता है ।

जैसा कि आप जानते ही हैं कि कुछ पर्यावरण की स्थितियाँ जैसे हवा, पानी एवं भोजन मनुष्य को जीवित रहने के लिए आवश्यक है । इनकी उपलब्धता के साथ-साथ इनकी गुणवत्ता एवं मात्रा भी मनुष्य की प्राकृतिक एवं अपने आप को बनाए रखने के लिए अपनाई हुई क्षमतानुसार सुनिश्चित करना आवश्यक है । औद्योगीकरण अपने विकास के साथ प्रदूषण एवं स्वास्थ्य के लिए जोखिमें भी साथ लाया है । हमने कुछ स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के विषय में पहले बताया है । जैसा कि आपने पाठ्यक्रम - 1 के खण्ड IV में पढ़ा था भोजन सामग्री में गैर-अनुमति प्राप्त या निम्न कोटि के रसायन को कृत्रिम रंग के लिए, खराब होने से बचाने, सुगन्ध लाने, मिठास देने या अन्य कारणों से मिलाया जाता है । विषैली धातुएं भोजन को डिब्बाबन्द करने के समय विषाक्त कर देती है या पकाने के समय अनुपयुक्त धातु के बर्तनों के प्रयोग से भी भोजन विषाक्त बन सकता है । हमारा जल जैवीय संदूषकों (वाहित मल के) या रासायनिक संदूषकों (उद्योगों के) से प्रदूषित हैं । श्वास संबंधी बीमारियाँ तथा कोयले की धूल, टेल्क, रुई के रेशे, फ्लैक्स, हैम्प तथा एस्बैस्टस के श्वास के अन्दर जाने के कारण होने वाली बीमारियाँ बढ़ रही हैं ।

दिकासात्मक क्रियाओं विशेष रूप से सिंचाई परियोजनाओं के कारण बड़े क्षेत्र में मलेरिया, डैंगू बुखार, जापानी एनसिफलाइटिस तथा जैनू वैलगम (नॉक-नीज़) की समस्याएं फैली व बढ़ी हैं । यह रिपोर्ट दी गयी है कि शरीर कें उत्तकों में डी.डी.टी. का संकेन्द्रण भारतीयों में सबसे अधिक है। यह हमारी खाद्य सामग्री में इस पीड़कनाशी (pesticide) के अधिक मात्रा में रह जाने के कारण है । कुछ व्यक्ति जो पीड़कनाशी से अत्याधिक प्रभावित थे, वे कूल्हों के दर्द तथा घुटनों के दर्द से पीड़ित रहे तथा बाद में वह खड़े होने में भी कठिनाई महसूस करने लगे ।

बहुत लोग अपने व्यवसाय से संबंधित स्वास्थ्य समस्याओं से परेशान रहते हैं जैसे जो लोग कार्यालय में लगातार अपनी मेज़ पर बैठकर कार्य करते हैं । कई बार उनको गर्दन या पीठ की स्पौन्डेलाइटिस हो जाती है।

ध्वनि प्रदूषण एक और समस्या है जो कि हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करती है । आधुनिक जीवन में यह तनाव का एक मुख्य कारण बन गया है। तेज़ ध्वनि स्तर में रहने के परिणामस्वरूप विभिन्न परिमाण में बहिरता आ सकती है । सामान्य रूप में आधुनिक जीवन से जुड़े तनाव, व्याग्रता, अवसाद, खिन्नता, डर तथा रोष उत्पन्न करते हैं जिसके परिणामस्वरूप शारीरिक बीमारियाँ जैसे सिरदर्द, नींद न आना, पेट खराब रहना तथा पेशियों में तनाव आदि हो जाती है ।

जोध प्रश्न -4

1) निम्नलिखित में से कौन-सी बीमारी पर्यावरण के प्रभाव से होती है ?

   क) अधिरक्तस्राव (हीमोफिलिया)

   ख) मधुमेह

ग) ज़ोफ्रेनिया

घ) दमा

च) मंगोलीज्म

2) हमारे देश में विकासात्मक क्रियाकलापों के कारण पैदा हुई तीन बीमारियों की सूची बनाइए ।

क) ....

ख) ....

ग) ....

24.5 पर्यावरण का आर्थिक पहलू (Environmental Economics)

अब तक हमने प्रदूषण की समस्या तथा इसके हानिकर प्रभाव के विषय में ही विस्तार से चर्चा की है । इस भाग में हम प्रदूषण के नियंत्रण तथा उसके आर्थिक पहलू पर विचार करेंगे । कहा जाता है कि ''प्रदूषण को नियंत्रित करने में व्यय होता है'' परन्तु यदि इसे नियंत्रित न किया जाए तो भी इस पर व्यय होता है। नुकसान के रूप में होने वाला व्यय तथा प्रदूषण को नियंत्रित करने पर होने वाला व्यय दोनों ही शुद्ध मौद्रिक रूप में आँके जा सकते हैं तथा उनका लागत-लाभ विश्लेषण किया जा सकता है। इससे किसी भी देश को अपनी कार्य योजना बनाने में मार्गदर्शन मिल सकता है । इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए हम कुछ औद्योगीकृत देशों से प्राप्त आँकड़ों को देखेंगे क्योंकि हमारे देश में इस प्रकार के आँकडे हैं ही नहीं ।

विविक्त तत्वों (particulate matter) के उत्सर्जन को नियंत्रित करने के लिए अपनाई गई प्रणाली है –चक्रावात (cyclones), बैग फिल्टरर्स, इलैक्ट्रोस्टेटिक अवक्षेपित्र (electrostatic precipitators) तथा स्क्रबरस (मार्जक)। यह यंत्र नियंत्रित की जाने वाली गैस की मात्रा के अनुसार लगाए जाते हैं तथा इनकी लागत कुछ हज़ार से लेकर कुछ लाख रु. तक हो सकती है । बड़े फिल्टर बैग लगाने में कुछ लाख रुपए से कुछ करोड़ रुपए तक की लागत आ सकती है । फिर भी जापान, जर्मनी तथा संयुक्त राज्य अमरीका से प्राप्त लागत-लाभ आँकड़े दिखाते हैं कि वायु प्रदूषण नियंत्रण के लिए किया गया व्यय उपयुक्त सिद्ध हुआ क्योंकि उसकी लागत वापस मिल गई तथा उससे अन्तत: लाभ ही रहा ।

प्रदूषण के कारण हुआ आर्थिक नुकसान सकल राष्ट्रीय उत्पादन (जी.एन.पी.) के प्रतिशत के रूप में इंग्लैंड में 3 प्रतिशत, यू.एस.ए. में 2 प्रतिशत तथा कनाडा में 1 प्रतिशत रहे । यदि सफाई अभियान से हुई पूरी बचत व इसपर आई पूरी लागत को देखा जाए तो यू.एस.ए. का लागत-लाभ विवरण दिखाता है कि सफाई के लिए व्यय किये गए प्रत्येक डालर से 2 डालर का लाभ हुआ । अत: हम यह निर्णय निकाल सकते हैं कि समझदारी इसी में है कि प्रदूषण को नियंत्रित किया जाए क्योंकि इससे नुकसान से बचत होती है तथा लाभ प्राप्त होता है ।

यदि हम पर्यावरण संबंधी नुकसानों को देखें, जो कि दूसरे देशों में हुए, जब वे उतने ही औद्योगीकृत थे जितने हम आज हैं, तो हमें विदित होगा कि ये नुकसान सकल राष्ट्रीय उत्पादन (जी.एन.पी.) के 2 से 3 प्रतिशत थे । इसका अर्थ है कि एक देश को उसका आधा अर्थात् अपने सकल राष्ट्रीय उत्पादन का कम से कम 1 या 1.5 प्रतिशत प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए अवश्य व्यय करना चाहिए । यह भारत के लिए प्रतिवर्ष लगभग 3000 करोड़ रुपए के बराबर होगा । इस समय लगभग 6000 करोड़ रुपए प्रदूषण नियंत्रण के लिए व्यय किए जाते हैं । चूँकि हमारे देश के पास साधनों की कमी है अत: प्रदूषण नियंत्रण के कुछ अन्य उपाय करने होंगे । दो सुझाई गई व सबसे प्रभावी तथा एक दूसरे की पूरक कार्य नीतियाँ निम्नलिखित हैं :

1) अपशिष्ट न्यूनतमीकरण (Waste minimisation): कम से कम सामग्री बेकार की जाए, तथा

2) बेकार सामग्री को उपयोग में लाया जाए ।

नियंत्रण विधियों द्वारा प्रदूषण कम करने तथा अपशिष्ट न्यूनतमीकरण द्वारा प्रदूषण को नियंत्रित करने में अन्तर है । नियंत्रण उपायों का प्रयोग या तो और नुकसान को रोकने के लिए किया जाता है या पहले ही हो चुके नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए किया जाता है ।

अपशिष्ट न्यूनतमीकरण

सबसे पहले आपको यह समझना होगा कि कुछ न कुछ बेकार सामान तो निकलेगा ही उसे रोका नहीं जा सकता। मनुष्य तथा अन्य जीव अपनी प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा ही कुछ अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं। कृषि की गतिविधि से भी अपशिष्ट जनित होता है। यह हमारे देश में, फसल का बचा भाग तथा कृषि रसायन अपशिष्टों, लगभग 6000 लाख टन से अधिक होता है। औद्योगिकीय प्रक्रियाओं में भी उपयोगी उत्पादों के साथ-साथ बेकार सामग्री भी निकलती है। बेकार सामग्री की हमेशा कुछ लागत होती है। निर्माण प्रक्रियाओं में यह उत्पाद की लागत पर ही उत्पादित होती है। यदि यह अपशिष्ट अधिक निकल रही है तो इसका अर्थ है अकुशल कार्य। कई बार बेकार सामग्री लापरवाही तथा गलत आदतों के कारण भी निकल सकती है। व्यक्तिगत स्तर पर हम इस बेकार सामग्री को व अपशिष्ट को कम कर सकते हैं।

बेकार सामग्री सम्पत्ति है

पानी व ऊर्जा बचाइए, अनावश्यक उपयोग कम कीजिए

गंगा कार्य योजना के पहले चरण में 262 विभिन्न योजनाओं के अर्न्तगत गंगा नदी को साफ करने का व्यय 26000 लाख रुपए आँका गया है। इससे आप अनुमान लगा सकते हैं कि एक गन्दे पर्यावरण को साफ करना कितना महँगा होगा। क्या यह इससे अच्छा नहीं होगा कि हम जहाँ तक सम्भव हो कूड़ा-करकट के इकट्ठा होने को ही रोक दें।

अपशिष्ट का उपयोग (Waste utilization)

तकनीकी रूप से अपशिष्ट को उपयोग के लिए पुन: उपलब्ध कराना संभव है। अधिकाँश उद्योगों के लिए व व्यक्तिगत स्तर पर भी आर्थिक रूप से यह समझदारी की बात लगती है। उल्लेखनीय 3 में अपशिष्ट के विभिन्न उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में उपयोग की संभावनाओं को बताया गया है।

उल्लेखनीय 3

अपशिष्ट से लाभ प्राप्त करना

भारत में अब पहली बार अपशिष्ट का बड़े पैमाने पर उपयोगी वस्तुएं बनाने के लिए प्रयोग किया जा रहा है। इन वस्तुओं को बेचने के लिए बाज़ार में काफी माँग भी विकसित हो गई हैं जो कि इन्हें अधिक लाभ की क्रिया बना रहा है। नीचे कुछ प्रमुख उदाहरण भी दिए जा रहे हैं:

- शहरों से निकले कचरे में ज़ीवाणु के कुछ प्रभेद मिला दिए जाते हैं। जीवाणु कचरे को सरल रसायनों में बदल देता है। इस प्रकार वह उनके सड़ने की अवधि व दुर्गंध को कम कर देता है और अन्तत: उसे खाद में बदल देता है। खाद, जैसा कि आप जानते हैं, आजकल प्रयोग में लाए जाने वाले रासायनिक उर्वरकों की तुलना में बहुत अच्छी होती है।
- फ्लाईएश, थर्मल पावर प्लांटों से बड़ी मात्रा में निकलती है क्योंकि भारतीय कायले में राख की मात्रा अधिक होती है। यह फ्लाईएश आज़कल ईटें बनाने के लिए प्रयोग में लाई जाने लगी है जिब फ्लाईएश को चूने, कैलसिनेटिड जिप्सम तथा पानी के साथ मिलाया जाता है तो एक सीमेंट की तरह की चीज़ बन जाती है। इसको ईटों के आकार व पैनल के रूप में ढाल दिया जाता है जो कि मिट्टी की ईटों या पैनलों की तुलना में अधिक मज़बूत होते हैं। ये ईटें इतनी उच्च कोटि की होती हैं कि कई विदेशी दूतावासों तथा होटलों ने भी इनको खरीदने के आदेश दिए हैं।
- मृदुपेयों की प्लास्टिक की शीशियों को पिघला कर उनको चिप्स के आकार का बना लिया जाता है जिनका प्रयोग पॉलिएस्टर फाइवर बनाने के लिए किया जाता है। अन्यथा यह बोतलें बेकार सामग्री के रूप में बड़ी समस्या उत्पन्न करती हैं।
- मद्य निर्माणशालाएं भी बड़ी मात्रा में बहि:स्राव या प्रयोग के बाद बचा हुआ हिस्सा बाहर निकालती हैं। अब ऐसे उद्योग स्थापित हो रहे हैं जो कि इसमें से बैक्टीरिया की सहायता से मीथेन गैस पैदा करेंगे। मीथेन गैस का उपयोग ईंधन की तरह किया जाता है। इस प्रकार पैदा की गई गैस मद्य निर्माणशालाओं को ही अपनी भट्टियों या बॉयलरों में मिट्टी के तेल या कोयले के स्थान पर प्रयोग में लाई जाती है। कुछ उद्योग घरों से निकले कचरे को भी इसी तकनीक से ऊर्जा में परिवर्तित करने की आशा कर रहे हैं।

- कैन्टीनों तथा स्फुटनशालाओं (hatcheries) से निकले कचरे का प्रयोग केंचुए पैदा करने के लिए किया जाता है। इन केंचुओं की कास्टिंग अतुल्म खाद बनाती है।
- रुई के पौधे के वृंतो को रेज़िन से जोड़कर उनसे टीक जैसा बोर्ड बनाया जाता है। इसकी लागत असली टीक बोर्ड की लागत के आधे के बराबर आती है। चावल की भूसी का भी इसी प्रकार प्रयोग किया जाता है।

टिप्पणी : आप इस प्रकार के उद्यमों के बारे में अधिक विस्तार से सूचना, 7-21 जून 1993 के बिज़नेस टुडे में प्राप्त कर सकते हैं।

बोध प्रश्न - 5

1) प्रदूषण रोकने तथा प्रदूषण नियंत्रित करने के कार्यक्रमों में अन्तर बताइए। इनमें से कौन-सा अधिक लाभप्रद है ?

....

....

....

....

2) "अपशिष्ट वास्तव में गलत जगह पड़े संसाधन है।" टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

24.6 पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के विभिन्न तरीके

पिछले भागों में हम इस विषय में पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि किस प्रकार मनुष्यों की क्रियाओं ने विश्व के पारितंत्र के नाजुक संतुलन को नुंकसान पहुँचाया है या बदल ही दिया है ! हमारे देश की पर्यावरण संबंधी समस्याओं को भी वनों के उन्मूलन के संबंध में चर्चा के साथ वायु जल तथा भूमि प्रदूषण के उपभागों में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।

अब हम इस विषय पर विचार करेंगे कि हम इन पर्यावरण संबंधी समस्याओं को सुलझाने के लिए क्या कर सकते हैं। हम इस दिशा में दो प्रकार से प्रयास कर सकते हैं।

1) सामुदायिक स्तर पर पर्यावरण संबंधी जागरुकता तथा इसके प्रति शिक्षित करने के अभियान की व्यवस्था करना।

2) निम्नलिखित स्तरों पर पर्यावरण संबंधी आवश्यक कदम उठाकर :

   - सरकार
   - गैर-सरकारी संगठनों
   - सामुदायिक / व्यक्तिगत

इस बात पर अवश्य बल दिया जाना चाहिए कि व्यक्ति अपने पर्यावरण की रक्षा करने के लिए तभी तैयार होता है जब वह उसका महत्व जान जाता है । अत: व्यक्ति / समुदाय के स्तर पर कार्य को प्रेरित करने के लिए पर्यावरण संबंधित सूचनाएं प्रचारित करने की आवश्यकता है । उन्हें यह बताने की आवश्यकता है कि किस प्रकार पर्यावरणीय निम्नीकरण या ह्रास होता है तथा उससे किस प्रकार हमारे स्वास्थ्य और हमारे जीवन को नुकसान पहुँचता है । इन सब पहलुओं के प्रति जागरुकता ही व्यक्तियों को अपने क्षेत्र में पर्यावरण समस्याओं को सुलझाने तथा पर्यावरण के निम्नीकरण को रोकने के लिए कार्य करने की ओर प्रेरित कर पाएगी ।

जैसा कि हमने पहले भी बताया है कि सरकार, गैर-सरकारी संस्थाओं तथा व्यक्ति / समुदाय सभी स्तर पर किए गए कार्य पर्यावरण के बचाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । हम सबसे पहले सरकारी योजनाओं, अभियानों के विषय में चर्चा करेंगे तथा नियम बनाने में सरकार की भूमिका को देखेंगे।

पर्यावरण प्रतिरक्षण में सरकार की भूमिका

जागरुकता बढ़ाने के अभियानों में सरकार ने उत्प्रेरक (catalyst) की भूमिका अदा की है । सरकार ने पर्यावरण संबंधी कानून बनाकर पर्यावरण के प्रति अपराध करने वालों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने के लिए कानूनी ढाँचा भी स्थापित किया है । राष्ट्रीय पर्यावरण संबंधी जागरुकता उत्पन्न करने के लिए पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा चलाए जा रहे अभियान इस प्रकार के कार्यक्रमों का एक उदाहरण हैं जो कि पर्यावरण को बचाने का संदेश फैला रहे हैं । इनके द्वारा लोगों को विभिन्न मुद्दों के विषय में सोचने के लिए तथा वनरोपण, पारितंत्र को पुनर्नियोजित करने से संबंधित अन्य योजनाओं के लिए, प्रदूषण नियंत्रण तथा वन स्थिति एवं पशुओं के संरक्षण के लिए कार्य आरम्भ करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ।

एक अन्य रोचक योजना, जो कि मंत्रालय द्वारा प्रारम्भ की गई है, ''पर्यावरण वाहिनी'' योजना है । यह वाहिनियाँ व्यक्तियों के समूह है (20 व्यक्ति प्रतिवाहिनी) जिनमें व्यक्तिगत कार्यकर्त्ता तथा सदस्य सम्मिलित हैं और वह निम्नलिखित गतिविधियों में शामिल हैं :

- पर्यावरण संबंधी जागरुकता उत्पन्न करने एवं पर्यावरण से संबंधित योजनाओं में लोगों की भागीदारी बढ़ाने में
- वनों को काटने, चोरी से शिकार करने, प्रदूषण तथा वाणिज्यिक गतिविधि जैसे खनन से पर्यावरण ह्रास आदि से संबंधित गैर-कानूनी मामलों की सूचना देने में
- वनारोपण तथा पौधे को पुन: लगाने की प्रतिपुष्टि में
- वायु एवं जल की गुणवत्ता की मॉनिटरिंग में ।

यह योजना पर्यावरण संबंधी शिक्षा प्रदान करने में सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठनों के बीच होने वाला उपयोगी सहयोग दिखाती है । हम पहले ही कुछ गतिविधियों के विषय में चर्चा कर चुके हैं जो कि सरकार द्वारा जानकारी प्रचारित, सूचनाएं उपलब्ध कराने व पर्यावरण संबंधी कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए शुरू की गई थी । आप यह तो स्पष्ट रूप से समझ ही गए होंगे कि इस प्रकार की कार्यवाही केवल स्थानीय स्तर पर ही किया जाना सदैव काफी नहीं होता । इसके लिए सारे देश में समान रूप से प्रभावी जाँच और नियंत्रण की एक प्रणाली की आवश्यकता है । इस प्रकार की प्रणाली में कानून बनाना तथा उसे प्रभावी रूप से लागू कराना, विशेष रूप से प्रदूषण को नियंत्रित करने व पर्यावरण के निम्नीकरण को रोकने के लिए, भी सम्मिलित होना आवश्यक है । भारत सरकार द्वारा पारित विभिन्न अधिनियम निम्न प्रकार हैं :

- **जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम**

इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार केन्द्रीय एवं राज्य स्तरों पर जल प्रदूषण बोर्डों की स्थापना की गई हैं। इन बोर्डों को जल प्रदूषण के प्रतिरक्षण एवं नियंत्रण के लिए परामर्श देने, कार्यवाही समन्वित करने तथा तकनीकी सहायता उपलब्ध कराने की शक्तियाँ दी गई । ये जल प्रदूषण के स्तर की देख-रेख भी करते हैं तथा प्रदूषण के अनुमत स्तर भी निर्धारित करते हैं ।

जल अधिनियम जहरीले, अनिष्टकारी या प्रदूषक पदार्थों को जलधारा या झरनों, नदियों या अन्य जलाशयों में डालने का निषेध करता है । यह अन्य ऐसी किसी गतिविधि का भी निषेध करता है, जो कि पानी के बहाव को रोक दे या कम कर दे जिसके परिणामस्वरूप वहाँ प्रदूषक एकत्रित हो जाएं ।

- **वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम**

वायु अधिनियम स्वचालित वाहनों एवं उद्योगों के उत्सर्जन को नियमित करता है। जल प्रदूषण प्रतिरक्षण एवं नियंत्रण बोर्ड ही इस अधिनियम को भी लागू करता है। इसके अतिरिक्त यह वायु की गुणवत्ता का स्तर भी निर्धारित करता है।

- **पर्यावरण (प्रतिरक्षण) अधिनियम**

इस अधिनियम का सीमा क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है तथा इसमें जोखिम पूर्ण पदार्थों को उठाना, रखना, पर्यावरण संबंधी दुर्घटनाओं को रोकना, अनुसंधान, प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों का निरीक्षण करना, प्रयोगशालाएं स्थापित करना व सूचनाएं उपलब्ध कराना सम्मिलित है। यह अधिनियम केन्द्रीय सरकार को काफी शक्तियाँ प्रदान करता है। यह व्यक्तियों को भी न्यायालय में मुकदमा करने की सुविधा देता है। इस अधिनियम के बनने से पहले यह केवल पहले बताए गए बोर्डों द्वारा ही किया जा सकता था।

- **वन्य जीवन (प्रतिरक्षण) अधिनियम**

यह अधिनियम वन्य जीवन के संरक्षण तथा पशुओं एवं वनस्पतिओं की विशिष्ट जातियों, जिनके समाप्त होने की आशंका हो, के बचाव को नियंत्रित करता है। अधिनियम दुर्लभ तथा समाप्त होने का खतरा होने वाली जातियों के व्यापार का निषेध करता है। इस अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत सरकार राष्ट्रीय उद्यानों एवं पशुओं के सुरक्षित शरण स्थलों (sanctuaries) के रखरखाव के लिए, वन्य जीवन के बचाव, उनके चोरी से किए जाने वाले शिकार तथा वन्य जीवन उत्पादों के गैरकानूनी व्यापार को रोकने के लिए, खतराग्रस्त पशुओं को बंदी बनाकर उनके प्रजनन के कार्यक्रमों के लिए, वन्य जीवों के संबंध में शिक्षा तथा संबंधित प्राणि उपवनों के विकास के लिए आर्थिक सहायता देतो है।

अब तक हमने केवल कुछ प्रमुख नियमों के विषय में, जो कि विद्यमान हैं, चर्चा की है। परन्तु यह नियम कितने प्रभावी हैं, क्या ये ठीक से लागू किए गए हैं ? ऐसी कौन-सी समस्याएें हैं जिनका अभी तक समाधान नहीं हो पाया है ? पर्यावरण संबंधी कानूनों की क्या कमियाँ हैं तथा उनको लागू करने में क्या कठिनाइयाँ है, इसकी चर्चा उल्लेखनीय - 4 में की गई है।

उल्लेखनीय - 4

कानूनों को लागू करना

- पर्यावरण (प्रतिरक्षण) अधिनियम नदियों के प्रदूषण को नियंत्रित करने की व्यवस्था करता है। परन्तु गंगा का 90 प्रतिशत प्रदूषण नगर निगमों द्वारा अपना कचरा, अपशिष्ट नदियों में डालने के कारण है। नगर निगमों के पास इतना पैसा ही नहीं है कि वे अपने उपचार संयंत्र लगाएं और कूड़े को नदी में डालने से पहले उसका उपचार करें।
- वन बिल का जनता के विरोध के कारण अनुमोदन नहीं हो सका। प्रस्तावित बिल वनों में तथा वनों से दूर रहने वाले जन जातियों के लिए बड़ी समस्या खड़ी कर देता क्योंकि इसमें पत्ती तथा फलों सहित सभी वन उत्पादों को लेने का निषेध किया गया था। प्रस्तावित बिल में वन अधिकारियों को बहुत महत्वपूर्ण शक्तियाँ दीं। इसका भी व्यक्तियों ने विरोध किया।
- क्या किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह, जो कि न्यायालय में कोई मुकदमा दायर करते हैं, से यह आशा की जा सकती है कि वे उच्च विकिरण स्तर या उच्च जल प्रदूषण स्तर के प्रामाणिक सबूत दे पाएंगे।
- वर्ष 1984 में भोपाल त्रासदी (जहरीली गैस के रिस जाने से) 5000 व्यक्तियों की जानें गई तथा शहर की लगभग एक चौथाई जनसंख्या उससे प्रभावित हुई। मुआवज़े के दावों का निपटान अब केवल प्रारम्भ हो रहा है। इसमें कानून को एक शक्तिशाली बहुदेशीय निगम से प्रतिवाद करना था।
- संभव है छोटे उद्योग प्रदूषण को कम करने के लिए आवश्यक उपचार संयंत्र स्थापित करने की स्थिति में न हों क्योंकि इस प्रकार के संयंत्र बहुत महंगे होते हैं।

उल्लेखनीय - 4 स्पष्ट रूप से नियमों को लागू करने में आने वाली निम्नलिखित समस्याओं को दिखाता है:

- संरचना का प्रबंध करना

- बड़ी मात्रा में प्रदूषण फैलाने वाली सरकारी संस्थाओं तथा निजी उद्यमों पर दबाव डालना
- सफाई की लागत को पूरा करना
- कुछ मामलों में व्यक्तियों की मुकदमा दायर एवं लड़ने की असमर्थता
- मुकदमेबाज़ी की लागत को पूरा करना (मुकदमा लड़ना)
- ऐसे लोगों से झगड़ा, जिन्हें स्थानीय स्तर पर उपलब्ध साधनों की आवश्यकता है तथा जो उनका प्रयोग करते हैं। ये लोग इस प्रकार के नियमों को एक खतरे के रूप में देखते हैं।

पर्यावरण संबंधी कार्यवाही में गैर-सरकारी संस्थाओं की भूमिका

हमने अब तक पर्यावरण प्रतिरक्षण में सरकार की भूमिका की ही चर्चा की है। पर्यावरण वाहिनी के संबंध में चर्चा के समय हमने सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठनों के बीच सहयोग की ओर इंगित किया था। आइए, अब गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका का अध्ययन अधिक विस्तार से करें।

गैर-सरकारी संगठन निम्नलिखित तीन भूमिकाओं में से एक या अधिक भूमिका अदा करते हैं –

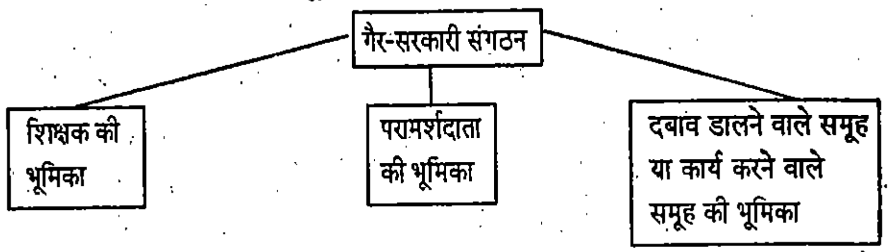

गैर-सरकारी संगठनों की दबाव डालने व कार्य करने वाले समूह (pressure group) की भूमिका ''दशौली ग्राम स्वराज्य संघ'' (द.ग्रा.स्वा.सं.) के उदाहरण से दिखाई जा सकती है जिसने कि आठवें दशक के प्रारम्भ में चमोली जिले में चिपको आन्दोलन शुरू किया। यह अभियान स्थानीय लोगों से प्रारम्भ हुआ था जिन्होंने यह समझ लिया था कि वनों के विनाश के कारण उन्हें बाढ़ों की विभीषिकाओं का सामना करना पड़ता है। वनों का विनाश कई वर्षों से वाणिज्यिक प्रयोग के लिये बड़े पैमाने पर पेड़ों को काटने के परिणामस्वरूप हो रहा है। अत: द.ग्रा.स्व.संघ. ने अपने पेड़ों को बचाने के लिए ठेकेदार से अपनी जान का खतरा होने पर भी पेड़ों से चिपकने का निर्णय लिया तथा अपने इस अभियान के लिए उसने बहुत से और गाँवों को भी अपने साथ कर लिया। इस प्रकार उन्होंने अपने वनों के संरक्षण के परम्परागत अधिकार के लिए दबाव डाला तथा वनों के उन्मूलन के विनाशकारी प्रभाव से अपने आप को बचाने का प्रयास किया। चिपको आन्दोलन ने सफलतापूर्वक शक्तिशाली लोगों पर हिमालय क्षेत्र में वनों को बनाए रखने के पक्ष में कार्य करने के लिए दबाव डाला।

दूसरी ओर दिल्ली स्थित कल्पवृक्ष (Kalpavriksh) तथा केरल सास्त्र साहित्य परिषद ने गैर-सरकारी संगठनों की जागृति उत्पन्न अनुसंधान कार्य संचालित करने तथा शिक्षण सामग्री विकसित करने की भूमिका निभाई है। कल्पवृक्ष ने विशेष रूप से : 1) दिल्ली के हरियाले क्षेत्र के विनाश का विरोध करने, 2) नर्मदा घाटी योजना का अनुमान लगाने, 3) कीटनाशकों के प्रयोग, 4) वायु प्रदूषण, तथा 5) खनन गतिविधियों के प्रभाव पर विशेष ध्यान दिया है।

केरल शास्त्र साहित्य परिषद ने जल एवं ऊर्जा साधनों को संरक्षित करने के लिए जागरुकता लाने में सहायता दी है। परिषद का अपनी शिक्षण योजनाओं के लिए लोक कलाओं का प्रयोग विशेष रूप से लाभदायक एवं रोचक है।

अब तक हमने मुख्य रूप से सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा पर्यावरण को पहुँचाए जाने वाले नुकसान को रोकने तथा पर्यावरण प्रतिरक्षण को बढ़ावा देने के लिए अपनाई गई क्रियाविधि पर चर्चा की है। हमने इसमें सामने आई समस्याओं के विषय में भी चर्चा की है। यहाँ पर यह भी विशेष रूप से बता दिया जाना चाहिए कि कानूनों को क्रियान्वित करने, प्रदूषण नियंत्रण उपायों को संस्थापित करने या विद्यमान औद्योगिक एवं घरेलू व्यवहारों में सुधार करने के सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक कारणों को भी ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।

आइए, अब हम इस पहलू की ओर ध्यान देते हैं कि पर्यावरण के संकट को किस प्रकार संभाला जा सकता है। सरल शब्दों में किस प्रकार हम उदाहरण के लिए अपनी नदियों या ज़मीन की सफाई कर सकते हैं। इसके लिए विभिन्न स्तरों सरकारी, गैर-सरकारी तथा स्थानीय समुदायों पर कार्यवाही करना आवश्यक है।

इस संदर्भ में आपको गंगा कार्य योजना (जी.ए.पी.), जिसके विषय में हमने इससे पहले भाग में बताया था, के संबंध में कुछ विवरण देना उपयोगी रहेगा। यह योजना 1986 में प्रदूषण की मात्रा कम करके तथा स्वपोषी वाहित मल उपचार प्रणालियों के संयंत्र स्थापित करके गंगा नदी की गुणवत्ता उन्नत करने के लिए प्रारम्भ किया गया था। आप यह तो समझते ही होंगे कि नगरों तथा शहरों से निकला वाहित मल तथा फैक्टरियों का बहि:स्राव (बेकार पदार्थ) नदियों में गिरता है। इसे "प्रदूषण भार" कहते हैं। इस भार को कम करने के लिए फैक्टरियों को अपनी अपशिष्ट की मात्रा नियंत्रित करनी होगी तथा उनका उपचार भी करना होगा जिससे कि वह पर्यावरण के लिए कम विषाक्त और कम नुकसान देने वाली बन जाए। इसके साथ ही प्रदूषण का भार, नगर निगम के वाहित मल को भी नदियों में डालने से पूर्व उपयुक्त वाहित मल उपचार संयत्रों से उपचारित करके कम करना होगा।

प्रदूषण फैलाने वाले 264 उद्योगों, जोकि अपने बेकार अपशिष्ट को गंगा व उसकी सहायक नदियों में डालते है, उनमें से 68 पूरी तरह प्रदूषित करने वाली इकाइयों की बहि:स्राव उपचार संयंत्र लगाने के लिए निगरानी की गई। दोषी पाए गए उद्योगों के विरुद्ध अभियोग लगाकर कार्यवाही भी प्रारम्भ की गई। लगभग 40-45 इकाइयों ने उपचार संयंत्र लगा लिए हैं। इसके साथ ही एक दिन में 4850 लाख टन म्यूनिसिपिल सीवेज को रोकने, किसी अन्य तरफ भेजने तथा एक दिन में 2230 लाख टन म्यूनिसिपिल सीवेज के उपचार की क्षमता वाली अवसंरचना निर्मित की जा चुकी है।

छोटे उद्योगों विशेष रूप से जो कि विभिन्न कारणों से निर्धारित मानकों का पालन नहीं कर पाते हैं, की समस्याओं के समाधान के लिए कई व्यावहारिक सुझाव दिए गए हैं। उदाहरणस्वरूप यह प्रस्ताव है कि कुछ उद्योग, जो एक दूसरे के आसपास स्थित हैं, मिलकर उपचार संयंत्र की लागत को आपस में बाँट कर साझे का संयंत्र स्थापित कर सकते हैं। छोटे उद्योगों के हितों को ध्यान में रखते हुए सरकारी सहायता का भी सुझाव दिया गया है।

इस इकाई में हुई हमारी चर्चा ने आपको निश्चय ही पर्यावरण से संबंधित विषयों के बारे में अधिक गम्भीरता से सोचने के लिए मजबूर किया होगा। हमें शायद अपने आपसे नीचे दिए जा रहे प्रश्न या उसी प्रकार के अन्य प्रश्न पूछने चाहिए :

- क्या हम पैसा प्राप्त करने के लिये बिना सोचे-समझे अपने साधनों का, जिनसे हमारी फैक्ट्रियाँ चलती हैं जैसे कोयला, पैट्रोलियम, पानी, धरती, हवा प्रयोग करते जाना सहन कर सकते हैं?
- क्या हमें ऐसी टैक्नोलॉजियों का विकास नहीं करना चाहिए जो कि स्थानीय स्तर पर उपयुक्त हों तथा पुन: चक्रित सामग्रियों का उपयोग करती हों जिससे कि वहाँ बेकार सामग्री एकत्रित न हो सके ?
- क्या हम ऐसे तरीके ढूंढ सकते हैं जिनमें बेकार सामग्री का उपयोगी उत्पाद बनाने के लिए प्रयोग किया जा सके ?
- क्या हम (व्यक्तिगत रूप में) ऐसे उत्पादों को प्रयोग में लाने से मना नहीं कर सकते जोकि पर्यावरण को नष्ट करके बनाई गई हों तथा ऐसे उत्पादों को प्रोत्साहन दें जोकि पर्यावरण के मित्र हों, सहायक हों ?
- क्या हमें अपने आपको "थ्रो-अवे" (फेंक देने की) सभ्यता, (Throw away culture) जिसका कि पश्चिमी देशों में प्रचलन है, का भाग बनने से रोकना नहीं चाहिए। क्या हम यह निर्णय ले सकते हैं कि हम उपयोग के बाद फेंकने वाले थैलों या पैकिटों को जोकि कूड़ा बढ़ाते हैं, को नहीं खरीदेंगे ?
- क्या हम अपने साधनों का उपयोग सबसे मितव्ययी रूप में नहीं कर सकते ?
- क्या जिस प्रकार से समाज निर्णय लेता है उसमें अन्तर आना चाहिए ? क्या निर्णय लेने में

पर्यावरण संबंधी अपेक्षाओं को ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए ?

- क्या हमें इस समय विद्यमान टैक्नोलॉजी का मूल्यांकन करके उसमें सुधार लाने का प्रयास नहीं करना चाहिए जिससे पर्यावरण को और नुकसान न हो ।

इन प्रश्नों के संबंध में आपका मत क्या है ? इन मुद्दों के विषय में सोचिए तथा नीचे दिए गए स्थान में लिखिए कि इनके संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

....

....

....

....

....

....

24.7 पर्यावरण प्रतिरक्षण में आपकी भूमिका

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपने समुदाय के सदस्य के रूप में समुदाय के हित के लिए कुछ बातों की ओर अवश्य ध्यान दिया होगा । आप उनमें से कुछ नीचे दिए गए स्थान में लिख सकते हैं । हमने एक दो संभावनाएं आपकी सहायता के लिए लिख दी हैं

आपके समुदाय में पर्यावरण से संबंधित कुछ बातें
• संदूषित पेय जल आपूर्ति (जैविक या रासायनिक) • कूड़े-कचरे का निपटान • • • •

पर्यावरण संरक्षण पर आधारित पाठ्यक्रम के खंड - 2 तथा इस इकाई में हुई हमारी चर्चा ने आपको अवश्य ही यह स्पष्ट रूप से दिखाया होगा कि पर्यावरण हमारे स्वास्थ्य को कितना प्रभावित करता है ।

इस प्रकार का संदेश समुदाय के सदस्यों को अपने आसपास की जगहों की सफाई के लिए कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए प्रोत्साहित करने से जुड़ा होता है । यद्यपि इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य ने आपको इंगित किया होगा कि एक समुदाय, जाति विशेष सदैव पर्यावरण के अपकर्ष के लिए उत्तरदायी नहीं होती । कई बार तो उस क्षेत्र में कार्यरत वाणिज्यिक उद्यम (Commercial enterprise) ही इसके लिए उत्तरदायी होते हैं। ऐसे क्षेत्रों में दबाव डालने वाले तथा कार्य दलों का संगठन बहुत ही महत्वपूर्ण होता है । आप अपने क्षेत्र में कार्य कर रहे और गैर-सरकारी संगठनों के विषय में जानकारी प्राप्त करके अपने आपको उनके चालू कार्यक्रमों से जोड़ सकते हैं ।

अपने गाँव, कस्बे या शहर में, जहाँ भी आप रहते हो, पर्यावरण वाहिनी प्रारम्भ करने का विचार भी एक अच्छा कदम है । यदि आप शहर में रह रहे हैं तो कॉलिजों में एन.एस.एस. स्वयं सेवक, आपकी सहायता करने को तैयार हो सकते हैं । इसी प्रकार स्कूलों द्वारा भी बाहर आकर कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं आप इनमें भी भाग ले सकते हैं । इसके अतिरिक्त समुदाय के नेताओं तथा अन्य सदस्यों के साथ इस

विषय पर विस्तृत चर्चा की संभावनाओं का पता लगाना कि किस प्रकार का कार्यक्रम वहाँ पर अनुभव की जा रही समस्याओं को सबसे अच्छी तरह बता पाएगा तथा इनके समाधान निकाल पाएगा, भी लाभदायक होगा।

कुछ साधारण संदेश जिन्हें आप फैला सकते है व लोगों को दे सकते है निम्न प्रकार हैं :-

प्रकृति का संरक्षण कीजिए

अधिक वृक्षरोपण कीजिए

प्रदूषण से लड़िए

दबाव डालने के लिए संगठित होइए

बेकार सामग्री एवं कूड़े कचरे को रोकिए

बेकार सामग्री को फिर से उपयोग करने योग्य बनाइए

अपने पर्यावरण की रक्षा कीजिए अन्यथा आपको हर्जाना देना होगा

आप इसी प्रकार के बहुत से अन्य संदेश बना सकते हैं।

बोध प्रश्न - 6

1) निम्नलिखित शब्दों की व्याख्या कीजिए :

क) अपशिष्ट न्यूनतमीकरण

....

....

ख) अपशिष्ट का पुन: चक्रण (Waste recycling)

....

....

ग) सामग्री की बरबादी (Wastage)

....

....

2) क) "पर्यावरण प्रतिरक्षण एक जटिल मुद्दा है" इस कथन को उदाहरण देते हुए औचित्य सिद्ध कीजिए।

....

....

....

....

ख) आपके समुदाय में पर्यावरण प्रतिरक्षण को प्रोत्साहित करने के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं ? कोई पाँच उपाय बताइए।

....

....

....

....

....

....

24.8 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद निम्नलिखित महत्वपूर्ण मुद्दे उभर कर सामने आए हैं :.

- प्राणधारी एक दूसरे से तथा अपने पर्यावरण से प्रभावित होते हैं । पर्यावरण वह पदार्थ उपलब्ध कराता है जिससे जीवन बनता है तथा सूर्य ऊर्जा उपलब्ध कराता है । पदार्थ चक्रीय रूप में जीव तथा पर्यावरण में परिवर्तित होता रहता है ।
- सभ्यता के विकास के प्रारम्भ से ही मानव क्रियाएं पर्यावरण को अहितकर रूप में परिवर्तित कर रही हैं । कृषि तथा पशुपालन के विकास के साथ वनों का काटना तथा चरागाहों का अत्यधिक प्रयोग बढ़ गया है ।
- औद्योगिक क्रान्ति ने पर्यावरण में परिवर्तन की गति को संकट पूर्ण दर तक बढ़ा दिया । आज की वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा ज़मीन के प्रदूषण की समस्या मुख्य रूप से स्वचालित गाड़ियों और उद्योगों के लिए शैल ऊर्जा का बहुत अधिक प्रयोग तथा नवीकरणीय व अनवीकरणीय साधनों का भी अधिक उपयोग के परिणामस्वरूप है ।
- 1650 की आधी बिलियन जनसंख्या के आश्चर्यजनक रूप में बढ़कर 45 बिलियन हो जाने को केवल खाद्य पदार्थों के उत्पादन में उद्योगों में तथा चिकित्सा पद्धति में हुई वृद्धि तथा उन्नति के परिणामस्वरूप ही संभव हुआ कहा जा सकता है । मृत्यु दर भी कम हुई है ।
- हमारा स्वास्थ्य हमारे पर्यावरण, जिसमें हम रहते हैं एक दूसरे से बहुत नज़दीक से जुड़ा हुआ है । बढ़ते हुए प्रदूषण के कारण विभिन्न विषाक्त रसायन प्रतिदिन हमारे भोजन, जल तथा वायु के माध्यम से हमारे शरीर में प्रवेश करते रहते हैं । श्वासक्रिया संबंधी बीमारियाँ, कैन्सर, तनाव संबंधी समस्याएं जैसे अतितनाव, हृदयरोग आदि आज कल बढ़ती जा रही हैं ।
- प्रदूषण नियंत्रण उपायों का लागत - लाभ विश्लेषण दिखाता है कि केवल वित्तीय अर्थ में लाभ व्यय की गई राशि की तुलना में दुगना है । प्रदूषण बेकार सामग्री के एकत्रित होते रहने के कारण होता है । बेकार सामग्री के निकलने को कम से कम करके तथा उसको जहाँ तक संभव हो उपयोग में ला करके लागत कम की जा सकती है तथा लाभ बढ़ाए जा सकते हैं ।
- पर्यावरण को बचाने तथा प्रदूषण तथा अन्य प्रकार से पर्यावरणीय निम्नीकरण करने वाले अपराधियों को दण्डित करने के लिए सरकार ने कानून बनाए हैं। वह अन्य गैर-सरकारी संस्थाओं के साथ मिलकर भी शिक्षा तथा सूचना प्रसारण अभियान तथा योजनाएं चला रही है। पुनर्स्थापन कार्यक्रम जैसे गंगा कार्य योजना आदि भी प्रारम्भ किए गए हैं । इन कार्यक्रमों नियमों का प्रभाव और क्षेत्र और बढाया जा सकता है ।
- एक व्यक्ति के रूप में और एक समुदाय के रूप में हमारा समस्या तक पहुँचने का रास्ता होना चाहिए । जनता मे जागृति उत्पन्न करने तथा प्रभावी समूह, जोकि पर्यावरण प्रतिरक्षण के लिए कार्य कर सके, गठित करने का प्रयास जारी रखना चाहिए ।

24.9 शब्दावली

वायुविलयो (ऐरोसोल) : किसी प्रकार की गैस जैसे धुऐं, में लटके हुये छोटे-छोटे तरल तथा ठोस कण । ऐरोसोल छिड़काव का प्रयोग बड़े पैमाने पर कीटनाशक छिड़कने, वायु में ताज़गी लाने तथा पेन्ट, कॉस्मैटिक आदि के लिए प्रयोग किया जाता है।

जैव निम्नीकरण : ऐसा पदार्थ जो कि जीवितों जैसे सूक्ष्म जीवधारियों द्वारा सरल रसायनों में परिवर्तित किया जा सकता हो ।

बंदी बनाकर प्रजनन : पौधे या जानवरों को सुरक्षित वनों में या अन्य नियंत्रित स्थितियों में प्रजनन के लिए रखना जिससे कि वे वन्य जीवन बढ़ा सकें।

मॉसाहारी : वह पशु जोकि अन्य पशुओं को खाते हैं।

उपभोक्ता : जीव जोकि अपना पोषक तत्व उत्पादन करने वालों से प्राप्त करते हैं ।

अपघटक : जीव जो अपने पोषक तत्व मृतजीवों को खाकर प्राप्त करते हैं, ये उनको सरल पदार्थों में परिवर्तित करते हैं तथा इस परिवर्तन की प्रक्रिया में अन्य पोषक तत्व उत्पादक के लिए उपलब्ध कराते हैं ।

पारितंत्र : एक स्वयंपूर्ण तथा शायद छोटा यूनिट या क्षेत्र जैसे कि अरण्यभूमि जिसमें उस यूनिट के सभी जीवित व अजीवित भाग सम्मिलित होंगे।

ग्रीन हाउस : शीशे से बन्द की हुई नियंत्रित जलवायु की वह संरचना जिसमें छोटे या मौसमी पौधे उगाए व सुरक्षित रखे जाते हैं।

हैमोफिलिया : एक जन्मजात रोग जिसमें दोषपूर्ण ढंग से रक्त के थक्के बनते हैं ।

जापानी एनसिफ्लाइटिस : एक घातक मस्तिष्क ज्वर जो कि एक वायरस के कारण होता है तथा इसमें तेज़ सिरदर्द तथा निष्चेष्टता आती है जिससे अचेतना भी हो सकती है ।

लाइकेन (Lichen) : काई तथा फंगस का सहजीवी साथ जिससे धीरे-धीरे बढ़नेवाले पौधे बनते हैं जो कि ऐसे अग्राही वातावरण जैसे पहाड़ी क्षेत्र की चट्टानों या पौधों के तनों में भी बड़ी संख्या में उग जाते हैं ।

धातुकी (मैटालर्जी) : धातु के प्रारम्भिक साधन से धातु प्राप्त करने की प्रक्रिया ।

मॉंगोलिज्म : एक जन्मजात रोग जो कि एक गुणसूत्र अधिक होने के कारण होता है तथा इसमें ठीक न हो सकने वाली बेवकूफी की सी स्थिति (मानसिक अक्षमता) या असामान्य वृद्धि होती है ।

प्रदूषक : प्राकृतिक पर्यावरण में मिलाया गया वह तत्व या कारक जिसका उस पर हानिकारक प्रभाव हो।

प्रदूषण : प्राकृतिक पर्यावरण में कोई ऐसा तत्व या कारक मिलाने की कार्यवाही जो पर्यावरण को हानि पहुँचाए तथा जो पर्यावरण द्वारा उसको सुरक्षित रूप में परिवर्तित कर पाने की गति से तेज़ गति में मिलाई गई हो।

उत्पादक : जीव, विशेष रूप से हरे पौधे तथा कुछ बैक्टीरिया, जोकि निर्जीव साधनों से प्रकाश संश्लेषण जैसी प्रक्रियाओं से भोजन निर्मित करते हैं ।

रैवाइन : गहरी गलीदार संकरी घाटी।

स्किज़ोफ्रेनिया : एक मानसिक रोग सोचने, महसूस करने तथा काम करवाने का संबंध टूट जाता है। यह अधिकतर विभ्रम तथा सामाजिक जीवन से अलग होने के कारण होता है।

दात्र कोशिका अरक्तता : यह रक्त का एक वंशानुगत रोग है जिसमें हीमोग्लोबिन में अन्तर आ जाता है जिससे लाल रक्त कोशिकाएं हँसली के

		आकार की बन जाती हैं जिससे रक्त के सामान्य रूप से कार्य करने में बाधा पड़ती है ।
नदी के तल में गाद बढ़ जाना	:	किसी चैनल, बंदरगाह या जलाशय में गाद (Silting) एकत्रित हो जाना ।
मृद अपरदन (Soil erosion)	:	ऊपरी सतह का हवा तथा बहते पानी के कारण अलग होकर अपने स्थान से हटना।
स्पॉन्डलाइटिस	:	रीढ़ की हड्डी या कशेरुक का एक व्यतिक्रम जिसके कारण हड्डी की दृढ़ता, सूजन या विरुपता आ जाती है ।
थाइलीसीमिया	:	एक वंशानुगत रोग है जिसमें बच्चों में बहुत अधिक अनीमिया हो जाता है । जल्दी-जल्दी रक्ताधान की आवश्यकता पड़ती है व बच्चे वयस्क होने तक जीवित नहीं रह पाते ।
ऊपरी सतह	:	पृथ्वी की वह परत जिसमें पोषक तत्वों की बहुलता होती है।
अपक्षय	:	हवा से, जीवित एजेंटों या रासायनिक क्रिया के परिणामस्वरूप ज़मीन के घिसने की प्रक्रिया ।

24.10 बोध प्रश्नों

बोध प्रश्न - 1

1) क) अजैव

 ख) जीवमंडल

 ग) करते हैं

 घ) जीवित व निर्जीव दोनों

2) पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण के लिये प्रयोग में लाई गई कार्बन डायऑक्साइड की पशु पुन: वातावरण में पूर्ति कर देते हैं जबकि मृत जानवरों के क्षय होने से अजैव रसायन वातावरण में आते हैं जिनका प्रयोग पौधों द्वारा किया जाता है ।

बोध प्रश्न - 2

1) 11,000 वर्ष पूर्व जब कृषि का पहले पहल विकास किया था तब पूरे विश्व में लगभग 20 से 50 लाख तक लोग ही रहते थे ।

2) विश्व की जनसंख्या पहली सदी से लेकर वर्ष 9000 तक बढ़ गई थी । उस समय के अनुमान से यह लगभग 2500 लाख थी ।

3) वर्ष 1650 तक विश्व की जनसंख्या 5000 लाख तथा 1930 तक ये 20,000 लाख हो गई थी ।

4) जनसंख्या 4000 बिलियन व्यक्तियों से अधिक थी ।

5) मृत्यु दर निरन्तर कम होती जा रही है क्योंकि सफाई तथा चिकित्सा सुविधाओं जैसे दवाईयों व टीकों में काफी सुधार आ गया है ।

6) वर्ष 2000 तक यह शायद 60,000 लाख हो जाएं ।

बोध प्रश्न - 3

1) क) कागज़ बनाने, निर्माण सामग्री बनाने तथा फर्नीचर बनाने के लिए लकड़ी की आवश्यकता ।

 ख) कृषि के लिए वनों को काटना ।

 ग) ईंधन के रूप में लकड़ी की आवश्यकता ।

2) नवीकरणीय - वन, वन्य जीव एवं भूमि ।

अनवीकरणीय - शैल ईंधन, खनिज भंडार तथा जल ।

3) मानव जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण नवीकरणीय स्रोतों का उपयोग भी बहुत तेजी से, उनकी पुन: उपलब्धि की दर से अधिक तेज़ी से किया जा रहा है ।

4) कृपया भाग 24.3 देखें ।

5) वायु प्रदूषक - सल्फर तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डायऑक्साइड, ओज़ोन, धूल आदि।

6) धातुकीय प्रक्रियाओं के दौरान अयस्क के प्रगलन में सल्फर के ऑक्साइड हवा में छोड़ दिए जाते हैं तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड स्वचालित वाहनों तथा उर्वरक उद्योग द्वारा हवा में छोड़े जाते हैं ।

7) क) औद्योगिक बहि:स्राव - विषाक्त धातुएं तथा रसायन, ताप

ख) कृषि के कारण आए - कीटनाशक तथा नाइट्रेटस

ग) घरेलू बेकार जल - वाहित मल तथा कुछ विषाक्त रसायन

बोध प्रश्न - 4

1) मधुमेह, स्किज़ोफ्रेनिया, दमा ।

2) क) डेंगू

ख) जापानी एंसिफ्लाइटिस

ग) फ्लूरोसिस

बोध प्रश्न - 5

1) प्रदूषण की रोकथाम - टैक्नोलॉजी का प्रयोग करके या अन्य मानव गतिविधियों से होने वाले संभावित नुकसान से पर्यावरण को बचाना।

प्रदूषण नियंत्रण - पर्यावरण को होने वाले और नुकसान से बचाने के लिए विधियों या अन्य साधनों का प्रयोग या पहले ही हो चुके नुकसान की भरपाई करना ।

प्रदूषण की रोकथाम करना लाभकारी है क्योंकि इससे बेकार सामग्री को कम से कम करने का प्रयास किया जाता है तथा उसका पुन:चक्रण करके फिर से उसका उपयोग किया जाता है । प्रदूषण नियंत्रण के लिए व्यय किया गया धन कार्यकुशलता तथा उत्पादन में वृद्धि के रूप में वापिस मिल जाता है ।

2) पाठ्य सामग्री देखें ।

बोध प्रश्न - 6

1. क) औद्योगिक या घरेलू गतिविधियों में बड़ी मात्रा में बेकार सामग्री निकलती है । कई बार यह अकुशलता, लापरवाही, या गलत आदतों के कारण होता है । हम व्यय कम करके उद्योग में लाभ बढ़ा सकते हैं यदि हम इस बात का पता लगा लें कि हम किस तरह से अपनी बेकार निकलने वाली सामग्री को कम कर सकते हैं ।

ख) बेकार सामग्री का पुन:चक्रण उसको कम करने का ही एक तरीका है । इस तरह से बेकार कहलाने वाली सामग्री कच्चे माल का स्रोत बन जाती है जिसे कि उत्पादक तरीकों से प्रयोग में लाया जा सकता है । दूसरे शब्दों में, बेकार सामग्री का पुन:चक्रण बेकार सामग्री के उपयोग का ही एक तरीका है ।

ग) सामग्री बेकार होने का अर्थ हैं कि अनुपयुक्त तरीके से सामग्री का प्रयोग करने के कारण निकली बेकार सामग्री । बहुत बड़े स्तर पर साधनों का उपयोग भी सामग्री के बेकार किए जाने की ओर इंगित करता है । जैसे कि बिजली व पानी की आवश्यकता न होने पर भी उपयोग - आवश्यकता न होने पर भी बिजली या नल खुला छोड़ देना दर्शाता है कि उसका बेकार नुकसान किया जा रहा है ।

2) क) पर्यावरण प्रतिरक्षण संबंधी कार्यक्रम प्राय: पैसा अर्जित करने या विकास कार्यों को प्रोत्साहित करने तथा पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने में द्वन्द्व रहता है। अधिकतर उपचार संयंत्र स्थापित करने अथवा प्रदूषण नियंत्रण के अन्य उपाय अपनाने की अपेक्षा पर्यावरण को प्रदूषित करते जाना अधिक आसान रहता है। इसी प्रकार कई बार जन समुदाय पर्यावरण संरक्षण उपायों का विरोध कर सकता है क्योंकि यह उनके जीवन यापन पद्धति के विरोध में हो सकते हैं जैसे कठोन वन बिल। अत: आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों ही मुख्य भूमिकाएं निभाते हैं।

(ख) अपने अनुभव के आधार पर उत्तर दें।

परिशिष्ट - 1

शुष्क क्षेत्र	:	ऐसा क्षेत्र जहाँ वर्षा कम होती है । वहाँ की वनस्पति के लिए ही मुश्किल से पर्याप्त होती है।
परिसम्पत्ति	:	वित्तीय एवं भौतिक वस्तुएं जैसे जमीन, मशीन आदि, जिनका कि व्यक्ति विशेष स्वामी हो ।
कमान क्षेत्र	:	वह क्षेत्र जो कि नियंत्रण में हो या जिस पर व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कार्य करा सके या जो क्षेत्र व्यक्ति की पहुँच में हो।
सहावसानी (coterminous)	:	समान सीमारेखा या विस्तार सीमाओं वाला ।
ऋण	:	उधार या वस्तुएं उधार पर प्राप्त करना ।
पारिस्थितिकी रूप में नुकसान पर	:	सामान्यत: ऐसे क्षेत्र के लिए कहा जाता है जो इष्ट पारिस्थितिक इष्ट पारिस्थितिक स्थिति में न हो अर्थात् यह क्षेत्र अधिक उपजाऊ नहीं होता अथवा यहाँ फसल कठिनाई से होती है या इसमें वनस्पति कम होती है ।
आर्थिक वृद्धि	:	ऐसी स्थिर प्रक्रिया जिससे अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता व परिणामस्वरूप आय निरन्तर बढ़ती है ।
कुल सिंचित क्षेत्र	:	कुल भूमि क्षेत्र जिसके ऊपर फसल उगाने या उसमें वृद्धि करने के लिए कृत्रिम रूप से जल उपलब्ध कराया जाता है ।
सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी.)	:	देश में रहने वालों को विदेशों से प्राप्त नैट आय सहित अर्थव्यवस्था में उत्पादित सभी वस्तुओं व सेवाओं का कुल मूल्य।
झूम	:	स्थानान्तरा जुताई की एक पद्धति जिसमें जमीन के एक हिस्से में कुछ वर्षों तक फसल उगाई जाती है तथा बाद में जब भूमि की उर्वरक शक्ति कम होने तथा कीटों व जंगली घास के कारण पैदावार कम होने लगती है तो उस भूमि को छोड़कर किसी दूसरे क्षेत्र में कृषि के लिए "काटने एवं जलाने" की पद्धति से साफ की गई भूमि पर कृषि आरंभ कर दी जाती है । इसी प्रक्रिया को कुछ वर्षों बाद फिर दोहराया जाता है।
सूक्ष्मावास	:	रहने का बहुत छोटा स्थान जैसे झोपड़ी ।
लागत	:	कुल व्यय किया गया या व्यय करने के लिए उठाकर रखा गया धन ।
व्यक्तिगत उपभोग	:	व्यक्तियों द्वारा किया गया उपभोग / प्रयोग ।
उत्पादक परिसम्पत्तियाँ	:	परिसम्पत्तियाँ जो कि उत्पादन में अत: आय में वृद्धि करती है ।
पुनर्वितरण	:	विद्यमान वितरण के स्वरूप में अन्तर लाना ।
सामुदायिक / सामाजिक उपभोग	:	समूह द्वारा उपभोग या ऐसी वस्तुओं का उपयोग जोकि किसी व्यक्ति विशेष द्वारा ही उपयोग में न लाई जाकर सामान्य रूप से सभी के द्वारा उपयोग में लाई जाती है ।
सामाजिक वानिकी	:	किसी समूह जैसे ग्रामवासियों द्वारा वनों का प्रबंध, संरक्षण एवं विस्तार ।

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

DHEN - 2
जन स्वास्थ्य और स्वच्छता

प्रायोगिक नियमावली भाग - 2

क्रियाकलाप - 1	4
क्रियाकलाप - 2	5
क्रियाकलाप - 3	6
क्रियाकलाप - 4	7
क्रियाकलाप - 5	9
क्रियाकलाप - 6	12
क्रियाकलाप - 7	13
क्रियाकलाप - 8	14

प्रस्तावना

उद्देश्य

इस नियमावली की सहायता से आप :

- समुदाय में होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं तथा इनके उत्पन्न होने के कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे
- सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं के स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रमों के आयोजन से संबंधित अनुभवों का रिकार्ड तैयार कर सकेंगे
- उपलब्ध केस अध्ययनों के आधार पर अपने निष्कर्ष निकाल सकेंगे
- समूह चर्चा के परिणामों का मूल्यांकन कर सकेंगे
- छोटे स्तर पर सर्वेक्षण व इन्टरव्यू कर सकेंगे

इकाई की रूपरेखा

यह नियमावली पाठ्यक्रम-2 जन स्वास्थ्य और स्वच्छता पर आधारित है। इसमें 8 क्रियाकलाप हैं। आपको कोई भी पाँच क्रियाकलाप करने हैं तथा आपको इनमें से किन्हीं दो क्रियाकलापों के उत्तर प्रायोगिक सत्रीय कार्य के साथ भेजने को कहा जा सकता है।

क्रियाकलापों के आयोजन व क्रियान्वयन तथा प्रेक्षणों को रिकार्ड करने के लिए समय

इस नियमावली पर कार्य करते समय आप कुल 60 घंटों से अधिक का समय न लगाएँ। कुछ क्रियाकलापों को पूरा करने में अधिक समय लग सकता है तथा उनके लिए क्षेत्रीय कार्य (field work) की आवश्यकता पड़ सकती है जबकि अन्य को पूरा करने में कम समय लगेगा। उनके लिए क्षेत्र स्तर पर समूह से विचार-विमर्श की आवश्यकता पड़ सकती है। इस प्रकार प्रायोगिक नियमावली, भाग- 2 के पाँच क्रियाकलापों को पूरा करने के लिए निम्न समय सारणी अपनायी जा सकती हैं।

क्रियाओं का आयोजन	10 घंटे
क्रियाओं का क्रियान्वयन	45 घंटे
क्रियाओं का अभिलेखन	5 घंटे
	60 घंटे

क्रियाकलाप - 1

अपने मुहल्ले में अतिसार के उपचार व रोकथाम के लिए घरेलू तरीकों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए सर्वेक्षण कीजिए (इसमें केवल शिशुओं व छोटे बच्चों के संबंधित जानकारी ही एकत्र कीजिए)

मार्गदर्शिका

1) सर्वप्रथम आप यह निर्णय लीजिए कि आप किस समूह से बात करेंगे— बच्चे की माताओं, पिता, दादी, बड़े भाई या बड़ी बहन से ? या फिर आप इनमें से दो तीन लोगों के समूह से बात करेंगे ? आपका यह निर्णय इस बात पर निर्भर करेगा कि बच्चे की देखभाल कौन करता है ?

2) जानकारी एकत्र करने के लिए आप किस साधन का प्रयोग करेंगे— प्रश्नावली या इन्टरव्यू अनुसूची का। इसका निर्णय लीजिए। सोचिए कि क्या आप किसी अन्य साधन का प्रयोग कर सकते हैं।

3) जिन बातों के विषय में आपको विस्तृत जानकारी चाहिए, उनकी सूची बनाइए । अतिसार से संबंधित जो बातें बच्चे के स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं, उनके आधार पर आप यह सूची बना सकते हैं। ऐसी कुछ बातें निम्न हैं :

- जीवन रक्षक घोल व उसके प्रयोग के बारे में जानकारी
- आहार व स्तनपान पर पाबंदी / रोक
- स्तन्यमोचन(Weaning) संबंधी आदतें
- अतिसार होने के कारण
- टी.वी., रेडियो पर प्रसारित होने वाले संदेशों के बारे में जानकारी ।

4) ऊपर (3) में बताई गई बातों के आधार पर प्रश्नावली / इन्टरव्यू अनुसूची बनाइए ।

5) आपके द्वारा बनाए गए साधन/उपकरणों की सहायता से कम से कम 10 व्यक्तियों से जानकारी प्राप्त करें। प्रत्येक व्यक्ति का नाम, आयु तथा उसकी शैक्षिक योग्यता, व्यवसाय, आय, परिवार में सदस्यों की संख्या आदि के बारे में जानकारी रिकार्ड करना याद रखें ।

6) बेहतर होगा यदि आप प्रश्नावली के प्रश्नों को याद कर लें । ऐसा करने से आप लोगों से अनौपचारिक रूप से बात करेंगे । बार-बार प्रश्नावली को देखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी ।

7) सर्वेक्षण के परिणाम रिकार्ड करने के लिए निम्न तालिका का प्रयोग करें ।

प्रचलन / प्रथा	प्रथा को अपनाने वाले व्यक्तियों की संख्या	टिप्पणी

8) सबसे अधिक प्रयोग होने वाली प्रथाओं को पहिचानिए तथा उन पर टिप्पणी कीजिए ।

क्रियाकलाप - 2

अर्द्धशहरी / शहरी स्लम में रहने वाले 5 पुरुष व 5 स्त्रियों का इन्टरव्यू कीजिए तथा निम्न विषयों के बारे में उनके विचारों को रिकार्ड करें :

क) स्थानीय स्वास्थ्य चिकित्सक

ख) सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रदान की गयी स्वास्थ्य सुविधाओं जैसे प्रतिरक्षीकरण, नेत्र कैम्प की उपलब्धता

ग) स्वास्थ्य व स्वच्छता से संबंधित उनकी समस्याएँ।

आप इन्टरव्यू से क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं ?

मार्गदर्शिका

1) इस प्रकार के इन्टरव्यू करते समय याद रखें कि पूर्वाग्रही न बनें व तटस्थ रहें। "डाक्टर एक्स" एक अच्छा डाक्टर नहीं हैं ? या मैं समझती हूँ कि आपको निश्चय ही स्वच्छता संबंधी शिकायतें हैं। इस प्रकार की टिप्पणी न करें।

2) ऊपर बताए गए (क) से (ग) के विषयों के बारे में लोगों के विचार जानने के लिए पहले से ही इन्टरव्यू के समय पूछे जाने वाले प्रश्नों की सूची बनाना आपके लिए उपयोगी हो सकता है। इन्टरव्यू एकदम से न शुरू करें। हमेशा सबसे पहले अपना नाम व इन्टरव्यू का उद्देश्य उन्हें बताएं तथा उनसे कहें कि आप कुछ स्वास्थ्य संबंधी विषयों के बारे में उनके विचार व सुझाव जानना चाहते हैं।

3) आपके द्वारा किए गए सभी इन्टरव्यूओं के रिकार्ड से यह मालूम चलना चाहिए कि इन्टरव्यू किए लोगों के चुनिन्दा विषयों पर क्या विचार है न कि आपके क्या विचार हैं ?

4) कई बार लोग किसी भय से अपने विचार स्पष्ट रूप से नहीं प्रकट कर पाते। अत: अगर आवश्यकता हो तो उन्हें यह विश्वास दिलाने की कोशिश कीजिए कि उनके द्वारा दी गयी जानकारी से उन्हें कोई नुकसान नहीं होगा।

5) संयम रखें तथा एक अच्छा श्रोता बनें। कभी भी अधिक न बोलें। केवल सरल तरीके से प्रश्न पूछें तथा दूसरे व्यक्ति को सोचने का समय दें। यदि वह व्यक्ति कुछ देर तक कुछ न बोले तो स्वयं बोलने की जल्दबाजी न करें।

6) याद रखें कि कभी-कभी आप "समस्याओं" को पहचान जाते हैं परन्तु वे लोग जिनसे ये समस्याएं संबंधित होती हैं, वे स्वयं इन्हें नहीं पहचान पाते हैं। जब आप इन्टरव्यू का निष्कर्ष निकालें तो आप अपने विचार या मत को प्रकट करने में न झिझकें। परन्तु आप यह जरूर लिखें कि ये "आपके" विचार हैं।

7) निष्कर्षों की सूची बनाना अधिक उचित है। परन्तु हमेशा निष्कर्ष इन्टरव्यू किए किए व्यक्तियों के जवाबों के आधार पर ही निकालें।

8) जब आप इन्टरव्यू करने जायें तो आप अपने साथ इन्टरव्यू की प्रश्नावली न ले जायें। इसके अतिरिक्त जिस व्यक्ति का इन्टरव्यू करना हो उसके सामने इन्टरव्यू की मुख्य बातें न लिखें। उन्हें बाद में लिखें।

क्रियाकलाप - 3

I) एड्स (अर्थात् शरीर की प्रतिरोधी क्षमता को जीर्ण करने वाला सिन्ड्रोम) के बारे में अधिक से अधिक जानकारी एकत्र करें । यह जानकारी रेडियो या टेलीविज़न के कार्यक्रमों, पत्रकों, पोस्टरों, पत्रिकाओं से प्राप्त की जा सकती है । फिर निम्न प्रश्नों के उत्तर एकत्र करें ।

क) एड्स क्या है ?

ख) एड्स किस कारण से होता है ?

ग) यह किस प्रकार फैलता है ?

घ) एड्स से बचने के लिए क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए ?

च) क्या एड्स का उपचार संभव है ?

II) चिकित्सा विज्ञान से संबंधित कोई अच्छी पाठ्यपुस्तक पुस्तक पढ़कर या किसी पंजीकृत चिकित्सक से बात करके अपने उत्तरों की जाँच करें। अपने उत्तरों को रिकार्ड करें ।

III) अपने किन्हीं दो दोस्तों / रिश्तेदारों से बात करें तथा उन्हें (क) से (च) प्रश्न पूछें । उनके उत्तर भी रिकार्ड करें तथा जाँच करें कि उनके उत्तर ठीक है या नहीं ।

मार्गदर्शिका

1) इस क्रियाकलाप में आपको एड्स के बारे में विभिन्न स्रोतों से जानकारी एकत्र करनी है । याद रखिए कि जानकारी प्राप्त करने के स्रोत विश्वसनीय होने चाहिए । चरण II की सहायता से आप पता लगा सकते है कि आपके उत्तर ठीक हैं ।

2) चरण III के लिए, आप जिन दो व्यक्तियों से बात करें, उनका नाम, आयु, लिंग, पृष्ठभूमि तथा अन्य उपयोगी जानकारी अवश्य रिकार्ड करें । ये दोनों व्यक्ति चिकित्सक नहीं होने चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति द्वारा दिये गये प्रश्न (क) से (च) तक के उत्तरों को सावधानीपूर्वक रिकार्ड कीजिए । फिर इन उत्तरों का सही होने का मूल्यांकन करें ।

क्रियाकलाप - 4

निम्न केस अध्ययन (Case Study) को ध्यानपूर्वक पढ़िए । फिर नीचे दिए गए प्रश्नों के आधार पर स्थिति का विश्लेषण कीजिए ।

रामू की कहानी

रामू एक दस साल का लड़का था । वह उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गाँव में रहता था । कस्बे के स्वास्थ्य केन्द्र में एक डाक्टर तथा कुछ नर्सें थी, परन्तु वहाँ पर पहुँचना कठिन था । वहाँ पहुँचने का केवल एक कच्चा रेतीला रास्ता था । स्वास्थ्य केन्द्र के कर्मचारी प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रम के अंतर्गत बच्चों को प्रतिरक्षी टीके लगाने आसपास के गाँवों में जाते थे परन्तु वे रामू के गाँव नहीं आए । शायद उनके पास प्रतिरक्षी टीकों की कमी हो गयी थी या फिर लोगों की अरुचि के कारण उन्होंने अपना कार्यक्रम बंद कर दिया था।

जिन बैलों से रामू के पिता जमीन जोतते थे तथा बीज़ बोते थे, उनकी देखभाल की जिम्मेदारी रामू को दी गयी थी । एक दिन उसका पैर एक जंग लगी हुई लंबी कील पर पड़ गया । कील उसके पैर में घुस गई। उसके पैर में बड़ा घाव बन गया । क्योंकि रामू का पिता पहले से ही स्थानीय साहूकार का कर्जदार था, उसके पास रामू के लिए जूते खरीदने के लिए पैसे ही नहीं थे ।

अब रामू क्या कर सकता था ? वह दर्द के कारण रोने लगा तथा लंगड़ाता हुआ घर गया । उसकी माँ उसे गाँव के डाक्टर के पास ले गयी । डाक्टर ने एक मलहम सा बनाया व उसे रामू के घाव पर लगा दिया। इसके लिए उसने रामू की माँ से दस रुपये ले लिए ।

नौ दिन बाद रामू के पैर की मांसपेशियां अकड़ गयीं । उसे मुँह खोलने में परेशानी होने लगी । अगले ही दिन उसके शरीर की सारी मांसपेशियां अकड़ गयी तथा पीठ व गर्दन पीछे की ओर झुक गयी । रामू के घरवाले उसे एक बार फिर गाँव के डाक्टर के पास ले गए । डाक्टर ने उसे एक गुलाबी रंग का घोल दिया व रामू को उसे हर 3 घंटे बाद पीने के लिए कहा । इससे रामू को कोई फायदा नहीं हुआ । इसलिए रामू के माँ-बाप उसे बस में बिठाकर शहर ले गए । बस स्टैण्ड तक पहुँचने के लिए उन्हें एक आदमी को पचास रुपये देने पड़े क्योंकि वे उसकी दाना ले जाने वाली गाड़ी में बैठकर बस स्टैण्ड तक गए।

अंततः जब वे स्वास्थ्य केन्द्र पहुँचे तो डाक्टर ने रामू की स्थिति को देख उसके माँ-बाप को स्वास्थ्य केन्द्र में देर से आने के लिए डाँटा । वह रामू का रोग पहचान गया था । यह एक गंभीर रोग था जिसके लिए एक महंगे इंजक्शनों की आवश्यकता थी । ये इंजैक्शन स्वास्थ्य केन्द्र में उपलब्ध थे, परन्तु जब तक डाक्टर रामू को इन्जेक्शन लगाते, उससे पहले ही रामू की मृत्यु हो गयी ।

प्रश्न

1) रामू को क्या रोग था ?

2) यह किस कारण हुआ था ?

3) केवल रामू को ही यह रोग क्यों हुआ ? दूसरों को क्यों नहीं ?

4) रामू की मृत्यु क्यों हुई ? मृत्यु होने के कारण क्रमबद्ध रूप से बताएं ।

5) जिस समुदाय में आप काम कर रहें हैं, वहाँ के दो व्यक्तियों से इन प्रश्नों व इनके उत्तरों के बारे में विचार-विमर्श कीजिए तथा उन सब तरीकों की सूची बनाइए जिनसे इस प्रकार होने वाली मृत्यु को रोका जा सकता है । अपने व इन व्यक्तियों के बीच हुए वार्तालाप को रिकार्ड कीजिए ।

मार्गदर्शिका

1) केवल रोग उत्पन्न करने वाले जीव (अर्थात जैविक कारणों) पर ध्यान मत केन्द्रित कीजिए। स्थिति अध्ययन द्वारा भौतिक वातावरण तथा सामाजिक वातावरण से संबंधित स्थितियों को भी स्पष्ट कीजिए

2) आपने रोग के जि[illegible] [illegible]ारकों की पहचान की है, उनके आधार पर रोकथाम के संभावित तरीकों को ढूढ़िए। समुदाय के [illegible] लोगों का चयन करें जिन्हें स्वास्थ्य समस्याओं व उनके उचित उपचार तथा रोकथाम के तरीकों के बारे में जानकारी हो।

क्रियाकलाप - 5

अनुच्छेद I तथा II को ध्यानपूर्वक पढ़िए तथा समुदाय के सदस्यों के साथ हुए विचार-विमर्श के आधार पर नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए ।

I

संसारभर में नैदानिक चिकित्सा दो बातों पर आधारित होती है— रोग की पहचान तथा रोग के प्रभावों के आधार पर उपचार । अन्य विकासशील देशों की भाँति भारत में भी बहुत से संक्रामक रोग पाए जाते हैं । इसका अर्थ है कि रोगी के रोग की पहचान व उपचार के तरीकों से उस समुदाय में सूक्ष्मजीवों द्वारा होने वाले बहुत से रोगों का निदान किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ये रोग लगातार समुदाय में होते रहते हैं । किसी एक समय में किसी एक रोग से ग्रस्त रोगी को उचित औषधियों द्वारा ठीक किया जा सकता है । यह उपचार उस रोगी के लिए काफी सक्षम है । तथापि रोग समुदाय में उपस्थित रहता है – इसकी रोकथाम व समुदाय में से इस रोग को समाप्त नहीं किया जा सकता है । यद्यपि उपचार द्वारा एक व्यक्ति अस्थायी रूप से ठीक हो जाता है परन्तु समुदाय तो रोग से संक्रमित रहता ही है । चूंकि वातावरण तथा परिस्थितियाँ जिनमें समुदाय के लोग रहते हैं, नहीं बदलते हैं, रोग बार- बार होता है तथा अधिकतर उन्हीं व्यक्तियों में होता है जो पहले प्रभावित हुए थे तथा जिनका उपचार हुआ था । अत: यह समझना कठिन नहीं है कि मुख्यत: संक्रामक रोगों से ग्रस्त समुदायों के स्वास्थ्य स्तर सूचकों पर नैदानिक चिकित्सीय प्रणाली का कुछ अधिक प्रभाव क्यों नहीं पड़ा है ?

इसके विपरीत, पिछले दो दशकों से उन्नत हुई "प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल" (Primary Health Care) प्रणाली इन समुदायों में रोगों की रोकथाम के लिए काफी सक्षम साबित हुई है । प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल, नैदानिक चिकित्सा से दो मूलभूत बातों से भिन्न हैं— क) इसका कार्य क्षेत्र काफी विस्तृत है, ख) यह समुदाय के साथ सहयोगशील संबंधों को उन्नत करने पर आधारित है । अत: जहाँ एक ओर नैदानिक चिकित्सा व्यक्ति को प्रभावित करने वाली रोगपूर्ण स्थितियों पर केन्द्रित होती है वहाँ दूसरी ओर प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल उन सभी रोगपूर्ण परिस्थितियों पर केन्द्रित होती हैं जो कि उस सम्पूर्ण समुदाय में पायी जाती है । नैदानिक चिकित्सा जहाँ उन रोगियों की पहचान व उपचार करती है जो कि रोग के निष्क्रिय प्रापक (passive recipients) हैं, वहाँ प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल रोग की पहचान व स्वयं का उपचार करने में सभी व्यक्तियों व पूरे समुदाय को भागीदार बनाती है ।

II

सन् 1971 में डॉ. रजनीकांत अरोले तथा डॉ. माबेल अरोले द्वारा महाराष्ट्र के एक छोटे से शहर जामखेड में एक विस्तृत ग्रामीण स्वास्थ्य प्रोजेक्ट शुरू किया गया था । पति-पत्नी की इस टीम ने पहले गाँव के लोगों के साथ बातचीत की तथा पाया कि इन किसानों में स्वास्थ्य, विशेषकर निरोधक स्वास्थ्य (preventive health), कम महत्वपूर्ण मुद्दा है। इन किसानों के लिए पर्याप्त भोजन, साफ पानी, पक्का घर तथा कपड़े प्राप्त करना अधिक महत्वपूर्ण था । अत: अरोले दम्पति ने सबसे पहले इन हार्दिक आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित करने का फैसला किया । युवा किसान संस्थाएं तथा महिला मंडल बनाए गए । प्रोजेक्ट का स्टाफ इन्हें पढ़ाता था तथा फिर ये समूह, समाज विकास कार्यक्रमों के लिए प्रशिक्षण देने तथा जानकारी को दूसरे लोगों तक पहुँचाने लगे । इन नये कार्यक्रमों के अन्तर्गत बीज की नयी किस्मों का प्रयोग, बैंक से ऋण, कुटीर उद्योग को बढ़ावा तथा ट्यूबवैल लगवाने पर जोर दिया गया।

इसके साथ ही इस प्रोजेक्ट के अन्तर्गत एक चिकित्सालय भी शुरू किया गया। बाद में 30 बिस्तरों का एक बड़ा हास्पिटल भी खोला गया परन्तु इन सुविधाओं के प्रयोग के लिए फीस देनी पड़ती थी । जल्दी ही जामखेड के आसपास के गाँव भी इन सुविधाओं का प्रयोग करने लगे ।

अब जामखेड प्रोजेक्ट तीन स्तरीय तंत्र (three tiered system) की भाँति कार्य करता है । पहले स्तर के अंतर्गत स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता, ग्रामीण किसान क्लब तथा महिला मंडल आते हैं । स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता स्त्रियाँ होती हैं तथा ये प्रोजेक्ट के स्टाफ द्वारा प्रशिक्षित की जाती है । इनका कार्य सरल उपचार करना, प्रसव के समय सुविधाएं प्रदान करना, जन्म नियंत्रण, पूर्व प्रसव देखभाल, प्रतिरक्षीकरण, स्वास्थ्य शिक्षा देना तथा समाज विकास की गतिविधियों में भाग लेना है । अनुमान लगाया गया है कि ये कार्यकर्त्ता गाँव वालों की कम से कम 80 प्रतिशत बीमारियों का इलाज कर लेते हैं । ये स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता हर दो सप्ताह बाद प्रशिक्षण तथा पर्यवेक्षण के लिए चिकित्सालय जाते हैं । सुविधाओं को प्रयोग करने के बदले लोगों से ली गयी फीस तथा प्रोजेक्ट द्वारा शुरू अन्य आय उत्पादक क्रियाओं से इन कार्यकर्त्ताओं का वेतन दिया जाता है ।

प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा पराचिकित्सा स्टाफ (जो टीम के रूप में काम करता है) प्रोजेक्ट के दूसरे स्तर के कर्मचारी हैं । इनके द्वारा स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं का पर्यवेक्षण किया जाता है । ये टीमें ग्रामीण संस्थाओं की व्यवस्था करने तथा उन्हें सहायता प्रदान करने में सहायक होती हैं । ये टीमें विकास के अन्य सभी सरकारी प्रोजेक्टों तथा जामखेड प्रोजेक्ट के विशेष कार्यकलापों का समन्वय भी करती हैं तथा कुछ अधिक गंभीर रूप से बीमार रोगियों के उपचार या संदर्भ सेवाएं प्राप्त करने में भी सहायता करती हैं ।

प्रोजेक्ट का तीसरा स्तर 30 बिस्तरों का अस्पताल तथा 4 उपकेन्द्र हैं । इस स्तर पर अति आधुनिक मशीनी चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं ।

इस प्रोजेक्ट द्वारा शुरू किये गए कार्यक्रम निम्न हैं :

- बाल पोषण
- मातृ तथा बाल स्वास्थ्य
- दीर्घकालिक रोगों का नियंत्रण
- स्वच्छता
- अंधता की रोकथाम
- चाईल्ड-टू-चाईल्ड कार्यक्रम
- स्वास्थ्य केन्द्रों पर समुदाय भागीदारी
- आर्थिक व कृषि विकास कार्यक्रम

इन दो अनुच्छेदों के बारे में समुदाय के साथ हुए विचार-विमर्श के आधार पर निम्न प्रश्नों के उत्तर दें :

1) जमखेद प्रोजेक्ट प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली का एक सफल उदाहरण है । इस प्रणाली के उन विशिष्टताओं की सूची बनाएं जो प्रोजेक्ट I में दिखाई देती हैं ।

2) क्या आप सोचते हैं कि "जामखेड मॉडल" आपके समुदाय में उपयोगी रहेगा ? अपने उत्तर के कारणों का विश्लेषण करें ।

3) जामखेड प्रोजेक्ट के तीन स्तरीय तंत्र की रचना को चित्रित कीजिए ।

मार्गदर्शिका

1) जिन व्यक्तियों से विचार-विमर्श किया गया है, उनकी संख्या, पृष्ठभूमि, लिंग व आयु को स्पष्ट रूप से बताएं ।

2) समूह में विचार-विमर्श करते हुए स्वयं अगुआ न बनें – अन्य व्यक्तियों को स्वतंत्रतापूर्वक व स्पष्ट रूप से बोलने दें। आप समुदाय के किसी अनुभवी व्यक्ति को समूह में बातचीत के लिए आमंत्रित कर सकते हैं तथा ऐसे व्यक्ति को समूह के विचार-विमर्श में भाग लेने के लिए भी कह सकते हैं; विशेषकर जब आपको कुछ महत्वपूर्ण बात कहनी हो।

3) समूह में सभी वर्गों के लोग होने चाहिए। किसी एक जाति / धर्म / आर्थिक समूह की अधिकता / पकड़ नहीं होनी चाहिए।

क्रियाकलाप - 6

मान लीजिए आपको उस समुदाय, जिसमें आप कार्य कर रहे हैं या जिससे आप परिचित हैं, के लिए किसी जानकारी का चित्रयुक्त पैम्फलेट बनाना है। ऐसे पाँच तरीकों का विस्तार से विवरण दें जिनसे आप भागीदारी के तरीके द्वारा समुदाय की स्वास्थ्य आवश्यकताओं तथा समस्याओं की पहचान कर सकते हैं। इनसे ही पैम्फलेट में दी जाने वाली जानकारी का अनुमान लगाया जा सकता है।

मार्गदर्शिका

1) ऐसी पुस्तकें व पत्रिकाएं पढ़ना, जिनमें जानकारी एकत्र करने के भागीदारी तरीकों (participatory methods) के बारे में बताया गया हो, आपके लिए सहायक हो सकता है। यदि संभव हो तो डेविड वरनर व बिल बाउवर द्वारा रचित पुस्तक ''हेल्पिंग हैल्थ वरकर्स लर्न'' पढ़ें। यह पुस्तक वालेन्ट्री हैल्थ एसोशिएसन ऑफ इंडिया, 40, इन्सिट्यूशनल एरिया, साऊथ ऑफ आई.आई.टी., दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित की गई है।

2) आपको कुछ ऐसे तरीकों को भी ढूंढना होगा जिनसे यह पता चल सके कि कौन-सी समस्याएं अधिक गंभीर, खतरनाक व अधिक पायी जाती हैं। जो समस्याएं अधिक खतरनाक व अधिक पायी जाती हैं, उनकी तरफ सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए।

क्रियाकलाप - 7

पाठ्यक्रम 2 खंड 4 या 5 में दी गई कोई भी एक स्वास्थ्य समस्या लें। खंड में दी गई सामग्री में निम्न परिवर्तन कीजिए।

1) इसे सरल तथा प्रत्यक्ष बनाइए (जाँच सूचियों, सूचियों, चित्रों, प्रवाह चित्र आदि के रूप में)।

2) अपने समुदाय में पाए जाने वाले उन सामाजिक कारकों का उल्लेख करें, जिनके कारण आपने चयन की गई समस्या को महत्वपूर्ण माना है (व्यक्तियों के दृष्टिकोण, मतों व संबंधों से संबंधित कारक)।

3) उन कार्यकलापों को सम्मिलित करें, जिनसे समुदाय में सीखना एक आनन्दमय अनुभव बने (वे कार्यकलाप ऐसे होने चाहिए जिनसे स्वास्थ्य समस्याओं — उनकी प्रकृति तथा कारण तथा उपचार करने के बारे में समझा जा सके)।

मार्गदर्शिका

1) सामग्री को क्रमबद्ध व्यवस्थित करें। अधिक से अधिक निदर्शनों (illustrations), सूचियाँ, चित्रों, कार्टून का प्रयोग करें। आप स्वास्थ्य समस्या के एक पहलू पर भी विचार कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, कृमि ग्रसन एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में कैसे फैलता है ? इसके अन्तर्गत कृमि के जीवन चक्र की चर्चा की जा सकती है।

2) यह सोचिए कि जिस समस्या का चयन आपने किया है, उससे आपके समुदाय में सबसे अधिक "कौन" प्रभावित होगा ? "क्यों" ? इसके लिए कौन से कारक उत्तरदायी हैं ? सामाजिक ? सामाजिक तथा आर्थिक दोनों ?

3) उन विभिन्न तरीकों के बारे में सोचिए जिनसे पठन सामग्री को पृष्ठ पर इस तरह व्यवस्थित किया जा सके जिससे उसे पढ़ने में आसानी हो, जैसे कि इस कार्यक्रम के खंडों में हमने बाक्स तथा कार्यक्रम 1 के पहले दो खंडों में कार्टून का प्रयोग किया है।

4) जिस समुदाय में आप रहते हैं या काम करते हैं, वहाँ के कुछ व्यक्तियों के साथ परिचर्चा आपके लिए सहायक हो सकती है।

क्रियाकलाप - 8

नीचे दी गई कहानियाँ पढ़ें। इनमें यह बताया गया है कि किस प्रकार जल-आपूर्ति की व्यवस्था व रख-रखाव किया जाता है। यह कहानियाँ तीन देशों— इंडोनेशिया, मैक्सिको तथा बंगलादेश में समुदायों के अनुभवों पर आधारित है। इन कहानियों से हमें क्या शिक्षा मिलती हैं? विस्तार से बताइए। अगर आपके किसी ग्रामीण क्षेत्र में इसी प्रकार के (या इससे बहुत भिन्न) अनुभव हुए हों तो बताइए तथा उन पर अपने विचार भी व्यक्त कीजिए।

कहानी 1

सेन्ट्रल जावा के लोसारी नाम के गाँव में एक बाहर की स्वैच्छिक संस्था तथा "इन्टरमीडियेएट टैक्नोलोजी" नामक संस्था की मदद से लोगों में जल-आपूर्ति के लिए पाइप लगवाए। यह सोचते हुए कि जब भविष्य में इन पाइपों में जंग लग जायेगा व कोई बाहर की मदद नहीं मिलेगी, वहाँ के लोगों में पाइपों को बदलने के लिए पैसा इकट्ठा करना शुरू कर दिया। प्रत्येक परिवार ने जल की पाइप लाइन के साथ - साथ दस माहोगनी (mahogany) वृक्ष लगाए जिससे कि 15 या 20 साल बाद जब यह वृक्ष काटकर बेचे जायेंगे तो इन्हें बेचने से प्राप्त पैसे से स्टील पाइपों को बदला जा सके। गाँव के मुखिया ने कृषि केन्द्रों से माहोगनी के बीज मंगाए तथा अपनी खाली पड़ी जमीन में बो दिए। बारह महीने बाद उसने जल-आपूर्ति की पाइप लाइनों के पास रहने वाले 85 परिवारों को माहोगनी की पौध दीं। यदि कोई पौध खराब हो जाती तो लोग मुखिया से और पौध माँग लेते थे। मुखिया लोगों से पौध का कोई पैसा नहीं लेता था। केवल लोगों से पौधों की देखभाल के लिए कहता था।

इंडोनेशियन विलेज हैल्प न्यूजलैटर विब्रो सं. 22, पृ. 11

कहानी 2

पश्चिमी मैक्सिको की पहाड़ियों में 850 लोगों के एक गाँव के लोगों ने जल-आपूर्ति के लिए अपने पाइप लगाने का निश्चय किया। बाहर के दबाव के कारण वहाँ के अमीर जमींदार इस बात के लिए राजी हुए कि गाँव का प्रत्येक परिवार अपनी जायदाद के अनुपात में पाइप लाइन की कीमत के लिए पैसा देगा। एक जमींदार जोकि गाँव का मुखिया भी था, इस जल कार्यक्रम का खजाँची बना। धीरे - धीरे सारा नियंत्रण उसके हाथ में हो गया। गाँव के गरीब परिवारों के लिए सार्वजनिक जल-आपूर्ति की पाइप लाइन लगवाने से पहले गाँव के कुछ अमीर जमींदारों के घरों में पानी की लाइन लगवाई। उसके बाद वह सार्वजनिक नलों से पानी लेने के लिए इतना पैसा लेने लगा कि गरीब लोग तो वह पैसा चुका ही नहीं सकते थे। अत: उसने सार्वजनिक नल बंद कर दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि गरीबों की मेहनत से बनी जल-आपूर्ति की सुविधा का नियंत्रण अमीरों के हाथ में चला गया तथा वे ही इसका प्रयोग करते।

कहानी 3

हमारे कार्यक्रम (गोनोशसथाया केन्द्र प्रोजेक्ट, बंगलादेश) में एक ट्यूबवैल से 15 से 25 परिवारों (ऐसे परिवार जिनके घरों में अपने व्यक्तिगत या सरकारी ट्यूबवैल न हों) को पानी मिलता है। यह ट्यूबवैल यूनिसेफ द्वारा दिए गए हैं परन्तु ट्यूबवैल की खुदाई व लगाने का खर्चा उन परिवारों ने दिया है जो इनका प्रयोग करेंगे। कुछ परिवारों के सदस्यों द्वारा एक ऐसी कमेटी भी बनाई गयी जो यह देखेगी कि उस ट्यूबवैल को प्रयोग करने वाले परिवार ट्यूबवैल के रख-रखाव के लिए बैंक या पोस्ट आफिस में 10 टका (स्थानीय मुद्रा) जमा करायेंगे। ऐसा इसलिए किया गया जिससे कि जल के उपयोग का नियंत्रण खर्चा करने वाले एक ही अमीर व्यक्ति के हाथ में न चला जाए।

मार्गदर्शिका

1) इस क्रियाकलाप में आपने जल-आपूर्ति तंत्र को लगाने, उसके रख-रखाव तथा व्यवस्था से संबंधित महत्वपूर्ण बातें जानने के लिए कहानी 1, 2 तथा 3 का विश्लेषण करना है। क्या आप समझते हैं कि अन्य विकासशील देशों के यह अनुभव हमारे भारत के लिए भी उपयुक्त हैं ? इनसे हमें क्या शिक्षा मिलती हैं ? सूची बनाइए।

2) क्रियाकलाप के दूसरे भाग में आपको ग्रामीण क्षेत्रों में जल-आपूर्ति तंत्र को लगाने, उसके रख-रखाव व व्यवस्था के बारे में अपने व अन्य लोगों के अनुभव विस्तार से लिखने हैं। अपने अनुभवों की मुख्य बातों पर विचार व्यक्त करें।

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

DHEN-02
जन स्वास्थ्य और स्वच्छता

खंड

3

रोग की आहार व्यवस्था

इकाई - 8

रोग में आहार : मूलभूत सिद्धांत 5

इकाई - 9

पोषण संबंधी विसंगतियों और संबंधित समस्याओं की आहार व्यवस्था 18

इकाई - 10

गैर पोषणात्मक मूल की विसंगतियों की आहार व्यवस्था 39

खंड परिचय

समुदाय के कार्य में, स्वास्थ्य देखभाल और निरोधक पोषण पर बल देना बहुत महत्वपूर्ण है। अत: पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा को अधिकांश विषय-वस्तु में रोकथाम संबंधी पहलुओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए। तथापि, हमारे देश में पोषण संबंधी विसंगतियाँ, संक्रमण और ग्रसन की घटनाएँ बहुत अधिक होती है। इसलिए समुदाय के सदस्यों से उपचारात्मक पहलुओं अर्थात् चिकित्सा और उपचार पर बात करना भी महत्वपूर्ण हो जाता है। समुदाय शिक्षक को रोकथाम और उपचार, दोनों की ही पूरी समझ होनी चाहिए।

इस खंड में आहार चिकित्सा (Diet therapy) के बारे में बताया गया है। प्रारंभ में *इकाई 8* में मूल प्रश्नों–जैसे क्या भोजन द्वारा रोग का उपचार किया जा सकता है? रोगों के इलाज में आहार संबंधी व्यवस्था की क्या भूमिका है? —के उत्तर दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त इसमें आपको आहार चिकित्सा और आहार व्यवस्था के मुख्य सिद्धांतों के बारे में भी सूचना मिलेगी।

इकाई 9 में पोषण संबंधी विसंगतियों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। ऐसी विसंगतियों से संबंधित सामान्य समस्याओं जैसे, अतिसार और ज्वर पर भी विचार किया गया है। पाठ्यक्रम 1 के खंड 5 में आपको इनके बारे में पहले ही जानकारी दी जा चुकी है। इस खंड में आपको और अधिक जानकारी दी जाएगी।

इकाई-10 में उन विसंगतियों की आहार व्यवस्था (Dietary management) के बारे में चर्चा की गई है, जो प्राय: पोषणात्मक उद्भव से नहीं होती अर्थात् वे विसंगतियां जो अल्प आहार द्वारा पैदा नहीं होती। यह इकाई वैकल्पिक है। तथापि यह उन लोगों को रुचिकर प्रतीत होगी जो आयुर्विज्ञान/परा-आयुर्विज्ञान पृष्ठभूमि से संबंध रखते हैं।

काई 8 रोग में आहार : मूलभूत सिद्धांत

ाई की रूपरेखा

प्रस्तावना
क्या आहार द्वारा रोग का उपचार हो सकता है?
रोग में आहार नियोजन
8.3.1 पोषणात्मक आवश्यकताएं रोग से कैसे प्रभावित होती है
8.3.2 भोजन अंतर्ग्रहण और आहार पद्धति पर रोग का प्रभाव
8.3.3 आहार संबंधी परिवर्तन
पोषणात्मक देखभाल (nutritional care) की संकल्पना
पोषणात्मक और निरोधक स्वास्थ्य देखभाल (Preventive Health Care) में आपकी भूमिका
सारांश
शब्दावली
बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रस्तावना

और रोग के बीच क्या संबंध है? आपको पहले ही इस के बारे में काफी जानकारी होगी। जी हां, भोजन के कारण बीमारी हो सकती है। दूसरे शब्दों में, हम यह भी कह सकते हैं कि विशेष प्रकार हारों के प्रयोग से कुछ रोगों का उपचार या नियंत्रण किया जा सकता है।

त से हम यह जानने की कोशिश कर सकते हैं कि आहार चिकित्सा क्या है और किसी रोग की ा करने के लिए हम आहार का प्रयोग कैसे करें? इस इकाई में आहार चिकित्सा और आहार ा के मूलभूत सिद्धांतों पर विस्तार से चर्चा की गई है।

काई के अंत में आपको पुन: याद कराने के लिए निरोधक पहलुओं को पुनरावृत्ति में विस्तार से गया है। चर्चा का मुख्य विषय पोषक तत्व, उनके स्रोत और पोषणहीनता जन्य विसंगतियों ional deficiency disorders) की रोकथाम में उनकी भूमिका है।

ा

काई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- गों के नियंत्रण और उपचार में आहार की भूमिका के बारे में बता सकेंगे
- ग में आहार नियोजन के मूलभूत सिद्धांतों का वर्णन कर सकेंगे, और
- मुदाय में पोषणात्मक देखभाल में अपनी भूमिका को पहचान सकेंगे।

क्या आहार द्वारा रोग का उपचार हो सकता है ?

लोग प्राचीन काल से ही, भोजन को जादुई गुणों से सम्पन्न मानते रहे हैं। वैदिक काल में, ो दिव्य विशेषताओं से युक्त माना जाता था। यह प्रथा दूसरे समुदायों उदाहरण के लिए प्राचीन भी प्रचलित थी।

प्राचीन मिस्र में रतौंधी (night blindness) एक जाना पहचाना रोग था। इसके लिए जो उपचार बताया जाता था, वह पकाए हुए यकृत (liver) का रस निचोड़ कर, आंखों पर लगाना था। प्राचीन यूनान के लोग भी इस रोग के लिए पकाए हुए यकृत से निकाला रस या तेल आंखों पर लगाने के साथ-साथ, यकृत खाने की भी सलाह देते थे।

यह इस बात का एक अच्छा उदाहरण है कि मनुष्य ने कैसे, प्रारंभ में शायद आकस्मिक रूप से ही, भोजन की स्वास्थ्यवर्धक शक्तियों की खोज की। बाद में, ये पद्धतियां सुस्थापित हो गई और आयुर्विज्ञान की पुस्तकों में इनका वर्णन होने लगा। यह एक बड़ा आश्चर्यजनक तथ्य है कि, उन विसंगतियों के, जो मुख्यत: भोजन और पोषक तत्वों की कमी के कारण हुई है, इलाज में इनकी उपयोगिता सिद्ध हो गई है।

स्कर्वी की कहानी उपचार के लिए मनुष्य की खोज के दौरान हुई एक दूसरी नाटकीय घटना है। स्कर्वी रोग विटामिन सी की कमी के कारण होता है। ताज़ी जड़ी बूटियां, नीबू, संतरे और अन्य खट्टे फल स्कर्वी की रोकथाम और नियंत्रण में बहुत प्रभावकारी पाए जाते हैं।

मनुष्य की रोगों के विरुद्ध लड़ाई के इतिहास में ये घटनाएं इस बात का स्पष्ट उदाहरण हैं कि भोजन द्वारा कई प्रकार के रोगों का उपचार किया जा सकता है। तथापि, यह बात काफी स्पष्ट है कि वे रोग जिनका उपचार भोजन और पोषक तत्व सांद्रितों (nutrient concentrates) द्वारा हो सकता है, किसी विशेष पोषक तत्व की कमी के कारण ही पैदा होते हैं। आहार में जिन पोषक तत्वों की कमी होती है उन तत्वों से युक्त खाद्य-पदार्थ आहार में शामिल करके इन विसंगितयों का उपचार किया जाता है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि भोजन और उसके पोषक तत्वों द्वारा सभी रोगों का उपचार हो सकता है। तथापि, इसमें कोई संदेह नहीं है कि भोजन द्वारा कई बीमारियों को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। मधुमेह इसका एक सामान्य उदाहरण है। मधुमेह का मंद रूप जिससे प्राय: मध्यम आयु के लोग ग्रस्त होते हैं, केवल आहार के प्रयोग से ही नियंत्रित किया जा सकता है।

फेनिलकीटोनमेह (Phenylketonuria) यानि की पी.के.यू. (PKU) एक आनुवंशिक रोग है, जो शरीर की, एक विशेष अमीनों अम्ल फेनिलऐलानिन (Phenylalanine) को प्रयोग न कर पाने की अक्षमता के कारण होता है। जैसा कि आप जानते हैं, अमीनों अम्ल, प्रोटीनों को बनाने वाले मूल इकाई हैं। पी. के. यू. (PKU) से ग्रस्त बच्चों को ऐसा आहार देना चाहिए जिसमें फेनिलऐलानिन की मात्रा प्राय: ना के बराबर हो, नहीं तो वह मानसिक मंदता (mentally retarded) के शिकार हो जाएगें। पी. के. यू. का उपचार तो नहीं हो सकता परंतु आहार संबंधी उपायों से इस को नियंत्रण में रखा जा सकता है।

दूसरे कई ऐसे रोग हैं जिनका उपचार भोजन द्वारा नहीं हो सकता। जीवाणु और विषाणु द्वारा उत्पन्न रोगों का इलाज तो यकीनन प्रतिजैविकी और सल्फा से बनी दवाईयों द्वारा ही होता है। परंतु ऐसे मामलों मे भी रोगी को कमजोरी से बचाने के लिए पौष्टिक भोजन देना आवश्यक है। पौष्टिक भोजन से, स्वास्थ्यलाभ (recovery) भी जल्दी होता है।

इस खंड में आपको ऐसे कई दूसरे उदाहरण भी मिलेंगे जिनसे आप रोग के इलाज में भोजन की भूमिका को अच्छी तरह समझ सकेंगें। पहले हुई चर्चा से आपने यह समझ लिया होगा कि रोग तीन तरह के हो सकते हैं:

i) पोषक तत्वों की कमी से होने वाले रोग और विसंगतियां

ii) वे रोग, जिनके कई कारण हैं, और उनमें से कुछ भोजन और पोषक तत्वों से संबंधित है

iii) वे रोग जिनका भोजन या पोषक तत्वों से संबंधित कोई सीधा कारण नहीं है

पहली श्रेणी में हमने जिन रोगों का उल्लेख किया है उनमें भोजन और पोषक तत्वों को सान्द्रित रूप में देना एक प्रभावशाली रोगोपचार है। इन विसंगतियों के उपचार में भोजन और आहार की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है।

दूसरी श्रेणी के रोगों में मधुमेह और हृद् धमनी रोग (coronary heart disease) (सी. एच.डी.) शामिल हैं। वे लोग जिनमें पहले ही से आनुवंशिक रूप से मधुमेह की प्रवृत्ति है अगर चीनी और परिष्कृत कार्बोजों का अत्यधिक मात्रा में सेवन करें तो उन्हें यह रोग और जल्दी घेर लेगा। इसी तरह, अत्यधिक मात्रा में वसा – युक्त आहार विशेषकर संतृप्त वसा और कोलोस्ट्रोल से युक्त आहार खाना, सी. एच.

डी. उत्पन्न करने का कारण माना जाता है। धमनी की दीवार में वसा के जमाव से धमनियों के सिकुड़ जाने की अंतर्निहित प्रक्रिया जिसे ऐथिरोस्कलेरोसिस (atherosclerosis) कहते हैं, का कारण भी यही है।

इन रोगों का उपचार आहार द्वारा नहीं हो सकता। आहार द्वारा केवल रोग की प्रक्रिया को बढ़ने से रोकने में और अन्य समस्याओं की रोकथाम में सहायता मिलती है। अतः आहार चिकित्सा रोगी को एक भरपूर जीवन जीने में सहायक होती है। इसके बिना तो रोगी दवाईयां चाहे ले रहा हो या न ले रहा हो, उसका रोग नियंत्रण से बाहर हो सकता है। वास्तव में तो, जैसा कि हम पहले भी बता चुके हैं, रोग के मंद रूप केवल आहार द्वारा ही नियंत्रित किए जा सकते हैं।

संक्रामक रोग, तीसरी श्रेणी में आने वाले रोगों के अच्छे उदाहरण हैं । इनमें से कुछ तो भोजन द्वारा संक्रमित होते हैं तथापि, भोजन ही इसका सीधा कारण नहीं है। इन रोगों के उपचार में प्रायः आहार चिकित्सा भी ज्यादा या थोड़ी मात्रा में शामिल है। उदाहरण के लिए, संक्रामक ज्वर रोग (जो ज्वर से संबंधित है) में रोगी को अतिरिक्त ऊर्जा व प्रोटीन युक्त भोजन उपयुक्त रूप में देने की आवश्यकता है। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या बुखार चिरकालिक (Chronic) है, जैसा कि क्षय रोग (टी.बी.) में होता है या कि तीव्र (acute) है जैसा कि टाइफाइड में होता है। आगे इस खंड की इकाई 9 में आप इन स्थितियों के बारे में और विस्तार से पढ़ेंगे। यहां हम केवल इस बात पर ज़ोर देंगे कि किसी व्यक्ति को संक्रामक रोगों से जल्दी ठीक होने में उपयुक्त आहार का बहुत महत्व है।

8.3 रोग में आहार नियोजन

किसी विशेष रोग से पीड़ित रोगी को दिए जाने वाले आहार को चिकित्सीय आहार (therapeutic diet) कहते हैं। चिकित्सीय आहार सामान्य या नियमित आहार के ही रूपांतर (adaptation) होते हैं।

यहाँ पर आप शायद यह जानना चाहेंगे कि कई रोग स्थितियों में आहार क्यों बदला जाना चाहिए ? किस तरह के परिवर्तन प्रायः बार-बार किए जाते है? और अंत में क्या आहार संबंधी परिवर्तन केवल उन लोगों के लिए करना जरूरी है जो किसी बीमारी से पीड़ित है या उनके लिए भी जिनकी किसी बीमारी से ग्रस्त होने की संभावना है (यानि की वह लोग जिन्हें रोग लगने का अधिक खतरा है)। इन महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए आपको थोड़ी सी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस जानकारी को सुव्यवस्थित रूप से बताने के लिए इन मुद्दों पर हम निम्नलिखित चर्चा करेंगे:

- पोषण संबंधी आवश्यकताएं रोग से कैसे प्रभावित होती हैं
- भोजन अंतर्ग्रहण और आहार पद्धतियों पर रोग का प्रभाव
- आहार संबंधी परिवर्तनों के प्रकार

8.3.1 पोषणात्मक आवश्यकताएं रोग से कैसे प्रभावित होती हैं

कई रोगों के कारण, शरीर की पोषक तत्वों की आवश्यकता में परिवर्तन आ जाता है। क्यों? इसका कारण प्रायः चयापचयी या शारीरिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन है व साथ ही साथ कुछ विशेष अंगों और ऊतकों की संरचना और/या कार्यों में होने वाले परिवर्तन भी हैं।

निम्न उदाहरण इन पहलुओं को स्पष्ट करने में सहायक होंगे।

उदाहरण क : गोपी वृक्कशोथ (Nephritis) से ग्रस्त है। वृक्कशोथ में गुर्दों में अर्थात् गुर्दों के ऊतकों और वृक्काणुओं (Nephrons) में सूजन हो जाती है। इस रोग से गोपी के गुर्दों की क्रिया प्रभावित हो गयी है और वह सोडियम और क्लोराइड जैसे विद्युत अपघट्य (electrolytes) का उत्सर्जन नहीं कर पाती जिसके कारण वे उसके शरीर में जमा हो गए हैं।

उदाहरण ख : कार्तिक ने पिछले हफ्ते अपना पैंतालीसवाँ जन्मदिन मनाया। वह पिछले पांच वर्षों से मधुमेह से पीड़ित है। इन्सुलिन की कमी (या क्रियाशील इन्सुलिन की कमी) के कारण उसका शरीर ग्लूकोज़ का अच्छी तरह उपयोग नहीं कर पाता।

उदाहरण ग : राजू टायफाइड से ग्रस्त है। वह अत्यधिक कमज़ोर हो गया है और उसका वजन काफी कम हो गया है। वह हमेशा तेज़ बुखार से परेशान रहता है ।

क्या आप बता सकते हैं कि इन प्रत्येक मामले में कौन से पोषक तत्वों की आवश्यकताएं प्रभावित होगी।

वृक्कशोथ में, गुर्दे प्रभावशाली ढंग से कार्य के योग्य नहीं रहते जिसके परिणामस्वरूप रक्त और दूसरे ऊतकों में पानी, विद्युत अपघट्य, यूरिआ और दूसरे अपशिष्ट जमा हो जाते हैं। अत: गोपी के मामले में सोडियम और प्रोटीन का अंतर्ग्रहण सीमित करना होगा। यह इसलिए कि प्रोटीन के विभाजन से यूरिआ की उत्पत्ति होती है, जिसका उत्सर्जन होना आवश्यक है। अत: उसके आहार में कार्बोज़–युक्त भोजन देने पर बल दिया जाना चाहिए। परंतु दूसरी तरफ कार्तिक के आहार में कार्बोज़ जैसे कि चीनी शामिल नहीं होनी चाहिए। उसको जटिल कार्बोज़ (complex carbohydrate) जैसे रेशा और स्टार्च देने पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में प्राय: वसा देना भी सीमित किया जाता है और केवल असंतृप्त वसा दी जानी चाहिए।

राजू को तेज़ बुखार है। बुखार के कारण चयापचय दर बढ़ जाती है। इसके बढ़ने के कारण ऊर्जा की आवश्यकताएं भी बढ़ जाएंगी। इसका मतलब यह हुआ कि राजू को ऐसा आहार चाहिए जिससे ऊर्जा अधिक मात्रा में प्राप्त हो। ऊतकों की क्षति के कारण उसका वजन भी कम हो रहा है। इसकी क्षतिपूर्ति कैसे हो ? निश्चय ही हमें उसे प्रोटीन–युक्त भोजन अधिक मात्रा में देना होगा।

इन उदाहरणों द्वारा रोगों के कारण, पोषक तत्वों की आवश्यकताओं में होने वाले कुछ परितर्वनों के बारे में, हमने बताया है।

मधुमेह, टायफाइड और वृक्कशोथ जैसे रोगों में आहार संबंधी केवल ये परिवर्तन ही जरूरी नहीं हैं। अन्य कई परितर्वन जैसे बनावट (texture)में परिवर्तन और किन्हीं विशेष खाद्य पदार्थो का समावेश/निषेध की जरूरत पड़ती है।

सामान्य तौर पर हम यह कह सकते हैं कि जिस रोग के कारण किसी एक विशेष पोषक तत्व की कमी हो जाती है उस रोग में उस पोषक तत्व की जरूरत बढ़ जाती है। परंतु दूसरी तरफ अगर किसी रोग के कारण कोई एक खास पोषक तत्व शरीर में जमा हो जाता है तो प्राय: उस पोषक तत्व का अंतर्ग्रहण सीमित कर दिया जाता है या उसको किसी और रूप में दिया जा सकता है।

यहां हम एक बात को स्पष्ट करना चाहेंगे, वह यह है कि कभी-कभी रोग की प्रक्रिया से पोषक तत्व की आवश्यकताओं में कोई परिवर्तन नहीं होता परंतु फिर भी हमें आहार संबंधी परिवर्तन करने की जरूरत पड़ती है। आगे होने वाली चर्चा में हम इस पहलू पर गहराई से विचार करेंगे।

तथापि याद रखिए कि पोषणात्मक जरुरतें इन बातों पर निर्भर करती है :

- पोषण स्तर अर्थात् पोषक तत्वों के अंतर्ग्रहण से प्रभावित स्वास्थ्य की स्थिति,
- सक्रियता में रूपांतरण,
- बीमारी के कारण चयापचय दर में हुई कमी या बढ़ोत्तरी, और
- पाचक, अवशोषक और उत्सर्जक प्रक्रियाओं की कार्यक्षमता ।

बोध प्रश्न 1

1) "भोजन द्वारा अधिकांश रोगों का उपचार व पूर्ण नियंत्रण किया जा सकता है ।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

   हाँ ☐ नहीं ☐

   अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए ।

   ....

   ....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों को ध्यानपूर्वक पढ़ें। प्रत्येक के बारे में बताइए कि यह सही है या गलत। गलत कथनों को ठीक करें।

क) बुखार में ऊर्जा की आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं और इसलिए बी समूह के विटामिनों की जरूरत कम हो जाती है।

....

....

....

ख) सभी रोगों के मामले में आहार संबंधी परिवर्तनों की जरूरत नहीं है।

....

....

....

ग) ऐसा रोगी जिसे पूर्ण विश्राम बताया गया है, उसे कैलोरी की बहुत कम आवश्यकता होती है, बशर्ते कि, उसके रोग को बढ़ाने वाले कोई अन्य कारक जैसे बुखार आदि न पैदा हो जाए।

....

....

....

8.3.2 भोजन अंतर्ग्रहण और आहार पद्धति पर रोग का प्रभाव

रोग प्रक्रिया के कारण अक्सर, आहार की गुणवत्ता और मात्रा, दोनों ही प्रभावित होती हैं। आहार आवृत्ति (meal frequency)और आहार पद्धति (meal pattern)के दूसरे पहलुओं में कुछ और परिवर्तन करने की जरूरत पड़ती है।

रोग के कारण रोगी को :

- भूख कम लगती है और इसलिए वह कम खाता है
- भूख बढ़ जाती है और इसलिए वह ज्यादा खाता है
- भोजन या किन्हीं विशेष पोषक तत्वों के पाचन और अवशोषण में समस्या होती है, जिसके कारण भोजन में परिवर्तन करना पड़ता है। उसे ऐसा भोजन देना चाहिए जिसे वह आसानी से पचा सके व साथ ही भोजन देने की आवृत्ति में भी परिवर्तन जरूरी है।

आइए, अब हम इस बात को थोड़े विस्तार से बताएं कि रोग के कारण भोजन की स्वीकृति में कैसे परिवर्तन होता है। कुछ रोगों के कारण क्षुधा अभाव (anorexia) या भूख में बेहद कमी हो जाती है। पीलिया से संबंधित स्थितियां इसका विशिष्ट उदाहरण हैं। वहीं दूसरी तरफ, हार्मोनों के असंतुलन के कारण व्यक्ति अत्यधिक मात्रा में खाने लगता है, जिससे उसका वज़न बढ़ जाता है और वह मोटापे से ग्रस्त हो जाता है। इसके अलावा, कुछ विशेष भोजनों से पेट फूलने या उदर-वायु (गैस होने) की शिकायत होने लगती है। अन्य भोजन आंत्रनाल (gastrointestinal tract) पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण है जठरांत्र नली में शोथ (inflammation) होने पर रेशायुक्त भोजन लेने से होने वाले प्रतिकूल प्रभाव।

आइए, अब हम सामान्य आहार के प्रमुख चिकित्सीय परिवर्तनों के बारे में पढ़ें। सामान्यत: होने वाले गुणात्मक और समानुपातक परिवर्तन क्या हैं ? यह जानने के लिए आइए आगे पढ़ें।

8.3.3 आहार संबंधी परिवर्तन

पीछे हुई चर्चा से यह तथ्य उभर कर आया है कि कई रोगों के मामले में आहार में परिवर्तन करना जरूरी है। यहां हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि *चिकित्सीय आहार, सामान्य आहारों के ही परिवर्तित रूपांतर हैं।*

आहार परिवर्तन क्यों आवश्यक हो जाते हैं ? यह जानने के लिए इस जाँच सूची पर एक नज़र डालें।

- गाढ़ेपन (consistency) (अर्थात् तरल और नरम आहार) में परिवर्तन
- ऊर्जा की मात्रा या अंशदान में वृद्धि या कमी (अर्थात् कम या अधिक कैलोरी युक्त आहार)
- किसी एक या अधिक पोषक तत्वों या अन्य पदार्थों का अधिक या कम मात्रा में समावेश अर्थात् गाऊट में कम प्यूरिन वाला आहार या विटामिन ए की कमी होने पर विटामिन ए युक्त आहार
- रेशे की मात्रा में वृद्धि या कमी
- मिर्चमसालों का बहिष्करण (उदाहरणार्थ हल्के फीके (bland diets) आहार)
- कुछ विशिष्ट भोजनों का समावेश या निषेध (अर्थात् देना या न देना) उदाहरणार्थ एलर्जी की स्थिति में दिए जाने वाले भोजन
- भोजन देने के अंतराल में परिवर्तन (अर्थात् आहार आवृत्ति)

इस खंड की अगली इकाइयों में आपको इन परिवर्तनों के संबंध में उदाहरण मिलेंगे। फिलहाल हम इस जांच सूची में दिए गए पहले परिवर्तन-गाढ़ापन में परिवर्तन पर विचार करेंगे।

निम्नलिखित चार्ट को देखिए:

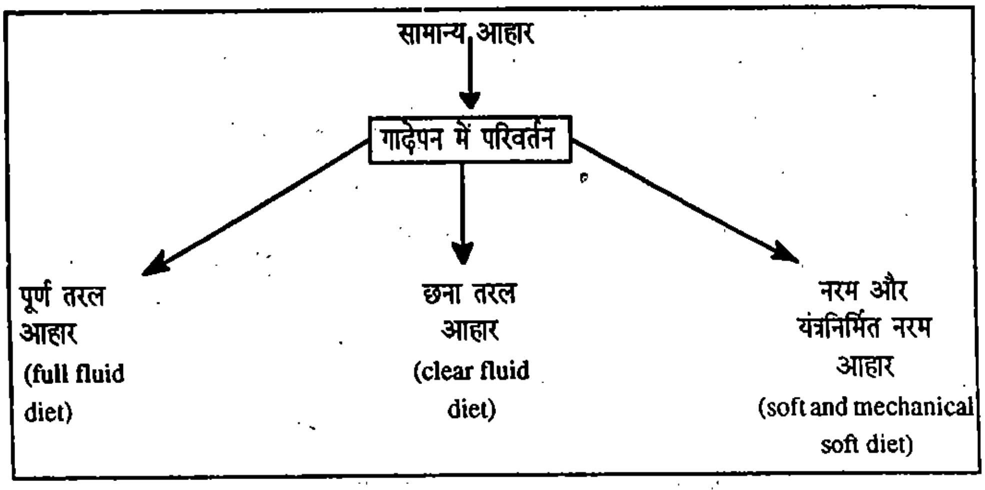

जैसा कि आपने देखा कि सामान्य आहारों को तरल या नरम आहारों में परिवर्तित किया जा सकता है। तरल आहार दो तरह के होते हैं — पूर्ण तरल और छना तरल। सज्वर स्थिति (febrile state) में ऑपरेशन के बाद या उस स्थिति में जब रोगी ठोस भोजन खाने में असमर्थ होता है, तब तरल आहार दिए जाते हैं।

छना तरल आहार तब दिया जाता है जब पोषक तत्वों का अंतर्ग्रहण सीमित करना होता है और किसी तीव्र बीमारी या शल्य चिकित्सा के कारण भोजन के प्रति असहनशीलता हो जाती है। यह असहनशीलता प्रायः मतली, उल्टी, क्षुधा अभाव, पेट फूलना और दस्त के रूप में प्रकट होती है। निश्चय ही छना तरल आहार का एकमात्र कार्य है शरीर में द्रव्यों की कमी की पूर्ति करना। वास्तव में यह पोषक तत्व बहुत ही कम मात्रा में प्रदान करते हैं। यही कारण है कि बहुत लंबे समय तक यह आहार जारी नहीं रख सकते।

परंतु, एक पूर्ण तरल आहार तब दिया जाता है जब एक रोगी गंभीर अतिपाती रूप से बीमार हो या ठोस भोजन को चबाने या निगलने में असमर्थ हो। एक पूर्ण तरल आहार में वे सभी तरल भोजन शामिल हैं जो कमरे के तापमान या शरीर के तापमान में तरल रहते हैं। इस तरह का आहार अपेक्षाकृत

कुछ लंबी अवधि तक जारी रखा जा सकता है, यद्यपि इसके साथ लौह तत्व का अनपूरण जरूरी हो जाता है।

आइए, अब हम नरम और यंत्रनिर्मित नरम व्यंजन / आहार (mechanical dental soft diet) के बारे में चर्चा करें। यहां 'नरम' शब्द का उपयोग ऐसे आहारों के लिए किया गया है जो गाढ़ेपन (consistency) में पतले, चबाने में आसान और सादे व आसानी से पचाए जा सकने वाले खाद्य पदार्थों से बने हों। इसके अतिरिक्त ये आहार तेज सुवास और कड़े रेशों से विहीन होते हैं। तीव्र संक्रमणों में, कुछ आंत्र संबंधी गड़बड़ियों में और शल्य चिकित्सा के बाद नरम आहार का प्रयोग किया जाता है। इनको देने की सलाह प्राय: तब दी जाती है जब रोगी सामान्य आहार खाने योग्य नहीं होता ओर दूसरी और पूर्ण तरल आहार उसे पर्याप्त पोषण नहीं दे पाता। इस कारण इसको पूर्ण तरल और सामान्य आहार के बीच दिए जाने वाला आहार कह सकते हैं। उचित रूप से योजना बना कर बनाए गए नरम आहार पोषण की दृष्टि से पर्याप्त होते हैं, जबकि तरल आहार ऐसे नहीं होते।

यंत्रनिर्मित या नरम दंत्य व्यंजन (dental soft diets)सामान्य आहार ही होते हैं जिन्हें दांतों की समस्या से पीड़ित व्यक्तियों अर्थात् वृद्धों की सहायता के लिए परिवर्तित कर दिया जाता है। अभी-अभी हमने जिस प्रचलित नरम आहार का वर्णन किया है, उसके विपरीत किसी भी अन्य भोजन/खाद्य पदार्थ की मनाही नहीं होती । केवल छिलके और बीज निकाल देने, काटने या छोटे टुकड़े करने की प्रक्रियाओं द्वारा ही यह भोजन तैयार हो जाता है।

आहार देने की प्रणाली के बारे में हम कुछ बताना चाहेंगे। मुंह के रास्ते से खिलाना ही सर्वप्रिय तरीका है। वे लोग जो खा सकते हैं, पचा सकते हैं और अपनी पोषक तत्वों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन अवशोषित कर सकते हैं, इस प्रणाली का प्रयोग करते हैं। परंतु गंभीर बीमारियों से ग्रस्त रोगी तो मुंह के द्वारा तरल आहार लेने में भी असमर्थ हो जाते हैं। ऐसे रोगियों को आहार देने के लिए विशेष तरीके ढूंढे गए हैं। हमारे हालात में आहार देने के ये विशेष तरीके सिर्फ अस्पतालों या क्लीनिक में ही प्रयुक्त किए जा सकते हैं। आहार देने के ये तरीके हैं:

- अंत:शिरा सम्भरण (intravenous feeding)
- नलिका सम्भरण (tube feeding) : ट्यूब द्वारा नासिका के रास्ते आहार पहुंचाना यानी नासाजठरीय सम्भरण (nasogastric feeding)
- जठरच्छेदन (gastrostomy) : ट्यूब द्वारा सीधे पेट में आहार पहुंचाना
- मध्यांत्र-विच्छेदन (jejunostomy) : ट्यूब द्वारा सीधा जैजुनम (मध्यांत्र) में आहार पहुंचाना

ापने ध्यान दिया होगा कि जठरच्छेदन (gastrostomy) और मध्यांत्र-विच्छेदन (jejunostomy) भी ालिका भोजन के ही रूप हैं क्योंकि इनमें भी शल्यचिकित्सा द्वारा क्रमश: पेट और मध्यांत्र (छोटी आंत ; भाग में) नली डाल कर आहार दिया जाता है। उल्लेखनीय-1 में दी गई जानकारी से आपको उन ःथतियों का अंदाजा हो जाएगा जहां अंत:शिरा सम्भरण और नलिका भोजन जरूरी हो जाता है। इसके ाथ-साथ इन विशेष भोजन प्रणालियों के उद्देश्य का भी पता चल जाएगा। आहार देने की इन णालियों की सामान्य तौर पर तो आवश्यकता कम ही होती है।

ल्लेखनीय 1

ाहार देने के विशेष तरीके

त:शिरा सम्भरण : आहार देने के इस तरीके का प्रयोग उस समय किया जाता है जब रोगी के ठरांत्र (gatrointestinal) नली को आराम देने की जरूरत होती है। अंत:शिरा द्वारा दिए गए द्रव्यों में कोज़, अमीनो अम्ल, लवण और विटामिनों के घोल होते हैं। रक्ताधान (blood transfusion) या त के प्लाज्मा का आधान प्राय: इसी प्रणाली द्वारा किया जाता है।

ा:शिरा सम्भरण के मुख्य उद्देश्य हैं :

- निर्जलीकरण को रोकने, और इलैक्ट्रोलाइट (विद्युत अपघट्य) असतुलन को ठीक करने के लिए पानी और विद्युत अपघट्य प्रदान करना

- प्रोटीन ऊतकों की कमी को पूरा करना, और
- दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऊर्जा प्रदान करना।

रोग की जिन स्थितियों में अंतःशिरा सम्भरण आवश्यक हो जाता है, उनके उदाहरण निम्नलिखित हैं: जठरांत्र नली की शल्यचिकित्सा, गंभीर रूप से जल जाना, मुंह, ग्रसनी और आहार नली के कैंसर द्वारा भोजन मार्ग में होने वाली रुकावट, निष्क्रिय यकृत, मधुमेही कोमा (Diabetic Coma) या दिमागी चोट से ग्रस्त अचेत रोगी।

नालिका भोजन : आहार देने का यह तरीका उस समय काम में लाया जाता है जब कोई रोगी मुंह या गले की सूजन या विरूपता के कारण या संक्षारक विषाक्तता (corrosive poisoning), मूर्च्छावस्था, गले की मांसपेशियों के लकवे या ऐसी कई स्थितियों के कारण चबाने या निगलने योग्य नहीं रहता। यदि रोगी की पूरी जठरांत्र प्रणाली केवल ऊपरी हिस्से को छोड़ कर अप्रभावित हो तो नासिका द्वारा पेट में आहार दिया जाता है। तथापि, यदि आहार नली प्रभावित है तो जठरच्छेदन (gastrostomy) ही एक मात्र तरीका है जैसे कि आहार नली के कैंसर में। उन रोगियों को मध्यांत्र द्वारा आहार देने की जरूरत पड़ती है जिनके आमाशय और आहार नली में अत्यधिक सूजन और दर्दनाकता हो या जिनकी आहार नली का उच्छेदन हुआ हो (आहार नली का हिस्सा निकाला गया हो) या पूर्ण जठरोच्छेदन (आमाशय को निकाल देना) हुआ हो। ट्यूब द्वारा नासिका के रास्ते पेट में भोजन पहुंचाने के कई लाभ हैं। नली द्वारा दिए जाने वाले आहार की योजना बना कर उसे समुचित रूप से पौष्टिक बनाया जा सकता है। तरल पदार्थों को सुरक्षित रूप से बड़ी मात्रा में दिया जा सकता है और आंत्रेतर अशन (parenteral feeding) के खतरों से बचा जा सकता है। रोगी को जो भोजन और दवाइयां पसंद नहीं हैं वे भी इस तरीके से दी जा सकती हैं।

आइए, अब पोषणात्मक देखभाल की संकल्पना की ओर ध्यान दें।

8.4 पोषणात्मक देखभाल (Nutritional care) की संकल्पना

पोषण देखभाल की संकल्पना का उद्भव सबसे पहले, अस्पताल व क्लीनिकों या पुनर्वास केंद्रों के संदर्भ में हुआ। इस शब्द का अभिप्राय, रोगियों को एक वैयक्तिक रूप से, योजना बना कर आहार देना था। इसका अर्थ यह है कि हम किसी भी रोगी के आहार की योजना उस व्यक्ति विशेष और उसकी विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखे बिना नहीं बना सकते। अधिकांश बड़े अस्पतालों में पोषण संबंधी देखभाल की योजना, निम्नलिखित जानकारी सावधानी पूर्वक इकठ्ठी करने के बाद, तैयार की जाती है :

- रोग की प्रकृति और संभावित अवधि
- रोग होने के अंतर्निहित मूल कारण
- रोगी की भोजन संबंधी आदतें (आहारी आदत)
- खाने से संबंधित एलर्जी जैसी समस्याएं
- अपेक्षित आहार संबंधी परिवर्तनों का स्वरूप

इस जानकारी के आधार पर ही, आहार संबंधी नुस्खा बनाया जाता है। आहार देने के किसी विशेष तरीके की जरूरत हो वह भी इसी के आधार पर बनाया जाता है। सही नुस्खा ऐसा होना चाहिए जिसमें कैलोरी, प्रोटीन और अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा स्पष्ट रूप से अलग-अलग बता दी जाए। इसके अतिरिक्त, जिन खाद्य पदार्थों की मनाही है उनका उल्लेख स्पष्ट रूप से करना चाहिए। किसी अस्पताल/क्लीनिक में यहां से *आहार विशेषज्ञ यानी डाइटीशियन* का काम शुरू होता है। वह पोषण संबंधी देखभाल के लिए एक वैयक्तिक योजना बनाती है। इस योजना में निम्नलिखित बातें शामिल हैं:

i) रोगी के भोजन संबंधी सामान्य अंतर्ग्रहण की पर्याप्तता का अनुमान

ii) पोषण संबंधी कोई समस्याएं

iii) पोषण संबंधी या अन्य किन्हीं संबंधित समस्याओं पर काबू पाने की योजनाएं

iv) रोगी को शिक्षा देने के उद्देश्य

v) रोगी की प्रगति का लेखा

vi) आहार चिकित्सा कितनी सफल रही है इसका मूल्यांकन

जैसा कि आप जानते हैं आहार नियोजन करते समय कई सामाजिक, आर्थिक और भावात्मक कारकों की एक विशेष भूमिका होती है। इस सदंर्भ में हमें यह सरसरी तौर पर देखना भी जरूरी है कि किसी बड़े अस्पताल या क्लीनिक में पोषण संबंधी देखभाल कैसे की जाती है। रोगी का उत्तरदायित्व 'स्वास्थ्य' टीम पर होता है। इस टीम के मुख्य सदस्य हैं चिकित्सक या डॉक्टर, नर्स और आहार विशेषज्ञ।

तथापि समुदाय के स्तर पर स्थिति भिन्न होगी। इस संदर्भ में, आपकी क्या भूमिका होगी? आइए जानें।

8.5 पोषणात्मक और निरोधक स्वास्थ्य देखभाल (Preventive Health Care) में आपकी भूमिका

समुदाय स्तर पर आप स्वास्थ्य की आधारिक संरचनाएं सीमित रूप में ही पाएंगे। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और उससे संबंधित कर्मचारी ही संभवत: आपके मुख्य सम्पर्क स्रोत होंगे।

अत: पोषणात्मक और निरोधक स्वास्थ्य देखभाल में, समुदाय को सम्मिलित करने में आपकी क्या भूमिका होगी। संक्षेप में, इसमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए:

- पोषण संबंधी समस्याओं/जोखिम ग्रस्त वर्गों से निपटने के लिए निरोधक उपायों को बढ़ावा देना
- जो लोग पहले से ही रोग ग्रस्त हैं और जिन्हें बीमारी हो जाने का खतरा है, दोनों को सलाह देना
- लोगों को प्राथमिक स्वास्थ्य क्रेंद/उपक्रेंद के कर्मचारी या अन्य क्षेत्र स्तर के उन कार्यकर्त्ताओं के सम्पर्क में रखना जो सहायता कर सकते हैं
- समुदाय को इस बात की सूचना देना कि संदर्भ सेवाएं कहां उपलब्ध हैं (अर्थात गंभीर मामलों में रोगी को किसी बड़े अस्पताल में भेजने की व्यवस्था करना)।

ापने इस बात पर गौर किया होगा कि हमने रोगों की रोकथाम पर विशेष बल दिया है। इसका त्यधिक महत्व है। समुदाय के लोगों को, सरकार/स्वयंसेवी संगठनों द्वारा पहले से ही प्रदान की जा ही सुविधाओं के बारे में शायद पता नहीं होता। अगर पता होता भी है तो वे इन सेवाओं का प्रयोग हीं करते और अगर वे इन सेवाओं का प्रयोग कर भी रहे हों तो इनके बारे में दूसरे लोगों को बता कर न कार्यक्रमों या सेवाओं को दूसरे लोगों तक पहुंचाने में मदद करने का प्रयास नहीं करते। ये ही वे विध स्तर हैं जहां आप एक समुदाय कार्यकर्त्ता के रूप में सहायता कर सकते हैं।

ीमारियों के अधिकांश मामलों में आपके द्वारा दी गई सूचनाएं कुछ साधारण स्थितियों को नियंत्रित रने में मदद कर सकती है। यदि आप डॉक्टर नहीं हैं और किसी अस्पताल, चिकित्सा केंद्र या लीनिक तक आपकी पहुंच नहीं है तो अधिक गंभीर मामलों से निपटना आपके बस की बात नहीं है। त: यही वे स्थितियां हैं जहां आपकी भूमिका निर्णायक हो सकती है। संबंधियों और समुदाय के अन्य दस्यों को भी अगर आप इस कार्य में सम्मिलित कर लें तो सूचनाओं को जल्दी फैलाने की दिशा में ापका यह प्रयास एक ठोस कदम सिद्ध होगा।

ने, लोगों के उस वर्ग का जिन्हें रोग से ग्रसित होने का खतरा अधिक है, शिक्षा और सलाह देने के ए सबसे मुख्य लक्ष्य समूह के रूप में उल्लेख किया है। हमारा हस्तक्षेप, इस वर्ग के लोगों का अच्छा ास्थ्य बनाए रखने व बीमारी को दूर रखने में सहायक होगा।

इए, अब अगली इकाई में हम रोग में आहार चिकित्सा क्या हो इस पर चर्चा करें। परंतु यह चर्चा ने से पहले आइए हम पोषण संबंधी विसंगतियों की रोकथाम पर एक निगाह डाल लें। इन पहलुओं ऊपर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं परंतु इस संक्षिप्त सारांश से आपको और सहायता मिलेगी।

पुनरावृत्ति 1 : पोषण संबंधी कमियों की रोकथाम

यदि कोई व्यक्ति सही किस्म का भोजन आवश्यक मात्रा में खाता है तो उसके स्वास्थ्य की स्थिति अच्छी ही रहेगी बशर्ते कि कोई दूसरे अन्य कारण बाधा न डालें। दूसरी ओर जब किसी व्यक्ति की आहार पद्धति खराब है या वह जरूरत से ज्यादा या कम खा रहा है तो उसके परिणामस्वरूप उसका स्वास्थ्य भी खराब हो जाएगा। ये दोनों ही कुपोषण के पहलू हैं। जब आहार में किसी एक या अधिक पोषक तत्व की मात्रा बहुत कम होती है तो हम कुपोषण के विशेष रूप "अल्पपोषण" से ग्रस्त हो जाते हैं। जब आहार द्वारा प्राप्त किसी एक या अधिक पोषक तत्व की मात्रा बहुत ज्यादा होती है तो उसके परिणामस्वरूप "अतिपोषण" हो जाता है।

इस उदाहरण पर अगर हम और गहराई से विचार करें तो हम समझ पाएंगे कि पोषणहीनता के मंद रूप का उपचार व नियंत्रण तो हम उस विशेष पोषक तत्व से भरपूर खाद्य पदार्थ का सेवन करके कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त जहां स्थिति थोड़ी या बहुत ज्यादा गंभीर है तो ऐसे मामलों में गोली, कैपसूल या विशेष रूप से तरल खुराक देने की भी जरूरत पड़ सकती है जिनमें ये पोषक तत्व सांद्रित रूप में उपलब्ध हैं।

इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि एक व्यक्ति के स्वस्थ रहने के लिए यह जरूरी है कि उसके शरीर में उचित मात्रा और अनुपात में पोषक तत्व पहुंचे। यदि उसके आहार में किसी विशेष पोषक तत्व की कमी है तो उसके शरीर में भी उस पोषक तत्व की कमी हो जायेगी। जब यह कमी काफी लंबे समय तक रहती है या काफी ज्यादा हो जाती है तो उस व्यक्ति में उस विशेष पोषक तत्व की कमी से उत्पन्न विसंगतियों के चिह्न दिखाई देने लग जाते हैं।

निम्नलिखित चार्ट आपको दर्शाता है कि पोषणहीनता की रोकथाम में भोजन का प्रयोग कैसे किया जा सकता है।

आहार में निम्नलिखित पोषक तत्व की कमी होने पर	शामिल करें
1) ऊर्जा	*कार्बोज़ और वसा-युक्त खाद्य पदार्थ* कार्बोज़युक्त खाद्य पदार्थ–अनाज, जड़ व मूलकंद फल जैसे केला, चीकू, आम, चीनी के अत्यधिक सांद्रित रूप *वसा युक्त खाद्य पदार्थ* गिरीदार फल, अत्यधिक वसा युक्त माँस व मछली, तिलहन, वनस्पति तेल, घी वनस्पति, मक्खन इसके अत्यधिक सांद्रित स्रोत हैं।
2) प्रोटीन	दालें, दूध और दूध से बने पदार्थ, अंडे, माँस, मछली, गिरीदार फल और तिलहन
3) विटामिन ए	*रेटीनोल* यकृत, अंडे का पीला भाग, क्रीम, मक्खन, घी, दूध *बीटा-केरोटीन* पीली और नारंगी सब्जियां, हरी पत्तेदार सब्जियां
4) विटामिन डी	सूर्य के प्रकाश की त्वचा पर क्रिया, पशुजन्य खाद्य पदार्थ जैसे अंडे, मक्खन, मत्स्य यकृत तेल (fish liver oil)
5) विटामिन ई	वनस्पति तेल, साबुत अनाज, पत्तेदार गहरी हरी सब्जियां, दालें, सूखे मेवे और तिलहन

6)	विटामिन के	गहरी हरी पत्तेदार सब्जियां, अंडे का पीला भाग, यकृत
7)	थायेमिन या बी$_1$	साबुत अनाज, दालें, सूखे मेवे, अंडे का पीला भाग, मांस
8)	राइबोफ्लेविन या बी$_2$	हरी पत्तेदार सब्जियां, दूध, अंडे, यकृत, गुर्दा आदि
9)	नियासीन	अनाज, दालें, दूध, सूखे मेवे और तिलहन, अंगों का मांस, मछली
10)	फौलिक अम्ल	साबुत अनाज, पत्तेदार सब्जियां, दूध और अंडे, अंगों का मांस जैसे यकृत, गुर्दे आदि
11)	विटामिन बी$_{12}$	पशुजन्य खाद्य पदार्थ जैसे अंडे, अंगों का मांस (Organ Meat)
12)	विटामिन सी	सिट्रस फल, आंवला, अमरूद, शिमला मिर्च, हरी पत्तेदारी सब्जियां, हरी मिर्च
13)	कैल्सियम	दूध और दूध से बने पदार्थ, कुछ मछलियां और समुद्री खाद्य पदार्थ रागी, दालें, तिल के बीज, हरी पत्तेदार सब्जियां
14)	फॉस्फोरस	अंडे, दूध, पोल्ट्री, मछली और अनाज इसके प्रचुर स्रोत हैं। यह अधिकांश खाद्य पदार्थों में पाया जाता है।
15)	लौह तत्व	यकृत, गुर्दा तिल्ली, साबुत अनाज और दालें, जैसे सोयाबीन, हरी पत्तेदार सब्जियां
16)	आयोडीन	समुद्री खाद्य पदार्थ, आयोडीन की प्रचुरता वाली मृदा से उपजी फसल, अधिकांश मामलों में सादे नमक की जगह आयोडीन युक्त नमक प्रयोग किया जा सकता है।
17)	सोडियम	नमक की पर्याप्त मात्रा, दूध, अंडे की जर्दी, मांस, पोल्ट्री, मछली, हरी पत्तेदार सब्जियां जैसे मेथी की पत्तियां, कुछ दालें
18)	पोटैशियम	फल, सब्जियां, मांस, पोल्ट्री, मछली, दालें, साबुत अनाज
19)	क्लोराइड	नमक की पर्याप्त मात्रा शामिल करें
20)	मैग्नीशियम	गिरीदार फल, तिलहन, दालें, साबुत अनाज, समुद्री खाद्य पदार्थ, गहरी हरी पत्तेदार सब्जियां, मछली, मांस

उपर्युक्त चार्ट आपको अनेकों पोषक तत्वों के स्रोतों के बारे में याद दिलाने में सहायक होगा। यद्यपि हमने यह चार्ट उन खाद्य पदार्थों के बारे में बताने के लिए दिया है जो, आहार में किसी विशेष पोषक तत्व की कमी को पूरा करने में सहायक हो, परंतु यह याद रखिए कि यही खाद्य पदार्थ पोषण संबंधी विसंगतियों को नियंत्रित करने और उनसे निपटने में भी बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं। यह पोषक तत्वों जिनका हमने पहले उल्लेख किया है, इनके अलावा कब्ज और कोलोन के कैन्सर जैसे रोगों की रोकथाम में रेशे की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका है। रेशा सामान्यत: उन पदार्थों को कहते हैं, जिनका पाचन शरीर द्वारा नहीं हो सकता और इसलिए वे उपलब्ध नहीं होते। हमने रेशे के उन प्रकारों के बारे में बताया है जो जटिल कार्बोज़ हैं जैसे सेलुलोज । तथापि रेशे के अकार्बोज़ रूप भी होते हैं।

पिछले दशक में किए अनुसंधानों से यह बात उभर कर आई है कि रोगों की रोकथाम और स्वास्थ्य की उन्नति में रेशे की बड़ी लाभकारी भूमिका होती है।

अनुसंधानों से पता चला है कि:

- जटिल कार्बोज जैसे स्टार्च और रेशे युक्त खाद्य पदार्थ, मधुमेह के रोगियों में रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं
- रेशे के कुछ रूप जैसे गुआर, पैक्टिन और लिग्निन कोलोस्ट्रोल कम करने की क्रिया में सहायक

होते हैं और इसलिए यह अतिडीमिया (Hyperlipidaemia) (रक्त में लिपिड या वसा का उच्च स्तर) के उपचार में लाभदायक हो सकते हैं

- रेशा-युक्त खाद्य पदार्थ खाने से कब्ज से पीड़ित होने की संभावना कम हो जाती है
- रेशा-युक्त खाद्य पदार्थ खाने से कोलोन कैन्सर से बचाव हो सकता है
- रेशा-युक्त आहार के सेवन से क्षुधा संतुष्टि (पेट भरे होने की भावना) होती है इसलिए हम जरूरत से ज्यादा खाने की इच्छा पर काबू पाते हैं। मोटापे की रोकथाम में इसका महत्वपूर्ण असर होता है।

तथापि इस बात के भी प्रमाण है कि रेशा-युक्त पदार्थों का अत्यधिक मात्रा में सेवन नुकसानदायक भी हो सकता है। अत्यधिक मात्रा में इनके सेवन से, कैल्शियम, जिन्क और मैग्नीशियम जैसे खनिज पदार्थ शरीर को नहीं मिल पाते क्योंकि वे एक संकर (complex) के रूप में रेशे से बंध जाते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) एक चिकित्सीय आहार सामान्य आहार पर आधारित क्यों होता है?

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित संकल्पनाओं की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

क) आहारव्यवस्था

....

....

....

....

....

ख) पोषणात्मक देखभाल

....

....

....

....

....

8.6 सारांश

इकाई की मुख्य बातें निम्न हैं:

- आहार चिकित्सा द्वारा कुछ विसंगतियों का तो पूरी तरह से उपचार किया जा सकता है जबकि कुछ रोगों को इसके द्वारा केवल नियंत्रित करने में ही मदद मिलती है।
- रोगों के कारण पोषण संबंधी आवश्यकताएं और भोजन अंतर्ग्रहण की पद्धतियां प्रभावित होती हैं। किस प्रकार का आहार दिया जाए यह निर्णय इसी के अनुसार किया जाता है।

- एक उचित चिकित्सीय आहार तैयार करने के लिए सामान्य आहार में समानुपातक व मात्रा संबंधी, दोनों ही परिवर्तन किए जाते हैं। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि सभी चिकित्सीय आहार सामान्य आहारों के ही परिवर्तित रूप हैं।
- पोषण और रोकथाम संबंधी स्वास्थ्य देखभाल में आप एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। समुदाय पोषण और स्वास्थ शिक्षा कार्यक्रमों में, रोकथाम और रोगहर (curative) दोनों पहलुओं पर ही जोर देने की जरूरत है, यह बात याद रखें।

8.7 शब्दावली

संक्षारक (Corrosive)	:	तरल या ठोस पदार्थों द्वारा विषाक्तता के संदर्भ में प्रयुक्त, जिनके कारण आन्त्र नाल में क्षति हो जाती है।
शोथ (Inflammation)	:	चोट या संक्रमण के कारण किसी अंग या शरीर के किसी हिस्से में सूजन और दाब वेदना (tenderness)
नासाजठरीय (Nasogastric)	:	ट्यूब द्वारा भोजन देने के संदर्भ में प्रयुक्त जिसमें नाक से ट्यूब आहार नली में और अंत में आमाशय में डाला जाता है।

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भोजन द्वारा केवल उन रोगों का उपचार हो सकता है जो किसी एक या अधिक पोषक तत्व की कमी के कारण होते हैं। भोजन द्वारा अन्य रोगों को नियंत्रित करने में तो मदद मिलती है पर हमेशा पूरी तरह से नियंत्रित भी नहीं किया जा सकता। पूरी तरह नियंत्रण होने के कुछ मामले पाए भी जाते हैं जैसे पी. के. यू. में फेनिलऐलानिन से रहित आहार देना। भोजन द्वारा किसी रोग का नियंत्रित करने या उपचार करने की सफलता निरसंदेह, हालत की गंभीरता पर निर्भर करती है, उदाहरणार्थ इन्सुलिन पर आश्रित मधुमेह एन. आई. डी. डी. एम. या मधुमेह के मंद मामलों में केवल आहार चिकित्सा की ही जरूरत होती है। संक्रामक रोगों की हालत में, भोजन व्यवस्था द्वारा ज्वर, उल्टी और दस्तों के दुष्प्रभावों को कम करने में मदद मिलती है। पौष्टिक आहार द्वारा संक्रामक रोगों की रोकथाम हो सकती है, इसके द्वारा स्वास्थ्य लाभ भी जल्दी हो सकता है।

2) क) गलत। क्योंकि ज्वर में ऊर्जा की आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं, बी समूह के विटामिनों की जरूरत भी बढ़ जाती है।

   ख) सही

   ग) सही

बोध प्रश्न 2

1) सामान्य आहार द्वारा किसी भी लिंग और आयु के व्यक्ति की पोषक तत्वों की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। किसी रोग की स्थिति से संबंधित समस्याओं पर आधारित, आहार संबंधी परिवर्तन करने में, सामान्य आहार का, प्रारंभिक बिन्दु के रूप में प्रयोग किया जाता है।

2) क) आहार संबंधी व्यवस्था का अर्थ है, किसी रोग की स्थिति का नियंत्रण या उपचार करने में आहार का प्रयोग।

   ख) पोषणात्मक देखभाल का अर्थ है, विविध विसंगतियों के नियंत्रण में, पोषण और आहार व्यवस्था के आधारभूत सिद्धांतों का प्रयोग। यह उन रोगों के मामले में भी लागू होता है जो पोषण संबंधी उदगम के नहीं हैं।

इकाई 9 पोषण संबंधी विसंगतियों और संबंधित समस्याओं की आहार व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 रोग में आहार व्यवस्था : संकल्पना और समुदाय कार्य में अनुप्रयोग

9.3 पोषणहीनता जन्य विसंगतियों में आहार

9.4 अतिसार और ज्वर : आहार व्यवस्था

9.5 हृदय धमनी रोग और मधुमेह में आहार व्यवस्था के सिद्धांत

9.6 सारांश

9.7 शब्दावली

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.1 प्रस्तावना

कोई भी रोग शरीर संरचना और/या शरीर में हुए परिवर्तनों से प्राय: संबद्ध होता है । ऐसे परिवर्तन रोग प्रक्रिया का ही एक हिस्सा हैं और शरीर जिस तरह से पदार्थों का संचालन करता है उससे उत्पन्न विशिष्ट अपसमानताओं का परिणाम हैं । यह तो शायद आप जानते ही होगें कि अक्सर संक्रमण के कारण रोग की प्रक्रिया शुरू होती है ।

इस इकाई में और अगली इकाई में भी हम उन तरीकों पर गहराई से विचार करेंगे जिनके द्वारा हम आहार का एक चिकित्सीय साधन के रूप में प्रयोग कर सकें । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक रोग के बारे में चर्चा करते समय हम दो मुख्य क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करेगें, ये हैं — समस्याओं की पहचान और आहार द्वारा उनका समाधान।

तथापि हमें यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि आहार द्वारा अधिकांश रोगों का उपचार नहीं किया जा सकता । आहार द्वारा रोगों को केवल नियंत्रण में रखा जा सकता है और स्थिति को और अधिक बिगड़ने से रोका जा सकता है । परन्तु निस्संदेह कुछ ऐसे रोग भी हैं जिनका आहारीय उपायों द्वारा पूर्ण उपचार किया जा सकता है । जैसे जैसे आप इस इकाई और अगली इकाई को पढ़ेगें यह भिन्नता आपके सामने स्पष्ट रूप में उभर आयेगी ।

आहार व्यवस्था का अध्ययन करते समय, प्रत्येक रोग से संबंधित समस्याओं को ध्यान से देखें । फिर इस बात पर ध्यान केन्द्रित करें कि इन समस्याओं पर कैसे काबू पाया जाय या आहार चिकित्सा के प्रयोग से, कम से कम इन्हें नियंत्रण में कैसे लाया जाए ।

इस इकाई में हम पोषणहीनता जन्य विसंगतियों और उनसे संबंधित समस्याओं में आहार व्यवस्था के बारे में पढ़ेगें । इकाई के प्रारंभ में सिंहावलोकन प्रस्तुत किया गया है जिसके द्वारा आपको विषय के विभिन्न पहलुओं को समझने में सहायता मिलेगी । आइए, शुरुआत करें ।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- आहार व्यवस्था के सामान्य सिद्धांतों की चर्चा कर सकेगें
- पोषणहीनता जन्य विसंगतियों और उनसे संबंधित समस्याओं जैसे अतिसार और ज्वर में आहार चिकित्सा का वर्णन कर सकेगें, और
- मधुमेह और हृद् धमनी रोग में "आहार व्यवस्था" के सिद्धांतों और उनके प्रचलन की व्याख्या कर सकेगें ।

9.2 रोग में आहार व्यवस्था : संकल्पना और समुदाय कार्य में अनुप्रयोग

अभी तक की गई चर्चा में हमने "आहार व्यवस्था" (Dietary Management) शब्द का बार-बार प्रयोग किया है । इसका अर्थ है कि *किसी रोग स्थिति की आहार साधनों द्वारा व्यवस्था । आहार व्यवस्था, आहार में रूपांतरणों और प्राय: सम्भरण आवृत्ति (frequency of feeding) में परिवर्तन से सम्बद्ध होती है ।*

पिछली इकाई में हमने उन तरीकों के बारे में बात की थी जिनमें सामान्य आहार को परिवर्तित किया जा सकता है । क्या आप यहाँ उनकी सूची बना सकते हैं ?

हमने यह भी बताया था कि चिकित्सीय आहार सामान्य आहार के ही रूपांतरण हैं । उनका आयोजन निम्नलिखित के लिए किया जाता है:

- विशेष स्थितियों में आवश्यकताओं की पूर्ति, और
- ऐसी स्थितियों में अच्छे पोषण को बनाए रखना

समुदाय शिक्षक की हैसियत से यह आपकी भूमिका है कि आप लोगों को बताएं कि रोग में आहार की क्या भूमिका है । चिकित्सा शास्त्र की हमारी पारम्परिक प्रणालियों जैसे आयुर्वेद में प्राय: जो दवाइयां दी जाती हैं उन्हीं से संबंधित आहार संबंधी विशिष्ट परिवर्तन किए जाते हैं, हालांकि लोग दवाइयों और आहार के इस संबंध से परिचित हैं, फिर भी वे केवल भोजन का चिकित्सा के साधन के रूप में महत्व सदैव नहीं पहचान पाते हैं । किसी भी बीमारी का स्वरूप बताना और उसके आधार पर आहार में परिवर्तन करना जरूरी है ।

कभी कभी लोगों को यह विश्वास दिलाना मुश्किल हो जाता है कि आहार में एक थोड़ा सा परिवर्तन ही किसी रोग को ठीक करने या नियंत्रित करने में सहायक हो सकता है । यह आशा की जाती है कि केवल गोलियाँ, कैप्सूल या इन्जैक्शन ही चमत्कार कर सकते हैं । इस समस्या से निपटने के लिए आपको नवीन तरीके ढूँढने के बारे में सोचना पड़ेगा । इसके लिए एक प्रभावशाली नीति यह है कि आप समुदाय के किसी सदस्य के मामले में आहार चिकित्सा के लाभों को वास्तव में दिखाएं । तथापि यह हमेशा संभव न हो । यह आप अन्य स्थानापन्नों जैसे कहानी या विविध संचार माध्यमों का प्रयोग करके कर सकते हैं । इनके बारे में हम पाठ्यक्रम 3 में बातचीत करेंगे ।

आइए अब हम पोषणहीनता जन्य विसंगतियों में आहार के बारे में चर्चा करें ।

9.3 पोषणहीनता जन्य विसंगतियों में आहार

पोषणहीनता जन्य विसंगतियों के उपचार में आहार की मुख्य भूमिका है । भोजन में, स्वयं में पोषक तत्वों की उच्च सान्द्रता नहीं होती और इस लिए पोषक तत्वों को सान्द्रित रूप में मुँह द्वारा, अंत: शिरा

द्वारा (intravenously) या अंत: मांसपेशी द्वारा (intramuscularly) दिया जाता है । इसके अतिरिक्त हीनता के अंतर्निहित कारणों जैसे अंकुश कृमि ग्रसन (hook worm infestation) या अन्य किसी संक्रमण का भी उपचार करना होता है नहीं तो समस्या दूर नहीं हो सकती । पाठ्यक्रम 1 के खंड 5 में पोषणहीनता जन्य विसंगतियों के चिन्ह और लक्षणों की जाँचसूची दी गई थी।

अब तालिका 9.1 को देखिए इसमें हमारे देश की पोषण संबंधी प्रमुख हीनताओं जैसे प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण (पी.ई.एम.),विटामिन ए की कमी, एनीमिया और आयोडीन की कमी से होने वाली विसंगतियों में आहार व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं को संक्षेप में बताया गया है ।

तालिका 9.1 : पोषणहीनता जन्य विसंगतियों में आहार व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ

विसंगति	आहार व्यवस्था
पी.ई.एम. (प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण)	अधिक ऊर्जा वाले भोजन
	मौखिक पुनर्जलीकरण घोल (ओ.आर.एस.) अतिसार से ग्रस्त मंद और मध्यम केसों में । अतिसार के गंभीर केसों में अंत: शिरा द्वारा तरल पदार्थ जब ठोस पदार्थ पचने लगे तब उच्च ऊर्जा और उच्च प्रोटीन युक्त आहार खनिज और विटामिन अनुपूरक संबंधित स्थितियों का उपचार
एनीमिया	क) लौह तत्व की कमी : 20 किलो वजन से ऊपर वाले वयस्क और बच्चे : 200 मि.ग्रा. फेरस सल्फेट की एक गोली दिन में तीन बार छोटे बच्चे : ताजा तैयार घोल की 3 खुराकें शरीर के प्रति 1 किलो वजन पर 30 मि.ग्रा. की मात्रा में दें । 1 मि.ग्रा. फौलिक एसिड युक्त 1 गोली रोज । संवेदनात्मक गड़बड़ियाँ, मांसपेशियों की कमज़ोरी और रीढ़ की हड्डी के अपक्षय जैसी कमियों में जब विटामिन बी$_{12}$ की कमी का उपचार केवल फौलेट द्वारा हो रहा हो तब समस्याओं की रोकथाम के लिए, विटामिन बी$_{12}$ भी दिया जाना चाहिए । जहाँ जरूरी हो वहाँ हुक कृमि या दूसरे ग्रसन और मलेरिया का नियंत्रण भी किया जाना चाहिए ।
विटामिन-ए की कमी	*आपात स्थितियां* : वे बच्चे जिनमें कॉर्निया संबंधी चिह्न गतिशील हैं (कॉर्निया का सूखना, कॉर्निया में नेत्रदाह-केरेटोमलेशिया), गंभीर रूप से बीमार या कुपोषित बच्चे जिनमें जीरोफ्थैलमिया का कोई भी चिन्ह हो या उस समुदाय के बच्चे जहाँ जीरोफ्थैलमिया आम तौर पर पाया जाता है । *बहि:रोगी* : 1 साल से ऊपर के बच्चों को यथाशीघ्र 200,000 आई.यू. की एक खुराक तेल में (मुँह द्वारा) या पानी में घोल तैयार कर (अंत: मांसपेशी द्वारा) दें । *शिशु* : 1 साल से ऊपर के बच्चों से आधी खुराक, एक सप्ताह बाद बच्चे का पुन: परीक्षण करें । *अंत:रोगी* : शीघ्र ही 100,000 आई.यू. का पानी में घोल तैयार करके सभी बच्चों को अंत: मांसपेशी द्वारा दें। *दूसरे दिन* : 100,000 आई.यू. एक खुराक तेल के घोल में सभी बच्चों को मुँह द्वारा दें ।

	छुट्टी होने पर : एक साल से ऊपर के बच्चों को 200,000 आई. यू. की एक खुराक तेल के घोल में मुँह द्वारा ।
	छुट्टी होने पर : शिशुओं को 100,000 आई.यू. की खुराक तेल के घोल में मुँह द्वारा ।
	साधारण मामलों में :
	क) वे बच्चें जिनमें जीरोप्थैलमिया के कॉर्निया संबंधी चिह्न नहीं हैं (रतौंधी, कॉर्निया का सूखना) या कोई गंभीर बीमारी नहीं है परन्तु वे उस समुदाय के हैं जहां जीरोप्थैलमिया पाया जाता है:
	200,000 आई.यू. की खुराक तेल के घोल में, मुँह द्वारा, पाँच साल से ऊपर के बच्चों के लिए दी जानी चाहिए ।
	100,000 आई.यू. तेल का घोल, मुँह द्वारा शिशुओं के लिए । यह खुराक हर 6 माह पर दुबारा दी जा सकती है।
	ख) उन माताओं के लिए जिन्होंने हाल ही में बच्चे को जन्म दिया है, जिन्हें बच्चों को स्तनपान कराना है, या उस समुदाय की गर्भवती महिलाएं, जहाँ जीरोप्थैलमिया पाया जाता है :
	300,000 आई.यू. तेल का घोल : मुँह द्वारा एक खुराक दें।
आयोडीन की कमी से होने वाली विसंगतियां	1) आयोडीनीकृत नमक का प्रयोग
	2) आयोडीनीकृत तेल का इंजैक्शन : इंजैक्शन अंत:मांसपेशी द्वारा हर तीसरे चौथे महीने बच्चों और वयस्कों को निम्नलिखित अनुसूची के अनुसार यह खुराक दें । 0 से 12 महीने की आयु में : 0.5 मि.ली. तेल जिसमें भार के आधार पर आयोडीन 37% हो । 1 से 45 वर्ष : 1.0 मि.ली. जिसमें भार के आधार पर आयोडीन 37% हो।
	3) गोलियों के रूप में थायरोक्सिन सम्पाक (Thyroxine preparations)

इस तालिका में चार प्रमुख पोषणहीनता जन्य विसंगतियों के मामलों में, चिकित्सा की प्रमुख विशेषताओं के बारे में बताया गया है ।

बोध प्रश्न 1

1) मान लीजिए कि आप किसी गाँव के एक चिकित्सक को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि वह पोषक तत्वों की आपूर्तियों को विविध रूपों में संग्रह करे तो आप क्या कहेंगे ? बताइए ।

....

....

....

....

....

....

2) "पोषणहीनता अन्य विसंगतियों का पूर्ण उपचार सदैव संभव नहीं है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

हाँ ——— नहीं ———

अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए ।

....

....

....

जैसा कि हम पहले भी बता चुके हैं, पी.ई.एम. (प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण) प्राय: निर्जलीकरण और संक्रमण से संबंधित होता है । ये रोग जीवन घातक हो सकते हैं अत: इनको शीघ्र ही काबू में लाना चाहिए । यदि रोगी मुँह से तरल पदार्थ लेने की स्थिति में है तो उसे ओ.आर.एस. (जीवन रक्षक घोल) दिया जाता है । ओ.आर.एस. घोल एक लीटर साफ़, उबले और ठंडे किए पीने के पानी में निम्नलिखित लवणों – सोडियम क्लोराइड 3.5 ग्राम; सोडियम बाइकार्बोनेट 2.5 ग्रा; पोटैशियम क्लोराइड 1.5 ग्राम और 20 ग्राम ग्लूकोज को घोल के तैयार किया जाता है । ओ.आर.एस. घोल शरीर के वजन के प्रति किलो पर 50 और 100 मि.ली. की मात्रा में, निर्जलीकरण मंद है या मध्यम है, इस बात को ध्यान में रख कर दिया जाय तो प्राय: जलयोजन (hydration) सामान्य हो जाता है । घोल की यह मात्रा उपचार के समय पहले 4 - 6 घंटों में ही थोड़ी-थोड़ी मात्रा में कुछ-कुछ मिनिटों बाद दी जानी चाहिए । यदि निर्जलीकरण के चिह्न समाप्त हो जाते हैं तब ओ.आर.एस. घोल दे कर अनुरक्षण चिकित्सा (maintenance therapy) शुरू कर दी जाती है और यह तब तक जारी रखी जाती है जब तक कि दस्त रुक न जायं । मन्द दस्तों के लिए शरीर के प्रति एक किलो वजन पर 100 मि.ली. घोल प्रति दिन देना पर्याप्त हैं । गंभीर दस्तों की हालत में यह मात्रा दिन में 2 - 4 बार देनी चाहिए । अनुरक्षण चिकित्सा के दौरान ओ.आर.एस. के अतिरिक्त दूसरे तरल पदार्थ भी दिए जा सकते हैं । अब 8 - 12 घंटों के अंदर पूर्ण पुन: जलयोजन हो जाना चाहिए । इस समय तक बड़े बच्चों और वयस्कों को आधा दूध व आधा पानी मिला कर तैयार की गई दुग्ध निर्मित चीजें (जैसा कि अक्सर शिशुओं को दी जाती हैं) देना शुरू किया जा सकता है । पूरी चिकित्सा के दौरान ओ.आर.एस. घोल युक्त पानी तैयार रखना चाहिए।

जो बच्चे लगातार उल्टियाँ कर रहे हों उनके मामले में क्या किया जाय या मान लीजिए कि बच्चा मुँह द्वारा खाना नहीं खा सकता, ऐसे मामलों में नासाजठरीय (nasogastric) नली द्वारा खाना खिलाने की कोशिश की जाती है । नासाजठरीय (nasogastric) नली द्वारा दिए जाने वाले तरल पदार्थ की मात्रा पहले 6 घंटों में प्रति किलो शरीर भार पर 120 मि.ली., 12 हिस्सों में बाँट कर दी जाती है । एक-एक हिस्सा हर आधे घंटे पर दिया जायगा ।

परन्तु अगर यह उपचार सफल न हो तो ऐसे मामलों को और गंभीर रूप से निर्जलीकरण हुए मामलों को काबू करने के लिए केवल अंत:शिरा द्वारा भोजन देने की विधि ही सफल होगी । इसमें, उपचार के पहले तीन घंटों में शरीर के प्रति 1 किलो वज़न पर 70 मि.ली. तरल पदार्थ दिया जाता है, अर्थात् उपचार के पहले घंटे में 30 मि.ली. और शेष मात्रा बाकी दो घंटों में। जो तरल पदार्थ दिया जाता है उसको "रिंगर्स लैक्टेट" (Ringer's Lactate) कहते हैं जिसमें निम्नलिखित का सम्मिश्रण होता है :

लैक्टिक अम्ल	-	2.4 मि.ली.
सोडियम हायड्रौक्साइड	-	पी.एच. (pH) को संतुलित करने के लिए जितना आवश्यक हो
सोडियम क्लोराइड	-	6.0 ग्रा.
पोटैशियम क्लोराइड	-	0.4 ग्रा.
क्लोराइड	-	1000 मि.ली. की मात्रा समायोजित करने के लिए जितना आवश्यक हो ।

पहले तीन घंटों के बाद भी उपचार जारी रखा जाता है जब मरीज ओ.आर.एस. घोल मुँह द्वारा नहीं ले सकता या निर्जलीकरण के चिह्न बने रहते हैं ।

आइए, अब संक्रमणों और उनके उपचार के बारे में विचार करें । अगर कोई बच्चा गंभीर रूप से कुपोषित है परन्तु उसमें किसी खास संक्रमण के कोई स्पष्ट चिह्न नहीं दिखाई देते तो उसे प्रोकेन

बेन्जाइल पैन्सिलीन और एम्पिसिलिन से बना संयोजन दिया जाना चाहिए। जब रोग के कारणात्मक कारक का पता हो या संदेह हो तो उस कारक के लिए उपयुक्त प्रतिजैविक चिकित्सा दी जानी चाहिए।

यह याद रखिए कि निहित संक्रमणों का उपचार अत्यंत जरूरी है। कुपोषित बच्चों में जब गम्भीर संक्रमण पाया जाय तो एक महत्वपूर्ण बात ये है कि ऐसी स्थिति में वे ज्वर से पीड़ित न हों बल्कि अल्पतापीय (hypothermia) हो सकता है, यानि की शरीर का तापमान सामान्य से कम हो जाता है।

यहाँ पर आ कर हम यह मान लें कि हमने सफलता पूर्वक निर्जलीकरण को ठीक कर दिया है और दस्त व उल्टी रुक गए हैं। अब हम इस विशिष्ट आहारीय अनुसूची का पालन कर सकते हैं।

दिन	किस प्रकार का तरल आहार दिया जाए	प्रतिदिन आहार देने की संख्या
पहला दिन	मौखिक पुनर्जलयोजन (ओ.आर.एस.) (यदि दस्त उल्टी और निर्जलीकरण अभी भी हो तो)	12
	आधा पानी मिला दूध का आहार (feed) (यदि दस्त, उल्टी और निर्जलीकरण नहीं है तो)	12
दूसरा दिन	आधा पानी मिला दूध (Half strength milk)	12
तीसरा दिन	आधा पानी मिला दूध	8
चौथा और पांचवा दिन	बिना पानी मिले दूग्धाहार (Full strength milk feeds)	8
छठे दिन और उसके बाद	ऊर्जा युक्त तरल दुग्धाहार	6

"स्रोत" : गंभीर प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का उपचार और व्यवस्था, विश्व स्वास्थ्य संगठन, जेनेवा, 1981, की तालिका 3 से उद्धत

इस तालिका द्वारा स्पष्ट रूप से यह पता चलता है कि उन रोगियों को जिन्हें निर्जलीकरण नहीं हुआ है या जिनका निर्जलीकरण ठीक हो गया है, उन्हें मुँह द्वारा थोड़े-थोड़े अन्तराल में भोजन देना कैसे शुरू किया जा सकता है। शुरू में पानी मिले दुग्धाहार थोड़ी-थोड़ी देर में व थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिए जा सकते हैं। आपके विचार से ऐसा क्यों किया जाता है ? इसका उत्तर निश्चित रूप से यही है कि ऐसे भोजनों द्वारा कुछ मात्रा में ऊर्जा और प्रोटीन प्राप्त होते हैं, और चूँकि वे हल्के (dilute) होते हैं अत: उनके कारण दस्त या उल्टी होने की संभावना नहीं होती। उपरोक्त तालिका को फिर से देखें। क्या आपने इस बात पर गौर किया है कि जैसे-जैसे भोजनों को देने की संख्या में कमी होती जाती है वैसे-वैसे उनकी सान्द्रता और मात्रा धीरे-धीरे बढ़ा दी जाती है।

जब रोगी को दुग्धाहार पचने शुरू हो जाते हैं तब उसे उच्च ऊर्जा युक्त आहार जो प्राय: दूध से ही बने हों, देने की जरूरत पड़ती है। क्यों ? जैसा कि आप जानते ही है प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का संबंध वृद्धि अवरोधन (failure) से है। क्योंकि मुख्य समस्या है ऊर्जा और साथ में प्रोटीन की कमी, अत: ऐसे भोजन देने चाहिए जिनसे ये पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हों। जब उच्च ऊर्जा-युक्त तरल दुग्धाहार दिए जाते हैं तो बच्चे की वृद्धि की दर आश्चर्यजनक रूप से बढ़ती है, क्योंकि बच्चा अपनी वृद्धि व विकास में हुई पहले की कमी को पूरा कर सकता है तथापि, सामान्यत: यह देखा जाता है कि उच्च तरल ऊर्जा युक्त आहार देने के पहले एक-दो सप्ताह के दौरान, कुपोषित रोगियों का वज़न नहीं बढ़ पाता। यह इसलिए होता है क्योंकि शरीर को सामान्य स्थिति में आने में कुछ समय लगता है। ऐसी स्थिति में चिन्ता करने की कोई बात नहीं है।

प्रयोगात्मक टिप्पणी I द्वारा आपको उच्च ऊर्जा युक्त आहारों का विशद वर्णन मिलेगा।

प्रयोगात्मक टिप्पणी I

ऊर्जा युक्त तरल आहार

ऊर्जा युक्त आहार और तरल आहार पारंपरिक तौर से दूध, चीनी और तेल से बने होते हैं। फिर भी हमारे देश में अधिक ऊर्जा वाले खाद्य पदार्थों को बनाने में अनाज और दालों का सम्मिश्रण प्रयोग में लाया जाता रहा है।

आइए, पहले विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रस्तावित, दूध से बने कुछ पदार्थों के बारे में पढ़ें।

	सामग्री		
	दूध व दूध से बने आहार	तेल	चीनी
गाय या बकरी का दूध	900	55	70
भैंस का दूध	800	30	65
वसा रहित दूध का पाउडर	90	85	65
चिकनाई युक्त दूध का पाउडर	120	55	65
वाष्पीकृत दूध (evaporated milk)	450	50	70
के. मिक्स 2 (K. Mix 2)	120	85	35

"स्रोत" : *गंभीर प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का उपचार और व्यवस्था, विश्व स्वास्थ्य संगठन, जेनेवा, 1981*

टिप्पणी :

1) दूध/दूध के पाउडर में तेल और चीनी मिलाई जाती है और फिर इसे पानी मिला कर बनाया जाता है, जिससे इसकी कुल मात्रा 1000 मि.ली. हो जाए।

2) के - मिक्स 2 यूनीसेफ द्वारा निर्मित और वितरित एक खाद्य मिश्रण है जो गंभीर प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का उपचार करने के लिए दिया जाता है।

इसका संघटन यह है : कैल्शियम कैसिनेट (Calcium Caseinate) वजन का 3 हिस्सा, वसारहित दूध का पाउडर वजन का 5 हिस्सा, सुक्रोज वजन का 10 हिस्सा और एक विटामिन ए की निर्मित, रेटीनोल पालमिइटेट (retinol palmitate) 2.75 मि. ग्रा. (5000 आई. यू. विटामिन ए) प्रति 100 ग्राम शुष्क मिश्रण।

बोध प्रश्न 2

1) प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण से संबंधित दो समस्याओं की सूची बनाइए।

....

....

....

....

2) प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण से पीड़ित बच्चों में पुनर्वास और अनुवर्ती (follow up) का क्या महत्व है?

....

....

....

....

अभी तक हमने इस बात पर चर्चा की है कि प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण व अन्य पोषण जन्य विसंगतियों के केसों के उपचार में आहारीय अनुपूरक कितने महत्वपूर्ण हो सकते हैं। धीरे–धीरे बच्चे को फिर से पारंपरिक आहार देना शुरू कर दिया जाता है। तथापि इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसको ऐसा पोषक आहार दिया जाए जो ऊर्जा और प्रोटीन व साथ ही साथ विटामिन और खनिज स्रोतों से भी भरपूर हो।

एक बच्चा पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया है, हम यह कैसे जान सकते है ? वह बच्चा पूर्ण रूप से स्वस्थ माना जाएगा, जिसका वजन अपनी ऊंचाई या लंबाई (शिशुओं के मामले में) के अनुसार सामान्य हो गया है।

जो बच्चे गंभीर प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण से ठीक हो गए है उनकी बाद में भी नियमित देखभाल करना अनुवर्ती अत्यंत आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा :

क) बच्चे को दुबारा पी.ई.एम., जिसके प्रति वह पहले से ही संवेदनशील है, होने का खतरा कम हो जाता है

ख) टीकाकरण अनुसूची के आधार पर टीकाकरण पूरा किया जा सकता है

ग) बच्चों को भोजन देने और उनके पालन पोषण संबंधी प्रचलनों व परिवार नियोजन और व्यक्तिगत स्वच्छता संबंधी सतत् शिक्षा देने के अवसर प्रदान करता है।

ये विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित निर्देश हैं। यह भी सिफारिश की गई है कि गंभीर पी.ई.एम. के उपचार के लिए भरती प्रत्येक बच्चे की 2.5 वर्ष की उम्र तक नियमित रूप से देखभाल चलती रहनी चाहिए। बच्चा यदि बड़ी उम्र का है तो देखभाल की यह अवधि कम से कम एक वर्ष तक की होनी चाहिए।

आइए, अब पोषण संबंधी अन्य विसंगतियों की चर्चा करें। तालिका 9.2 में आपको विटामिन और खनिज की कमियों से उत्पन्न विसंगतियों के मामलों की व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं के बारे में बताया गया है।

तालिका 9.2 : पोषणहीनता जन्य अन्य रोग : व्यवस्था और उपचार

हीनता जन्य रोग	सम्बद्ध पोषक तत्व	व्यवस्था/उपचार
बेरी बेरी	थायेमीन	थायेमीन पूरक और बी समूह की गोलियाँ
पेलेग्रा	नियासीन	निकोटिनैमाइड पूरक और बी समूह के विटामिनों की गोलियाँ
राइबोफ्लेविन हीनता	राइबोफ्लेविन	राइबोफ्लेविन पूरक और बी समूह के विटामिनों की गोलियाँ
रिकेट्स	विटामिन डी	कौड यकृत तेल से बने संपाक; विटामिन डी के सान्द्रित स्रोत; पर्याप्त मात्रा में सूर्य की रोशनी मिलना

9.4 अतिसार और ज्वर : आहार व्यवस्था

यह तो आप जानते ही हैं कि अतिसार और ज्वर, दोनों ही, रोग नहीं बल्कि रोग के लक्षण हैं। अत: जब तक उनके अंतर्निहित कारण की पहचान और उपचार नहीं होगा वे पूर्णत: ठीक नहीं होंगे और हम बिना किसी स्थायी उपचार के ही "लक्षणात्मक उपचार" (Symptomatic Treatment) करते रहेंगे अर्थात् ज्वर कम करने की गोलियाँ देते रहेंगे।

तथापि हमें इस बात पर विशेष बल देना होगा कि अतिसार और ज्वर में आहार व्यवस्था के संबंध में विशेष ध्यान देने की जरूरत है। ऐसा न करने पर रोगी की हालत बहुत गंभीर हो सकती है। अत: अब हम अतिसार में आहार व्यवस्था से शुरूआत करते हैं।

अतिसार

खंड ९ पाठ्यक्रम 1 में आपको अतिसार में आहार व्यवस्था के मूल सिद्धांतों के बारे में बताया गया था।

पिछले भाग में पी.ई.एम. से संबंधित अतिसार में, आहार व्यवस्था और उसके उपचार के बारे में चर्चा की गई थी ।

शायद आपको याद हो, अतिसार के दुष्प्रभावों के नियंत्रण के मुख्य चरण हैं :

- निर्जलीकरण को ठीक करना
- तरल पदार्थ और विद्युत अपघट्य (electrolytes) का संतुलन बनाए रखना

निर्जलीकरण तब होता है जब शरीर की कोशिकाओं में पानी की अत्यधिक कमी होने लगती है । इसको ठीक करने के लिए पुनर्जलीकरण चिकित्सा (rehydration therapy) का प्रयोग किया जाता है और दस्त के कारण हुई क्षतियों व शरीर की कोशिकाओं में हुई पानी और विद्युत अपघट्यों की कमी की भी क्षतिपूर्ति की जाती है । जब शरीर की कोशिकाओं में पानी और विद्युत अपघट्यों की क्षतिपूर्ति हो जाती है (अर्थात् जब निर्जलीकरण के चिह्न समाप्त हो जाते हैं), तब भी लगातार होने वाले दस्तों के कारण होने वाली क्षतियों की पूर्ति के लिए तरल पदार्थ और विद्युत अपघट्य देना जारी रखना चाहिए । इसको अनुरक्षण चिकित्सा (Maintenance Therapy) कहते हैं ।

क्या आपको याद है कि निर्जलीकरण के क्या चिह्न है ? ये हैं :

- पेशाब का बहुत कम मात्रा में होना, या बिल्कुल न होना, पेशाब का रंग गहरा पीला होना
- वजन में एकाएक कमी होना
- मुँह सूखा महसूस होना
- धँसी हुई आंसुरहित आँखे
- शिशुओं के मामले में, अग्र कलांतराल (anterior fontenelle) (सिर के ऊपर का नरम स्थान) का धंस जाना
- त्वचा के लचीलेपन में कमी

यदि निर्जलीकरण बहुत गंभीर हो तो प्राय: निम्नलिखित चिन्ह दिखाई पड़ते हैं :

- कमज़ोर नब्ज
- तेज गहरी साँस

लोगों को यह विश्वास दिलाना बहुत जरूरी है कि शुरू से ही तरल पदार्थ काफी मात्रा में देने चाहिए । ओ.आर.एस. (जीवन रक्षक घोल) बहुत उपयोगी होता है और जितनी बार संभव हो सके थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिया जाना चाहिए । अतिसार से पीड़ित शिशुओं और छोटे बच्चों का विशेष ध्यान रखने की जरूरत है । अतिसार को अगर जल्दी ही ठीक नहीं किया गया तो यह घातक हो सकता है ।

कभी–कभी लोग सोचते हैं कि तरल पदार्थ देने से दस्त और पतले हो जायेंगे । उनको यह विश्वास हो सकता है कि वास्तव में तो तरल पदार्थ बंद ही कर देने चाहिए । स्तनपान भी बंद कर देना चाहिए । परन्तु शिशु और छोटे बच्चे इस प्रचलन से मर भी सकते हैं, अत: इस धारणा को ठीक करने के लिए सभी प्रयास करने चाहिए । दस्तों के दौरान स्तनपान कराने के लिए तो विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ।

दस्तों के साथ अगर उल्टियाँ भी लगी हों तो यह और भी घातक हो सकता है क्योंकि निर्जलीकरण होने की संभावना ज्यादा हो जाती है ।

आपको यह भी याद रखना चाहिए कि लोगों को बताया जाय कि उन्हें चिकित्सीय सलाह कब लेनी चाहिए । वे परिस्थितियाँ जिन पर घर में काबू पाना कठिन है, ये हैं :

- यदि दस्त चार दिन से हो रहे हों और स्थिति में थोड़ा-सा भी सुधार न हो रहा हो या गंभीर दस्तों से पीड़ित छोटे बच्चे के मामले में एक दिन से ज्यादा हो गया हो
- यदि किसी व्यक्ति को निर्जलीकरण हो गया हो और दिन–प्रतिदिन स्थिति बदतर हो रही हो
- यदि बच्चा जो कुछ भी पी रहा है वह सब उल्टी कर निकाल दे / या वह कुछ भी पीने में असमर्थ हो
- यदि बच्चे को फिट (Convulsions) आने लगें, या उसका चेहरा और पैर सूज जाएं

- दस्त शुरू होने से पहले यदि वह व्यक्ति बहुत बीमार, कमजोर या कुपोषित था (खास तौर से छोटे बच्चे या वृद्ध व्यक्ति)
- यदि मल में रक्त ज्यादा आ रहा हो, तो यह दस्त कम होने के बावजूद घातक हैं

ज्वर

ज्वर भी दस्त के समान, एक लक्षण ही है। इसका संक्रमण से घनिष्ठ संबंध है, क्योंकि यह संक्रमणों का सामना करने के लिए शरीर द्वारा विकसित प्रक्रियाओं में से एक हैं। ज्वर की परिभाषा है "संक्रमण, सूजन या किन्ही अज्ञात कारणों के फलस्वरूप शरीर के तापमान में वृद्धि, जो सामान्य तापमान से अधिक हो"।

हम यह पहले ही बता चुके हैं कि ज्वर का संबंध संक्रमण से है। तथापि कुछ अन्य कारकों जैसे कि ऐन्टीजन-प्रतिरक्षी प्रतिक्रियाएँ (हमारी प्रतिरोधी प्रणाली से संबंद्ध प्रतिक्रियाएँ), विषालुता (malignancy), या किसी कलम (graft) की अस्वीकृति के कारण भी बुखार हो सकता है।

ज्वर दो प्रकार के हो सकते हैं, अर्थात कम अवधि / तीव्र (जैसे टायफाइड) या लंबी अवधि / चिरकालीक (जैसे तपेदिक)। ज्वर आंतरायिक (intermittent) भी हो सकता है जैसा कि मलेरिया में होता है।

आहार चिकित्सा के सिद्धांतों को समझने के लिए हमें ज्वर और संक्रमण में होने वाले चयापचय संबंधी परिवर्तनों को समझने की जरूरत है। सामान्य रूप से तो ज्वर जितना अधिक होगा और जितनी लंबी अवधि तक होगा उसके दुष्प्रभाव भी अधिक होगें। ज्वर से होने वाले प्रभाव हैं :

- शरीर के तापमान में प्रति डिग्री सेल्सेयस की बढ़त पर चयापचय की दर में 13 प्रतिशत की वृद्धि (प्रति डिग्री फेरेनहाइट पर 7 प्रतिशत) इसके कारण ऊर्जा की आवश्यकताएं बढ़ जाती है
- ग्लाइकोजन के संग्रह में कमी और वसा ऊतकों (adipose tissues) के संचय में कमी
- प्रोटीनों का अत्यधिक भंजन (breakdown) या अपचय (catabolism) खास तौर से मलेरिया व टायफाइड जैसे रोगों में : इसके कारण नाइट्रोजन के अपशिष्टों का अत्यधिक मात्रा में उत्पादन होने लगता है — यह गुर्दों के ऊपर भार डालता है
- अत्यधिक पसीना आने के कारण और शरीर के अपशिष्टों के उत्सर्जन के कारण शरीर में पानी की तीव्र क्षति
- सोडियम और पोटैशियम का अत्यधिक उत्सर्जन
- संक्रमण के चयापचय संबंधी परिणाम जिसमें प्रोटीन और शरीर के ऊतकों का अपचय भी शामिल है
- रक्त शर्करा में गिरावट : रक्त में कीटोन की मात्रा में वृद्धि और नाइट्रोजन का उत्सर्जन कम हो जाता है।

बुखार में क्या आहार दिया जाय ,यह रोगी की विक्रतिजन्य स्थिति (pathological condition) और उस स्थिति की गंभीरता पर निर्भर करता है। ठीक होने की अवधि छोटी है या लंबी इसका भी प्रभाव पड़ता है। सामान्यत: तो आहार संबंधी विचार करते समय अधिक ऊर्जा (विशेषत: अधिक कार्बोज़) और अधिक प्रोटीन वाले आहारों पर ही जोर दिया जाता है। वसा वाले आहार भी पर्याप्त मात्रा में दिए जाने चाहिए परन्तु बहुत अधिक गरिष्ठ भोजन नहीं दिये जाने चाहिए क्योंकि वे आसानी से नहीं पचते। सोडियम और पोटैशियम के स्रोतों व विटामिनों के दिए जाने पर भी ज़ोर दिया जाना चाहिए। ज्वर में चयापचय की उच्च दर होने के कारण बी–समूह के विटामिनों का अधिक प्रयोग होता है। तथापि उन रोगियों को जिनका मुहँ द्वारा उपचार (oral therapy) प्रतिजैविक या कुछ अन्य दवाएं दे कर किया जा रहा है, उन्हें बी-समूह के विटामिन पूरकों की अतिरिक्त मात्रा दी जानी चाहिए। इसकी वजह यह है कि ये दवाइयाँ आंतों के जीवाणु को क्षति पहुँचाती हैं। इन जीवाणुओं से हमें उपयोगी मात्रा में विटामिन प्राप्त होते हैं क्योंकि ये कुछ बी-समूह विटामिनों का संश्लेषण करते हैं। ऐसे मामलों में बी-समूह विटामिन के पूरक देना अति आवश्यक है। क्या और भी कुछ ध्यान रखने वाली बात है? एक और बहुत महत्वपूर्ण बात जो हम बताना चाहेंगे वह है कि तरल पदार्थ और विद्युत अपघट्य भी पर्याप्त मात्रा में देने चाहिए। तरल पदार्थ प्रतिदिन 2500 से 5000 मि.ली. की मात्रा में देने चाहिए। यह क्यों

आवश्यक है? निस्संदेह, इसका कारण है, त्वचा से (पसीने के रूप में) निकले तरल पदार्थों और विद्युत अपघट्यों की क्षतिपूर्ति करना और शरीर के अपशिष्ट पदार्थों के पेशाब द्वारा निसर्जन के लिए पेशाब का पर्याप्त मात्रा में होना।

हल्का फीका आहार (bland diet) जिसमें आसानी से पचने वाले खाद्य पदार्थ शामिल हो देना भी महत्वपूर्ण है। आपके ख्याल से यह क्यों जरूरी है ? इसका उत्तर है : पाचन और अवशोषण में सहायता करना और किसी भी प्रकार के उत्तेजन को रोकना। आइए अब जानें की भोजन की गाढ़ता (consistency) क्या होनी चाहिए ? तीव्र ज्वर में जब रोगी बहुत कमज़ोर हो जाता है और चबाना भी मुश्किल लगता है तब पूर्ण तरल आहार (full fluid diet) दिया जाता है। जब बुखार उतर जाए और रोगी ठीक हो रहा हो तब नरम आहार (soft diet) दिया जाता है। यद्यपि शुरू में तरल आहार दिए जाने चाहिए पर उनके प्रयोग से कुछ असुविधाएँ भी हो सकती हैं। पहली समस्या है आहार की स्थूलता (bulk) जिसमें आहार से मिलने वाले पोषक तत्वों का अनुपात भोजन की मात्रा के अनुरूप नहीं होता। दूसरी समस्या है कि तरल आहारों के कारण कभी–कभी पेट इतना फूल जाता है कि बेचैनी होने लगती है। ऐसे मामलों में, ठोस भोजन देना बेहतर होगा। इसके अलावा, तरल खाद्य पदार्थ लेने पर कुछ रोगियों को मितली का अनुभव होता है और उन्हें उल्टी होने लग जाती है। अत: जैसा की आप समझ ही गए होंगे, आहार की अच्छाइयों और बुराइयों पर विचार करके ही निर्णय लिया जाना चाहिए। तथापि सामान्य निर्णय यही है कि बीमारी की तीव्र अवस्था में, जिसमें साथ ही तेज़ बुखार भी हो, एक पूर्ण तरल आहार ही दिया जाना चाहिए।

एक और महत्वपूर्ण बात जिस पर विचार करना चाहिए वह है, भोजन आवृत्ति। 2 - 3 घंटों के अंतराल पर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में भोजन देना चाहिए। इससे पर्याप्त पोषण मिलेगा और एक समय में पाचन प्रणाली पर ज्यादा भार नहीं पड़ेगा। सुधार के साथ-साथ कई रोगी, अगर उन्हें तीन मुख्य आहारों (अर्थात् सुबह का नाश्ता, दोपहर का आहार तथा रात्रि के आहार) के अतिरिक्त रात को सोने से पहले भी आहार दिया जाय तो धीरे-धीरे उनके भोजन की मात्रा बढ़ने लग जाती है। यह भी जरूरी है क्योंकि शुरू-शुरू में तो रोगी की भूख कम होती है। धीरे-धीरे उसमें सुधार होने लगता है।

टायफाइड के रोगी के लिए आहार का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है :

दूध	1000 मि.ली.
जौ का पानी	1000 मि.ली.
ग्लूकोज़	200 ग्रा.
शक्कर (Cane Sugar)	100 ग्रा.
संतरे का रस	500 मि.ली.
डैक्सट्रीमाल्टोज़	200 ग्रा.
मल्टी विटामिन की गोली	एक

आपके विचार से ऐसा आहार किन पोषक तत्वों पर बल देता है? दूध में प्रोटीन, विविध रूपों में कार्बोज़ जैसे ग्लूकोज़, चीनी, डैक्सट्रीमाल्टोज और निस्संदेह विटामिन। इस आहार में वसा पर कम से कम ज़ोर दिया जाता है। केवल दूध से प्राप्त वसा ही इसमें शामिल है। आइए, अब हम चिरकालिक ज्वरों में दिए जाने वाले आहार के बारे में चर्चा करें। चिरकालिक ज्वर जैसे तपेदिक में, बुखार कम होता है और परिसंचारण (circulation) बढ़ जाता है। क्योंकि यह बीमारियाँ लंबे समय तक चलती हैं, इनमें ऊतकों का क्षय होने लगता है। अत: ऐसी स्थिति में कैसा आहार उपयुक्त होगा ? उच्च कैलोरी और उच्च प्रोटीन वाला आहार ही इन रोगियों के लिए सर्वोत्तम होगा।

उपयुक्त आहार संबंधी निर्देश निम्नलिखित हैं :

अनाज	400 ग्रा.
दालें	50 ग्रा.
जड़ और मूलकंद	100 ग्रा.
हरी पत्तेदार सब्ज़ियाँ	200 ग्रा.

अन्य सब्जियाँ	200 ग्रा.
अंडे/पनीर	2/60 ग्रा.
फल	200 ग्रा.
दूध और दूध से बने पदार्थ	1 लीटर
वसा और तेल	25 ग्रा.
चीनी	50 ग्रा.
चाय या काफी	7/15 ग्रा.

अस्पतालों में दिए जाने-वाले इस आहार में 100 ग्रा. वसा–युक्त दूध पाउडर भी शामिल करके इसे और अधिक पौष्टिक बना सकते हैं। आहार में परिवर्तन कैसे किया जाए यह समुदाय के स्तर पर नियत करने के लिए, उपयोगी है। कार्बोज़ और प्रोटीन के स्रोतों पर बल दिया गया है, इस बात पर ध्यान दें।

इस बात पर विशेष बल दिया जाना चाहिए कि तपेदिक के रोगियों की पोषण संबंधी आवश्यकताएँ कुछ विशेष होती हैं। तपेदिक से हुए घावों को जल्दी भरने के लिए कैल्शियम की जरूरत होती है। इस लिए दूध पीना बहुत जरूरी है। इसके अतिरिक्त कैरोटिन का विटामिन ए में रूपांतरण भी ठीक से नहीं होता। अत: ऐसा आहार दिया जाना चाहिए, जिसमें पूर्वनिर्मित विटामिन ए (रेटीनोल) अधिक से अधिक प्राप्त हो। विटामिन ए के पूरक देना लाभदायक होगा। इस रोग में अक्सर विटामिन सी या एसकोर्बिक अम्ल की भी कमी हो जाती है।

दवाओं द्वारा उपचार के कारण भी कुछ समस्याएं पैदा हो जाती है। आइसोनियाजिड (Isoniazid) विटामिन बी$_6$ प्रतिरोधी है। इसका अर्थ यह है कि आइसोनियाजिड के साथ विटामिन बी$_6$ पूरक या गोलियाँ अवश्य देनी चाहिए।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित स्थितियों में दिए जाने वाले आहार की महत्वपूर्ण विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

क) टायफाइड

....

....

....

....

ख) तपेदिक

....

....

....

....

[illegible] आपको संक्रमणों में आहार व्यवस्था के बारे में संक्षेप में कुछ बतायेंगे। जिन सिद्धांतों की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं वे बुखार से संबंधित संक्रमणों में भी लागू होंगे। संक्रमणों के उपचार और शीघ्र स्वास्थ्यलाभ पाने के लिए शरीर के ऊतकों का शीघ्र स्वस्थ होना एक मुख्य उद्देश्य होता है। इसके लिए उच्च कोटि के प्रोटीन की आवश्यकता होती है। शरीर निर्माण के कार्य के लिए प्रोटीन को मुक्त करने के लिए कार्बोज़ भी जरूर दिए जाने चाहिए। विटामिन पूरक देना भी प्राय: आवश्यक ही होता है। तरल पदार्थों और खनिजों जैसे पोटैशियम, मैग्नीशियम और फ़ास्फ़ोरस को भी पर्याप्त मात्रा में लेना जरूरी हैं।

9.5 हृदय धमनी रोग और मधुमेह में आहार व्यवस्था के सिद्धांत

पहले हम लोगों का यह विचार था कि हृदय धमनी रोग और मधुमेह जैसे रोग केवल पश्चिम में ही होते हैं, भारत में नहीं । परन्तु अब हम ऐसा नहीं सोचते । पिछले दो या तीन दशकों में इन बीमारियों की घटनाएं निरंतर बढ़ रही है । अत: समुदाय शिक्षा के कार्यक्रमों में हम इनकी अवहेलना नहीं कर सकते ।

जैसा कि आप खंड 5, पाठ्यक्रम 1 में पढ़ चुके हैं, ये रोग समृद्ध वर्ग के लोगों में अधिक पाए जाते हैं, जो अधिक वसा और चीनी वाले आहारों का सेवन करते हैं, व उनको खरीदने की क्षमता रखते हैं । आहार व्यवस्था के अधिकांश सिद्धांतों को खंड 5 की इकाई 21 (पाठ्यक्रम 1) में हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं । यहाँ आ कर यह उपयोगी होगा कि आप उस इकाई को फिर से पढ़ लें ।

हम पहले बता चुके हैं कि अपर्याप्त आहार (poor diet) इन रोगों के कई कारणों में से केवल एक कारण है (यहां हमने अपर्याप्त शब्द का प्रयोग इसलिए किया है क्योंकि बहुत ज्यादा खाना भी अपर्याप्त आहार माना जायगा)। अगर ये बीमारियाँ हो जाएं तो इनके नियंत्रण के लिए आहार व्यवस्था एक महत्वपूर्ण साधन है । जैसा कि आप जानते ही हैं मधुमेह और हृदय धमनी रोग दोनों ही रोगों का कोई स्थायी उपचार नहीं है। ये रोग जीवनपर्यन्त बने रहते हैं । अत: आहार व्यवस्था आवश्यक हो जाती है ।

आगे होने वाली चर्चा में आप देखेंगे कि हमने अस्पताल आहारों (bospital diets) का उल्लेख किया है। हृदय धमनी रोग के गम्भीर मामलों में दिल का दौरा या तकनीकी भाषा में कहें तो हृदयपात में रोगी को अस्पताल में दाखिल करना अनिवार्य हो जाता है । जिन रोगियों का मधुमेह नियंत्रण में नहीं आता उनको भी प्राय: गंभीर समस्याओं के कारण अस्पताल में भरती कराना पड़ता है । ऐसे मामलों में रोगी व उसके रिश्तेदारों का आहार चिकित्सा के स्वरूप को जानना जरूरी है । जब रोगी घर वापस आता है तब उसके आहार में किस तरह के परिवर्तन किए जाएं यह जानना भी उतना ही आवश्यक है ।

इस भाग को पढ़ते समय आप उन महत्वपूर्ण बातों को नोट करते जायें, जिन्हें आप अपने समुदाय में काम करते समय अन्य सदस्यों को बताना चाहेंगे ।

हृदय धमनी रोग (Coronary Heart Disease: सी.एच.डी.)

उन लोगों को, जो अत्यधिक वसा (विशेषत: संतृप्त वसा) तथा कोलेस्ट्रौल से भरपूर खाद्य पदार्थ खाते हैं, हृद्वाहिका तंत्र (Cardiovascular system) के रोग होने का खतरा अधिक होता है। तथापि इन समस्याओं के मूल में कई कारण होते हैं, जिनमें से आहार भी एक है । रोग प्रक्रिया के फलस्वरूप वसीय पदार्थ जैसे कोलेस्ट्रौल यौगिक जिन्हें, एस्टर, कोलेस्ट्रौल और ट्राइग्लिसराइड के नाम से जाना जाता है, धमनियों की अंदरूनी दीवारों पर जमा हो जाते हैं । वसीय पदार्थों का यह जमाव बढ़ता रहता है और बढ़ते बढ़ते अवकोशिका (Lumen) को थोड़ा या संपूर्ण रूप से अवरुद्ध (block) कर देता है । यह प्रक्रिया ऐथिरोस्क्लेरोसिस कहलाती है और इसी की वजह से हृदयपात (myocardial infarction), हृदयशूल (angina pectoris) (दोनों ही हृदय धमनी रोग के प्रकार) और प्रमस्तिष्कवाहिका (cerebrovascular) दुर्घटनाएं जैसे आघात (strokes) होते हैं ।

जिन समस्याओं पर हम गहराई से विचार करेंगे वे हैं :

- हृदय धमनी रोग और अतिलिपिडेमिआ (Hyperlipidaemias)
- उच्च रक्तचाप (Hypertension)

सी.एच.डी. या हृद्-धमनी रोगों (अर्थात् हृदयशूल और हृदयपात जैसी समस्याऐं) का संबंध कई रोगियों में कोलेस्ट्रौल के उच्च स्तर और / या रक्त में ट्राइग्लिसराइड के उच्च स्तर से होता है। यह अतिलिपिडेमिआ कहलाता है । इसके अलावा यह भी देखा गया है कि कई लोगों में लिपोप्रोटीन (lipoprotein) (लिपिड + प्रोटीन मिश्रण) रूपों का परस्पर संतुलन हृदयधमनी रोगों की उत्पत्ति को प्रभावित करता है। क्या आपने इन लिपोप्रोटीनों के बारे में पढ़ा है ? वास्तव में ये लिपोप्रोटीन रक्त में परिसंवहन प्रणाली बनाते हैं जिसके द्वारा लिपिड जैसे कोलेस्ट्रौल और ट्राइग्लिसराइड शरीर के विभिन्न हिस्सों तक पहुँचाए जाते हैं । लिपोप्रोटीनों के कुछ रूप जैसे कम घनत्व वाले लिपोप्रोटीन (Low density lipoprotein) यानी की एल.डी.एल. इस प्रक्रिया में खलनायक के समान कार्य करते हैं । असल में तो ये ऐथिरोस्कलेरोसिस को बढ़ाते हैं । परन्तु उच्च घनत्व वाले लिपोप्रोटीन (High density lipoprotein) धमनियों में प्रतिकूल परिवर्तन होने से रोकने में सहायता करते हैं ।

क्या आपने उपरोक्त चर्चा पर पूरा ध्यान दिया है ? इस सूचना के आधार पर हृदयशूल या हृदयपात के रोगियों को उनके आहार में क्या परिवर्तन लाया जाय इस के संबंध में हम क्या राय दें, क्या आप बता सकेंगे ?

सामान्यत: इस तरह की व दूसरी तरह की हृदयवाहिका विसंगतियों की आहार चिकित्सा, चार सरल नियमों पर आधारित होती है, ये हैं :

1) रोगी को भोजन की उतनी ही मात्रा दी जाय जिससे उसका वजन बना रहे । वजन का बढ़ना खतरनाक है । यदि रोगी का वज़न ज्यादा है तो उसे कम कैलोरी युक्त आहार बताऐं

2) सरलता से पचने वाले खाद्य पदार्थों को ही व्यंजन सूची में शामिल करें

3) चाय, कॉफी और कोको (cocoa) जैसे उद्दीपक (stimulants) को देना बंद कर दें

4. सोडियम सीमित मात्रा में दें । यदि रोगी को शोथ (oedema) है तो सोडियम अंतग्रहण बिल्कुल बंद कर दें ।

हृदय रोगी (Cardiac patient) के लिए यह जरूरी है कि वह भोजन की नई पद्धतियों को स्वीकार करना सीखें । अधिकांश केसों में तो हमेशा केवल कम वसा वाले आहार ही लेने चाहिए । यह प्राय: उन रोगियों के लिए कठिन काम है जो यह सोचते हैं कि "अच्छे भोजन" के बिना जिन्दगी बेमजा है अस्पताल में देखभाल के मुख्य उद्देश्यों को स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है । जब आप किसी हृदय रोगी से बातचीत करें तो उसे यह बताना याद रखें कि उसे जो आहार बताया गया है उसके द्वारा :

- उसके हृदय को आराम मिलेगा, जिसकी उसे बहुत जरूरत है
- उसके शरीर में द्रव्य या पानी का संचय (अर्थात् शोथ) की रोकथाम या निराकरण होगा
- अच्छा पोषण बना रहेगा ।

यह रोगी को आहार व्यवस्था के उपायों की स्वीकृति के लिए प्रोत्साहन और विश्वास दिलाने में सहायक होगा ।

हम पहले ही बता चुके हैं कि मोटापा और अधिक वजन का होना हृदय के लिए अच्छा नहीं है। आप कल्पना कर सकते हैं कि यह हृदय रोगी के लिए कितनी जरूरी बात है। निम्नलिखित सूची में वे कारण दिए गए हैं जिनके द्वारा यह पता चलता है कि मोटापे का होना हृदय रोगी के लिए क्यो ठीक नहीं है :

- जब शरीर को अतिरिक्त भार उठाना और ढोना पड़ता है तो हृदय को ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है
- हृदय की मांसपेशी में वसा के जमाव से इन पेशियों की कार्यक्षमता में कमी आ जाती है
- उदर पर चढ़े मोटापे के कारण मध्यपट (डायाफ्राम) की गति में व्यवधान होता है और इसके कारण हृदय की मुक्त क्रिया में भी बाधा आती है ।

आइए हृद्वाहिका संवहनी विसंगतियों की आहार व्यवस्था पर अपनी चर्चा की ओर लौटें ।

हृदयपात की तीव्र अवस्था में, स्वास्थ्य सेवाओं के महानिदेशालय (Directorate General of Health Services – डी.जी.एच.एस.) द्वारा विनिर्दिष्ट, मानक अस्पताल आहार के लिए दिए गए निर्देशों के अनुसार, निम्नलिखित आहार प्रस्तावित किया गया है :

क) 1000 किलो कैलोरी प्रदान करने वाले तरल आहार

दूध और दूध से बने पदार्थ	730 मि.ली.
अंडे का सफेद भाग	एक
फल (रस निकालने के लिए)	200 ग्रा.
सूप के लिए सब्जियाँ	200 ग्रा.
अनाज (दलिया, ब्रैड के लिए)	150 ग्रा.
चीनी	20 ग्रा.
तेल (असंतृप्त)	10 ग्रा.

ऐसे आहार की मुख्य विशेषताएं क्या है ? जी हां आप सही हैं। इस आहार की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :

- कॉलेस्ट्रॉल कम मात्रा में पाया जाता है
- वसा कम मात्रा में पाया जाता है
- सोडियम सीमित मात्रा में पाया जाता है, और
- कैलोरी कम मात्रा में पाई जाती है ।

क्या आप बता सकते हैं कि भोजन की आवृत्ति क्या होनी चाहिए ? शरीर पर तनाव कम पड़े, इसके लिए यह आवश्यक है कि तरल आहार बार बार दिए जाएें । गंभीर हृदयपात में आहार की

निम्नलिखित सारिणी अपनाई जानी चाहिए :

1 से 3 दिन तक : छना तरल आहार, जिसमें फलों का रस, नारियल पानी और ग्लूकोज़ मिश्रित जौ का पानी हों ।

3 से 6 दिन तक : कैरल (Karell) आहार अर्थात् बराबर हिस्सों में चार बार दिया गया 800 मि.ली. दूध अर्थात् हर चार घंटे पर 200 मि.ली. दूध (यह तब ही दिया जाना चाहिए अगर रोगी दूध पचा सकता हो और दूध पीने से उसको पेट फूलने की तकलीफ न हो) ।

7 से 10 वें दिन तक : अर्ध तरल आहार जिससे 800 - 1000 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती हो ।

11 से 14 वे दिन तक : अर्ध ठोस आहार जिससे 1200 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती हो ।

यह आहार उस समय उपयुक्त है जब रोगी की हालत कुछ स्थिर हो गई हो और प्रारंभिक गंभीर अवस्था टल चुकी हो ।

जब रोगी की हालत में सुधार दिखाई दे तब उसे अनुरक्षण आहार दिया जाता है ।

ख) अनुरक्षण आहार - 1800 किलो कैलोरी प्रदान

दूध और दूध से बने पदार्थ	750 मि. ली.
अंडे का सफेद भाग	एक
पनीर/मांस/चिकन	30/50 ग्रा.
फल	200 ग्रा.
दाल	25 ग्रा.
सब्जियाँ	400 ग्रा.
अनाज	200 ग्रा.
चीनी	20 ग्रा.
तेल (असंतृप्त)	15 ग्रा.

यह ध्यान रखना चाहिए कि नमक और ऐसे खाद्य पदार्थ जिनमें नमक या बेकिंग पाउडर पड़ा हो, रोगी को न दिये जाएं ।

जब रोगी अस्पताल से घर वापस आ जाए तो उसे इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसका आहार कम वसा वाला हो और यदि कुछ समस्याएं अभी भी जारी हों तो उसे सोडियम और कैलोरी का पूर्ण अंतग्रहण आवश्यकतानुसार कम कर देना चाहिए । जैसा कि नीचे दी गई सूची में बताया गया है, कोलेस्ट्रोल के स्रोत जैसे कि अंडे का पीला भाग और ग्रंथिल मांस (glandular meat) आदि खाना वर्जित है ।

वर्जित खाद्य पदार्थ

- ग्रंथिल मांस जैसे गुर्दे, यकृत, मस्तिष्क
- मलाई युक्त दूध, क्रीम, आइसक्रीम, खोआ और मलाइयुक्त दूध से बने अन्य पदार्थ

- मक्खन, घी, हाइड्रोजनीकृत वसा, नारियल का तेल, ताड़ का तेल
- अंडे का पीला भाग, संसाधित चीज़
- सभी तरह की मिठाईयां, केक, पेस्ट्री, गिरीदार फल जैसे बादाम, अखरोट, मूंगफली और नारियल
- तले हुए खाद्य पदार्थ
- कोको और चौकलेट-युक्त पेय पदार्थ
- सभी वातित जल
- अल्कोहल युक्त पेय पदार्थ और दूसरे उत्पाद
- ज्यादा सोडियम वाले खाद्य पदार्थ (यदि शोथ है तो) उदाहरणार्थ ब्रेड, बिस्कुट, अंडे, केक, पेस्ट्री, डिब्बा बंद सब्जियाँ, सूप और फल, नमकयुक्त या धूमित मछली, चिकन, चीज़, नमकीन गरियां, मूंगफली-युक्त मक्खन, नमकीन अचार, समोसा और मसालेदार व नमकीन पदार्थ।

हमने अभी-अभी उल्लेख किया है कि शोथ के कारण या शरीर द्वारा सोडियम को सामान्य रूप से प्रयोग करने की असमर्थता के कारण तरल पदार्थों के अवरोधन की स्थिति में सोडियम अंतग्रहण कम करना जरूरी होता है। यद्यपि सोडियम कम करने की मात्रा शोथ की स्थिति पर निर्भर करेगी यानी कि शोथ साधारण, मध्य या गंभीर, किस स्थिति का है। इसके बारे में विस्तार से हम उच्च रक्तचाप संबंधी आहारों की चर्चा के समय बतायेंगे। इस के अतिरिक्त रेशेदार पदार्थों पर विशेष ज़ोर देना चाहिए। यह देखा गया है कि रेशेदार पदार्थ रक्त में लिपिडो की मात्रा को कम करते हैं।

हृद्धमनी रोग की आहार व्यवस्था की कुंजी है कम कोलेस्ट्रोल, कम वसा व अधिक रेशे वाला आहार और अगर जरूरी हो तो सोडियम पर प्रतिबंध।

जैसा की आप जानते ही हैं उच्च रक्तचाप का अर्थ है अति रक्तदाब। यह देखा गया है कि अति रक्तदाब (high blood pressure) के रोगी यदि कम सोडियम वाले आहार लें तो उन्हें लाभ होता है। ''कम'' शब्द से हमारा क्या तात्पर्य है ? एक सामान्य आहार में सोडियम की मात्रा 3 से 6 ग्राम (3000 मि.ग्रा. से 6000 मि.ग्रा. सोडियम) होती है। कम सोडियम वाले आहार में सोडियम की मात्रा 200 से 300 मि.ग्रा. से शुरू हो कर 2000 - 3000 मि.ग्रा. तक हो सकती हैं। यह मात्रा इस पर निर्भर करती है कि रोगी के सोडियम अंतग्रहण पर कितना प्रतिबंध लगाया गया है। अब जरा यह सोचिए कि क्या कोई दूसरे रोग भी है जिनमें सोडियम पर प्रतिबंध लगाने के बारे में हम पहले बता चुके हैं। जी हाँ, ये रोग है यकृत और गुर्दों की विसंगतियाँ और हृदयपात। नीचे दिए गए चार्ट में विविध प्रकार की विसंगतियों के लिए निर्धारित सोडियम के स्तर को विशिष्ट रूप में बताया गया है।

सोडियम प्रतिबंध की श्रेणी	सोडियम की अनुमत मात्रा	आहार का वर्णन	रोग स्थिति
अत्यधिक (Extreme)	200-300	बिना नमक के खाना बनाना, बहुत कम सोडियम वाले खाद्य पदार्थों का चयन	जलोदर (ascites) के साथ यकृत का सिरोसिस; गंभीर संकुलनशील हृदय पात (congestive heart failure)
गंभीर	500-700	बिना नमक के खाना बनाना, कम सोडियम वाले खाद्य पदार्थों का चयन	गंभीर संकुलन-शील हृदय पात, रोगी जो डायलैसिस पर नहीं है परन्तु उन्हें वृक्क रोग व जलीय सूजन (oedema) है। जलोदर (उदर में द्रव्य) सहित सिरोसिस

मध्यम	1000-1500	बिना नमक का खाना बनाना, नमक और नमकीन ब्रैड व मक्खन का नपी तुली मात्रा में प्रयोग	अति रक्तदाब की सीमांत रेखा वाले रोगी, परिवार में अतिरक्तदाब के रोग की प्रवृति का होना
मंद	2000-3000	पकाते समय थोड़े नमक का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु सभी नमकीन आहारों पर पाबंदी। आहार में ऊपर से नमक न डालें	हृदय और वृक्क रोगों में अनुरक्षण आहार

क्या आपने नमक के प्रतिबंध पर ध्यान दिया ? हमारे आहार में सोडियम का सबसे बड़ा स्रोत ऊपर से डाले जाने वाला नमक ही है ? इसकी वजह ये है कि यह एक सोडियम मिश्रण है यानी कि सोडियम क्लोराइड। नमक के प्रत्येक ग्राम में लगभग 400 मि.ग्रा. सोडियम की मात्रा होती है। चाय के एक चम्मच के बराबर नमक में 2000 मि.ग्रा. तक सोडियम होता है।

एक महत्वपूर्ण बात जो याद रखनी चाहिए वह यह है कि किसी भी आहार में सोडियम की मात्रा का संबंध केवल ऊपर से डाले जाने वाले नमक से ही नहीं है। वास्तव में तो सोडियम खाद्य पदार्थों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है और साथ ही साथ खाद्य पदार्थों को बनाने या संरक्षित करने के लिए एक घटक के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। सुविधाजनक खाद्य पदार्थों में तो सोडियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है अत: डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ, तात्क्षणिक मिश्र, पहले से तैयार आहार, अचार, चटनियां, मुरब्बे, सौस सभी में सोडियम बहुतायत में होता है। बेकिंग पाउडर युक्त आहारों में सोडियम बहुतायत से पाया जाता है, क्योंकि बेकिंग पाउडर भी सोडियम लवण ही है। केवल एकमात्र खाद्य पदार्थ ही सोडियम के स्रोत नही हैं। बाजार में अनेकों दवाइयां भी सोडियम लवण के रूप में उपलब्ध है। अत: यह जरूरी है कि हम सोडियम के इन अप्रत्यक्ष स्रोतों को भी ध्यान में रखें। क्या आप बिना नमक का भोजन खाने की कल्पना कर सकते हैं ? एक बार कोशिश करके देखें। कम सोडियम वाले भोजन में स्वाद लाना बहुत मुश्किल है। इसका एक उपाय खाद्य पदार्थों में हल्के मसालों और जड़ीबूटियों जैसे, सौंफ, तेजपत्ता, इलायची, लौंग, दालचीनी, जीरा, करी पत्ता, लहसुन, अदरक, नीबू का रस, जावित्री, पोदीना, पीपल, केसर, तिल, सिरका और अजमोद का प्रयोग है।

यहाँ आपकी मदद के लिए सोडियम की प्रचुरता वाले खाद्य और खाद्य पदार्थों की जाँच सूची दी जा रही है।

खाद्य		
दूध	मुर्गी	शलगम
अंडे	मछली	पालक
चीज़	चुकंदर	
मांस	गाजर	

खाद्य पदार्थ

बेकिंग पाउडर, तात्क्षणिक मिश्रण, गिरीदार फल, नमकीन मूंगफली, नमकीन मक्खन, डिब्बाबंद सूप; सोडियम बेन्जोइट से परिरक्षित जैलियां	अचार और अन्य स्वादिष्ट पदार्थ तैयार सरसों, आलू के चिप्स चीज़, मायोनीज, पका हुआ मांस, कवच प्राणी (Shell fish)

यदि रोगी को मूत्रल औषधियाँ (diuretics) दी जा रहीं हैं तो उसे अधिक पोटैशियम युक्त आहार, जैसे फल आदि अधिक देने चाहिए।

ऐसे मामलों में जहाँ आहार संबंधी उपायों द्वारा गंभीर अतिरक्तदाब में कोई सुधार नहीं नज़र आता, कैम्पनर आहार (Kempner Diet) बताया जाता है । इस आहार में चावल, फल और चीनी शामिल हैं । कैम्पनर आहार में कोलेस्ट्रोल बिल्कुल नहीं होता, वसा की मात्रा कुल 5 ग्रा. और कार्बोज़ की मात्रा काफी अधिक व सोडियम कम मात्रा में होता है । इस आहार में कई पोषक तत्वों की कमी होती है और कुछ दिनों बाद जब रक्तचाप गिरने लगता है, इसे देना बंद कर दिया जाता है ।

> अति रक्तदाब के रोगियों के लिए कम सोडियम व कम कोलेस्ट्रोल युक्त आहार उपयुक्त होगा ।

बोध प्रश्न 4

1) निम्नलिखित केस अध्ययन को ध्यानपूर्वक पढ़िए ।

एक सप्ताह पहले श्री मुरली को एक अस्पताल के गहन देखभाल कक्ष (Intensive Care Unit) में हृद्पात रोग के कारण भरती किया गया । उनकी उम्र 40 वर्ष है और उनका वजन अपने सामान्य वजन से 10 कि.ग्रा. ज्यादा है । उनकी नौकरी ऐसी है कि कार्य व्यापार के सिलसिले में उन्हें दोपहर व शाम का भोजन बाहर ही करना पड़ता है और वे कॉफी पीना पसंद करते हैं । जिस समय श्री मुरली को गहन देखभाल कक्ष में भरती किया गया उनका रक्तचाप 166/100 था परन्तु बाद में वह 140/88 पर स्थिर हो गया । उनके रक्त में लिपिड कोलेस्ट्रोल और ट्राइग्लिसराइड की मात्रा ज्यादा पाई गई । श्री मुरली अपनी बीमारी को पाचन की समस्या समझ कर एन्टासिड की गोलियों द्वारा स्वयं ही अपना इलाज कर रहे थे ।

अब निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए ।

क) रोग की तीव्र अवस्था निकल जाने पर श्री मुरली को किस प्रकार का आहार बताया जाना चाहिए ।

....

....

....

....

....

ख) जब वह घर वापस आएं तो उन्हें अपनी जीवन शैली, आहार पद्धति और एन्टासिड जैसी दवाईयों के प्रयोग के संबंध में जो परिवर्तन करने चाहिए उन पर टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित का मिलान कीजिए ।

आहार	रोग
1) कैम्पनेर	क) पौष्टिक व्रण (Peptic ulcer)
2) कैरल	ख) हृद्पात् (Cardiac failure)
3) सिप्पी	ग) अति रक्तदान
	घ) हृद्पात (myocardial infarction)

3) सोडियम रहित आहार बिल्कुल स्वादहीन होता है । एक ज़ायकेदार स्वादिष्ट अल्पाहार को बनाने के लिए कुछ सुवास बताइए ।

....

....

....

....

....

मधुमेह (Diabetes)

अब हम मधुमेह में आहार व्यवस्था के बारे में कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे । आप यह तो जानते ही हैं कि इन्सुलिन अग्नाशय की लागरहेन्स दीपिकाओं (Islets of Langerhans) द्वारा स्रावित होता है । कार्बोज के चयापचय में इन्सुलिन की एक महत्वपूर्ण भूमिका है ।

इन्सुलिन की मदद से ग्लूकोज़ कोशिकाओं में जाता है और कोशिकाऐं इससे ऊर्जा का उत्पादन करती हैं। मधुमेह होने पर यह प्रमुख हारमोन या तो बहुत कम मात्रा में स्रावित होता है या बिल्कुल नहीं होता (इन्सुलिन पर आश्रित मधुमेह), या मामूली मात्रा में और कभी-कभी बड़ी मात्रा में भी स्रावित होता है, परन्तु उसका यह रूप प्रभावी नहीं होता (इन्सुलिन पर आश्रित न होने वाला मधुमेह) । आप शायद यह जानते ही होंगे कि अगर मधुमेह को नियंत्रित न किया जाय तो यह घातक हो सकता है । अगर थोड़ी सावधानी रखी जाए व जीवनशैली अनुशासित रहे तो मधुमेह होने के बावजूद एक सामान्य जीवन जीना, करीब करीब संभव है ।

मधुमेह के मामले में यह महत्वपूर्ण है कि लक्षणों और नैदानिक परिणामों को रोग की प्रक्रिया से ही सम्बद्ध किया जाय । रोग के लक्षणों, नैदानिक परिणामों और उनके होने के कारणों को नीचे संक्षेप में बताया जा रहा है ।

लक्षण

- बहुमूत्रता (Polyuria) : जब गुर्दों में ग्लूकोज़ अत्यधिक मात्रा में पहुँचने लगता है तब बार-बार और अपसामान्य रूप से अधिक मात्रा में मूत्र उत्पन्न होने लगता है ।
- बहुतृषा (Polydipsia) : बहुमूत्रता के कारण तरल पदार्थों की कमी हो जाती है और इस कारण अत्यधिक प्यास लगती है ।
- निर्जलीकरण : जब बहुमूत्रता हो और तरल पदार्थों का प्रतिस्थापन पर्याप्त न हो तब शरीर शुष्क हो जाता है।
- अतिक्षुधा (Polyphagia) : जब कार्बोज़ का चयापचय सही ढंग से नहीं होता तो शरीर की कोशिकाओं में पोषण की कमी हो जाती है । इसके परिणामस्वरूप अत्यधिक खाने पर भी वे कोशिकाएं "अतृप्त" रहती हैं क्योंकि ऐसा व्यक्ति खाता तो लगातार रहता है पर उसका शरीर संतुष्टि का अनुभव नहीं करता ।
- सामान्य कमज़ोरी और वज़न में कमी : कार्बोज़, ऊर्जा के मुख्य स्रोत हैं । जब उनका उपयोग नहीं हो पाता तब ऊर्जा प्राप्ति के लिए वसा का भंजन बढ़ जाता है । प्राय: इससे भी काम नहीं चल पाता और प्रोटीनों – यहाँ तक कि ऊतक प्रोटीनों—का भंजन होने लग जाता है जिससे कि ऊर्जा प्राप्त हो ।
- ऊतकों की घाव भरने की क्षमता में कमी : रक्त में शर्करा की अपसामान्य रूप से बढ़ी मात्रा जीवाणुओं के पनपने के लिए बहुत अच्छी स्थिति प्रदान करती हैं । इसके अतिरिक्त, कोशिकाओं में ऊर्जा की कमी भी रहती है और वे संक्रमण से जूझने या क्षत ऊतकों की मरम्मत के लिए उपयुक्त रूप से कार्य नहीं कर पाती ।
- विपोषक परिवर्तन (Degenerative Changes) : प्रान्तिक तन्त्रिका शोथ (Peripheral Neuritis) दृष्टिपटल शोथ (Retinitis), हृदय धमनी रोग, अनियंत्रित मधुमेह में एथिरोस्क्लेरोसिस ।
- कीटोनमयता (Ketosis) : वसा के अपूर्ण भंजन के कारण, वसा चयापचय के सह उत्पाद जिन्हें कीटोन पदार्थ कहते हैं, रक्त में जमा हो जाते हैं । ऐसा तब होता है जब कार्बोज़ों को उपयोग में न ला सकने की अक्षमता के कारण, वसा बड़ी मात्रा में गतिशील (mobilization) होने लग जाते हैं । शरीर में कीटोनों को सहन करने की क्षमता सीमित है और कीटोनों की अधिकता से समूर्च्छा (Coma) हो जाती है ।

नैदानिक जाँच (Clinical Findings)

- अतिग्लूकोसरक्तता (Hyperglycaemia) : रक्तगूलोकोज़ का अधिक होना अर्थात उपवास कि स्थिति में रक्त की जाँच होने पर प्रति 100 मि.ली. रक्त में 120 मि.ग्रा. की मात्रा से ग्लूकोज़ का ज्यादा होना ।
- ग्लूकोसमेह (glucosuria) : मूत्र में शर्करा (ग्लूकोज़) की उपस्थिति ।
- कीटोनमेह (कीटोन्यूरीया) : मूत्र द्वारा कीटोन पदार्थों का उत्सर्जन ।

अभी हमने मधुमेह में होने वाली मुख्य समस्याओं की चर्चा की है । इसके द्वारा आपको आहार संबंधी आवश्यक उपायों को समझने में सहायता मिलेगी ।

आहार व्यवस्था

मधुमेह का उपचार निम्न प्रकारों से हो सकता है :

- केवल आहार द्वारा या
- आहार + मुखीय अवग्लूकोज़ रक्तीय औषधि (oral hypoglycaemic drug)
- आहार + इन्सुलिन

शायद आप समझ ही गए होंगे कि मधुमेह के उपचार में आहार एक मुख्य स्तम्भ है । मधुमेह की आहार व्यवस्था के उद्देश्य हैं :

- अधिक से अधिक पोषण दे कर और उसका पालन करके रोगी की सम्पूर्ण स्वास्थ्य स्थिति में सुधार लाना
- आदर्श शरीर भार की प्राप्ति और उसको बनाए रखना
- बच्चे की सामान्य शारीरिक वृद्धि में सहायक होना, गर्भावस्था एवं स्तनपान (lactation) के दौरान पर्याप्त पोषण देना
- रक्त शर्करा का स्तर सामान्य शरीरक्रियात्मक स्तर के निकट तक यथासंभव बनाए रखना
- मधुमेह के कारण होने वाली दीर्घकालीन समस्याओं (जैसे : हृद्‌हिका, वृक्कीय, रेटीनल और तंत्रिकीय (Neurological) आदि) की रोकथाम व इन समस्याओं के विकसित होने में विलम्ब करना ।
- मधुमेह और उससे संबंधित रोगों की समस्याओं की रोकथाम और उपचार के लिए आहार में आवश्यक रूपांतर करना ।

संक्षेप में, मधुमेह में आहार देने की मुख्य विशेषताएँ यह हैं; उम्र, लिंग और सक्रियता के स्तर के आधार पर शरीर के उचित भार की प्राप्ति और अनुरक्षण; सरल कार्बोज़ (शर्करा) के स्थान पर जटिल कार्बोज़ों (स्टार्च) का अंतग्रहण : आहार में रेशे की अधिक मात्रा और संतृप्त वसाओं के स्थान पर असंतृप्त वसा का अंतग्रहण ।

इस दिशा में पहला चरण है, निर्धारित कैलोरियों के अंतग्रहण की गणना । निम्नलिखित फार्मूला उपयोगी हैं और एक विशेष उम्र, लिंग और सक्रियता स्तर के लिए उचित वजन पर आधारित है ।

अल्पश्रमिक (Sedentary worker)	:	उचित भार (कि.ग्रा.) × 30 कि. कैलोरी
मध्यम श्रमिक (Moderate Workers)	:	उचित भार (कि.ग्रा.) × 40 कि.कैलोरी
भारी श्रम करने वाले लोगों के लिए (Heavy Workers)	:	उचित भार (कि.ग्रा.) × 50 कि.कैलोरी

40 वर्ष की आयु से ऊपर वाले लोगों के लिए कैलोरी अंतग्रहण में कमी करनी होती है जो निम्नलिखित प्रणाली से की जा सकती है :

40 - 49 वर्ष में	5 प्रतिशत कमी
50 - 59 वर्ष में	10 प्रतिशत कमी
60 - 69 वर्ष में	20 प्रतिशत कमी
70 वर्ष से ऊपर	30 प्रतिशत कमी

इसके अतिरिक्त, यदि कोई 2 सप्ताह में 1 कि.ग्रा. की दर से अपना वजन कम करना चाहता है तो उसे अपने दैनिक आहार में 500 किलो कैलोरी की कमी कर देनी चाहिए। तथापि यह बात हमेशा याद रखें कि ऊर्जा अंतग्रहण में कमी करते समय महिलाओं को 1200 किलो कैलोरी और पुरुषों को 1500 किलो कैलोरी से कम अंतग्रहण कभी नहीं करना चाहिए।

यहाँ, डी.जी.एच.एस. द्वारा निर्धारित मानक अस्पताल आहार के निर्देशों के अनुसार, मधुमेह के रोगियों के लिए कुछ आहार और उनकी मुख्य बातें बताई जा रही हैं।

	1200 किलो कैलोरी	1500 किलो कैलोरी	1800 किलो कैलोरी	2000 किलो कैलोरी	2500 किलो कैलोरी
अनाज और मोटे अनाज जैसे ज्वार बाजरा आदि	125 ग्रा.	175 ग्रा.	225 ग्रा.	225 ग्रा.	350 ग्रा.
दालें और फलियाँ	50 ग्रा.	50 ग्रा.	50 ग्रा.	75 ग्रा.	75 ग्रा.
दूध और दूध से बने पदार्थ	500 मि.ली.	500 मि.ली.	750 मि.ली.	750 मि.ली.	750 मि.ली.
हरी पत्तेदार सब्जियाँ	200 ग्रा.	200 ग्रा.	200 ग्रा.	200 ग्रा.	200 ग्रा.
अन्य सब्जियाँ	200 ग्रा.	200 ग्रा.	200 ग्रा.	200 ग्रा.	200 ग्रा.
फल	1 भाग	1 भाग	1 भाग	1 भाग	2 भाग
पनीर/अंडे	30ग्रा./एक	30ग्रा./एक	30ग्रा./एक	30ग्रा./एक	30ग्रा./एक
तेल	10 ग्रा.	15 ग्रा.	15 ग्रा.	20 ग्रा.	25 ग्रा.
चीनी	-	-	-	-	-

भरपूर मात्रा में खाए जाने योग्य खाद्य पदार्थ :

हरी पत्तेदार सब्जियाँ, चिकनाई (oil dressing) रहित सब्जियों का सलाद, नींबू, नींबूपानी, छना सूप।

टिप्पणी :

1) भुने काले चने और मेथी के बीज आहार में शामिल किए जा सकते हैं क्योंकि ये अतिग्लूकोज़ रक्तता (hypoglycaemia) को प्रभावित करते हैं।
2) फल का एक भाग जिससे 10ग्रा. कार्बोज़ की प्राप्ति हो।
3) काली कॉफी या बिना दूध की चाय या जितने दूध की प्रतिदिन अनुमति है,
4) चटनी और बिना तेल के अचार
5) मिर्च और जीरा पानी
6) जामुन, फालसा, रसभरी (Raspberry)

वर्जनीय खाद्य पदार्थ

मृदु पेय (Soft drinks), ऊपर बताए गए पेय पदार्थों के अलावा अन्य सभी पेय पदार्थ, शराब और वाइन, तले हुए खाद्य पदार्थ, चीनी, शहद, जैम, मिठाइयाँ, केक, पेस्ट्री

टिप्पणी : आलू, अरबी, कोलोकेसिया, शतालू, आम, केला सीमित मात्रा में भोजन के विकल्प के तौर पर लिए जा सकते हैं।

बोध प्रश्न 5

1) मधुमेह में आहार व्यवस्था के प्रमुख उद्देश्यों को सूचीबद्ध कीजिए।

....

....

....

....

....

9.6 सारांश

इस इकाई की महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं :

- एक समुदाय शिक्षक के रूप में, रोग में आहार की भूमिका के बारे में लोगों को सूचित करना, आपका काम है।
- पोषणहीनता जन्य विसंगतियों का उपचार अधिक ऊर्जा और प्रोटीन युक्त भोजनों (प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण की स्थिति पी.ई.एम. में) द्वारा या ऐसे पोषक तत्व अनुपूरकों द्वारा किया जाता है जो उच्च मात्रा में किसी विशेष पोषक तत्व की आपूर्ति करते हैं (जैसे विटामिन ए)।
- पोषणहीनता जन्य विसंगतियों जैसे ज्वर और अतिसार से संबंधित समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और आहार में उपयुक्त परिवर्तन किए जाने चाहिए।
- हृद्-धमनी रोग (सी.एच.डी.) से पीड़ित रोगियों व साथ ही साथ ऐसे रोगियों के संबंधियों को जिन्हें इस बीमारी के होने का खतरा है, अपने आहार में कम वसा अंतग्रहण और कोलेस्ट्रोल के स्रोतों को न लेने की सलाह दी जाती है।
- मंद उच्च रक्तचाप में नमक लेने पर रोक लगाने की सलाह दी जाती है। मध्यम और गंभीर मामलों में भोजन में नमक डालने की बिल्कुल मनाही होती है और आहार में सोडियम के स्तरों पर भी नियंत्रण रखा जाता है।
- मधुमेह के रोगियों को कम वसा, अधिक रेशे वाले और चीनी रहित आहार लेने चाहिए। यदि इंसुलिन में या दवाई की मात्रा में पर्याप्त संतुलन किया जा सकता हो और हालत ज्यादा गंभीर न हो केवल तभी चीनी खाने की अनुमति दी जा सकती है।

9.7 शब्दावली

मुखीय अवग्लूकोज रक्तीय औषधि	:	मुँह से दी जाने वाली दवा जो रक्त शर्करा के स्तरों को नीचे लासकती है।
अनुरक्षण आहार	:	किसी बीमारी की तीव्र अवस्था के निकल जाने के बाद रोगी को दिए जाने वाले आहार। जब रोगी को एक स्थिर दशा में बिना स्वास्थ्य में अवनती हुए रखना होता है।

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) "आपके गाँव में बहुत से लोग हैं जो पोषणात्मक हीनताओं से पीड़ित हैं। आप स्वयं एक विशेषज्ञ हैं .... आपने जरूर ध्यान दिया होगा कि किस प्रकार .... , और .... में विटामिन की कमियों के चिन्ह दिखाई दे रहे हैं (उदाहरण के लिए लोगों के नाम लिखिए)। यदि हम दोनों एक वृहद अध्ययन (detailed study) या सर्वे करें तो हमें दूसरी समस्याओं के केस भी मिल सकते हैं। इसलिए मेरा विचार है कि यह अच्छा होगा अगर हम विविध रूपों में, विटामिनों की आपूर्ति रखें। क्या आप सहमत नहीं हैं।"

   यह केवल एक उत्तर है। आप दूसरे विकल्प भी दे सकते हैं।

2) हाँ ! यदि विसंगति पहले से ही, पूरी तरह, स्थापित है और इसके कारण स्थायी दुष्प्रभाव हो गए हैं, तो इन्हें उल्टा नहीं जा सकता, अत: इसका पूर्ण उपचार संभव नहीं है । उदाहरणार्थ, केराटोमेलेशिया की बढ़ी हुई स्थिति के एक रोगी को, विटामिन ए की मात्राएँ देने से हम अंधा होने से नहीं रोक पायेंगे । इसके द्वारा स्थिति को केवल और अधिक बदतर होने से रोका जा सकता है ।

बोध प्रश्न 2

1) अतिसार, ज्वर, कृमि ग्रसन

2) पी.ई.एम. (प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण) से ग्रस्त बच्चे का पूर्ण उपचार पूरी तरह से हो सकता है । तथापि बच्चा उसी पर्यावरण को लौटता है, जहाँ से वह आया था, जहाँ उस रोग के कारक मौजूद हैं, जिनसे वह रोग पैदा हुआ था । बच्चे को यदि पुनर्वास केन्द्र में रहने का अवसर दिया जाए तो इससे माता और बच्चे को समुदाय की स्थितियों के अनुकूल बनने में मदद मिलेगी । नियमित देखभाल द्वारा यह पता चल सकेगा कि बच्चे के स्वास्थ्य का अनुरक्षण हो रहा है और विसंगति को फिर से प्रकट होने से कैसे रोका जा सकता है ।

बोध प्रश्न 3

1) तीव्र अवस्था में पूर्ण तरल, उच्च ऊर्जा, उच्च प्रोटीन युक्त आहार; उल्लाघ (convalescence) में नरम, उच्च ऊर्जा, उच्च प्रोटीन युक्त आहार । जल, विटामिन और खनिजों से युक्त आहार । वसा पर पाबंदी है ।

2) ऊर्जा और प्रोटीन से युक्त आहार । कैल्शियम, विटामिन ए और विटामिन सी के अंतग्रहण पर बल दिया जाना चाहिए।

बोध प्रश्न 4

1) श्री मुरली को अपने वसा अंतग्रहण व ऊर्जा अंतग्रहण में कमी करनी चाहिए और अपना वजन भी कम करना चाहिए। कोलैस्ट्रौल के स्रोतों से बचना चाहिए और नमक पर भी पाबंदी करने की जरूरत है ।

2) व्यापार संबंधी दोपहर और रात्रि के भोजनों में श्री मुरली को कम खाना चाहिए । वह चिकनाई रहित सलाद, वसा, गरिष्ठ सौस रहित मछली और मांस के पकवान खा सकते हैं । उन्हें कई बार थोड़ा थोड़ा खाना चाहिए जिससे अपच की समस्या न हो । हल्की-फुल्की कसरतें जैसे कि पैदल चलना वजन कम करने में सहायक होंगी । एन्टासिड नहीं खाने चाहिए क्योंकि वे सोडियम लवण होते हैं ।

2) (1) —— घ; (2) —— ग; (3) —— क

3) जड़ी बूटियों और मिर्च का मिश्रण प्रयोग करें । अन्य विकल्पों के बारे में भी सोचें ।

बोध प्रश्न 5

1)
- सरल कार्बोज़ों पर पाबंदी, चीनी और चीनी युक्त पदार्थों से बचें ।
- जटिल कार्बोज़ों (स्टार्च) और अधिक रेशे के अंतग्रहण पर बल दें ।
- वसा पर पाबंदी, बहुअसंतृप्त वसा पर बल दें ।
- यदि वजन ज्यादा है, तो शरीर का आदर्श वजन प्राप्त करना बहुत जरूरी है ।
- इन्सुलिन या दवाई की मात्रा के साथ आहार की मात्रा व पद्धति का घनिष्ठ संयोजन करें ।

इकाई 10 गैर पोषणात्मक मूल की विसंगतियों की आहार व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 जठरांत्र मार्ग संबंधी रोग

10.2.1 आमाशय तथा आहार नली (ग्रासिका) की समस्याएँ

10.2.2 क्षुद्रांत (Small Intestine) तथा वृहदंत्र (Colon) संबंधी समस्याएँ

10.2.3 अपावशोषण संलक्षण (Malabsorption Syndrome)

10.3 यकृत, पित्ताशय तथा अग्न्याशय संबंधी विसंगतियां

10.4 जननमूत्रीय तंत्र (Genitourinary System) संबंधी रोग

10.5 पेशीकंकाली तंत्र (Musculoskeletal System) संबंधी रोग

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम खंड परिचय में बता चुके है, यह इकाई वैकल्पिक है। यह इकाई उन पाठकों को रोचक लगेगी, जिनका सम्बन्ध चिकित्सा या पराचिकित्सा (मेडिकल या पैरामेडिकल) विषय क्षेत्र से है । यदि आप डाक्टर या नर्स नहीं भी है तो भी आप इस इकाई को पढ़ सकते हैं । इस इकाई को वैकल्पिक इस लिए बनाया गया है कि इसका सम्बन्ध ऐसी बीमारियों से है, जिनका सामना आपको प्राय: सामुदायिक स्थिति में नहीं करना पड़ता। तथापि, यदि आपको ऐसी किसी स्थिति से निपटना पड़े तो प्रत्येक बीमारी संबंधी प्रमुख समस्याओं के अनुसार आहार व्यवस्था करने के बारे में यहाँ विस्तारपूर्वक ब्यौरा दिया गया है । किन्तु औषध चिकित्सा के बारे में यहां कोई उल्लेख नहीं किया गया है ।

पिछली इकाई में आपने पोषण संबंधी विसंगतियों तथा संबद्ध समस्याओं जैसे अतिसार और ज्वर आदि की स्थिति में आहार प्रबन्ध के बारे में पढ़ा है । अब हम उन रोगों की चर्चा करेंगे, जो प्राय: पोषणात्मक मूल के नहीं होते हैं अर्थात् यह रोग पोषणात्मक कारणों से नहीं होते हैं ।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- जठरांत्र मार्ग, यकृत, पित्ताशय तथा अग्न्याशय की विसंगतियों से संबंधित रोगों, जनमूत्रीय तंत्र और पेशी कंकाली तंत्र से संबंधित रोगों की स्थिति में आहार व्यवस्था के प्रमुख लक्षणों की विवेचना कर सकेगें, और
- एक सामुदायिक शिक्षक के रूप में इन विसंगतियों के बारे में जनसमुदाय को उपयुक्त सूचनाएँ प्रदान करने तथा इन विसंगतियों के नियंत्रण तथा उपचार में आहार व्यवस्था के महत्व के बारे में लोगों को जानकारी देने हेतु अपनी भूमिका की पहचान कर सकेगें ।

10.2 जठरांत्र मार्ग संबंधी रोग

जैसा कि आप जानते ही हैं, जठरांत्र तंत्र की संरचना अनेक उपांगों से मिल कर होती है । इसलिए हम उन बीमारियों की चर्चा करेगें, जो जठरांत्र तंत्र के भाग-विशेष को प्रभावित करती है, जैसे आमाशय तथा ग्रासिका, क्षुद्रांत्र तथा बृहदांत्र । और अंत में हम अपावशोषण संलक्षणों के बारे में बतायेंगे ।

10.2.1 आमाशय तथा आहार नली (ग्रासिका) की समस्याएँ

कृपया नीचे दी गई तालिका को ध्यान से देखें । इसमें प्रत्येक विसंगति से जुड़ी प्रमुख समस्याओं को स्पष्ट किया गया है । प्रत्येक समस्या विशेष के लिए आहार-प्रबन्ध की विशिष्टताएं भी बताई गई हैं । आशा है आपको यह तालिका उपयोगी लगेगी तथा यदि आपके समक्ष इस प्रकार के केस आते हैं तो उनके समाधान के लिए इससे आपको सहायता भी मिल सकेगी ।

विसंगति	प्रमुख समस्या	आहार - व्यवस्था की विशेषताएँ
ग्रासिका शोथ (Oesophagitis)	ग्रासिका भित्ति का सूजन	• नरम/फीका (Bland) तथा रेशा रहित आहार • स्थूल/मोटे व्यक्तियों को वजन कम करना चाहिये । यह समझा जाता है कि अधिक अवरीम वसा, आमाशयिक बहि:सरण (herniation) तथा प्रवाद को बढ़ाती है। • थोड़े-थोड़े समयान्तराल पर हल्का भोजन
हायटस हर्निया (hiatus hernia)	डायफ्राम के ग्रासिका द्वार के माध्यम से आमाशय के एक भाग का बहि:सरण	• प्राय: रेशारहित नरम फीका आहार और भोजन के बीच अल्पाहार देने की सिफारिश की जाती है • कम मात्रा में आहार • सोने से कई घण्टे पहले तक भोजन की मनाही • जो व्यक्ति अधिक मोटे हों, उन्हें वजन कम करना चाहिये
ग्रासिका पश्चवाह (oesophageal reflux)	ग्रासिका में आमाशयिक तत्वों का पश्चवाह	• उच्च प्रोटीनयुक्त आहार • वसायुक्त पदार्थों के सेवन पर पाबंदी • ऐसा भोजन न करें जिससे निचली आहार नली संकरिणल में दवाब कम हो जैसे अल्कोहल, कैफीन, चॉकलेट, वसायुक्त भोजन, पिपरमिन्ट • अम्लीय खाद्य पदार्थों का सेवन न करें। • थोड़ी-थोड़ी मात्रा में कई बार खाएं • अतिभार वाले व्यक्ति अपने वज़न में कमी करें
अशिथिलता (ऐकेलेसिया)	ग्रासिका की गतिशीलता में विसंगति आ जाती है, जिससे निचली ग्रासिका संनरणिका सूजन के कारण निगलते समय सामान्य रूप से विश्राम करना बन्द कर देती है	• अत्यधिक गर्म या बर्फीले पेयजल और पोषक भोजन की मनाही • जिस व्यक्ति का वजन अधिक घट गया हो उसे उच्च ऊर्जा वाला तथा प्रोटीन युक्त आहार दें

ग्रासिका अवरोध (oesophagial obstruction)	ग्रासिका में अवरोध आ जाना	• आंशिक अवरोध : शुरू में तरल आहार दें तथा धीरे-धीरे कम रेशे वाला भोजन देना आरम्भ करें • पूर्ण अवरोध : रोगी को जठरच्छेदन द्वारा आहार दिया जाता है • बार-बार थोड़ा-थोड़ा भोजन दें ।
अपाचन (indigestion)	भोजन को ठीक ढंग से पचा पाने में असमर्थता	• प्रत्येक भोजन वर्ग से आहार का चयन करें • नियमित रूप से थोडी-थोडी मात्रा में भोजन दें ।
जठरशोथ (Gastritis)	आमाशय के श्लेष्मा भाग में सूजन	• तीव्र सूजन : 24-48 घण्टे तक भोजन न दें ताकि आमाशय को आराम मिल सके तथा उलटियाँ आने के कारण जो जलहानि तथा विद्युत अपघट्यों की हानि हुई है उसकी प्रतिपूर्ति हो सके • एक या दो दिन के पश्चात थोड़ा-थोड़ा छना हुआ तरल आहार (100 मि.लि.प्रति घण्टा) दिया जाता है तथा धीरे-धीरे जल्दी पच सकने वाला हल्का भोजन थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दें । • दीर्घकालिक आहार संबंधी गलत आदतों को ठीक करें, हल्का फीका भोजन लेने पर बल दें, दिन में चार से छः बार ऐसा आहार दें । लौह तत्व की प्रतिपूरक खुराक दें।
पैप्टिक व्रण	आहार पथ का श्लेष्मिक आस्तर जो आमाशय रस के सम्पर्क में है उसका स्थानगत अपरदत	• फीका, नरम तथा रेशेरहित आहार • बार-बार आहार दें, किन्तु सोने के समय कुछ न दें क्योंकि समझा जाता है कि इससे रात के समय अमल स्राव की क्रिया को बढ़ावा मिलता है ।

जिस तालिका का आपने अभी अभी अध्ययन किया है उसमें विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों का उल्लेख किया गया है । *सामान्यत: जठरांत्र मार्ग की भित्ति में सूजन अथवा क्षति होने की स्थिति में नरम, फीका तथा रेशा रहित आहार देने की सलाह दी जाती है ।*

जैसे-जैसे रोगी की स्थिति में सुधार आता है, हम उसके आहार में हल्के मासालेदार तथा सुगन्धमय भोज्य शामिल कर लेते हैं । तथापि, यह सभी बातें रोगी विशेष की सहन शक्ति, स्थिति पर निर्भर करती है। आहार में घटाना-बढ़ाना आवश्यकता के अनुसार किया जा सकता है ।

हम यह कह सकते हैं कि नरम, फीका तथा रेशा रहित आहार, एक आहार में खाए जाने वाले खाद्यों व रेशेयुक्त खाद्य पदार्थो की मात्रा में हुई क्रमिक वृद्धि अथवा पहले चरण से तीसरे चरण में से खाद्य पदार्थो के चयन पर आधारित है ।

आइए, इन चरणों के बारे में जानें ।

चरण I तथा चरण II में से खाद्य पदार्थो का चयन

पेय पदार्थ : सभी रूपों में दूध

अनाज : सफेद ब्रेड, मैदे से बने खाद्य पदार्थ अथवा परिष्कृत गेंहू के आटे से बने खाद्य पदार्थ, मक्का का चिड़वा, मुरमुरा, चावल का चिउड़ा, चावल, पास्ता, खाद्य पदार्थ जैसे मैकरोनी, नूडल्स

पनीर	:	सादा केक, कुकीज़, कस्टरड फ्रूट, जैली, सादी आइसक्रीम, ब्रेड अथवा मक्का की मांड अथवा चावल या टैपियोका का पुडिंग, किशमिश या गिरीदार फलों रहित
अंडा	:	तले अंडो के अतिरिक्त और किसी भी प्रकार का
वसा	:	मक्खन, क्रीम, पाक वसा (cooking fat), वनस्पति तेल
फ़ल	:	फलों का रस, बिना छिलके, बीज के नरम फल, जैसे केला, संतरा, कम रेशों वाली सब्जियां
मांस तथा मछली	:	सिका हुआ, उबला, भुना हुआ अथवा स्टू किया हुआ
मसाले (Seasoning)	:	नमक, शर्करा, सुगन्धात्मक उद्धरण

चरण - III

चरण I और II के अन्तर्गत उल्लिखित सभी भोजन तथा :

- कैफीन रहित कॉफी, प्रचुर मात्रा में दूध वाली कॉफी, हल्की चाय
- महीन साबुत गेंहू (जिसके अधिकांश रेशे अलग कर दिए गए हों)
- बाजरे जैसे अधिक रेशेदार अनाज को छोड़कर सभी प्रकार का अनाज
- सभी प्रकार के पनीर
- तला हुआ अंडा
- कच्चा सेब, चेरी, आड़ू, नाशपाती, स्टू किया हुआ आलूबुखारा, खूबानी
- दाल चीनी, जावित्री और कम सुवास वाली बूटी
- सब्जियां जैसे लेट्यूस तथा स्वाद के अनुसार कुछ अम्लीय भोजन जैसे टमाटर

चरण I तथा II में अन्तर केवल आहार की मात्रा के संदर्भ में है। चरण 2 में रोगी को उसकी क्षमता के अनुसार भोजन दिया जा सकता है, किन्तु आहार का चयन सीमित रहेगा ।

तीव्र स्थिति के लिए स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय (डी.जी.एच.एस.) द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति द्वारा सुझाया गया नरम फीका (bland) आहार निम्न प्रकार से है ।

नरम फीका आहार (Bland Diet)

खाद्य पदार्थ	मात्रा
दूध तथा दूध निर्मित पदार्थ	1 लिटर
अंडा/पनीर	एक / 30 ग्राम
चावल अथवा परिष्कृत अनाज	150 ग्राम
दाल	50 ग्राम
पकी हुई सब्जियां	200 ग्राम
आलू	50 ग्राम
फल	एक हिस्सा
शर्करा	50 ग्राम
तेल	25 ग्राम

स्रोत : गाइडलाइन्स फार स्टैंडर्ड हास्पीटल डाइट्स, डी.जी.एच.एस., नई दिल्ली 1989

स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय द्वारा भारत में उपयोग हेतु सुझाये गए दिशानिर्देशों में नरम फीके आहार में निम्नलिखित सुविधाजनक जांच सूची भी शामिल होती है ।

अनुमत खाद्य पदार्थ (Permitted foods)	वर्जित खाद्य पदार्थ (Foods not permitted)
• दूध, ताजी दही, पनीर, क्रीम, आइस क्रीम	• अधिक मसालेदार भोजन, तले हुए भोजन
• छिलका रहित ब्रेड, कुरकुरा सूखा टोस्ट अथवा रसक	• इमली • तेज चाय / कॉफी
• मैदे या सूजी की चपाती, चावल अथवा खिचड़ी	• अधिक रेशेदार भोजन
• नूडल्स, मैकरोनी, दलिया, मक्के का चिउड़ा	• बीजदार सब्जियां जैसे परमल तथा करेला
• दाल, अंडे, मछली, चिकन	
• अच्छी तरह से पकी सब्जियाँ तथा फलों का रस	
• गन्ने का रस, छेने का पानी	
• सादे बिस्कुट	

अब हम इस ओर ध्यान दें कि इस प्रकार का आहार क्यों उपयोगी है? इस प्रकार के आहार की सिफारिश इसलिए की जाती है क्योंकि इस प्रकार का आहार जठरांत्र मार्ग की सुरक्षा करता है तथा मसालेदार और रेशेदार पदार्थों को दूर करता है। स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार का आहार रसायनिक, यांत्रिक तथा ताप की दृष्टि से उत्तेजक/जलन करने वाले (irritating) नहीं होते है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस आहार में रसायनिक रूप से उत्तेजक या जलन करने वाले भोजन (उदाहरणार्थ मांस का अर्क, कैफीन, अल्कोहल, खट्टे फल का रस और मसालेदार भोजन), यांत्रिक रूप से उत्तेजित करने वाले भोजन (जैसे रेशेदार भोजन) तथा ताप की दृष्टि से उत्तेजक भोजन (जैसे अत्यधिक उष्ण या शीत तापमान पर परोसे जाने वाले भोजन) शामिल नहीं होते हैं।

पैप्टिक व्रण के मामले में पारम्परिक रूप से जिस आहार की सिफारिश की जाती है वह बहुत सुनिश्चित होता था। इसके उदाहरण हैं 1915 में संरचित सिप्पी आहार (Sippy Diet) तथा 1935 में संरचित म्यूलेनग्राट आहार (Meulengracht Diet)। इसका उद्देश्य था कि थोड़ी मात्रा में थोड़े-थोड़े अंतराल पर नरम फीका आहार जैसे दूध अवश्य दिया जाना चाहिए, ताकि आमाशय में हर समय भोजन रहे।

यदि हम जठरांत्र विसंगतियां की आहार व्यवस्था की ओर ध्यान दें तो आप देखेंगे कि कुछ विसंगतियों के उपचार के लिए उच्च प्रोटीन वाले, व वसारहित आहार की आवश्यकता होती है। यह आहार वैसा नहीं है जिसकी हमने अभी यहां चर्चा की है। इस प्रकार के आहार के बारे में आपको अगले भागों में बताया जाएगा।

10.2.2 क्षुद्रांत्र (small intestine) तथा वृहदंत्र (colon) संबंधी समस्याएँ

अब हम अपना ध्यान क्षुदांत्र तथा वृहदांत्र संबंधी विकारों पर केन्द्रित करते हैं। हम उसी प्रकार के तालिका फौरमेट का प्रयोग करेंगे।

विसंगतियां	प्रमुख समस्या	आहार व्यवस्था
वृहदंत्र संबंधी उत्तेजक संलक्षण (संस्तंभी वृहदंत्र)	वृहदंत्र की सामान्य गतिशीलता अर्थात क्रमाकुंचन में गड़बड़ी	• ऐसे भोजन जो आंतों में अवशिष्ट की मात्रा में पर्याप्त वृद्धि कर सकें, जो मलोत्सर्ग में सहायक हो जैसे फल, सब्जियां, अनाज आदि यह भोजन कब्ज की स्थिति में उपयोगी रहते हैं। अतिसार जैसे केसों में कम रेशेदार आहार की सिफारिश की जाती है

क्षेत्रीय आन्त्र शोथ (क्रोह्न रोग)	दीर्घकाली अविशिष्ट सूजन है, मुख्यतया यह क्षुद्रांत्र के छोर पर होता है किन्तु आंत के किसी भी अन्य भाग में हो सकता है ।	• अत्यधिक अल्प अवशेष वाला भोजन दिया जाना चाहिए तथा ऐसा आहार नहीं दिया जाना चाहिए जिससे क्रमाकुंचन बढ़ जाए और उसमें अवरोध होने का खतरा न हो • लौह तत्व, फॉलिक एसिड तथा विटामिन बी 12 की खुराक पोषण पूरक के रूप में दी जानी चाहिए • सामान्य आहार धीरे-धीरे देना प्रारम्भ किया जाए तथा इसमें ऐसा भोजन नहीं दिया जाना चाहिए जिसे रोगी पचा न सके
विपुटी शोथ संबंधी रोग (Diverticulosis)	आंत्रभित्ति से श्लैष्मिक कोशों का बहिसरण: इन श्लेष्मिक कोशों को विपुटी कहा जाता है	• उच्च रेशेदार भोजन देने से वृहदंत्र की सूजन को कम करने तथा वृहदंत्र के किसी भी भाग में उच्च दवाब को बनने से रोकने में सहायता मिलती है
विपुटिता (Diverticulitsis)	आंत की नाड़ी या डायवर्टीकुला में शोथ होता है	• प्रारम्भ में छना हुआ तरल आहार दिया जाना चाहिए तथा धीरे-धीरे अल्प अवशोष आहार देना प्रारम्भ किया जा सकता है
वणोत्पादक वृहदांत्र शोथ (Ulcerative colitis)	वृहदंत्र की श्लेष्मिका और अध:श्लेष्मिका से सम्बद्ध विसूरित शोथ और वृणोत्पादक रोग	• क्षति पूर्ति को पूरा करने के लिए उच्च प्रोटीन आहार दिया जाना चाहिए • उच्च कैलोरी युक्त खुराक से वजन को बढावा मिलता है । • प्रारम्भ में अल्प-अविशेष्ट आहार दिया जाए, तब बाद में धीरे-धीरे सीमित रेशेदार आहार दिया जाए । • विटामिन तथा खनिज युक्त पूरक आहार दिया जाए ।
हैमॉरोइडज या बवासीर (Haemorrhoids or piles)		• नरम फीका रेशेदार रहित आहार

इस प्रकार हमें इसके बारे में काफी उपयोगी सूचना प्राप्त हुई है । हमें आशा है कि आप अब इन बीमारियों से, उनके लक्षणों तथा औषधीय चिकित्सा से परिचत हो गए हैं । इन रोगों के उपचार के बारे में आपको इस सूचना की आवश्यकता होगी ।

अब हम अल्प-अवशिष्ट आहार (low residue diet) की ओर चलते हैं, कौन-कौन से खाद्य पदार्थ लिए जा सकते है ? कौन से खाद्य पदार्थ वर्जित होते है ? पढिए और पता लगाइये ।

अत्यधिक अल्प अवशिष्ट वाला आहार

अनुमत खाद्य पदार्थ	वर्जित खाद्य पदार्थ
पेय पदार्थ - कॉफी सीमित मात्रा में, चाय	पेय पदार्थ - दूध तथा दूध से बने पेय पदार्थ
ब्रेड - सफेद ब्रेड	अनाज - साबुत अनाज तथा आलू
अनाज – परिष्कृत गेहूं, चावल, चावल का चिउड़ा, मैकरोनी, नूडल्स, स्पेगट्टी	पनीर - तीखी गंध वाला मिष्ठान्न - फल या गिरीदार फलों के साथ, पाई और पेस्ट्री, दूध से बनी मिठाईयां

पनीर - कौटेज चीज़, क्रीम	फल - फलों के रस को छोडकर सभी फल
मिष्ठानत - सादा केक कुकीज़,कस्टर्ड, पुडिंग, आइसक्रीम	मांस - सख्त, तला हुआ तथा वसायुक्त मांस
	सब्जियां - टमाटर के रस के अतिरिक्त सभी सब्जियां
अण्डे - तले हुए अण्डे के अतिरिक्त किसी भी प्रकार से बना अण्डा	विविध - गिरीदार फल,पौपकॉर्न अचार, अत्यधिक मसालेदार खाद्य पदार्थ

क्या ये आहार एकदम रेशारहित हैं ? जी हां हैं । ऐसा आहार आंतों में कम से कम अवरोध रहने देता है । तथापि हमें यह अवश्य याद रखना चाहिए कि अल्प अवशिष्ट वाले आहार में विटामिन तथा खनिजों की कमी होती है । इसलिए यदि इस प्रकार का आहार अधिक समय तक जारी रखना हो तो यह आवश्यक हो जाता है कि रोगी को कैल्शियम, लौह तत्व तथा विभिन्न विटामिन सान्द्र दिए जाने चाहिए ।

जैसे जैसे रोगी कि स्थिति में सुधार आता है धीरे-धीरे उसकी सामान्य खुराक पर लगे प्रतिबन्ध कम किए जाएं तथा उसे पकाई हुई हल्की सब्जियां और फल तथा दूध दिया जा सकता है ।

इस स्थिति में हमें उच्च रेशा युक्त आहार की ओर भी अवश्य ध्यान देना होगा । कब्ज वाले रोगी के लिए किस प्रकार के भोजन का चुनाव किया जाए ? इस बारे में हम पहले ही कह चुके हैं कि ऐसे में अधिक रेशेदार आहार देने की सिफारिश की जाती है । क्या आप ऐसे भोजनों की सूची तैयार कर सकते हैं, जो अधिक रेशेदार होते हैं ? इस संबंध में आप राष्ट्रीय पोषण संस्थान (भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद) के डॉ. सी.गोपालन, बी.वी.रामाशास्त्री तथा एस.सी बालासुब्रामणियम की 1989 में यथा संशोधित एवं प्रकाशित पुस्तक -" न्यूट्रीटिव वैल्यू ऑफ इण्डियन फूड्स" को संदर्भ हेतु देख सकते हैं । आशा है नीचे दी गई सूची से आप को सहायता मिलेगी ।

उच्च रेशेदार भोजन

- साबुत अनाज तथा दालें
- रेशेदार फल
- कमल ककड़ी तथा अन्य रेशेदार सब्जियां

बोध प्रश्न 1

1) कस्तूरी को आन्त्रशोध रोग के लिए अस्पताल में भर्ती किया गया । उसे जो नया आहार खाने को कहा गया है, उसे लेने में उसे कठिनाई हो रही है । आपके विचार में उसे कौन सा आहार खाने को कहा गया है ? क्या आप कारण बता सकते हैं कि उसे इस प्रकार का आहार लेने की सलाह क्यों दी गई है ?

....

....

....

....

....

2. निम्नलिखित का मिलान करें ।

कॉलम क	कॉलम ख
क) बार बार होने वाले अतिसार सहित बृहदांत्र उत्तेजक संलक्षण	1) नरम फीका, सीमित रेशेदार आहार
ख) अतिसार	2) उच्च रेशेदार आहार

ग) पैप्टिक व्रण | 3) अल्पअवशिष्ट आहार
घ) विपुटी शोथ | 4) तरल पदार्थ तथा इलेक्ट्रोलाइट्स विद्युत अपघट्य
 | 5) अल्प रेशेदार आहार

3) "अल्पअवशिष्ट" तथा "अल्प रेशेदार" आहार में अन्तर बतायें ।

....

....

....

....

....

10.2.3 अपावशोषण संलक्षण (Malabsorption Syndrome)

अब हम एक ऐसी महत्वपूर्ण विसंगति पर चर्चा करेंगे जिसे अपावशोषण संलक्षण कहा जाता है । आपके विचार से इस शब्द का क्या अभिप्राय है ? आप ऐसी विसंगतियों से पहले ही परिचित होंगे जिनमें रोगी को कुछ पोषक तत्वों का अवशोषण करने में कठिनाई होती है । उदाहरण के लिए, यदि वसा के अवशोषण की प्रक्रिया प्रभावित होती है तो मल में वसा की मात्रा अधिक दिखाई देती है । इसे स्टिऐटारीआ (वसापुरीष) कहा जाता है । इस संलक्षण की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें अनेक प्रकार के पोषक तत्वों के अवशोषण में बहुत अपसामान्यताएँ आती हैं ।

ऐसी स्थिति में आहार परिवर्तन में निम्नलिखित को सम्मिलित करने की आवश्यकता होती है ।

- ऊर्जा तथा प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि
- ऐसे कार्बोज़, प्रोटीन अथवा वसात्मक तत्व जिन्हें रोगी पचा नहीं सकता, उनको आहार में शामिल न करना
- वसा के प्रकार में परिवर्तन
- विटामिन तथा खनिज की पूरक खुराक देना
- जिन्हें बार-बार अतिसार रोग हो, उन रोगियों को नरम अथवा रेशारहित आहार दिया जाए ।

यह बताया जा चुका है कि कुछ प्रकार के अपावशोषण संलक्षणों में रोगी को मध्य श्रृंखला ट्राइग्लिसराइड्स युक्त वसा के आहार देना उपयोगी होता है । भोजन में विद्यमान वसा अथवा ट्राइग्लिसराइड्स में वसा अम्ल (12 से 18 कार्बन के परमाणु वाले होते हैं, इन वसा अम्लों को लम्बी श्रृंखला वाले वसा अम्ल कहा जाता है । इसके विपरित ऐसे वसा का भी निर्माण किया गया है, जो 8 से 10 कार्बन परमाणु वाले वसा अम्लों से बने होते हैं । दीर्घ आंतों तथा अग्न्याशय लाइपेसों द्वारा इन वसा तत्वों को शीघ्रता से पचा लिया जाता है । इसके अतिरिक्त निवाहिका शिरा (Portal vein) द्वारा श्वेतक (ऐल्बूमिन) से जुड़े युक्त वसा अम्लों के रूप में इन्हें विभिन्न प्रक्रिया द्वारा शीघ्रता से पचा लिया जाता है । मध्य श्रृंखला ट्राइग्लिसराइड्स (एम.सी.टी.) के रूप में 5 - 70 प्रतिशत वसायुक्त आहार का प्रयोग वसापुरीष को कम करने तथा कैल्शियम, सोडियम और पोटाशियम की कमी को दूर करने में उपयोगी बताया गया है।

एम.सी.टी. थिरेपी अग्न्याशयी अपर्याप्तता (Pancreatic insufficiency) के उपचार के लिए विशेष रूप से उपयोगी है । क्या आप जानते हैं, ऐसा क्यों है ? हां, ऐसा इसलिए है क्योंकि अग्न्याशय लाइपेंस का स्राव करती है । यदि अग्न्याश्य सही प्रकार से क्रिया न करे तो अग्न्याशयी अपर्याप्तता हो जाती है तथा लाइपेस का पर्याप्त उत्पादन नहीं होता ।

जैसा कि आपने अभी अभी पढ़ा है कि यदि कोई एंजाइम नहीं रहता अथवा अपनी क्रिया में असफल रहता है तो इसके परिणामस्वरूप अपावशोषण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है लेक्टोस असहिष्णुता (Lactose intolerance) अर्थात् दुग्ध शर्करा (लेक्टोस) सहन नहीं हो पाना। ऐसा लेक्टोस एंजाइम की अनुपस्थिति अथवा कमी के कारण होता है।

आपके विचार में इस समस्या का समाधान कैसे हो सकता है ? इसका एक उत्तर तो यह है कि रोगी को लेक्टोस रहित आहार लेने की सलाह दी जाए । हमारे आहार में दूध लेक्टोस (दुग्ध शर्करा) का एक मुख्य स्रोत है । इसलिए लेक्टोस रहित आहार में दुग्ध तथा दुग्ध से बने पदार्थ शामिल नहीं किए जाते। इसके अतिरिक्त हमें यह भी याद रखना होगा कि दुग्ध शर्करा का प्रयोग अनेक प्रकार के भोजन तथा दवाइयां बनाने के लिए भी होता है । इसलिए इस प्रकार के पदार्थों तथा दवाइयों को भी आहार में नहीं दिया जाना चाहिए ।

इस बारे में और भी अनेक विचारणीय बातें हैं । यदि हम आहार में दुग्ध को वर्जित कर देते हैं तो क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि हमारे आहार में किन-किन पोषक तत्वों की कमी हो जाएगी ? जिन पोषक तत्वों पर प्रभाव पड़ता है उनमें कैल्शियम तथा राइबोफ्लेविन प्रमुख हैं । ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिये ? इसका उत्तर यही है कि इसमें रोगी को इन पोषक तत्वों के पूरक देने होगें ।

इसके अतिरिक्त दो और ऐसी परिस्थितियां हैं, जिनके बारे में हमें विस्तारपूर्वक चर्चा करनी होगी । ये दोनों स्थितियां हैं - लघु अंतड़ी आंत संलक्षण (Short bowel syndrome) तथा ग्लूटेन एन्ट्रोपेथी (Gluten enteropathy) (उदर गुहा रोग)।

जिन रोगियों की आंतों का अधिकांश भाग निकाल दिया गया होता है, वे रोगी अक्सर लघु अंतड़ी संलक्षण या बाऊल सिंड्रोम से रोगग्रस्त होते हैं। इस संलक्षण में " ट्रॉजिट टाइम" (पेट में भोजन रहने का समय) अपेक्षाकृत बहुत कम हो जाता है । "ट्रॉजिट टाइम" का अभिप्राय क्या है ? यह वह समयावधि है जो भोजन खाने से लेकर भोजन के जठरान्त्र प्रणाली से बाहर निकलने में लगती है । चूंकि यह समयावधि कम हो जाती है, इसलिए भोजन आंतों में से शीघ्र ही निकल जाता है । इससे अवशोषण की प्रक्रिया प्रभावित होती है तथा यह जीवन के लिए खतरनाक भी हो सकती है । शल्य चिकित्सा तथा उसके तुरंत बाद एक या दो माह बाद तक पूर्ण पोषक तत्व प्रदान करने के लिए आंत्रेतर पोषण (Total Parenteral nutrition) ही केवल एकमात्र तरीका है । उसके पश्चात रोगी को मुख मार्ग से भोजन दिया जाता है, पहले कार्बोज़ (रेशारहित) तथा बाद में जैसे-जैसे उसकी स्थिति में सुधार आता है तब उसे प्रोटीन और वसायुक्त आहार दिया जाता है । ऐसी स्थिति में थोड़े-थोड़े समयान्तराल पर कम-कम मात्रा में भोजन देने की सिफारिश की जाती है । पश्चिमी देशों में अब अर्धसंश्लेषित रेशारहित आहार भी उपलब्ध है ।

अब हम अपना ध्यान उन रोगियों पर केन्द्रित करते हैं जो ग्लूटेन एन्ट्रोपेथी से ग्रस्त होते हैं । इस रोग से ग्रस्त रोगी गेहूं में उपस्थित ग्लूटेन नामक प्रोटीन को सहन नहीं कर पाते । बच्चों में इस रोग को उदर गुहा रोग (कोलिक रोग) भी कहा जाता है तथा बड़ी आयु में होने वाले इस रोग को वयस्क कोलिक रोग या नॉन ट्रापिकल स्प्रू (Non tropical sprue) भी कहा जाता है ।

इस समस्या का स्पष्टत: यही समाधान है कि आहार से ग्लूटेन नामक प्रोटीन तत्व को हटा दिया जाए । इसका अर्थ यह हुआ कि आहार में गेहूँ, राई, जौं, कुटू तथा कुछ मामलों में तो जई (oats) को भी हटा देना चाहिये । जहां तक भारत के संदर्भ में रोगियों के उपचार का प्रश्न है, यह उद्देश्य आहार से गेहूं तथा गेहूं से बने उत्पादों को हटाकर पूरा किया जा सकता है । अब जरा सोचिए कि जिस व्यक्ति का मुख्य भोजन ही गेहूँ है, उसके लिए आहार में क्या परिवर्तन किया जा सकता है।

नीचे अनुमत तथा वर्जित भोजनों के सम्बन्ध में सूची दी गई है, जिससे आपको रोगियों तथा उनके परिवारजनों को सलाह देने में सहायता मिल सकती है ।

अनुमत खाद्य पदार्थ	वर्जित खाद्य पदार्थ
• चावल, मक्की का आटा, सोया से बने उत्पाद	• गेहूँ तथा गेहूँ से बने पदार्थ जैसे आटा, सूजी, मैदा, बिस्कुट, ब्रेड
• नरम माँस, मछली,अण्डे, दूध तथा दूध से निर्मित पदार्थ	• ऐसी मिठाइयां जिनमें मैदा प्रयोग में लाया गया हो
• शर्करा, मधु (शहद)	• राई से निर्मित उत्पाद
• सभी सब्जियां तथा फल	
• मक्खन, घी तथा तेल	

आमतौर पर ग्लूटेन एन्ट्रोपेथी से ग्रस्त रोगी वसा को ठीक ढंग से नहीं पचा पाते हैं । इसलिए यदि वसा के प्रयोग की मनाही हो तो मक्खन, घी, तेल तथा सभी प्रकार के वसायुक्त भोजन आहार में बन्द कर

आमतौर पर ग्लूटेन एन्ट्रोपेथी से ग्रस्त रोगी वसा को ठीक ढंग से नहीं पचा पाते हैं। इसलिए यदि वसा के प्रयोग की मनाही हो तो मक्खन, घी, तेल तथा सभी प्रकार के वसायुक्त भोजन आहार में बन्द कर दें। इसके अतिरिक्त मलाई युक्त शुद्ध दूध के स्थान पर सप्रेटा दूध (Skim milk) दें।

बोध प्रश्न 2

1) ऐसे पांच भोजनों की सूची बनायें, जिन्हें निम्नलिखित रोग से ग्रस्त रोगी के आहार में नहीं देना चाहिए।

क) लेक्टोस असहिष्णुता

ख) ग्लूटेन एन्ट्रोपेथी

....

....

....

....

....

2) अपावशोषण संलक्षण से जुड़ी प्रमुख समस्याएं कौन-कौन सी हैं ? पांच पंक्तियों में उत्तर लिखें।

....

....

....

....

....

अब हम अगले विषय अर्थात यकृत, पित्ताशय तथा अग्न्याशय के रोगों के बारे में आहार चिकित्सा पर चर्चा करते हैं।

10.3 यकृत, पित्ताशय तथा अग्न्याशय संबंधी विसंगतियां

पहले हम यकृत (जिगर) को प्रभावित करने वाली विसंगतियों की चर्चा प्रारम्भ करते हैं। इनमें यकृतशोथ (hepatitis), सिरोसिस तथा यकृतीय कौमा आदि विकार सम्मिलित होते हैं। तथापि यकृत संबंधी रोगों की आहार चिकित्सा में प्रमुख रूप से निम्नलिखित उद्देश्य सम्मिलित होते हैं :

- पोषणयुक्त आहार का प्रयोग करते हुए यकृत संबंधी कार्मुकांशिक कोशिकाओं (Parenchymal cells) की सुरक्षा
- उच्च क्वालिटी प्रोटीन के उपयोग पर बल, ताकि टूटे- फूटे ऊतकों की मरम्मत हो सके तथा उन मामलों को छोड़ यकृत जिन में अत्यधिक हानिग्रस्त हो चुका हो और उच्च प्रोटीन का भार वहन करने में सुक्षम न हो दूसरे सभी में यकृत में वसा के अन्त: प्रवेश (fatty infiltration) को रोकना
- ग्लाइकोजन के भण्डारण में सुधार हेतु उच्च कार्बोज़ युक्त आहार। प्रोटीन की भांति, ग्लाइकोजन का भी संरक्षी प्रभाव होता है
- आमतौर पर वसायुक्त आहार प्रतिबंधित होता है।

यकृत रोग से ग्रस्त रोगियों की सबसे बड़ी समस्या होती है क्षुधा-अभाव यानि की भूख न लगना (Anorexia)। इसलिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए कि रोगी खाना अवश्य खाये। रोगी की भूख बढ़ाने हेतु उसे क्षुधावर्धक, रूचिकर आहार दिया जाना तथा उसे खाने के लिए प्रोत्साहित करना महत्वपूर्ण है। जो रोगी क्षुधा-अभाव से अत्यधिक पीड़ित हों उन्हें प्रारम्भ में तरल आहार दिया जाना चाहिये। तत्पश्चात नरम भोजन दिया जाना चाहिये। जैसे-जैसे रोगी की स्वास्थ्य स्थिति में सुधार आता है उसे विविध प्रकार के भोजन दिए जा सकते हैं।

किन्तु हमें यह अवश्य याद रखना होगा कि प्रत्येक विसंगति की समस्याएँ अलग-अलग होती हैं,

इसलिए प्रत्येक समस्या के अनुसार ही रोगी के आहार में यथावश्यक परिवर्तन किए जा सकते हैं । नीचे की गई चर्चा में यकृत शोध, सिरोसिस तथा यकृती कौमा संबंधी प्रमुख मुद्दों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है ।

यकृत शोथ : रोगी की सहनशक्ति के अनुसार उसे पर्याप्त मात्रा में कार्बोज़ और वसायुक्त आहार दिया जा सकता है । इससे प्रोटीन के भंजन (breakdown) में कमी आती है । ऐसे रोगियों के लिए उच्च प्रोटीनयुक्त, सामान्य वसायुक्त तथा उच्च कार्बोज़ युक्त आहार ठीक रहता है ।

सिरोसिस : उच्च प्रोटीन युक्त तथा कार्बोज़ युक्त आहार इन रोगियों के लिए उपयुक्त होता है । यदि सिरोसिस गंभीर स्थिति में हो तो वसायुक्त आहार पर प्रतिबंध लगाना आवश्यक है । यदि रोगी में शोफ तथा जलोदर (अर्थात उदर में जल संचय हो जाना) के लक्षण विद्यमान हों तो सोडियमयुक्त आहार पर रोक लगाई जानी चाहिए । यदि रोगी को गम्भीर सिरोसिस हो, जहां ग्रसिका की शिराओं से रक्त स्राव होने का खतरा होता है तो ऐसी स्थिति में आहार में रेशेदार तत्वों में कमी करना आवश्यक होता है । ऐसी स्थिति में रोगी को नरम अथवा तरल आहार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देने की सिफारिश की जाती है ।

यकृतीय कौमा (hepatic coma) : आहार में प्रोटीन की मात्रा को कम से कम करना इस लिए आवश्यक हो जाता है क्योंकि रोग की इस स्थिति में यकृत, प्रोटीन चयापचयन के उपोत्पादन जैसे अमोनिया को सहन करने में सक्षम नहीं होता । यह यकृत ही होता है जो अमोनिया जैसे खतरनाक तत्वों को यूरिया में परिवर्तित करता है।

जैसे-जैसे रोगी की स्थिति में, सुधार आता है, उसके आहार में प्रोटीन की मात्रा 10-15 प्रतिशत तक धीरे-धीरे बढाई जा सकती है, तब तक जब तक की प्रोटीन की कुल मात्रा बढ़ कर, 1 ग्राम प्रति किलो शरीर भार न हो जाए । किन्तु इस बात का निरन्तर ध्यान रखना होगा कि रोगी में कोमा की स्थिति पुन: न उभरने पाए। ऐसे और कौन से पोषक तत्व हैं, जो महत्वपूर्ण हैं ? ऐसे पोषक तत्वों के बारे में सोचिए जो यकृत को सुरक्षा प्रदान करते है तथा उत्तकों को नष्ट होने से बचाते हैं । ये पोषक तत्व हैं कार्बोज़ और वसा । शारीरिक निर्माण क्रिया के लिए प्रोटीनों को बचाए रखने के लिए कार्बोज़ आवश्यक होते हैं ।

क्या आपने इस चर्चा को ध्यानपूर्वक पढ़ा है ? आपने यह अनुभव किया होगा कि यकृत विसंगतियों से ग्रस्त रोगियों को दो प्रकार के आहार दिए जाते हैं, जो इस प्रकार है :

1) उच्च प्रोटीन-युक्त, सामान्य वसा-युक्त तथा उच्च कार्बोज़ युक्त आहार ।

2) वसा की कम मात्रा वाले आहार ।

आइये, प्रत्येक की प्रमुख विशेषताओं पर चर्चा करते हैं :

उच्च प्रोटीन-युक्त, सामान्य वसा युक्त तथा उच्च कार्बोज़-युक्त आहार में क्रीम को सम्मिलित करके ऊर्जा की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है । आहार में प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि, तरल दूध में वसा रहित सूखा दूध पाउडर (non-fat dry milk) मिलाकर की जा सकती है । यदि रोगी को भूख न लगती हो तो उसे थोड़ा-थोड़ा नरम भोजन कम से कम छ: अथवा अधिक बार देना लाभदायक होता है । कुछ रोगियों के आहार में सोडियम की मात्रा पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है ।

केवल ऐसे भोजनों को छोड़कर, जो रोगी सहन न कर सके शेष पर कोई रोक नहीं है । अत्यधिक मसालेदार सब्जियों, गरिष्ठ मिष्टान, तले हुए तथा वसायुक्त भोजनों, चॉकलेट, गिरीदार मेवा तथा अधिक स्वादिष्ठ भोजनों के सेवन से होने वाली कुछ समस्याओं के बारे में रिपोर्ट मिली है । तथापि अल्कोहल का सेवन पूरी तरह से बन्द किया जाना आवश्यक है ।

वसा से रहित आहार में निम्नलिखित प्रकार के भोजनों का सेवन नहीं किया जाना चाहिये : मलाईदार दूध से बने पेय पदार्थ, क्रीम अथवा आइसक्रीम, मलाईदार दूध से बने पदार्थ, गरिष्ठ मिटाईयां, तले हुए अण्डे, पकाने वाले तेल तथा क्रीम ।

> यकृत संबंधी रोगों का उपचार उच्च कार्बोज़, उच्च प्रोटीन, सामान्य वसा युक्त आहार अथवा अल्प प्रोटीन युक्त और अल्प वसा युक्त आहार से किया जाता है ।

अब हम अपना ध्यान पित्ताशय और पित्तीय तंत्र संबंधी रोगों पर केन्द्रित करते हैं । इसमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित समस्यायें सामने आती हैं :

1) पित्तशोथ (Cholecystitis)

2) पित्ताश्मरता/कोलीलिथिएसिस (Cholelithiasis)

पित्त शोथ में पित्ताशय में सूजन आ जाती है । आपके विचार से ऐसी स्थिति में किस प्रकार का आहार - उपचार दिया जाना चाहिए ? क्या आप समझते हैं कि इस स्थिति में वसा युक्त आहार पर रोक लगाई जानी चाहिए ? इसका उत्तर है, हां । पित्तीय तंत्र को प्रभावित करने वाली कोई भी समस्या वसा के पाचन को प्रभावित करती है । ऐसे में प्राय: कम वसा वाले तथा उत्तेजित न करने वाला (non-irritating) आहार देने की सिफारिश की जाती है । ऐसे भोजन जिनसे गैस बनती है अथवा वे भोजन जिनसे पेट फूलता है उन पर रोक लगाई जानी चाहिए । इस प्रकार के भोजन हैं : फूलगोभी, सूखे मटर, शलजम ।

कुछ रोगियों को अल्प अपशिष्ट वाले भोजन की सिफारिश भी की जा सकती है । शारीरिक भार के नियंत्रण पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए ।

पित्ताशय से सम्बद्ध एक और समस्या जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है वह है कोलीलिथिएसिस अथवा पित्ताशय में पथरी का बनना । पित्ताशय में तब पथरियां बननी शुरू हो जाती हैं जब कोलेस्ट्रॉल, पित्त वर्णक, पित्त लवण तथा कैल्शियम जैसे पदार्थ पित्त के बाहर अवक्षेपित (precipitate) होते हैं ।

जिन रोगियों का शारीरिक वजन अधिक होता है अथवा जो मोटे होते हैं उन्हें वजन घटाने की सिफारिश की जाती है । वसा रहित आहार लेने की सिफारिश नहीं की जाती है । इस समस्या में रेशेदार आहार उपयोगी रहता है । किन्तु इसका मुख्य उपचार शल्य-चिकित्सा द्वारा पथरी को निकलवाना ही है ।

बोध प्रश्न 3

1) यकृत में सिरोसिस होने की स्थिति में :

क) अतिरिक्त कैलोरी लेने की सलाह क्यों दी जाती है ?

....

....

....

ख) अतिरिक्त कार्बोज़ की क्या भूमिका है ?

....

....

....

....

....

ग) क्या प्रोटीन युक्त आहार पर रोक लगाई जानी चाहिए ?

....

....

....

....

....

घ) कौन-कौन से भोजनों का सेवन नहीं करना चाहिए ?

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित केस अध्ययन को ध्यानपूर्वक पढ़ें तथा प्रश्न 1 तथा प्रश्न 2 के उत्तर दें ।

सत्तर वर्षीय मालती का कद पाँच फुट है तथा उसका शारीरिक वजन 85 किलोग्राम है । खाने के बाद उदर में बार-बार दर्द की शिकायत होने पर उसे अस्पताल में भर्ती किया गया था । यह दर्द उसके उदर के दाहिने हिस्से के ऊपरी भाग में पाया गया था तथा इसके साथ उसे प्राय: डकार तथा मतली की शिकायत भी रहती थी। उसे पीलिया, दस्त अथवा बुखार नहीं था । जाँच से पता चला था कि उसके पित्ताशय में कई छोटी-छोटी पथरियां हैं ।

1) मालती के रोग को चिकित्सकीय भाषा में क्या कहा जाएगा ?

....

....

....

....

....

2) उसके लिए कैसा आहार उपयुक्त रहेगा ? उत्तर पर सही (√) का निशान लगायें ।

क) कम कैलोरी तथा कम वसा वाला आहार

ख) उच्च कार्बोज़, उच्च वसा युक्त आहार

ग) उच्च प्रोटीन युक्त, किन्तु वसारहित आहार

घ) ऐसा आहार जिसमें कैलोरी / वसा की मात्रा कम हो, नरम फीका आहार ।

अब हम अग्न्याशय को प्रभावित करने वाली विसंगतियों के बारे में चर्चा करेंगे । हम इस उपभाग में अग्न्याशय की केवल बहि: स्रावी क्रियाओं के बारे में चर्चा करेंगे, इसकी अंत: स्रावी क्रियाओं की चर्चा नहीं करेंगे । अग्न्याशय से संबंधित जिन विसंगतियों पर हम चर्चा करेंगे वह इस प्रकार हैं :

- अग्न्याशय शोथ (pancreatitis)
- पुटीय तंतुमयता (Cystic fibrosis)

जैसा कि अग्न्याशय शोथ के नाम से पता चलता है इसका अभिप्राय है अग्न्याशय में सूजन हो जाना । ऐसी स्थिति में तीव्र दर्द होने के दौरान मुख से कुछ भी नहीं दिया जाता । जैसे-जैसे पीड़ा की स्थिति में सुधार आता है, तद्नुसार रोगी की सहनक्षमता के अनुसार प्रारम्भ में उसे नरम फीका, रेशारहित आहार दिया जाता है। रोगी को दिया जाने वाला आहार कैलोरी से भरपूर, किन्तु उसमें वसा की मात्रा कम होनी चाहिए । क्या आप जानते है ऐसा क्यों करना चाहिए? कारण स्पष्ट है । आप जानते ही हैं कि अग्न्याशय से पाचक एन्जाइम पैदा होते है जो वसा तथा प्रोटीनों के पाचन में सहायक होते हैं । जब अग्न्याशय विकार ग्रस्त होता है तो पर्याप्त मात्रा में ये इन्जाइम उत्पन्न नहीं करता, जिससे पाचन की प्रक्रिया प्रभावित होती है । इसका पता मल में वसा तथा अनपचे प्रोटीनों की उपस्थिति से चलता है ।

ऐसी स्थिति में थोड़ा-थोड़ा भोजन कई बार देने की सिफारिश की जाती है । क्या आप इस प्रकार का आहार देने का कारण बता सकते है ?

इसके पश्चात हम पुटीय तंतुमयता पर चर्चा करेंगे । यह रोग ऐसा है जो जन्मजात होता है, अर्थात् जन्म के समय से ही होता है । इस समस्या का सम्बन्ध अग्न्याशय की बहि: स्रावी क्रियाओं के ठीक प्रकार से सम्पन्न न होने से है । पुटीय तंतुमयता में बहिस्रावी ग्रन्थिओं द्वारा अपसामान्य रूप से गाढ़ी श्लेषमा स्रवित होती है । यह अग्न्याशय, फेफड़ों तथा यकृत की वाहिनियों को बन्द कर देता है । अग्न्याशय की वाहिनिओं में अवरोध उत्पन्न होने से इसमें तंतुमयता तथा पुटी/सिस्ट बन जाती है । इसका परिणाम क्या होगा ? अग्न्याशय के एन्जाइम उदर की छोटी आंत में नहीं पहुंचेगें । इसके

परिणामस्वरूप प्रोटीन, वसा तथा कार्बोज़ की पाचन प्रक्रिया गंभीर रूप से प्रभावित होगी । पसीने से सोडियम तथा क्लोराइड का अत्यधिक क्षय होगा ।

ऐसी स्थिति में पुटीय तंतुमयता के उपचार के लिए कैसी आहार व्यवस्था की जानी चाहिए ? इसके लिए कैलोरी और प्रोटीन से भरपूर तथा वसा के प्रति रोगी की सहन शीलता में कमी आने पर आहार में वसायुक्त तत्वों को सामान्य मात्रा में दिये जाने की जरूरत है । विटामिन तथा खनिज तत्वों की पूरक खुराक अवश्य दी जानी चाहिए । सोडियम तथा क्लोराइड की क्षति की प्रतिपूर्ति की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए ।

> अग्न्याशय शोथ की स्थिति में उच्च कैलोरीयुक्त किन्तु अल्प वसायुक्त आहार बहुत उत्तम है । पुटीय तंतुमयता रोग की स्थिति में उच्च कैलोरीयुक्त तथा उच्च प्रोटीन युक्त आहार पर निर्भर करें ।

अब तक हमने यकृत, पित्ताशय तथा अग्न्याशय को प्रभावित करने वाली विसंगतियों के बारे में आहार व्यवस्था की विधियों पर चर्चा की है । हमें आशा है आपने इन दोनों समस्याओं तथा इन समस्याओं के आहार संबंधी समाधानों पर पूरी तरह से ध्यान केन्द्रित किया होगा ।

10.4 जननमूत्रीय तंत्र (Genitourinary system) संबंधी रोग

शरीर में जल तथा विद्युत् अपघट्यों (Electrotytes) का संतुलन बनाये रखने में गुर्दे की महत्वपूर्ण भूमिका है । उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका है शरीर से अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने की प्रक्रिया की। इस जैव अंग को प्रभावित करने वाली दो विभिन्न विसंगतियों के लिए निर्धारित आहारों के प्रकार का सारांश यहां नीचे दिया गया है ।

विसंगति	आहार का प्रकार
वृक्क शोथ या गुर्दे में सूजन टाइप 1 तथा 2	नियंत्रित मात्रा में प्रोटीन, सोडियम,पोटैशियम तथा फॉस्फोरस युक्त आहार
मूत्राशीय पथरी/वृक्क में पथरी (गुदे की पथरी)	कैल्शियम रहित आहार के साथ पथरी की बनावट के अनुसार क्षारीय/अम्लीय भस्म युक्त आहार ।

अब हम इस चार्ट में प्रयुक्त कुछ महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करेंगे । जैसा कि आप जानते हैं "वृक्क शोथ" का अभिप्राय है वृक्क या गुदे की कोशिकाओं अर्थात् वृक्काणु कोशिका गुच्छ (glomeruli) अथवा नलिकासमूह (tubles) या दोनों में सूजन आ जाना । वृक्कशोथ अथवा अन्य कारणों से गुर्दे काम करना बंद कर सकते हैं । इस स्थिति को वृक्क निष्क्रिय (renal failure) कहा जाता है तथा इसमें रक्तमूत्र निषाक्तता (uraemia) अर्थात रक्त में यूरिया संचित हो जाने की स्थिति पैदा हो जाती है ।

वृक्कशोथ दो रूपों में होता है :

टाइप - I : (विकृत वृक्कशोथ या सत्वकवृक्कशोथ (glomerulonephritis) या शोथज ब्राइटस रोग जो अधिकतर बच्चों तथा कम आयु के वयस्कों में होता है)

टाइप - II : (चिरकालिक मृद्तक वृक्क शोथ) यह रोग अधिकतर वयस्कों में होता है तथा इसे वृक्क सिंड्रोम (Nephrotic syndrome) भी कहा जाता है ।

टाइप - I का वृक्कशोथ आमतौर पर गुर्दों में स्ट्रेप्टोकोकल संक्रमण से होता है । मूत्र में रक्त, एल्ब्यूमिन तथा कास्ट्स (वृक्क शासनी) होते हैं । प्लाज़्मा प्रोटीन की सान्द्रता में कमी हो जाने से रक्त में यूरिया की मात्रा बढ़ जाती है । टाइप - II प्रकार के वृक्कशोथ में एल्ब्यूमिन की अत्यधिक कमी हो जाती है । मूत्र में एल्ब्यूमिन की अत्यधिक कमी हो जाने से जलोदर की स्थिति पैदा हो जाती है । किन्तु यूरिया तथा अन्य नाइट्रोजनी अवशिष्ट पदार्थों का कोई महत्वपूर्ण अवरोधन नहीं रहता। टाइप - I के वृक्कशोथ स्रावित मूत्र की मात्रा सामान्य अथवा थोड़ी सी कम हो सकती है ।

प्रत्येक स्थिति में दी जाने वाली आहार चिकित्सा के प्रमुख लक्षणों को नीचे सारबद्ध किया गया है।

टाइप - I वृक्कशोथ	टाइप - II वृक्कशोथ
• प्रोटीन की मात्रा न्यूनतम रखें	• अच्छी क्वालिटी प्रोटीन की बड़ी खुराक
• पर्याप्त मात्रा में कार्बोज़ दें ताकि अधिकतर ऊर्जा उससे प्राप्त हो	• अधिकांश ऊर्जा, कार्बोहाइड्रेट से प्राप्त होती है।
• वनस्पति तेलों के रूप से सामान्य वसा युक्त आहार दें	• सामान्य अथवा थोड़ा सा अधिक वसा युक्त आहार (जो लगभग 50 प्रतिशत वनस्पति तेलों के रूप से हो)
• तरल आहार कम से कम 1000 मि.ली. तथा जितनी मात्रा में मूत्र स्रावित हुआ हो उस मात्रा के बराबर अतिरिक्त तरल आहार	• 1000 मी.ली. के बराबर तरल आहार तथा प्रतिदिन जितनी मात्रा में मूत्र स्रावित हुआ हो, उसके बराबर अतिरिक्त तरल आहार
• जलोदर नियंत्रण हेतु सोडियम की सीमित खुराक	• जलोदर नियंत्रण हेतु सोडियम की नियंत्रित खुराक

इस चार्ट के माध्यम से आपको टाइप -I तथा टाइप - II प्रकार के वृक्कशोथ के संदर्भ में आहार व्यवस्था संबंधी अन्तर को समझने में अवश्य सहायता मिली होगी। इनमें प्रमुख अन्तर क्या है ? आप बिलकुल सही हैं, इनमें अन्तर प्रोटीन के स्तरों व मात्रा से संबंधित है। आपके विचार में टाइप - 2 के वृक्कशोथ से ग्रस्त रोगी को उच्च मात्रा में प्रोटीन की क्यों आवश्यकता होती है ? ऐसा करना मूत्र के माध्यम से हुई प्रोटीनों की क्षति को पूरा करने के लिए आवश्यक होता है।

टाइप - 1 के वृक्कशोथ में उच्च कार्बोज़ तथा अल्प प्रोटीन युक्त आहार देने की सिफारिश की जाती है। टाइप - 2 के वृक्कशोथ में उच्च कार्बोज़ तथा उच्च प्रोटीनयुक्त आहार पर निर्भर करें। दोनों स्थितियों में सोडियम की मात्रा सीमित करें तथा अधिकाधिक मात्रा में तरल आहार दें।

तीव्र वृक्क निष्क्रियता (acute renal failure) हो जाने की स्थिति में अहारिक अनुशासन के अनुसार 400 ग्राम ग्लूकोज़ तथा 100 ग्राम मूंगफली के रिफाइन्ड तेल को एक लीटर पानी में इमल्शन बना कर विटामिनों की दैनिक आवश्यकता के साथ दिए जाने चाहिये। यह इमल्शन नासाजठरिय ट्यूब द्वारा रोगी को दिया जाता है। कुछ चिकित्सक अतिसार रोकने के उद्देश्य से रोगी को एक लीटर पानी में 100 ग्राम ग्लूकोस मिलाकर देते हैं। जैसे ही मूत्र प्रक्रिया सामान्य हो जाती है, तद्नुसार दूध, फलों के रस आदि जैसे तरल पेय रोगी को दिए जाते हैं।

चिरकालिक वृक्क निष्क्रियता (Chronic renal failure) से ग्रस्त रोगियों को अल्प प्रोटीन युक्त आहार दिया जाता है। यह आहार लवणरहित होता है, तथा इसमें सोडियम और पोटैशियम की मात्रा भी कम होती है। रोगी को जो प्रोटीन दिए जाते हैं, वह उच्च क्वालिटी के होने चाहियें, जिससे गुर्दों पर कम से कम भार पढ़ें। इसके साथ-साथ यह प्रयास भी किया जाना चाहिए कि शरीर को ऊर्जा प्रदान करने के लिए प्रोटीन का। प्रयोग न किया जाए। इस समस्या का उत्तर यह है कि रोगी को कार्बोज़ और वसा के रूप में पर्याप्त कैलोरी युक्त आहार दिया जाए।

वृक्क निष्क्रियता की स्थिति में अस्पतालों के लिए मानवीकृत आहार सूची निम्न प्रकार से है :

1) **20 ग्राम प्रोटीन वाला आहार**

दूध तथा दूध से बने पदार्थ	200 मि.ली.
अण्डा / पनीर	एक / 30 ग्राम
अनाज	100 ग्राम
आलू/जड़ वाली सब्जियां	100 ग्राम
साबूदाना	100 ग्राम
अरारोट (Arrowroot) का पाउडर	100 ग्राम
बिना नमक का मक्खन	25 ग्राम
वसा (पकाने वाली)	25 ग्राम
शर्करा	75 ग्राम

2) **30 ग्राम प्रोटीन वाला आहार**

दूध तथा दूध से बने पदार्थ	250 मि.ली.
अण्डा / पनीर	एक/30 ग्राम
पनीर	30 ग्राम
अनाज	75 ग्राम
आलू	100 ग्राम
अन्य सब्जियां	100 ग्राम
फल	100 ग्राम
साबूदाना	100 ग्राम
अरारोट पाउडर	100 ग्राम
बिना नमक का मक्खन	25 ग्राम
वसा (पकाने वाली)	25 ग्राम
शर्करा / ग्लुकोज़	50 ग्राम

20 ग्राम तथा 30 ग्राम प्रोटीन वाले दोनों आहारों में शर्करा की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। आहार पकाने में नमक का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त पत्तेदार सब्जियों तथा आलू को उबालकर इनमें से पानी निकाल दिया जाना चाहिये, क्योंकि इनमें सोडियम की मात्रा काफी अधिक होती है।

3) **40 ग्राम प्रोटीन वाला आहार**

दूध तथा दूध से बने पदार्थ	350 मि.ली.
अण्डा / पनीर	एक / 30 ग्राम
पनीर	30 ग्राम
अनाज	150 ग्राम
आलू/ जड़ वाली सब्जियां	100 ग्राम
साबूदाना	50 ग्राम
अरारोट का पाउडर	100 ग्राम
बिना नमक का मक्खन	25 ग्राम
वसा (खाना पकाने की)	25 ग्राम
शर्करा	50 ग्राम

वृक्क निष्क्रियता में जो भोजन सेवन नहीं करने चाहिये, उनमें निम्नलिखित शामिल हैं :

- अतिरिक्त मात्रा में दूध तथा दूध से बने उत्पाद
- मांस, मछली, चिकन, अतिरिक्त मात्रा में अण्डा
- दालें, अतिरिक्त मात्रा में अनाज, सेम, मटर,फलियां
- सूखे फल, मूंगफली, नारियल
- काजू, बदाम आदि
- केक, पेस्ट्रीयां, जैम, जैली
- शिकंजवी, निंबू तथा फलों का रस
- प्रोटीन, सोडियम तथा पोटैशियम से भरपूर सब्जियां जैसे सूखे मटर, पालक

अब तक हमने वृक्कशोथ तथा वृक्क निष्क्रियता की स्थिति में दिए जाने वाले आहार की प्रमुख विशेषताओं पर चर्चा की है। अब हम भारत में पाई जाने वाली सबसे आम समस्या अर्थात गुर्दे की पथरी या वृक्क पथरी (renal calculi) के बारे में बात करते हैं।

गुर्दे में पथरी हो जाने की स्थिति में किस प्रकार का आहार दिया जाना चाहिए, यह पथरी की बनावट पर निर्भर करता है, जैसा कि नीचे दिए गए चार्ट में प्रदर्शित किया गया है।

पथरी की बनावट	वर्जित खाद्य पदार्थ
यूरिक एसिड तथा यूरेटस	मांस तथा मांस से बने पदार्थ, कवचप्राणी (shellfish), दालें, साबुत अनाज, जई का दलिया, सूखे मटर तथा फलियां और पालक
ओक्सालेट (oxalate)	हरे कदलीफल, अंगूर, अरबी (colocasia), शकरकन्दि, चुकुन्दर, किशमिश, अंजीर, बदाम, काजू, पालक तथा अन्य पत्तेदार हरी सब्जियां, चाय, कोको
फासफेट कार्बोनेट	साबुत अनाज, मांस, मछली, अण्डे, दूध, काजू तथा सेम की फलियां

मूत्राशय में होने वाली पथरी चूंकि कैल्शियम-से बनती है इसलिए आहार में कैल्शियम की मात्रा कम कर दी जानी चाहिये । जिन भोजनों में कैल्शियम की मात्रा अधिक होती है, जैसे दूध तथा दूध से बने पदार्थ, हरी पत्तेदार सब्जियां, तिल, मोटा अनाज आदि आहार में उनकी मात्रा सीमित कर दी जानी चाहिये ।

यह अवश्य सुनिश्चित किया जाए कि तरल आहार अधिक मात्रा में प्रयोग में लाया जाता है । इससे मूत्र पतला हो जाता है और क्रिस्टलों के अवक्षेपण (precipitation) से पथरी बनने का खतरा कम हो जाता है । प्रतिदिन 2 से 2.5 लीटर मूत्र आना सुरक्षित समझा जाता है । ग्रीष्मकाल में आद्रता से जब पसीना अधिक निकलता है उस समय तरल पदार्थों का अतिरिक्त उपयोग किया जाना चाहिए ।

> वृक्क निष्क्रियता से ग्रस्त रोगियों को ऐसे भोजन कम मात्रा में खाने चाहिये, जिनमें यूरिक एसिड/ ओक्सालेट/ फास्फेट/ कार्बोनेट होते हैं । तरल पदार्थ का अधिकाधिक मात्रा में सेवन करना अनिवार्य है ।

बोध प्रश्न 4

1) नीचे लिखे केस अध्ययन को ध्यान पूर्वक पढ़ें तथा प्रश्न (क) और (ख) का उत्तर दें ।

श्रीमती एक्स को गले में स्ट्रेप्टोकोकल संक्रमण के पश्चात अस्पताल में भर्ती किया गया था । श्रीमती एक्स 24 वर्षीय गृहणी है । उसने बताया कि डाक्टरी सलाह लेने से पहले कई दिन तक उसने गले की स्थिति को अनदेखा कर दिया था । श्रीमती एक्स ने बताया कि उसे कमजोरी महसूस होती है, सिर में दर्द रहता है, सांस फूल जाता है तथा भूख नहीं लगती । भर्ती होने से पहले उसका गला ठीक हो गया था । उसका रक्त चाप 156/98 पाया गया था । बाकी सारे लक्षण सामान्य थे । श्रीमती एक्स ने बताया कि पहले की अपेक्षा उसे मूत्र कम मात्रा में आता है। उसके मूत्र विश्लेषण से पता चला कि उसके मूत्र में प्रोटीन तथा रक्त काफी अधिक मात्रा में है । उसने दोनो टांगों पर जलोदर होने के निशान भी दिखाये । श्रीमती एक्स को बिस्तर पर पूरी तरह से आराम करने की सलाह दी गई और उसे कुछ प्रतिजैविकी लेने तथा आहार-चिकित्सा के लिए कहा गया ।

क) श्रीमती एक्स किस रोग से पीड़ित हैं ?

....

....

....

ख) श्रीमती एक्स को किस प्रकार की पोषणात्मक देखभाल दी जानी चाहिए, उसकी प्रमुख विशेषताओं की विवेचना करें ।

....

....

....

....

....

10.5 पेशीकंकाली तंत्र (Musculoskeletal System) संबंधी रोग

इस चर्चा में हम अपना ध्यान गठिया (arthritis) तथा गाऊट (gout) पर केन्द्रित करेंगे।

गठिया जोड़ों में होने वाली सूजन है। गठिया अनेक प्रकार का होता है। किन्तु सभी मामलों में आहार-चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य मोटापे की रोकथाम करना होता है। मोटापा इस बीमारी में बहुत खतरनाक होता है, क्योंकि इससे जोड़ों में अत्यधिक वजन पड़ता है। आहार चिकित्सा का एक उद्देश्य अच्छा पोषणात्मक स्तर बनाये रखने में मदद करना भी है। मोटापे को कम करने के लिए अल्प कैलोरी युक्त आहार की आवश्यकता होती है। हमें हमेशा यह बात याद रखनी चाहिए कि अन्य लोगों की तुलना में गठिया से ग्रस्त रोगी कम फुर्तीला होता है।

गाऊट रोग भी गठिया से मिलता जुलता होता है तथा यह उपापचयात्मक मूल (metabolic origin) का होता है। इसमें जोड़ों में सूजन आ जाती है तथा दर्द होता है। यह रोग यूरिक एसिड जमा होने से हो जाता है, जब गुर्दों द्वारा नाइट्रोजनिक पदार्थों (जिन्हें प्यूरिनस (purines) कहा जाता है) को निष्कासित किया जाता है तब शरीर में यूरिक एसिड का निर्माण होता है, जो जोड़ों में जमा होता है। गाऊट में यूरिक एसिड पर्याप्त मात्रा में निष्कासित नहीं होता और इस प्रकार एसिड शरीर में जमा हो जाता है।

गंभीर तीव्र गाऊट होने की स्थिति में अल्प प्यूरिन-युक्त आहार लिया जाना चाहिये। वसा को अल्प अथवा सामान्य मात्रा में रखना चाहिए, क्योंकि वह यूरिक एसिड उत्पादों के निष्कासन में शरीर की क्षमता में बाधक होते हैं। स्थूल या मोटापे वाले रोगियों को वजन कम करने वाले आहार दिए जाते हैं।

संक्षेप में यहाँ अल्प-प्यूरिन युक्त आहार की विवेचना की गई है :

1) **उच्च प्यूरिन युक्त खाद्य पदार्थ**

   हमेशा वर्जित

   रोहू मछली

   हेरिंग (herring), सालमन (salmon), सार्डीन जैसी मछलियां

   गुर्दा

   मीठी ब्रेड

   मांस के अर्क तथा सूप

2) **सामान्य प्यूरिन-युक्त खाद्य पदार्थ**

   इस प्रकार के भोजन गंभीर रोग न होने की स्थिति में ही आहार सम्मिलित किए जा सकते हैं।

मांस	फलियां	चिकू
मछली-पॉमफेट	बैंगन	कस्टर्ड एपल
कवचप्राणी	फूल गोभी	
चिकन	ताजे बीन्स	
	हरे मटर, दालें	
	खुम्बी (mushrooms), पालक	

3) *अनुमत खाद्य पदार्थ*

नगण्य प्यूरिन-युक्त खाद्य पदार्थ सदैव लिए जा सकते हैं।

2 में बताई गई सब्जियों को छोड़कर अन्य सभी

2 में बताई गए फलों को छोड़कर अन्य सभी

दूध तथा दूध से बने पदार्थ

अण्डे

वसा तथा तैल

शर्करा तथा मिठाईयां

अनाज

इसके अतिरिक्त प्यूरिइन-युक्त भोजनों का सेवन न करने तथा अधिकाधिक तरल आहार लेने की सलाह दी जाती है। 2000 मि.ली. निष्कासण की मात्रा को पर्याप्त समझा जाता है। अलकोहल का प्रयोग पूरी तरह से बन्द रहना चाहिये। चाय तथा कॉफी का सेवन भी कम मात्रा में किया जाना लाभदायक है।

गाऊट की स्थिति में अल्प प्यूरिन युक्त, अल्प वसा युक्त तथा आसानी से पचने वाला आहार लिया जाना अच्छा है तथा अधिकाधिक मात्रा में तरल आहार लेना लाभदायक होता है।

10.6 सारांश

इस इकाई में हमने पोषण की कमी से होने वाली विसंगतियों के साथ-साथ जठरांत्र मार्ग, यकृत, पित्ताशय तथा अग्न्याशय, जननमूत्रीय तंत्र, तथा पेशीकंकाली तंत्र संबंधी विसंगतियों के संदर्भ में आहार व्यवस्था के बारे में चर्चा की है।

संक्षेप में इन स्थितियों में निम्न प्रकार का आहार देने की सलाह दी जाती है :

- आहार नली, अमाशय तथा मध्यांत्र (या छोटी आंत का प्रथम भाग) संबंधी रोगों में नरम फिके व रेशेरहित आहार
- क्षुद्रांत्र तथा बृहदांत्र संबंधी विकारों में अल्प-अवशिष्ट वाला आहार अथवा उच्च रेशेदार आहार
- अपावशोषण संलक्षण की स्थिति में मध्यम श्रृंखला ट्राइग्लिसराइड युक्त आहार, लेक्टोज़ रहित आहार, सुक्रोज़ रहित आहार अथवा ग्लूटेन रहित आहार
- यकृत, अमाशय अथवा अग्न्याशय संबंधी बीमारियों में उच्च प्रोटीनयुक्त, उच्च कार्बोज़ युक्त, सामान्य अथवा सीमित वसा युक्त आहार।
- वृक्क या गुर्दे संबंधी बीमारियों में सीमित प्रोटीन, पोटैशियम तथा सोडियम वाला आहार
- गाऊट रोग में प्यूरिन रहित आहार

10.7 शब्दावली

वसात्मक अन्त:संमरण	:	इस शब्द का प्रयोग यकृत की कोशिकाओं के संदर्भ में किया गया है, जो असाधारण मात्रा में वसा संचित करती हैं।
अपर्याप्तता	:	किसी उपांग की क्रियात्मक क्षमता में कमी आ जाना, जैसे अग्न्याशय।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अल्प अवशिष्ट आहार वह आहार है जो अधिक मात्रा में अवशिष्ट पदार्थ बनने से रोकते हैं, अर्थात जो अवशिष्ट पदार्थ अधिक समय तक आंतों में रहते हैं। उदाहरण के लिए दूध उच्च अवशिष्ट भोजन है। इस प्रकार का आहार आंतों की भित्तियों में प्रवाह रोकने के लिए किया जाता है, क्योंकि आंतें पहले से ही सूजी होती हैं।

2) क - 5; ख - 4; ग - 1; घ - 2

3) अल्प अवशिष्ट आहार वह आहार है जो आंतों में कम से कम अवशिष्ट रहने देता है। इस प्रकार का आहार जल्दी पच जाता है तथा जीवाण्विक भार को बढ़ने नहीं देता। अल्प रेशेदार आहार में रेशा की मात्रा बहुत कम होती है, जिन्हें मानवीय एंजाइमों द्वारा जल्दी से हज़्म नहीं किया जा सकता।

बोध प्रश्न 2

1) क) दूध, आईसक्रीम, दूध से बनी मिठाईयां, डेरी वाइटनर तथा मिल्क पाउडर

ख) आटा, सूजी, राई से बने पदार्थ, मैदा तथा इससे निर्मित पदार्थ, बिस्कुट, पास्ता आदि ।

2) अल्प अवशोषण : यदि वसा की अवशोषण प्रक्रिया प्रभावित होती है तो मल के साथ वसा जैसे पोषक तत्व बाहर आ जाते हैं व ठीक ढंग से इनका अवशोषण नहीं हो पाता । इसका परिणाम यह होता है कि आंतों मे चूंकि बिना अवशोषित पोषक तत्व अधिक मात्रा में पहले ही विद्यमान रहते हैं, इसलिए अन्य पोषक तत्वों के अवशोषण में असामान्य हो जाती है ।

बोध प्रश्न 3

1) क) यहां अतिरिक्त कैलोरी कार्बोज़ की मात्रा में वृद्धि से संबद्ध हैं ।

ख) उच्च कार्बोज़युक्त आहार से ग्लाइकोजन की मात्रा में वृद्धि होती है । ग्लाइकोजन का संरक्षी प्रभाव होता है, इसके अतिरिक्त ऊर्जा से भरपूर खाद्य पदार्थों से पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा मिलती है, जो शारीरिक निर्माण के लिए प्रोटीन को मुक्त करती है । इस केस में यह शरीर के ऊतकों की मरमत करती है ।

ग) जब तक स्थिति गंभीर न हो तब तक आहार में प्रोटीन पर रोक नहीं लगाई जाती । वस्तुतः उच्च प्रोटीन युक्त आहार की सलाह दी जाती है ।

घ) वसा युक्त भोजन; यदि जल संचय हो गया हो तो सोडियम युक्त आहार पर रोक लगाना आवश्यक हो जाता है ।

2) क) कोलीलिथिएसिस

ख) क

बोध प्रश्न 4

1) क) टाइप - 1 वृक्क शोथ

ख) उच्च कार्बोज़, अल्प, प्रोटीन अल्प, सोडियम युक्त आहार के साथ-साथ अधिकाधिक मात्रा में तरल पदार्थ ।